अपभ्रंश-हिंदी-कोश

APABHRAMSA-HINDI DICTIONARY

अपभ्रंश-हिंदी-कोश

APABHRAMSA-HINDI DICTIONARY

प्रथम भाग

(अ से थ तक)

डॉ० नरेश कुमार

एम० ए०, एम० एड०, पी-एच० डी०

[हिंदी-व्युत्पत्ति-कोश (हिंदी भाषा का तुलनात्मक एवं व्युत्पत्तिमूलक कोश) के संपादक]

प्रकाशक

इण्डो-विज़न प्राइवेट लिमिटेड

II ए, २२०, नेहरूनगर, गाज़ियाबाद-२०१००१ (उ० प्र०)

Apabhraṁśa-Hindi Dictionary
by Dr. Naresh Kumar

मूल्य : 250/- रुपए
प्रथम संस्करण सन् १९८७ ई०

भारत में प्रकाशित

मुद्रक—तथागत प्रिंटिंग प्रेस
तेजाब मिल, जी० टी० रोड, गाज़ियाबाद।
प्रकाशक—इण्डो-विजन प्रा० लि०
II ए-२२० नेहरूनगर, गाज़ियाबाद-२०१००१
 46328

Published by
Indo-Vision Private Limited
II A, 220, Nehru Nagar, Ghaziabad-201001 (U. P.) India

समर्पण

जिनका सारा जीवन छात्रों एवं शोधार्थियों को निःस्वार्थ भाव से निर्देशित करने में व्यतीत हुआ।

जिनका रोम-रोम हिंदी-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में समर्पित रहा, जो प्राचीन गुरु-परंपरा के साकार स्वरूप हैं, उन्हीं श्रद्धेय डॉ० **जयचन्द्र राय** को सादर समर्पित।

—नरेश कुमार

दो शब्द

एक अपभ्रंश कोश की प्रतीक्षा वहुत दिनों से थी। आज डॉ० नरेश कुमार के 'अपभ्रंश-हिंदी-कोश' को देखकर प्रसन्नता हुई। कोश कैसा वन पड़ा है, यह तो उपयोग की प्रक्रिया से गुजरने पर ही ठीक-ठीक पता चलेगा। किंतु उड़ती नज़र से देखने से इतना तो आभास हो ही जाता है कि कोशकार ने शव्द-संग्रह का कार्य केवल कोश-ग्रंथों से ही नहीं किया है, वल्कि स्वयं अपभ्रंश के काव्य-ग्रंथों का भी उसने आलोड़न-विलोड़न किया है। संभव है, खोजने पर कुछ-एक अभीष्ट अपभ्रंश शव्द इस कोश में न मिलें, लेकिन इतने से ही यह प्रयास व्यर्थ सिद्ध नहीं होता। इस दृष्टि से कोई भी शव्दकोश पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

अपभ्रंश शव्द के विद्यार्थी अभी तक श्री हरगोविंद दास त्रिकमचन्द शेठ के 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' से ही काम चलाया करते थे, क्योंकि प्राकृत के वहुत-से शव्द अपभ्रंश में भी ज्यों के त्यों स्वीकार कर लिए गए थे, फिर भी अपभ्रंश के काव्य-ग्रंथों में ऐसे अनेक शव्द मिलते रहते हैं जो उक्त कोश में दुष्प्राप्य हैं। इस आवश्यकता की पूर्ति एक स्वतंत्र अपभ्रंश कोश ही कर सकता है—ऐसा कोश जो अपभ्रंश काव्य-ग्रंथों में प्रयुक्त शव्दों के आधार पर निर्मित हो। डॉ० नरेश-कुमार का प्रयास इसी दिशा में है, इसलिए स्वागत योग्य है।

अपभ्रंश-कोश की सवसे वड़ी समस्या अर्थ-निर्धारण की है। ध्वनि-परिवर्तन के विविध नियमों के कारण संस्कृत के शव्द अपभ्रंश में ऐसा रूप ग्रहण कर लेते हैं कि प्रायः एक ही अपभ्रंश शव्द अनेक संस्कृत शव्दों का वाचक होता है। ऐसी स्थिति में अत्यंत सावधानी अपेक्षित है। मुझे यह देखकर संतोष हुआ कि इस कोश में ऐसी सावधानी वरती गई है। ऐसे स्थलों पर मूल ग्रंथ से प्रयोग के उदाहरण उद्धृत करके सही-गलत के निर्णय की सुविधा भी प्रदान की गई है।

सच पूछिए तो डॉ० नरेश कुमार ने वह कार्य किया है जो प्रायः किसी संस्था के ही वूते का है। इस अध्यवसाय के सम्मुख नतमस्तक होने के अतिरिक्त वह व्यक्ति और क्या कर सकता है जो पैंतीस वर्ष पहले अपभ्रंश पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखने के वाद विद्या की उस ड्योढ़ी से दूर चला आया। फिर भी ग्रंथकार के अनुरोध पर यदि आशंसा के दो शव्द कहने का साहस जुटा रहा हूँ तो इसलिए कि यह मेरा पुराना प्रेम ही नहीं, वल्कि प्रथम प्रेम है। इस समय तो मन में यही भाव है कि जो मुझसे न हो सका उसे करके दिखाने वाला कोई तो आगे आया! 'क्रिया केवलमुत्तरम्'।

नामवर सिंह

भारतीय भाषा केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-११००६७

३०-११-१९८६

आमुख

भाषा नदी के समय परिवर्तनशील होती है। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत के दुर्बोध होनें पर पालि, प्राकृत आदि भाषाएँ प्रचलित हुईं; संस्कृत भाषा की विभक्तियों का बाहुल्य और उनकी अनिवार्यता के नियम प्राकृत और अपभ्रंश में शिथिल होते गए। आधुनिक भारतीय भाषाएँ निर्विभक्तिक होती गईं। कारक विभक्तियों के स्थान पर इनमें परसर्गों का व्यवहार होने लगा। प्रांतीय अपभ्रंशों–महाराष्ट्री अपभ्रंश, मागधी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश, शौरसेनी अपभ्रंश और पैशाची अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं–उपभाषाओं एवं बोलियों के विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। ई० १००० के पश्चात् विकास की यह अवस्था देखने में आती है।

अपभ्रंश भाषा से उद्भूत भाषाएँ—

पं० हरगोविन्ददास टी० सेठ ने अपभ्रंश भाषा से उत्पन्न विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का विवरण इस प्रकार दिया गया है—

"ख्रिस्त की पञ्चम शताब्दी के पूर्व से लेकर दशम शताब्दी पर्यन्त भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में कथ्य भाषाओं के रूप में प्रचलित जिस-जिस अपभ्रंश भाषा से भिन्न-भिन्न प्रदेश की जो जो आधुनिक आर्य कथ्य भाषा (Modern vernacular) उत्पन्न हुई है। उसका विवरण यों है:—

महाराष्ट्री–अपभ्रंश से मराठी कोंकणी भाषा। मागधी–अपभ्रंश की पूर्व शाखा से वंगला, उड़िया और आसामी भाषा। मागधी–अपभ्रंश की विहारी शाखा से मैथिली, मगही और भोजपुरिया। अर्धमागधी–अपभ्रंश से पूर्वीय हिन्दी भाषाएँ अर्थात् अवधी, वघेली और छत्तीसगढी। सौरसेनी–अपभ्रंश से बुन्देली, कनौजी, व्रजभाषा वांगरू, हिन्दी या उर्दू ये पाश्चात्य हिन्दी भाषाएँ। नागर–अपभ्रंश से राजस्थानी, मालवी, मेवाडी, जयपुरी, मारवाडी तथा गुजराती भाषा। टाक्की–अपभ्रंश (सौरसेनी के प्रभाव-युक्त) से पूर्वीय पंजाबी।

व्राचड अपभ्रंश से सिन्धी भाषा।

पैशाची अपभ्रंश से कश्मीरी भाषा"।[1]

पं० हरगोविन्द दास टी० सेठ ने उपर्युक्त भाषाओं में तमिल, मलयालम, तेलुगु और कन्नड का उल्लेख नहीं किया है। वस्तुतः तमिल और मलयालम, तेलुगु और कन्नड की शब्दावली और लिपि में परस्पर समानता मिलती है। इन भाषाओं की उत्पत्ति किस भाषा से हुई, अभी भी यह विवादास्पद विषय वना हुआ है।

असमी भाषा का विकास पूर्वी क्षेत्र में प्रचलित प्राकृत भाषा; गुजराती का

१. पं० हरगोविन्द दास टी० सेठ, पाइअ-सद्द-महण्णवो, संस्क० १९२८, उपोद्घात, पृ० ४६।

विकास गुर्जर अपभ्रंश से हुआ। मराठी की शब्दावली संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से आयी है। सिन्धी, पंजाबी, ब्राचड़ और पहाड़ी भाषाएँ भी शौरसेनी अपभ्रंश से प्रभावित हैं।

ग्रियर्सन के अनुसार शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी (बांगरू; खड़ी-बोली, ब्रज, कन्नौजी और बुन्देलखण्डी), राजस्थानी अपभ्रंश से राजस्थानी बोलियाँ (मेवाती, मारवाड़ी, मालवी, जयपुरी), गुर्जर अपभ्रंश से गुजराती; पूर्वी हिन्दी समूह, अर्धमागधी अपभ्रंश से (अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी , मागधी से भोजपुरी, मैथिली, मगही, बंगला, उड़िया; महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी का विकास हुआ। नीचे अपभ्रंश भाषा के प्रादेशिक भाषाओं एवं बोलियों के साथ सम्बन्धों को सिद्ध किया गया है। विद्यापति की 'कीर्तिलता' (चौदहवीं शताब्दी की रचना) में भूतकाल में 'ल' प्रत्यय का प्रयोग—कहल, चलल, मारल आदि शब्दों में मिलता है। मैथिली के भूतकालिक कृदन्त, यथा—देखल, सुनल, हँसल आदि प्रयोग मेंअ वहट्ट भाषा की परम्परा सहज रूप में द्रष्टव्य है। अपभ्रंश धातु 'वइसइ' (बैठने के अर्थ में) मैथिली में और अपभ्रंश 'वइठिउ' (बैठने के अर्थ में) बुन्देली और बघेली में विद्यमान है। रोडाकृत 'राउलवेल' (११ वीं शती की रचना) में भूतकाल के भाव को प्रकट करने के लिए 'अल' प्रयय का प्रयोग 'ओढिअल,' 'पैंहिरअल' शब्दों में हुआ है, जिसका प्रयोग आज भी बंगला, भोजपुरी, मैथिली में मिलता है।

अपभ्रंश भाषा में वे प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, जो कि बाद में भारतीय भाषाओं और बोलियों में विकसित हुईं। विकास की दृष्टि से अपभ्रंश के शब्दों से भारतीय भाषाओं की कड़ी जोड़ी जा सकती है। उदाहरणार्थ; उडिया के 'अंकुश' (सं० अङ्कुश>अप० अंकुस), 'अंगार' (सं० अङ्गार>प्रा० अप० अंगार=जलता हुआ कोयला) 'अंगुलि' (सं० अङ्गुलि–ली>प्रा० अप० अंगुलि>हिं० उंगली), 'अन्त' (सं० अन्त>प्रा० अप० अंत=आखिर), 'अंधार' (सं० अन्धकार>प्रा० अंधयार>अप० अंधार), 'आग' (सं० अग्र>प्रा० अग्ग, अप० अग्गइ, अग्गइं, अग्गएँ) आदि शब्दों के लिए अपभ्रंश साहित्य उपजीव्य रहा है।

पंजाबी के 'इकासी' (सं० एकाशीति>अप० इक्कासी>हिं० इक्यासी), 'अग्गे' (सं० अग्र>प्रा० अग्ग>हिं० आगे), अट्ठ (सं० अष्टन्>प्रा०अप० अट्ठ>हिं० आठ), 'अद्धा' (सं० अर्ध>प्रा० अद्ध>अप० आध), 'आस' (सं० आशा>प्रा० आसा>अप० आस), 'आसण' (सं० आसन>प्रा० आसण>अप० आसण्ण=जिस पर बैठा जाता है वह चौकी आदि), 'अन्हां' (सं० अन्ध>अप० अंध), 'अन्हेरा' (सं० अन्धकार>प्रा० अंधकार>प्रा० अंधयार>अप० अंधार), 'इक्क' (सं० एक>अप० एक्क, इक्क), 'वड्डा' (अप० वड्ड>हिं० बड़ा), 'छड्ड' (सं० छर्दय्>प्रा० अप० छड्ड, अप० छंड>हिं० छोड़ना) आदि शब्दों के उदाहरण से अपभ्रंश की व्युत्पत्तिमूलक महत्ता स्वतः सिद्ध है।

अपभ्रंश के अनेक शब्द पंजाबी में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं यथा—अपभ्रंश √सि (होने के अर्थ में) पंजाबी और हरियाणवी में विद्यमान है। स्वयंभू रोडाकृत 'राउवेल' में प्रयुक्त 'चांगउ' (४,८), स्वयंभू, पुष्पदंत और धनपाल द्वारा प्रयुक्त 'चंगउ' शब्द की परम्परा पंजाबी में 'चंगा, चंगी' के रूप में आज भी जीवित है।

असमी के आढ़ै (सं० अर्धोनतृतीय>अप० अड्ढाइय>हि० अढ़ाई), आठावन (सं० अष्टपंचाशत्>अर्धमागधी अट्ठावण्ण>अप० अट्ठावण>हि० अट्ठावन), आठचल्लिस (सं० अष्टचत्वारिंशत्>अर्धमागधी अट्ठचत्तालीस, अठचालीस>अप० अठतालिस, अट्ठचालीस>हि० अड़तालीस), आपोन (सं० आत्मन्>प्रा० अप्पण>अप० अपन>हि० अपना) आदि शब्दों के विकास का अध्ययन विना अपभ्रंश के अध्ययन के अधूरा ही कहा जायेगा।

गुजराती के 'आंख' (सं० अक्षि>प्रा० अक्खि>अप० आंखि), अगाउ' (सं० अग्र>प्रा० अग्ग>अप० आगु=आगे), 'आध' (सं० अर्ध>प्रा० अद्ध>अप० आध, आळस' (सं० आलस्य>प्रा० आलस्स>अप० आलस), 'वींछी' (सं० वृश्चिक>प्रा० विचुअ, विछुअ, विछिअ>अप० विछी), 'शाणो' (सं० सज्ञान>अप० सयाणिअ), 'हुं' (सं० अहम्>अप० हउं, हुं), हैडुं (सं० हृदय>प्रा० हिअय, हिय, अप० हियडउं), 'छोडवुं' (सं० छर्दय्>अप० छड्ड>हि० छोड़ना) आदि शब्दों के अध्ययन से सिद्ध है कि अपभ्रंश और गुजराती का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः अपभ्रंश भाषा गुजराती की जननी है।

अपभ्रंश और मराठी के परस्पर साम्य की चर्चा निम्नलिखित शब्दों से पुष्ट की जा सकती है। मराठी के 'अंगठा' (सं० अङ्गुष्ठ>प्रा० अप० अंगुट्ठ>हि० अंगूठा), 'अठरा' (सं० अष्टादशन्>प्रा० अप० अट्ठारह>हि० अट्ठारह), अड-सष्ट, अडसट (सं० अष्टषष्ठि>अप० अट्ठसट्ठि), 'माणूस' (सं० मनुष्य>अप० मणुसु>हि मनुष्य), 'विंच' (सं० वृश्चिक>प्रा० विचुअ, विछुअ, विछिअ>अप० विछी), 'खांब' (सं० स्तम्भ>प्रा० अप० खंभ) 'अन्धार' (सं० अन्धकार>प्रा० अंधयार>अप० अंधार) आदि शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन अपभ्रंश भाषा के अध्ययन के विना असंभव है।

राजस्थानी के 'पाव' (सं० पाद>अप० पाअ), 'आदो' (सं० अर्द्धक>प्रा० अद्धअ>अप० अद्ध), 'सवा' (सं० सपाद>सवाअ), 'अडाई' (सं० अर्द्धोनतृतीय>अप० अड्ढाइय), 'कीजइ' (सं० क्रियते>अह० कीज्जइ), 'कहीजइ' (सं० कथ्यते>अप० कहिज्जइ), 'करीयइ' (सं० क्रियते>अप० करिज्जइ, करीजइ); 'जोई-अइ' (सं० द्योत्यते> अप० जोइज्जइ), आधुनिक राज० 'लागो,' पु० राज० 'लागउ' (सं० लग्नक>अप० लग्गउ) आदि शब्दों के उदाहरण इस तथ्यको पुष्ट करते हैं कि राजस्थानी भाषा का व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन विना अपभ्रंश भाषा के अध्ययन के अपूर्ण रहेगा।

बंगला के 'अंग' (सं० अङ्ग>प्रा० अप० अंग), 'अंगार' (सं० अङ्गार>

प्रा० अप० अंगार), 'अंगुल' (सं० अङ्गुल >प्रा० अप० अंगुल), 'अंध' (सं० 'अंध्र' >अप० अंध, हिन्दी अंवा), 'अठारा' (सं० अष्टादशन् >प्रा० अप० अट्ठारह > हि अठारह) आदि शब्दों के विकास को दिखाने के लिए अपभ्रंश भाषा कासहारा लेना होगा।

कोंकणी के 'भावु'=भागिनी पति (अप० भाओ), 'भावज' (सं० भ्रातृजाया >अप० भावुज्जा), 'मेव्णि'=भार्याभगिनी (अप० मेहुणिया) 'व्होन्नि'=ज्येष्ठ भार्या (अप० 'वहुणी) अव्वयि'=माता (अप० अव्वा), 'व्होरेतु'=वर (सं० वर, अप० वरइत्त), 'चुळचुळेवप'=स्पन्दन (अप० चुलुचुलइ), व्हिळ्व्हीळि =कोमलता (अप० विलिव्विली) आदि अनेक शब्दों का मूल रूप अपभ्रंश में विद्यमान है।

मगही के 'आंखि' (अप० अक्खि=आंख), 'कूंआ' (अप० कूव=कुंआ), 'छन,खन' (अप० खण), 'वरनी' (अप० घरिणी=गृहिणी), 'चेला' (अप० चेल्लु=चेला), 'दरसन' (अप० दरिसण=दर्शन), 'नइया' (अप० नाई=नाव), 'आद्धा (अप० अद्ध), 'डेढ़' (अप० दियड्ढ), 'तीज' (सं० तृतीय, अप० तइज्ज, तीज), 'पहिल' (सं० प्रथम >प्रा० अप० पढम, पहिल), 'चउट्ठ, चउठ, चौठ, चौठा' (सं० चतुर्थ >अप० चउट्ठ, चौत्थअ), 'कउन' (अप० कवणु=कौन), 'कोइ' (अप० कोवि=कोई), 'जे' (अप० जो=हि० जो), तोंहि (अप० तइं= तुम्हारे), आदि मगही के शब्दों के उदाहरण से स्पष्ट है कि मगही के तद्भव और देशी शब्दों का विकास अपभ्रंश भाषा से हुआ।

इसके अतिरिक्त अपभ्रंश की क्रियाएं यथा– मेल्लिउ, (मेलना), घल्लिउ (घालना), चक्खइ (चखना), अप्फुण (उफनना), छोल्ल (छोलना), जिम (जीमना), पलोट्ट (पलोटना) आदि हिन्दी में विकसित एवं प्रचलित हुईं। अपभ्रंश के सर्वनाम 'हउं,' तहुं (मैं-तू); अम्हइं, तुम्हइं, (हम-तुम); परसर्ग 'मज्झि' (में), उप्परि (पर) आदि प्रयोग हिन्दी भाषा-गठन पर प्रकाश डालते हैं।

अपभ्रंश-कोश के संपादन की आवश्यकता

अपभ्रंश-कोश के निर्माण के अभाव में व्युत्पत्तिमूलक दृष्टि से हिन्दी राजस्थानी, गुजराती, मराठी, बंगला, असमी, उड़िया, पंजाबी, कोंकणी आदि भाषाओं के कोश-निर्माण का कार्य अपूर्ण ही रहेगा, क्योंकि अपभ्रंश भाषा प्राचीन आर्य भाषाओं और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। अतः उपर्युक्त भाषाओं के शब्दों की संरचना को समझने के लिए अपभ्रंश–कोश के संपादन की आवश्यकता एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय आवश्यकता कही जा सकती है।

प्रस्तुत कोश के संपादन से जहाँ भारतीय आर्य भाषा संस्कृत के विकास की मध्यकालीन अवस्था का वोध हो सकेगा, वहाँ अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं का संबंध जोड़ने का वैज्ञानिक आधार मिल सकेगा; साथ ही कीथ की यह

मान्यता—'अपभ्रंश आधुनिक भाषाओं के विकास आवश्यक सोपान नहीं है',[1] निरर्थक सिद्ध हो सकेगी।

हिन्दी-जगत् में अपभ्रंश जैसी महत्त्वपूर्ण भाषा के शब्द-कोश का संपादन आज तक न हो पाना एक आश्चर्य का विषय बना हुआ था। हिन्दी के शब्दों की व्युत्पत्ति को बताने में भी इसका अभाव अनुभव होता था। इस सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा था "अपभ्रंश साहित्य का जब तक कोश के रूप में संग्रह न होगा तब तक हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं के सहस्रों शब्दों की व्युत्पत्ति का उद्धार नहीं हो सकता।"[2]

प्रस्तुत कोश के संपादन से इस दिशा में अभाव की कुछ सीमा तक पूर्ति हो सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

'अपभ्रंश का अर्थ'

शब्द-कल्पद्रुम' में 'अपभ्रंश' की व्युत्पत्ति 'अप+ भ्रंस+घञ्' से बताकर 'अपभाषा' इसका पर्याय दिया गया है— "अपभाषा—तत् पर्यायः"। 'शब्दार्थ-चिन्तामणि' (प्रथम भाग) में 'अपभ्रंश' शब्द की व्याख्या 'अपशब्द' कह कर की गई है और इस सम्बन्ध में यह कथन ध्यातव्य है—"अशास्त्र शब्दे। असंस्कृतशब्दे। ग्राम्य भाषायाम्।" 'अमरकोश' के अनुसार—

"अपभ्रंशोऽपशब्दः स्यात्।"

वामन शिवराम आप्टे ने अपने 'संस्कृत-हिन्दी-कोश' में 'अपभ्रंश की निम्न प्रकार व्याख्या की है—"भ्रष्ट शब्द, भ्रष्टाचार (अतः) अशुद्ध शब्द चाहे वह व्याकरण के नियमों के विपरीत हो और चाहे वह ऐसे अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो जो संस्कृत न हो। भ्रष्ट भाषा, (काव्य में) गड़रियों आदि के द्वारा प्रयुक्त प्राकृत बोली का निम्नतम रूप, (शास्त्र में) संस्कृत से भिन्न कोई भी भाषा" (पृ० ५७)। इस प्रकार आप्टे के मतानुसार जो शब्द अशुद्ध या व्याकरण के नियमों के विरुद्ध है, उसे अपभ्रंश या अपशब्द कहा जाता है। 'हिन्दी-शब्द-सागर' में दिया गया अर्थ भी उपर्युक्त अर्थ से मिलता-जुलता है—"संज्ञा पुं० (सं०) नीचे गिरना, पतन, बिगाड़, शब्द का विकृत रूप, प्राकृत भाषाओं का परवर्ती रूप जिससे उत्तर भारत की आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति मानी जाती है। वि० बिगड़ा हुआ।"

'अपभ्रंश' शब्द के प्रयोग की प्राचीनता

सर्वप्रथम महर्षि पतंजलि ने 'महाभाष्य' में 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग किया है—"भूयांसोऽपशब्दाः अल्पीयांसः शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद् यथा गौरित्यस्य शब्दस्य 'गावी,' 'गोणी,' गोता,' 'गोपोतालिकेत्यादयो बहवोऽपभ्रंशाः."[3] अर्थात् अपशब्द बहुत हैं, शब्द रूप अल्प हैं। एक-एक

---

१. कीथ, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३२।

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६३, अंक १, पृ० ४९।

३. महाभाष्य, प्रथम आह्निक।

शब्द के बहुत से अपभ्रंश हैं, जैसे 'गो' शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि।

स्पष्ट है कि महाभाष्यकार पतंजलि ने 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग 'अप-शब्द' के अर्थ में किया है।

भरत के नाट्यशास्त्र (ई० ३०० के लगभग) में संस्कृत और देशी के अतिरिक्त 'विभ्रष्ट' भाषा का उल्लेख मिलता है, जो कि आभीरों की बोली मानी जाती थी और उकार की बहुलता इसकी प्रमुख विशेषता थी।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (ई० ४०० के लगभग) के समकालीन कवि कालिदास ने अपने नाटक 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश का भी प्रयोग किया है।

भर्तृहरि (५ वीं शती) ने शब्द-प्रकृति की व्याख्या करते हुए लिखा है—"शब्द-प्रकृतिः अपभ्रंशः।"[1] अर्थात् 'अपभ्रंश की प्रकृति शब्द अर्थात् संस्कृत शब्द है। भर्तृहरि ने कहा है कि विकृत शब्द भी अपने अर्थ की प्रतीति कराते हैं। अपभ्रंश शब्द इतने लोक-प्रसिद्ध हो गए हैं कि वे स्वयं वाचक हैं और साधु शब्द के भी स्मरण करने की आवश्यकता नहीं है।[2] भर्तृहरि ने संस्कारहीन शब्दों का अपभ्रंश के शब्द कहा है—"शब्द संस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षिते। तमपभ्रंश-मिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशिनम्।"[3]

छठी शताब्दी के आचार्य भामह ने 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग 'काव्य-विशेष' के लिए किया है और गद्य-पद्य काव्य को भाषा की दृष्टि से संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश में विभक्त किया है—''शब्दार्थौ सहितौ काव्यं।

गद्यं पद्यं च तद्द्विधा।
संस्कृतं प्राकृतं चान्यद्
अपभ्रंश इति त्रिधा।''[4]

सातवीं शताब्दी में दण्डी ने 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग वाङ्मय के लिए किया है—

"तदेतद्वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुराप्ताश्चतुर्विधम्।[5]

इस प्रकार है कि छठी शताब्दी तक 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग भाषा-विशेष के अर्थ का द्योतक बन गया था।

दण्डी के अनुसार—''अपभ्रंश' एक भाषा है, जो पण्डितों की वाणी संस्कृत से भिन्न आभीर आदि द्वारा प्रयुक्त होती है।[6] दण्डी द्वारा सस्कृत के व्याकरण

---

१. वाक्यपदीय, काण्ड १, कारिका १४८ का वार्तिक।
२. द्रष्टव्यः वाक्यपदीयम् १—१५३, १५४।
३. वाक्यपदीयम् काण्ड १, कारिका १४८।
४. काव्यालंकार, १।१६।२८
५. काव्यादर्श, १।३२।
६. आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंशः इति स्मृताः।—काव्यादर्श १।३६

शास्त्र से इतर शब्द को अपभ्रंश कहा गया है।[1]

आरम्भ में अपभ्रंश को आभीरों की भाषा माना जाता था,[2] परन्तु बाद में यह लोक भाषा बन गई। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि अपभ्रंश केवल आभीरों या अहीरों की ही भाषा नहीं थी।[3]

नवीं शताब्दी तक अपभ्रंश भाषा अपने साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी और देश-विशेष के अनुसार अनेक भेदों में विभाजित हो चुकी थी। रूद्रट ने लिखा है—

प्राकृत-संस्कृत-मागध-पिशाच भाषाश्च शूरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देश विशेषादपभ्रंशः।[4]

दशवी शताब्दी के विद्वान् राजशेखर ने 'काव्य-पुरुष' की कल्पना करते हुए संस्कृत भाषा को मुख कहा हैं और 'अपभ्रंश' भाषा को जघन (जंघा) कहा है और पैशाच को पाद कहा है—

शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृत मुखं, प्राकृतं बाहुः।
जघनमपभ्रंशः, पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्।[5]

वस्तुतः ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते अपभ्रंश भाषा अपना प्रतिष्ठित स्थान बना चुकी थी।

अपभ्रंश भाषा के लिए अपभ्रष्ट, विभ्रष्ट, अपशब्द, अवब्भंस, अवहंस, अवहत्थ, अवहट्ट और अवहट आदि अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। अपभ्रंश भाषा को देशी भाषा भी कहा गया। स्वयंभू ने अपनी अपभ्रंश भाषा को देशी भाषा कहा है।[6] ग्रियर्सन ने अपभ्रंशों को प्राकृत का स्थानीय अथवा प्रादेशिक विकार कहा है।[7] वास्तव में, अपभ्रंश भाषा कोई एक भाषा न होकर प्रदेश-भेद से अनेक प्रकार की हो गई।

अपभ्रंश भाषा का काल-निर्धारण

अपभ्रंश हमारे देश की लगभग ६०० वर्षों तक राष्ट्रभाषा रही और लगभग एक हजार वर्षों तक इस भाषा में साहित्य का सृजन होता रहा। अपभ्रंश भाषा के काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद मिलता है।

सर्वप्रथम डॉ० वासुदेवशरण, अग्रवाल के कथन को उद्धृत करते हैं—"लगभग नवीं शताब्दी से अपभ्रंश भाषा का विस्तार हो चुका था और बारहवीं

---

१. दण्डी, काव्यादर्श; १, ३,६।
२. काव्यादर्श, १, ३, ६
३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, ३, पृ० ५१।
४. काव्यालंकार, २—१२।
५. काव्यमीमांसा—३–६
६. पउमचरिउ, प्रथम संधि २।३, ४
७. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इंडिया, जिल्द १, पृ० १२३।

शताब्दी के लगभग अपभ्रंश भाषा से ही और विकसित होकर नई भाषा-शैली का परिवर्तन प्रारम्भ हो गया था। यही भाषा-शैली आगे आने वाली प्रान्तीय भाषाओं की जननी थी।"[1]

एक अन्य स्थान पर डॉ० अग्रवाल ने लिखा है—"अपभ्रंश-काल (८०० से ११०० तक) के अनन्तर लोक भाषाओं का जन्म हुआ।"[2] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि डा० अग्रवाल ने अपभ्रंश-काल (८०० से ११०० ई० तक) का उल्लेख काल-निर्धारण की विशिष्ट समस्या को लेकर नहीं किया। लोक-भाषाओं के परस्पर मौलिक साम्य की चर्चा करते हुए उन्होंने यह संकेतमात्र ही किया है। अपभ्रंश साहित्य के क्षेत्र के अन्तर्गत तत्कालीन शोध के आधार पर ही उन्होंने अपना उपर्युक्त विचार व्यक्त किया है। डॉ० अग्रवाल की मान्यता है कि पतंजलि, कात्यायन और पाणिनि के काल से भी पूर्व शिष्ट भाषा के साथ-साथ लोक भाषाओं में अपभ्रंश का समावेश था।[3] उन्होंने अथर्ववेद के 'पृथिवीसूक्त' का उल्लेख करते हुए वेदों के समय में भी लोक-भाषाओं के प्रचलन को स्वीकार किया है।[4]

डॉ० सुकुमार सेन ने अपभ्रंश का काल १–६०० ई० तथा अवहट्ठ भाषा का काल ६०० से १२०० ई० तक माना है।[5] डॉ० हरिवंश कोछड़ ने अपभ्रंश का काल ८ वीं सदी से १३ वीं शताब्दी तक माना है।[6] डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव ने अपभ्रंश-काल की सीमा ५ वीं शताब्दी से चौदहवीं तक मानी है।[7] डॉ० उदयनारायण तिवारी का मत है—"ईसा की छठीं शताब्दी से अपभ्रंश के काव्य-रचनाएँ प्राप्त होने लगीं और पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी तक होती रहीं।"[8]

डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार "अपभ्रंश का काल मोटे रूप में ५०० से १००० ई० तक है।"[9] इसी से मिलता हुआ विचार श्री जगन्नाथराय शर्मा ने व्यक्त किया—"अपभ्रंश भाषा अनेक भाषाओं का एक समुदाय है। जितनी प्राकृतें हैं, वे सब मृत होकर साहित्यिक रूप में जीवित रहीं। उनकी बोलचाल का

१. डॉ० अग्रवाल, माताभूमि, पृ० ६५।
२. भारत की मौलिक एकता, पृ० १४६, १४७।
३. डॉ० अग्रवाल, कौ० संजी व्या०, भूमिका पृ० ६३।
४. वही, पृ० ६३, ६४।
५. डॉ० सुकुमार सेन, तुलनात्मक पालि-प्राकृत-अपभ्रंश व्याकरण, अनुवादक: महावीर प्रसाद लखेड़ा, पृ० १५।
६. अपभ्रंश-साहित्य, पृ० ३४।
७. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, परिशिष्ट-४, पृ० २९१।
८. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १२२।
९. डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, संस्क० १८८४ शकाब्द, पृ० १८३।

स्थान अपभ्रंशों ने ले लिया। यह समय ५०० ई० से १००० ई० तक था।"[1]

अपभ्रंश भाषा के साहित्य के प्रकाशन के उपरान्त डॉ० भोलानाथ तिवारी एवं श्री जगन्नाथ राय शर्मा के मत अग्राह्य हैं। वस्तुतः १००० ई० के पश्चात् भी अपभ्रंश-कृतियों की रचना होती रही। उदाहरणार्थ, वीर कवि द्वारा रचित 'जंबूसामिचरिउ' की रचना वि० सं० १०७६ में माघ शुक्ल दशमी के दिन पूर्ण हुई।[2]

रोडाकृत 'राउलवेल' ११ वीं शती का शिलांकित भाषा-काव्य है।[3] पं० दामोदर द्वारा विरचित 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' की रचना-काल १२ वीं सदी का पूर्वार्द्ध है।[4] मुनि नयनंदी विरचित 'सुदंसणचरिउ' का रचना-काल वि० संवत् ११०० का है।[5] हरिभद्रसूरि द्वारा लिखित 'नेमिनाहचरिय' वि० सं० १२१६ (ई० सन् ११६०) है।[6] 'भविसयत्तकहा' और 'भविसयतचरिउ' का रचना-काल क्रमशः वि० सं० १२३० और वि० सं० १५३० माना गया है।[7] वड्ढमाणचरिउ के रचयिता श्री विबुध श्रीधर का रचना-काल वि० सं० ११८६ से १२३० निश्चित किया गया है।[8] पं० नरसेन द्वारा रचित 'सिरिवाल चरिउ' की पहली प्रति वि० सं० १५७९ (ई० १५२२) की है।[9]

डॉ० ह० चू० भायाणी तथा श्री अगरचन्द-नाहटा द्वारा संपादित 'प्राचीन गूर्जर काव्य सञ्चय' में देपाल द्वारा रचित 'कयवन्ना-विवाहलउ,' नेमिनाथ-धवल' 'आर्द्रकुमार धवल' नामक शीर्षक वाली रचनाएँ १५ वीं शताब्दी की है और इनके अतिरिक्त शेष संपादित रचनाएँ १३ वीं शताब्दी के आसपास की हैं।[10]

अब्दुल रहमान कृत 'संदेश रासक' (ईसा की बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) शालिभद्र की रचना 'बाहुबलीरास' (बारहवीं शताब्दी;) जिनपदसूरि द्वारा लिखित थूलिभद्रफागु (बारहवीं शताब्दी), अम्बदेव सूरि द्वारा लिखित 'समरास' (सन्

---

१. जगन्नाथराय शर्मा, अपभ्रंश-दर्पण, पृ० २१।
२. डॉ० विमल प्रकाश जैन, वीर कवि कृत जंबूसामिचरिउ की प्रस्तावना पृ० १३।
३. (अ) डॉ० कैलाश चन्द्र भाटिया, हिन्दी काव्य भाषा की प्रवृत्तियाँ, पृ ९।
   (आ) डॉ० माताप्रसाद गुप्त, राउलवेल और उसकी भाषा, प्रकाशकीय वक्तव्य, पृ० ३।
४. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत, उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, पृ० १।
५. संपादकः डॉ० हीरालाल जैन, प्रस्तावना, सुदंसणचरिउ, पृ० १४।
६. संपादकः हरिवल्लभ चू० भायाणी, सणतुकुमारचरिय, भूमिका, पृ० ३।
७. डॉ० राजा राम जैन, प्रस्तावना, वड्ढमाणचरिउ, पृ० ६।
८. वही, पृ० ७।
९. द्रष्टव्यः डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन का मत सिरिवाल चरिउ, प्रस्तावना, पृ० ३।
१०. डॉ० हरिवल्लभ भायाणी, 'प्राचीन् गूर्जर 'काव्य सञ्चय,' संगृहीत रचनाओं की भाषा, पृ० १०।

१३१४ ई०), तरुणप्रभ सूरि द्वारा रचित 'षडावश्यक-बालबोध' (सन् १३५४ ई०) ज्योतिरीश्वर ठाकुर कृत 'वर्णरत्नाकर' (चौदहवीं शताब्दी), विद्यापति द्वारा रचित 'कीर्तिलता' (चौदहवीं शताब्दी) आदि रचनाओं का काल यह सिद्ध करता है कि १००० ई० के पश्चात् भी अपभ्रंश में साहित्य का सृजन होता रहा। यहां यह भी यह उल्लेखनीय है कि कविवर हरिषेण ने 'धर्म परीक्षा' की रचना पद्धडियां छंद में वि० सं० १०४४ में की थी और भट्टारक श्रुतकीर्ति ने 'धर्म परीक्षा' की रचना वि० सं० १५५२ में की थी।[1] ब्रह्म बूचराज द्वारा लिखित 'सन्तोष तिलक जयमाल' (रूपक काव्य) नामक कृति वि० सं० १५९१ में हिसार नगर में लिखकर पूर्ण हुई थी।[2] मुनि महनन्दि द्वारा लिखित 'बारक्खडी' या 'पाहुडदोहा' का लेखन-काल वि० सं० १५९१ है।[3] इससे ज्ञात होता है कि सोलहवीं शताब्दी में भी अपभ्रंश-साहित्य की रचना होती रही।

आज तक हुए शोध के आधार पर अपभ्रंश-काल का आरम्भ छठी शताब्दी माना जा सकता है। डॉ० भायाणी ने स्वयंभू का समय ६७७ ई० से ९६० ई० के मध्य माना है।[4] अतः निश्चित है कि अपभ्रंश का प्रयोग भाषा विशेष के लिए इससे काफी पूर्व अर्थात् लगभग ६०० ई० में साहित्यिक भाषा के रूप में हो चुका था। ग्रियर्सन का मत भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है—"ईसा की छठी शती में वलभी नरेश धरसेन के ताम्रपत्र के उल्लेख एवं संस्कृतालङ्कारिकों के कथन से स्पष्ट है कि उस समय तक अपभ्रंश भाषा जन भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी।"[5]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर अपभ्रंश साहित्य का युग छठी शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक माना जा सकता है।

अपभ्रंश की ध्वनियां एवं वर्ण-क्रम की समस्या—

स्वर-संस्कृत में निम्नलिखित १४ स्वर थे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ। अभिनवगुप्त की व्याख्या के अनुसार ऐ, औ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, विसर्जनीय श, ष, ङ्, ञ और न ये १२ वर्ण प्राकृत में नहीं पाये जाते हैं। प्राकृत के बाद अपभ्रंश में किसी स्वर की कमी नहीं हुई। वैसे तो अपभ्रंश में मूल स्वर आठ थे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ; परन्तु दो नए स्वर—ह्रस्व 'ए' तथा ह्रस्व 'ओ' की वृद्धि हो गई।

---

१. डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, लेख—अपभ्रंश के साहित्यकार, राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० १४५।
२. वही, पृ० १५१।
३. वही, पृ० १४९।
४. डॉ० भायाणी, पउमचरिउ (स्वयंभू देव), भूमिका, पृ० ९.।
५. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, अनुवादक: डॉ० उदयनारायण तिवारी, भारतीय आर्य भाषाएं, पृ० ७७।

'ऋ' का उच्चारण प्राकृत भाषा में समाप्त हो जाने के कारण अपभ्रंश वर्णमाला में इसको स्थान नहीं दिया गया। प्रसिद्ध विद्वान डॉ० पिशल का विचार है कि अधिकांश अपभ्रंश बोलियों में 'ऋ' नहीं मिलता है।[1] डॉ० तगारे भी यह मानते हैं कि कुछ अपवादों को छोड़कर अपभ्रंश भाषा में 'ऋ' उपलब्ध नहीं है।[2] यद्यपि अपभ्रंश में 'ऋ' रि में परिवर्तित हो गया, परन्तु संस्कृत के प्रभाव के कारण १२ वीं शती से पुनः स्थान पाने लगा। 'उक्तिव्यक्तिप्रकरण' में 'ऋतु'' (१५-२४) का प्रयोग मिलता है। विद्यापति की 'कीर्तिलता' में भी 'ऋ' का प्रयोग उपलब्ध है। हेमचन्द्र ने भी 'ऋ' की उपस्थिति स्वीकार की है, यथा—अप० तणु > तृणु (सं० तृण)। अप० सुकिदु > सुकृदु (सं० सकुतम्)।[3] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अपभ्रंश में विसर्ग का पूर्णतः लोप हो गया था। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा संपादित 'कीर्तिलता' में 'औ' से प्रारम्भ होते हुए कतिपय शब्द उपलब्ध हैं। अतः प्रस्तुत कोश में 'ऋ,' औ' को भी वर्ण-क्रम में स्थान दिया गया है।

व्यंजन ध्वनियाँ

विद्वानों ने अपभ्रंश में २७ व्यंजन के अस्तित्व को स्वीकार किया है—

क, ख, ग, घ।
च, छ, ज, झ।
ट, ठ, ड, ढ ण।
त, थ, द, ध।
प, फ, ब, भ, म।
य, र, ल, व।
स, ह।[4]

उपर्युक्त व्यंजनों के अतिरिक्त अपभ्रंश-साहित्य में कुछ अन्य व्यंजन भी मिलते हैं, जिनकी यहाँ चर्चा की जा रही है। डॉ० तगारे अपभ्रंश में 'य' ध्वनि का बहिष्कार करते हैं, परन्तु 'संदेश रासक,' 'पउमचरिउ,' 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण,' 'कालस्वरूप कुलक' 'जिणदत्त चरिउ' आदि अपभ्रंश की रचनाओं में 'य' से प्रारम्भ होते हुए शब्द मिलते हैं। अतः प्रस्तुत कोश के वर्ण-क्रम में 'य' वर्ण को स्थान दिया गया है।

अपभ्रंश में 'ङ्' और 'ञ' के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग सरलीकरण की प्रक्रिया के कारण चला। यद्यपि विद्वानों द्वारा यह माना जाता रहा है कि अपभ्रंश

---

१. पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० ९६।
२. डॉ० तगारे, हिस्टारिकलग्रामर आफ अपभ्रंश, पृ० ३९।
३. हेमचन्द्र, अपभ्रंश व्याकरण, ४, ३२९।
४. (अ) डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश,' अपभ्रंश भाषा का व्याकरण, पृ० ३२।

में 'ङ् ञ्' उपलब्ध नहीं है और 'न' ध्वनि का स्थान 'ण' ने ले लिया है, तथापि ये ध्वनियाँ अपभ्रंश की कुछ संपादित कृतियों में मिलती है। यथा—'अङ्गार'[3] 'अङ्गुलिउ,'[4] 'मअङ्क'[5] आदि। 'पउमचरिउ,' 'कीर्तिलता,' हेमचन्द्र कृत 'अपभ्रंश व्याकरण' आदि में दी गई 'ङ्' ध्वनि के आधार पर प्रस्तुत कोश में 'ङ्' ध्वनि को ज्यों का त्यों स्थान दिया गया है और जहाँ कहीं अपभ्रंश की सम्पादित कृतियों में अनुस्वार दिया गया है, वहाँ उसका अनुनासिक रूप में ही प्रयोग किया गया है। उपर्युक्त समस्या को दृष्टि में रखते हुए वर्ण-क्रम में पंचमाक्षर युक्त शब्दों को उनके वर्ग में ही स्थान दिया गया है, परन्तु यदि अपभ्रंश की संपादित कृतियों में पंचमाक्षर अनुस्वार-युक्त रूप में लिखा हुआ उपलब्ध है तो उसे जैसा का तैसा वर्णगत क्रम में ही रखा गया है।

अपभ्रंश में 'ञ' ध्वनि का अभाव तो है, परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि यह ध्वनि बिल्कुल ही नहीं मिलती है। पउमचरिउ में कञ्चण[5] (कंचन नामक वृक्ष), कोञ्ज[6] (कौंज नामक वृक्ष), कोञ्च[7] (क्रौञ्च); कीर्तिलता में काञ्चन[8], ञेओन[9] (सं० एवम्), ञेहाँ[10] (यहाँ); चुकञो[11] (सं० भ्रंश का धात्वादेश चुक्क = भ्रष्ट होना), मुकञो[12] (त्यागना), भासञो[13] (कहना), जञो[14] (क्योंकि), अञ्चल[15] आदि में ञकार का प्रयोग मिलता है। 'कीर्तिपताका' में 'वटञु' 'लज्जाञे' आदि

१. द्रष्टव्यः (अ) परम मित्र शास्त्री, सूत्र शैली और अपभ्रंश व्याकरण, पृ० १११।
(आ) डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश,' अपभ्रंश भाषा का व्याकरण, पृ० ३५।
२. डॉ० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी, पउम चरिउ १३, ७, १०।
३. आचार्य हेमचंद्र का अपभ्रंश-व्याकरण (अनुवादक शालीग्राम उपाध्याय) ३३१, १।
४. वही, पृ० ४०।
५. डॉ० भायाणी द्वारा संपादित पउम चरिउ (३, १, १०)।
६. वही ३, १, ११।
७. वही ३, ५, ५।
८. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा संपादित कीर्तिलता, २, २४२।
९. वही, २—२३६।
१०. वही, ३—२१।
११. वही, २—४३।
१२. वही, २—४४।
१३. वही, २—४५।
१४. वही, २—४७।
१५. वही, ४—२१६।

शब्दों में 'ञ' का प्रयोग उल्लेख्य है। अतः प्रस्तुत कोश में उपलब्ध तथ्यों को ध्यान मे रखते हुए वर्ण-क्रम की व्यवस्था 'ञ' को भी स्थान दिया गया है।

आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार 'देश्य भाषा' में 'नकारादि' शब्द एकदम असम्भव है, यह मान्यता भी उचित नहीं है। वस्तुतः प्राकृत के प्रारम्भ से अपभ्रंश के विकास तक 'न को 'ण' उच्चारित करने की प्रवृत्ति प्रधान रही है। वस्तुतः अपभ्रंश में दन्त्य 'न' का कम प्रयोग हुआ है। परन्तु 'न' का बिल्कुल अभाव रहा हो, यह कहना अनुचित होगा। 'अपभ्रंश-व्याकरण,' (हेमचन्द्र कृत), पउम चरिउ संदेशरासक, चर्यापद, उपदेश रसायनरास, महापुराण, राउलवेल, उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, कीर्तिलता, णयकुमार चरिउ, सरह के दोहाकोश में नकारादि शब्द मिलते हैं। अतः प्रस्तुत कोश में 'नकार' की स्थिति को स्वीकार करते हुए वर्ण-क्रम में इसे स्थान दिया गया है। अंत में यह भी उल्लेखनीय है कि अपभ्रंश में ड़, ढ़ व्यंजन नहीं थे।

संयुक्त व्यंजन

अपभ्रंश भाषा में क्ख, क्क, च्च, च्छ, ज्ज, ट्ट, ट्ठ ड्ड, त्त, त्थ, द्द, द्ध, प्प, प्फ, ब्भ, ब्ब, ण्ण, न्न, न्ह, म्ह, ल्ल, ल्ह, व्व, एवं स्स आदि संयुक्त ध्वनियों का प्रयोग होता है।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना अपेक्षित होगा कि इस कोश के वर्ण-क्रम में देवनागरी वर्णमाला का क्रम ही अपनाया गया है।

लिंग-निर्धारण की समस्या

लिंग-निर्धारण की जटिलता प्राचीन भारतीय भाषा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में बनी रही। पुंल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग का विधान होने के कारण लिंग-निर्णय में कठिनाई हुई। उदाहरण के लिए, संस्कृत में 'देवता' शब्द स्त्रीलिंग है, जब कि हिन्दी में पुंल्लिग है। इसके विपरीत 'पत्नी' के अर्थ वाला 'दार' शब्द पुंल्लिग है। हिन्दी में 'अग्नि' और 'महिमा' शब्द स्त्रीलिंग है, परन्तु संस्कृत में पुंल्लिग है। यह भी ध्यातव्य है कि संस्कृत में लिंग के भेद से अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है, यथा—'मित्र' शब्द पुंल्लिग में सूर्य तथा नपुंसक लिंग में सखा (Friend) के अर्थ का वाचक है। यह भी देखने में आया है कि एक ही अर्थ के वाचक शब्द विभिन्न लिंगों में पाये जाते हैं, जैसे 'सखा' पुंल्लिग है और 'मित्र' नपुंसक लिंग हैं। इसी तरह 'भार्या' के पर्यायवाची शब्दों का लिंग भिन्न-भिन्न हैं—दार पुं०, पत्नी स्त्री०, कलत्र नपुंसक लिंग।

तनिक प्राकृत में लिंग-व्यवस्था पर दृष्टि डालिए। यद्यपि प्राकृत में लिंग व्यवस्था संस्कृत के समान है, परन्तु कुछ शब्दों के लिङ्ग-निर्धारण में भिन्नता मिलती है, यथा—प्रावृष्, शरद्, तरणी शब्द संस्कृत में स्त्रीलिंग हैं, परन्तु प्राकृत

में पाउसो, सरओ, तरणी आदि शब्दों का प्रयोग पुंल्लिग में होता है।[1] दामन्, शिरस् और नभस् को छोड़कर प्राकृत में शेष सकारान्त शब्द, यथा—'यशस्—यशः >प्रा० जसो०, पयस्—पयः >प्रा० पओ, तमस्—तमः >प्रा० तमो, तेजस्—तेजः >प्रा० तेओ, सरस्—सरः >प्रा० सरो, और नकारान्त शब्द, यथा-'जन्मन्–जन्म >प्रा० जम्मो, नर्मन्—नर्म >प्रा० नम्मो, कर्मन्—कर्म >प्रा० कम्मो, वर्मन्—वर्म >प्रा० वम्मो आदि पुंल्लिग में प्रयुक्त होते हैं, जबकि संस्कृत में ये शब्द नपुंसक लिंग हैं।[2] संस्कृत और प्राकृत में कुछ शब्दों में लिङ्गव्यवस्था समान भी रही है। वयस्—वयः >वयं; सुमनस्—सुमनः >सुमण; शिरस्—शिरः >सिर, नभस्—नभः >नहं को संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में इन्हें नपुंसकलिग माना गया है।

प्राकृत में लिंग-विधान के सम्बन्ध में डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव का कथन उद्धरणीय है–"प्राकृत में लिङ्ग विधान अपेक्षाकृत सरल हुआ। नपुंसक लिङ्ग के रूपों में पहले भी केवल प्रथमा तथा द्वितीय विभक्ति में ही भेद पड़ता था अन्यत्र पुंल्लिङ्गवत् ही रूप रहते थे। व्यंजनान्त शब्द स्वरान्त हो ही गए थे। नकारान्त और सकारान्त न० लि० शब्द पुं० लि० में प्रयुक्त होते लगे। कम्मो, वम्मो, जसो, सरो रूप पुं० लि० में आ गए। अपवाद सिरं >शिरः और णहं >नभः रह गये। सम्मिलित परिणाम यही था कि कुछ रूपों को छोड़कर शेष सब न० लि० शब्द पुं० लि० में आ गए।"[3]

अपभ्रंश में लिंग निर्धारण

आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार अपभ्रंश में लिंग अतंत्र होता है। कभी स्त्री लिंग पुंल्लिग हो जाता है तो कभी पुंल्लिग स्त्री लिंग हो जाता है। उदाहरणार्थ, 'कुम्भइं (सं० कुम्भान्=गजों के कुम्भ स्थल), खलाइं (सं० खलान्) में पुंल्लिग का नपुंसक लिंग हो गया है। अब्भा (सं० अभ्र=बादल) में नपुंसक लिंग को पुंल्लिग हो गया है। सं० अन्त्रं (अंतडी) नपुंसक लिंग का अपभ्रंश में 'अन्त्रडी' स्त्री लिंग हो गया है। सं० डाल स्त्री० लिंग शब्द अपभ्रंश में 'डालइं' नपुंसक लिंग हो गया है।[4]

अपभ्रंश में लिंग-भेद का प्रकरण बड़ा जटिल और पेचीदा बना हुआ है। प्राचीन लिंग-व्यवस्था बदल गई। प्रायः लिंग का निर्धारण शब्द की प्रकृति पर निर्भर करने लगा। कोमलता, लघुता अथवा हीनता का ज्ञान कराने के लिए स्वा-

---

१. प्रावृट्शरत्तरणयः पुंसि—हे० ८, १, ३१।

२. हे० प्रा० व्या० ८, १, ३२।

३. वीरेन्द्र श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ० १२६।

४. द्रष्टव्यः हे० अप० व्या०, ४४५।

थिक 'डी' प्रत्यय का प्रयोग स्त्री लिंग शब्दों की रचना में होता है। आकारान्त, ईकारान्त और ऊकारान्त वर्णों के स्त्री लिंग को सरलता से पहचाना जा सकता है, परन्तु अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्दों के लिंग-निर्धारण में निश्चय ही कठिनाई होती है। अपभ्रंश में नपुंसक लिंग के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि कर्त्ता और कर्म कारकों में बहुवचन में 'इं' विभक्ति लगती है। आचार्य हेमचंद्र के अनुसार प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की विभक्तियों के स्थान पर 'इं' आदेश होता है।[1]

विद्वानों की यह भी मान्यता रही है कि अपभ्रंश में नपुंसक लिंग व्यावहरतः लगभग लुप्त ही हो गया,[2] परन्तु अपभ्रंश के 'अलिउलइं' (भ्रमर-समूह), 'कमलइं', 'करिगण्डाइं' (हाथियों के गण्ड-स्थल) आदि शब्दों तथा सर्वनाम (यथा—तुं, त्रं, तं, ताइं आदि) में भी नपुंसक लिंग के रूप मिलने से यह सिद्ध होता है कि संस्कृत और प्राकृत के समान अपभ्रंश में भी नपुंसक लिंग की परम्परा बनी रही और बाद में आधुनिक भारतीय भाषाओं में यह परम्परा कोंकणी, मराठी, गुजराती और काश्मीर के निकट बोली जाने वाली कुछ हिमालय-पर्वतीय भाषाएँ तेलुगु, तमिल, मलयालम, कन्नड और प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में भी जीवित रही।

गुजराती में नपुंसक लिंग कपडु (एक व०) कपडां (बहुव०) आदि शब्द द्रष्टव्य हैं। डॉ० एल० पी० तेस्सितोरी ने पश्चिमी राजस्थानी में नपुंसक लिंग का संकेत किया है, जो कि 'उँ' अँ' अंत वाले रूप में मिलता है >यथा—आरोगपणउँ, (शीलोपदेशमाला ३), माथउँ (श्रावकाचार), युक्तउँ (इन्द्रिय पराजयशतक ११), जँ (कल्याणमंदिरस्तोत्र अवचूरि) < सं० यत्।
हूयँ (दशवैकालिसूत्र टीका) < सं० भूत।[3]

प्राकृत और अपभ्रंश की शब्दावली में बहुत अधिक समानता मिलती है। आचार्य हेमचंद्र के सूत्र—'शौरसेनीवत्,' 'अपभ्रंशे प्रायः शौरसेनीवत् कार्यं भवति' अर्थात् अपभ्रंश में प्रायः शौरसेनी के समान कार्य होते हैं। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' में प्राकृत के जिन शब्दों को नपुंसक लिंग माना गया है, यदि वे शब्द अपभ्रंश-साहित्य में भी प्रयुक्त हुए हैं तो उन्हें सामान्यतया पूर्ववत् नपुंसक लिंग के रूप में स्वीकार किया गया है परन्तु साथ ही लोक-व्यवहार में शब्द के प्रयोग को दृष्टि में रखते हुए लिंग-निर्धारण किया गया है। हिन्दी

---

१. आचार्य हेमचन्द्र का अपभ्रंश व्याकरण, सूत्र ३५३।
२. (क) डॉ० नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० ६१।
(ख) डॉ० रामगोपाल शर्मा दिनेश, भाषा का व्याकरण और साहित्य पृ० ४४।
३. डॉ० एल० पी० तेस्सितोरी, पुरानी राजस्थानी (अनुवादक : नामवर सिंह), पृ० ५४।

में नपुंसक लिंग अब पुल्लिंग में बदल गया है। वस्तुतः हिन्दी में भी लोक-व्यवहार से ही लिंग का निर्धारण होता है। उदाहरणार्थ, हिन्दी में 'भात' पुंल्लिंग है, परन्तु 'दाल' स्त्री लिंग है। यद्यपि दोनों ही खाद्य पदार्थ हैं। 'पुस्तक' स्त्री लिंग है तो 'ग्रन्थ' पुंल्लिंग है।

शब्द-रूप-रचना

अपभ्रंश की पुस्तकों में सभी शब्दों के रूप एक स्थान पर अनुपलब्ध हैं। अतः कुछ शब्दों के रूप नीचे दिये जा रहे हैं—

अकारान्त पुंल्लिंग शब्द पुत्त (पुत्र) के रूप

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता—	पुत्तु, पुत्तउ, पुत्तो, पुत्त, पुत्ता	पुत्त, पुत्ता
कर्म—	" "	" "
करण—	पुत्तेंण, पुत्तें, पुत्ते, पुत्तिण, पुत्ति	पुत्तेंहिं, पुत्तेंहिं, पुत्तेंहि, पुत्तेंहि
सम्प्रदान) सम्बन्ध)	पुत्तस्स, पुत्तस्सु, पुत्तहु, पुत्तहो	पुत्ताण, पुत्ताणं, पुत्तह, पुत्तहं, पुत्ताह,
अपादान—	पुत्तहु, पुत्तहे, पुत्तहें, पुत्तहो,	(पुत्तहुं), पुत्तहं
अधिकरण—	पुत्ति, पुत्ते, पुत्तइ, पुत्तइं, पुत्तए, पुत्तम्मि,	पुत्तहि, पुत्तिहि, पुत्तेसु,
सम्बोधन—	पुत्त, पुत्ता,	पुत्तहु, पुत्तहो,

अकारान्त पुंल्लिंग शब्द 'देव'

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता—	देव, देवा, देवु, देवो	देव, देवा
कर्म—	देव, देवा, देवु	देव, देवा
करण—	देवें, देवें, देवेण (देविण)	देवहि, देवेहि
अपादान—	देवहे, देवहु	देवहुं
सम्बन्ध—	देव, देवसु, देवस्सु, देवहो, देवह	देव, देवहं
अधिकरण—	देवें, देवि	देवहि
सम्बोधन—	देव, देवा, देवु, देवो	देव, देवा, देवहो

नपुंसक लिंग शब्दों के कतिपय उदाहरण

अकारान्त 'कमल शब्द'

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता, कर्म—	कमलु कमल,	कमलइं, कमलइँ

शेष पुंल्लिंगवत्

नपुंसक लिंग महु (मधु) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, कर्म—महु, महूं और सम्बोधन—		महूइं, महूइं

शेष ऊकारान्त पुंल्लिंग वाऊ (वायुः) शब्द के रूप के समान

नपुंसक लिंग 'वारि' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता और कर्म	वारि, वारी	वारिइं, वारीइं

नपुंसक लिंग 'फल'

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता और कर्म	फल, फलु	फलइं, फलाइं

इकारान्त पुंल्लिंग अग्गी या अग्गि शब्द (अग्निः)

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	अग्गी, अग्गिं	अग्गी, अग्गिहो
कर्म	"	"
करण—	अग्गिण, अग्गिं, अग्गिएं	अग्गीहिं
अपादान—	अग्गिहे, अग्गिहिन्तो	अग्गिहुं, अग्गीहिंतो
सम्बन्ध—	अग्गिहे	अग्गिहिं, अग्गिहुं, अग्गि
अधिकरण—	अग्गिहिं	अग्गिहिं, अग्गिहुं
सम्बोधन—	अग्गि, अग्गी	अग्गिहो

इकारान्त 'गिरि' पुंल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	गिरि, गिरी	गिरि, गिरी
कर्म—	गिरी, गिरी	गिरि, गिरी
करण—	गिरिएं, गिरिण, गिरी	गिरिहि
अपादान—	गिरिहे	गिरिहुं
सम्बन्ध—	गिरि, गिरिहे	गिरि, गिरिहं, गिरिहुं
अधिकरण—	गिरिहि	गिरिहुं
सम्बोधन—	गिरि, गिरी	गिरि, गिरिहो

स्त्री लिंग अकारान्त या आकारान्त रूप (मुग्धा—मुद्धा)

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	मुद्ध; मुद्धा	मुद्धाउ, मुद्धाओ
कर्म—	मुद्ध, मुद्धा	मुद्धाउ, मुद्धाओ

करण—मुद्धए (मुद्धइ)	मुद्धहिं
अपादान—मुद्धहे (मुद्धहि)	मुद्धहु
सम्बन्ध—मुद्धहे (मुद्धहि)	मुद्धहु
अधिकरण—मुद्धहि	मुद्धहिं
सम्बोधन—मुद्ध, मुद्धा	मुद्ध, मुद्धा, मुद्धहो, मुद्धाहो।

कह=कहा (कथा)

एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—कह, कहा	कहाउ, कहाओ
कर्म—" "	" "
करण—कहए (कहइ)	कहहिं
अपादान—कहहे (कहहि)	कहहु
सम्बन्ध—" "	"
अधिकरण—कहहि	कहहिं
सम्बोधन—कह,कहा	कह, कहा, कहहो, कहाहो

ह्रस्वीकरण प्रक्रिया से स्त्री लिंग के दीर्घान्त शब्द प्रायः ह्रस्वान्त हो जाते हैं, परन्तु ह्रस्व अकारान्त होने पर भी स्त्री लिंग के रूप पुंलिंग से भिन्न हैं।

ऊकारान्त पुंलिंग वाऊ (वायुः) शब्द के रूप

एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता-कर्म—वाऊ, वाउं	वाऊ, वाउं
करण—वाउण, वाउं (वाएं)	वाऊहिं, वाऊहि, वाऊहि
अपादान—वाउहें, वाउहिन्तो	वाउहुं, वाऊ-हिन्तो
सम्बन्ध—वाउहें	वाउहिं, वाउहुं, वाउ
अधिकरण—वाउहि	वाउहिं, वाउहुं
सम्बोधन—वाउ, वाऊ	वाउहों

आकारान्त स्त्रीलिंग 'वाला' शब्द के रूप

एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, कर्म— वाला	वाला, वालाउ, वालउ
करण—वालाएं, वालाए	वालहिं, वालहि
अपादान—वालहें	वालहु
सम्बन्ध—वालहें	वालहु, वालहं, वालहँ
अधिकरण—वालहि, वालहिं,	वालहि, वालहिं, वालहुं, वालहुं
सम्बोधन—वाला, वाल	वालउ, वालाउ, वाला

ईकारान्त स्त्रीलिंग णदी (नदी) के रूप

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, कर्म—	णदी, णदि	णदी, णदिउ
करण—	णदिएँ, णदिए	णदीहिँ, णदीहि
अपादान—	णदिएँ, णदिहेँ	णदिहु, (णदीणं सम्बन्ध में हो)
अधिकरण—	णदिहिँ, णदी, णदि	णदीहि, णदिहिँ, णदिहुँ
सम्बोधन—	णदि	णदिहोँ

सर्वनाम (उत्तम पुरुष) अस्मद्

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	हउँ (हउं)	अम्हे, अम्हइँ (अम्हइं)
कर्म—	मइँ (मइं)	" "
करण—	"	अम्हेहिँ (अम्हेहिं)
अपादान,सम्बन्ध—	महु मज्झु, मज्झ	अम्हहँ (अम्हहं)
अधिकरण—	मइँ, (मइं)	अम्हासु

संस्कृत 'युष्मद्' (मध्यम पुरुष) के अपभ्रंश वाले रूप

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	तुहुँ (तुहुं)	तुम्हे, तुम्हइं, तुम्हइँ
कर्म—	पइँ, पइं तइँ, तइं	" "
करण—	" "	तुम्हेहिं, तुम्हेहिँ
अपादान	तउ, तुज्झ, तुध्र (तुहु)	तुम्हं, तुम्हहँ
सम्बन्ध—	तुज्झह, तुह	
अधिकरण—	पइं पइँ, तइं तइँ	तुम्हासु

अन्य पुरुष तद् (सो)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	(पुं०) सो, सु, स	(पुं०) ते
	(स्त्री०) सा, स	(स्त्री०) ताउ, ति
	(न०)–तं, तंतु	(न०) ताइं
द्वितीया–	(पुं०) तं	(पुं०) ते
	(स्त्री०) तं	(स्त्री०) ताउ
	(न०) तं	(न०) ताइं
तृतीया	(पुं) तेण, तें	(पुं) तेंहि
	तइं, तेण	ताहं
	ति	तेहि
	(स्त्री०) ताइं, तिए, तीए, ताए,तए	(स्त्री०) तेहि

चतुर्थी और षष्ठी—(पुं०) तासु, तहो,
तहि, तसु, तहु, तहि

(स्त्री०) तिहि ताहि	(स्त्री०) ताहि
सप्तमी—(पुं०) तहिं, तहि	(पुं०) तहिं
(स्त्री०) तहि, तहि	(स्त्री०) ताहिं

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम यत् (जो)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	(पुं०) जो	(पुं०) जे
	(स्त्री०) जा	(स्त्री०) जाउ
	(न०) जं	(न०) जाइं
द्वितीया	(पुं०) जं	(पुं०) जे
	(स्त्री०) जं	(स्त्री०) जाउ
	(न०) जं, जु	(न०) जाइं
तृतीया	(पुं०) जेण, जि, जें	(पुं०) जेहिं
	(स्त्री०) जाइं, जाएं, जिए	(स्त्री०) जाहिं
चतुर्थी	(पुं०) जासु, जसु	(पुं०) जाहं, जाह
षष्ठी	जस्स, जहो,	
	स्त्री० जाहि	स्त्री० जाहिं
पंचमी	(पुं०) जउ (जहे)	(पुं०) जहुं
	(स्त्री०) जाहे	(स्त्री० जाहिं
सप्तमी	(पुं०) जहिं, जिम्म	(पुं०) जहिं
	(स्त्री०) जहि	(स्त्री०) जाहिं

प्रश्नवाचक सर्वनाम 'क' के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	(पुं०) को, कु	(पुं) के
द्वितीया	(स्त्री०) का, क	(स्त्री०) कायउ, काउ
	(न०) कि	(न०) काइं
तृतीया	(पुं) केण, कइं	(पुं०) केहिं
	(स्त्री०) काइं, काए	(स्त्री०) केहि, काहि
चतुर्थी और	(पुं०) कहो, कहु, कस्स, कासु	(पुं०) काहं–ह
षष्ठी	(स्त्री०) काहि, काहि	(स्त्री०) काहि
पंचमी	(पुं०) कउ, कहे	(पुं०) कहुं
	(स्त्री०) काहे,	(स्त्री०) काहिं
सप्तमी	(पुं०) कहि, कहिं	(पुं०) काहिं
	(स्त्री०) काहि	(स्त्री०) काहिं

निश्चयवाचक सर्वनाम

एतद् से बना 'एह' के रूप

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, कर्म—	एहो, एहु (स्त्री० एह, एय)	ए, इय
करण—	एण	एयहिं, एय
सम्बन्ध—	एयहो (स्त्री० एयहिं)	एयहं

इदम् से बना 'आय' के रूप

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, कर्म–	आउ, आओ, आअ आइउ, आयउ	आआ, आए
करण—	आएण (स्त्रीलिंग–आयएं, आयहि)	आयहिं, आयएहिं
अपादान	आयहो।	

तथा

	एकवचन	बहुवचन
सम्बन्ध—	स्त्रीलिंग में, आआ	आयइं

सर्वनाम के अन्य रूप सव्व (सं० सर्व)

कारक—	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता—	सव्वु, सव्वो, सव्व, सव्वा, सव	सव्वे, सव्व, सव्वा
कर्म—	सव्वु, सव्वे, सव्व, सव्वा	सव्वे, सव्वि, सव्व, सव्वा
करण—	सव्वेण, सव्वें, सव्वे	सव्वेहिं, सव्वाहिं, सव्वहिं, सव्वे
अपादान—	सव्वहं, सव्वाहं	सव्वहुं, सवाहुं
सम्बन्ध—	सव्वसु, सव्वासु, सव्वसुं, सव्वहो, सव्वाहो, सव्व, सव्वा	सव्वेसिं, सव्वहं, सव्व, सव्वा
अधिकरण—	सव्वहिं, सव्वाहिं	सव्वहिं, सव्वोहिं, सव्वासु, सव्वसु

अण्ण (सं० अन्य)

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, कर्म	अण्ण, अण्णु	
करण	अण्णे	अण्णाहि
सम्बन्ध	अण्णह	
अधिकरण	अण्णहि	

शब्द-संग्रह

कोश-रचना का कार्य अत्यन्त वैज्ञानिक एवं पद्धतिपरक है। शब्द-संग्रह का कार्य कोश-संपादन की प्रथम महत्त्वपूर्ण सीढ़ी है। प्रस्तुत कोश में अपभ्रंश की प्रकाशित एवं अप्रकाशित कृतियों से शब्दों का संग्रह किया गया है। प्रमाणस्वरूप, प्रत्येक प्रविष्टि के अंत में पुस्तक का संदर्भ दे दिया गया है। अपभ्रंश की रचनाओं में अनेक देशी शब्द मिलते हैं। अतः 'देशीनाममाला' के शब्दों का संकलन करना भी आवश्यक समझा गया। अपभ्रंश और अवहट्ठ में भेद न कर अवहट्ठ की रचना यथा—'कीर्तिलता' के शब्दों को भी इस कोश में स्थान दिया गया है।

अपभ्रंश-शब्दावली बहुत विस्तृत है। इसका संकलन करना अपने में एक चुनौती है। अपभ्रंश के विपुल साहित्य से संबंधित सभी रचनाएँ अब तक प्रकाशित नहीं हो पायी हैं। डॉ० हरिवंश कोछड़ ने अपनी पुस्तक 'अपभ्रंश-साहित्य' में उन अप्रकाशित रचनाओं का उल्लेख किया है और साथ ही अप्रकाशित रचनाओं से सबंधित मूल अंश भी प्रस्तुत किया है, जिनके आधार पर अप्रकाशित रचनाओं के शब्दों का संकलन किया गया है।

व्युत्पत्ति

कोश में व्युत्पत्ति का विशेष महत्त्व होता है। इससे शब्द के इतिहास का ठीक प्रकार से ज्ञान होता है। प्रस्तुत कोश में मूल शब्द को कोष्ठक में देने का प्रयास किया गया है। कहीं-कहीं कोष्ठक से बाहर दिया गया संस्कृत शब्द पर्याय है, न कि व्युत्पत्तिमूलक शब्द। संस्कृत के मूल शब्दों का आधार प्रामाणिक संस्कृत-कोशों की शब्दावली रही है और प्राकृत के शब्दों का आधार. 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' तथा 'अभिधान-राजेन्द्र कोष' रहा है। प्रस्तुत व्युत्पत्ति-अध्ययन से निश्चय ही संस्कृत और प्राकृत के साथ अपभ्रंश के सबंध के स्वरूप का बोध हो सकेगा, ऐसा संपादक का विश्वास है।

भारतीय भाषाओं के शब्दों से तुलना

भारतीय भाषाओं में परस्पर आदान-प्रदान होता रहा है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भारतीय भाषाओं के उद्गम एवं विकास के इतिहास को समझने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि विभिन्न प्रांतीय भाषाओं से अपभ्रंश के शब्दों की तुलना की जाए। अतः इस कोश में राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पंजाबी आदि के शब्दों से यत्र-तत्र तुलना की गई है। निश्चय ही अपभ्रंश भाषा का आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ सम्बन्ध जोड़ने से राष्ट्रीय एकता को बल मिल सकेगा।

अर्थ-विचार

शब्द-कोश का महत्त्वपूर्ण अंग अर्थ का निर्धारण करना होता है। प्रस्तुत कोश में अर्थ की प्रामाणिकता एवं प्रासंगिकता बनाये रखने का पूर्ण रूपेण प्रयास किया गया है। ठीक अर्थ की छानबीन के प्रयास में मैंने अपनी ओर से कोई कसर बाकी नहीं रखी है। शब्दार्थ की उपयुक्तता को सिद्ध करने के लिए आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र मूल उद्धरण दे दिये गए हैं।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

अभिधात्मक अर्थ के साथ यदि किसी शब्द का प्रयोग लाक्षणिक एवं व्यंग्यार्थों में हुआ है तो उसे भी देने का प्रयास किया गया है। संस्कृत और प्राकृत साहित्य के समान अपभ्रंश साहित्य में भी सूक्तियों, मुहावरों और लोकोक्तियों के सुंदर प्रयोग मिलते हैं, जिन्हें प्रस्तुत कोश में प्रसंगवश यत्र-तत्र उद्धृत करने का प्रयास किया गया है।

शब्द-रचना

अपभ्रंश के शब्दों की रचना को समझने के लिए प्रत्यय-विधान पर भी विचार करना अपेक्षित है —

तद्धित प्रत्यय—

इसके पाँच भेद हैं—

१. स्वार्थिक प्रत्यय—

नाम (संज्ञा) शब्दों से अ, डा, डुल्ल, अल्ल, इल्ल, उल्ल, इय, क्क, उ, एँ, आदि प्रत्यय लगते हैं। संस्कृत के स्वार्थे प्रत्यय 'क' से अपभ्रंश में 'अ' का विकास हुआ है, यथा—लघुक से लहुअ, गुरुक से गरुअ। अन्य प्रत्ययों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

हृदय > हियडा। माणिक्य > माणिक्कडा।

अल्ल, इल्ल, उल्ल—यथा, हिअउल्ल (हृदय), विलउल्ल (विलोल), बहिनुल्ल (भगिनि),।

स्त्री-प्रत्यय—

स्त्रीलिंग शब्दों में डी प्रत्यय लगता है, यथा—गोरी से गोर+डी, मृत्ति से मिट्ठडी। यदि शब्द के अंत में 'ड' प्रत्यय हो तो अन्तिम ड का अकार इकार में परिवर्तित हो जाता है, यथा—घूलड से घूलडिया।

आ—सिआ (श्री), अज्जा (आर्या)।

इ—णइ (नदी), तरुणि (तरुणी)।

ई—वाइणी (वादिनी)।

णी—सिस्सिणी (शिष्या)।

२. संयुक्त-प्रत्यय—

उल्ल तथा अ के योग से—मोल्लअ; अल्ल+डा=वलुल्लडा।
क- 'क' प्रत्यय शेप रहने पर इस प्रत्यय के इक, इय, क्क, रूप भी मिलते हैं, जैसे—धानुक्किय, वानुक्क।
उ, एँ
जैसे—पुणु, अवसें।

३. भाववाचक प्रत्यय—

भाववाचक अर्थ में प्प, प्पण, त्त, तण तथा अण का प्रयोग होता है, जैसे—
देव+प्पण,
वड्ड+प्पण,
वड्ड+त्तण। उत्कोपन > उक्कोवण, अवेक्षण > अविक्खण।

४. कर्त्तृत्व बोधक—

ये प्रत्यय कर्त्ता का बोध कराते हैं, जैसे—
अ—खवण्ण
आर—सोन्नार; कर्तारः > कत्तार।
इर—हिंसिर
अण—सुहावण
हार—करणिहार
इल्ल—कणिल्ल
आव—नटाव
आल—सोहाल।

५. संबंध-सूचक प्रत्यय—

जैसे—
इत—जोवण्णइत (यौवनवती)
इ—जोइ (योगिन्)
व—हणुव हनुवत् (हनुवत्)
वन्त—पुनवन्त (पुण्यवान्)
मई—सिरिमई (श्रीमती)
वाल—थणवाल (स्थानपाल)
आलु—सद्दालु (श्रद्धालु)
इय—पराइय (परकीय)।

कृदंत प्रत्यय

कृदंत प्रत्यय क्रिया (धातु) के साथ लगते हैं।, संस्कृत के तुमुन् प्रत्यय के स्थान पर अपभ्रंश में एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु, एवं, अण, अणहं और अर्णाहि प्रचलित हैं— यथा— करेप्पि, करेप्पिणु, करेवि, करेविणु, करेवं, करण, करणहं, करर्णाहि। इस सवंध में एक वात यह ध्यान देने योग्य है कि गम् धातु से परे 'तुमुन्' अर्थ में प्रयुक्त 'एप्पिणु' और 'एप्पि' के 'ए' का लोप विकल्प से होता है, यथा—गमिप्पणु (हे० ४४२), गम्पि, गमेप्पि।

संस्कृत के ,क्त्वा (त्वा) प्रत्यय के स्थान में इ, इउ, अवि, एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु होते हैं, जैसे— क्त्वा=करि, करिउ, करिवि, करवि, करेप्पि, करेप्पिणु, करेविं, करेविणु। अन्य उदाहरण— मारि, मज्जिउ, चुम्विवि, विछो-डवि, जेप्पि, देप्पिणु, लेवि, झाएविणु।

संस्कृत के 'तव्य' प्रत्यय के स्थान पर अपभ्रंश में इएव्वउं, एव्वउं, एवा, एव्व होता है, तथा— करिएव्वउं, सहेव्वउं, सोएवा, देक्खेव्व।

वर्तमान कृदंत—

संस्कृत शत् प्रत्यय का 'अंत' या 'अन्तय' रूप होता है, जैसे— करंत, मुणंत। अपभ्रंश में संस्कृत के शानच् का माण मिलता है, यथा— गच्छमाण, णच्चमाण, पइसमाण।

भूत कृदंत—

संस्कृत के क्त और क्तवतु प्रत्ययों का उपभ्रंश में त और तवत् रूप मिलता है। क्त के रूप-त,-इत या-ण्ण अपभ्रंश में प्रयुक्त होते हैं। अपभ्रंश में विशेपतः त ही शेप रहा। तकार का लोप होने पर-अ शेप रहा और उसमें य की श्रुति आने पर अ, इअ, और उसके परिवर्धित रूप य, इय, इयअ के प्रयोग मिलते हैं, यथा— हुइय, पेसिय। स्त्रीलिंग में इय का ई हो जाता है, जैसे— तुट्टी, चडी।

भविष्यत् और विधि कृदंत

संस्कृत में 'तव्य' प्रत्यय भविष्यत्काल के अर्थ में प्रयुक्त होता है। संस्कृत के तव्य प्रत्यय के स्थान पर अपभ्रंश में 'इएव्वउं', 'एव्वउं', 'एवा', 'एव्व', 'इअव्व' 'अव्व' का प्रयोग होता है, यथा— करिएव्वउं, मारिएव्वउं, सोएवा, देक्खेव्व, देखव, पढव, धरव, आदि।

पूर्वकालिक रूप

पूर्वकालिक क्रिया के निम्नलिखित प्रत्ययों का प्रयोग होता है—
इ— चलि, पढि, मारि, करि। इउ, इउं— कहिउ, मज्जिउ, भज्जिउ। अवि— मुयवि, विछोडवि परिसेसवि। पि— गम्पि। वि— आणिवि, लेवि। इवि— पणविवि (प्र+नम्>पणव+इवि), अवलोइवि (अव+√लोक्>अवलो+इवि), पेक्खिवि (प्रेक्ष> पेक्ख+इवि)। एवि—पणवेवि (प्र+√नम् पणव+ एवि

सुणेवि (श्रु>सुण+ एवि), लहेवि (√लभ्>लह+एवि), धारेवि (धृ>धार +एवि)। एप्पिणु— पणवेप्पिणु (प्र+नव>पणव+एप्पिणु),। एफि— जेफि। एविणु— लहेविणु (√लभ्> लह+एविणु), करेविणु (√कृ>कह+एविणु), लहेविणु (√लभ्>लह+एविणु)। णिसुणेविणु (नि <श्रु>सुण+एविणु), सुमरेविणु (स्मृ>सुमर एविणु)।

धातु— प्रत्यय

संस्कृत, पालि और प्राकृत में क्रिया-रूप शिलष्टता प्रधान हैं, किन्तु अपभ्रंश अश्लिष्टता की ओर बढ़ी है। अपभ्रंश में संस्कृत के लकारों की विविधता में कमी आई। अपभ्रंश में संस्कृत के आत्मनेपद और परस्मैपद का भेद समाप्त हो गया। परस्मैपद रूप ही प्रचलित रहे। आत्मनेपद प्रायः लुप्त हो गये; अपवाद स्वरूप आत्मनेपद के दो रूप शेष रह गए, उसके 'ए' का 'इ' में विलय हो गया। द्विवचन का सर्वथा लोप हो गया। कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य के क्रियापद का भेद केवल धातु के रूप तक ही सीमित रहा।

अपभ्रंश में लट्, लोट् और लृट् तीन लकार अवशिष्ट रहे और भूत-काल के लिए 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग हुआ। अपभ्रंश-धातुओं से पद-रचना के लिए इन प्रत्ययों का प्रयोग होता है।— इ, इं, हिं, उं, उ, हु, हुं, ए, एदि, हि, सि, मि, अहु, आमि, एइ, थि, ति, न्ति, एमि, इमि, मो, मु, ह, स, इहि, ईस इत्यादि।

वर्तमान काल के प्रत्यय—

इ, हिं, हि, हु, उं, हुं। लोट् लकार के प्रत्यय हैं— उ, न्तु, (हुँ), (हि), इ, उ ए, हु, उं, हुं।

भूतकाल के प्रत्यय—

इ, उ, ए, अ, इअ, य, इय,। भूतकाल के लिए संस्कृत के 'क्त' प्रत्यय के अपभ्रंश में त, यत, या ण्ण रूप वन गए। यथा— पडिय, जाणिय, चडियउ।

भविष्यत्काल—

संस्कृत के भविष्य सूचक प्रत्यय 'स्य' का अपभ्रंश में 'स' और ध्वनि-परिवर्तन से 'ह रूप वना है। 'इहि' तथा 'ईस' भी भविष्य सूचक प्रत्यय हैं।

प्रेरणार्थक क्रिया—

जव कर्त्ता को किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित किया जाता है तो प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत के 'णिच्' प्रत्यय के स्थान पर अत्, एत, आव, आवे आदेश होकर धातु रूप वनता था, यथा, दरिसइ, कारेइ करावइ, करावेइ, हासेइ, हसावइ, हसावेइ आदि।

कुछ क्रियाओं के रूप नीचे दिये जा रहे हैं—

धातु रूप-रचना (तिङ् विभक्ति)

कर् धातु के रूप

वर्तमान काल (लट् लकार)

	एक वचन	बहु वचन
प्रथम पु०—	करइ, करदि	करहिं, करहिँ, करन्ति
मध्यम पु०—	करसि, करहि, करहिं, करहिँ	करहु
उत्तम पु०—	करउं, करउँ, करामि, करेमि	करहुँ, करहुं, करिमु

'चल' धातु की रूप— रचना

लट् लकार

		एक वचन		द्वि० वचन
प्रथम पु०	—	चलइ	—	चलहिं
मध्यम पु०	—	चलहि	—	चलहु
उत्तम पु०	—	चलउं	—	चलहु

अपभ्रंश में 'चल' के अन्य प्राकृत रूप भी निम्न प्रकार प्रचलित हैं—

		एक वचन		बहु वचन
प्रथम पु०	—	चलए, चलेदि	—	चलन्ति, चलन्ते चलिरे
म० पु०	—	चलहि, चलसि		चलहु चलह, चलिद्ध
उ० पु०	—	चलउं चलउ, चलमि, चलामि		चलहुं चलमु चलाम, चलामो

आज्ञार्थक (लोट् लकार) में कर् धातु के रूप

	एक वचन	बहु वचन वचन
प्रथम पु०	×	×
मध्यम पु०	करू, करहि, करहिं, करेँ, करह, करि	करह, करहु, करहिँ
उत्तम पु०	×	×

भविष्यत् काल (लृट् लकार)

		एक वचन	बहु वचन
प्रथम पु०	—	करिसिइ, करिहइ	करिसहि, करिहहि
मध्यम पु०	—	करीहिसि, करिसहि	करिसहु, करिहहु
उत्तम पु०	—	करीसु, कीसु	करिसहुं, करिसउँ

हस धातु

		एक वचन		वहु वचन
प्र० पु०	—	हसिहिइ, हसीसइ	—	हसिहिंहि, हसीसहिं
म० पु०	—	हसिहिहि, हसीसहि	—	हसिहिहु, हसीसहु
उ० पु०	—	हसिहिउं,हसीसउं	—	हसिहिहुं, हसीसउं

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत कोश के संपादन-कार्य में मुझे अपभ्रंश-साहित्य की संपादित रचनाओं से सहायता प्राप्त हुई है। अपभ्रंश-साहित्य से संबंधित संपादक सर्व श्री डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, सी० डी० दलाल एवं पाण्डुरंग-दामोदर गुने, डॉ० हरिवल्लभ भायाणी, मधु सूदन मोदी, अगरचन्द नाहटा, डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, डॉ० पी० एल० वैद्य, डॉ० माता प्रसाद गुप्त, जिन विजय मुनि, र० म० शाह, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डॉ राजाराम जैन, विमल प्रसाद जैन, डॉ० रमणीक भाई शाह, डॉ० भोला शंकर व्यास आदि विद्वानों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त निम्नलिखित विद्वानों ने भी अपभ्रंश भाषा का शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया— डॉ० एल०-पी० तेस्सितोरी, डॉ० परममित्र शास्त्री, डॉ० नामवर सिंह, डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० जी० वी० तगारे, डॉ० सुकुमार सेन, प्रो० शालिग्राम उपाध्याय, डॉ० हरिवंश-कोछड़। उपर्युक्त विद्वानों की पुस्तकों में दिए अपभ्रंश के शोधपूर्ण अध्ययन से मैं लाभान्वित हुआ, उनका ऋषि-ऋण मुझ पर बना हुआ है।

डॉ० कुंवर बेचैन, डॉ० रामरज पाल द्विवेदी एवं डॉ० रामकृष्ण कौशिक के सहज स्नेह एवं सौजन्य का स्मरण करते हुए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिनसे मुझे पुस्तकों की सहायता प्राप्त हुई। अपभ्रंश के वर्ण-क्रम एवं ध्वनियों के संबंध में सर्व श्री डॉ० कैलाश चंद्र भाटिया डॉ० नामवर सिंह, डॉ० एल० वी० राम अनन्त, डॉ० राधेश्याम मिश्र, डॉ० त्रिभुवन नाथ शुक्ल से समय-समय पर चर्चा हुई, उनके कृपापूर्ण स्नेह के लिए मैं बहुत आभारी हूँ।

इस कोश की प्रकाशन संबंधी तत्परता का समस्त श्रेय आदरणीय डॉ० महेश-भारतीय को ही है, उसके लिए मैं डॉ० साहब के प्रति सात्विक श्रद्धा व्यक्त करता हूँ। मुद्रण-कार्य में सहयोग के लिए सर्व श्री डॉ० एल० वी० राम 'अनन्त', आनन्दशर्मा, शरद कुमार एवं कमल कुमार धन्यवाद के पात्र हैं। इस कोश को मैं आदरणीय डॉ० श्री जयचंद्र राय को समर्पित करता हूँ, जिन्होंने इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरणा दी थी।

अंत में मैं अपभ्रंश-साहित्य के विद्वानों से सुझावों की आकांक्षा करते हुए विनम्र निवेदन करता हूँ। उनके उपयोगी सुझाव मुझे उपकृत तो करेंगे ही, साथ ही इस राष्ट्रीय महत्त्व के कार्य को आगे बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होंगे।

नरेश कुमार

जे २३५, पटेलनगर प्रथम, गाजियाबाद, (उ० प्र०) २०१००१

संकेत-सूची

अ०	अरबी
अक०	अकर्मक धातु
अनु०	अनुकरण शब्द
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
अप०	अपभ्रंश भाषा
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी
अव०	अवहट्ठ
अव्य०	अव्यय
अस०	असमिया
आ०	आज्ञार्थक
आ० गु०	आधुनिक गुजराती
उ०	उदाहरण
ए०	एक वचन
ओ०	ओड़िया
कश्मी०	कश्मीरी
कों०	कोंकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० वि०	क्रियाविशेषण
कृ०	कृदंत
गु०	गुजराती
जैन परि०	जैन परिभाषा
जै० महा०	जैन महाराष्ट्री
टि०	टिप्पणी
त०	तमिल
तु०	तुर्की
तुल०	तुलना
ते०	तेलुगु
दे०	देशी शब्द
धा०	धातु
ध्व०	ध्वन्यात्मक
न०	नपुंसक लिंग
नाम०	नाम धातु
ना० धा०	नाम धातुज क्रिया
ने०	नेपाली
पं०	पंजाबी
प०	परसर्ग
पह०	पह्लवी
पा०	पालि
पुं०	पुंल्लिंग
पुं० न०	पुंल्लिंग तथा नपुंसक लिंग
पु० म०	पुरानी मराठी
पु० राज०	पुरानी राजस्थानी
पुं० स्त्री०	पुंल्लिंग तथा स्त्रीलिंग
पू० का० क्रि०	पूर्व कालिक क्रिया
पै०	पैशाची
पृ०	पृष्ठ
प्र०	प्रत्यय
प्रा०	प्राकृत
प्रा० हिं०	प्राचीन हिंदी
फ़ा०	फ़ारसी
बं०	बाङ्ला
ब०	बहुवचन
बु०	बुंदेलखण्डी
ब्र०	ब्रजभाषा
भ० का०	भविष्यत् काल
भाव०	भाव वाचक संज्ञा
भू० का०	भूत काल
भू० का० कृ०	भूत कालिक कृदंत
भू० कृ०	भूत कृदंत
भो०	भोजपुरी
म०	मराठी
मग०	मगही
मल०	मलयालम
मुहा०	मुहावरा
राज०	राजस्थानी

ला०	लाक्षणिक
लो०	लोकोक्ति
व०	वर्तमान काल
व० कृ०	वर्तमान कृदंत
वि०	विशेषण
विभ०	विभक्ति
विस्म०	विस्मयादि बोधक
वै०	वैदिक
व्या०	व्याकरण
सं०	संस्कृत
संयो०	संयोजक
सक०	सकर्मक धातु
समु०	समुच्चय बोधक
सर्व०	सर्वनाम
सिं०	सिंधी
स्त्री०	स्त्रीलिंग
हिं०	हिंदी

विशेष चिह्न

√ धातु का चिह्न।

> व्युत्पन्न, यह चिह्न पूर्व रूप से पर रूप के परिवर्तन को बताता है।

< यह चिह्न पररूप से पूर्व रूप को बताता है।

★ संभावित रूप।

प्रमाण ग्रन्थों के संकेतों का विवरण

संकेत—ग्रन्थ का नाम

उ०—उपदेश रसायन रास

क०—करकंडचरिउ

का०—कालस्वरूप कुलक

का० दो० को०—काण्हपा दोहा कोष

की०—कीर्तिलता

चं०—चंदप्पह चरिउ

च०—चर्यापद

जस०—जसहरचरिउ

जंबू०—जंबूसामिचरिउ

जि०—जिणदत्त चरिउ

ण०—णयकुमार चरिउ

णे०—णेमिणाह चरिउ

दे० ना० मा०—देशी नाम माला

दे० सा० दो०—देवसेन (सावयधम्म दोहा)

प० च०—पउम चरिउ

प० सि० च०—पउमसिरि चरिउ (धाहिल)

पर०—परमप्पयासु

परमा०—परमात्म प्रकाश-योगसार (जो इन्दु द्वारा लिखित)

पाइअ०—पाइअ-सद्द-महण्णवो

पास०—पासणाह चरिउ

पाहु०—पाहुड दोहा

प्र० को०—प्रबन्ध कोश

प्रा० गु०—प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह

प्र० चि०—प्रबन्ध चिन्तामणि

प्रा० पैं०—प्राकृत पैंगलम

बा०—बाहुबलि चरित

भ०—भविसयत्तकहा

भ० च०—भविसयत्त चरिउ

मय०—मयणपराजयचरिउ

महा०—महापुराण

यो०—योगसार

रा०—राउलवेल

रि०—रिट्ठणेमिचरिउ

व०—वड्ढमाणचरिउ

वर्ण०—वर्णरत्नाकर
विला०—विलासवईकहा
वी०—वीर जिणिदं चरिउ
षड्—षड्भाषाचन्द्रिका
सं० रा०—संदेश रासक
संधि०—संधिकाव्य-समुच्चय
स० दो० को०—सरहपा (दोहा कोष)
सण०—सनत्कुमारचरित
सणतु०— सणतुकुमारचरिय (अपभ्रंश महाकाव्य 'नेमिनाहचरिय' अन्तर्गत)
सा०—सावयधम्म दोहा
सि०—सिरिवाल चरिउ
सु०—सुकुमाल चरिउ
सुद०—सुदंसणचरिउ
सुअंध—सुअंधदहमीकहा
ह०—हरिवंशपुराण
हिं० का०—हिंदी काव्यधारा
हे०—हेमचन्द्र का अपभ्रंश व्याकरण
हे० प्रा०—हेमचन्द्र का प्राकृत व्याकरण

संकेताङ्कों का विवरण

(१) डॉ० एल० पी० तेस्सितोरी
(२) डॉ० परम मित्र शास्त्री

संदर्भ-ग्रंथों का विवरण

(शब्द-संकलन के स्रोत तथा उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भ ग्रंथों का विवरण क्रमशः लेखक का नाम, ग्रंथनाम, प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष यहाँ दिया गया है)।

१. अब्दुलरहमान कृत संदेश रासक, संपादक : हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रकाशक, हिंदी-ग्रन्थ रत्नाकर, प्रा० लि०, वम्बई-४; संस्क० मार्च, १९६०।

२. (अ) डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा संपादित, परमप्पयासु, प्रकाशक : सेठ मनिलाल रेवा शंकर झावेरी, परमश्रुत प्रभावक मंडल, वम्बई, १९३७ ई०।

(आ) डॉ० आ०ने० उपाध्ये द्वारा संपादित 'योगसार' और परमप्पयासु (परमात्मप्रकाश) साथ प्रकाशित, प्रकाशक: सेठ मनिलाल रेवा शंकर झावेरी, परमश्रुत प्रभावक मंडल, वम्बई, १९३७ ई।

३. डॉ० आर० पिशेल, हेमचंद्र का प्राकृत व्याकरण, वम्बई संस्कृत सीरीज, १९००।

४. उदयचन्द्र, सुअंधदहमी कहा, संपादक : डॉ० हीरा लाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्क० १९६६ ई०।

५. कनकामर, करकंड चरिउ, संपादक : डॉ० हीरालाल जैन, संस्क० १९६४ ई० भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।

६. कृष्ण लाल वर्मा, हिंदी-मराठी कोश; ग्रंथ भंडार, माहीम, वम्बई; संस्क० १९५१।

७. जयदेव मुनि, भावना संधि प्रकरण, एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूना, भाग ११, सन् १९३०, पृ० १-३१ पर एम० सी० मोदी द्वारा संपादित। यह छह कडवकों की रचना है, जिसमें प्रत्येक कडवक में १० पद्य हैं।

८. जिनदत्तसूरि, उपदेश रसायन रास, ला० भ० गांधी द्वारा संपादित, अपभ्रंश काव्यत्रयी ओरियंटल इंस्टिट्यूट, वड़ौदा, सन् १९२७।

९, जिनदत्त सूरि, काल स्वरूप कुलक, (३२ पद्यों की कृति), इसका दूसरा नाम उपदेश कुलक भी है। इसका उल्लेख पत्तन भण्डार की ग्रंथ-सूची में मिलता है, (द्रष्टव्य : हरिवंश कोछड़, अपभ्रंश-साहित्य, पृ० २९०)।

१०. दामोदर, उक्ति व्यक्ति प्रकरण, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ, भारतीय विद्या भवन, वम्वई संस्क० वि० २०१०। डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, अपभ्रंश और हिंदी राजस्थान प्राकृत भारतीय संस्थान, जयपुर संस्क० १९८३ ई०।

११. डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, राजस्थान का जैन साहित्य; प्राकृत भारती जयपुर संस्क० वि० सं० २०३४।

१२. देवसेन, सावयधम्म दोहा, प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित, अम्वादास चवरे दिगंवर जैन ग्रंथमाला २, वि० सं० १९८९।

१३. देवसेन गणि, सुलोचना चरिउ, अप्रकाशित ग्रन्थ, आमेर शास्त्र भण्डार में हस्तलिखित प्रति सुरक्षित।

१४. धनपाल, वाहुवलि चरित, अप्रकाशित ग्रंथ, (हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर में उपलब्ध)।

१५. (अ) धनपाल, भविसयत्त कहा, संपादक : सी० डी० दलाल एवं पाण्डुरंग दामोदर गुने, प्रकाशक : ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट वड़ौदा, संस्क० १९६७।

(आ) डॉ० एच० जेकोवी द्वारा संपादित, १९१८।

(इ) श्री दलाल और गुणे द्वारा संपादित, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, ग्रन्थांक २०, संस्क० १९२३ ई०।

१६. धाहिल, पउमसिरी चरिउ, मधुसूदन मोदी तथा हरिवल्लभ भायाणी द्वारा संपादित, भारतीय विद्या भवन, वम्वई, वि० सं० २००५।

१७. नयनंदी, सुदंसणचरिउ, संपादक : डॉ० हीरालाल जैन, प्रकाशक : प्राकृत, जैन शास्त्र और अहिंसा शोध-संस्थान वैशाली (विहार), संस्क० १९७०।

१८. नरसेनदेव, सिरिवालचरिउ, संपादक : डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्क० १९७४ ई०।

१९. नागदेव, मयणपराजयचरिउ, संपादक : डॉ० हीरा लाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, संस्क० अप्रैल १९६२ ई०।

२०. डॉ० नामवर सिंह, हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, साहित्य भवन लि० इलाहावाद, संस्क० १९५४ ई०।

२१. परममित्र शास्त्री, सूत्र शैली और अपभ्रंश व्याकरण, सं० २०२४ वि०, ना० प्र० सभा, काशी।

२२. पुष्पदन्त विरचित जसहरचरिउ. संपादक : डॉ० हीरालाल जैन; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्क० १९७२ ई०।

२३. पुष्पदन्त, णयकुमारचरिउ, संपादक : डॉ० हीरालाल जैन, संस्क० सन् १९७२, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।

२४. पुष्पदंत, महापुराण, संपादक : डॉ० पी० एल० वैद्य, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, संस्क० सन् १९८३ ।

२५. पुष्पदंत, वीर जिणिंद चरिउ, संपादक : डॉ० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, संक० १९७४ ई० ।

२६. भट्टोजिदीक्षित विरचित सिद्धान्त-कौमुदी; प्रकाशक—खेमराज-श्रीकृष्णदास, वम्बई, सं० २००९ ।

२७. डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम् भाग १, प्रकाशिका : प्राकृत ग्रन्थ परिषद् वाराणसी-५ ।

२८. डॉ० भोला शंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम्, भाषा शास्त्रीय और छंद शास्त्रीय अनुशीलन) प्रकाशिका : प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, सं० २०१८ ।

२९. मगनभाई प्रभुदास देसाई, हिंदी गुजराती कोश, गुजरात विद्यापीठ अहमदावाद; संस्क० १९६४ ई० ।

३०. डॉ० माता प्रसाद गुप्त, सम्पादक, राउल वेल और उसकी भाषा, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद ।

३१. मुरलीधर वनर्जी, दि देशीनाममाला आफ हेमचन्द्र, प्रकाशक कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३१ ।

३२. मेरुतुङ्ग, प्रवन्धचिन्तामणि, सम्पादक जिनविजय मुनि, प्रकाशक : सिंघी जैन ज्ञानपीठ, विश्वभारती शान्तिनिकेतन बंगाल संस्क० १९८९ ।

३३. यशःकीर्ति, चंदप्पह चरिउ, अप्रकाशित कृति; (आमेर शास्त्र भण्डार में हस्तलिखित प्रति सुरक्षित) ।

३४. र० म० शाह, संपादक, संधिकाव्य-समुच्चय प्रकाशक : लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदावाद, ९; संस्क० जनवरी १९८० ।
टि०—इस पुस्तक में निम्नलिखित लेखकों की रचनाएँ संकलित हैं— १. रत्नप्रभसूरि, वीरजिण— पराजय-संधि (रचना-समय ई० स० ११८२); गयसुउमाल-संधि (रचना-समय; ई० स० ११८२); सालिभद्द-संधि (रचना-समय ई० स० ११८२); अवंतिसुकुमाल-संधि (रचना-समय : ई० स० ११८२) । २. जिन प्रभसूरि, मयणरेहा (ई० स० १२४१); जीवाणुसट्ठि–संधि (ई० स० १२२५), नमयासुंदरि-संधि (ई० स० १२७२); चउरंग-भावण-संधि (ई० स० १३०० पूर्व) । ३. विनयचन्द्रसूरि, आणंद-सावय-संधि (ई० स० १३०० पूर्व । ४. रत्नप्रभ गणि, अंतरंग संधि (ई० स० १३०० पूर्व) । ५. लेखक : अज्ञात, केसीगोयम-संधि (ई० स० १४१७) । ६. जयदेव मुनि, भावणा-संधि (रचना-समय : ई० स० १४०० पूर्व, लेखन-समय : ई० स० १४१३) । ७. जयशेखरसूरि-शिष्य, सील-संधि रचना-समय : ई० स० १४०० पूर्व, लेखन-समय : ई० स० १४१३); अवहाण-संधि (रचना-समय : ई० स० १४०० पूर्व) । ८. कर्त्ता : अज्ञात, हेमतिलयसूरि-संधि (रचना-समय : ई० स० १४०० पूर्व) । ९. विशालराजसूरि, तव-

संधि (रचना-समय ई० स० १४०० पूर्व, लेखन-समय : ई० स० १४४६) । ६. कर्त्ता : अज्ञात, अणाहि-महरिसि-संधि, (ई० स० १४०० पूर्व, लेखन-समय : ई० स० १४३०) । १०. हेमसार, उव-एस–संधि (रचना-समय : ई० स० १५०० पूर्व) ।

३५. राजशेखर सूरि, प्रबन्ध कोश, सिंघी जैन ज्ञानपीठ शान्ति निकेतन, विक्र० १६६१ ।

३६. डॉ० राम गोपाल शर्मा 'दिनेश' अपभ्रंश भाषा का व्याकरण और साहित्य, प्रकाशक : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम संस्क० १६८२ ।

३७. रामसिंह, पाहुड दोहा प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित, वि० सं० १६६०, कारंजा जैन पब्लिकेशन, सोसाइटी, कारंजा, बरार ।

३८. राहुल सांस्कृत्यायन, हिंदी काव्यधारा, प्रयाग, १६४५ ई० । (इस पुस्तक में दिये गये 'चर्यापद' के उदाहरणों के आधार पर शब्द संकलित) ।

३६. लक्खण या लाखू, जिणदत्त चरिउ, अप्रकाशित ग्रन्थ, आमेर भण्डार में हस्तलिखित प्रति सुरक्षित ।

४०. लक्ष्मीधर, षड्भाषाचन्द्रिका, बम्बई संस्कृत एण्ड प्राकृत सिरिज, १६१६ ।

४१. लखम देव, णेमिणाह चरिउ, अप्रकाशित कृति, पाटोदी शास्त्र भण्डार, जयपुर में हस्तलिखित प्रति सुरक्षित ।

४२. डॉ० एल० पी० तेस्सितोरी, पुरानी राजस्थानी, अनुवादक : नामवर सिंह ना० प्र० सभा काशी, सं० २०१२ वि० ।

४३. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिंदी कोश, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसी दास; संस्क० १६६६ ई० ।

४४. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, विद्यापति कृत कीर्तिलता, साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी प्रथम संस्क० १६६२ ई० ।

४५. विबुह-सिरिहर, वड्ढमाणचरिउ, संपादक : डॉ० राजाराम जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्क० १६७५ ।

४६. वीरकवि विरचित जंबू सामिचरिउ, संपादक : विमल प्रकाशन जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; संस्क० सन् १६६८ ।

४७. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, नई दिल्ली; संस्क० १६७६ ।

४८. श्रीधर, पासणाह चरिउ, अप्रकाशित ग्रन्थ, आमेर शास्त्र भण्डार में हस्तलिखित प्रति सुरक्षित ।

४६. श्रीधर, भविसयत्त चरिउ, अप्रकाशित ग्रन्थ, आमेर शास्त्र भण्डार में इसकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है ।

५०. श्रीधर, सुकुमाल चरिउ, (ग्रन्थ-रचना का समय वि० सं० १२०८), अप्रकाशित ग्रन्थ, आमेम शास्त्र भण्डार में हस्तलिखित प्रति सुरक्षित ।

५१. डॉ० सम्पत्ति आर्याणी, मगही-भाषा और साहित्य, विहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना; प्रथम संस्क० विक्रमाब्द २०३२ ।

५२. सर मोनियर विलियम्स, ए संस्कृत-

इंग्लिश डिक्शनरी, यूनि० प्रेस आक्स-फोर्ड. संस्क० १८९८ ई० ।

५३. सिद्धसेनसूरि (गृहस्थावस्था का नाम 'साधारण'), विलासवईकहा, संपादक : डॉ० रमणीक भाई शाह, एल०डी० इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद, संस्क० १९७७ ई० ।

५४. सीताराम लालस, राजस्थानी सबद कोस, प्रकाशक चौपासनी शिक्षा समिति जोधपुर, प्रथम संस्क० ।

५५. डॉ० सुकुमार सेन, तुलनात्मक पालि - प्राकृत - व्याकरण, अनुवादक : महावीर प्रसाद लखेड़ा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्क० ।

५६. सुप्रभाचार्य, वैराग्यसार, प्रो० हरिपाद दामोदर वेलणकर ने एनल्स आफ भंडार कर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, जिल्द ९, (पृ० २७२–२८०) में इसे संपादित किया है ।

५७. स्वयम्भूदेव विरचित पउमचरिउ, भाग १ (i) मूल संपादक : डॉ० एच० सी० भायाणी, अनुवादक डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, संस्क० १९७५ ई०, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली । (२) संपादक : डॉ० हर्मन जेकोबी, प्राकृत ग्रंथ परिषद्, अहमदाबाद, वि० सं० २०२५ । (३) पउम चरिउ, प्रकाशक : जैन-धर्म-प्रसारक-सभा, भावनगर, प्रथमावृत्ति । (४) स्वयंभूदेव, पउमचरिउ, संपादक : डॉ० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी, संस्क० वि० २००६, सिंधी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ, भारतीय विद्याभवन, बंबई ।

५८. स्वयंभूदेव, रिट्ठणेमिचरिउ, संपादक : डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वि० सं० २०४२ ।

५९. हरगोविन्द दास त्रिकमचंद शेठ, पाइअ-सद्द-महण्णवो, प्रकाशक : हरगोविन्द दास टी० शेठ । सी, योरोपियन आसिलम लेन, कलकत्ता; सं० १९८५ ।

६०. संपादक : डॉ० ह० चू० भायाणी, अगरचन्द नाहटा, प्राचीन गूर्जर काव्य सञ्चय, प्रकाशक : लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर अहमदाबाद-९ प्रथम संक०, जून, १९७५ ।

प्राचीन गुर्जर काव्य संचय में संकलित—१. केसीगोयम-संधि । २. जिनप्रभसूरि (रचना-समय ई० १२७२) नमयासुंदरि-संधि । ३. जयशेखरसूरि (लेखन-समय १४३७ ई०) सील-संधि । ४. वज्रसेन, भरहेसर-बाहुबलि-घोर (रचना-समय : ११६६ के लगभग) । ५. आसिग, जीवदया-रास (रचना-समय १२०१) । ६. आसिग, चंदनबाला-रास (लेखन-समय १३८१ ई०) । ७. पाल्हण, आबू-रास (रचना-समय १२३३ ई०) । ८. देल्हण, गयसुकुमाल-रास (रचना-समय ई० १२५०) । ९. जम्बस्वामि-सतक वस्तु (सन् १३८१) । १०. उपाध्याय विनयप्रभ, गौतमस्वामी-रास, (रचना-समय १३५६) । ११. नेमिनाथ-रास । १२. लक्ष्मीतिलकगणि, शांतिनाथ देव- रास (रचना-समय १३ वीं शताब्दी) । १३. शांतिनाथ-रास । १४. राजतिलक, सालिभद्र-रासु लेखन-समय १३८१) । १५. अभयतिलकगणि-महावीर रास (रचना-समय) थूलिभद्द-रासु-

(लिखन-समय १३८१) । १७. नवकार-रास । १८. धर्म-चच्चरी । १९. चच्चरी । २०. दिघम-सवरी-भास । २१. जिनचंद्रसूरि-फागु । २२. जिन पद्मसूरि, सिरि-थूलिभद्द-भागु (रचना-समय १३००-१३५०) । २३. विनयचंद्र-सूरि, नेमिनाथ-चतुष्पदिका (रचना-समय : १३वीं शताब्दी) । २४. पाल्हण, नेमि-बारहमासा (रचना-समय १३वीं शताब्दी) । २५. देपाल, कयवन्ना-विवाह-लउ, (रचना-समय १५वीं शताब्दी) । २६. देपाल, नेमिनाथ-धवल (रचना-समय १५वीं शताब्दी) । २७. देपाल, आर्द्रकुमार-धवल (रचना-समय १५वीं शताब्दी) । २८. अंबिकादेवी-पूर्वभव-वर्णन-तलहारा । २९. नेमिनाथ-वोली । ३०. थूलिभद्र-मुनि-वर्णना-वोली । ३१. शांतिनाथ-वोलिका । ३२. वासुपूज्य-वोलिका । ३३. सर्वजिन-कलश । ३४. युगादि देव-कलश । ३५. वीरजिन-कलश । ३६. जिनेश्वरसूरि, महावीर-जन्माभिषेक (रचना-समय ११ वीं शताब्दी) । ३७. आसिग, कृपण-गृहिणी-संवाद, (रचना-समय १२०० के पश्चात्) । ३८. प्रकीर्ण-दोहा । ३९. दंगडु । ४०. नवकार-फल-स्तवन ।

६१. हरिभद्रसूरि, सणतुकुमारचरिय, संपादक : हरिवल्लभ चू० भायाणी एवं मधुसूदन चि० मोदी, प्रकाशक : लाल-भाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद, ९; संस्क० जनवरी, १९७४ ।

६२. हरिदेव, मयणपराजयचरिउ, संपादक : डॉ० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, संस्क० १९६२ ई० ।

६३. डॉ० हरिवंश कोछड़, अपभ्रंश-साहित्य, प्रकाशक : भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा-दिल्ली ।

६४. हेमचंद्र, अपभ्रंश व्याकरण, शालिग्राम उपाध्याय (अनुवादक), भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी, संस्क० १९६५ ई० ।

६५. डॉ० हेमचंद्र जोशी (अनुवादक) आर० पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्रथम संस्क० ।

66. Burrow and Emenean, Dravir Etymological Dictionary, Oxford at the clarendon Press, Ed. 1961

67. Davids and william, Pali Text Society London, Ed. 1952.

68. Ganesh Vasudev Tagare, Historical Grammar of Apabhramsa, Deccan College, Poona Ed. 1948.

69. (1) Hindi Words Common to other Indian Languages, (2) Hindi-Assamese; 1959; (3) Hindi-Marathi, 1959, (4) Hindi–Punjabi; 1960; (5) Hindi Gujrati; 1958; (6) Hindi-Oriya; 1958; published by M/o Education, Govt. of India.

अपभ्रंश-हिन्दी कोश

अ

अंक— अव्य० (दे०)– निकट, समीप; (दे० ना० मा० १,५)। २–पुं० (सं० अंक) संख्या (भ०); ३– रत्न-विशेष, रत्न की एक जाति; (संधि० २,३,७)। ४– आसन; (जंबू ८,१२,१२)।

अंकय—वि० (सं० अकृत > प्रा० अकय)– नहीं किया हुआ; (पाहु० १७७)।

अंकवाली— स्त्री० (सं० अङ्कपालि > प्रा० अंकवाली)– आलिंगन; (उ० व्य० प्र० ६-१७)।

अंकार— पुं० (दे०)–सहायता; (दे० ना० मा० १,६)।

अंकिअ —न० (दे०)–आलिंगन (दे० ना० मा० १. ११)।

अंकित— वि० (सं० अङ्कित > प्रा० अंकिअ)–चिह्नित (भ०; जस० १,५,६)।

अंकियंग— पुं० (सं० अङ्कित+अङ्ग)– विभूषित अंग; (जंबू० १०, १, १२)।

अंकुड— पुं० (सं० अङ्कुश > प्रा० अंकुश)–लोहे का एक हथियार, "अंकुडेण णिहणइ कड्ढेप्पिणु", (म० २,१६,१)।

अंकुर— पुं० (सं० अङ्कुर > प्रा० अंकुर)–कोंपल, अंखुवा, फुनगी; (भ०; जस० ३, ३५, ३)।

अंकुरिअ—वि० (सं० अङ्कुरित > प्रा० अंकुरिय)– अंकुर-युक्त, जिसमें अंकुर उत्पन्न हो वह; (जंबू० ४, १६, १३)।

अंकुस—पुं० (सं० अङ्कुश)–१. अंकुश के आकार वाली बाँस से बनी वस्तु, "तिहिं वंसहिं एयहिं अइपयंड, होसहिं धयअंकुसछत्तदंड", इन तीनों बाँसों के ध्वजा, अंकुश और छत्र के प्रचण्ड दण्ड बनाने वाले हैं; (क० २, ८, २)। २. आंकडी; (हे० ३४५)।

अंकुसइय—न० (दे०) अंकुश के आकार वाली वस्तु; (दे० ना० मा० १,३८)।

अंकुसिय—वि० (सं० अङ्कुशित > प्रा० अंकुसिअ)–अंकुश की तरह मुड़ा हुआ; (जंबू० ४,१६,१५)।

अंकोल्ल— पुं० (सं० अङ्कोठ > प्रा० अंकोल्ल)–वृक्ष एवं पुष्प-विशेष; (जंबू० ५,८,८)।

√अंकोस—(सं०आक्रोशति)–१. जोर से चिल्लाना, २. भर्त्सना करना, ३. कोसना; (उ० व्य० प्र० ४६-१३)।

अंग—पुं० (सं० अङ्ग > प्रा० अंग)– शरीर के अवयव; (भ०; की० ३,१५६)। —चाअ पुं० (सं० अङ्ग + त्याग) कायोत्सर्ग; (जस० ४, ६, ६)।

अंगि— पुं० अंग, "गोरइ अंगि वेरंगा कंचू"— गोरे रंग पर दोरंगा कंचुक (ऐसा लगता) है; (रा० १७)। अंगेर– पुं०, अंग "आंगहि मांडणु अंगेर उजालु",—(उसके) अंगों में मंडन (उसके) अंगों का औज्ज्वल्य है, (रा० २५)। अङ्ग—पुं०अंग (हे० ३३२,२)।

अङ्गचङ्ग— वि०, शरीर से तगड़े; (की० ४,७०)।

अंगण—न० (सं० अङ्गणं, अङ्गनं > प्रा० अंगण)- आंगन, चौक; (भ०)।
अंगणि—स्त्री० वगड़ी, चौक; (सुग्रंथ १,१२,१)।
अंगय—वि० (सं० अङ्गज)–शरीर पर उपजा हुआ; (जस० १,२,१)।
अंगरक्ख—वि० (सं० अङ्+रक्षक > प्रा० अंग+रक्खग, रक्ख)- शरीर की रक्षा करने वाला; (जंबू० ३,४,६)।
अंगराअ—पुं० (सं० अङ्गराग > प्रा० अंगराग, अंगराय)–सुगन्धित लेप, शरीर पर सुगंधित उवटन का लेप; (जस० २, १२,१)।
अंगरुह—पुं० सं० (अङ्ग+रुह=अंग पर उत्पन्न)–रोम; (जस० ४,२०,४)।
अंगरुहु—पुं०, पुत्र (जंबू ३,५,१०)।
अंगवइ— सक० (सं० अङ्गी+कृ) – अंगीकृत करना, स्वीकार करना; (की० २,२२)।
अंगार— पुं० (सं० अङ्गार > प्रा० अंगार)–जलता हुआ कोयला; (भ०)। –पुंज पुं०(सं० अङ्गार+पुञ्ज) अंगार का ढेर (जंबू ६,१५,१५)। —य, पुं० (सं० अङ्गार+क) अंगारा; (सुदं० २, ११,१)।
अंगालिय—न० (दे०)–ईख का टुकड़ा; (दे० ना० मा० १२, ८)।
अंगिय – स्त्री० (सं० अङ्गिका)–अङ्ग-देशीया स्त्री; (सुद० ४,६,४)।
अंगुट्ठ—पुं० (सं० अङ्गुष्ठ > प्रा० अंगुट्ठ)–अंगूठा; (ण० १,१७,४)।
अंगुल— न० (सं० अङ्गुल > प्रा० अंगुल)- नाप या मान-विशेप, (जस० १,६,५)।
अंगुलि— स्त्री० (सं० अङ्गुलि-ली, अङ्गुरि-री > प्रा० अंगुलि, अंगुली)– उंगली (भ०; जंबू० २,५,१३)। अंगुलि; (पाहु० ११७)।
अंगुलिणी—स्त्री० (दे०)–प्रियंगु, वृक्ष-विशेप; (दे० ना० मा० १,३२)।
अंगुलीय—पुं० नं० (सं० अङ्गुलीयक)– अंगुठी; (प० च० ५४,६)।
अंघिव— पुं० (अंघ्रिप)–वृक्ष; (ण० ६,७,१५)।
√अंच—(सं०अञ्च्)–पूजना। अंचइ— सक० (सं० अर्चति)–पूजा करना, सत्कार करना (भ०)। अंचमि— क्रि०, व० पूजना (क० १०,३,१०)। अंचए; (भ०)। अंचएवि— पू० का० क्रि०, अर्चना करके; (क० १०, १७, ३)। अंचिज्जइ—क्रि०, व०(ण० ४,३,११)।
अंचल—पुं० (सं० अञ्चल)–कपड़े का शेप भाग; (भ०)।
अंचिय— वि० (सं० अर्चित)- पूजित सम्मानित, (म० १,१,२; प्रा० गु० १०, ५)।
अंछिय— वि० (दे०)– खींचा हुआ, आकृष्ट; (दे० ना० मा० १,१४)।
अंजण— पुं० (सं० अञ्जन > प्रा० अंजण)–वृक्ष-विशेष; (जंबू० ३,६,१७)।
अंजणइसिआ— स्त्री० (दे०)– वृक्ष-विशेप, श्याम तमाल का वृक्ष; (दे० ना०-मा० १,३७)।
अंजणईस—न० (दे०)–श्याम तमाल का पेड़; (दे० ना० मा० २,३७)।
अंजणपव्वय— पुं० (सं० अञ्जन+

पर्वत)–पर्वत-विशेष; (रि०, छठा सर्ग)।
अंजणिआ—स्त्री० (दे०)– वृक्ष-विशेष, श्याम तमाल का वृक्ष; (दे० ना० मा० १,३७)।
अंजणु— पुं० (सं० अञ्जन > प्रा० अंजण)–काजल, अंजन; (महा० २२-३)।
अंजलि—स्त्री० (सं० अञ्जलि>प्रा० अंजलि, ली)– हाथ का संपुट; (भ०; जस० २,३४,५)। अंजुलि—स्त्री० कर-संपुट (सि० १, ४३)।
अंजस—वि० (दे०)–सरल, ऋजु; (दे० ना० मा० १,१४)।
अंज— (सं० अञ्ज्>प्रा० अंज)–आंखों में अंजन आंजना। —हि सक० आंजना; "काइँ णयण अंजणहिं अंजहि", आंखों में अंजन क्यों आंज रही हो; (सि० २, ४, ६)।
अंडय— पुं० (सं० अण्डज)–मछली, मत्स्य; (दे० ना० मा० १,१६)।
अंत[1]— पुं० (सं० अन्त्र> प्रा० अंत न०)–आंत (ण ४, १५,५)।—ड (सं० अन्त्र) आंत (जंबू ४,२,१७)। अंताइ— न०, आंत (रि० ७,६)। अन्त (सं० आन्त्र) आंत; (प० च० १३, ४, ७)। —आवलि—स्त्री० (सं०अन्त्र+आवलि) अंतड़ियां (ण ८,१५,८)। —याल; पुं० (सं० अन्तकाल) अन्तिम समय; (सि० २, ३३)।
अंत[2]— अव्य० (सं० अन्तर> प्रा० अंत)– आभ्यन्तर, मध्य में "पिय–चलण अंतें धरि उत्तमंगु,"—प्रिय के चरणों में अपना सिर रख दिया; (सि० २,७,१)।
-रंग— पुं० (सं० अन्त+ रङ्ग)– आत्मीय, स्वजन। वि० निकटस्थ, (जस० १,२,५)।
अंत—पुं० (सं० अन्त>प्रा० अंत)– आखीर; प्रा० पैं० १,१७)। अंतए (प्रा० पैं० १,१६४), अंतिणा (प्रा० पैं० २, ७४), अंतहि—आखीर में; (प्रा० पैं० २, १००)।
अंतर— अव्य० (सं० अन्तर् > प्रा० अंत)–मध्य में (प्रा० पैं० १,६७)। अंत-रंग पुं० (सं० अन्तरङ्ग) आभ्यान्तर उपादान; (जंबू० १०, ४, १)। सुद्धि— स्त्री० (सं० अन्तरशुद्धि)– आन्तरिक शुद्धि (जंबू १०,२०,१२)।
अंतरवणु— (सं० अन्तवन)– अन्तरवन नामक वन-विशेष, "अंतरवणु संपत्तु जंतु-जंतु रमणीसरु"—चलते-चलते वे रमणी-श्वर नागकुमार अन्तरवन में पहुँचे; (ण० ७,३,१२)।
अंतराअ—न० (सं० अन्तरायिक>प्रा० अंतराइय)–विघ्न, रुकावट; (जंबू० २, १५,८)।
अंतराल—पुं० (सं० अन्तराल> प्रा० अंतराल) अंतर, बीच का भाग; (जंबू० ५,११,१०)।
अंतरि—अव्य० (सं० अन्तर)–में; "दल-अंतरि दंसण-णाणु चारु", (सि० १,१७, १६)।—अ, वि० (सं० अन्तरित>प्रा० अंतरिय)–अंतरवाला; (जंबू० १०, १३ ७)।
अंतरिक्ख—पुं० (सं० अन्तरिक्ष)–पृथ्वी और दूसरे ग्रहों या नक्षत्रों के बीच का स्थान, आकाश; (भ०)। अंतरिक्खि; (महा० ६८,५)।

अंतोहरी—स्त्री० (दे०)–दूती; (दे० ना० मा० १, ३५)।

अंतेउर— न० (सं० अन्तःपुर>प्रा० अंतेउर)–रानियों का निवास-गृह, रनिवास; (सि० २,३४; ण० २,१,२)

अंतेल्ली—स्त्री० (दे०) कल्लोल, तरंग; (दे० ना० मा० १,५५)।

अंतोहुत्त—वि० (दे०)–अधोमुख; (दे०-ना० मा० १,२१)।

अंदोयण— न० (सं० आन्दोलन)–हिलना-डुलना, स्पंदन; (जस० १, १२, ५)।

अंदोल— (सं० आन्दोलय् > प्रा० अंदोल)–कंपाना, हिलाना। अन्दोलइ—सक०–झूलना; (प० च० १४, ३, ७)।

अंदोलय—पुं० (सं० आन्दोल+क> प्रा० अंदोलग)– हिंडोला, तुल० म० अंदोला; (भ०)। अन्दोलय (प० च० १४, ४, ६)।

अंध— पुं० (सं० आन्ध्र)– १. देश-विशेष; (क० १०, ६, ७)। —देस (सं० आन्ध्र देश) (ण० ६, १, ७)। २. (सं० अन्ध) अन्धा (प्रा० पैं० १, ११५; जस० १, १६, २)।—ल॰ (सं० अन्ध) (जंबू० २, ६, ८)। ३. आंध्र-देशीय मनुष्य, (संधि० १०, २,५)—यविट्ठि—पुं० अंधकवृष्णि नाम-विशेष; (रि० प्रथम सर्ग)।

अंधअ—पुं० (सं० अन्धक)–दैत्य का नाम; (प्रा० पैं० १, १०१)।

अंधघु—पुं० (दे०)–कूप; (दे० ना०-मा० १, १८)। टि०— अंध (तमस्, अंधकार) से अंधघु शब्द कुए का द्योतक इसलिए हो गया क्योंकि कुएं में अंधकार होता है।

अंधार, अंधारउ— पुं० न० (सं० अन्धकार> प्रा० अंधयार)– अंधेरा; अंधकार; तुल० म० अन्धार, गु० अन्धेर (क० १०, ६, ७; प्रा० पैं० १, १४७; जस० २, २५, ४)।

अंधारिय—वि० (सं० अन्धकारित> प्रा० अंधारिय)–अंधकार वाला; (जंबू० ६, ५, ४; भ०)।

अंधि— स्त्री० (सं० अक्षि)– नेत्र। अंधिहिं; (रा० १६)।

अंधिआ—स्त्री० (सं० अन्धिका)–द्यूत-विशेष; (दे० ना० मा० २, १)।

अंधुंधु—पुं० (दे०)–कूप, कुँआ; (दे०-ना० मा० १, १८)।

अंधो—पुं० (सं० अन्धः)–वस्तु छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ११४)।

अंब—न० (सं० आम्र)–आम्र-फल; (रि०, सर्ग द्वितीय)। स्त्री० (सं० अम्बा>प्रा० अंबा) स्त्री, माता; (जंबू० २, १७, २)।

अंबइय— स्त्री० (सं० अम्बिका)–आम की कलियां; (ण० ८, १, १२)।

अंबड—वि० (दे०)– कठिन (दे० ना० मा० १, १६)।

अंबय—पुं० (सं० आम्र>प्रा० अंब)– १, आम का पेड़, २. न० आम, आम्र-फल; (ण० ७, १, ११)।

अंबर— न० (सं० अम्बर > प्रा० अंबर)– १. वस्त्र। अंबरा—न० वस्त्र (की० २, ८६)। २. आकाश (प्रा० पैं० १, १८८)।

अंबा— स्त्री० (सं० अम्बा > प्रा० अंबा)– माता, माँ; (सि० १, १७)। —इय, स्त्री०, माता; (प्रा०गु०५,४७)। —देवय स्त्री० (सं० अम्बा देवी) अम्बा

नामक देवी; (जंबू १, २, ६) । —विउ, वि० प्रचारित, "जिणि संवच्छरु महि अंवाविउ अंवरि चंदिहिं नामु लिहाविउ", तुल०गु० अंबाववुं; (प्रा०ग० ५, ५३) ।
अंबुल— स्त्री० माता; (सुदं० ८, ६, २) ।
अंविल—न० १. (सं० आचाम्ल) प्रा० आयंबिल)– तप-विशेष; (संधि० १६, २, २) । २. वि० (सं० आम्ल) खट्टी वस्तु, तुल० म० आम्विल; (भ०) ।
अंबुहरु— पुं० (सं० अम्बुधर)–मेघ; (ण० ६, १४, ८) ।
अंवेसि, अवेसि— पुं० (दे०)–घर के दरवाजे का लकड़ी का तख्ता; "अवेसी तथा अंवेसी गृहद्वारफलहकः", (दे० ना० मा० १, ८) ।
अंबोडय—पुं० (दे०)– सं० केशकलाप, वालों का ढेर; तुल० गु०अंबोडो; (संधि० २, ११, ३) ।
अंभ—पुं० (सं० अम्भस्>प्रा० अंभ)– जल; (जस० ३, १६, ३) ।
अंस—पुं० (सं० अंश>प्रा० अंस)– भाग, खंड, अवयव; (जस० ३,२६,८) । —य, पुं० (सं० अंश+क) अंश "जाई असय सत्तइँ देसिउ"—जाति, अंश, सत्व, देश, (सुदं० ४, ५४) ।
अंसु[1]—पुं० (सं० अंशु>प्रा० अंसु)– किरण, प्रकाश किरण; (ण० २, ५, ४) ।
अंसु[2]—न० (सं० अश्रु> प्रा० अंसु)– आँसु, अश्रु-जल; तुल० गु० आंसु (भ०; प० च० १४, ८, ६; हे० ४१४।३) । अंसु— अश्रु (प्रा० पैं० १, ६६) । —वाय, पुं० (सं० अश्रुपातः) आंसू गिराना; (भ०) । —वाह, पुं० (सं० अश्रु-प्रवाह>प्रा० अंसु+पव्वाह) आंसू वहाना; (जस० २, २५, ६) । "अंसुवाह णिवडंति धरयले", धरातल पर आंसू बहा रहे थे; (ण० ६, १८, १८) ।
अंसु[3]—न० (सं० अंशुक>प्रा० अंसुय)– वस्त्र, कपड़ा; (प० च० १४/८/६) । —य, व— न०–वस्त्र (भ०) ।
अंहि—पुं० (सं० अंह्रि>प्रा० अंहि)– पाद, पाँव, (प० च० ३६, १४, ६) ।
अ—संयो० (सं० च>प्रा० अ)–और (सं० रा०; प्रा० पैं० १, ७; की० २, १००) ।
अइ—अव्य० (सं० अति>प्रा० अइ)– यह अव्यय नाम और धातु के पूर्व में लगता है और निम्नलिखित अर्थ में से किसी एक को सूचित करता है— १. अतिशय, अतिरेक, २. उत्कर्ष, महत्त्व, ३. प्रशंसा, ४. अतिक्रमण, ५. ऊँचा; (सं० रा०; भ०; जस, १, ५, ५; ण० १, १,७; क०१, ३, १०; की० २, २१३) ।
अई—अहो (सम्बोधन के अर्थ में) (क० १, ३, १०) ।
अइअ—वि० (सं० अतीत)–गत, बीता हुआ; (म० २, ३७, ११) ।
अइअड्ड— वि० (सं० अति विकट)– बहुत भयंकर; (जस० २, ६, १२) ।
अइआर— पुं० (सं० अतिचार)– १. मर्यादा का उल्लंघन, २. अतिक्रमण; (भ०) ।
अइउच्चिय—वि० (सं० अति+उच्च+क>प्रा० अइ+उच्चअ)– अति उच्च,

बहुत ऊँचा या लम्बा; (क० ७, ७, ११)।

अइउज्जु—वि० (सं०अति+ऋजु>प्रा० अइ+उज्जु)- अत्यन्त निष्कपट, सीधा या सरल; क० १०, १३, ४)।

अइकडुय—वि० (अतिकटुक>प्रा० अइ-कडुअ)- बहुत कडुआ; (ण० ६, २०, ८)।

अइक्कम—सक० सं० अति+क्रम्>प्रा० अइक्कम) उल्लंघन करना। अइक्क-मंत—व० कृ० (सं० अति + क्रम् + शतृ (जंबु ८, ८, ८)।

अइकमिय— वि० (सं० अतिक्रान्त)- १. आगे बढ़ा हुआ, २. बीता हुआ, गया हुआ; (प० च० ६, ६, ५)। अइक्कमिअ वि०—अतिक्रान्य (जस०)।

अइकम्म—पुं० (सं० अतिक्रम > प्रा० अइकम्म)—उल्लंघन; (व० ५, २, ८)।

अइकिण्ह— वि० (सं० अति+कृष्ण) बिलकुल काली; (जंबू० ४, १३, १४)।

अइकुडिली—वि० (सं० अति+कुटिल+क> प्रा० अइ+कुडिल+अ)- बहुत कुटिल, अत्यंत टेढ़ी; "अइकुडिली भउहा-वलि"—अतिकुटिल भौंहों की आवलि, (क० १, १६, १२)।

अइकुर— वि० (सं० अतिक्रूर)—अत्यन्त निर्दयी; (जस० १, ८, ६)।

अइगयं—वि० (दे०)—१. जिसने प्रवेश किया हो वह; (दे० ना० मा० १,५७)। २. न०—मार्ग का पिछला भाग (दे०-ना० मा० १, ५७)।

अइचल—वि० (सं० अति+चञ्चल)- अति अस्थिर या चंचल; (प्रा० पैं० २, १०३)।

अइजुज्झइ—अक० (सं० अति+युध्यति >प्रा० अइ+जुज्झइ)- बहुत लड़ाई करना, जूझना; "संगामरंगि तुम्हें हिं सहुँ अइजुज्झइ", (क० ३, ११, १०)।

अइझीण— वि० (सं० अति+क्षीण)- प्रा० अइ+झीण)- अत्यंत दुर्बल; (क० २, ७, ६)।

अइट्ठ—वि० (सं० अदृष्ट)- जो देखा न गया हो; (म०; जंबू १, ५, १८)।

अइडरिअ—वि० (सं० अति+दीर्ण> प्रा० अइ+दरिअ)- बहुत डरा हुआ; (क० ७, ११, २)।

अइण—न० (दे०)- गिरि-तट, तराई, पहाड़ का नीचे का भाग (दे० १, १०)।

अइणिम्मल— वि० (सं० अति + निर्मल>प्रा० अइ+णिम्मल)- अत्यन्त विशुद्ध; (क० ४, ७, ५)।

अइणिय— वि० (दे०)- आनीत, लाया हुआ; (दे० १, २४)।

अइणियड— वि० (सं० अति+निकट> प्रा० अइ+णियड)—अति निकट का; (क० ४, ४, २)।

अइणिरुत्त— वि० (सं० अति + निश्चित)—पूर्ण रूप से, अत्यन्त निश्चित, (क० ५, १४, ५; दे० ना० मा० ४, ३०)।

अइतुरिय— वि० (सं० अतित्वरित> प्रा० अइ+ तुरिअ)- अतिशीघ्रगामी; (ण० ५, ५, १२)। अइतुरिअ; (क० ५, १०, २)।

अइतोस— पुं० (सं० अति+तोष> प्रा० अइ+तोष)—अति संतोष, अति

प्रसन्नता; (क० ५, १३, ६)।

अइत्थि— पुं० (सं० अगस्ति>प्रा० अगत्थिय, अगत्थि;–अगस्त्य नामक एक तारा; (सं० रा०)।

अइदिहि—स्त्री० (सं० अति+धृति> प्रा० अइ+दिहि)–अति धीरज; (क०, ४, ७, २)।

अइदीह— वि० (सं० अतिदीर्घ>प्रा० अइ+दीह)– बहुत लम्बा; (जस० ४, १०, ११)।

अइदुम्मण—वि० (सं० अति+दुर्मनस्> प्रा० अइ+दुम्मण)– अति उदास, अति उद्विग्न-चित्त; (क० ५, २, ६; जस०)।

अइपउरु— वि० (सं० अति+प्रचुर> प्रा० अइ+पउर)–बहुत अधिक, "अइ-पउरु पवड्ढिउ णेहु तासु"; (क० २, ६, १)।

अइपयंड— वि० (सं० अति+प्रचण्ड प्रा० अइ+पयंड)–बहुत प्रखर; (क० २, ८, २)।

अइपसत्थु— वि० (सं० अतिप्रशस्त> प्रा० अइ+पसत्थ)– अति प्रशंसनीय; (ण० ३, ४, ७)।

अइपिय—वि० (सं० अति+प्रिय>प्रा० अइ+पिअ)–बहुत प्रिय; (क० ४, १२, ६)।

अइभत्ती—स्त्री० (सं० अति+भक्ति> प्रा० अइ+भत्ति)– अति भक्ति, अति आदर; (क० ५, ७, ४)।

अइभल्ल— वि० (सं० अतिभद्र>प्रा० अइ+भल्ल)–बहुत भला; (ण० ५, १२, ७)।

अइभिडंति—क्रि० (सं० अति+भटति> प्रा० अइ+भिड)– बहुत लड़ना; (क० ८, १८, ६)।

अइभिण्ण—वि० (सं० अति+भिन्न> प्रा० अइ+भिण्ण)–अत्यंत भिन्न, (क० ६, १०, ५)।

अइमणहर—वि० (सं० अति+मनोहर> प्रा० अइ+ मणोहर, मणहर)– बहुत सुन्दर; (क० ३, ३, ३)।

अइमत्तउ—वि० (सं० अतिमत्त> प्रा० अइमत्त)–बहुत मतवाला; (जंबू ३-१२)।

अइमत्तहं— वि० अत्यंत मतवाले (हे० ४३८, २)।

अइमहुर— वि० (सं० अति+मधुर> प्रा० अइ+महुर)–अति मीठा, "अइमहु-वयणेण"—अति मधुर वचन द्वारा, (क० ५, ११, ८)।

अइमुत्तउ—वि० (सं० अति+मुक्तकः)– अतिमुक्तक का फूल, "वियसियकुसुम जाउ अइमुत्तउ"; (जंबू० ३, १२, १२)।

अइमुत्तय— पुं० (सं० अतिमुक्तक)– अतिमुक्तक नाम की श्मशान की भूमि; (व० ६, २१, १६)।

अइयार— पुं० (सं० अतिचार>प्र० अइयार)– उल्लंघन, अतिक्रमण; (ण० ६, २०, ६)।

अइर—अव्य० (सं० अचिर)– जल्दी, शीघ्र; (व० १, २, ११)।

अइसाइ—वि० (सं० अतिशायिन्>प्रा० अइसाइ)– दूसरे को मात करने वाला; (जंबू० १०, १, ६)।

अइरजुवइ— स्त्री० (दे०)– दुलहिन; (दे० ना० मा० १, ४८)।

अइरत्तए— वि० (सं० अतिरक्त>प्रा०

अइरत्त)–अतिअनुरक्त;)हे० ४३८/२) ।

अइरमण—वि० (सं० अति+रमणीय> प्रा० अइ+रमणीअ)– अति मनोरम, अतिरम्य, "अइरमणभूमि देक्खंतरएण"—रमणीक भूमि देखते हुए; (क० ५, ५, ४) ।

अइरवण्ण—वि० (सं० अतिरम्य>प्रा० अइ+रम्म, रवण्ण, रवन्न)–बहुत सुन्दर; (ण० १, ७, ८) ।

अइरहसें— क्रि० वि० शीघ्रता में (rashly, in haste) (महा०) ।

अइरावत—पुं० (सं० ऐरावत > प्रा० अइरावय)–इन्द्र का हाथी; (क० ३,१६, ४) । अइरावय— पुं०, इन्द्र का हाथी; (भ०) ।

अइराहा— स्त्री० (सं० अचिराभा)–विजली, चपला; (दे० ना० मा० १, ३४ टि०) ।

अइरिप—पुं० (दे०)–वातचीत, कहानी; (दे० ना० मा० १, २६) ।

अइरि— पुं० (सं० आचार्य >प्रा० आचारिअ, आयरिय)–पाशुपत आचार्य; (दो० को०) । टि०—यहाँ अर्थ-संकोच द्रष्टव्य है ।

अइरुद— वि० अतिरुद्र > प्रा० रोद्द, रुद्द)–विपुल, विशाल; तुल० म० रुंद= विस्तृत; (ण० १, १, ७) ।

अइवहल—वि० (सं० अति+वहल> प्रा० अइवहल)– अत्यधिक, तेज, "ता मिलिय णहंगणे अइवहल चउदिसिहिँ भमेविणु णिम्मलिय"—वह दीप्ति इतनी निर्मल और तेज थी कि चारों दिशाओं में घूमकर आकाश में जा मिली; (क० ४, ८, ८) ।

अवइविउल—वि०(सं० अति+विपुल> प्रा० अइ + विउल)– अति विशाल, (जस०) ।

अइविरिय— वि० (सं० अतिवीर्य)– १. महा-पराक्रमी, २. पुं० इक्ष्वाकु वंश का एक राजा; (प० च० ५, ५) । ३. नन्दावर्त का एक राजा; (प० च० ३७, ३) ।

अइविहाइ— क्रि० (सं० अति+विभाति प्रा० अइ+शौ० प्रा० विहादि, विहा= शोभना, चमकना)– दिखायी देना, "दूराउ वहंती अइविहाइ"— दूर से बहती हुई ऐसी दिखाई दी; (क० ३, १२, ६) ।

अइसंसअ— पुं० (सं० अति+संशय> प्रा० अइ+संसय)–अति संदेह; (क० ५, १८, ५) ।

अइस—वि० (सं० ईदृश)– ऐसा, इस तरह का; (की० २, ५२) । अइसी (रा० ५), अइसउ (रा०३२) ।—नओ, ऐसा भी (की० २, १५०) । अइसो (रा० २७; हे० ४, ४०३) ।

अइसअ—वि० (सं० अतिशयिन्>प्रा० अइसइ)–अतिशय वाला, विशिष्ट, "तहो णंदणु अइसयगुणमहंतु"—उस राजा का पुत्र अतिशय गुणशाली, (क० ६, १,६) । पुं० (सं० अतिशय > प्रा० अइसय) १. श्रेष्ठता, २. प्रमुखता (भ०) ।

अइसच्छयइ— वि० (सं० अतिशय+ छायावत्>प्रा० अइसय+छायइत्तय)– अतिशय छायायुक्त; (सं० रा०) ।

अइसणिद्ध—वि० (सं० अति+स्निग्ध> प्रा० अइ+सिणिद्ध, सणिद्ध)–अति स्नेह-

युक्त; (क० १०, १३, १०)।

अइसमइणा—वि० (सं० अतिशय+मनस्विन्)–अतिशय बुद्धि वाले; (महा ६६, १६, ६)।

अइसय—क्रि० (सं० अति+शी)– मात करना, (प० च० ९०, १५)।

अइसयवंत—वि० (सं० अतिशयवत्)– अतिशयों से युक्त, अतिशयवाला; (ण० ९, १३, ६)। अइसयवन्त—अतिशयवत् (भ०; जस०)।

अइसुंदर—वि० (सं० अति+सुन्दर> प्रा० अइ + सुंदर)– बहुत सुंदर; (जस०)।

अइसुहुम—वि० (सं०अति+सूक्ष्म>प्रा० अइ+सुहुम)–अत्यन्त छोटा, बारीक; (क० १०, १०, ७)।

अइसेअो— वि० (सं० अतिश्रेयस्)– अपेक्षाकृत अधिक अच्छा; (की० २, २१३)।

अइहव— पुं० (दे०)– वाद्य-विशेष; (भ०)।

अइहार— स्त्री० (सं० अति+हार)– अत्यंत हार या पराजय "अइहारियं मयणराएण"—मदनराज की अत्यंत हार हो गई; (प० २, ७५, १०)।

अइहारा—स्त्री० (दे०)–विद्युत, चपला; (दे० ना० मा० १, ३४)।

अउखध— न० (सं० औषध > प्रा० ओसह)– दवाई, भैषज; तुल० गु० ओखद; (प्रा० गु० ४०, ४)।

अउज्झ—पुं० (सं० अयोध्या)– नगर-विशेष; (प० च० २१,१,२)। —(अउज्झ) अयोध्या नगर; (प० च० २१, ४, ३)।

अउण्ण—वि० (सं० अपुण्य>प्रा० अ+पुण्य, पुण)–पुण्य रहित; (प० च० २८, २११)।

अउर—वि० (सं० अपर)–अन्य, दूसरा; अउरु; (रा० २८)।

अउव्व—वि० (सं० अपूर्व>प्रा० अपुव्व, अउव्व)–अनोखा, असाधारण, अद्वितीय; (ण० १, १५, १० जस०; भ०; सं० रा०)।

अऊर—वि० (सं० अपूर्ण > प्रा० अपुण्ण)– जो पूरा या भरा न हो, अधूरा; (भ०)।

अओका— वि०, इसका; (की० २, १९३)।

अकंटअ— वि० (सं० अ+कण्टक)– निष्कंटक, निर्विघ्न; (प्रा० पैं० २,२११)।

अकंड—वि०(सं० अकाण्ड)–आकस्मिक; "ति सो अकंडमच्चु गलए, वद्धउ चामीयरसंखलए,— उसने उस शीघ्र अकाण्ड मृत्यु से मरने वाले कुत्ते को गले में सोने की सांकल बांध कर रखा (जस० २, ३२, ५)।

अकंडतलिम— वि० (दे०)– १. स्नेह-रहित, २. जिसने शादी न की हो वह; (दे० ना० मा० १, ६०)।

अक्ख—पुं० (सं० अक्ष>प्रा० अक्ख)– अक्षजीव, द्वीन्द्रियभेद; (व० १०,८,१)।

अक्खर— पुं० न० (सं० अक्षर>प्रा० अक्खर) अक्षर, वर्ण; (प्रा० पैं० १, १२)।

अकज्ज— वि० (सं० अकृत्य>प्रा० अकज्ज)– अकार्य, करने को अयोग्य;

(भ०; जस० १, ८, ६) ।
अकत्तिए— पुं० (सं० अ+कार्तिकः)–कार्तिक न होने पर; (जंबू० ४,८,१२) ।
अकम्म—न० (सं० अ+कर्मन्)–कर्म का अभाव; (जंबू ६, १५, ४) ।
अकयत्थ— वि० (सं० अ+कृतार्थ)–जो आपना कार्य हो जाने के कारण प्रसन्न और संतुष्ट न हो; (सं० रा०) ।
अकयवंग— वि० (सं० अविकृताङ्ग)–जिसके अंग विकृत न हो; (जंबू० ७, १, १३) ।
अकिट्टिय—वि० (सं० अकृत्रिम)–स्वाभाविक; (जस० ४, २८, ३०) ।
अकित्ति— स्त्री० (सं० अकीर्ति)–अपयश; (सि० १, ४) ।
अकित्तिम— वि० (सं० अकृत्रिम)–जो कृत्रिम या बनावटी न हो, स्वाभाविक; (व० ४, १३, ६) ।
अकुलीण— वि० (सं० अकुलीन)–जो कुलीन न हो, अप्रतिष्ठित, जो उत्तम कुल में उत्पन्न न हो; (रि०, सातवाँ सर्ग) ।
अकुसल—वि० (सं० अकुशल)–अनिपुण; (जंबू० ११, ६, ३) ।
अकूवार— पुं० (सं० अकृत+वारि)–समुद्र; (व० ८, १०, ४) ।
अकोह—पुं० (सं० अक्रोध)– क्रोध न करना; (व० ८, १०, १०) ।
अक्कंद— पुं० (सं० आक्रम > प्रा० अक्कम)–आक्रमण, चढ़ाई; (सण०) ।
अक्क[1]—स्त्री० (सं० अक्का=माता)–भगिनी, अम्बा, तुल० म० अक्का (बहन), (क० ८, ५, ५; दे० ना० मा० १, ६) ।
अक्क[2]—पुं० (सं० अर्क>प्रा० अक्क)–सूर्य; "चंदअक्कसुक्कभाहरणएहिं"—(ण० १, १६, ५) ।
अक्कमइ—सक० (सं० आक्रमति, आ+क्रम् प्रा० अक्कम)– आक्रमण करना (रि० सातवाँ सर्ग) ।
(अ)क्करिस— पुं० (सं० उत्कर्ष>प्रा० उक्कस्स)–उत्कृष्टता; (सं० रा०) ।
अक्कसाला— स्त्री० (दे०)–१. बलात्कार, जबरदस्ती करना, २. उन्मत सी स्त्री०; (दे० ना० मा० १, ५८) ।
अक्कुट्ठ— वि० (दे०)– अधिष्ठित, स्थापित; (दे० ना० मा० १, ११) ।
अक्कोड— पुं० (दे०)–बकरा; (दे० ना० मा० १, १२) ।
अक्ख[1]—(सं० आ+ख्या>प्रा० अक्खा, अक्ख)– कहना, बोलना; (ण० ३, ८, ७) । अक्खंदहुं— क्रि०, बोलना (रा० १५) ।— इ-सक० (सं० आख्याति) (भ०; प० च० १, १४, ७) । अक्खा—सक० (जस० २, २५, १०) । अक्खिउ–भू० का० (प० च० १४, १२, १) । अक्खियउ—भू० का० (सि० २, २१) । —मि० (क० ५, १६, ८) । —हि, (परम० २, १; क० ४, १२, ५) । —वखेवि—पू० का० क्रि० (क०३, २०, ६) । —णह, क्रि० वर्णन करना (हे० ३५०, १) । —हु, क्रि० बताइये (सि० १, ४७, १५) । तुल० गु० आखवु, पं० आख ।
अक्ख[2]—पुं० (सं० अक्ष>प्रा०अक्ख)–१. अक्ष, रावण का पुत्र, २. अक्ष-बहेड़ा वृक्ष; (जंबू ५, ८, ३४) ।
अक्खजूअ—पुं० (सं० अक्षद्यूत)–जुआ, चौसर का खेल; (ण० ३, १३, ६) ।

अक्खणवेल— न० (दे०)- १. मैथुन, संभोग, २. संध्याकाल; (दे० ना० मा० १, ५६)।

अक्खदाण—पुं० (सं० अक्षयदान>प्रा० अक्खय+दाण)–अभयदान, "अक्खदाणु अक्खयहं रइज्जइ", पीड़ितों को अभयदान दिया गया, (म० २, ७८, १३)।

अक्खय[1]— वि० (सं० अक्षय > प्रा० अक्खय)- क्षय रहित, अविनाशी (प०-च० २/१७/८)—णिहि—स्त्री० (सं० अक्षय निधि)–क्षय रहित निधि; (जंबू० ३, १४, १६)। —तइय, स्त्री० (सं० अक्षय+तृतीया>प्रा० अक्खय+तइया) वैशाख शुक्ल तृतीया (जंबू ४, १४, २१)।

अक्खय[2]— पुं० (सं० अक्षत > प्रा० अक्खय)–बिना टूटे चावल, अखण्ड चावल "क वि अक्खयधूव भरेवि थालु"—कोई अक्षत व धूप से थाल भरकर, (क० ६, २, ६; भ०)।

अक्खर— पुं० न० (सं० अक्षर > प्रा० अक्खर)- अक्षर (भ०)।

अक्खरु—१. अक्षर (ओऽम); "सुरसुक्खरु अक्खरु झाइयउ", देवों को सुखकारी अक्षर (ओ-म) का ध्यान किया। (ण० ६, २, ८)। २. अक्षर, वर्ण; तुल० राज० आखर (क० १, ७, ७; कीं०, १, १६; भ०; सं० रा०; जस० १, २४, ३)।—डंबर— (सं० अक्षराडम्बर) शब्दों का आडम्बर; (रि०, प्रथम सर्ग)।

अक्खरवास—पुं० (सं० अक्षरव्यास)– अक्षरविस्तार; (प० च० १, २, २)।

अक्खलिउ—वि० (सं० अस्खलित)–जो गिरा न हो; अपततितु>(विला०)।

अक्खलिय—वि० (दे०)—जिसका प्रतिशब्द हुआ हो वह प्रतिध्वनित; (दे० ना० मा० १, २७)।

अक्खवाय—पुं० (सं० अक्षपाद)–न्याय-दर्शन के प्रणेता गौतम; (ण० ६, ७, ३)।

अक्खसुत्त— पुं० (सं० अक्षसूत्र)–रुद्राक्ष माला के दाने; (प० च० ६/१/३)।

अक्खाडय—पुं० (सं० अक्षवाटक>प्रा० अक्खाडग, अक्खाडय)- व्यायाम-स्थल, अखाड़ा। तुल० गु० अखाडो। (प० च० ४/११/२)।

अक्खाण— न० (सं० आख्यान>प्रा० अक्खाण)–कथानक; (भ०)।— य, न० (सं० आख्यानक> प्रा० अक्खाणय)– कहानी, वार्ता (भ०; प० च० १, १४, ७)।

अक्खि— स्त्री० (सं० अक्षि > प्रा० अक्खि)–नेत्र, आँख; तुल० मगही आँखि; (सं० रा०)।

अक्खिअ—वि० (सं० आख्यात>प्रा० अक्खिअ)–प्रतिपादित, कथित; (क० १, ८, ७)। अक्खिय (म० १, १७, १०)।

अक्खुडिअ—वि० (सं० अखण्डित>प्रा० अक्खुडिअ)–संपूर्ण अखण्ड, त्रुटि-रहित; गु० अखूट; (संधि० ११, ६, ११)।

अक्खुहिय—वि० (सं० अक्षुभित>प्रा० अक्खुहिय)- क्षोभ-रहित (जंबू ४,२१, १५)।

अक्खोह—वि० (सं० अक्षोभ्य)– क्षोभ-रहित, स्थिर; "अक्खोह रणभर"— अक्षोभ्य युद्ध (रि०, प्रथम सर्ग)।

अक्खोहणि—स्त्री० (सं० अक्षौहिणी> प्रा० अक्खोहिणी)–एक बड़ी सेना जिसमें २१८७० हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पैदल होते हैं,

(प०च०२, ५, ६)। अखोहणी (प० च० १२, ८, १)।

अक्खोहणिया— वि० (सं० अक्षोभणिका)– जो क्षुब्ध न हो; (ण० ६, ६, १२)।

अखंडिअ— वि० (सं० अखण्डित)–जो टूटा हुआ न हो; (जस० ४, २७, २८)।

अखअ— वि० (सं० अक्षय > प्रा० अक्खय)–जिसका कभी क्षय-नाश न हो; (म० १, ३१, ६)। अखइ, वि० अक्षय (पाहु० १६६)।

अखत्त—न० (सं० अक्षात्र>प्रा० अखत्त क्षत्रिय विधि को अतिक्रमण करने का कार्य, क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध; (प० च० १५/३/३)।

अखन्ति—स्त्री० (सं० अक्षान्ति)–असहिष्णुता, स्पर्धा, ईर्ष्या; (प० च० ६/३/२)।

अखलिय—वि० (सं० अस्खलित>प्रा० अक्खलिय, अखलिअ)–१. अवाधित, २. अपतित; (संधि० ६, ६, १)।

अखिल— वि० (सं० प्रा० अखिल)–सकल, सर्व; (जंबू० १०, १, १०)।

अखुहिय— वि० (सं० अक्षुभित)–क्षोभरहित, (जंबू ४, २१, १६)।

अखोहु— वि० (सं० अक्षोभ)–क्षोभ रहित; (सि० १, ७)।

अक्खउरि—वि०, अखौरी, जिसमें कोई खोर या दोष न हो; (की० ३, ११६)।

अक्खउरि— स्त्री० एक नामांत पदवी; (की० ३, ११६)।

अक्खणिहाण— न० (सं० अक्षय + निधान)–अक्षय धन या खजाना; (जंबू० ३, ८, ६)।

अगंडिगेह— वि० (दे०)–यौवनोन्मत्त; (दे० ना० मा०, १, ४०)।

अगज्जर—न० (सं० अ+गर्जि)– गर्जना न होना, गर्जन रहित; "अगज्जिरं निरंतरं न विज्जुपुंजयं", (जंबू० २, ३, ३)।

अगड—पुं० (सं० अवट, प्रा० अगड)–कूप; तुल० गु० कूवो; (संधि० १२, ३, १६)।

अगणिय—वि० (सं० अगणित>प्रा० अगिणय)–न गिना हुआ; जंबू० ५, ७, २६)।

अगणेय—वि० (सं० अगणित)–अनगिनत; (की० १, ८५)।

अगत्थि— पुं० (सं० अगस्ति >प्रा० अगत्थि)– १. इस नाम का एक ऋषि, २. वृक्ष-विशेष; (दे० ना० मा० ६, १३३)।

अगम—वि० (सं० अगम्य)– जहाँ कोई न पहुँच सके; (प्रा० पैं० १, १८६)।

अगय—पुं० (दे०)– दानव (दे० ना०-मा० १, ६)।

अगरु—पुं० (सं० प्रा० अगरु)– अगरुचंदन; (व० ४, २२, १२)।

अगलिय— वि० (सं० अगलित, गल् =गिर पड़ना)–पृथक् न किया हुआ, न गिराया हुआ; (जंबू० ६, ३, १०)।

अगव्व—वि० (सं० अगर्व>प्रा० अगव्व)–गर्व या अभिमान से रहित, निरभिमान; (जस० ४, २४, १६)।

अगहार—पुं० (सं० अग्रहार)–राजा की ओर से ब्राह्मण को योगक्षेम के लिए किया हुआ भूमि का दान; (जस०

२, २६, १५) ।

अगहिय—वि० (सं० अ+गृहीत >प्रा० अ+गहिअ)-१. अप्राप्त, २. जो न लिया हो, जो पकड़ा हुआ न हो; (ण० ३, १४, ४) ।

अगाम्र—वि० (सं० अगम्य>प्रा० अग-म्य)- जाने को अयोग्य; (प० च० २, ३, १२) ।

अगाव—वि० (सं० अगर्व>प्रा० अग-व्व)- निरभिमान; (जस० ४, २०, १७) ।

अगाह— वि० (सं० अगाध)- गहरा, गंभीर; (जंवू १०, १७, ८) ।

अगिवान—पुं० (सं० अग्निवाण>प्रा० अग्गिवाण)-अग्निबाण; (सि० २, १३) ।

अगुण— वि० (सं० अ+गुण>प्रा० अउण)-गुण रहित, निर्गुण; (जंवू० ४, १, १) ।

अगुरु— पुं० न० (सं० प्रा० अगुरु)- सुगंधित द्रव्य (प्रा० पैं० २, १७७) ।

अग्ग— न० (सं० अग्र—प्रा० अग्ग)- १. आगे का भाग, ऊपर का भाग, पूर्व भाग; भ० ण० १,७,५; जस० १,६,७)। वि० अगला (प्रा० पैं० १, १३३) । —अ, अव्य० (सं० अग्रत:)-आगे (जंवू० १०, १६, १२) । —इ, अव्य० आगे (क० १, १४, ४) ।—इं, अव्य० (सि० १, ६; २, १४) ।—एँ, पुं०, आगे का भाग (प० च० २, ६, ६) ।—रा, वि० अगले (प्रा० पैं० २, १६, ६) ।

अग्गयखंध—पुं० (दे०)-रण-भूमि का आगे का भाग (दे० ना० मा० १, २७)।

अग्गल—अव्य०(सं० अग्र>प्रा० अग्ग)- १. आगे, "महु अग्गलउ ण कोइ"—मेरे आगे कुछ भी नहीं है, (म० १, ७, ५) । २. अगला, अधिक (प्रा० पैं० १, ५१) ।

अग्गलि—अव्य० (सं० अग्रे)-समीप में; तुल० गु० आगळ; (संधि० १२, ४, २)।

अग्गलु— वि० (दे०)-प्रा० अग्गल)- अधिक; (हे० ३४१, २) ।

अग्गवेअ— पुं० (दे०)-नदी की बाढ़, नदी की तेज धारा; (दे० ना० मा० १, २६) ।

अग्गहण— न० (सं० अग्रहण> प्रा० अगहण)- अनादर, अवज्ञा; (दे० ना०-मा० १, १७) ।

अग्गहारु—पुं० (सं० अग्रहार)- अग्रहार नामक ग्राम; (जंवू० २, ४, ८) ।

अग्गि—पुं० स्त्री० (सं० अग्नि> प्रा० अग्गि)- आग, वह्नि; तुल० गु० आग; (संधि० १३, ८, १; भ०; की० ३, १५) जस० ३, ३, ६) । अग्गिं (हे० ३४३, १) ।—ट्ठउ—वि० (सं० अग्निष्ठ> प्रा०अग्गिट्ठ) आग में स्थित; (हे०४२६, १) । —मित्त पुं० (सं० अग्निमित्र)- नाम-विशेष; (भ०) । अग्गी—स्त्री०- अग्नि (प्रा० पैं० १, ५५) ।

अग्गिअ—पुं० (दे०)- १. एक प्रकार क्षुद्र कीट, २. वि०, मन्द;(दे० ना० मा० ५१, ३) ।

अग्गिजाला—स्त्री० (सं० अग्निज्वाला >प्रा० अग्गि + जाला)- अग्नि की शिखा; (जस० ३, ३, ६) ।

अग्गिम—वि० (सं० अग्रिम)- १. प्रथम (क्रम श्रेणि आदि में); प्रमुख, मुख्य, २. वड़ा, ज्येष्ठ (प० च० १३/१२/

४) । ३. अगला, आगे का (कौ० ३, २) ।—य (प० च० ३४, १३, ३) । तुल० गु० अगमाणु ।

अग्गिले[१] प० (सं० अग्रिले)–पहले ।

अग्गिवंतु—वि० (सं० अग्नि+मतुप्)–अग्नि-युक्त; (जंबू० २, १, ६) ।

अग्गीहर—पुं० (सं० अग्नि गृह>प्रा० अग्गिहर)–अग्निगृह; (सं० रा०) ।

अग्गें— क्रि० वि० (सं० अग्र>प्रा० अग्ग)–आगे, "जो भुवमंडल-मंडल अग्गें"—भूमण्डल के मण्डल में जो सबसे आगे है, (सि० १, ४, १) ।

अग्गेय— वि० (सं० आग्नेय > प्रा० अग्गेय)–१. आग से संबंध रखने वाला, प्रचंड, २. अग्नि को अर्पित; (प० च० ७/७/६) ।

अग्गेसर— वि० (सं० अग्रेसर>प्रा० अग्गेसर)–अगुआ; (जंबू १०, ५, १०) ।

अग्घंजलि—स्त्री० (सं० अर्घाञ्जलि)–अर्घांजलि, "सुरसमरसएहिँ अणिट्ठियउ, अग्घंजलि करिवि समुट्ठियउ'—जो असुर देवों के साथ सैकड़ों संग्राम करके भी मरा नहीं था वह नागकुमार के सम्मुख अर्घांजलि करके उठ खड़ा हुआ; (ण० ५, १२, १३) ।

अग्घ—वि० (सं० अर्घ्य>प्रा० अग्घ)–पूजा में दिया जाने वाला जलादि द्रव्य; (प्रा० पैं० २, २०१) ।

अग्घइ— सक० मिलना, "संपइ कड्ढउँ वेस 'जिवँ छुडु अग्घइ ववसाउ",—'यदि व्यवसाय मिले तो संपत्ति को, वेश्या के समान निकाल लूँगा, (हे० ३८५, १) ।

अग्घवत्त— न० (सं० अर्घ्यपात्र>प्रा० अग्घवत्त)–पूजा का पात्र; (ण० ६, १, ६; जस० ४, १७, १८) ।

अग्घाइय— वि० १. (सं० आघ्रात> प्रा० अग्घाइय)– सूँघा हुआ (भ०) । २. (दे०)–विराजित—देदीप्यमान, प्रदर्शित; "पगुणगुणहि अग्घाइउ", (भ० १५, १२, ३)

अग्घाण— वि० (दे०)–तृप्त, संतुष्ट । तुल०राज० अधाणो, म० अघाणा । (दे० ना० मा० १, १८) ।

अघडिअ— वि० (सं० अघटित)–जो घटित न हुआ हो; (जंबू० ८, ६, ६) ।

अङ्कय—पुं० (सं० अङ्कद)–पुष्प-विशेष; (प० च० ४०, १६, ६) ।

अङ्गार— पुं० (सं० अङ्गार > प्रा० अंगार)–अंगारा, दहकता हुआ कोयला या काष्ठखंड; (प० च० १३/७/१०) ।

अङ्गुलिउ—स्त्री० (सं० अंङ्गुलि>प्रा० अंगुलि)–उंगली; (हे० ३३१, १) ।

अचप्पिअ— वि० (सं० आक्रम का धात्वादेश चप्प=आक्रमण करना)–अनाक्रान्त; (जंबू ५, ३, २) ।

अचयंतु— व० कृ० (सं० अ+त्यज्+शतृ)–त्याग करके; (जंबू० ६, ६, ४) ।

अचल—न० (दे०)–१. घर, २. घर का पिछला भाग, ३. वि०, कहा हुआ, ४. निष्ठुर, ५. नीरस; (दे० ना० मा० १, ५३) ।

अचलु—वि० (सं० प्रा० अचल)– १. अटल, स्थिर, निश्चल; (प० च० १२/८/४)–जस० २, २१, १) । २. पहाड़ी राजा; (प्रा० पैं० १, ८७) ।

अचलत्तण—पुं० (सं० अचलत्व)–निश्चलता, स्थिरता, (जस० ३, ३८, ६)।

अंचित— वि० (सं० अचिन्त्य>प्रा० अंचित)–जो सोचा भी न जा सके, समझ से परे; (भ०)। अचिन्त— वि०–जो सोचा न जा सके; (प० च० १६, १, ५)।

अंचितिय—वि० (सं० अचिन्तित>प्रा० अचितिय)– सहसा, आकस्मिक; (सं० रा०)।

अचेयण— वि० (सं० अचेतन>प्रा० अचेयण)–चैतन्य-रहित, निर्जीव; (जस० २, १६, ७)।

अच्चंत— वि० (सं० अत्यंत > प्रा० अच्चंत)– अत्यधिक, अत्यन्त (ण० ४, ५, ८; विला०; जस०; प० च० १२, ६, ३)। अच्चन्तन्त—वि०–अत्यन्त-रक्त (प० च० २६, १८, ८)।

√अच्च—(सं० अर्च् > प्रा० अच्च)– पूजना, सत्कार करना; (जस० २, ७, १३)। —मि, सक०, पूजा करता हूं; (ण० ७, ६, १)।

अच्चग्गल—वि० (सं० अति+अग्रल)– बहुत आगे; (जंबू० ८, १०, १६)।

अच्चण— न० (सं० अर्चन > प्रा० अच्चण–पूजा, सम्मान; जस० १, १६, १२; (भ०; ण० १, ६, ५)। अच्चणिय—अर्चना (क० ३२, ८, २)।

अच्चब्भुअ— वि० (सं० अत्यद्भुत> प्रा० अच्चब्भुय)– बड़ा आश्चर्यजनक; तुल० गु० अचंभो, अचंबो; (प० च० २४, २, ६)। अच्चब्भुय (प्रा० गु० १२, २, १३)।

अच्चरिउ— न० (सं० आश्चर्य>प्रा० अच्चर, अच्चरिअ, अच्चरीअ)–आश्चर्य, विस्मय; (व० २, २, ६)। अच्चरिय; (भ०; सं० रा०)।

अच्चहिय—वि० (सं० अत्याहित)–बड़ा भय, २. असत्य ३. अत्यधिक; (सं० रा०)।

अच्चुब्भड— वि० (सं० अत्युद्भट)– अति प्रबल (भ०)।

अच्चुयनाह—पुं० (सं० अच्युत+नाथ >प्रा० अच्चुअ+णाह)– बारहवें देवलोक का इन्द्र; (भ०)।

अच्चुयसग्ग—पुं० (सं० अच्युत+स्वर्ग >प्रा० अच्चुअ+सग्ग)– बारहवाँ देवलोक; (भ०)।

अच्चुव—पुं० (सं० अच्युत)– बारहवाँ देवलोक, अच्युत स्वर्ग; (व० १०, २०, १३)।

अचोक्खअ— वि० अमार्जित, अशुचि, अमृष्ट; (जस० ३, ३६, १७)।

अच्छ¹—क्रि० (सं० आस्>प्रा० अच्छ, अच्छइ)–बैठना; (ण० १,८,१०)।—इ, अक० बैठना; "जा अच्छइ सुहेण जामायउ, ता तहिं एकु पुरिसु संपायउ", दामाद वहीं सुखपूर्वक बैठा हुआ था कि एक आदमी वहाँ आया, (सि० २, ६, १३; (क० १, ६, १)। अच्छंतहिं (जंबू० ३, १, ६)। अच्छिज्जइ—क्रि० व०–का० बैठना, 'नीड निवसिएहिं अच्छिज्जइ"; (जंबू० ६, १०, ४)।

अच्छ²—अक० (सं० अस्)– होना, है (सं० रा०)—इ (सि० १,११, भ०;रा० ३६)।—उ (रा० ६)। अच्छिउ—

रहना "पर अच्छिंउ पडिमहे रक्खवालु"—पर मैं तो इस प्रतिमा का रक्षपाल होकर रहा हूँ। तुल० गु० छे। (क० ४, १७, ५)। अच्छन्ते कृ०, रहते हुए (च०)।

अच्छ'—न० (दे०)–१. अत्यन्त, विशेष, २. शीघ्र; (दे० ना० मा० १, ४६)। वि० (सं० प्रा० अच्छ) स्वच्छ, निर्मल; तुल० अवधी आछी (उत्तम), ब्रज आछे (भले, उत्तम); (प्रा० पैं० २, १३४)।

अच्छइ(')— क्रि० (सं० ऋच्छति= १. कड़ा या सख्त होना,२. जाना, ३. क्षमता का न रहना) तुल० पु० राज० अछवउँ, सामान्य वर्तमान, उत्तम पुरुष एक व० छउँ, छूँ, मध्यम पु० एक व० अछइ; अन्य पु० एक व० अछइ, छइ; उत्तम पु० बहु० व० छूँ; मध्य पु० बहु० व० अछउ; अन्य पु० बहु० व० अछइ, छइ, छि।

अच्छति— अक०, ठहरना; (उ० व्य० प्र० १५-२८)।

अच्छन्तउ—वि० (सं० अच्छन्द> प्रा० अच्छंद)– निश्चेष्ट, पराधीन, "जिह धुअगाउ रस-लम्पडु अच्छन्तउ",—जिस प्रकार रस लम्पट यह भ्रमर निश्चेष्ट है, (प० च० ५, १४, ०)।

अच्छभल्ल— पुं० (सं० ऋक्षभल्ल)– भालुक (दे० ना० मा० १, ३७)।

अच्छर—स्त्री० (सं० अप्सरस्> प्रा० अच्छरसा, अच्छरा)–अप्सरा; (म० २, ७८, ७; भ०; जस० १, २५, १०; क० ६, ३, १०)। अच्छरा—स्त्री० अप्सरा (जस० ४, ३, १)।—हु, अप्सरा (ण० १, ६, ६)।

अच्छरिअ—न० (सं० आश्चर्य > प्रा० अच्छरिअ)– विस्मय, चमत्कार; (ण० ६, ७, ४; सुदं० १२, ६, ७; प० च० ३, ६, १)। अच्छरिय— न० आश्चर्य (भ०)।

अच्छरिय— स्त्री० (सं० अप्सरस्, अप्सरा> प्रा० अच्छरसा, अच्छरा)– इन्द्र की सभा में नाचने वाली देवाङ्गना, जो गन्धर्वों की स्त्रियाँ कही जाती हैं, (सि० २, ८, ८)।

अच्छायण— न० (सं० आच्छादन)– ढकना; (दे० ना० मा० ७, ४५)।

अच्छि— स्त्री० (सं० अक्षि > प्रा० अच्छि)–आँख; (सं० रा०; भ०; जस० १, ५, ५)।—उड पुं० (सं० अक्षि-पुट)–आँख का परदा, आँख के कोए पर झिल्ली; (जस० २, ५, ११)।

अच्छिअ— वि० आसीन, बैठा हुआ; (जस० ४, १७, २)।

अच्छिघरुल्ल, अच्छिहरुल्ल— वि० (दे०)– १. अप्रीतिकर, २. पुं० वेष, पोषाक; (दे० ना० मा० १, ४१)।

अच्छिन्न—वि० (सं० अच्छिन्न>प्रा० अच्छिण्ण, अच्छिन्न)–नहीं तोड़ा हुआ; (जंबू० ६, ६, ६)।

अच्छिवडणं—न० (सं० अक्षि+पतन)– आँखों का मूँदना; (दे० ना० मा० १/ ३६)।

अच्छिविअच्छि— स्त्री० (दे०)–आपस की खींचतान; (दे० ना० मा० १, ४१)।

अच्छेरअ— वि० (सं० आश्चर्यक)– विस्मय-जनक; (जंबू० ६, १०, १३)।

अच्छेरय (भ०)।

अच्छै—क्रि० (प्रा० अच्छै)– विद्यमान है; (की० ३, १२७)। अच्छिउ—स्त्री० स्थिति; (प० च० २६, ७, ७)।

अच्छोउण— न० (सं० आच्छोदन)– मृगया, शिकार; (दे० ना० मा० १, ३७)।

अच्छोडिउ—क्रि० भू० का० (सं० अव-छोटितः)– छोड़ दिया, "जं अच्छोडिउ अंहिमुहुँ पाडिउ"; (जंबू० ७, १०, १८)।

अच्छोडिय—वि० (दे०)–१. फटा हुआ; (प० च० ४, ८, ६)। २. आस्फोटित; (जस० २, ७, ४)। ३. आकृष्ट; (जस० ३, १०, ८)।

अछ— क्रि० (सं० आ+क्षि=रहना; क्षि निवासे)– > प्रा० अच्छ, अच्छइ (बैठना, रहना) है, "मेरहुँ जेट्ठ गरिट्ठ अछ मन्ति विअक्खना भाए"—बड़े और सम्मानित व्यक्ति मर्यादा में रहते हैं। मंत्री नीतिकुशलल ही अच्छा लगता है; (की० २, ४२)।

अछए—अक० (प्रा० अच्छ)– है, "तसु अछए मन्ति आनन्द खाण"—उसके पास आनन्देश्वर नाम का मंत्री है; तुल० प्राचीन गु० अच्छ; (की० ३, १२६)।

अछण— पुं० (सं० आसन)– बैठने का स्थान (रा० २२)।

अछम्म— वि० (सं० अछद्म)–कपट-रहित; (जस० १, १५, १२)।

अछेय¹—वि० (सं० अच्छेद्य)– जो छेदा न जा सके; (प० च० १५/१०/६)।

अछेय²— पुं० (सं० अक्षय)–व्यक्ति-विशेष का नाम; (ण० ६, १५, ८)।

अजंगम—वि० (सं० अजङ्गम)–अचेतन; (जंबू० २, १, ७)।

अजअ—पुं० (सं० प्रा० अजय)–षट्पद-छंद का एक भेद; (प्रा० पैं० १, १२१)।

अजगर—पुं० (सं० प्रा० अजगर, प्रा० अयगर)–मोटा साँप, (भ०)। अजयर—पुं०, (प० च० ६/७/३; जस० ४, १६, ६)।

अजर—वि० (सं० प्रा० अजर)–वृद्धा-वस्था-रहित; (जस० १, १७, ३)।

अजराउर— वि० (दे०)–उष्ण, गरम; (दे० ना० मा० १, ४५)।

अजरामर—सं० प्रा० अजरामर)–बुढ़ापा और मृत्यु से रहित; (जस० ३, १६, ६)। अजरामरु; (पाहु ३३)।

अजाति—स्त्री० नीच जाति; (की० २, १३)।

अजिमचित्त—वि० (सं० अजृम्भचित्त)– सरल चित्त वाला; (णि० ३, ४, ६)।

अजिण— न० (सं० अजिन > प्रा० अजिण। बाघ, सिंह या हाथी, हिरण आदि पशुओं विशेषकर काले हिरण की रोएँदार खाल, जिसके आसन बनते हैं अथवा जो पहनने के काम में आती है; (प० च० १८, ६, ७)।

अजिब्भ—वि० (सं० अजिह्व)–जिह्वा-रहित; जंबू० २, २०, ५)।

अजिय— पुं० (सं० अजित)– द्वितीय तीर्थंकर नाम; (जस० १, २, २)। वि० अपराजित; (व० ३, ५, ५)। पुं० अजि-तनाथ तीर्थंकर; (व० १, १, ३)।

अजीमाणि—वि० (सं० अजीर्णमाण)–

बिना पचा हुआ; (संधि० ४, २, ६)।
अजुअलवण्ण—पुं० (सं० अयुगलपर्ण)—सप्तच्छद, सप्तपर्ण वृक्ष; (दे० ना० मा० १, ४८)।
अजुत्त— वि० (सं० अयुक्त > प्रा० अजुत्त)—अयोग्य, अनुचित; (जस० ३, १८, ८)। अजुत्तु—वि० अयुक्त (व० ५, ३, ११)।
अजेएं— वि० (सं० अजय्य > प्रा० अजेअ)—जो जीता न जा सके; (व० २, २, ३)।
अजोग्ग— वि० (सं० अयोग्य>प्रा० अजोग)—जो लायक न हो, अयोग्य; (ण० ६, २१, ६)।
अज्ज—अव्य० (सं० अद्य>प्रा० अज्ज)—आज; (की० ३, १४; सं० रा०)। अज्जु—आज (क १, १४, ५)। वि०—अव्य० (सं० अद्य+अपि>प्रा० अज्ज+अवि)—१. अभी; "जहिँ णिविट्ठ तहिँ अज्जवि अच्छइ"; (भ०; सि० १, ४७, ३); २. आज भी; (क० ११, १८, ३)। —कल्लि, अव्य० आजकल; (प्रा० गु० २७, ३, ५)। अज्जु— (१) अव्य०, आज; तुल० म० आज, गु० आजे; (भ०)। (२) वि०, आर्य (जस० ३, १६, १३)। —णिज्ज—वि० अर्जनीय; (जस० ४, ६, ४)।
अज्ज— सक० (सं०√अर्ज्)—अर्जित करना; (प्रा० पैं० २, १०१)।
अज्ज—वि० (सं० आर्य>प्रा० अज्ज)—उत्तम, श्रेष्ठ; (व० १०, १६, ४)।
अज्जन— पुं० (सं० अर्जन > प्रा० अज्जण)— उपार्जन, कमाई (की० ४, ६२)। अज्जण—(की० १, ४८)।
अज्जमहि— स्त्री० (सं० आर्यमही)—आदरणीय महिला; (जस० ४,२०,१५)।
अज्जय—पुं० (दे०)— १. सुरस-नामक तृण, २. गुरेटक-नामक तृण; (दे० ना०-मा० १, ५४)।
अज्जव— न० (सं० आर्जव > प्रा० अज्जव)—सरलता, निष्कपटता; (जस० ४, १५, ७; क० ६, १३, ४)। —खंड—पुं० आर्जवखण्ड, देश-विशेष नाम; (भ०)। —भाव, पुं० (सं० आर्जव-भाव), सरलता का भाव (जंबू० ११, १४, ४)।
अज्जा— स्त्री० (सं० आर्या > प्रा० अज्जा)—गौरी, पार्वती; (भ०; दे० ना० मा० १, ५)।
अज्जिअ— वि० (सं० अर्जित>प्रा० अज्जिअ)—उपार्जित, पैदा किया हुआ; (जस० ४, २८, ६; भ०; क० २, ५, १०)। अज्जिय (जंबू० ३, ६, १८)। अज्जिवि—पू०का० क्रि० (सं० अर्जयित्व) उपार्जित कर;(क० २, १०, ६)। अज्जेव्वअ—कृ० अर्जितव्य (जस० ४, १५, ६)। टि०—सं० तव्य>अप० इए वउं, (शब्द के अंत में अ या उसका दीर्घ रूप), एवा।
अज्जिउ—अव्य० (सं० अद्यखलु)—आज ही; (प्रा० गु० १६, ४७)।
अज्जिय—स्त्री० (सं० आर्यिका>प्रा० अज्जिआ)—साध्वी, संन्यासिनी; "खुल्लय-अज्जिय-उत्तमसावहि, वहु-समाणु तिहु-विणउ करावहि"—क्षुल्लकों, आर्यिकाओं और श्रेष्ठ सावकों को सम्मान दें, उनकी तीन प्रकार से विनय करायें,

(भ०; सि० २, ३३, २) अज्जिआ—स्त्री० आर्यिका (जंबू० १०, २१, ५)। अज्जिया—स्त्री० आजी (जंबू० ३, १३, १४; जस० ३, १३, २)। अज्जियाई—स्त्री० जैन साध्वी; (सि० २, ३२)।

अज्जुन— पुं० (सं० अर्जुन > प्रा० अज्जुण)–१. तीसरा पांडव; (की० ४, २३६)। अज्बुण (की० ३, १४४)। २. अर्जुन वृक्ष (जंबू० ५, ८, ३१)।

अज्जेराग्र— अव्य० (सं० अद्यतन)–आधुनिक, आज का; (जंबू० ५, २, १०)।

अज्जेबण—न० (सं० अ+जेमन > प्रा० अजिमण)–अनशन; (म० २, ६६, ६)।

अज्जो— पुं० बुद्ध, बौद्ध या जैन भिक्षुक; (दे० ना० मा० १, ५)। टि०—'अज्जो' का मूल अर्थ स्वामी है। यहाँ अर्थ-संकोच द्रष्टव्य है।

अज्झ—पुं० (दे०)– यह (पुरुष); (दे० ना० मा० १, ५०)।

अज्झत्थ— वि० (दे०)–आगत, आया हुआ; (दे० ना० मा० १, १०)।

अज्झसिय— वि० (दे०)– देखा हुआ; (दे० ना० मा० १, ३०)।

अज्झस्स, अज्झस्सिय— वि०(दे०) जिस पर आक्रोश किया गया हो वह; (दे०-ना० मा० १, १३)।

अज्झा— स्त्री० (दे०)– १. असती, कुलटा, २. प्रशस्त स्त्री, ३. दुलहिन, ४. युवती स्त्री, ५. यह (स्त्री); (दे०-ना० मा० १, ५०)।

अज्झासा— स्त्री० (सं० अधि+आशा) –अभिलाषा; (ण० ५, १०, ३)।

अज्झेल्ली—स्त्री० (दे०)–दोहने के उपरान्त भी जिसका पुनःपुनः दोहन हो सके ऐसी गाय; (दे० ना० मा० १, ७)।

अज्झोल्लिआ—स्त्री० (दे०)– वक्षःस्थल के आभूषण में की जाने वाली मोतियों की रचना; (दे० ना० मा० १, ३३)।

अञ्चल— पुं० (सं० अञ्चल > प्रा० अंचल)–साड़ी या चादर का सिरा या किनारा, पल्ला; (की० ४, २१६)।

अञ्चिय— वि० (सं० अर्चित > प्रा० अच्चिअ)–अर्चना किया गया; (क० २६, ५, १)।

अटलें— वि०–१. अट्टाल के समान विशाल, २. अटल, स्थिर; (की० ४, ४४)।

अट्ट— वि० (दे०)–१. कृश, दुर्बल; २. महान् ३. निर्लज्ज, ४. सुस्त, ५. पुं० शुक, ६. शब्द, आवाज; ७. न० सुख, ८. असत्योक्ति; (दे० ना० मा० १, ५०)। ९. आर्त, (जस० ३, २१, ६)।
—झाण पुं० (सं० आर्त्त-ध्यान)–ध्यान-विशेष—इष्ट-संयोग > अनिष्ट-वियोग, रोग-निवृत्ति और भविष्य के लिए चिंता न करना, (व० १०, १३, ५)।

अट्टट्टहास—पुं० (सं० अट्टहास)–ठहाका, खिलखिला कर हँसना; विकट हास; (जस० १, १६, ६; भ०)।

अट्टरउद्द— वि०(सं० आर्त+रौद्र > प्रा० अट्ट+रोद्द, रउद्द)–पीड़ित और भयंकर; (क० ६, २३, २)।

अट्ठंग— पुं० (सं० अष्ट+अङ्ग)–१. आठ प्रकृति रूप अंग, "णिक्कलु कि अट्ठंगइं धारइ"—निष्कल अष्ट प्रकृति

रूप अंगों को कैसे धारण करता है, (ण० ६, ६, ८)। २. आठ शरीर के अंग; (जस० ३, ७, १३)।

अट्ठ—वि० (सं०अष्टन् > प्रा० अट्ठ)—आठ; तुल० म० आठ; (भ०, सं० रा०, की०, ४, १२३)।—इँ (सि० २, ३४)। —गुणी, वि० सं० अष्टगुणी, अष्ट—महाप्रातिहार्ययुक्तइत्यर्थः (जस० १, १५, १०)।—त्तर—वि० (सं० अष्टोत्तर > प्रा० अट्ठुत्तर) आठ से अधिक; (क०, १०,२३, २०)। द्ध—वि० (सं० अष्टार्ध) आठ का आधा; (व० १०, ६, १३)। —पयार— वि० (सं० अष्ट+प्रकार) आठ प्रकार की; (सि० १, ३५, ६)। —म, वि० आठवां; (ण० ८, ६, ८)। —मि > स्त्री० (सं० अष्टमी > प्रा० अट्ठमी) अष्टमी की तिथि, तिथि-विशेष, (सि० २, ३१, ३; जस० ३,३०, १५)।—याल, वि० (सं० अष्टचत्वारिंशत्) अठतालीस; (म०)।—वरिस—वि० अष्टवर्षीय; (जंबू० ३, ४, ६)। —विह, वि०(सं०अष्टविध) आठ प्रकार का; (म०; जस० ४, १६, ६)।—सट्ठि, वि० (सं० अष्ट+षष्ठि) अड़सठ; (ण० ६, ७, ६)। —सठि, वि० अड़सठ; (सि० १, १८, ४)। —सय, वि० (सं० अष्टशत > प्रा० अट्ठसय) एक सौ आठ; (ण० ६, २४, ७)।—सहस, वि० (सं० अष्ट+सहस्र > प्रा० अट्ठ+सहस्स) एक हजार और आठ; (सि० २, १६)। अट्ठाइसओ— वि० (सं० अष्टविंशतिः > प्रा० अट्ठाइस, अट्ठाईस) अठाईस; (की० २, २८४)। अट्ठाईं—न०, आठ, संख्या-विशेष; (प्रा० पैं० १, १००)। अट्ठारह— वि० (सं० अष्टादशन् > प्रा० अट्ठारह, अट्ठाराह, अट्ठार) अठारह; (ण० ३, १, १)।

अट्ठासी—वि० (सं० अष्टाशीति > अर्ध-मागधी अट्ठासीइ)—अठासी (प्रा० पैं०)।

अट्ठिवाउ— पुं० (सं० अस्थिवात)—अस्थिवात नामक रोग 'तणु मोडइ फोडइ अट्ठिवाउ'— अस्थिवात उसके शरीर को मोड़ने व फोड़ने लगा; (जंबू० ३, ११, ४)।

अट्ठोत्तर-सउ— वि० (सं० अष्टोत्तर शत > प्रा० अट्ठुत्तरसय)—एक सौ आठ; (सि० २, ३१, १२)। —अट्ठोत्तरसहास वि० (सं० अष्टोत्तरसहस्र)—एक सहस्र आठ; जस० ३, २५, २)।

अट्ठि— स्त्री० (सं० अस्थि > प्रा० अट्ठि)—हड्डी; तुल० म० अठली; (जस० १, १३, १३; भ०; ण० ८, १५, ११)। —य-स्त्री० (सं० अस्थि+क) हड्डी; (ण० ३, १४, ७)।

अट्ठियपत्त—पुं० (सं०अस्थिपात्र > प्रा० अट्ठियपत्त)—हड्डी का पात्र; (ण० ६, ६, ११)।

अट्ठियभूसण—पुं० (सं० अस्थि-भूषण > प्रा० अट्ठिय+भूसण)—हड्डी का बना हुआ आभूषण; (ण० ६, ७, ८)।

अठतालिस—वि० (सं० अष्टचत्वारिंशत् > प्रा० अट्ठतालीस)— अठतालिस, तुल० रा० अडतालीस; (प्रा० पैं० १, ११७)।

अड'—पुं० (सं० अवट)—कूप; (जस० ४, २७, २०)।—य, पुं०, कूप (सुदं०

६, १६, ११) ।
अड² —वि० (सं० अष्टन्>प्रा० अट्ठ)–आठ; (प्रा० गु० ४०, १३) ।
अडइ—स्त्री० (सं० अटवी>प्रा० अडइ >अडई)-भयानक जंगल; (ण० ७, १, १०) । अडवि— स्त्री० (सं० अटवी) वन (क० ७, ३, ३) । —रुण्ण-पुं० (सं०अटवी+रोदन>प्रा०अडइ+रोअण) अरण्य-रोदन (ण० ४, ३, १३) ।
अडक्खम्म—क्रि० (दे०)–सँभालना, रक्षण करना; (दे० ना० मा० १, ४१) ।
अडणी—स्त्री० (दे०>प्रा० अडयणा)–कुलटा, व्याभिचारिणी स्त्री; (दे० ना० मा० १, १६) ।
अडदह—वि० (सं० अष्टदश > प्रा० अट्ठदह)-अट्ठारह; (सि० १, १३, ११) ।
अडयण—स्त्री० (दे०)–कुलटा, व्यभिचारिणी स्त्री; (सुदं० ८, ३१, ६) ।
अडयणा—स्त्री०, कुलय (प० च० ३७, ७, २) ।
अडह—अक० (सं० अट्>प्रा० अड)–भ्रमण करना, फिरना, "णिद्दिट्ठु मुएवि भिक्खाइँ अडह", निर्दिष्ट आहार का त्याग करते हुए भिक्षाचार के लिए फिरो, (जस० ४, ६, १०) ।
अडिल्ला—स्त्री० (सं० प्रा० अडिल्ला)–छन्द-विशेष; (प्रा० पैं० १, ११७) ।
अड्डु—पुं० (दे०)- चौराहा (cross-ways); तुल० गु० आडुं (across); (प० च० ५१, १३, २) ।
अड्डवि—स्त्री० (सं० अटवि, वी>प्रा० अडवि, वी) भयंकर जंगल, गहरा वन; (व० ३, २१, ४) ।
अड्डवियड्ड—वि० (सं०अर्द+वितर्द)–आड़े-टेढ़े; "अड्डविड्डहड्डसंघडियत्त", आड़े टेढ़े हाड़ों से यह संघटित है; (जंबू० ११, ६, २) ।
अड्डा— स्त्री० (दे०) बाधा । (रा० १५) ।
अड्डाइय— वि० (सं० अर्धोनतृतीय)–ढ़ाई, अढाई; (भ०) । तुल० असमी आढ़ै; (भ०) ।
अड्डिय— वि० (सं० आढ्य > प्रा० अड्ढ)–पूर्ण, युक्त; (प० च० ३७, १) ।
अड्डिवंत— वि० (सं० ऋद्धिमत)–विकासयुक्त; समृद्धियुक्त; (ण० ६, १२, ५) ।
अढार— वि० (सं० अष्टादश>प्रा० अट्ठारसम, अढारसम)–अठारहवाँ, तुल० गु० अढार; (संधि० १२, ३, ६) ।
अणंग—पुं०(सं०अनङ्ग>प्रा० अणंग)–कामदेव; (जस० १, १८, ४; भ०; रा० १७) । अणंगु—पुं० कामदेव (सि० १, ३१) । अनङ्ग (की० २, १३५) ।—दाह, पुं०—अनंग की दाह "जय पास अपास अणंगदाह", अर्थात् अनङ्ग की दाह से अस्पृष्ट पार्श्वनाथ की जय हो; (व० १, १, १४) ।
अणंत—१. वि० (सं० अनन्त > प्रा० अणंत)–अनंत, निःसीम; (जस० १, २, ७; भ०) । २. पुं० अनन्त, चतुर्दश-तीर्थंकर नाम; (जस० १, २, ७) । अणंतु; (सं० रा०, परमा०) ।
अणंताणंत—वि०(सं० अनन्त+अनन्त)–बहुत अधिक अनन्त (अतिशयेन अनन्त-मित्यर्थ) (जस०४, ११, १२) ।

अणंते—पुं० (सं० अनन्त)- श्री कृष्ण द्वारा (रि०, सातवां सर्ग)।

अण¹— क्रि० वि० (सं० अन्>प्रा० अण)-अन, निषेधार्थक, (सं० रा०; व० १०, १, १२)।

अण²—पुं० (सं० अनस्)-शकट, गाड़ी; (जस० ३, २१, २)।

अणअ— पुं० (सं० अनय)- अन्याय, दुर्नीति; (जस० ४, २५, १७)।

अणइच्छन्त— वि० (सं० अनिच्छत्)-न चाहता हुआ; (भ०)।

अणंउछिअ—वि० (सं० अपृष्ट)-अन-पूछा; (जस० १, ६, ८)।

अणउ—पुं० (सं० अ+नय)- अनीति, अन्याय; (जंबू० ५, १३, ८)।

अणकिय— वि० (सं० अकृत>प्रा० अकय)-बिना किए; (सं० रा०)।

अणक्ख—वि० (सं० अनक्ष)-दृष्टिहीन, अंधा; (भ०)।

अणक्खर—वि० (सं० अनक्षर)-अशि-क्षित, मूर्ख, निरन्तर; (जस० ३, २६, ४; सं० रा०)।

अणखाइय—वि० (दे०)-अप्रसन्न, रुष्ट; तुल० गु० अणख; (प्रा० गु० ५, ६)।

अणखालउ— वि० (सं० अस्खलित)-अबाधक, असम्भव; "तुहुं अघडंतु घडहि अणखालउआ", प रोष में आकर अस-म्भव को सम्भव बनाना चाहते हैं; (म० १, १५, ५)।

अणखुट्ट—वि० (दे०)-अत्रुटित (भ०)।

अणगारधम्मु—पुं० अनगार धर्म (वह धर्म जिसमें काम के राग रंग छोड़ दिए जाते हैं)-(ण० ४, ४, ५)।

अणग्घमणि— स्त्री० (सं० अनर्घ्य+मणि)- बहुमूल्य मणि; (व० ३, २३, १२)।

अणच्छ—वि० (सं० अनल्प; जो थोड़ा न हो; (संधि० २, ३, ६)।

अणज्ज— वि० (सं० अनार्य>प्रा० अणज्ज)-आर्य-भिन्न, दुष्ट पापी; (भ०)।

अण्णइं— (सं० अन्नादि)-अन्न आदि; (व० ८, ५, ११)।

अण्णु—वि० (सं० अन्य)-दूसरा; (व० १, १६, १२)।

अणत्थ—पुं० (सं० अनर्थ>प्रा० अण-ट्ठ)-१. नुकसान, हानि; (भ०; ण० ३, २, १२; जस० ४, ६, ५)।

अणथमिअ— पुं० (सं० अन्+अस्त-मित)- सूर्यास्त से पूर्व का व्रत; (सुदं० १०, ७, २)।

अणत्थमिए—क्रि० वि० (सं० अन्+अस्तमित)-सूर्यास्त से पूर्व; (ण० ४, २, ६)।

अणप्प—पुं० (दे०)-खड्ग; (दे० ना० दुराचरण; मा० १, १२)।

अणयचार—पुं० (सं० अ+नय+चार)-अनीत्याचार; (जंबू ५, १२, २४)।

अणयार— पुं० (सं० अनाचार>प्रा० अणायार)- शास्त्र-निषिद्ध आचरण; (म० २, ५४, २)।

अणरइ— स्त्री० (सं० अन्+रति)-१. अरति, बेचैनी; (सं०रा०)। २. रति-रहित; (व० २, २०, ६)।

अणरसिय— वि० (सं० अन्+रसिक)-अरसिक; (सं० रा०)।

अणरामय—पुं० (दे०)–अरति, बेचैनी; (भ०)।

अणराह— पुं० (दे०)–सिर में पहनी जाती रंग-बेरंगी पट्टी; (दे० ना० मा० १, २४)।

अणरिक्क—वि० (दे०)–अवकाशरहित; (दे० ना० मा० १, २०)।

अणरुइ—वि० (सं० अनिरुपित)–बिना विचारे, बिना सोचे; (सं० रा०)।

अणल— पुं० (सं० अनल > प्रा० अणल)–अग्नि, आग; (सं० रा०; भ०; जस० १, २८, १; ण०, १, १४, १)। २. अग्निकुमार देव; (व० १०. २६, ७)।

अणलिय— न० (सं० अ-+अलीक्> प्रा० अण+अलिय)–सत्य वचन; (जस० ३, ३०, ६; ण० ४, २,५)।

अणवज्ज— वि० (सं० अनवद्य>प्रा० अणवज्ज)–निर्दोष; (म० १, २०, ४)।

अणवत्थ—वि० (सं० अनवस्थ)–अव्यवस्थित, अनियमित; (दे० ना० मा० १, १३६)।

अणवरअ—वि० (सं० अनवरत>प्रा० अणवरय)– सतत, निरन्तर; (क० ३, १०, ७)। अणवरत, (कीο ४, १५), अणवरय; (जस० २, ३०, ७)।

अणवरयदाण—पुं० (सं० अनवरत+ दान>प्रा० अणवरय)– लगातार किया जाने वाला दान; (व० ५, १८, ८)।

अणवस—वि० [अण + (नकारात्मक) + वश] अपरवशीकृत undefeate; (प० च० १२।६।६)।

अणविहेय—वि० (सं० अविधेय)–जिसे वस में न किया जा सके, विपरीत; (भ०)।

अणसण— न०(सं० अनशन> प्रा० अणसण)– आहार का त्याग; उपवास; (जस० ४, २५, २३; क० ५, १०, ५; भ०)।

अणसार—वि० (सं० असार)–सारहीन, —उ (रा० ३६)।

अणह—वि०(सं० अनघ>प्रा० अणह)– निर्दोष, निष्पाप; (सुदं० २, ५, ८)।

अणहा—अव्य० (सं० अन्यथा)–नहीं तो, प्रकारान्तर; (प्रा० पैं० १, १०५)।

अणहारय—पुं० (दे०)–खल्ल—१. वह खरल जिसमें डालकर कोई वस्तु कूटी जाए, चक्की, २. चमड़ा, ३. चमड़े की मसक; "अणहारओ खल्लम् निम्नमध्य-मित्यर्थः"; (दे० ना० मा० १, ३८)।

अणाइ— वि० (सं० अनादि>प्रा० अणाइ)– आदि-रहित, आदि काल से चलता हुआ, नित्य; (ण० ६, ११, १०; जस० १, २१, १४; भ०; सं० रा०)। —वन्त, वि० (सं० अनादिमत्> प्रा० अणाइमंत, वंत) अरादि काल ने प्रवृत्त; (भ०)।

अणाउल—वि० (सं० अनाकुल> प्रा० अणाउल)–अव्याकुल, धीर; (प० च० २०।१०।६)।

अणागय— पुं० (सं० अनागत>प्रा० अणागय)–भविष्यकाल; (विला०)।

अणागारिउ—पुं० (दे०)–घूमने फिरने वाला, संन्यासी; (व० ७, ६; ६)।

अणाड— पुं० (दे०)–जार, उपपतिं; (दे० ना० मा० १, १८)।

अणादयण—वि० (सं० अनायतन)-जो स्थान वेदी न हो; "देवसत्थगुरुमूढविवज्जिय। कुसुरकुगुरुसेवासंगमपर, तह य कुसत्थकुसुयपाढयणर मिच्छालिंगिय तह सेवयजण, जेहिं ण सेविय छह अणादयण (ण० ६, १२, ८)।

अणाय—वि० (सं० अज्ञात)-अपरिचित; (प० च० २।१३।२)।

अणायपार—वि० (सं० अज्ञात+पार)-अपार; (प० च० १६।१२।५)।

अणायर— पुं० (सं० अदादर>प्रा० अणायर)-अपमान; (भ०)।

अणाविउ—क्रि०भू०का० बुलाया, "अणाविउ सो सुयणामु भणेवि"—नाम लेकर उसे बुलाया; (क० ८, १४, २)।

अणाह— वि० (सं० अनाथ)- विना स्वामी के; (जस० १, २३, ५)।

अणिंद— वि० (सं० अनिन्द्य>प्रा० अणिंदिय)-जिसकी निन्दा न की गई हो; (क० ५, ६, २; जस० ३, २८, ११)।

अणिउत्त—वि० (सं० अनियुक्त)-जो नियुक्त न किया गया हो; (भ०)।

अणिच्च— वि० (सं० अनित्य>प्रा० अणिच्च)-नश्वर, अस्थायी; जस० (४, २६, १)।

अणिज्जिउ— वि० (सं० अनिर्जित)-जिस पर विजय न की गई हो; (व० २, ६, ६)।

अणिट्ठ— वि० (सं० अनिष्ट>प्रा० अणिट्ठ)- अप्रीतिकर; (जस० ४, ६, १२)। —अ, वि० (सं० अनिष्ठित) असमाप्त (जस०)। —संघ पुं० (सं० अनिष्ट+संघ) शत्रुसंघ; (जंबू० ४, ५, ८)।

अणिट्ठय— वि० (सं० अनिष्ट=न चाहा हुआ)-शत्रु; (प० च० १२।१)।

अणिट्ठिय—वि० (स० अ+निष्ठित> प्रा० अणिट्ठिय)-निस्सीम; "अवरहु मि अणिट्ठिय-भुयवलहुं", दूसरे निस्सीम वाहुवल वालो को आदेश दिया, (ण० ५, १२, ३)। २. असंपूर्ण (भ०)। ३. अनिष्ठित, अकृत्रिम; (व० १०, १३, १३)।

अणिट्ठु— वि० (सं० अनिष्ठ>प्रा० अणिट्ठ)- अनिष्टकारी; (व० ३, १७, ६)।

अणित्ति—स्त्री० (सं० अनीति)-नीति, न्याय, औचित्य आदि का न होना; (प० च० १५।३।४)।

अणिमाइय—पुं० (सं० अणिमादिक)-अणिमादिक गुण।—अष्टसिद्धियाँ अर्थात् १. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिमा ४. गरिमा, ५. प्राप्ति, ६. प्राकाम्य, ७. इशित्व और ८. वशित्व; (व० २, ११, ३)।

अणिमिस—पुं० (सं० अनिमिष)-मत्स्य, मछली; (व० १०, १०, ६)। वि० (सं० अनिमेष) निर्निमेष; जंबू० ८, ६, ८)।

अणियच्छिय—वि० (दे०)-अदृष्ट, (जंबू १, १, ६)।

अणियन्त— कृ० (दे०)-अवलकोन न करते हुए; (भ०)।

अणिल— पुं० (सं० अनिल>प्रा० अणिल)-वायु; (जंबू० ६, ८, ५)।

अणिल्ल— न० (दे०)-प्रभात, सवेरा; (दे० ना० मा० १, १६)।

अणिवार— वि० (सं० अनिवारित)– जिसे रोका नहीं गया, अबाधित, "तं पइँ पुणु दंसणजलधारिहिँ, संचिवि वड्ढारिउ अणिवारहिँ", अर्थात् उसे आपने अपनी दर्शन रूपी अबाधित जल-धारा से सींचकर बढ़ाया है; (व० ४, २, ११)।

अणिविण्ण— वि० (सं० अनिर्विण्ण) थकानहीन, बिना थकावट के; (प० च० १७।१०।१०)।

अणिसाभोयण—पुं० (सं० अनिशा+भोजन) रात्रि-भोजन न करना; (जस० ३, ३०, १०)।

अणिह—वि० (दे०) १. सदृश, तुल्य। २. न०—मुख, मुँह (दे० ना० मा० १, ५१)।

अणिहण—पुं० (सं० अनिधन) अनादि निधन (अनन्त इत्यर्थः), कुलधिपति, (जस० १, २, १४)।

अणिहय— वि० (सं० अनिहत) अहत, नहीं मारा हुआ; (भ०)।

अणीइ—स्त्री० (सं० अनीति)नीति का विरोध, अन्याय, अन्धेर, अत्याचार; (व० ३, १, १३)।

अणु—वि० (सं० अन्य) दूसरा; (व० १, ५, ११)।

अणुआंच—क्रि० (सं० अनु+कृष्>प्रा० अणुअंच) पीछे खींचना। अणुअंचि पू० का० क्रि० खींचकर; सं० रा०)। अणुअंचिवि—पू० का० क्रि० (भ०)।

अणु-अणु— पुं० (सं० अण्ड+अण्ड) परमाणु; (जस० ४, ६, ६)।

अणुअ—पुं०(दे०)१- आकृति। २- पुं० स्त्री० धान्य-विशेष; (दे० ना० मा० १, ५२)। पुं० (सं० अनुज>प्रा० अणुअ) छोटा भाई; (जंवू० २, ५, १०)।

अणुअत्तइ—अक० (सं० अनुवर्तते वर्तते, तिष्ठति)–ठहरना, (भ०)।

अणुअल्ल—न०(दे०) प्रभात, सुबह;(दे० ना० मा० १, १९)।

अणुइय—पुं०(दे०)–धान्य-विशेष, चना; (दे० ना० मा० १, २१)।

√अणुकंप—(सं० अनु०+√कम्प्)– अनुकम्पा करना।—इ सक० (जस० ४, १८, ३)।

अणुकम्पिय—वि०(सं० अनुकम्पित> प्रा० अणुकंपिअ) जिस पर अनुकम्पा की गई हो वह; (भ०)।

अणुकारिअ=वि० (सं० अनुकारिन्) अनुकरण करने वाला; (जंवू० ५, १, २५)।

अणुकूल=वि० (सं० अनुकूल>प्रा० अणुऊल) अप्रकूिल; (जस० ३, २७, ३)।

अणुगय—वि०(सं० अनुगत) अनुगामी, अनुसृत, जिसका अनुसरण किया गया हो वह; (जस० १, ६, २)।

अणुगहिअ—वि० (सं० अनुगृहीत>प्रा० गिहीअ)जिस पर अनुग्रह किया गया हो; (दे० ना० मा० ८, २६,)।

अनुगामिनी—वि० (सं० अनुगामिन्> प्रा० अणुगामि, अणुगामिय) अनुसरण करने वाली, पीछे-पीछे जाने वाली; जस० २, २२, ८))।

अणुग्गह=पुं० (सं० अनुग्रह>प्रा० अणुग्गह, अणुगह) १- कृपा, २- उपकार; (ण ३, ३, ६)।

अणुचिट्ठ=क्रि० (सं० अनु+चेष्ट)-पालन करने योग्य होना। अणुचेट्ठेउ; (जंबू ३, ७, १६)।

अणुज्ज¹=वि० (सं० अनृजु)-जो सरल न हो, कुटिल; (भ०)।—अ, वि० (सं० अनृजु+क) दुष्ट (भ०)।

अणुज्ज²—वि० (सं० अनवद्य) निर्दोष; (जस० ४, २३, ७)।—य (सं० अनुद्युत) (जस० २, ६, ६)।

अणुट्ठा—क्रि० (सं० अनु+√स्था>प्रा० अणुट्ठा)-अनुष्ठान करना, शास्त्रोक्त विधान करना; (जस०)। अणुट्ठउ—भू० का० अनुष्ठान किया," जं जाणइ तं सो वि अणुट्ठउ" (ण० ५, ६,७)।

अणुट्ठाण—न० (सं० अनुष्ठान>प्रा० वणुट्ठाण) १- शास्त्रोक्त विधान, २- कृति; (जस० १, १, १,)।

अणुणअ—क्रि० (सं० अनुनय्) अनुनय करना, प्रार्थना करना; (जंबू० ४, ७, ११)। अणुणत—कृ० (सं० अनुनय्+शतृ); (जंबू० ६, ३, ११)।

अणुणइ–क्रि (सं० अनुनयति) मनाना, अनुनय करना; (भ०)। अणुणेइ (हे० ४, १४, ४)। अणुणिज्जइ– कर्मवाच्य व०, प्र० ए० (सं०अनु+√नी>प्रा० अणुणी)मनाया जाता है।

अणुणय—पुं० (सं० अनुनय) विनय, प्रार्थना; (व० ४, १५, १२)

अणुणीय—वि० (सं० अनुनीत>प्रा० अणुणीअ) जिसका अनुननय किया गया हो वह; (दे० ८, ४८)।

अण्णुण्णु—वि० (सं० अन्योन्य) परस्पर, एक दूसरे को या पर; (प० च० २२, ५, ५)।

अणुदिट्ठय— वि० (सं० अनुद्दिष्ट) अपने उद्देश्य से न बनाई हुई,"अणुदिट्ठयभिक्खफलाणुमेउ;" (जंबू० १०, २१, ६)।

अणुदिणु—न० (सं० अनुनिन>प्रा० अणुदिण)-दिन-प्रतिदिन, हमेशा; (भ०; क० ४, १०, ६; प० च० ६, ६, ६)।

अणुदिस—पुं० (सं० अनुदिक्) अनुदिसवासी देव; "तिजय-णाडि तिह पेक्खहि अणुदिस पंचाणुत्तर उज्जोविय-दिस," (व० १०, ३४, १४)।

अणुपच्छए— अव्य० (सं० अनु+पश्च) बाद में, पश्चात् (प० च० ५, ६, ८)।

अणुपेहा—स्त्री० (सं० अनुप्रेक्षा>प्रा० अणुपेक्खा) भावना, चिन्तन; (जंबू० ११, १५, १४)।

अणुबंधि—वि० (सं० अनुबन्ध>प्रा० अणुबंध पुं० निरन्तरता) निरन्तर, "अणुबंधि तिव्वु पेम्मु तवइ" निरन्तर आसक्ति से तीव्र प्रेम ताप उत्पन्न होता है; (जस० २, १०, १३)।

अणुबिंबिय—वि० (सं० अनुबिम्बित) अप्रतिबिंबित, जिस पर प्रति छाया न पड़ी हुई हो; (भ०)।

अणुब्भड—वि० (सं० अनुद्भट>प्रा० अणुब्भड) १. जो श्रेष्ठ न हो; २. जो बहुत ऊँचा न हो; (प० च० ४०, ७, ११)।

अणुभाव—पुं० (सं० अनुभाव>प्रा०

अणुभाव, अणुभाय) मनोगत भाव की सूचक चेष्टा; (भ०)।

अणुभुञ्ज—क्रि० (सं० अनु+भुज्>प्रा० अणुभुंज)–भोग करना; (प० च० १२/१०/६)।

अणुमग्ग—न० (सं० अनु+मार्ग>प्रा० अणुमग्ग)–पीछे; (जस० ३, ३५, ३)। —यर वि० (सं० अनुमार्ग चर) अनुचर; (जस० २; ६, ८,)।

अणुमण्ण—(सं० अनुमोदय्)–अनुमोदन करना।–ण्णिवि पू० का०क्रि०(जंबू० ७, ७,८)। अणुमन्नइ–सक० (सं० अनुमन्यते >प्रा० अणुमण्णे, अणुमन्नइ) अनुमति देना; अनुमोदन करना; (भ०)।

अणुमरण—न० (सं० प्रा० अनुमरण) १. मरना, २. सती होना, (भ०)।

अणुमण्णिअ—वि० (सं० अनुमतअनुमोदित; (जंबू० २, ८, ११)।

अणुमाण—न० (सं० अनुमान>प्रा० अणुमाण)–अटकल ज्ञान, हेतु के द्वारा अज्ञात वस्तु का निर्णय; (जस० ३, २२, ५; (प० च० १।११।४)।

अणुमाल—अक० (सं० अनु+मालय्> प्रा० अणुमाल)–शोभित होना, चमकना। अणुमालिवि–पू० का० क्रि० माला को बना-कर; (भ०)।

अणुमेय—वि० (सं० अनुमेय>प्रा० अणुमेअ) अनुमान के योग्य; (जंबू० १०, २१, ६)।

अणुमोइय—वि० (सं० अनुमोदित> प्रा० अणुमोइय) प्रशंसित, अनुमत, सम्मत; (भ०)।

अणुमोय—न० (सं० अनुमोद)–प्रसन्नता, (भ०)।—ण न० (सं० अनुमोदन> प्रा०अणुमोयण) अनुमति, सम्मति, प्रशंसा (भ०)।

अणुयत्त—वि० (सं० अनुवृत्त>प्रा० अणुवत्त, अणुयत्त)–प्रवृत्त, अनुकूल किया हुआ; (भ०)।

अणुरंज—क्रि० (सं० अनु+रञ्जय्> प्रा० अणुरंज)अनुरागी करना। –इ व० (व० २,१,७)अणुरंजिउ–क्रि० भू० का० (सं०अनु+रञ्जय्>प्रा० अणुरंज)प्रसन्न हुए; "णरवइ अणुरंजिउ परियणु रंजिउ" —राजा प्रसन्न हो उठा और परिजन भी प्रसन्न हुए; (सि० १, १८, ११)।

अणुरंजण—न० (सं अनुरञ्जन>प्रा० अणुरंजण राग, आसक्ति।

अणुरत्त—वि० (सं० अनुरक्त>प्रा० अणुरक्त, अणुरयक)–अनुरक्त, प्रेम-प्राप्त; (सणतु० ४५३)।

अणुराअ—पुं०(सं०अनुराग>प्रा० अणुराग, अणुराय)–आसक्ति, निष्ठा, प्रीति, अणुराय; (सं० रा०; ण० १, ६, २) भ०; सि० २, १७)।

अणुराइय—वि० (सं० अनुरागिन्>प्रा० अणुराइ)अनुरागी, प्रेमी; (सं०रा०;भ०)

अणुरुवु—वि० (सं० अनुरूप>प्रा० अनुरूव, अणुरूअ)–अनुरूप, अनुकूल; (सणतु०४६०)।

अणुरूव—वि० (सं० अनुरूप>प्रा० अनुरूव, अणुरूअ)–सदृश, समान (जंबू० १०, ६, २)।

अणुलग्ग—वि० (सं० अनुलग्न>प्रा० अणुलग्ग)–किसी के साथ लगा, मिला या जुड़ा हुआ अणुला; (हरिवंशपुराण ५१।७)। अणुलग्गी— वि० पीछे लगी हुई; (रि० ३, १)।

अणुव—वि० (सं० अनुज)–जो पीछे

उत्पन्न हुआ हो; (व० ३, ५,२) ।
अणुवच्च—(सं० अनु+व्रज्>प्रा० अणुवच्च) अनुसरण करना ।–वि, पू० का० क्रि०–पीछे जाकर, (जंबू० २, १२, ४) ।
अणुवज्ज—क्रि० (दे०) सेवा–शुश्रूषा करना; (दे० ना० मा० १, ४१) ।
अणुवम—वि० (सं० अनुपम>प्रा० अणुवम) उपमा-रहित, अद्वितीय; (क० १, १, ३) ।
अणुवय—न० (सं० अनुव्रत>प्रा० अणुव्वय, अणुवय) छोटा व्रत; (जस० ४, २१, ४; क० ५, १२, १) ।
अणुवल—पुं० (सं० अनुबल) सहायक सैन्य; (जंबू० ५, ४, १७) ।
अणुवलवि— क्रि० (सं० अनुपालयति) अनुपालन करना; (भ०) ।
अणुवहुआ— स्त्री० (दे०) दुलहिन; (दे० ना० मा० १, ४८) ।
अणुवाय—पुं० (सं० अनुवाद)–अनुभाषण, उक्त बात को फिर से कहना; (दे० ना० मा० १, १३१) ।
अणुवासिय— वि० (सं० अनुवासित) सुगंधित किया हुआ, धूपित; (भ०) ।
अणुविक्खा—स्त्री० (सं० अनुपेक्षा) ध्यान से देखना; (जंबू० ११, १५, १४) ।
अणुवेक्ख—स्त्री० (सं० अनुप्रेक्ष्)–अनुप्रेक्षा, देखकर अनुसरण करना; "णिज्झाणइ जो अणुवेक्ख चल वइ रायभावसंपत्तउ"—जो वैराग्य-भावको प्राप्त होकर इस अनित्य–अनुप्रेक्षा का ध्यान करता है, (क० ९, ६, ९); (जस० ४, ९, १५) । अणुवेक्ख–स्त्री० (सं० अनुप्रेक्षा) (जंबू० ११, १, ४) ।
अणुव्वजमाणु=क्रि० आ० (सं० अनु+व्रज>प्रा० अणुवज्ज) पीछे-पीछे जावे, अनुसरण करे; (ण० ९, २१, ६) ।
अणुव्वय—न० (सं० अणुव्रत>प्रा० अणुव्वय) छोटा व्रत; (भ०) ।
अणुसंग— पुं० (सं० अनुषङ्ग) प्रसंग, प्रस्ताव; (भ०) ।
अणुसंघट्टण—पुं० (सं० अणुसंघट्टन)–संघर्षण, "अणुसंघट्टणि सद्दु विहावइ,"—वायु में संघर्षण होने से ही शब्द उत्पन्न होता है, (जस० ३, २६, ३) ।
अनुसंध—(सं० अनुसम्+धा)–खोजना, गवेषण करना । अनुसंधिवि–पू० का० क्रि० खोजकर, ढूंढ कर; (भ०) ।
अणुसंधिअ— न० (दे०) निरन्तर हिचकी; (दे० ना० मा० १, ५९) ।
अणुसर—(सं० अनु+सृ>प्रा० अणुसर) अनुसरण करना ।—इ, सक० (सं० अनुसरति) अनुवर्तन करना; (भ०) । —हिं, क्रि०, पीछा करना (सा० ११७) । अनुसरिय–क्रि० भू०, अनुसरण किया, (सं० रा०) । अनुसर–क्रि० आ०, अनुसरण करो; (की० ४, २५१) । —रेवि पू० का० क्रि० (जंबू ९, ३, १३) ।
अणुसरिस—वि० (सं० अनुसदृश>प्रा० अणुसरिस, अनुसरिच्छ) १. समान, तुल्य, २. योग्य; (प० च० ६/५/४) ।
अणुसार—पुं० (सं० अनुसार>प्रा० अणुसार) अनुसरण, अनुवर्तन; (भ०) ।
अणुसुत्ति—वि० (दे०) अनुकूल; (दे०

ना० मा० १, २५)।
अणसूआ—स्त्री० (दे०) शीघ्र ही प्रसव करने वाली स्त्री; (दे० ना० मा० १, २३)।
अणहर—(सं० अनु+हृ>प्रा० अणुहर, अणुहरइ)—अनुकरण करना, नकल करना; (प० च० १, ६,८) ।—हरंत कृ० (सं० अनु०+हृ+शतृ) (जंबू० ६, ६, ११)—माण कृ० (सं० अनुहरत्=अनुकुर्वत्) अनुकरण करते हुए। —हिं, सक० व० (सं० अनुहरन्ति)अनुकरण करते हैं, (हे० ३६७)।
अणुहरमाणी—वि० (सं० अनुहृत> प्रा० अणुहरिय) समान, "रावण रिद्धिहे अणुहरमाणी," अर्थात् रावण की रिद्धि के समान थी; (रि० १, ५)।
अणुरिअ—वि० (सं० अनुहृत)—अनुकृत; (जंबू० ४, १६, २२)।
अणुहव—(सं० अनु+भू>प्रा० अणुहवइ)—अनुभव करना; (जस० २, १६, २; प० च० १६, ६, १०)।—इ सक० (रि०, प्रथम सर्ग)। अणुहवेइ—अनुभव करता है, (क०)। अणुहुत्तउ—भू० का० (सं० अनुभूत>प्रा० अणुहुत्त) अनुभव किया; (म० २, ३७, १४। (व० कृ०—अणुहवंत (अनुभव करते हुए) (ण ४, ६, ४)। —हविवि—पू०का० क्रि० (जंबू १०, १७, १६)।
अणुहविअ—वि० (सं० अनुभूत)—जिसका अनुभव किया गया हो वह; (जंबू १०, १७, १७)।
अणुहुंज—(सं० अनु+भुञ्ज>प्रा० अणुहुंज) भोग करना; (जस० ४, २, १)।
अणुहुंजिय—वि० (सं० अनु+भुक्त)—उपभोग करने वाले, "अणु हुंजियलच्छीसिव"—लक्ष्मी के सुखों का उपभोग करने वाले; (ण० ६, ४, १३)।
अणुहूय—वि० (सं० अनुभूत>प्रा० अणुहूअ) जिसका अनुभव किया गया हो वह; (जस० १, २०, ६)।
अणू—पुं० (दे०) शालि-भे, चावल का कोई प्रकार; (दे० ना० मा० १, ५)।
अणूप—वि० (सं० अनुपम) उपमा रहित, बेजोड़; (जंबू० ४, १६, २२)।
अणेग—वि० (सं० अनेक>प्रा० अणेक्क, अणेग)—एक से अधिक बहुत; (सं० रा०)। अणेय—वि० (सं० अनेक) (जस० १, ७, ८; क० २, १, १; ण० २, ५, ५,)। अनेअ—वि० अनेक (की० ४, २८)। अणेय—वि० (भ०)।
अणेसण—वि० (सं० अन्+एषण= इच्छा० रहित) शुद्धि-रहित (जै० परि०); (संधि० ७, २, ७)।
अणै—पुं० (सं० अनय>प्रा० अणय)—अनीति, अन्याय; (की० २, १८१)।
अणै-भणै—क्रि०, ऊटपटाँग बकता है; (की २, १८१)।
अणोरपार—वि० (दे०) अति विस्तीर्ण; (प० च० १७, २६)।
अणोलय—न० (दे०) प्रभात, प्रातः काल; (दे० ना० मा० १, १६)।
अणोवम—वि० (सं० अनुपम)—अद्वितीय, उपमा-रहित; (भ०)।
अण्ण[1]—न० (सं० अन्न>प्रा० अण्ण)—अन्न, कच्चा धान्य—चना, जौ, चावल आदि; (प० च० १, १०,८)। अण्णु—अन्न (ण०)।
अण्ण[2]—वि० (सं० अन्य>प्रा० अण्ण)—दूसरा, भिन्न; (प० च० २, १७, २;

जस० १, ४, ५)। —त्त-अन्यत्व; (जस० २, २६, ८)।

अण्णु—वि० (प० च० १, १६, ७)।

अण्णहिँ-अव्य०अन्यत्र (प० च० १०, ३, ६)। तुल० म० आण, आन। अन्न-वि०, अन्य (भ०)।

अण्ण'— वि० (सं० अनृण)-जो कर्जंकार न हो; (म० १, २५, ६)।

अण्णअ—पुं० (दे०)-१. ठग, २, देवर। वि० तरुण, युवा; (दे० ना० मा० १, ५५)।

अण्णइं—वि० (सं० अन्य>प्रा० अण्ण)-दूसरा; तुल० पु० राज० अनई, संयो० और, अन्यानि; (ण० २, १, ५)

अण्णाणु—वि० (सं० अज्ञानिन्>प्रा० अण्णाणि)-अनानी, अज्ञानी; (महा० ६६, ३, ११)।

अण्णण्ण—वि० (सं० अन्योन्य>प्रा० अण्णुण्ण)-परस्पर, एक दूसरे को या पर; (क० १, १४, १७,)। अण्णोण्ण (अन्योन्य) (क० ५, ४, १)।

अण्णत्त—अव्य० (सं० अन्यत्र>प्रा० अण्णत्त)-दूसरी जगह, भिन्न स्थान में। —हिं; (भ०)। अण्णेत्तहे-अव्य० अन्यत्र; (प० च० ३, ३, ३)।

अण्णत्ति—स्त्री० (दे०)- अवज्ञा, अप,-मान; (दे० ना० मा० १, १७)।

अण्णत्थ—वि० (सं० अन्यत्र)-दूसरी जगह; (जंवू० १०, १०, ५)।

अण्णभवन्तर—पुं० (सं० अन्यभवान्तर >प्रा० अण्ण+भव+अंतर) अन्य (पहले) जन्म की अवधि; (प० च० ५/८/१)।

अण्णमण—वि० (सं० अन्यमनस्>प्रा० अण्णमण)-१. खिन्न, उदास, २. जिसका ध्यान किसी ओर तरफ हो; (प० च० १८/५/६)।

अण्णमय—वि० (दे०)-पुनरुक्त; (दे० ना० मा० १, २८)।

अण्णरिद्धि—स्त्री० (सं० आत्मन्+ऋद्धि >प्रा० अप्पण+रिद्धि) अपनी सिद्धि; (सि० १, ३३, ८)।

अण्णव—पुं० (सं० अर्णव>प्रा० अण्णव)-समुद्र; (जस० ४, १८, २)।

अण्णवण्ण—पुं० (सं० अन्य+वर्ण)-दूहरा शब्द; (जंवू १, २, १४)।

अण्णहा—अव्य० (सं० अन्यथा>प्रा० अण्हा, अण्णह)-अन्य प्रकार से, विपरीत रीति से, प्रकारान्तर, नहीं तो, (रि० १०/३/१५)।

अण्णहि—अव्य० दूसरी ओर (रि०, प्रथम सर्ग)।

अण्णण—न० (सं० अज्ञान>प्रा० अण्णाण १. बोध या ज्ञान का अभाव, २. मूर्खता; (जस० ३, ६, ६; दे० ना०-मा० १, ७; प० च० ८।८।५, म० २, १८, २)। वि० (सं० अज्ञानिन् अज्ञानी; (जस० १, ६ १२)।

अण्णाणिय—वि० (सं० अज्ञानिन्>प्रा० अण्णाणि)-अज्ञानी; (भ०)।

अण्णाय—वि० (सं० अन्याय>प्रा० अण्णाय) न्याय-रहित, अनुपयुक्त; (ण० १, ८, ६)।—त्त वि० (सं० अन्यायत्त) अधीन, " जीव सहाउ ण अण्णायत्तउ" जीव का स्वभाव अन्य वस्तु के अधीन नहीं है; (जस० ३, २८, ४)।

अण्णारिस—वि० (सं० अन्यादृश>प्रा० अण्णारिस) दूसरे के जैसा; (प० च०

१६।६।८) ।

अण्णालाव—वि० पुं० (सं० अन्यालाप) अन्योक्ति; (जंबू २, १२, ७) ।

अण्णासत्त—वि० (सं० अन्यासक्त)–जो अन्य पुरुष में आसक्त हो; "कुकलत्तहि अण्णासत्तहि चित्तु ण केण वि विप्पइ;" (जस० २, १२, २०) ।

अण्णासिरी—स्त्री० (सं० अन्नय+श्री) अपूर्व शोभा; (जंबू० ४, ८, ११) ।

अण्णिया, अण्णी—स्त्री० (दे०) पिता की बहिन; (दे० ना० मा० १, ५१) ।

अण्णुण्ण—वि० (सं० अन्योन्य>प्रा० अण्णोण्ण, अण्णुण्ण)–परस्पर, आपस में; (जस० ४, १६, १४) ।

अण्णेक—सर्व० (सं० अन्य+एक)–अन्यद्, दूसरा; (ण० २, १, ६) । अण्णेक्क; (जस० २, ३४, ३,) (प० च० ३. १२, ४) । अण्णे तहिं—(सं० अन्ये तत्र) दूसरे वहाँ; (जंबू० ११, १२, ८)

अण्णेसम—सक० (सं० अनु+इष्; अन्वेषय्) खोजना ।–वि पू० का० क्रि० (जंबू० १०, ११, ८) ।

अण्णोण्ण—वि० (सं० अन्योन्य>प्रा० अण्णोण्ण, अण्णुण्ण) परस्पर, एक दूसरे को या पर; (प० च० २२, ५,५) ।

अण्हाणु –न० (सं० अस्नान+प्रा० अ+ण्हाण) स्नान न करना; जस० ४, १६, १४) ।

अण्हेअअ—वि०(दे०) भ्रान्त, भूला हुआ; (दे० ना० मा० १, २१) ।

अतत्थ—वि० (सं० अतथ्य>प्रा० अतत्थ) असत्य, झूठा; (की० १, २६) ।

अति—अव्य० (सं० अति>प्रा० अइ) अतिशय, अतिरेक; (रा० ४) ।

अतिराउ—वि० (सं० अतृप्त) असन्तुष्ट; (जंबू० १, ११, ४) ।

अतित्व—वि० (सं० अतीव्र) जो तीव्र न हो; (जंबू० २, ३, ३)

अतीउ—वि० (सं० अतीत) गत, बीता हुआ; (व० १०, ३६, ६) ।

अतीतउ—क्रि०, भू० का०, बीता गया, अतीत हो गया; "तिरिवालु अतीततउ गयउ जु वीतउ रयणमंजूसा रुवहि कहो," (सं० १, ४३) । अतुट्ठि–स्त्री० (सं० अतुष्टि; (जस० ४, १४, ५) ।

अतीत्तु—वि० (सं० अतृप्त) जिसकी सन्तुष्टि न हुई हो; (व० ५, ४, १२)

अतुल—वि० (सं० अतुल>प्रा० अउल) अत्यन्त (जस० ३, १६, १२) ।–तर—वि० अत्यन्त, अधिक असीम; (की० १, ६२) । —सत्ति–स्त्री० (सं० अतुल शक्ति) अपार शक्ति; (जस० १, ७, १२) ।

अत्त—वि० (सं० आर्त>प्रा० अत्त) १. कष्ट प्राप्त, पीड़ित, २. बीमार, ३. संकटग्रस्त;(सं० रा०) । वि० (सं० अप्त >प्रा० अत्त) ज्ञानदि–गुण-सम्पन, गुणी; (प० च० १६, १०, ३) ।

अत्ता—स्त्री० (दे०) १. माता, माँ; २. सासू, ३. बूआ; ४. सखी; (दे० ना० मा० १, ५१,) ।

अत्तावण—वि० (१) आतापनी, जिस पर तपस्या की जाए; (प० च० १२, ११, ६) । —इ–आतापन, आत्मताप करे, "फलभोयणइं अत्तावणइं", (जस० २, १८, १३) ।

अत्तावणि—सिल—स्त्री० (सं० आतापनी-शिला) आत्म-संयम का अभ्यास करने के लिए शिला; (प० च० १३, ८, ६)।

अत्तिल्लु—वि० (सं० अत्यन्तम्) अत्यधिक, बहुत बड़ा; (प० च०, १६। १०। ८)।

अत्तिहरु—वि० (सं० आर्तिहर) पीड़ा या व्यवस्था को नष्ट करने वाला; (ण० ६, १४, १२)।

अत्थ—पुं० (सं० अर्थ>प्रा० अट्ठ अत्थ) १. धन; (जस० २, १, ३२)। २. पदार्थ; (जंवू० २, १,. ८)। ३. आशय, प्रयोजन, लक्ष्य, (जस० १, २२,) १३ अभिप्राय:, (८०, १, १, ५; सं० रा०;) –इरि (सं० अस्तगिरि) अस्ताचल, अस्त गिरि; (क० १०, ६, ४)। अत्थाणुरूव –(सं० अर्थ+ अनुरूप) अर्थ के अनुरूप; (जंवू० ७, १, ३) अत्थायि– वि० (सं० अर्थ+अर्थिन्) अर्थ चाहने वाला, धन के याचक; (जंवू० ८, ८, ६)।

अत्थ, अत्थन्तउ—वि० (सं० अस्त> प्रा० अत्थ=अविद्यमान) १. छिपा हुआ, तिरोहित, २. अदृश्य, ३. डूबा हुआ, ४. नष्ट; (जस० २, १, ३१; प० च० १६। ३। १)।

अत्थइत्त—वि० (सं० अर्थवत्) धनवान्; (प० च० १४.१३.५)।

अत्थइरि—पुं० (सं० अस्त+गिरि> प्रा० अत्थइरि) अस्ताचल, "अत्थइरि-सिहरि पत्तइ इणम्मि,"—सूर्य अस्ताचल शिविर पर पहुँच रहा था; (व० ६, २० ४)।

अत्थक्क—अव्य० (दे०) १. अकस्मात्, विना देर के; (प० च० ४। १४। ६)। २. अनवसर (भ०)।—एँ, क्रि० वि०, शीघ्रतापूर्वक; (प० च० ३२, १४, ६)।

अत्थग्घ—वि० (दे०) अगाध गम्भीर; (दे० १, ५४)।

अत्थड्ढ—वि० (सं० अर्थाढ्य) धन से सुसम्पन्न; (सुदं० २, ५, ८)।

अत्थन्तय—व० कृ० (सं० अस्तं यत्> प्रा० अत्थंत) मृत, अस्त होता हुआ; (प० च० २५, २०, ३)।

अत्थम—अक० (सं० अस्तम्+इ>प्रा० अत्थम) अस्त होना! अत्थमाण—कृ० (सं० अस्तमन) अस्त होने, "रवी रत्तमाणो गओवत्त अत्थमाणो,'–'सूर्य रक्तवर्ण होकर अस्त होने चला; (ण० ६, १७, १०)।

अत्थमिय—वि० (सं० अस्तमित) अस्त हुआ, अदृश्य हुआ; (भ०)।

अत्थयारिआ—स्त्री० (दे०) सखी, सहेली; (दे० ना० मा० १, १६)।

अत्थवण— न० (सं० अस्तमन>प्रा० अत्थमण; अत्थवण) (सूर्य का डूबना; (जस० ४, १०, ८; प० च० १३। १२ ५)।

अत्थाण—न० (सं० आस्थान>प्रा० अत्थाण) सभा, सभा-स्थान; (जस० २, १३, १; प० च० २। ६। ७; क० ६, १, २)।—अत्थाण—णिवन्धण—सभा लगाना; (प० च० १६। २। ३)।

अत्थाणि—स्त्री० (सं० आस्थान>प्रा० अत्थाण, न०) सभा, सभा-स्थान, "अत्थाणि परिट्ठिउ धरणिपालु" (ण० १,

८, ६)–य–पुं० (सं० आस्थानिक) सभासद्; (भ०)।

अत्थार—पुं० (दे०) सहायता; (दे० ना० मा० १, ६)।

अत्थासिउ—वि० (सं० अस्त+आसीन) अस्ताचल पर स्थित, "अत्थासिउ रत्तउ मित्तु जहिं," जहां अस्ताचल पर सूर्य अनुरक्त (लाल) हुआ; (जस० २, २, १)।

अत्थाह—वि० (सं० अस्ताघ) थाह-रहित; तुल० म० अथाक; (भ०)।

अत्थि—क्रि० (सं० अस्ति>प्रा० अत्थि) होना' क्रिया कावर्तमान-कालिक एक वचन रूप। तुल० पु० म० आथी; (सि० १, १६, ३३; ण० १, ६, ४; प० च० १२, ६, ७)। —काय पुं० (सं० अस्ति+काय>प्रा० अत्थिकाय) जैन धर्म के पांच अस्तिकाय—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म एवं आकाश;। (ण० १, १२, २)। –जण० वि० (सं० अर्थीजन) धनी व्यक्ति; (जंबू० ३, ३, ११)।

अत्थि—न० (सं० अस्थि>प्रा० अत्थि) हाड, हड्डी; (प० च० १८। ६। ७)।–काय पुं० (सं० अस्तिकाय) जैन शास्त्रानुसार वे सिद्ध पदार्थ जो प्रदेश या स्थानों के अनुसार कहे जाते हैं। ये पांच हैं– १. जीवस्तिकाय, २. पुद्गलास्तिकाय, ३. धर्मास्तिकाय, ४. अधर्मास्तिकाय, ५. आकाशस्तिकाय।

अत्थिजण—पुं० (सं० अर्थिन्जन>प्रा० अत्थिजण) याचक लोग; (संधि० १, ३, ८)। अत्थिजन (की० १, ६६)।

अत्थिर—वि० (सं० अस्थिर) चंचल, अदृढ़; (भ०)। अत्थीर (अस्थिर) (प्रा० पैं० २, १४२)।

अत्थुड—वि० (दे०) लघु; छोटा; तुल० गु० थोडुं (कम), म० थोडका (अल्प); (दे० ना० मा० १, ६)।

अत्थुरिय—वि० (सं० आस्तृत) विछाया हुआ; (दे० ना० मा० १, २३)।

अथक्क—वि० (सं० अस्थिर>प्रा० अस्थिर) जो दृढ़ न हो, चंचल; (प० च० १७। ६। ६)।

अद्द—वि० (दे०) अस्तब्ध; (भ०)।

अथेरउ—वि० (सं० अ+स्थविर) अजर, अविनाशी, "तहिं साहीणु सुक्खु महुकेरउ। अखउ अणंतु अदुक्खु अथेरउ"—मोक्ष में मुझे स्वाधीन सुख मिलेगा जो अक्षय, अनन्त दुखरहित और अजर है, (म० १, ३१, ६)।

अदत्तादाण—न० (सं० अदत्तादान) अपरिग्रह, धन आदि का संग्रह न करना; (भ०)।

अदब—पुं (अ० अदब) अदब, शाही-दरवार का शिष्टाचार; (की० ३, ४१)।

अदभुद—वि० (सं० अद्भुत) विचित्र; तुल० गु० अदबद; (प्रा० गु० ३२, २)।

अदवक्किय—वि० (दे०) निर्भय; (जंबू० ६, १४, १४)।

अदियहें— (सं० अ+दिवसे)–रात्री; (प० च० ६। ७। ४)।

अदीण—वि०)सं० अदीन>प्रा० अदीण)दीनता-रहित; (जंबू १०, २६, ६)।

अदुगुंछिय—वि० (सं० अ+जुगुप्सित) अनिन्दित, अघृणित; (ण० २, ७, १०; हे० प्रा० ४, ४)।

अदुम्मइ—वि० (सं० अदुर्मति)-दुर्भावना से रहित; (जस० १, १३, ११)।

अदूसिउ—वि० (सं० अदूषित)-जो दूपित न हो; (व० २, ११, ७)।

अद्दंसण—वि० (सं० अदर्शन>प्रा० अद्दंसण) जिसका दर्शन न हो, अदृष्ट। -हूई (सं० अदर्शनी-भूत)अदृश्य; (जस० ४, २१, १७)। अद्दंसणें (क० ५, १४, ८)।

अद्द—पुं० (सं० अब्द>प्रा० अद्द)-वर्ष; (क० ४, १७, ७)। वि० (सं० आर्द्र>प्रा० अद्द) गीला; तुल० गु० आदु; (संधि० १४, ४, ५)।

अद्दप्प—पुं० (सं० अदर्प) घमण्ड न करना; (भ०)।

अद्दा—स्त्री०(सं० आर्द्रा>प्रा० अद्दा) उपजाति छन्द का भेद; (प्रा० पैं० २, १२१)।

अद्दिय—वि० (सं० आर्द्रित) आर्द्र किया हुआ; (भ०)।

अद्धंग—पुं० (सं० अर्धाङ्ग); अर्धांग (प्रा० पैं० १, ९८)।

अद्धंजिउ-भू० का०क्रि० (सं० अर्द्ध+अञ्जित) अधूरा अंजन लगाया; । अद्धंजिउ एक्कु जि नयणु फारु; (जंबू० ४, ११, ९)।

अद्ध—वि० (सं० अर्द्ध>प्रा० अद्ध) आधा, पूरे के दो बराबर भागों में से एक। पुं० खंड, टुकड़ा; तुल० म० आद, राज० आधो; (म० २, ७५, ८; जस० ४, १२, ६)-इंदु पुं० अर्ध चंद्र (व० ३, ६, १०)।—द्ध (सं० अर्द्ध+अर्द्ध) आधे का आधा, "अद्धदुवार" अर्द्धद्वार का आधा भाग; (जस० २, ५, ६)।

अद्धु-अद्धु वि० (सं० अर्द्ध+अर्द्ध> प्रा० अद्ध+अद्ध) आधा-आधा; (व० १०, ३२, १३)।

अद्धक्खण—न० (दे०) प्रतीक्षा करना; राह देखना; (दे० ना० मा० १, ३४)। २. परीक्षा करना; (दे० ना० मा० १, ३४)।

अद्धक्खियं—न० (दे०) इशारा करना, संकेत करना; (दे० ना० मा० १, ३४)।

अद्धकखु—पुं० (सं० अध्यक्ष) विभागाध्यक्ष; (ण० ३, ३, ८)।

अद्धचक्कि—पुं० (सं० अर्द्ध+चक्रिन्> प्रा० अद्ध+चक्कि)चक्रवर्ती राजा, "तं फुडु अद्धचक्कि-तणु लक्खणु;" (व० ३, १९, ७)।

अद्धजंघा—स्त्री० (दे०)एक प्रकार का जूता; (दे० ना० मा० १, ३३)।

अद्धमियंक—पुं० (सं० अर्द्धमृगाङ्क) वाण; (व० ५, १७, १७)।

अद्धरत्ति—स्त्री० (सं० अर्ध+रात्रि> प्रा० अद्ध+रत्ति) आधी रात; निशीथ; तुल० गु० अधरात; (सि० २, १२; प० च० २६, ४, १०; ण० ६, १७, १३)।

अद्धवह—पुं० (सं० अर्धपथ>प्रा० अद्ध+वह)आधा मार्ग; (ण० ८, ६, १४)।

अद्धविमीसिय—वि० (सं० अर्द्ध+विमिश्रित)आधा मिला हुआ; (व० १०, ४ १२)।

अद्धससी—पुं० (सं० अर्ध+शशिन्>

प्रा० अद्ध+ससि)—आकार में दिखाई देने वाला चन्द्रमा का आधा भाग; (प० च० १७। ५। ७)।

अद्धा—अव्य० (दे०) तत्वतः वस्तुतः; (प्रा० पैं० १, ११५)।

अद्धिंदु—पुं० (सं अर्धेन्दु>प्रा० अद्ध+इंदु) आधा चन्द्रमा; (क० १, १६, १३)।

अद्धि—पुं० (सं० अद्रि>प्रा० अद्दि)—पर्वत, पहाड़ (व० ८, १०, ४)।

अद्धुम्मिल—वि० (सं० अर्द्ध+उन्मीलित>प्रा० अद्ध+उम्मिल्लिय) अर्ध-विकसित; (ण० ३, ८, ५)।

अद्धुम्मिल्लय—वि० आधा खुला हुआ, आंशिक रूप से दिखाई देने वाला; (प० च० १४, ७, ६)।

अद्‌धुव—वि० (सं० अध्रुव>प्रा० अद्‌धुव) चंचल, अस्थिर; जंबू० ११, १, ३)

अद्धेंदु—पुं० (सं० अर्द्ध+इन्दु) आधा चन्द्रमा; (जंबू० ४, १३, १४)।

अद्धोअद्धि—वि० (सं० अर्धार्ध>प्रा०-अद्धअद्ध) दो टुकड़े वाला आधा-आधा; तुल० गु० अरधोअरध; (प० च० २६, ३, ६)।

अधंग—पुं० (सं० अर्द्धाङ्ग) अर्धांग (प्रा० पैं० १, ६८)।

अधओगति—स्त्री० (सं० अधोगति)—१. पतन, २. अवनति, ३. दुर्दशा; । (की० २, १४२)।

अधम्नु—पुं० (सं० अधर्म>प्रा० अधम्म) पाप-कार्य; (व० १०, ३६, ३)।

अधीर—वि० (सं० अधीर) धैर्य-रहित, उद्विग्न; (जंबू० १०, २६, ७)।

अनअ—पुं० (सं० अनय>प्रा० अणय) अनीति, अन्याय; (की० ४, २२२)।

अनः—वि० (सं० अन्यदपि—अन्यत्+अपि) दूसरा भी; तुल० गु० अने; (संधि० १८, १, ३)।

अनन्ता—वि० (सं० अनन्त>प्रा० अणंत) १. शाश्वत, २. अपरिमित; (की० २, १७३)।

अनावाटा—वि० (सं० अनावर्त) जो इस संसार के आवर्त-भंवर से छूट जाता है, (हिं० का०, च० १५)।

अनित्यु—वि० (सं० अनित्य>प्रा० अणिच्च) नश्वर, अस्थायी; (उ० व्य० प्र० १०—३)।

अनु—संयो० तथा "करडिम्व अनु कांचडिअउ कानहि,"—कानों में करडिम (एक गहना) और कांचडियां (एक प्रकार का कर्णाभरण) हैं; (रा० ११)।

अनुमग्गयारि—वि० (सं० अनुमार्ग—चारिन्>प्रा० अणुमग्गचारि) पीछे-पीछे जाने वाला; (क० ७, ३, २)।

अनुरंजिअ—क्रि० भू० का० (सं० अनु+रञ्जय > प्रा० अणुरंज) अनुरंजित किया; (की० २, २४६)।

अनुरंजियं—वि० (सं० अनुरञ्जित>प्रा० अणुरंजिय) अनुरक्त किया हुआ, अनुरागी बनाया हुआ; (भं०)।

अनुरत्ते—वि० (सं० अनुरक्त>प्रा० अणुरक्क) अनुरक्त, जिसके मन में किसी के प्रति अनुराग हुआ हो; (की० ३, १४६)।

अनेरउ—वि० (सं० (अन्यतर) दूसरा, भिन्न, दो में से एक; तुल० गु० अनेरो; प्रा० गु० ११, ८,)।

(प्रा० गु० ११, ८) ।

अनेसउ—वि० (सं० अन्यादृश)–दूसरे प्रकार का; (प्रा० गु० २०, ४) ।

अन्तयरि—वि० (सं० अन्तकरी)–विनाशिका; (प० च० १५।१३।६)।

अन्तर-वड—पुं० (सं० आन्तर-पट> प्रा० अंतर+पड) भीतरी वस्त्र; (प० च० ३१, १२, ७) ।

अन्तरिक्ख—पुं० (सं० अन्तरिक्ष>प्रा० अंतरिक्ख पुं० न०) पृथ्वी और दूसरे ग्रहों या नक्षत्रों के बीच का स्थान; (की० ४, १८८) ।

अन्तरु—पुं० (सं० अन्तर>प्रा० अंतर न०) दो वस्तुओं के बीच का भेद; (हे० ४०६, ३)।

अन्धलय—वि० (सं० अन्ध>प्रा० अंधल, अंधलअ) नेत्र-हीन, तुल० गु० आंधळो; (प० च० ३४, २, ६) ।

अन्न,—वि० (सं० अन्य>प्रा० अण्ण, अण) ।–इं (सं० अन्यानि) अन्य (हे० ४२७, १)। अन्नु–वि० अन्य (हे० ३३७, १) । अन्ने—दूसरा (हे० ४१४, १)।

अन्नेक्क–वि० सं० अन्यैक) कोई दूसरा; तुल० म० आणीक; (भ०) ।

अन्न—पुं० (सं० अन्नम्>प्रा० अण्ण न०) आज, चावल, जौ आदि धान्य; (उ० व्य० प्र० ६–१५; जंबु० १०, १२, १०) ।

अन्नह—अव्य० (सं० अन्यथा>प्रा० अण्णह) अन्य प्रकार से, विपरीत रीति से; "अन्नह कह एरिस कन्न महायस असरिसु कइय वि वरु वरइ,"; (विला०) ।

अन्तहिं(¹)—प० (सं० अन्तस्मिन्) में, भीतर ।

अन्तावली— स्त्री० (सं० अन्त्रावली) अँतड़ी; (की० ४, १६६) ।

अन्धार—पुं० (सं० अन्धकार>प्रा० अंधार) अंधेरा; तुल० गु० अंधारुं; (की० ४, १६; प० च० ७।३।८) ।—य, अंधकार; (प० च० ६, ६, ६) ।

अन्धारिअ—वि० (सं० अन्धकारित्> प्रा० अंधारिय) अंधकार वाला, तुल० गु० अंधारवुं; (प० च० ७।२।३) ।

अपजस—पुं० (सं० अपयश) अकीर्ति; (की० ४, ६६) ।

अपडिबद्ध—वि० (सं० अ+प्रतिबद्ध> प्रा० अपडिबद्ध)–प्रतिबन्ध-रहित, बेरोक; (ण० ४, ४, ६) ।

अपणीं—वि० (सं० आत्मीय>प्रा० अप्पण) अपनी, स्वकीय; (उ० व्य० प्र० ५२-१६)–

अपत्त—वि० (सं० अपात्र) कुपात्र; (जस० १, १६, ७) ।

अपथिय—वि० (सं० अप्रर्थित) जो प्रार्थित न हो; (भ०) ।

अपन—निज वाचक सर्व० (सं० आत्मन् >प्रा० अप्पण) अपनी; (भ०) । अपनेहु–सर्व०—अपना भी (की० ३, ३६) । टि०–संस्कृत के आत्मन् से अपभ्रंश में अप्प निजवाचक सर्वनाम बनता है। अप्पा, अप्पण, अप्पणु, अप्पाणु, अप्पउ इत्यादि रूपों में भी इसका प्रयोग प्राप्त होता है ।

अपमत्त—वि० (सं० अप्रमत्त>प्रा० अप्पमत्त, अपमत्त) प्रमाद-रहित;(भ०) ।

अपमाण—वि० (सं० अप्रमाण>प्रा०

अपमाण) असीम, अपरिमित; "एत्थत्थि पिहरभ त्वयपहाण विजयड्ढु पसिद्धउ अप्पमाणु"—इसी भारत देश में पर्वतों में प्रधान, प्रसिद्ध और असीम विजयार्द्ध पर्वत है; (क० २, २, १)। अप्पमाण (क० २, २, १)।

अपरज्जिय—वि० (सं० अपराजित> प्रा० अपराइय) अजेय, जो जीता न गया हो; (भ०)।

अपरपाल—पुं० (सं० अपर पक्ष) श्राद्ध पक्ष; (प्रा० गु० २८, ७)।

अपवग्ग—पुं० (सं० अपवर्ग>प्रा० अपवग्ग)—मोक्ष, मुक्ति; (भ०)।

अपह—वि० (सं० अप्रभ>प्रा० अपह) निस्तेज; (दे० ना० मा० १, १६४)।

अपहत्थ—पुं० (सं० अपहस्त>प्रा० अपहत्थ, अवहत्थ) मारने के लिए या निकाल बाहर करने के लिए ऊँचा किया हुआ हाथ, (भ०)। क्रि० (सं० अपहस्तय्>प्रा० अवहत्थ) हाथ को ऊँचा करना।

अपाल—वि० (सं० अ+पाप>प्रा० अपाव)—१. पाप-रहित; २. न०—पुण्य; (ण० २, ३, १२)।

अपाउस—पुं० (सं० अ+प्रावृष) वर्षा काल न होना; (जंबू ४, ८, १३)।

अपावन—वि० (सं० अपावन) अपवित्र; (की० २, ३७)।

अपायड—वि० (सं० अप्रकट>प्रा० अ+पयड) जो प्रकट न हो (जस०)।

अपार—वि० (सं० प्रा० अपार) अनन्त, पार-रहित; (भ०)। अपारु-वि०, अत्यधिक; (प्रा० पैं० १, १०२)।

अपारमग्ग—पुं० (दे०) विश्रान्ति; (दे० ना० मा० १, ४३)।

अपाव—वि० (सं० अपाप>प्रा० अपाव) पाप-रहित; (भ०)।

अपास—वि० (सं० अस्पृष्ट) अप्रभावित "जय पास अपास अणंगदाह"—अनङ्ग की दाह से अस्पृष्ट पार्श्वनाथ की जय हो; (प० १, १६, १)।

अपिच्छणिज्ज—वि० (सं० अप्रेक्षणीय) जो विचारणीय या देखने के लिए उपयुक्त न हो; (भ०)। अपिच्छमाण–कृ० (सं० अप्रेक्षमाण); (भ०)।

अपुज्ज—वि० (सं० अपूज्य) जो आदरणीय न हो, (भ०)।

अपुसिय—वि० (सं० अ+प्रोञ्छित) अमार्जित, (ण ५, १०, २१)।

अपूर—वि०(सं० अपूर्ण>प्रा० अपुण्ण)—अधुरा, अपरिपूर्ण; तुल० गु० अपूरं,(प० च० ४१, २, ७)।

अपेअ—वि० १. (सं० अपेत=गत इत्यर्थः) गया हुआ; (जस०); २. (सं० अपेय) न पीने योग्य;(जस०४, १४, ६; जंबू १, ६, १०)।

अप्प—सर्व०(सं० आत्मन्>प्रा० अप्प) निज, स्वयं; (जस० १, ६, ८; की० २,२, ११८)—अ, सर्व० अपना(जस० २, ११, ३)।—उ, सर्व०अपने आपको(सि० ३६, १)। –कज्ज पुं०(सं० आत्मकार्य) (ण० ६,१७, ३८,)। –गउ–सर्व०अपना सि० २,७,१४)। –न सर्व०अपना (की० ४, १४६)। —वस वि० अपने वश में (की० १, ७४)। अप्पुण–सर्व० स्वयं; तुल० गु० म० आपण (प० च० ५, १४,

४) । अप्पुणु—सर्व०(प० च० २२,३,६; क० ४, ३, ४) । —हिउ पु० (सं० आत्म-हित) अपना हित; (यो० ४६) ।
अप्प—(सं० अर्पय्) अर्पित करना; इ (जंबू १, ११, २०) । अप्पंत—कृ० (सं० अर्पय+शतृ) (जंबू० ८, १४, ६) ।
अप्पहि—क्रि० आ० (सं० अर्पय) अर्पित करो; (क० ३, ४, ७; की० ४, ३) ।
अप्पिआ—क्रि० भू० का०, अर्पित किया (की०३, ७६) अप्पिवि । पु० का० क्रि० (क० २, ६, ५)। अप्पेवि, पु० का०क्रि० तुल० गु० आपवु (प० च० १६, ११, ३) ।
अप्पज्जत्ता—वि० (सं० अपर्याप्तिक) जैनशास्त्रानुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से जीव की पर्याप्ति, (निवारण, पूर्णता न हो; (व० १०, ५, १२) ।
अप्पडिम—वि० (सं० अप्रतिम>प्रा० अप्पडिम) असाधारण; (महा० ६८, ३) ।
अप्पणउं—सर्व० (सं० आत्मीयम्)—स्वकीय; (प्रा० गु० ३८, २४) । अप्पणत—पुं० अपनत्व (जंबू० १०, २३, ५) ।
अप्पणय—सर्व० (सं० आत्मन्>प्रा० अप्पण) स्वकीय, निज का; "जं अवुहु पदरिसिउ अप्पणउ,—"और अपना अज्ञान प्रदर्शित किया है; तुल० गु० आपणुं; (प० च० १ । ३ । १२) ।
अप्पणु—निज वाचक सर्व०, सम्बन्ध कारक;(हे० ३३७, १) । अप्पाणु सर्व० (सं०आत्मानम्) (प० च० २३, ५, २) । तुल० म० आपण ।
अप्पणा—सर्व० (सं० आत्मन्>प्रा० अप्पण) अपना; (हे० ३३८, १) ।
अप्पणि–वि०, स्वकीय (संधि० १६, १०, ३) । अप्पणिय–सर्व० अपना (प० च० १२, ४,४) । अप्पणीय–वि० स्वकीय (सि० १, ३१)। अप्पाण—सर्व०, अपना (पाहु० ३३) । अप्पुणहु—सर्व०, अपना (सुअंध० २, २, १६) ।
अप्पमत्त— वि० (सं० अप्रमत्त>प्रा० अ+पमत्त) जो प्रमादी या प्रमाद-युक्त न हो; (जस० ४, १६, १६) ।
अप्पमाण—न० (सं० अप्रमाण >प्रा० अपमाण) झूठा, असत्य; (प० च० १०।६।५) । वि० असीम (जंबू० ५, ३, ३) ।
अप्परूविय—वि० (सं० आत्मरूपित)–आत्मरूप, "अप्पाणे ज्जि अप्परूवियमणु" आत्मा में ही आत्म-रूप होकर; (जंबू० १०, २३, ६) ।
अप्पलद्धि—स्त्री० (सं० आत्मलब्धि> प्रा० अप्पलद्धि) आत्म-प्राप्ति या लाभ; (ण० ३, २, ६) ।
अप्पवह—पुं० (सं० आत्मवध > प्रा० अप्पवह) आत्मघात; आत्महत्या; (जस० २, १४, ६) ।
अप्पसण्णु—वि०(सं० अप्रसन्न) नाराज, "हउं अप्पसण्णु मुहु एत्थु जेण"— मैं यहाँ अप्रसन्न-मुख हूँ; (व० ३, १६, २) ।
अप्पसत्तु—वि०(सं० आत्मसत्तु) आत्माभिमानी; (व० ५, ११, ४) ।
अप्पसमाण— वि० (सं० आत्मन्+समान) आत्म सदृश; (व० २, ११, १)।
अप्पसाय— पुं० (सं० अप्रसाद>प्रा० अ+पसाय) अप्रसन्नता; (भ०) ।

अप्पा— सर्व० (सं० आत्मन्>प्रा० अप्प)– १. आप; (ण० १, १०, ६)। २. स्त्री० (सं० आत्मन्) आत्मा, जीव; (परम० १, १, ५१)। ३. सर्व०, अपना (की० ४, १७६)। —अप्पी—सव०, अपने आप; (प्रा० पैं० २, १५७)।—ण, सर्व०, अपना।—णय-सर्व०, स्वयं (प० च० १, १, १६)। अप्पाण—सर्व० (सं० आत्मन्)–अपना, म० आपणु (भ०)। अप्पु—सर्व०, अपना (की० ३, ८०)।

अप्पुणु— सर्व० अपना (जस० १, ५, १७)।

अप्पाइत्तउ—वि० (सं० आत्माधिकृत) अपने ऊपर अधिकार, 'किंकरु होइ न अप्पाइत्तउ', (व० ४, २४, १३)।

अप्पाणअ—सर्व० (सं० आत्मनः)–निज, अपना; (जंवू० ६, ५, ११)।

अप्पिण— सक० (सं० अर्पय्)–अर्पण करना; अप्पिवि—पू० का० क्रि० सौंप कर "रायहों धुर अप्पिवि सुअहों जाउ', —राज्य का भार सौंप कर निश्चिन्त हो गया, (व० १, १२, १)।

अप्पिय— वि० (सं० अर्पित > प्रा० अप्पिय) भेंट किया हुआ; (ण० ७, ८, ३)।

अप्फालइ—क्रि० (सं० आ+स्फालय्> प्रा० अप्फाल, अप्फालेइ) १. हाथ से आघात करना, २. पीटना, ३. ताल ठोकना; (प० च० २८, ६, ७; भ०); अप्फालउ—वर्त० उत्तम एक व० (सं० आस्फालयामि)हिला डालू; (प्रा० पैं० १, १०६)। अप्फालहिव०, म०पु०(प० च० ५५, २, ७)। अप्फालमि व० उ० पु० (प० च० ४, १२, २)। अप्फालिवि—पू० का० क्रि०, हाथ फटकार कर "कर अप्फालि विविण्णिवि धाइय"— हाथ फटकारते हुए दोनों दौड़े; (सि० २, २४, २)।

अप्फालिय—वि० (सं० आस्फालित प्रा० अप्फालिय) १. जोर से, उन्नत स्वर में; "दुंदुहि अप्फालिय केहिँ फार"—किन्हीं ने जोर से दुन्दुभी बजायी; (क० ४, ११, ५)। २. हाथ से ताडित, आहत (प० च० २, ४, १)। क्रि० भू० का०—(सं० आस्फालय>प्रा० अप्फालय), वज उठे, तूरभेरि अप्फालिय"—तूर्य नगाड़े वज उठे; (सि० १, १८, १२)।

अप्फुणं—वि० (सं० अपूर्ण>प्रा० अप्फुण्ण) अधूरा; (दे० ना० मा० १, २०)।

अबद्ध—वि० (सं० अबद्ध) जो बंधा न हो, मुक्त; (जंवू० १०, ५, १)।

अबल—वि० (सं० अबल) बल-रहित; (जंवू० ११, ७, ५)।

अबाहि—वि० (सं० अबाध) निर्बाध, अखंड; (जंवू० ३, १०; ४)।

अबुद्धसिरी—स्त्री० (दे०) इच्छा से भी अधिक फल की प्राप्ति; (दे० ना० मा० १, ४२)।

अबे—अव्य० (सं० अयि) अबे (गाली), अरे,(बहुत छोटे या हीन व्यक्ति के लिए) संबोधन; (की० २, १७०)।

अब्वेज्ज(?)—(पूर्वी अप०) स्त्री० (सं० अविद्या) अविद्या।

अब्बंभण—पुं० (सं० अब्रह्मण्य) अब्रह्म, ब्राह्मण के अयोग्य कर्म, हिंसादि; "तह अव्वंभण कहि मि ण माइय"—अब्रह्म के अनेक भेद तो कहीं समाते भी नहीं थे, (म० १, ३३, १२)।

अव्वुइ—पुं० (सं० अर्बुद) आबू जो जैनों का तीर्थ स्थान है; (प्रा० गु० २४)।

अव्वुय—पुं० (सं० अर्बुद) आबू पर्वत; (जंबू० ९, १६, ६)।

अव्वो—अव्य० मातृ (सम्बोधने) (सुदं० ८, ६, १०)।

अब्भंगिउ—क्रि०विध्यर्थक (सं० अभ्यक्त) —मालिश करो; (जस० २, ११, ९)।

अब्भंतर— न० (सं० अभ्यंतर>प्रा० अब्भंतर) भीतर, भीतरी भाग; तुल० गु० भीतर; (जंबू० ३, २, ४)। अब्भंतरु (क० ५, ३, २; जस० ३, २१ १८)।

अब्भंतरउ—वि० (आभ्यन्तरिक) आंतरिक; (जंबू० १०, २३, ८)।

अब्भ—न० (सं० अभ्र>प्रा० अब्भ) आकाश; (व० ९, १०, १६)।

अब्भइय—वि० (सं० अभ्यधिक>प्रा० अब्भहिय) विशेष, ज्यादा; (प० च० २६, ५, ५)।

अब्भक्खण—न० (दे०) अपयश; (दे० ना० मा० १, ३१)।

अब्भत्थण — न० (सं० अभ्यर्थन) सत्कार, अभ्यर्थना, प्रार्थना; (जंबू० १, २, ६)।

अब्भत्थिय—वि० (सं० अभ्यर्थित>प्रा० अब्भत्थिय) प्रार्थित; (क० ७, १४,६)। —उ वि०, अभ्यर्थित; (रि०, चतुर्थ सर्ग)।

अब्भपिसाय—पुं० (सं० अभ्रपिशाच) राहु; (प० च० २८, ११, ३; दे० ना० मा० १, ४२)।

अब्भसह—क्रि० विध्यर्थक (सं० अभि+√अस् अध्ययने)—अभ्यास करो; (जस० ४, ६, ६)।

अब्भरहुल्ल—वि० (सं० अभ्यर्हणीय) सम्माननीय, आदरणीय; (भ०)।

अब्भस— (सं० अभि+अस् > प्रा० अब्भस) अभ्यास करना।—इ सक० (जंबू० २, २०, २)।

अब्भसिय—वि० (सं० अभ्यस्त>प्रा० अब्भसिय, सीखा हुआ, जिसका अभ्यास किया गया हो; (ण० ३, १, ७)। अब्भसियअ—वि० (जंबू० ४, ९, ६)।

अब्भहिअ— वि० (सं० अभ्यधिक> प्रा० अब्भहिय) विशेष; ज्यादा; (सुदं० ३, ५, ४)।

अब्भा—पुं० (सं० अभ्र>प्रा० अब्भ) मेघ, बादल; (हे० ४४५, १)।

अब्भायत्त— वि० (दे०) प्रत्यागत, वापिस आया हुआ; (दे० ना० मा० १, ३१)।

अब्भास— न० (सं० अभ्यास>प्रा० अब्भास) बार-बार किसी कार्य को करना; (भ०)।

अब्भासइ—सक० (सं० अभ्यासयति, अभि+√अस्>प्रा० अब्भास) अभ्यास करना; (भ०)।

अब्भासओ—वि० (सं० अभ्यस्त) अनुभूत, जिसका अभ्यास किया गया हो, (विला०)।

अब्भिट्ट—वि० (दे०)सामने आकर भिड़ा हुआ; (प० च०)। क्रि० सामने आकर भिड़ना।—अक० इ(जंबू० ६, १, ८)।

अब्भिड—अक० (प्रा० अब्भिड, अब्भि-

डइ = मिलना) भिड़ना (encounter) (जस० २, ३२, १; प० च० ४६, ५, १)।—इ, क्रि० मिलना, संगति करना (प० च० १७, १)। —उ क्रि० भू० का०, भिड़ गया, "रणि अब्भडिउ", युद्ध में भिड़ गया; (सि० १, २७)।

अब्भिडिअ— वि० (दे०)१- समागत, (क० ३, १६, २; ण० ८, १५, ६; हे० प्रा० ४, १६४)। २- संगत (दे० ना० मा० १, ७८)। ३- मजबूत (दे० ना० मा० १, ७८)।

अब्भुत्थाण-पुं. (सं० अभ्युत्थान) उन्नति, सम्पन्नता; (भ०)।

अब्भुद्धर— (सं० अभ्युद्+ धृ > प्रा० अब्भुद्धर) उद्धार करना।—इ, सक० (भ०)।

अब्भुद्धरण- न. (सं० अभ्युद्धरण प्रा० अब्भुद्धरण) उद्धार; (भ०)।

अब्भुय— वि० (सं० अद्भुत > प्रा० अब्भुय)आश्चर्य-कारक; (जस० १, १८, ३०; ण०६, १५, ८)।

अभंग—वि. (सं० अभङ्गिन) न टूटने वाला; (जस०१, १८, ४)।

अभउ—क्रि०(सं० अ+भू, अभूतः) हुआ; (जंबू० ३, ५, ११)।

अभक्ख— वि० (सं० अभक्ष्य> प्रा० अ + भक्ख) न खाने के योग्य; (भ०)।

अभग्गु—वि० (सं० अभग्न > प्रा० अभग्ग) अखण्डित; (जस०; भ० च०)।

अभय— वि० (सं० प्रा० अभय) निर्भय; (प्रा० पैं० १, १११)। —दाणु न० अभयदान (व० ३, १६, १)।

अभवियवि— वि० (सं० अभव्य > प्रा० अभविय, अभव्व) असुन्दर, अचारु; (व० १०, २०, १६)।

अभाउ— पुं० (सं० प्रा० अभाव) अविद्यमानता; (जंबू० १०, ३, ६)।

अभाग—पुं० (सं० अभाग्य) दुर्भाग्य, (की० २, २३६)।

अभिज्ज—वि० (सं० अभेद्य) जो टुकड़े-टुकड़े न किया जा सके, जो वेधा न जा सके; (व० ५, १५, ५)।

अभिणउ— पुं० (सं० प्रा० अभिणय) शारीरिक चेष्टा द्वारा हृदय का भाव प्रकट करना; (प्रा० पैं० २, ४८)।

अभिण्णपुड— पुं० (दे०) खाली पुड़िया जिसे बच्चे हँसी-दिल्लगी रास्ते पर बाजार-मार्ग में रख देते हैं; (दे० ना० मा० १, ४४)।

अभिमत— वि० (सं० अभिमत) इष्ट, वांछित। पुं० मत, विचार(प्रा० पैं० २, १३८)।

अभीअ— वि० (सं० अभीत) निडर; (जस० १, ५, १७)। अभीओ-वि० निर्भीक; (व० ४, ५, १)।

अभीरु— वि० (सं० प्रा० अभीरु) निर्भीक शूरवीर (व० ६, १६, १४)।

अभीस— वि० (सं० अ+√ भेष्= डरना, त्रस्त होना) निर्भय; (व० ४, ३, २)।

अभुल्लउ— वि० (दे०) अचूक, न भूलने वाला (जस० ४, २४, १)।

अभेय—वि० (सं० अभेद) अभेद्य; (प० च० १५, १० ७)

अमंगल— न० (सं० अमङ्गल) अशुभ; (जस० ३, ६, १२)।

अमणोज्ज—वि० (सं० अमनोज्ञ)- असुन्दर, "किं अंतेउरु अमणोज्जु जाउ" क्या अन्तःपुर अमनोज्ञ हो गया; (जस०

२, १२, १३) ।

अमग्ग— पुं० (सं० अमार्ग, कुमार्ग, खराव रास्ता; (भ०) ।

अमणूस— पुं (सं० अमनुष्य) मनुष्य-भिन्न; (भ०) ।

अमय— न० (सं० अमृत >प्रा० अमय ।

अमयणिग्गम—न० (सं० अमृतनिर्गम)- चन्द्रमा; (दे० ना० मा० १, १५) ।

अमयवाह—पुं० (सं० अमृतवाह)- चन्द्रमा; (प० च० २५, १३, ८) ।

अमयासण—पुं० (सं० अमृताशन)- देवता; (व० १०, २२, ५) ।

अमरकोसु—पुं० (सं० अमरकोश) अमरकोश नामक संस्कृत का कोश; (सि० १, ७) ।

अमरगय—पुं० (सं० अमर+गज) ऐरावत; (जंबू० १, ११, ३) ।

अमरगिरि—पुं० (सं० प्रा० अमर-गिरि) मेरु पर्वत; (व० ७, १, ३) ।

अमरणियर—पुं० (सं० अमरनिकर)- देव समूह; (जस० १, २, ११) ।

अमरत्त—पुं० (सं० अमरत्व)अमर होना (जस० १, ७, १३) ।

अमरपुरसुन्दर—पुं० छन्द; (सुदं० ६, १०, १३) ।

अमरालय—पुं० (सं० अमरालय) १. स्वर्ग लोक; (व० १०, ३०, ७) । २. सुमेरु पर्वत (व० ७, ६, २) ।

अमरु—पुं० १. छप्पय छन्द का भेद, (प्रा० पैं० १, १२३) । २. देव; (व० २, १६, १२) ।

अमल—वि० (सं० प्रा० अमल) १. निर्मल; (जस० ४, ११, १२) । २. यथार्थ रूप में; (व० १०, ३, ३) । –कित्ति-स्त्री० अमल कीर्ति; (व० ४, १२, १३) ।—मइ–वि० (सं० अमल+मति>प्रा० अमल+मइ) निर्मल बुद्धि-वाला, (सि० २, ६) ।

अमलिय—वि० (सं० अमलिन>प्रा० अ+मलिण) निर्मल; (जस० ४, ११ १२) ।

अमाण—वि० (सं० अमान>प्रा० अमाण) १. अमाप, अनन्त, असंख्य; (म० २, ७, ७) । २. मानरहित; (जस० १, १८, २६) ।

अमाया—स्त्री० (सं० अमाया) कपट-शून्यता, ईमानदारी, निष्कपटता; (भ०) ।

अमारिअ—वि० (सं० अ+मारित) विना मरा हुआ; (अर्थात् मृत्यु से बच-कर) 'एवहिं कहिं जाहि अमारिउ'; (जंबू० ७, ६, ३६) ।

अमिअ—न० (सं० अमृत> प्रा० अमिय) अमृत, (की० १,२०) ।

अमिअ—न० अमृत; (प्रा० पैं० १,६७)। अमिय (क० २, १५, ६) ।—हलु अमृतफल; (सि० १, १५) । अमिउ (सा० २) । अमिय;(वा० १, ६) ।

अमित्त—पुं० न० (सं० अमित्र>प्रा० अमित्त) रिपु, दुश्मन; (जस० ३, १२ १०) ।

अमियकित्ति—पुं० (सं० अमितकीर्ति)- मुनिराज; (व० २, ८, ३) ।

अमियतणु—पुं० (सं० अमृततनु)-

चन्द्रमा, (प० च० २७, १०, ६)।

अमियतेय—पुं० (सं० अमितेज) अर्क-कीर्ति का पुत्र; (व० ६, ७, ७)।

अमियप्पह—पुं० (सं० अमृतप्रभ) मुनि विशेष; (व० २,८, ३)।

अमिय वुठ—पुं० (सं० अमृत वृष्ठि) अमृत की वर्षा; (प्रा० गु० १०, ४०)।

अमियालय—पुं० न० (सं० अमृता-लय>प्रा० अमयालय) स्वर्ग; (प० च० १८। २। ३)।

अमियासण—पुं० (सं० अमृताशन) देव; (व० ७, ६, ६)।

अमुक्क—वि० (सं० अ मुक्त) युक्त; (जंबू० ३, १०, ३)।

अमुणिय—वि० (सं० अज्ञात>प्रा० अणाय, अविदित; (प० च० ८। ६। ४)।

अमुणंत—कृ० (सं० अ+ज्ञा+शतृ) नजानते हुए; (जंबू० ७, ११, १३)।

अमेअ—वि० (सं० अमेय) १. असीम, २. अचिन्त्य; (क० ७, ५, ६)। अमेय-वि० (सं० अमेय) अज्ञेय; "णंनियवइ चिंतामणि अमेय, मानों अज्ञेय चिंता-मणि के समान; (व० १, ३, १३)।

अमोह—वि० (सं० अमोघ) अचूक, निर्भ्रान्ति, अत्यर्थ; (भ०)। -उ, वि०-प्रचुर, (जंबू० १, १३, ७)।

अमोहु—पुं० (सं० अमोघ) अमोघ (शक्ति) "गय-लंगलु मुसलु अमोह मुहुँ देवयाइँ वलहद्द (हो)। दिण्णइ विजय-हो विजयहो कएण णव-णीरहरु णिण-ह्हो" देवों ने नवीन नीरधर-मेघ के समान गर्जना करने वाले बलभद्र-विजय को उसकी जीत हेतु गदा, लांगल, मुसल और अमोघमुखी शक्ति दी; (व० ५, ६, १५)।

अम्बर—न० (सं० अम्बर>प्रा० अंबर) वस्त्र; (की० २, २१६)।

अम्म—स्त्री० (सं० अम्बा>प्रा० अम्मा) अम्मा, माता; (जस० ण० ३,६, १६)। अम्माएवि -स्त्री० अम्बा देवी (मातेत्यर्थ) (जस० २, १६, ६)। अम्मा पिइ—अम्बा-पितृ,(प्रा० गु० २,१, ८)। अम्मि-स्त्री० अम्ब (संबोधने) (जस० २, १६, ३; हे० ३९५, ५)। -पिइ, पुं० (सं० अम्बा+पितृ) माता-पिता; (संधि ६, १, ८)।

अम्मत्तिय—वि० (सं० उन्मत्तिका)- १. मदमाती, नशे में चूर, २. पागल, ३, अकड़ा हुआ।

अम्माइआ—स्त्री० (दे०) अनुसरण करने वाली स्त्री; (दे० ना० मा० १, २२)।

अम्माहीरउ—पुं० (दे०) लोरी, स्वा-पिका (lullaby) "अम्माहीरउ गेउ भुणिज्जइ"; (प० च० २४, १३, ८)।

अम्वेअल—पुं० (दे) १. आमेल, आमेलग अथवा आमेलय नाम का शिरोभूषण, २. जूड़े के ऊपर बांधी जाने वाली माला (रा० २०)।

अम्हं, अम्हां—सर्व० (सं० अस्माकम्) हमें।

अम्ह—सर्व (सं० अस्मद्>प्रा० अम्ह) हम (उ० व्य० प्र० २१-९;) । इं-सर्व०, न०, व०, (सं० अस्माकम्) हम (हे० ४, ३७६; की० ३, १३४) —तौ (सं० अस्मद्) (उ० व्य० प्र० १४-२८ १४-२९) । टि०- अपभ्रंश में अस्मद् शब्द का पंचमी और षष्ठी की बहुवचन-विभक्ति के साथ 'अम्हहं' आदेश होता है,(हे० ३८०) । अम्हाणउं-सर्व० (रा० १०) । अम्हणिओ-सर्व० (प्र० चि०), अम्हराइ (रा० २८) । अम्हारे-सर्व० (रा० २०)। टि०-अपभ्रंश में सं० अस्मद् काएक व० में हउं, हउ और व० व० में अम्हे, अम्हइं शेष रहा ।

अम्हहं—सर्व० (सं० अस्मद्> प्रा० अम्ह) हमारे; (व० २, १, ८) । अम्हाण-सर्व० (सं० अस्माकम्) हमारा; (जबू ७, ३, ८) । अम्हेत्थ-सर्व० हमारे लिए; (व० ६, १७, ८) ।

अम्हार—सर्व (सं० अस्मदीय) 'हम' का सम्बन्ध कारक रूप हमारा; (म० १, २५, ११; उ० व्य० प्र० १६, २०) । उ, सर्व० (अस्मत्कार्यक:) हमारा, (सि० २, १६) अम्हारी-(ण० ३, १३, ३) -अम्हारे अम्हारा; (हे० ३४५, १) । -सर्व० मेरे (सि० १, २२, ७) । अम्हे-सर्व० (वैं० सं० अस्मे) (उ० व्य० प्र० १४-२७, हे० ३७६, १) ।

अम्हारिस—वि० (सं० अस्मादृश>प्रा० अम्हारिच्छ) हमारे जैसा; (ण० २, ४, ३; प० च० ९। ६। ८) । अम्हेत्थ हमारे लिए ।

अयंग—वि०(सं० अचक्षु) अचारु;(भ०)।

अय—पुं० (सं० अज=ब्रह्मन्) ब्रह्मा; (जस० २, ३०, ९, ण० ६, ७, ५)। वि० (सं० अति) बहुत; (व० ८, २, ५) ।

अयक्क, अयग—पुं० (दे०) दानव; (दे० ना० मा० १, ६) ।

अयजण्ण—पुं० (सं० अजयज्ञ>प्रा० अअ, अय+जण्ण) अजयज्ञ; (सि० १, ६) ।

अयट—पुं० (सं० अवड) कूप, कुंआ; (दे० ना० मा० १, १८) ।

अयरु—पुं० (सं० अगरु) अगर लकड़ी; (जं० ६, १२, २) ।

अयस—पुं० (सं० अयशस्>प्रा० अयस, अजस) अपयश, अपकीर्ति, (प० च० ११, ८, ११) ।

अयाण—वि० (सं० अज्ञान) अज्ञानी, (दे० ना० मा० ७, ७३; हरिवंशपुराण ५१। ७) । अयाणा-वि०-अज्ञानी (क० ८, ४, ७) । वि०-मूर्ख "किउ मंतु सव्वु कूड़हं अयाण"—उस मूर्ख सेठ ने सब प्रकार कूट मन्त्रणा की; (सि० २, २,१) । तुल० गु० अजाण अजाण्युं ।

अयाल—पुं० (सं० अकाल>प्रा० अयाल) अनुचित काल; (ण० ३, ३, १२) ।

अयालि—पुं० (दे०) दुर्दिन, मेघाच्छन्न दिवस; (दे० ना० मा० १, १३) ।

अर—पुं० (सं० अर) अठारहवें तीर्थङ्कर का नाम; (जस० १, २, ९) ।

अरणइ—स्त्री० (सं० अरति) असुख; (प्रा० गु० ११, ९) ।

अरण्ण—न० (स० अरण्य>प्रा० अरण्ण) वन, जंगल; (प० च० ५। ४। २)। अरन्न

(भ०)।
अरमाहर—वि० (सं० अरमा (अलक्ष्मी) +हर) दारिद्रय नाश; (जस० १, २, ६)।
अरल—न० (दे०) कीट-विशेष, मच्छर; (दे० ना० मा० १, ५३)।
अरविंद—न० (सं० अरविन्द>प्रा० अरविंद) कमल; (जस० ४, २१, ६)।
अरविंदर—वि० (दे०) दीर्घ, लम्बा; (दे० ना० मा० १, ४५)।
अरहंत—वि० (सं० अर्हत्>प्रा० अरहंत) पूजा के योग्य, पूज्य; (जस० २, १, १; ण० १, ५, ६)। अवलि (अरहंतावलि) अर्हदावली; जिननामावलि; (जस०)। अरहंतु-पुं० (सं० अरहयत्) बौद्ध या जैन आचार्य, (मूल अर्थ योग्यार्थक था) (भ०)।
अरहट्ट—पुं० (सं० अपघटट>प्रा० अरहट्ट) अरहट, पानी निकालने का यन्त्र-विशेष; (प० च० ३१, ६, ८)।
अराइन्न—वि० (सं० अरात्रिज्ञ) रात्रि को न जानने वाले (निशाचर; (भ० ५, १७, १)।
अराइवक्ख—पुं० (सं० अराति+पक्ष) शत्रु पक्ष; (प० च० १६। १४। ३)।
अराय—पुं० (सं० अ+राग) प्रेम अथवा हर्ष या प्रियता रहित; (प० च० १। २। ८)।
अराहिअउँ—क्रि० (सं० आराधितवान्) आराधना की; (की० ३, ६)।
अरि—पुं० (सं० प्रा० अरि) दुश्मन; (प० च० ४, १४, ७)। —उर पुं० नगर का नाम (भ०)। —खय पुं०, (सं० अरिक्षय) शत्रु का नाश (वि० २, २०)। -गणु पुं० शत्रुजन (व० २, २, १०)। —दमण पुं०; एक राजा का नाम (ण० ४, ७, १४)। —नयरं पुं० नगर का नाम (भ०)।—वम्म पुं० (स० अखिर्मन्) राजा-विशेष, (ण० ७, ४, ५)।-हु पुं० (सं० अरि+हन्तृ>प्रा० अरिहंत) जिन-देव; (व० ६, १६, ६)।
अरिट्ठ—पुं० (सं० अरिष्ट=अशुभ) अरिष्टा नामक नरक; (व० १०, २१, १३)।-उर (सं० अरिष्टपुर) नगर-विशेष; (प० च० ३३, ६, २)।
अरियाणु—पुं० (सं० अरि+स्थान) शत्रु-स्थान; (क० ३, १५, ७)।
अरिमहणु—पुं० (सं० अरि+मथन) शत्रु-विनाशक; (क० ५; १३, १०)।
अरिरायहु—पुं० (सं० अरि+राजन् प्रा० अरि+राय) शत्रु राजा; (की० ४, ५६)।
अरिविंदु—पुं० (सं० अरविन्द) अरविन्द नाम का राजा; (क० २, १६, ३)।
अरिहंत—वि० (सं० अर्हत्) पूजा के योग्य, पूज्य; (भ०)।
अरिह—पुं० (सं० अर्हत्) तीर्थंकर, जैनियों के पूज्य देवता; "तिय-लोय झाएह अरिह"; (संधि० १०, ५, २३)।
अरीस—पुं० (सं० अरि+ईश>प्रा० अरि+ईस) शत्रु राजा; (ण० ६, १३, १५)।

अरु—संयो०, १. और; (सि० १, १०; की० ३, १६)। २. वि० (सं० अपरं) दूसरा; (संवि० १, १२, ६)।

अरुज्झाल—वि० (सं० रुध>प्रा० रुज्झ) उलझी या अरुझी हुई; "अरुज्झाल अन्तावली जाल वद्धा"; (की० ४, १६६)।

अरुण— न० (दे०) कमल; (दे० ना० मा० १, ८)। –त्त-पुं० अरुणत्व (जंबू० ६, ६,१)।—भासु पुं० (सं० अरुणभास) द्वीप-विशेष; (व० १०, ६, ७)। —यर (सं० अरुणकर) सूर्य; (जस० २. १२, ३)।

अरुणायवत्त—पुं० न० (सं० अरुणातपत्र लाल छत्र; (जस० २, १२, ५)।

अरुणिय—वि० (सं० अरुणित) लाल वर्ण का; (जस० ३, १, ६)।

अरुधि—स्त्री० (सं० अवरुद्धि) रुकावट, प्रतिबन्ध, थाम, रोक; (उ० व्य० प्र० ५०-१)।

अरुह—वि० (सं० अर्हत्>प्रा० अरुह, अरह) पूजा के योग्य, पूज्य; (प० च० २, ६, ६, ण० १, ५, ६)। —क्खर पुं० (सं० अर्हत्+अक्षर) (जस० ४, २६, ६)।–णाह-पुं० (सं० अर्हन्तनाथ) अरहनाथ; (जंबू० ३, १३, ७)।–भत्त पुं० अर्हन्+भक्त (जंबू० १, ११, ८)।

अरूअ—वि० (सं० अरूप>प्रा० अरूव) रूप रहित, अमूर्त;(जस०)। अरूव (क० ५, ६, ५)। अरूवि–वि० (सं० अरूपिन् अरूप, (जस०)।

अरूसण—वि० (सं० अ+रोषण>प्रा० अरोसण) गुस्सा-रहित; (ण० ३, ४, ४)।

अरे—अव्य० (सं० अहो) निम्नांकित अर्थों को प्रकट करने वाला अव्यय १. (क) आश्चर्य, (ख) पीडाजनक आश्चर्य (ग) शोक या खेद, झिड़की। २. बुलाना (सम्बोधन) (उ० व्य० प्र० १६-३०) ३. संभाषण का (सूचक, की० २, ३१; रा० २१; प० च० ७, ७, २)।–रे सम्बोधने; (प्रा० पैं० १, ६)।

अरोचकु—पुं० (सं० अरोचक>प्रा० अरोअअ) रोग-विशेष; "जरु दाहु अरोचकु हुयउ तासु"–उसे ज्वर एवं अरोचक दाह भी हो उठा, (क० ३, ४, ११)।

अर्थी—वि० (सं० अर्थिन>प्रा० अत्थि) १. प्राप्त करने की चेष्टा करने वाला, अभिलाषी, इच्छुक २. अनुरोध करने वाला, (उ० व्य० प्र० ५२-२३)।

अलंकर—सक० (सं० अलं+कृ) भूषित करना। अलंकरेह–अलंकृत की जिएगा; (विला०)।

अलंकरिय—वि० (सं० अलङ्कृत) विभूषित; (भ०)।

अलंकार—पुं० (सं० अलङ्कार) भूषण, गहना; (जंबू० ४, १२, १२)।

अलंकिअ—वि० (सं० अलङ्कृत>प्रा० अलंकिव) विभूषित, सुशोभित; (जस० ४, २४, २)। अलंकिय—वि०,–अलंकृत (भ०)।

अलंघ—वि० (सं० अलङ्घ्य>प्रा० उल्लंघन करने को अशक्य, उल्लंघन करने को अयोग्य (भ०)।

अलंघणयर—पुं० (सं० अलंघनगर) अलंघनगर, नगर-विशेष; (ण० ७, ११, १३)।

अलंप—पुं० (दे०) मुर्गा; (दे० ना० मा० १. १३)।

अलंभिरी—वि० (सं० अ+लभ्+इरी) (*ताच्छील्येस्त्रियाम्*) न पा सकने वाली; (जंबू० ४, २१, १२)।

अलकातिलका—स्त्री०—मुख के अलंकरण विशेषक; (की० २, १३६)।

अलक्ख—वि० (सं० अलक्ष्य)—जो लक्ष्य में न आ सके; (भ०)।

अलक्खण—पुं० न० (सं० अलक्षण> प्रा० अ+लक्खण) वस्तु-स्वरूप-हीनता; —(जस० ३,१०,१)।—उं वि०व्याकरण से शून्य, कइदूसणु कव्वु अलक्खणउं; (महा० ६६, ७, ३)।

अलक्खिय—वि० (सं० अलक्षित>प्रा० अलक्खिय) अज्ञात, अपरिचित; (भ०)।

अलग्गो—वि० (सं० अलग्न) बिना मिलाये, "जइ अहरअलग्गो पढहि गाह" —यदि तू अपने होठों को बिना मिलाये एक गाथा पढ़ दे, (क० २, १४, ५)।

अलज्ज—वि० (सं० प्रा० अलज्ज) निर्लज्ज; (भ०)।

अलज्जिय—वि० (सं० अलज्जित) जो लज्जित न हो; (प० च० ८। ३। ४)।

अलज्जिर—वि० (सं० अलज्जालु>प्रा० अलज्जिर) निःसंकोच, निर्लज्ज, (सं० रा० प्रकम १, छन्द १७)।

अलत्तउ—पुं० (सं० अलक्त) आलता स्त्रियां हाथ-पैर को लाल करने के लिए जो रंग लगाती हैं वह; (रि०, प्रथम सर्ग)।

अलत्त—क्रि० (सं० उत्क्षिप् का धात्वादेश अल्लत्थ) ऊंचा; फेंकना; (की० ४, ११५)।

अलद्ध—वि० (सं० अलब्ध) अप्राप्त; (जंबू० ७, ६, १८)।

अलमंजुल—वि० (दे०) आलसी; (दे० ना० मा० १, ४६)।

अलमलवसह—पुं० (दे०) उन्मत्त बैल; (दे० ना० मा० १, २५)।

अलय—न० (दे०) विद्रुम, प्रवाल; (दे० ना० मा० १, १६)। अलयावलि स्त्री० (सं० अलक+अवली) अलकें; (जंबू ४, १३, ३)।

अलयाउरे—स्त्री० (सं० अलकापुरी) नगरी-विशेष; (व० ३, १८, ८)।

अलयानयरी—स्त्री० (सं० अलकानगरी) अलका नामक नगरी; (व० ४, ४, १३)।

अलसंत—न० (सं० आलस्य>प्रा० आलस्स) आलस, सुस्ती; "अलसंतेण पिसुणजणसंगें"—आलस करने व नीचे पुरुषों की संगति से; (ण० ३, २, २)।

अलस—वि० १. (दे०) कुसुम्भ रंग से रँगा हुआ, (दे० ना० मा० १, ५२)। २. (सं० अलस) आलसी; तुल० गु० अळसियुं; (संधि० ११, ५, ४)। ३. प्रमादहीन, सौम्य; 'जय अलस ससि किरण', (व० ६, १५, ५)। पुं० आलस्य; (जंबू०१० २३, ४)।

अलहंत—कृ० (सं० अ+लभ+आन् (शानच) प्राप्त न करते हुए; अलभमान, किसी वस्तु को प्राप्त होने के योग्य न होना; (क० २, १५, ६, भ०; प० च०

१।४।२)।

अलहना—क्रि० (सं० अ+लभति> प्रा० अ+लभइ, अ+लहइ) कुछ नहीं पाना, (की० २, १३४)।

अलहन्तु—क्रि० भू० का० (सं० अ+लभ>प्रा० अ+लह) प्राप्त नहीं हो सका; (प० च० १२। ३। ८)। टि० –अपभ्रंश में हेतहेतुमद्भूतकाल में 'न्त' का प्रयोग अवशिष्ट रहा है, जैसे करन्तु; मरन्तु।

अलाव—पुं० (सं० आलाप) बातचीत; (व० १०, ८, ८)।

अलावणि—स्त्री० (सं० आलापिनी) आलापिनी वीणा; "रयणमंजूस अलावणि लावइ सेट्ठिहिणं हियवउ सल्लावइ" रत्नमंजूषा नामक स्त्री आलाप भरती, सेठ के हृदय में कराह उठती; (सि० १, ३८)।

अलिंगणु—पुं० (सं० आलिङ्गन>प्रा० आलिंगण न०) आलिंगन, भेंट; (उत्तर-पुराण)।

अलि—पुं० (सं० प्रा० अलि) भ्रमर; (सि० १, ३३; जस० १, १७, १४; भ०)।

अलिअ—न० (सं० अलीक>प्रा० अलिय) असत्य वचन; (ण० १, १५, १३)। अलिय—झूठ (भ०; सि० १, २४) अलियउ-झूठमूठ, (रि०, पाँचवा सर्ग)।

अलिआ—स्त्री० (दे०) सखी; (दे० ना० मा० १, १६)।

अलिआर—न० (दे०) दूध; (दे० ना० मा० १, २३)।

अलिउल—पुं० (सं० अलि+कुल> प्रा० अलि पुं०+कुल>उल न०) भौंरों का समूह; (जस० ३, ३९, १)।–य (प० च० १। १३। ९)। अलिउलइं-न० (हे० ३५३, १)।

अलिण—पुं० (दे०) बिच्छू; (दे० ना० मा० १, ११)।

अलिमाला—स्त्री० (सं० अलिमाला) भ्रमर पङ्क्ति; (जंबू० १, ११, ६)।

अलिय—वि० (सं० अलीक>प्रा० अलीग, अलीय, अलिय) अप्रिय, अरुचिकर; (जस० १, ६, १; प० च० ७। २। ७)।

अलियभासि—वि० (सं० अलीकभाषिन्>प्रा० अलिय+भासि) झूठ बोलने वाला; (ण० ९; ८, २)।

अलीढ—वि० (सं० अलीक>प्रा० अलिय=निष्फल, व्यर्थ) व्यर्थ; (क० ९, २४, ४)।–इं क्रि० वि०, शीघ्रता से, "तं अत्थाणु अलीढं लंघिउ"; (भ० १०, २, ५)।

अलीढा—स्त्री० (दे०) मिथ्याचारिणी कुलटा; (सुदं० ८, ३६, ३७)।

अलीसअ—पुं० (दे०) शाक-वृक्ष, साग का पेड़; (दे० ना० मा० १, २७)।

अलुत्त—वि० (सं० अलुप्त>प्रा० अलुत्त) अलुप्त, जिसकी सत्ता का लोप न हुआ हो; (की० ४, ११९)।

अलेव—पुं० (सं० अलेपक) परमात्मा; "णमो भयवंत अरूव अलेव"—नमस्कार है हे भगवन्त, अरूप, अलेप; (क० ५, ६, ५)।

अलेहिउ—क्रि० (सं० आ+लिख्> प्रा० आलिह) चित्रित किया, "णियर-मणु अलेहिउ तणयाएँ" उसने चुपचाप

मन लगाकर अपने पति का चित्र लिखा; (क० ६, १४, ३)।
अलोह—पुं० (सं० अलोभ > प्रा० अलोह) १- लोभ का अभाव, सन्तोष। २. वि०, लोभ-रहित, सन्तोषी; (भ०)।
अल्ल—न० (दे०) दिन; (दे० ना० मा० १, ५)।
अल्ल—क्रि० (ध्वन्यात्मक); चिल्लाना, अल्लविउ; (व० १०, २७, ८)।
अल्लय—न० (सं० आर्द्रक) अदरक; (जंबू० ७, १, २)।
अल्लल्ल—वि० (सं० आर्द्र+आर्द्र> प्रा० अल्लत्थ) १. जलार्द्रा; (सुदं० ८, ३७ ११)। २, केयर, भूषण विशेष (प० च० ११।७१।४)। ३. पुं०मयूर; (दे० ना० मा० १, १३)।
अल्लविय—वि० १. (सं० आलपित> प्रा० आलत्त) संभाषित, आभाषित(भ०)। २. (दे०) समर्पित, (प० च० २१, ५,८); अर्पित(भ०)। क्रि०, भू० का०, अर्पित कर दिया (रि०, चतुर्थ सर्ग)।
अल्लहज—पुं० (सं० आर्द्र चणकाः) गीले चने; (जंबू० ३, १२, १५)।
अल्ला—स्त्री० (दे०) माता, माँ, (दे० १, ५)।
अल्लीण—वि० (सं० आलीन>प्रा० अल्लीण) आश्रित; (प० च० १३, १२, ५)।
अवंक—वि० (सं० अ+वक्र>प्रा० अ+वंक) जो टेढ़ा या कुटिल न हो; (ण० ६, १३, ५; भ०)।
अवंग—पुं० (दे०) कटाक्ष; (०दे ना० मा० १, १५)।
अवंती—स्त्री० (सं० अवन्ति, न्ती) अवन्ति नाम का देश; (क० ८, १, ६)। अवंतिराअ—पुं० अवन्तिराज (जस०)।
अव—अव्य० (सं० प्रा० अव) निम्न-लिखित अर्थों का सूचक अव्यय; १- निम्नता, २- तिरस्कार; ३- खराबी, बुराई ४- गमन, ५- हानि, ६- अभाव, ७- मर्यादा; (सि० १, २९, ४४; २, २२)।
अवअक्खिअ अवअच्छिग्र—न० (दे०) मुंडाया हुआ मुँह; (दे० ना० मा० १, ४०)।
अवअण्ण—पुं० (दे०) अखल; (दे० ना० मा० १, २६)। अव+अर-क्रि० (सं० अव+$\sqrt{}$तॄ) (तर्) उतरना, अवअरु (अवतीर्णः); (प्रा० प्र० १, १६३)।
अवइण्ण—वि० (सं० अवतीर्ण>प्रा० अवइण्ण) १- उतरा हुआ, नीचे आया हुआ, २- जन्मा हुआ; (प० च० १।१६। ५; भ०; जस० २, २८, १; ण० ४, १२, १०)। अवइण्णेण—अवतीर्ण होने पर; (रि०, पाँचवाँ सर्ग)।
अवकिण्ण—वि० (सं० अवकीर्ण) परि-त्यक्त; (दे० ना० मा० १, १३०)।
अवकित्ति—स्त्री० (सं० अपकीर्त्ति) अप-यश; (दे० ना० मा० १, ६०)।
अवकीरिअ—वि० (दे०) वियुक्त; (दे० ना० मा० १, ३८)।
अवक्क—वि० (सं० अवाक्) १- मौन; (जंबू० १०, २५, ९) २- (सं० अवक्र)

अवलकखण—न० (सं० अपलक्षण > प्रा० अवलक्खण) खराब लक्षण, बुरी आदत; (प० च० ११, २, ६)।

अवलम्बणिय—पुं० (सं० अवलम्बनिका) नीचे लटकता हुआ एक प्रकार का आभूषण; (प० च० १४, ७, ४)।

अवलय—न० (दे०) घर, मकान; (दे० ना० मा० १, २३)।

अवलि—स्त्री० (सं० प्रा० आवलि) १- पंक्ति, २- समूह (प्रा०पैं० १, ६८)।

अवलिअ—न० (दे०) असत्य, भूठ; (दे० ना० मा० १, २२)।

अवलित्त—वि० (सं० अवलिप्त) लिप्त; (जस० ३, १६, ६)।

अवलुआ—स्त्री० (दे०) क्रोध; (दे० ना० मा० १, ३६)।

अवलेहहि—क्रि० (सं० अव+लोक् > प्रा० अवलोअ) देखना चाहिए; "पुणु दल अवलेहहि समग्ग"–फिर एक-एक दल को समग्र भाव से देखना चाहिए, (सि० १, १७, १५)।

अवलोअ—सक० (सं० अव+लोक्) देखना। अवलोयइ–सक० (सं० अव+लोक् > प्रा० अवलोअ) देखना, अवलोकन करना; (प० च० २, १६, ५)। अवलोइउ-क्रि० भू०का० अवलोकन किया; (ण० १, ८, ४)। अवलोवइ–क्रि० व० (सि० १, ३१, ११)। अवलोइवि-पू० का० क्रि०(सि० १, १८) अवलोएँवि-पू० का० क्रि० (देखकर); (प० च० २, १५, ८)। अवलोयहि (विधि०); (जंबू० १०, १५, ६)। अवलोयहु, यहो (विधि०); (जंबू० ८, ९ १३)।

अवलोइय—वि० (सं० अवलोकित) देखा हुआ; (क० ४, ११, १०)। अवलोइउ अवलोकित; (व० २, १५, २)।

अवलोय—पुं० (सं० अवलोक > प्रा० अवलोय) अवलोकन; (प० च० ३०, ७, ६)। –णिय स्त्री० अवलोकिनी विद्या; (व० ५, ९, ८)।

अवल्लाव—पुं० (सं० अपलाय=सत्य बात की जानकारी विचार एवं भाव को छिपाना) असत्य कथन; (दे० ना० मा० १, ३८)।

अववहहु— वि० (दे०) अग्निकायिक (जीव), "उण्हे वयहु अववहहु मुणिज्जइ"—इसी प्रकार अग्नि–कायिक जीवों की उण्ण योनि समझना चाहिए; (व० १०, १२, ११)।

अववोह—पुं० (सं० अववोध) ज्ञान; (व० ८, १२, १३)।

अवस[1]—अव्य० (सं० अवश्यम् > प्रा० अवसं) अवश्य, जरूर; (की० ३, २६)। अवसं (ण० ८, १०, ८)। –उ (प्रा० पैं० २, १०३)। अवसओ; (की० १, २०)। अवसिं; (जस० ३, ४०, १६)। अवसु; (संधि० २, १०, ५)। अवसें–अव्य० सर्वथा, जरूर, निःसन्देह; (महा० १५, २२, १७; प० च० १८, ३, ८)।

अवस[2]— वि० (सं० अवश > प्रा० अवस) पराधीन; (व० २, १, ४)।

अवसउण—न० (सं० अपशकुन प्रा० अवसउण) खराब शकुन; (जस० ३, १८, ५)।

अवसणु—वि० (सं० अ+व्यसन) व्यसनहीन, "अवसणु सच्छु अरुसणुसू रउ," (ण० ३, ४, ४)।

अवसद्द—पुं० (सं० अपशब्द>प्रा० अवसद्द) बुरा वचन; (भ०)।

अवसप्पिणि—स्त्री० (सं० अवसर्पिणी >प्रा० ओसप्पिणि) दश : कोटाकोटि सागरोपम परिमित काल-विशेष, जिसमें सर्व पदार्थों के गुणों की क्रमशः हानि हो जाती है; (प० च० १, १२, ६)। कालचक्र; (जंबू० ३, १, १०)।

अवसप्पिय—वि० (सं० अपसर्पित) १- निवृत्त, २- अवतीर्ण, ३- अपसृत; (भ०)।

अवसर—पुं० (सं० प्रा० अवसर) काल, समय; (भ०)। अवसरि—अवसर; (रि०, प्रथम सर्ग)।

अवसवण—न० (सं० अपशकुन>प्रा० अवसउण) अनिष्ट-सूचक अथवा खराब शकुन; (म० २, २४, ४; प० च० ३५, ४, ५)।

अवसहं—न० (दे०) १- उत्सव, २- नियम; (दे० ना० मा० १, ५८)।

अवसाण—न० (सं० अवसान>प्रा० अवसान) अन्त, समाप्ति; (जस० १, १३, ७; क० १, १७, १५; सुदंष २, १, ११,)। अवसान; (की० ४, १५३)।

अवसिट्ठउ—वि० (सं० अवशिष्ट) बचा हुआ; (प्रा० पैं० १, ३५)।

अवसेस—पुं० (सं० अवशेष>प्रा० अवसेस) अवशिष्ट, बाकी। वि०-सब; (भ०)।

अवसोयण—स्त्री० (सं० अस्वापनी) निद्रा; (प्रा० गु० ३५, ७)।

अवहट्ठ—वि० (दे०) अभिमानी; (दे० ना० मा० १, २३)।

अवहट्ठा—स्त्री०, अवहट्ठ भाषा (की० १, ३६)।

अवहड—न० (दे०) मुसल; (दे० ना० मा० १, ३२)।

अवहत्थरा—स्त्री० (दे०) पाद-प्रहार; (दे० ना० मा० १, २२)।

अवहत्थिय— वि० (सं० अपहस्तित) हाथ से त्याग हुआ, परित्यक्त; (जस० ४, १६, १७; सुदं० ८, ३६, ४८)।

√अवहत्थ—(सं० अपहस्तय्>प्रा० अवहत्थ) त्याग करना ; अवहत्थेंवि पू० का० (सं० अपहस्तय्>प्रा० अवहत्थ) त्याग कर, छोड़ कर, (प० च० १, ४, १)।

अवहर—(सं० अप+हृ) दूर करना अपहरण करना, छीन लेना। -इ सक० (विला०)। अवहरी (रा० ४३)। -मि सक० दोष, अनिष्ट आदि दूर करना; (ण० ६, ५, १)। -हुं (रा० ३६)। अवहरेइ-(क० ६, १४, ४)। अवहरंतु, वि० (अपहरण करने वाली) (क० ६, १६, ७)। अवहरेंवि-पू०का०, क्रि० छीनकर (प० च० ५, ३, ६)।

अवहरिय—वि० (सं० अपहृत>प्रा० अवहरिअ) छीन लिया हुआ; (जस० ४, २८, २६; क० ५, ७, १०)।

अवहाय—पुं० (दे०) विरह, वियोग; (दे० ना० मा० १, ३६)।

√अवहार—(सं० अप+हृ >प्रा० अवहर, अवहरइ) अपहरण करना, छीन लेना; (भ०)।

अवहार—पुं० (सं० अपहार) अपहरण, परित्याग। अवहारु; (रा० २४)। क्रि० (सं० अप+हृ>प्रा० अवहर) छीन

अवमारा—पुं० (सं० अपमान) तिरस्कार; (भ०)। अवमाणु; (विला०)।
अवमाण—(सं० अव+मानय्) अवगणना करना। अवमाणइ—सक० (भ०)। –हि (विधि०) (जंबू ५, १३, २४)। अवताणें वि–पू० का०, क्रि० अवज्ञा करके; (प० च० १६, ७, ८)।
अवमाणिय—वि० (सं० अवमानित > प्रा० अवमाणिय) तिरस्कृत; (जस० ४, २४, २४)। —य (प० च० १६, १, ६)।
अवयज्जिय—वि० (प्रा० अवयच्छिय) दृष्ट, देखा हुआ; (प० च० ३६, १, १)।
अवयड्ढिअ—वि० (दे०) युद्ध में पकड़ा हुआ; (दे० ना० मा० १, ४६)।
अवयण्णिउ—क्रि० (सं० अव+गणित) उपेक्षा की; (ण० १, १०, १०)।
अवयपुण्णु—वि० (सं० अ+वयः+पूर्ण) जो अपनी आयु न पूरी कर पाये हों; (जस० १, ७, १०)।
√अवयर—(सं० अव+तृ > प्रा० अवयर, अवयरइ) नीचे उतरना। अवयरइ–सक० (सं० अवतरित); (भ०)। —हूं उतरें; (ण० ६, ५, ६)। अवयरंत–कृ० (सं० अव+तृ+शतृ); (जंबू० ५; २, ३)। अवयरिउ–भू० का० अवतरित हुआ; (ण० २, ८, ६); उतर आया (भ० १, ५)। अवयरवि—पू० का० क्रि० नीचे उतर कर; (प० च० ६, १३, ६)।
अवयरिअ—पुं० (दे०) वियोग, विरह; (दे० ना० मा० १, ३६)।
अवयरिय—वि० (सं० अवतीर्ण > प्रा० अवयरिअ) १- जन्मा हुआ, २- नीचे उतरा हुआ; (प० च० ३।६।१)। अवरित; (व० ३, १६, ३)।
अवयव—पुं० (सं० अवयव) अंश, विभाग, "संझावयव नाइं नह तम्बिर," यहां अंश से तात्पर्य गोधूलि के समय संध्या काल की किरणों से है, (भ० ५, ६, ११)।
अवयाणं—न० (दे०) खींचने की रस्सी, "अवयाणं आकर्षणरज्जुः," (दे० ना० मा० १, २४)।
अवयार—पुं० (दे०) १- माघ–पूर्णिमा का एक उत्सव, जिसमें ईख से दतवन आदि किया जाता है; (दे० ना० मा० १, ३२)। २- (सं० अवतार) देहान्तर–धारण; (जंबू० १०, १, ७)।
अवयास—पुं० (सं० अवकाश > प्रा० अवगास, अवयास) फुरसत; (जंबू० २, १८)।
अवयासिणी—स्त्री० (दे०) नासा-रज्जु, नाक में डाली जाने वाली रस्सी; (दे० ना० मा० १, ४६)।
अवर—संयो० (सं० अपर) १- और (जस० १, ६, १०; म० १, १५, ४; की० ३, १६)। २- पश्चिम (व० ५, २०, ७)। अवरु—और (सि० २, ८; की० २, २३)। वि० (सं० अपर > प्रा० अवर) दूसरा, अन्य; (ण० २, १, ७)। –पक्ख पुं (सं० अपर+पक्ष) (जस० ३, ४०, १७)। –कमेण पुं दूसरे पैर के द्वारा (रि०, पाँचवां सर्ग)।

अवरज्ज—पुं० (दे०) १–गत दिन, २- आगामी दिन, ३- प्रभात; (दे० ना० मा० १, ५६)।

अवरण्ह—पुं० (सं० अपराह्न) दिन का तीसरा पहर, दोपहर बाद, दिन का अन्तिम या समापकहर; (व० १०, २, १०)। —य (प० च० ५।२।४)।

अवरतउ—पुं० (दे०) अभिलाषा; (प्रा० गु० ६, १६)।

अवरत्तअ—पुं० (दे०) पश्चाताप, अनुताप; (जंबू० १०, १४, १४)। अवरत्तउ; (सुदं० ६, २३, ७)।

अवरह्ल—पुं० (सं० अपराह्न) दिन का तीसरा प्रहर; (भ०)।

अवराइए—वि० (सं० अपराजित) अजेय; (व० १, १०, ७)।

अवरामुह—वि० (सं० अपराभिमुख > प्रा० अवराहुत्त) १- पराङ्मुख, २- पश्चिम दिशा की ओर मुंह किया हुआ; (प० च० ४।६।८)।

अवराह—पुं० १- (दे०) कटी, कमर; (दे० ना० मा० १, २८)। २- पुं० (सं० अपराध > प्रा० अवराह) गुनाह; (भ०)। अवराहु-पुं० अपराध; (व० ३, १४, ७)।

अवरिक्क—वि० (दे०) १- बेमौका, असामयिक, २- जिसको काम-काज से फुरसत न मिले; (दे० ना० मा० १, २०)। ३- (सं० अपर+एक) दूसरा एक; (जंबू० ६, ६, ३)।

अवरिज्ज—वि० (दे०) अद्वितीय, असाधारण; (दे० ना० मा० १, ३६)।

अवरिय—वि० (सं० अवतरित) नीचे आया हुआ, उतरा हुआ; (व० २, ८, ४)।

अवरिहड्ढपुसए—न० (दे०) १- अकीर्ति, अपयश, २- असत्य, ३. दान; (दे० ना० मा० १, ६०)।

अवरुंड—(दे०) आलिंगन करना; (सुदं० ८, ३५, ४) अवरूंडियउ-क्रि० भू० का० आलिंगन किया; (क० १०, ६, ८)। -डेवि, पू० का० क्रि० (सं० आलिङ्-गयित्वा) आलिंगन करके; (जं[०] ६, ४, १५)। —ण न० आलिङ्गन; (दे० ना० मा० १, ११; भ०)।

अवरुंडिउ—वि० (दे०) १- व्याप्त, आलिङ्गित; (सुदं० २, १, ११)। २- सुशोभित; (व० १०, १, २१)।

अवरुंडिऊण—न० (दे०) आलिङ्गन; (दे० ना० मा० १, ११)। अवरुंण्डिय-न० (दे०, प्रा० अवरुंडण, अवरुंडिअ) आलिङ्गन; (प० च० ५, ७, ११)।

अवरूप्परु,अबरोप्परु—वि० (प्रा० अवरोप्पर) परस्पर, आपस में; (क० ६, १०, ५; ण० ८, ३, ८; प० च० ३, ७, २)।

अवरेक्क—वि० (सं० अपर+एक) दूसरा; (प० च० १०, ५, १)।

अवरोप्पर— वि० (दे०) परस्पर; (जस० १, १५; १५)।

अवरोह—पुं० (दे०) कटी, कमर; (दे० ना० मा० १, २८)।

अवलंबिय—वि० (सं० अवलम्बित) आश्रित; (जंबू० ६, ६, ३)। अवलम्बिय; (भ०)।

जो टेढ़ा न हो; (जं० ११, १४, ४) ।

अववकरस—पुं० (दे०) दारू, मद्य; (दे० ना० मा० १, ४६) ।

अवगण्ण—क्रि० (सं० अव+गण्) तुच्छ समझना; अवगण्णमि; (जस० १, १५, १८) ।

अववकु—न० (सं० अ+वाक्य) शब्द-समूह का अभाव; (भ०) ।

अवक्ख—क्रि० सं० दृश्, देखना । अवक्खए—दिखने पर (रि०, पाँचवाँ सर्ग) ।

अवक्खेर—क्रि० (दे०) खेद करना (खेरि संज्ञा=खेद) अवखेरइ; (भ०) । व० कृ०—अवखेयंत (भ०) ।

अवगण्णइ=क्रि० (सं० अव+गणय्>प्रा० अवगण, अवगण्ण) तिरस्कार करना (भ०) ।अवगण्णिवि–पू० का०क्रि० चिन्ता न कर; "अवगण्णिवि मंडवु राइउ"—चिन्ता न कर राजा ने मण्डप बनवाया; (सं० ११३, १४.)

अवगद—वि० (दे०) विस्तीर्ण, विशाल; (दे० ना० मा० १, ३०) ।

√अवगम—(सं० अव+गम्) जानना, निर्णय करना । —हि (विधि); (जंबू० १०, १०, १५)

अवगम्म—न० (सं० अवगमन>प्रा० अवगमण) दुर्गति, "तहु विद्धिएँ हम्मइँ हय अवगम्मइँ णित्तुलउ"—धर्म-वृद्धि का हर्म्य (प्रासाद) दुर्गतियों को नष्ट करने वाला; (व० २, ६, १७) ।

अवगह—पुं० (सं० अवग्रह) वर्षा-प्रतिबंध; (व० १, ३, १२) ।

अवगाहण—न० (सं० अवगाहन>प्रा० अवगाहन) स्नान, डुबकी लगाना; (भ०) ।

अवगाहिय—वि० (सं० अवगहित) अवगाहन किया हुआ; (जस० ४, २७, १०) ।

अवगुंठण—न० (सं० अवगुण्ठन>प्रा० अवउंठण) १- मुँह ढकने का वस्त्र, २- ढकना; (दे० ना० मा० १, ६) ।

अवगुण—पुं० (सं० प्रा० अवगुण) दुर्गुण; (जस० ४, २३, ५) । —कारिय–वि० (सं०अवगुणकारिका) अवगुण या दोष का धंधा या व्यवसाय; (प० च० १६।५।४) ।

अवगूढं—न० (दे०) १- छल, कपट; २- अपराध; (दे० ना० मा० १, २०(।

अवगूढ—वि० (सं० प्रा० अवगूढ) आलिंगित, व्याप्त; (प० च० १७, ४, ४) ।

अवग्गोहि—पुं० (सं० अवग्रह) अवग्रहों के द्वारा । शरीर-प्रमाण दूरी से आकर प्रतिष्ठित व्यक्ति को प्रमाण करना अवग्रह है, (रि०, नौवाँ सर्ग) ।

अवछंद—वि० (सं० अपच्छंदस्क) छन्द के लक्षण से रहित; (प्रा० पैं० १, १०)।

अवजसु—पुं० (सं० अपयशस्>प्रा० अवजस) अपकीर्ति; (सि० १, १६) ।

अवजाढउ—वि० (दे०) सुशोभित 'तिरिय लोउ लच्छी अवजाढउ,' तिर्यंच लोक की लक्ष्मी से सुशोभित; (व० १०, १३, ८) ।

अवज्झा—स्त्री० (सं० अवध्या) अयोध्या नगरी; (प्रा० गु० ४, ६) ।

अवज्झाय—पुं० (सं० उपाध्याय>

प्रा० उवज्झाय, उवज्झय) अध्यापक, पढ़ाने वाला; (दे० ना० मा० १, ३७)।
अवट्ट—पुं० (सं० आवर्त) आवर्त; (संधि० ५, ६, ६)।
अवठंभ—पुं० (दे०) ताम्बूल, पान; (दे० ना० मा० १, ३६)।
अवठंभ—(सं० अव+√स्तम्भ्>प्रा० अवट्ठव, अवठंभ) अवलम्बन करना।
अवठम्भमि–सक० (प० च० ४०, १४, २)।
अवड¹—क्रि० (सं० आपद्यते) प्राप्त करना; (उ० व्य० प्र० २२, ११)।
अवड²—पुं० (दे०) कूप; (दे० ना० मा० १, ५३; जंबू० ६, ७, १६)।
अवडअ—पुं० (दे०) पक्षी आदि को डराने के लिए बनाया जाने वाला पुआल आदि का पुतला, तृण-पुरुष; (दे० ना० मा० १, २०)।
अवडिअ—वि० (दे०) खिन्न, परिश्रान्त; (दे० ना० मा० १, २१)।
अवडुअ—पुं० (दे०) उदूखल; (दे० ना० मा० १, २६)।
अवण—पुं० (दे०) पानी का प्रवाह; (दे० ना० मा० १, ५५)।
अवणिंद—पुं० (सं० अवनीन्द्र) पुरुष का नाम; (भ०)।
अवणिहर—पुं० (सं० अवनिध्र:) पहाड़; (व० ८, १५, ७)।
अवणी—स्त्री० (सं० अवनि>प्रा० अवणि) भूमि; (ण० ४, २, २)। —रुह पुं० (सं० अवनिरुहः) वृक्ष; (व० २, १,१)। –वहो वि० अविनीत; (व० ४, ११, १)। —सर पुं० (सं० अवनीश्वर) पुरुष का नाम; (भ०)।
अवण्ण—न० (दे०) अवज्ञा, निरादर; (दे० ना० मा० १, १७)।
अवण्णिय—वि० (सं० अवगणित) अवमानित, तिरस्कृत; (जंबू० ७, ६, २६)।
अवतरिअ—वि० (सं० अवतीर्ण) उतरा हुआ; (प्रा० पैं० २, २१३)।
अवतंस—(सं० अप+त्रस्)—इ (अवतसइ) क्रि० व० का० (सं० अप+त्रस्) डर के मारे भाग जाना; (प० च० ८, ११, ६)।
अवतार—पुं० (सं० अवतार) जन्म-ग्रहण, मनुष्य-रूप में देवता का जन्म लेना; (भ०)।
अवत्तयं—वि० (सं० अ+पात्र+क) १- अपात्र; (ण० ४, ३, २)।२- अव्यवस्थित, (दे० ना० मा० १, ३४)।
अवत्थ—स्त्री० १- (सं० अवस्था>प्रा० अवत्था) अवस्था; (जस० ४, २६, ४; भ०; म० १, २४, ५)। २- दशा, हालत, (रि०, प्रथम सर्ग)।
अवत्थरा—स्त्री० (दे०) पाद-प्रहार; (दे० ना० मा० १, २२)।
अवत्थु—न० (सं० अवस्तु) अभाव, असत्त्व; (भ०)।
अवपुंसिअ—वि० (दे०) संयुक्त; (दे० ना० मा० १, ३६)।
अवबोह—पुं० (सं० अवबोध>प्रा० अवबोह) ज्ञान, बोध; (भ०)।
अवमग्ग—पुं० (सं० अपामार्ग) वृक्ष-विशेष; (दे० १, ८)।

लेना; हरण करना (भ०)। —ण न० (सं० अवधारण) निश्चय, निर्णय; (जंबू० १०, २२, ३)।

अवहार—(सं० अव+धारय्>प्रा० अवहार) निश्चय करना, निर्णय करना। —हि सक०, ग्रहण करना, "अवहारहि पहु दिव्वे चित्तें" हे प्रभु, दिव्य चित्त से इन्हें ग्रहण कीजिए, (ण० ५, १३, ४)।

अवहारि—वि० (सं० अपहारिन्>प्रा० अवहारि) अपहारक, छीनने वाला; (ण० १, १७, १३; जस० १, २६, ३)।

अवहि—स्त्री० (सं० अवधि>प्रा० अवहि, ओहि) समय की सीमा, (प० च० १३, ६, २)। अवही- स्त्री १- ज्ञान-विशेष (ण० ६, १८, १०), २- समय की सीमा; (सि० २, १२)। अव्य०—अभी; (की० ३, ४२)। अवहिएँ–अवधिज्ञान; (जस० ४, २६, २)। —णाणि –वि० अवधिज्ञानी; (व० १०, ४०, ३)। —त्त वि० (सं० अ+विभक्त) अविभाजित; (जंबू० २, ५, ६)।

अवहोइ—स्त्री० अवधि; (महा० ६८, २, १०)।

अवहीर—(सं० अव+धीरय्) तिरस्कार करना। अवहेरिउ-सक०, भू०का० अवगणना की, तिरस्कार किया, अवहेलना की; (ण० ३, ६, १०)।

अवहेरेंवि—पू०का० क्रि० तिरस्कार कर; (प० च०२८, ११, ६)।

अवहीसर—वि० (सं० अवधीश्वर) अवधिज्ञानी (जस० ४, २२, १३)।

अवहेअ—वि० (दे०) दया-योग्य, कृपा-पात्र; (दे० ना० मा० १, २२)।

√अवहुंज—(सं० उप+भुञ्ज) भोगना। —हि "पावें नरयदुक्खु अवहुंजहि," (जंबू० १०, ५,५)।

अवहेर—पुं० (सं० अपहार) अपहरण; (जंबू० ६, ५, २)।

अवहेरि—स्त्री० (सं० अवहेला>प्रा० अवहेरि, अवहेरी) तिरस्कार, बेइज्जती; (प० च० २, १५, ३)। —उ वि० (सं० अवधीरित) विचारि; (ब० ४, १०, ८)।

अवाणअ—पुं० (सं० आपानक) शराबियों की गोष्ठी; (जंबू० ४, १७, १५)।

अवाय—पुं० (सं० अपाक) अजीर्ण, अनपच; (क० ६, १४, १)।

अवार—पुं० (दे०) दुकान, हाट; (दे० ना० मा० १, १२)।

अवारिउ—वि० (सं० अ+वार) तात्कालिक; (प० च० ६, २५, १३)। अवारें-अव्य० शीघ्रता से; (प० च० ५, २, ५)।

अवारियं –वि० (सं० अ+वारित) रोक या प्रतिबंध मुक्त; (व० ४, ११, २)।

अवालुया—स्त्री० (दे०) १- ओष्ठ का प्रांत भाग, २- मुख के दोनों ओर के कोने; (दे० ना० मा० १, २८)।

अवास—(सं० आ√वस्) रहना (उ० व्य० प्र० ५२, ४। अवासियउ–क्रि० भू० का० (सं० प्रा० आवास, सं० आ √वस्, अववसत्) निवास किया, "खंधावारु अवासियउ जेत्तहि," जहाँ पर सैन्य का पड़ाव था या छावनी रह रही थी; (सि० २, १५, १)।

अवाह—वि० (सं० अबाध) बाधा-रहित, "हउं देमि धरित्ती तुह अवाह" —मैं तुझे बाधा से रहित (कर आदि की) भूमि दूंगा।

अवि—अव्य० (सं० अपि>प्रा० अवि)

भी (कौ० २, १००)।

अविअ—वि० (दे०) १- उक्त, कथित; (दे० ना० मा० १, १०)। २- रक्षित (दे० ना० मा० ५, ३५)।

अविअण्ह—वि० (सं० अवितृष्ण) अतृप्त; (प० च० ३४, ५, ८)।

अविआणिअ—वि० (सं० अविज्ञायक >प्रा० अविजाणय) अविज्ञात, अनजान; (प० च० २०, ७, ६)।

अविउल—वि० (सं० अविकल) जो बेचैन न हो; (प० च० २, १२, १)।

अविओल—वि० (सं० अविकल>प्रा० अविउल) १- जो उद्वेग-युक्त न हो, अनुद्विग्न; (प० च० ४, १२, ८)। २- अखिन्न; (प० च० ४६,१३, ७)।

अविक्खण—न० (सं० अवेक्षण>प्रा० अविक्खण) अवलोकन, निरीक्षण; (भ०)।

अविग्घ—वि० (सं० अविघ्न) बाधा से रहित; (जंबू० १, १८, ७)।

अविचल—वि० (सं० अविचल) अचल; (भ०; प० च० १०, ४, १)।

अविचिंतिउ—वि० (सं० अविचिन्तित) अचिन्तनीय (उत्तम), "अविचिंतिउ विइरयइ सुवणखलहं,", समस्त खलजन भी उत्तम कार्य करने लगते हैं; (व० ४, १२, ५)।

अविज्ज—स्त्री० (सं० अविद्या) अज्ञान; (जंबू० ३, ८, १३)।

अविट्ठ—वि० (सं० अ+विनष्ट) जो नष्ट न हुआ हो; (जंबू० ८, ४, १२,)।

अविणउ—पुं० (सं० अविनय>प्रा० अविणय) शिष्टता या शालीनता का अभाव; (व० ५, १, १६)। (भ०)। अविणय;

अविणयवइ,—अविणयवर—पुं० (दे०) जार, उपपति; (दे० ना० मा० १, १८)।

अविणास—पुं० (सं० अविनाश) क्षय या बर्बादी का न होना; (भ०)।

अविणीय—वि० (सं० अविनीत) जो विनम्र न हो; (जस० १, २०, २)।

अवितत्तअ—वि० (सं० अवितृप्त) वेश्याजन; (जंबू० ६, १२, ८)।

अविभाइ—वि० (सं० अविभाग) अविभागी, जिसके टुकड़े न हो सकें, (व० १०, ३६, ११)।

अवियड्ढ—वि० (सं० अविदग्ध>प्रा० अवियड्ढ) अनिपुण; (जस० ३, ४, ६)।

अवियाणअ—वि० (सं० अविजानत्> प्रा० अविजाणय, अवियाणय) अज्ञानी; (जस० १, ११, १४)।

अवियार[1]—पुं० (सं० अविचार) बुरा विचार, (भ०)। अवियारिय—वि० (सं० अविचारित) जिस पर विचार न किया गया हो; (भ०)। अवियारें—(सं० अविचारेण) बिना किसी विचार के, शीघ्रता से; (प० च० ५, ८, ३)।

अवियार[2]—पुं० (सं० अधिकार) हक, वह शक्ति जो किसी को कानून अपने पद, मर्यादा अथवा योग्यता के कारण प्राप्त हो; (भ०)।

अवियारिय—वि० (सं० अविचारित) जिस पर विचार न किया गया हो; (जंबू० १०, ४, ७)।

अविरइ—स्त्री० (सं० अविरति>प्रा०

अविरइ) १- अविच्छिन्नता; (क० ६, १२, ४)। वि० अविरत; (व० ६, १४, १)।

अविरुद्धअ—वि० (सं० अविरुद्ध) निर्दोष; (जंबू० १०, २०, १०)।

अविरोल—वि० (सं० अविरल) लगातार (सुदं० ३, ४, ७)।

अविलासवंक—वि० (सं० अ+विलास वक्र) स्वभाव से सुन्दर; (जस० १, १७, २०)।

अविलंव—क्रि० वि० (सं० अविलम्ब) विना देर के, (जंबू० ३, ८, १३)।

अविवंक—वि० (सं० अ+वि+वक्र) अति सरल; (जस० १, १५, ६)।

अविवाय—पुं० (सं० अविपाक) १-अपरिपक्व होना, २-अपाचन; (क० ६, १४, १०)।

अविवेइ—वि० (सं० अविवेकी) अज्ञानी; (जंबू० ७, ८, १४)।

अविसट्ट—वि० (सं० अविसृष्ट) अव्यक्त, "तेहइवि कालि अविसट्टमोह" (म० १४, १४, ५)।

अविसन्न—वि० (सं० अविषण्ण) प्रसन्न, जो खिन्न या उदास न हो; (म०)।

अविसाय—पुं० (सं० अ+विषाद> प्रा० अ+विसाय) प्रसन्नता; (जंबू० ११, १५, ३)।

अविसिट्ठय—वि० (सं० अविशिष्ट प्रा० अ+विसिट्ठ) साधारण; असम्य; (म०)।

अविसुद्ध—वि० (सं० अ+विशुद्ध> प्रा० अ+विसुद्ध) निर्मल, निर्दोष; (म०)।

अविहंग—वि० (सं० अ+वि+भंग) अभंग, "एयइँ धम्महो अंगइँ, जो पालइ अविहंगइँ" —जो अभंग रूप से इन धर्मों के अंगों का पालन करता है; (ण० ६, १०, १५)।

अविहत्त—वि० (सं० अविभक्त> प्रा० अ+विभत्त, विहत्त) जो बांटा हुआ न हो; (म०)।

अविहाय—पुं० (सं० अ+विभाग> प्रा० अ+विभाग, विभाय, विहाय) पूर्ण, अविभाजित वस्तु; (म०)।

अविहायउ—वि० (सं० अविभाग) अविभागी (अंश); (जस० ४, १२, ७)।

अविहाविय—वि० (दे०) १-दीन, गरीब, २- मौन; (दे० ना० मा० १, ५६)।

अविहि—स्त्री० (सं० अवधि) अन्याय; (व० १, १, ७)।

अविहिण्ण—वि० (सं० अविभिन्न अभिन्न; (जस० ४, ४, १३)।

अविही—स्त्री० (सं० अविधि) कुपथ; (व० १, १, ७)।

अविहेउ—वि० (सं० अविधेय) न किये जाने योग्य; (व० ६, ३, ६)।

अवुज्झिय—वि० अज्ञात; (प० च० १६, ५, ४)।

अवुह—वि० (सं० अवुध> प्रा० अवुह, अवुह) अनजान; (प० च० १, ३, १२)।

अवे—अव्य०, अव; (की० ३, २४)।

अवेक्ख—स्त्री० (सं० अपेक्षा> प्रा० अवेकखा) आकांक्षा, इच्छा; (जंबू० ६,

१२, १७)।

अवेक्खिणी—वि० (सं० अपेक्षिन् > अवेक्खि) अपेक्षा करने वाली; (ण० १, १६, ८)।

अव्वा—स्त्री० (दे०) माता, जननी (दे० १, ५)।

अव्वुअ—पुं० (सं० अर्बुद) देश-विशेष; (प० च० ४५, ४, ५)।

अव्वो—अव्य० नीचे के अर्थों में से, प्रकरण के अनुसार, किसी एक अर्थ का सूचक अव्यय—१- सूचना, २- खेद; (ण० ३, ७, १)। ३- मातृ (सम्बोधने) (सुदं० ८, ४, १)।

अक्खर—पुं० (सं० अक्षर > प्रा० अक्खर) अक्षर, वर्ण; (की० २, ४५)।

असंक—वि० (सं० अशङ्क > प्रा० असंक) असंदिग्ध; (जस० १, ७, ६)।

असंकिअ—वि० (सं० अशङ्कित) शङ्का रहित, (जस० ४, २४, २)।

असंखु—वि० (सं० असंख्य > प्रा० असंख) संख्या-रहित; (सुअंध० १, ८, १२)।

असंगय—न० (दे०) वस्त्र; (दे० ना० मा० १, ३४)।

असंझहि—अव्य० (सं० अ + सन्ध्या) सन्ध्या पूर्व; (की० २, २५३)।

असंतु—वि० (सं० असन्त) दुष्टतापूर्ण; 'णय-रहिउ असंतु वि पहु अजुत्तु'—अथवा न्याय नीति रहित असंत एवं अयुक्त (कार्य करने वाले) प्रभु; (व० ५, ३, ११)।

असंभव—वि० (सं० असम्भव) जो सम्भव न हो; (जंबू० १०, ३, ६)।

असंहम—पुं० (सं० अ + सम्भ्रम) व्याकुलता या घबराहट न होना; "कारणं न याणिमो असंहमं"; (भ० ४, ७, ११)।

अस—वि (सं० ईदृश्) ऐसा, इस प्रकार का; (की०२,१७) २. पुं० (सं० अश्व > प्रा० अस्स)घोड़ा; (प्रा० पैं० १, २५)।

√अस—(सं० अश् > प्रा० अस) भोजन करना।

असइ—सक० (सं० अश् > प्रा० अस) भोजन करना, खाना; (प० च० १६, ७, ३)। असमि–क्रि० खाना; (क० ६, ६, २)।

असइ[1]—स्त्री० (सं० असती > प्रा० असई) कुलटा, व्याभिचारिणी स्त्री; (जस० २, ६, १६, हे० ३९६, १)। वेश्या (जंबू० १०, १०, ७)।

असइ[2]—अव्य० (सं० असकृत्) अनेक वार; (भ०)।

असईयण—स्त्री० (सं० असती + जन) कुलटा, व्याभिचारिणी स्त्री; (क० १०, ६, ६)।

असक्क—वि० (सं० अशक्त > प्रा० असक्क) (१) असमर्थ; (प० च० १६, ८, ८)। (२) अशक्य, असम्भव; (की० ३, १५८)। ३- अशङ्क; (प० च० ५१, ७, १)।

असगाह—पुं० (सं० असदाग्रह > प्रा० असगाह, असग्गह, असग्गाह) दुराग्रह; कदाग्रह; (प० च० २१, १०, ६; सुदं० ३, ३, ६)।

असच्च—(सं० असत्य > प्रा० असच्च) असत्य, झूठ; (जस० २, १६, ६; ण० ६, १३, १५) असच्चु; (चं० १, ६)।

असच्चि—वि० (सं० असत्मा अथवा असती) १- झूठी, २- जो सती या पति-व्रता न हो: (प० च० १५, १४, २)।
असज्झ—वि० (सं० असाध्य) १- दुष्कर, २- न होने योग्य; (क० ३, १६, ७)। ३- असाध्य; (जस० १, ८, २)।
असट्ठु—वि० (सं० अशस्तम्=अप्रशंसित, असराहनीय) निषिद्ध या बुरा, "लइ अज्जुवि किज्जइ अंतसट्ठु;" (भ०)।
असड्ढलअ—वि० (सं० असाध्य+क) जो सम्पन्न न किया जा सके या पूरा न किया जा सके; (सुदं० ८, ४१, ३)।
असड्ढलु—वि०, असाधारण; अनुपम; (हे० ४२२, ७)।
असण-वेल—स्त्री० (सं० अशन+वेला >प्रा० असण+वेला) भोजन का समय; (प० च० २५, ११, ६)।
असणिघोष—पुं० (सं० अशनिघोष) विघाधर योद्धा; (व० ५, १८, ६)।
असणिवेय—पुं० (सं० अशनिवेग) व्यक्ति-विशेष का नाम; (भ०)।
असणु—न० (सं० अशन>प्रा० असण) भोजन, खाद्य पदार्थ; (हे० ३४, १, २)।
असणेह—पुं० (सं० अ+स्नेह) अप्रीति, प्रेम का अभाव; (भ०)।
असण्णि—वि० (सं० अ+संज्ञिन्) अचेतन; (जस० ४, १६, २)। असन्न-वि० (सं० असंज्ञ) संज्ञाहीन;(भ०)।
असत्थ—वि० १-(सं० अशक्त>प्रा० असत्त) असमर्थ; (क० ४, १३, ३)। २- वि० (सं० अस्वस्थ>प्रा० असत्थ) जो स्वस्थ न हो; (भ०)।
असन्त—वि० (सं० अशान्त>प्रा० अ+सन्त) क्रोध-युक्त, जिसमें क्षोभ, चिंता, दुःख, उद्वेग आदि हों; (भ०)।
असन्ति—स्त्री० (सं० अशान्ति>प्रा० अ+संति) मन की वह अवस्था, जिसमें क्षोभ, चिन्ता, दुःख आदि हों; (भ०)।
अस-पस—पुं० सं० आस्य (मुख, सामने) >प्रा० आस>अस। पार्श्व (=बगल)>पास>पस) आस-पास में; (की० ४, १२०),
असमंजसु—वि० (सं० असमञ्जस) अस्पष्ट, असंगत "चरिउ णिरंकुसु निरु असमंजसु"; (व० ४, ११, १)।
असम—वि० (सं० प्रा० असम) असमान; (भ०)।
असमच्छर—स्त्री० (सं० असम+अप्सरा) अनुपम अप्सरा; (सुदं० १, ४, ८)।
असमत्त—वि० (सं० असमाप्त) जो समाप्त न हुआ हो; (जंबू० ८, ६, ७)।
असमत्थ—वि० (सं० असमर्थ>प्रा० असमत्थ) असमर्थ; अशक्त; (सं० रा० २, ८०-८१)।
असमद्ध—वि० (सं० असमृद्ध) दरिद्र; (म० २, १६, ७)।
असमाण—वि० (सं० अ+समान) जो बराबर न हो; (जस० २, ३३, ६)।
असमाणिय—वि०, ससमाप्त; (भ०)।
असमाहि—वि० असामयिक; (प० च० १६, ६, ३)।
असमाहिल्य—वि० (सं० अ+समाधि+इल्ल (मत्वर्थीय) समाधि रहित; (जस०

१, १६, ५)।

असम्मय—वि० (सं० अ+सम्मत) सहमत, स्वीकृत, माना हुआ; (भ०)।

असरण—वि० (अशरण>प्रा० असरण) निराश्रय; (क० ६, ७, ११)। —ा (असरण) वि० (सं० अशरण) निराश्रित; (प्रा० पैं० १, ६६)।

असराल—वि० १- (अजस्रतर) लगातार; (रि०, प्रथम सर्ग) २- बहुत, प्रचुर; (प० च० २, १६, ४; ३५, १४, ३)। ३- स्त्री० (सं० अश्वशाला>प्रा० अस्स+साला, साल) अश्वशाला; (सि० १, ३६)। ४- वि० कराल; (सुदं० १०, ६, १५) ५- क्रि० वि० कष्टपूर्वक, "परिपालेविणु मुउ असराले," —पालन कर कष्टपूर्वक मरा, (व० २, १६, १०)।

असरासइ—न० (दे०) दुष्टाश्य; (व० ५, २१, १३)।

असरिस—वि० (सं० अ+सदृश) असमान; (ण० ३, १७, ८)। असरिसु; (विला०)।

असरीर—वि० (सं० अशरीर) विना देह के; (भ०)।

असलेष—स्त्री० (सं० आश्लेपा) नवें नक्षत्र का नाम; (प्रा० गु० २४, ३)

असवार—पु० (सं० अश्व+वार) घुड़सवार; (जंबू० ६, ५, ७)।

असहना—वि० (सं० अ+सहन>प्रा० असहण) असहिष्णु, क्रुध, सहन न करने वाला; (की० ३, ३०)। असहन्ती—कृ० असहमाना; (भ०)। असहन्तु—कृ०—सहन न करता हुआ; (प० च० ११, ११, १)। असहंतउ—कृ०, सहन न कर (क० २, १२, ४)।

असहाय—वि० (सं० प्रा० असहाय) सहायता-रहित; (भ०)।

असहिय—वि० (सं० अ+सह्य) जो सहन न किया जा सके; (जंबू० ६, ७, २)।

असाए—पु० (सं० असात्>प्रा० अप० असाय) दुःख, पीड़ा; (की० ४, ६३)।

असामण्ण—वि० (सं० अ+सामान्य> प्रा० असामण्ण, असामन्न) जो सामान्य न हो; (जस० ४, १७, २०; ण० २, ११, ७)।

असारअ—वि० (सं० असारक) सारहीन; (जस० २. २५, १०)।

असारत्त—वि० (सं० अ+सारत्व) सार-हीनता; (जस० ४, २४, ३)।

असालिय—वि० (सं० असार+क) निस्तेज; (सुदं० ११, २०, २३)।

असासय—वि० (सं० अशाश्वत>प्रा० असासय) अनित्य; (भ०)।

असि[1]—पु० (सं० प्रा० असि) तलवार; (प० च० २, ८, ६)। —घाय पु० तलवार की चोट; (जंबू० ६, १, १६)। —धेणुय, स्त्री० (सं० असि+धेनुका) छुरी (जस० २, २६, १०)। —पंजर—पु० लोहे का पिंजड़ा; (व० १, १४, ७)। —फरू पु० असिफल शस्त्र; (व० १, १२, १३)। —लय स्त्री० (सं० असि+लता) खड्ग-लता, तलवार; (क० २, ३, १०)। —वत्त, पु० (सं० असि+पत्र> प्रा० असि-पत्त) तलवार (ण० ८, १५, १०)। —वर पु० श्रेष्ठ तलवार (सि०

२, २३) । –यपक्खु–पुं० (सं० असित +पक्ष) कृष्णपक्ष; (रि०, छठा सर्ग) ।

असि[२]—वि० (सं० अशीति>अर्ध मागधी असीइ) अस्सी; (प्रा० पैं० १, ६७) । असी (प्रा० पैं० २, १४५) ।

असि[३]—क्रि० (सं० अस्ति) है; 'कयात्थासि'–कृतार्थ है; (जंबू० ६, १, २) ।

असिद्ध—वि० (सं० प्रा० असिद्ध) अनिष्पन्न, अनुपलब्ध; (जंबू० ६, ४, १२) ।

असिगाहिणिहे—वि० (स० [illegible] गृहीत, असत् को पकड़ने वाली, (रि०, नौवां सर्ग) ।

असिय—न० (दे०) दांती; (दे० ना० मा० १, १४) ।

असिरिव—वि० (दे०) निर्धन (भ० ११, ६, १२) ।

असिहअ—वि० (सं० असिद्ध) अप्राप्त; (जंबू० ६, १०, २२) ।

असी—स्त्री० (सं० अशीति) सख्या विशेष, अस्सी; (प्रा० गु० ५, २७) ।

असीस—स्त्री० (सं० आशिष्>प्रा० आसी, आसीसा) आशीर्वाद; (सि० २, २२; ण० ६, ४, १०) । असीसा (प० च० २८, १२, ३) ।

असु—पुं० (सं० प्रा० असु) प्राण; (व० १०, २५, २) ।

असुइ—वि० (सं० अशुचि>प्रा० असुइ) अपवित्र, मलिन; (क० ६, २, १) ।

असुउ—वि० (सं० अ+श्रुत) नहीं सुना हुआ; "असुउ असंभउ अच्छरिउ," (भ० ५, ६, १०) ।

असुत्त—वि० (सं० अ+सुप्त) जो सोया हुआ न हो; (जंबू० १०, ६, ४) ।

असुत्तउ—वि० (सं० अ+सूत्र) विना धागे के; (ण० ५, ८, १४) ।

असुद्धउ—वि० (सं० अशुद्ध>प्रा० अशुद्ध) १- असुद्ध, २. दुष्ट; (प्रा० पैं० १, ११६) ।

असुन्दर—वि०, (सं० अ+सुन्दर) असुहावना, अमनोहर; (प० च० ३, ७, ४) ।

असुमे:—पुं० (सं० अश्वमेव) अश्वमेघ यज्ञ, (सि० १, ६, ८) ।

असुर—पुं० (सं० प्रा० असुर) दैत्य; (प्रा० पैं० १, १०१) ।

असुरत्तण—पुं० (सं० असुरत्व) दानवपन; (भ०) ।

असुरत्याण—पुं० (सं० असुर+स्थान) असुर का स्थान; (ण० ५, १२, ११) ।

असुरमन्ति—पुं० (सं० असुरमन्त्रिन्) शुक्र, व्यासपुत्र शुकदेव का नाम; (प० च० २, ३, ६) ।

असुह—वि० (सं० अशुभ) खराव, असुन्दर । न० अनिष्ट । (जस० २, ३३, २) ।

असुहत्त—पुं० (सं० अशुभत्व) अनिष्ट होने का भाव; (क० ६, २०, २१,) ।

असुहर—पुं० (सं० असुधर) प्राणी (व० १०, ३५, १३) । पुं० असुहरग्राम; (व० १०, ४१, ४) ।

असुहरण—पुं० (सं० प्रा० असु (प्राण) +हरण> प्रा० असु पुं०+हरण न०) प्राण–हरण (जस० १, १५, ११) ।

असुहाई—वि० (सं० अशोभनीय) अशोभनीय, "जा राएँ असुहाई गणिया" –जिसे राजा ने अशोभनीय गिना था, (क० ४, १४, १)।

असुहारि—वि० (सं० अशुभ+कारिन) अशुभ करने वाली; (ण० ८, १०, ६)।

असुहावउ—वि० (सं० अशुभ>प्रा० असुह) असुहावना; (क० २, १० १०)।

असुहावणय—(सं० अशोभन>प्रा० असोभण) खराब, असुन्दर; तुल० गु सोहामणुं; (प० च० ३, ७, ४)।

असुहाविय—वि० (सं० असुखापित) स्वादरहित; (जंवू० १, ७, ६)।

असुहासिया—वि० (सं० अशुभाश्रित) अनिष्ट पर आधारित; (व० ३, ८, ७)।

असुह—न० (सं० अशुभ) अशुभ, दुःख, पाप-कर्म (व० ६, १८, २)।

असेव—स्त्री० (सं० अ+सेवा>प्रा० अ+सेवा, सेव्व) सेवा न करना; (भ०)।

असेस—वि० (सं० अशेष>प्रा० असेस) निःशेष, सर्व; (जस० १, ८, ५; क० २, ८, ३)।

असोअ—वि० (सं० अशोक) शोकहीन, (रा० ३६)। असोय; (ण० २, ११, १५)।

असोय—पुं० (सं० अशोक>प्रा० असोग) वृक्ष-विशेष; (जस० ३, १७, २)। असोअ पुं०—वृक्ष-नाम; (प्रा० पैं०, २, १६३)।

असोहण—वि० (सं० अ+शोभन> प्रा० असोभण) शोभा-हीन, खराब; (ण० ३, ६, ७)।

अस्स—पुं० (सं० अश्व>प्रा० अस्स) घोडा; (जस० १, २६, २६; की ३, ७१)।

अस्सवार—पुं० (सं० अश्ववार) घुड़-सवार, अश्वारोही, (की० ३, ७१)।

अहं—सर्व० (सं० अहम्) मैं; (जंवू० १, १८, १)।

अहंग—वि० (सं० अभंग) अखंड, अटूट, पूर्ण; (क० १, ४, ३; ण ३, ६, १५)। —इ स्त्री० (सं० अधमगति) बुरी या निकृष्ट दशा; (व० १०, ७, १२)।

अह[१]—न० (सं० अघ>प्रा० अह) १-पाप; (ण० २, ३, १८)। २- दुःख; (दे० ना० मा० १, ६)।

अह[२]—अव्य० (सं० अथ>प्रा० अह) (१) अथवा, "किं जीवइ अह किं सो मुयउ"—(क० ७, १४, ८)। (२) इस प्रकार; (हे० ३३६)। (३) इसके बाद; (प्रा० पैं० १, २२)।

अहगार—वि० (सं० अघ+कार) पापी; (ण० ३, २, ११)।

अहचरिय—पुं० (सं० अघश्चरित)> प्रा० अह+चरित्त न०) नीच वृत्त; (जस० ४, २३,५)।

अहणिसु—अव्य० (सं० अहर्निश>प्रा० अहण्णिस, अहन्निस) दिन-रात, सर्वदा; (सि० १, ३१, ८)। अहण्णिसं; (प्रा० पैं० २, १२०)।

अहद्द—अव्य० (सं० अथ+अर्द्ध>प्रा०

अह+अद्द) वर्ष बाद; (ण० ६, २१, २३) ।

अहम—वि० (सं० अधम>प्रा० अहम) अधम, नीच; जस० ३, ३१, ४; ण० ४, ३, ५) ।

अहमिंदामर—पुं० अहमिन्द्र देव; (व० १०, ३३, ६) ।

अहिमुख—पुं० (सं० अहिमुख) सर्प-मुख; (व० ७, १२, १०) । वि० (सं० अभिमुख>प्रा० अभिमुह) संमुख, सामने स्थित; (व० ५; १७, ५) ।

अहम्म—पुं० (सं० अधर्म>प्रा० अधम्म, अहम्म) पाप-कार्य, निषिद्ध कर्म (क० १०, २२, ४; सुदं० ८, ३१ ७; ण० ३, २, १०) ।

अहयर—वि० (सं० अधस्+चर) पापी, पापाचारी; (जस० ३, २०, ३) ।

अहर—पुं० (सं० अधर>प्रा० अहर) होठ, ओष्ठ; (ण० ८, १३, १४; की० ३, ३४; क० २, १४, ५) । वि० अधम (जंवू० ६, १२, १२) । अहरु (हे० ३३२, २; रा० २) । –ग्गु (सं० अधर+अग्र>प्रा० अहर+अग्ग) अधर का अग्र भाग; (ण० ५, १, ११) । –त्त पुं० (सं० अहोरात्र) दिनरात; (व० १०, ७, १४) । –मुद्द–स्त्री० अधर मुद्रा (जंवू० ४, १३, ७) ।

अहरबिंब—पुं० (सं० अधर+विम्ब) होठ का प्रतिबिंब; (जंवू० २, १५, १५) ।

अहरम्म—वि० (सं० अभिराम) सुन्दर, मनोहर; (भ०) ।

अहरोवाहि—स्त्री० (सं० अधर+उपाधि) सन्निधि, नैकट्य; (जंवू० १, १०, ४) ;

अहल—वि० (सं० अफल>प्रा० अहल) निष्फल; (जंवू० ८, १४, ४) ।

अहवइ—संयो० (सं० अथवा>प्रा० अहवा) या, अथवा; (प० च० १३, ४, ४) ।

अहवा—अव्य० (सं० अथवा>प्रा० अहवा) अथवा; (ण० ३, १२, ३; प० च० २०, ८, ३; सि० १, १५) ।

अहव्वा—स्त्री० (दे०) असती, कुलटा स्त्री; (दे० ना० मा० १, १८) ।

अहह—अव्य० (सं० प्रा० अहह हा, हा;) इन अर्थो का सूचक अव्यय—१- खेद, आश्चर्य, २- दुःख, (की० ३, ११२) ।

अहासी—क्रि० (सं० आभाषिताः, सं० आ+भाष्>प्रा० आभास, आहास) कही गई है, "चउविह जुवईजाइ अहासी," युवतियों की जाति चार प्रकार की कही गई है; (सुदं० ४, ५, ६) ।

अहि—अव्य (सं० अधि) इन अर्थों का सूचक अव्यय—१- अधिक्य, २- अधिकार, ३- ऐश्वर्य, ४, ऊँचा; (भ०) ।

अहिंस—न० (सं० अहिंसन>प्रा० अहिंसण) अहिंसा; (जस०) । अहिंसा; (भ०) ।

अहि¹—पुं० (सं० अहि) षट्कल गण का नाम । —टि० षट्कल के तेरह भेद होते हैं–हर, शशि, सूर, शक्र, शेष, अहि, कमल, ब्रह्मा, कलि, चंद्र, ध्रुव, धर्म,

झालिकर; (प्रा० पैं० १, १५)। —गण पुं० पंचकल गण के एक भेद का नाम; (छंदशास्त्र में प्रयुक्त); (प्रा० पैं० १, १३)।

अहि—पुं० (सं० प्रा० अहि) १- शेष-नाग, २- सर्प; (की० ४, ६७; रा० ६)। २- अव्य (सं० अथ) तब; (प० च० १३, ६, २)।

अहिअ—अव्य० (सं० अधिक) ज्यादा; (जस० १, २७, ८)।

अहिउ—वि० (सं० अहित>प्रा० अहिय) अहितकारी; लो०—"अहिउ णिस-ग्गउ वइरें लग्गउ। ण समइ सामें पय-णिय-कामें", अर्थात स्वभाव से ही हित-कारी तथा शत्रु कर्मों में लगा हुआ व्यक्ति प्रेम अथवा सामनीति के प्रदर्शन से शांत नहीं हो सकता; (व० ४, १७, १-२)।

अहिक्खण—न० (दे०) उपालंभ; (दे० ना० म० १, ३५)।

अहिखित्तु—वि० (सं० अधिक्षिप्त>प्रा० अहिक्खित्त) १- क्षिप्त, फेंका हुआ, २- त्यागा हुआ, "अरिदमणें भडु जं अहि-खित्तु;" (प० च० ३१, १०, १)।

अहिगम—पुं० (सं० अधिगम) प्राप्ति; (दे० ना० मा० ७, १४)।

अहिचंद—पुं० (सं० अभिचन्द्र) नाम-विशेष; (ण० ७, ११, ३)।

अहिछत्त—पुं० (सं० अहिच्छत्र) नगर-नाम; (जस० ४, २, ४)।

अहिजलण—पुं० (सं० अभिज्वलन) जलना, "णं कोहवसइं अहिजलणलिंग,"- मानो शेषनाग के क्रोधवश जल उठने के चिह्न हों; (क० ४, १४, २)।

अहिट्ठ—वि० (सं० अधिष्ठ) अधि-ष्ठित; मुणिवर तवतेयाहिट्ठउ, (भं० १८, ९, ११)।

अहिट्ठिअ—वि० अधिष्ठित; (जंबू० ४, १३, १९)।

अहिणंदन—पुं० (सं० अभिनन्दन) चतुर्थ तीर्थंकर-नाम; (जस० १, २, २)।

अहिणंदिअ—वि० (सं० अभि+नन्दित >प्रा० अभिणंदिय, अहिणंदिय) जिसका अभिनन्दन किया गया हो वह; (ण० ३, ९, ४)। (जंबू० २, १३, १)। अहिणं-दिय; (ण० ३, ९, ४)।

अहिणव—वि० (सं० अभिनव>प्रा० अहिणव) नूतन, नया; (ण० ७, ८, ८; प० च० १३, ६, ८)।

अहिणाण—न० (सं० अभिज्ञान>प्रा० अहिण्णाण, अहिणाण) पहचान, प्रत्या-स्मरण; तुल० गु० एँधाण; (ण० २, ११, २; प० च० १९, १, १४)। अहि-नाण; (सावे ९, ३, १३)।

अहिणाणिय—वि० (सं० अभिज्ञानिक) अभिजात; (जस० ४, १२, १५)।

अहिणूण—वि० अन्यून; (व० १०, ३८, २)।

अहितन्हि—वि० सं० अहितकारिन्, शत्रु; (की० १, १०१)।

अहिनाण—न० (सं० अभिज्ञान>प्रा० अहिणाण) पहचान, प्रत्यास्मरण; (प्रा० गु० २, ३, १३)।

अहिभवण—पुं० (सं० अहि+भवन) नागमंदिर (जंबू० ३, १३, ३)।

अहिमाण—पुं० (सं० अभिमान) गर्व, घमण्ड; (ण० १, २, २; की० ३, ८४)।

अहिमार—पुं० (दे०) वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, ६)।

अहिमुख—वि० (सं० अभिमुख) किसी

की ओर मुड़ा हुआ, सामने; (ण० १, १०, १)। अहिमुहेंण-वि० किसी की ओर मुख किए हुए; (प० च० १२, ५, ३)। अहिमुह; (भ०)। अहिमुहिहूआइ—क्रि० (सं० अभिमुख) अभिमुख होना; (प० च० ८, १)।

अहिय—वि० १- (सं० अधिक) बहुत, ज्यादा; (भ०)। २- पुं० अहरनाथ, नाम-विशेष; (व० १, १, ११)। ३- (सं० अहित) शत्रु; (व० ६, ३, ३)।—णिरोहिणी- स्त्री० (सं० अहितनिरोधिनी) अहितनिरोधिनी नामक विद्या; (व० ४, १८, ११)। —यर वि० अनेक विध हितकारी; (व० १, १, ११,)।

अहियरिवि—पू० का क्रि० (सं० अधिकृत्य) अधिकृत करके; (भ०)।

अहियारिय—वि० (सं० अधिकारिक) अधिकार-संपन्न; (जस० १, ८, ५)।

अहिराअ—पुं० (सं० अधिराज) प्रभु-सत्ता प्राप्त, सम्राट; (ण० १, ६, २)।

अहिराम—वि० (सं० अभिराम) मनोहर, सुंदर; (क० ३, ५, ७)।

अहिराय—पुं० (सं० अधिराज) महाराज; (भ०)।

अहिल—वि० (सं० अखिल) सम्पूर्ण; (व० ८, ८, ८)।

अहिलस—(सं० अभि+लष् >प्रा० अभिलस, अहिलसइ) अभिलाषा करना। —इ सक० (भ०)। अहिलसहिं-क्रि० ब० अभिलाषा करते हैं; (क० ५, १, १२) अहिलसंत—कृ० (सं० अभि+लष्+शतृ) (जंबू० ६, १०, २१)।

अपिलास—पुं० (सं० अभिलास पुं०) इच्छा, कामना; (भ०)।

अहिलासिअ—वि० (सं० अभिलषित) इच्छित, चाहा हुआ; (ण० ६, २, ६)।

अहिलासी—वि० (सं० अभिलाषिन्> प्रा० अभिलासि) चाहने वाला, इच्छुक; (जंबू० ४, १४)।

अहिव—पुं० (सं० अधिप>प्रा० अहिव) राजा, प्रभु, शासक; (भ०; जस० ४, २, ४)।

अहिवइ—पुं० (सं० अधिपति>प्रा० अहिवइ) राजा, भूप; (ण० १, ७, ६)।

अहिवन्दण—पुं० (सं० अभिवन्दना> प्रा० अभिवंदणा) नमस्कार, प्रणाम; (प० च० २६, १, ६)।

अहिवर-लुलिअ—स्त्री० (सं० अहिवर-लुलितं) सांप की लीला या गमि; (प्रा० पैं० १, ६२)।

अहिवरु—पुं० (सं० अहिवरः) दोहा छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ८०)।

अहिवाअ—पुं० (सं० अभिप्राय) आशय, उद्देश्य, प्रयोजन; (सुदं० ४, ५, २)।

अहिवायण—पुं० (सं० अभिवादन) प्रणाम, नमस्कार; (भ०)।

अहिवाल—पुं० (सं० अभिपाल) रक्षक; (भ०)।

अहिवासु—पुं० (सं० अधिवास) रहने की जगह; (भ०)।

अहिवि—वि० (सं० अविधवा) सधवा, सौभाग्यवती, सुहागिन; (प्रा० गु० २७, ८)।

अहिषेक—पुं० (सं० अभिषेक>प्रा० अभिसेअ) राजा के पद पर आरूढ करना; (कीं० ४, २५५)।

अहिसारिआ—स्त्री० (सं० अभिसारिका) नायिका का एक भेद; (जंबू० ८, १५, १)।

अहिंसिचइ—क्रि० (सं० अभिषिञ्चति) अभिषेक करना, जल छिड़कना; (भ०)। अहिसिञ्चे वि-पू० का० क्रि०, अभिषेक कर;(प० च० १४, ६, ३)।

अहिंसिचिउ—क्रि० भू० का० (सं० अभिसिञ्चित) अभिषेक किया गया, "जो सुरसरिसिंधुहि अहिंसिचिउ,"—जिसका गंगा और सिन्धु नदियों से अभिषेक किया गया; (व० २, १३, ७)।

अहिसेउ—पुं० (सं० अभिषेक) राज्याभिषेक; (ण० ६, २३, ८)।

अहिसेय—पुं० (सं० अभिषेक) राज्य-तिलक करना, (जस० ४, ७, ४)।

अहिसोंरवि—पू० का० क्रि० (सं० अभि+सारय्) जुलूस के रूप में बाहर ले जाकर; (प० च० ५, १६, ७)।

अहिहविय—वि० (सं० अभिभूत) चंकित; (सुदं० ४, ३, ३)।

अहिहाण—पुं० (सं० अभिधान); नाम (जंबू० ३, ५, ११)।

अहीणु—वि० (सं० अ+हीन) पराक्रमी; (व० ३, १३, ६)।

अहीर—पुं० (सं० आभीर>प्रा० अहिर) १- ग्वाला, २- एक जाति जिसका काम गाय-भैंस रखना और दूध वेचना है; (क० ८, ६, ५)। २-छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, ११४)।

अहीरु—वि० (सं० अभीरु) जो डरपोक न हो; (भ०)।

अहेट्ठअ—पुं० (सं० आखेटक>प्रा० आहेडय न०) शिकार, मृगया; (क० ७, १, ६)।

अहों—अव्य० (सं० प्रा० अहो) दीनता एवं कुतूहल सूचक अव्यय; (प० च० १, १२, ६; की० २, २३८)। अहो-अव्य० संबोधने (जस० १, १८, १८); पुं० (सं० अहः, अहन्) काव्य छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ११४)।

अहोगइ—स्त्री० (सं० अधोगति) पतन, दुर्दशा, (जस० २, २, ३)।

अहोड—क्रि० (सं० आहोडति, अहोडति वा) जाना; (उ० व्य० प्र० ४६—१०)।

अहोमुह—वि० (सं० अधोमुख) नीचे मुंह किए हुए; (क० २, ३, ५)। अहोमुहुँ (व० ४, २१, ४)।

अहोयर—वि० आश्चर्यकारी; (जस० ४, २४, ४)।

अहोरण—न० (दे०) उत्तरीय वस्त्र, चद्दर; (दे० ना० मा० १, २५; प० च० १४, ७, ८)।

अह्म—सर्व० (सं० अस्मद्>प्रा० अम्ह) हमारा; (की० ३, १३२)।—हँ—हमारा हमारा (सि० २, ६, १)।

आ

आंकम—पुं० (सं० आक्रमण) हमला; (उ० व्य० प्र० ६—२१)।

आंखि—स्त्री० (सं० अक्षि>प्रा० अक्खि) आंख, नेत्र (रा०, उ० व्य० प्र० ६—२)।—हि (रा० २)।

आंग—पुं० (सं० अङ्गम्>प्रा० अंग) शरीर के मस्तक आदि अवयव, अंग; (उ० व्य० प्र० ४६—७)।

७)। –उ (रा० ४) आंगिहि (रा० ७)। आँग (की० २, ११०)।
आंट—स्त्री० (दे०) द्वेष; (रा० २३)।
आंतर—पुं० (सं० अन्तर>प्रा० अंत) मध्य, भीतर। आंतरे; (रा० २४)।
आँतर–अव्य० बीच में; (की०२, ६२)।
आंतु—वि० (दे०) भयानक; (रा० ६)।
आँकुस—पुं० (सं० अङ्कुश>प्रा० अंकुस अंकुश; (की० ४, २५)।
आंग—पुं० (सं० अङ्ग>प्रा० अंग) शरीर; (की० २, १०७)।
आँचर—पुं० (सं० अञ्चल>प्रा० अंचल) कपड़े का शेष भाग, पल्ला; "कइसे लागत आँचर वतास," किस प्रकार उनके अंचल की हवा लगे;-(की० २, १५०)।
आँतरे—अव्य० (सं० अन्तर्) बीच-बीच में; (की० २, ६२)।
आँवुला—पुं० (सं० आम्र>प्रा० अंव) आम का पेड़, "अरे पुरि पुरि आँवुला मउरिया कोइल हरखिय देह," तुल० गु० आंवलो; (प्रा० गु० २१, ७)।
आ—क्रि० भू० का० (सं० आगत>प्रा० आअअ) आया; । (उ० व्य० प्र० १४–२६)। –अ, वि० आया हुआ (रा०)–आ, क्रि० भू० का०, आए थे, (की० २, २१८)। –इल भू० का० आया; मगही आयल; (विरूपा, चर्यापद)। —इवि, कृ० (क० ४, १, ६)। –ई (रा० ३७)।
आअत<वि० (सं० आयत्त>प्रा० आअत्त>, आअत) अधीन; (की० ३, ५५)।
आअत्ति–क्रि० (सं० आयति) प्राप्त होना; (प्रा० पैं० १, ३७)।
आअल्ल—पुं० (दे०) १- रोग। २- वि० चंचल, चपल; (दे० ना० मा० १, ७५)।
आआ—स्त्री० १- (सं० आद्या=मास की प्रथम तिथि) प्रथम; (प्रा० पैं० १; ५८)।
आइ—क्रि० (सं० आयाति) आ जाना; "जत लेक्खहु तत लेक्खहु आइ"– इस ढंग से लिखने पर लेख आ जाता है; (प्रा० पैं० १, ४१)। आआ–क्रि० भू० का०, आया; (की०)।
आइ—पुं० (सं० आदि>प्रा० आइ) प्रारंभ; "आइ ण अंत ण मज्झ णाउ" (क० १०, १५, ६; स० दो० को०)। अव्य०, वगैर, प्रभृति (ण० १, ५, १)।
आइअ—वि० (सं० आगत) आया हुआ; "सव्व सेन मह पलइ पातिसाह कोहान आइअ" अर्थात् सारी सेना मेरे ऊपर टूट पड़ी है। बादशाह ने क्रोध करके चढ़ाई की है; (की०, ४, २२१;)। (जंबू० १, ११.१०) आइय—क्रि० भू० का० (सं० आगत) आई; (क० ३,१६,७)। आइयय–क्रि० भू० का० आया; (सं० रा०)।
आइच्च—पुं० (सं० आदित्य>प्रा० आइच्च) सूर्य; (क० ३, १२, ८)।
आइजिणु—पुं० (सं० आदिजिन) आदि जिनेश्वर; "तिजयाहिव-सामिउ आइ-जिणु," –तीनों लोकों के अधिपति आदि जिनेश्वर; (व० २, १५, १)।
आइज्झइ—क्रि० (दे०) पहना देना, "कुण्डल-जुअलु झति आइज्झइ"—शीघ्र ही कुण्डल युगल उन्हें पहना देता है; (प०

च० २, ६, ३)।

आइट्ठ—वि० (सं० आदिष्ट>प्रा० आइट्ठ) जिसे आदेश मिला हो; (जंबू० ५, ६, ३)।

आइद्धय—वि० (सं० आविद्ध>प्रा० आइद्ध) पहना हुआ; fasten (as an ornament) (प० च० ३५, ४, ९)। २- प्रज्वलित; 'रोसाइद्धें णं माहिंदेणं मारिउ सो पीयंतु जलु,' रोष से प्रज्व-लित होकर उसे जल पीते-पीते ही मार डाला था; (जस० ४, २६, २०)।

आइरियउ—पुं० (सं० आचार्य>प्रा० आयरिय) गुरु, शिक्षक; (ण० ६, १०, ५)।

आइसु—पुं० (सं० आदेश>प्रा० आएस) आज्ञा; (सि० १, १३)।

आउंच—(सं० आ+कुञ्चय्>प्रा० आकुच, आउंच) संकुचित करना, समे-टना; (ण० ९, ६, ४)।—इ सक० (सं० आकुञ्चयति) (भ०)।

आउंचण—न० (सं० आकुञ्चन>प्रा० आउंचण) संकोच, गात्र-संक्षेप; (ण० ६, २५, १)।

आउंचिय—वि० (सं० आकुञ्चित> प्रा० आउंचिअ) संकुचित; (ण० १, ८, ७; जंबू ८, १३, ३)।

आउंडउ—पुं० (सं० आ+पिण्ड) संपूर्ण शरीर, शरीर-समेत; "आउंडउ जो राउ (ल सो) हइ," —राउल, जो तू आपिण्ड (सम्पूर्ण शरीर से) शोभित हो रही है, (रा० ११)।

आउ—पुं० (दे०) कायिक जीव; "पहुई आउ तेउ वाएँ सहु, हरिकाय ण चलइ भासिउ महु,"—(व० १०, ६, ४)।

आउ—न० (सं० आयुष्>प्रा० आउस, आउ) आयु; (यो० ४९)। २- क्रि० (सं० आगतः) आया; (ज० २, १३, २)।

आउक्खय—पुं० (सं० आयुष+क्षय)> आयु का क्षय होना; (जस० २, १४, ११)।

आउगंठि—स्त्री० (सं० आयुर्ग्रन्थि) आयु का बंधन या गाँठ, "जइ बज्झइ रायोहें आउगंठि ता किं किउ सोहणु जणिय-तुट्ठि," अर्थात् यदि राग के द्वारा आयु की ग्रन्थि बँधती है, तब फिर तत्काल सन्तोष देने वाला अच्छा काम करने से क्या लाभ'; (जस० ४, १०, ६)।

√आउच्छ— (सं० आ+प्रच्छ्>प्रा० आपुच्छ, आउच्छ) अनुज्ञा लेना, आज्ञा लेना।—इ (सं० अपृच्छति) (भ०)।

आउच्छिउ—क्रि० भू० का० (सं० आ+ पृच्छ्>प्रा० आउच्छ) पूछा; (ण० ५ ७, ५)। आच्छेंवि —पू० का० क्रि० पूछकर; (प०च० ९, १, २)।

आउच्छिय—वि० (सं० आपृष्ट>प्रा० आउच्छिय) जिसकी आज्ञा ली गई हो वह; (प० च० १९, १)।

आउज्ज—पुं० न० (सं० आतोद्य>प्रा० आओज्ज, आउज्ज) बाजा, वाद्य; (ण० ८, ७, ११)।

आउट्टि—स्त्री० (सं० आकुट्टि>प्रा० आउट्टि) हिंसा, मारना; (संवि० ११, ५, १५)।

आउण्ण—वि० (सं० आपूर्ण>प्रा० आपुण्ण) पूर्ण, भरपूर; (जंबू० ४, ६,

५) । —य (प० च० ६, ४, ३) ।

आउत्त—पुं० (सं० आयुक्त) १- गाँव का नियुक्त किया हुआ मुखिया; (दे० १, १६) । २- अधिकारी (जंबू० ५, १, १०) ।

आउद्ध—न० (सं० आयुध>प्रा० आउह) शस्त्र, हथियार; (प० च० ३१, १४, ७) ।

आउपमाण—पुं० (सं० आयुष्+प्रमाण) आयु का प्रमाण; (जस० ४, १०, १०) ।

आउर[1]—वि० (सं० आतुर>प्रा० आउर) पीड़ित; (भ०) । आउरा–दुःखित; (व० ६, ४, ६) ।

आउर[2]—न० (दे०) लड़ाई, २- वि० बहुत अधिक; ३- गरम; (दे० १, ६५; ७६) ।

आउल—वि० (सं० आकुल>प्रा० आउल) व्यग्र; (क० १, १७, १०) । –मणु वि० (सं० आकुलमन) दुःखी मन; (व० ३, १२, ८) । आउलि—वि० (सं० आकुल) आकुल, "ता आउलि पुरयणु हुउ खणेण"–तव एक क्षण में पुरजन व्याकुल हो उठे; (क० ३, १३, १) ।

आउलिय—वि० (सं० आकुलित>प्रा० आउलिअ) आकुल किया हुआ; (व० ५, १३, १५) ।

आउलिहुय—वि० (सं० आकुलीभूत> प्रा० आउलीभूअ) घवड़ाया हुआ; (प० च० २६, ३, २) ।

आउलेइ—क्रि० (सं० आकुलय्>प्रा० आउल) व्यग्र करना, दुःखी करना; (प० च० १०, १०, २) ।

आउस—न० (सं० आयुष्>प्रा० आउस, आउ) आयु, जीवन-काल; (भ; ण० १, १२, ११) । —मअ, वि० (सं० आयुष्मय) दीर्घजीवी; (जंबू २, २०, १०) ।

आउह—न० (सं० आयुव>प्रा० आउह) शस्त्र, हथियार; (भ०) ।

आउहोह—पुं० (सं० आयुव+ओघ> प्रा० आउह+ओघ, ओह) आयुव-समूह, शस्त्र समूह; (रि०, तृतीय सर्ग) ।

आऊ—न० (सं० आयुष>प्रा० आउस) आयु; (ण० ६, १८, ६) ।

आऊखउ—न० (सं० आयुष्क्रम्) जीवनाविधि, "वरिसा सउ आऊखउ लोए, असी वरिस नहु जीवइ कोई,"तुल०गु० आवखु; (प्रा० गु० ५, २७) ।

आऊर—(सं० आ+पूरय् >प्रा० आऊर) भरना, पूर्ति करना, भरपूर करना । –इ सक० (सं० आपूरयति) (प० च० ४, ६, ३; भ०) ।

आऊरिय—वि० (सं० आपूरित>प्रा० आऊरिय) भरा हुआ, व्याप्त; (प० च० ५, ३, ३) ।

आउरेप्पिणु—पू० का० क्रि०(सं० आ+रोपय्> प्रा० आरोव) अरोपण कर, स्थापन कर, "सुक्कझाणु मणि आऊरेप्पिणु"—शुक्ल ध्यान का आरोपण कर, (ण० ६, २५, १४) ।

आए—क्रि०, भू० का०, (सं० आ+या) आती थी, (कीं० २, १०६) ।

आएस—पुं० (सं० आदेश >प्रा० आएस) आज्ञा, हुक्म; (प० च० १५, १; १; ण० ३, १६, १५) । आएसु;

(विला०)।

आएसिअ— वि० (सं० आदेशित) जिसको आज्ञा दी गई हो वह; (जंबू० १, ४, ६)। आएसिय —वि० (आदिष्ट) (भ०)।

आओहए— न० (सं० आयोधन >प्रा० आओहण) युद्ध, लड़ाई; (भ०)।

आकंख—क्रि० (सं० आ+कांक्ष्>प्रा० आंकख) चाहना, इच्छा करना; (ण० ७, २, ११)। स्त्री० (स० आकाङ्क्षा>प्रा० आकंखा) अभिलाषा; (भ०)।

आकंखिरिय—वि० (सं० आकाङ्क्षिन्> प्रा० आकंखि) आकांक्षावाली, अभिलाषी; (सं० रा०)।

आकंतिय—वि० (सं० अाक्रान्त) पकड़ा हुआ, पराजित, पराभूत (सं० रा०)।

आकंदिय—वि० (सं० आक्रन्दित) जिसने आक्रन्द किया हो वह, (दे० ना० मा० ७, २७)।

आकंदु—पुं० (सं० आक्रन्दन) रोना; (व० ७, १४, ८)।

√आकंप—(सं० आ+कम्प्>प्रा० आकप)कांपना। आकंपिउ-क्रि० भू० का०, कांप गया; कम्पायमान हो गया; (व० २, १२, २)।

आकण्णन—न० (सं० आकर्णन>प्रा० आकण्णन) श्रवण; (की० १, ४०)।

आकरिसण—न० (सं० आकर्षण>प्रा० आकड्ढण) खिंचाव; (जंबू० ६, १२, ६)।

आकारे—पुं० (सं० आकार) आकृति, रूप; (की० ४, ५०)।

आकास—पुं० न० (सं० आकाश>प्रा० आकास) आकाश; (की० ४, १३०)।

आकुंच—(सं० आ+आकुञ्चय्>प्रा० आकुंच) संकोच क...। आकुंचइ-क्रि० (सं० आकुञ्चयति) (भ०)। आकुंचिवि पू० का० क्रि०(भ०)।

आकोयण—पुं० (दे०) फैलाव; (सं० रा०)।

√आकोस—(सं० आ+√क्रुश्, क्रोशय, प्रा० आओस) क्रोध करना। आकोसंति; (जस० ३, ३५, १०)।

आकोसण—पुं० (सं० आक्रोशन>प्रा० आओसण) तिरस्कार, गाली-गलौज; (ण० ६, २५, ४)।

आक्रीड्डते—पुं० (सं० आक्रीडन न०) अखाड़ा, (की० २, ६६)।

√आखंच—(सं० आ+ कृष्) पीछे खींचना। आखंचइ-क्रि० (सं० आकर्षति) खींचना; तुल० गु० म० खेंचणें; गु० खिचवु; (भ०)।

आखंडल—पुं० (सं० आखण्डल>प्रा० आखंडल) इन्द्र; (की० १, ८०)।

√आख— (सं० आ+ख्या > प्रा० आअक्ख)कहना, बोलना। आखइ; (रा० ६), आखहि; (रा० १५)।

आग—पुं० (सं० अग्र>प्रा० अग्ग) आगे का भाग। —अ (सं० आगत) (जंबू० १०, १८, ६)। आगु–अव्य० आगे; (की० ४, १६४)। आगें; (रा० १६)।

आगइ—अव्य० (सं० अग्रे>प्रा० अग्ग) आगे; (संधि० १२, ६, ६; सं० रा०)।

√आगच्छ—(सं० आ+गम्>प्रा० आगच्छ) आना, आगमन करना। आगच्छु–

क्रि० आ०, आओ, आगमन करो; (प० च० १७, ३, ८) । –मागु व० कृ०, आते हुए, (व० ३, ४, ३) ।

आगम—पुं० (सं० आगमन>प्रा० आगमण) आगमन; (भ०) ।—ण न० (सं० आगमन); (जंबू० २, १०, १०) ।

आगम—पुं० (सं० प्रा० आगम) शास्त्र; (सि० १, २२; जस० १, ७, ८) ।

आगय—वि० (सं० आगत>प्रा० आगय) आया हुआ; (भ०) । क्रि० भू० का०–आ गई, "एत्यंतरि आगय जणणि तासु" (विला०) । –ा (आगया) आगता: आ गया; (जंबू० ६, १७, ७) ।

आगर—पुं० (सं० प्रा० आकर, प्रा० आगर) खान; समूह; (प० च० ४, २, ३) ।

आगरि—वि० (सं० आकर=श्रेष्ठ) श्रेष्ठ; उत्तम, (की० २, ११५) ।

आगलिय—वि० (सं० अग्र) आगामी, अगला; "एक रयणि वीरसागलिय, कुमरि भणइ किम करि पभणाउ," तुल० गु० आगळ; (प्रा० गु० २४, ८) ।

आगहनमास—पुं० (सं० अग्रहायणमास) प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का अगला या पहला मास, मार्ग शीर्ष; (व० ६, २०, ४) ।

आगामि—वि० (सं० आगामिन्>प्रा० आगामि) आगामी, आने वाला; (व० १०, ३६, ६) ।

आगासण—पुं० (सं० अग्रासन) आगे का आसन; (सि० १, १३) ।

आगि—स्त्री० (सं० अग्नि>प्रा० अग्गि) आग, वह्नि; (की० ४, ६०) ।

आगिवाणि—पुं० (सं० अग्रानीक) सेना का आगे चलने वाला भाग; "ता पहिलइ रिण-रंगि ए, अनलवेगु तहिं झूझियउ । पडियउ भंगोभंगि, आगिवाणि मरहह तणए," तुल० गु० आगेवान; (गु० प्रा० ४, २७) ।

आगु—अव्य० (सं० अग्र>प्रा० अग्ग) आगे; तुल० प० अग्गे; (की० ४, १६४) । —रु, वि०—पूज्य, गुरु-स्थानीय; (जंबू० ६, १७, १३) ।

आघुट्ट—वि० (सं० आघुष्ट>प्रा० आघुट्ठ) घोषित; (भ०) ।

√आघोस—(सं० आ+घोषय्>प्रा० आघोस) घोषणा करना, (जस० ३, २१, १४) ।

आचार—पुं० (सं० प्रा० आचार, प्रा० आयार) आचरण; (भ०) । आचारक–पुं० आचार; (की० ३, १२१) ।

आच्छ—क्रि० (सं० आस्, आस्ते, प्रा० आस) बैठना; (उ० व्य० प्र० २०-७)

आच्छउ—क्रि० (सं० अस्मि) हूँ; (उ० व्य० प्र० २०–१६) ।

आच्छिहइ—क्रि० (सं० स्थास्यति)—रुकेगा, ठहरेगा; (उ० व्य० प्र०, २१–११) ।

आच्छे—वि० १. खड़ा हुआ, रहा हुआ, ठहरा हुआ २. खड़ा होने वाला, ३. उठा हुआ; (उ० व्य० प्र०, २०–१२) ।

आछ—क्रि० (सं० अस्) होना ।—इ (सं० अस्ति) है; तुल० गु० छे; (प्रा० गु० ७, १८) । आछहि (रा० ७) ।

आछे—होना; (प्रा० पै० २, १४४) ।

आजम्मु—क्रि० वि० (सं० आजन्म) जन्म-पर्यन्त; जीवन भर; (भ०)।

आजाणु—वि० (सं० आजानु) जांघ या घुटने तक लम्बा; (जंबू० ६, १८, २)।

आठम्मि—स्त्री० (सं० अष्टमी>प्रा० अट्ठमि) तिथि-विशेष, आठवीं तिथि (रा० ३०)।

आड—स्त्री० (दे०) ओट, आड़। आडाहं (रा० ३०)।

आडम्बर—पुं० (सं० आडम्बर>प्रा० अ.डंबर) ऊपरी दिखाव, ढोंग; (प० च० १, १३; ८)।

आडविय—पुं० (सं० आटविक) सेना का एक भेद; (प० च० १६, १२; ६)।

आडी—वि० तिरछी; (की० २, १७७)।

आडुआली—स्त्री० (दे०, प्रा०√आडु-आल=मिश्रण करना, मिलाना) मिलावट, मिश्रण, "आडुआली मिश्री भावः" (दे० ना० मा० १, ६६)।

आडोविअ—वि० (दे०) आरोपित, क्रोधित; (दे० ना० मा० १, ७०)।

आडोह—गडबड़ करना, किसी काम में बेकार भिड़े रहना; अस्तव्यस्त कर देना; —इ, क्रि० व० (प० च० २६, ७, १)। आडोहेंवि–पू०का०क्रि० (दे०) हिलाकर; (प० च० ४, १०, ३)।

आढत्त—वि० १. (सं० आरब्ध>प्रा० आढत) प्रारब्ध, शुरू किया हुआ; (भ०; सुदं० ३, ४, ५; प० च० २, ४, ३)। २. पुं० (सं० आज्ञप्त) आदेश; (जस० १, ८, ३)।

आढत्तउ—क्रि० भू० का० (सं० आ+रभ्>प्रा० आढव, आढवइ) प्रारम्भ हुआ; (ण० ३, ६, ४)।

आढप्पइ—क्रि० (सं० आ+रभ्>प्रा० आढव, आढप्प) आरंभ करना, शुरू करना; (प० च० १, २, १२)।

आढविअ—वि० (सं० आरब्ध>प्रा० आढत) शुरू किया हुआ; (जंबू० ३, ६, १०)।

√आणंद—(सं० आ+नद्>प्रा० आणंद) खुश होना, आनंद प्राप्त करना। आणंदइ (सं० आनन्दयति); (भ०)।

आणंद—पुं० (सं० आनन्द) हर्ष, खुशी; (भ०)। –ण न० (सं० आनन्दन) हर्ष; (जस० २, १४, ४)। –यर, वि० आनन्दकर (जंबू० ८, ४, ६)। –यरी, वि० आनन्दकरी (स्त्रीयाम्) (जंबू० ३, ३, ६)।

आणंदप्पह—स्त्री० आनन्दप्रभा, स्त्री०-विशेष का नाम; (ण० ७, ११, ६)।

आणंदि—वि० (सं० आनन्दिन्) खुश रहने वाला; (भ०)।

आणंदिअ—वि० (सं० आनन्दित>प्रा० आणंदिय) हर्ष-प्राप्त; (प्रा० पैं० २, २१३)। —य (आणंदिय) आनन्दित; (जंबू० ४, ६, ७)।

आणंदिउ—क्रि०, भू० का० (सं० आ+नन्द्>प्रा० आणंद) प्रसन्न हुए, खुश हुए; (त्रि० १, ३४, १५)।

आणंदिय—वि० (सं० आनन्दित>प्रा० आणंदिय) हर्ष-प्राप्त; (सणतु० ४७०)।

आणंदिर—वि० (सं० आनन्दिन्>प्रा० आणंदिर) (इर प्र०) आनन्दित करने वाले; (जस० १, १५, १६)।

आणंदु—पुं० आनन्द नामक छंद "इय

छंदु आणंदु" (सुदं० ४, १२, १६)।
आण—वि० (सं० अन्य>प्रा० अण्ण) १. दूसरा, कुछ और; (कौ० ३, ८७)। २. स्त्री० (सं० आज्ञा) आज्ञा; तुल० गु० म० आण; (प० च० ८, २, ३; सि० २, ३१; कौ० ४, ११३)। आनक–वि० दूसरे का; (कौ० २, १०८)। आनकां–वि० अन्य को; (कौ० २, १०८)। —परि-स्त्री०-(सं० अन्य नारी) अन्य स्त्री (सि० १, २०)
आण—क्रि० (सं० आ+√णी>प्रा० आण) लाना, आनयन करना, ले आना। –इ, क्रि० व० (प० च० २, १६, २); तुल० गु० आणवु, म० आणणें। –हि, क्रि० लोट लकार–लाओ, लाई जाए; (हे० ३४३, सुलंव २, ६, १)। आणि–क्रि० भू० का०, ले आया; (क० ३, १०, २)। आणि–पू० का० क्रि० लाकर; (सं० रा०)। आणावहि–क्रि०, लोट लकार, मँगवा, "आणावहि वग्घिहे दुद्ध तुहुँ" —तू उससे व्याघ्री का दूध मँगवा; (क० १०, २०, १०)। आणि–क्रि०, ले आया (क० ३, १०, २)। आणिवि–पू० का० क्रि० (क० ४, १५, १०); आणेप्पिणु (ण० १, १५, १५)। आणेइ–क्रि० लाना (प्रा० पैं० १, ७४)। आनए–क्रि० व०, लाता है; (कौ० २, २०२)। आनथि क्रि०, व०, लाता है; (कौ० ४, ८३)। आनलि–क्रि०, भू० का०, लाई हुई; (कौ० २, १४६)। आनिअ–क्रि० भू० का०, लाया; (कौ० ४, ५८)। आनिआ–क्रि०, लाए गए; (कौ० ४, २८)। आनिब-क्रि०, आ० लाइए, लाया जाए; (कौ० २, १८५)। आनु—क्रि०, भू० का० लाये; (कौ० ४, ४१)।
आणकर—वि० (सं० आज्ञाकारिन्) आज्ञाकारी; (जंबू० ३, ३, १३)।
आणण—न० (सं० आनन>प्रा० आणण) मुख अथवा द्वार; (जस० १, ४, ८)।
आणत्त—वि० (सं० आज्ञप्त>प्रा० आणत्त) जिसको आदेश दिया गया हो वह; (ण० ६, ५, ६)।
आणत्ती—स्त्री० (सं० आज्ञप्ति>प्रा० आणत्ति) आज्ञा, हुक्म; (प० च० ३५, ६, ७)।
आणयर—वि० (सं० आज्ञा+कर) आज्ञाकारक, नौकर, सेवकगण; (ण० ६, १४, १)।
आणदयर—वि० (सं० आनन्दकर) आनन्द देने वाला; (प० च० १०, ४, ६)।
आणवडिओ—वि० (सं० आज्ञावर्ती) आज्ञाकारी; "आणवडिओ य वट्टेइ मह परिअणो"; (संवि० १६, ३, ६)।
आण-वडिच्छय—वि० आज्ञा–पालक; (प० च० २४, ११, ३)।
आणवडीय—वि० (सं० आज्ञा+प्रतीप) आज्ञाविरुद्ध; (प० च० १२, ४, ६)।
आणा—स्त्री० १. (सं० आज्ञा>प्रा० आणा) आदेश, हुक्म; (सुदं० १, १०, ८; ण० १, १३, १; कौ० ४, ११३)। २. आयु, प्राण "सयलवि आणा पाण आहारण," (व० १, ७, ११)।
आणाइ—पुं० (दे०) शकुनि, पक्षी; (दे० ना० मा० १, ६४)।

आणाकारिणी—वि० (सं० आज्ञाकारिणी) आज्ञाकारी; (जस० १, ४, १५)।

आणाव—क्रि० (सं० अ+नायय्) मंगवाना। आणावइ (सं० आनाययति) (भ०)।

आणाविय—वि० (सं० आनायित>प्रा० आणाविय) मंगवाया हुआ; (क० ३, ४, १)।

आणा-विहेय—स्त्री० (सं० आज्ञाविधेय) किये जाने योग्य आज्ञा, पालन होने के योग्य आज्ञा; (प० च० २२, ६, ७)।

आणिअ—वि० १. (सं० आनीत>प्रा० आणिअ) लाया हुआ; (ण० १, १४, १०)। २. (सं० आदृत>प्रा० आढिअ, आणिअ) सम्मानित ;(दे० ना० मा० १, ७४)। आणिय; (जस० १, १०, ८)।

आणी—(सं० आ+√नी> प्रा० आणी) लाना; (जस० १, ८, ४)

आणिअइ—सक० (सं० आनीयते) लाना; (हे० ४१९)। आणिउ भू० का० लाया गया; (महा० ६८, ५)। आनए—क्रि० ले आता है; (की० २, २०२)।

आणुअ—न० (दे०) १. मुख, २. आकार, आकृति; (दे० ना० मा० १, ६२)।

आणूव—(दे०) डोम, अत्यन्त नीच जाति का आदमी; (दे० ना० मा० १, ६४)।

आतावणे—वि० (सं० आतापन) उष्ण, "सरि-तडि आतावणें थिउ मुणिंदु," नदी किनारे आतापनी शिला पर मुनि बैठे थे, (सि० २, २९)।

आतिथ—न० (सं० आतिथ्य>प्रा० आतित्थ, आइत्थ) आतिथ्य, अतिथि-सत्कार; (की० २, ७३)। आतिथ्य; (की० २, ९२)।

आथि—क्रि० (सं० अस्ति>प्रा० अत्थि) है; (रा० १३; उ० व्य० प्र० ५-४)।

आदण्ण—वि० (दे०) व्याकुल, आकुल; (प० च० २, १३, ५)।—अ (दे०) व्याकुल (जंबू० ६, ६, १४)। आदन्न—वि०—पीड़ित (हे० ४२२, १६)।

आदेस—पुं० (सं० आदेश>प्रा० आएस) आज्ञा; (प० च० ८, १०, ७)।

आध—वि० (सं० अर्ध>प्रा० अद्ध) आधा। आधहं (रा० ३८)।

आधार+सत्ति—स्त्री० (सं० आधार+शक्ति) आधार शक्ति, "जा तिल्लोक्कहों आधार सत्ति," जो इस त्रैलोक्य की आधार शक्ति है; (जस० ४, १३, ११)।

आनंदिअ—वि० (सं० आनन्दित>प्रा० आणंदिय), हर्षित; (रा० ६)।

आन—पु० (सं० अन्न>प्रा० अण्ण)-भक्ष्य पदार्थ, चावल का भात; (की० २, १८५)। स्त्री० (सं० आज्ञा>प्रा० आण) आज्ञा; (की० ३, १९)। वि० (सं० अन्य) दूसरा; (रा० २); आनु (रा० ३), आनहिं (रा० ११), आनु (रा० ३८), आन्न; (रा० १८)।

आनक—वि० (सं० अन्य>प्रा० अण्ण) दूसरे का; (की० २, १०८)।

आनथि—क्रि० भू० (सं० आ+णी> प्रा० आण=लाना) लाते थे; (की० ४, ८१)। आनहि—लाते हैं; (की० २,

६०)। अनिज—क्रि० लाइए, लाया जाए (की० २, १८५)।

आनन—न० (सं० आनन>प्रा० आणण) मुख, मुँह; (की० ३, ५)।

आ+नमसीय—क्रि० भू० का० (सं० नमस्कृतम) नमस्कार किया; (जंबू० ६, १७, ५)।

आनलि—क्रि० भू० का० (सं० आ+√नी>प्रा०आण) प्राप्त किया, "रसिके आनलि जूँआ"—रसिकों ने जिन्हें जुए में प्राप्त किया था; (की० १, १००)।

आनिअ—क्रि० भू० का (सं० आ+√नी प्रा० आणी) लाया; (की०)। आनु–भू० का०, लाये; (की०)।

आनिक—वि० (दे०, प्रा० आणिक्क) वक्र, वांका; (रा० ७)। आनिकु (रा० ८)।

आपण—सर्व० (सं० आत्मन्>प्रा० अप्पण) स्वकीय। आपणु (रा० १)। –पउ सर्व० स्व, निज; (प्रा० गु० १, ४८)। आपणि–सर्व० अपना; तुल० गु० आपणे; (प्रा० गु० १०, ४४)।

आपण्डुर—वि० (सं० आपाण्डुर) सफेद रंग का; (प० च० ८, १, १)।

आपीण—वि० (सं० आपीन) विशाल, 'घणापीणतुंगत्थणी मज्झखीणा, 'जिणुत्तस्स गंथस्स पंथम्मि लीणा,' सघन, विशाल और उन्नत स्तनों से युक्त क्षीण-कटि वाली वह देवी अब जिनेन्द्रोक्त शास्त्र के पक्ष में लीन हो गई; (जस० ४, १७, २२)।

आपीलइ—क्रि० (सं० आ+पीडय्) १. हैरान करना, २. दबाना; (जंबू० ४, १७, ११)।

आपु—सर्व० (सं० आत्मन्>प्रा० अप्पण) अपना, निज; (की० ४, ४५)।

आपुल—वि० (सं० आपूर्ण>आपुण्ण) पूर्ण, भरपूर। आपुली (रा० ६)।

आपुलउ—सर्व० (सं० आत्मन्>प्रा० अप्पण) आत्मीय, अपना; तुल० म० आपुला, गु० आपणुं; (प्रा० गु० २७, ५)। आपुलु (प्रा० गु० २०, १३)।

आपें—पु० (सं० अर्पय>प्रा० अप्प= अर्पण करना, भेंट करना) भेंट के लिए; "आपें रहि रहि आवन्ता," वे एकान्त में भेंट करने के लिए उत्कण्ठा से आते रहते थे; (की० २, २२३)।

आफर—पुं० (दे०) द्यून, जुआ; (दे० ना० मा० १, ६३)।

आफिमट्ट—(दे०) भिडना; (जंबू० ६, १२, ६)। —इ, क्रि० (सुदं० ६, ४, १)।

आभरण—पुं० छंद शास्त्र में प्रथम द्विकल गण (ऽ) का नाम; (प्रा० पैं० १, २१)।

आभास—पुं० (सं० आभास=चमक) प्रकाश; (की० ४, १२५)।

आमंतण—न० (सं० आमन्त्रण>प्रा० आमंतण) निमंत्रण; (सि० ७, ३३)।

आमंतिय—वि० (सं० आमन्त्रित) निमंत्रित, आमन्त्रिता स्त्रियाम्) (जंबू० १०, २५, ४)।

आम—अव्य० जब तक; (हे० ३८६)।

आमइ—स्त्री० (सं० प्रा० आमय) व्याधि, रोग; (जस० २, ११, ६)।

आमभायण—पुं० मिट्टी का वर्तन; "दुद्ध आम भायणे कि किउ लहु,"—यदि दूध को कच्चे घड़े में रख दिया जाए, (व० ४, १५, १)।

आमलय—न० (दे०) नूपुर रखने का स्थान, (दे० ना० मा० १, ६७)। २. पुं० न० (सं० आमलक>प्रा० आमलग, आमलय) १. आमला का पेड़, २. आमला का फल (भ०); तुल० म० आवळा, गु० आमळो।

आमल्लि—क्रि० (सं० आ+मुच्) छोड़ना। आमिल्लइ (भ०)।

आमिस—न० (सं० आमिष>प्रा० आमिस) मांस; (ण० ४, २, १६)। आमिसु—मांस (सा० ४०) –गसिर क्रि० (सं० आमिष+ग्रसन–शील) मांस खाए; (जंबू० २, १८, ६);

आमुक्क—वि० (सं० आ+मुक्त) त्यक्त; (जंबू० ५, ११, १३)।

आमुरूय—पुं० (फ़ा० अमरूद; तु० मुरूद) अमरूद; (सं० रा०)।

आमेल्लिय—वि० (सं० आ+मुक्त> प्रा० आमुक्क) त्यक्त; मुक्त; (सुदं० ६, ४, ६)।

√आमिल्ल—(सं० आ+मुच् >प्रा० आमिल्ल) छोड़ना। –इ सक० (भ०)। आमेल्लॅवि–पू० का० क्रि० मुक्त कर; (प० च० २, १२, ६)।

आमेल—पुं० (दे०) लट, जटा; (दे० ना० मा० १, ६२)।

√आमोअ—(सं० आ+मुद्) खुश होना। आमोयइ (सं० आमोदते)। आमोएवि–पू० का० क्रि० (भ०)।

आमोअ—पुं० (सं० आमोद) हर्ष, प्रसन्नता; (दे० ना० मा० १, ६४)। आमोय (भ०)। —य आमोद (जंबू० ५, १, २२)।

आमोड—पुं० (दे०) १. लट, २. जटा की गाँठ, जूड़ा, ३. समूह; (दे० ना० मा० १, ६२)।

आमोडा— स्त्री०(सं० आम्रमुकुट) आम का बौर; "अरे सिरि अमोडा लहलहहिं कसतूरिय महिवट्टु," तुल०गु० अबोडो; (प्रा० गु० २१, ११)।

आमोय—पुं० (सं० आमोद>प्रा० आमोअ) हर्ष, खुशी; (जस० १, १२, ६)।

आमोसहि—स्त्री० (सं० आमोषधि) ऋद्धि–विशेष; (जस० ३, ३७, ३)।

आयंब—वि० (सं० आताम्र>प्रा० आयंब) थोड़ा लाल; (क० ३, २, ४)।

आयंबिर—वि० (सं० आताम्र>प्रा० आयंबिर) थोड़ा लाल; (भ०)।

आयंबिरच्छ—स्त्री०, (सं० आ+ताम्र+अक्षि) ताम्रवर्ण के रंग की आँखें; (ण० ४, १, ६)।

आय—सर्व० (सं० इदम्) इस, (भ०) –ईं अव्य० पूर्व में (व० ५, २, ५)। –उ, यह (जंबू० ६, ६, ११)।—एँ. इस (प० च० ५, १३, ८)।

√आय— (सं० आ+या>प्रा० आया, आव) आगमन करना; आना; तुल० गु० आयो; (प० च० १, ७, ६) । २. आये (सं० आगत) (क० २, ७, ८)। ३. आगता (स्त्री०) (जंबू० ८, ५, ५)।

आयअ—वि० (सं० आगत) आया हुआ;

"(ण० १, ८, १३) ।

आयच्छत्तु—पुं० (सं० आगमाक्षर) वेद या शास्त्र का ज्ञान; "नइ नियमेण सुणहि आयच्छत्तु" (म० १५, १३, ६) ।

आयड्ढण—न० (सं० आकर्षण > प्रा० आयड्ढण) आकर्षण, खींचाव; (ण० ५, ४, १४) ।

आयड्ढि—स्त्री० (सं० आकृष्टि) आकर्षण, खींचाव; (दे० ना० मा० ६, २१) । —य वि० (सं० आकृष्ट) आकर्षित; (जंबू० ४, ६, १) ।

आयण—न० (सं० आगमन > प्रा० आगमण) आना; (सि० १, १३) ।

√आयण्ण—(सं० आ + कर्णय् > प्रा० आयण्ण) सुनना, (म० ७, १६, ११; ण० १, ३, १) । आयण्णहि—क्रि० सुनिए; "आइय आयण्णहि पहु पुकारि," हे राजन्, सुनिए, बाहर से पुकार आ रही है;(सि० १, १५) । कृ०—आयण्णिवि—पूर्वका०क्रि० सुनकर; (ण०१,५,१) ।

आयण्णण—न० (सं० आकर्णन > प्रा० आयण्णण) श्रवण; (क० ३, ७, ४) ।

आयण्णिय—वि० (सं० आकर्णित) सुना हुआ; (ण० १, १२, ७) ।

आयत्त—वि० (सं० प्रा० आयत्त) आधीन, स्ववश; (प० च० १, ७, ३) ।

आयत्तउ—वि० संतप्त; "तहि नावइ मत्तउ परआयत्तउ नाइ मुउ नं मुच्छियउ," अर्थात् उस पर नहीं जान पड़ता था कि वह मृत है या संतप्त, मूढ़ है या मूर्छित; (विला०) ।

आयदण—पुं० (सं० आयतन) भवन, "गंधव्वायदणहिँ परिसोहिउ"—'गन्धर्वों के भवनों से परिशोभित; (जस० ४, २३, ११) ।

√आयन्न— (सं० आ + कर्णय् > प्रा० आयण्ण) सुनना । आयन्नइ(सं० आकर्णयति) (म०) ।

आयपत्त—पुं० (सं० आतपत्रम्) छाता; (सि० १, १०) । आयवत (छत्र); (रि० ३, ७) ।

आयम—पुं० (सं० प्रा० आगम) आगमन (जंबू० ३, ६, १६) ।

आयम्ब—वि० (सं० आताम्र > प्रा० आयंब) लाल रंग का; (प० च० ४, ६, ६) । आयम्बिर—वि०, लाल रंग का (प० च० ८, ६, ३; १२, ४, २) ।

आयय—पुं० (सं० आत्मज) पुत्र; (म०) ।

आयर—पुं० (सं० आदर > प्रा० आयर) सत्कार, सम्मान; (ण० ३, १३, ६; सि० १, २६) । आयरु; (हे० ३४१, २) ।

आयरिय—पुं० (सं० आचार्य > प्रा० आयरिय) गुरु, शिक्षक; (जंबू० २, ८, ६) ।

आयरेइ—सक० लेता है, "सोवीराहारु जो आयरेइ"—जो कांजी का आहार लेता है; (क० ६, १४, ८) । आयरेहु—क्रि० आदर करो (सं० आ + दृ) (क० १०, १७, ८) ।

आयल्ल—वि० (सं० आकुल > प्रा० आउल) व्याकुल; (म० ६, २०, ४) ।

आयल्लिय—वि० पीड़ित (आयल्लिया—बेचैनी, आअल्ल—रोग-विशेष) (प० च० २७, ३, ७) ।

आयवत्त—न० (सं० आतपत्र > प्रा०

आयवत्त) छत्र, छाता; (ण० १, ६, ८; रि०, तृतीय सर्ग)।

आयहं—पुं० (सं० आगम) आगम में; (व० १०, ७, ३)।

आयहिं—सर्व० (सं० अस्मिन्) इस; (हे० ३८३, ३)।

आयहु—सर्व० (सं० अस्य, एतस्य) इसका, (जंबू० ५, १२, १९)।

आयहे—सर्व० (सं० अस्या) इसका; (व० ६, ५, १२)।

आयाम—पुं० (दे०) बल, जोर; (दे० ना० मा० १, ६५)।

आयाम—(सं० आ+√यमय्> प्रा० आयाम) लम्बा करना। आयामेप्पिणु—पू० का० क्रि० लम्बाकर, बल लगाकर; (प० च० १७, ३, ८)। आयामेंवि—पू० का० क्रि० लम्बा कर; बल लगा कर; (प० च० १७, ७,९)।

√आयार—पुं० १.(सं० आकार>प्रा० आयार) आकृति, रूप; (भ०)। २. (सं० आचार>प्रा० आयार); आचरण (जंबू० ८, ८, ४)।

आयावण—न० (सं० आतापन) व्रत-विशेष; (जस० २, १८, ११)।

√आयास—(सं० आ>√यस्=प्रयास करना) तपस्या करना।—मि (जस० ३, २०, ८) "भिक्ख चरमि अप्पउ आयासमि," —मैं भीक्षा मांगता हूं, तपस्या करता हूं; (जस० ३, २०, ८)।

आयास—पुं० न० (सं० आकाश>प्रा० आगास, आयास) आकाश, अन्तराल; (ण० ६, १३, ६)।—तल न० (दे०) प्रासाद का पिछला भाग; (दे० ना० मा० १, ७२)। तिलय-पुं० आकाशतिलक, शहर का नाम; (भ०)।

आरंभ—पुं० (सं० आरम्भ=प्रयत्न, निर्माण>प्रा० आरंभ) निर्माण; (की० १, १६)।

आरंभ—(सं० आ+रभ्>प्रा० आरंभ) शुरू करना। —ओ, कृ०, आरंभ करके; (की० १, २)।

√आरंभ—पुं० (सं० आरम्भ>प्रा० आरंभ) प्रारम्भ; (जस० ४, ६, ८)।

आरंभिअ—पुं० (दे०) माली; (दे० ना० मा० १, ७१)। वि० (सं० आरब्ध) प्रारब्ध, शुरु किया हुआ; (भ०)।

आरक्ख—वि० (सं० आरक्ष>प्रा० आरक्ख) रक्षण करने वाला; (दे० ना० मा० १, १५)।

आरक्खिय—पुं० (सं० आरक्षिन्) चोकीदार; (प० च० १०, ६, १)।

√आरड— (सं० आ+रट्) विलाप करना। आरडंत-कृ० (सं० आरटत्) (जस० ४, २४, १६)।

आरडिअ—न० (दे०) विलाप, क्रन्दन; २. वि० चित्र-युक्त; (दे० ना० मा० १, ७५)। ३. (सं० आरटित) विलापयुक्त; (जंबू० ७, ८, ६)।

आरण—न० (दे०) १. अधर, २. फलक; (दे० ना० मा० १, ७६)। —आल न० (सं० आरणाल) आरनाल, कांजी, साबूदाना; (जंबू० ३, ६, १०)।

आरत्त—वि० (सं० आरक्त) लाल; (क० ७, १२, १०)।

आरत्तउ—क्रि० भू० का० (सं० आर-

क्त) लाल हो गया; (प० च० १४, ६, ४)।

आरत्तिअ—न० (सं० आरात्रिक>प्रा० आरत्तिअ) आरती; (वा० १९६)।

आरा—स्त्री० (सं० प्रा० आरा) आर, लोहे की पतली कील जो सांटे या पैने में लगी रहती है; (ण० ३, १६, ३)। अव्य० (सं० आरात्>प्रा० आरा) पहले; (दे० ना० मा० १, ६३)।

आराइअ—वि० (दे०) १, गृहीत, स्वीकृत; २. प्राप्त; (दे० ना० मा० १, ७०)।

आराडी—स्त्री० (दे०) देखो आरडिअ; (दे० ना० मा० १, ७५)।

आराधि—कृ० (सं० आ+राधय्>प्रा० आराह) आराधना करके; (की० १, ७९)। सेवा करके; (की० १, ९३)।

आराहन्त—कृ०—भक्ति करते हुए, आराधना करते हुए; (प० च० ९, ८, ८).

आराम—पुं० (सं० प्रा० आराम) उपवन; उद्यान; (जंबू० ५, ३, १०)।

आरायणु—पुं० युद्ध-रचना; (प० च० १२, ८, ४)।

आराव—पुं० (सं० प्रा० आरव) शब्द, आवाज, ध्वनि; (जस० ४, १७, १४)।

आरासरु—वि० (दे०) आसक्ति वाला (होकर); "पाणइँ जंतइ धरु पिय आरासरु पणएणालिंगेविणु," —प्रणयपूर्वक आलिंगन कर हे प्रिये, (मुझ में) आसक्त होकर अब मेरे जाते हुए प्राणों को बचाइये; (व० २, २१, १३)।

√आराह—(सं० आ+राधय्) आराधना करना। –इ, सक० (सं० आराधयति) "आराहइ सोलह कारणाइँ भवसायर–भवण णिवारणाइँ"–भवसागर रूपी भवन से निवारण करने वाली सोलह भावनाओं की आराधना किया करता था; (व० ८,१६, ९)। –हि, क्रि० आ०, आराधना करो, (सि० १, १७)।

आराहण—न० (सं० आराधनम्) अर्चना, उपासना; (जस० ४, २१, १)।

आरिअ—वि० (सं० आर्य>प्रा० अज्ज) उत्तम, पूज्य; (संधि० १०, २, ११)।

आरिय—स्त्री० (सं० आर्या>प्रा० अज्जा) पूज्या स्त्री; (भ०)।

आरिल्ल—वि० (दे०) पहले जो उत्पन्न हुआ हो; (दे० ना० मा० १, ६३)।

आरिय—वि० (सं० आर्ष) ऋषि-सम्बन्धी; (क० ८, १०, ६)।

आरिस—वि० (सं० ईदृश) ऐसा; (जंबू० ९, १६, ७)। –कहा (सं० आर्षकथा) ऋषि-कथा; (जंबू० ८, २, १)।

आरुट्ठ—वि० (सं० आरुष्ठ>प्रा० आरुट्ठ) क्रुद्ध, रुष्ट; (जंबू० ७, ६, ४) आरुट्ठा; (की० ४, १७७)।

आरूढ—वि० (सं० प्रा० आरूढ) ऊपर चढ़ा हुआ; (जस० १, १६, ४)।

√आरुस—(सं० आ+√रुष्> प्रा० आरुस) क्रोध करना, रोष करना; आरुसेँवि–पू० का० क्रि० क्रोध करके, रोष करके; (प०च० १२, ७, ५)।

आरुसण—पुं० (सं० आ+√रुष्> प्रा० आरुस) कोपन, क्रोध; (प० च० १६, २, ९)।

√आरुह—(सं० आ+रुह्>प्रा० आरुह) ऊपर चढ़ना। आरुहइ-क्रि० (सं० आरो-

हित) (भ०)। आरुहें वि-पू० का० क्रि० उपर चढ़ कर, ऊपर बैठकर (प० च० १३, ११, १०; १२, ७, ५)।

आरुहण—न० (सं० आरोहण) ऊपर बैठना; (जस० ३, ३३, ६)।

आरुहिय—वि० (सं० आरुढ>प्रा० आरुहिय) उपर चढ़ा हुआ; (प० च० १५. ४, ६)।

आरेइअ—वि० (दे०) १- संकुचित, २. भ्रान्त, ३. मुक्त; ४. रोमाञ्चित; (दे० ना० मा० १, ७७)।

√आरोक्क—(सं० नि+रुध्) रोकना, गतिरोध करना; तुल० गु० रोकवु;—इ (प० च० ५३, ६, ७)।

√आरोग्ग—(दे०)खाना, भोजन करना। —इ, सक० (दे० ना० मा० १, ६६)।

आरोग्गिअ—वि० (दे०) खाया हुआ; (दे० ना० मा० १, ६६)।

अरोयतणु—पुं० (सं० आरोग्यतनु> प्रा० आरोग्गतणु) नीरोग शरीर; (जंबू० १०, १, १६)।

आरोवण—न० (सं० आरोपण) संभावना; (दे० ना० मा० १, १७४)।

आरोसिय—वि० (सं० आरोपित) रुष्ट किया हुआ; (भ०)।

आरोह—पुं० (सं० प्रा० आरोह) सवार, महावत (जंबू० ६, ११, ५)।—नर हाथी, घोड़ा आदि पर चढ़ने वाला, (जंबू० ६, ११, ६)।

आरोहण—न० (सं० आरोहण>प्रा० आरुहण) ऊपर बैठना; (जस० १, २४, ६)।

आलंकिअ—वि० (दे०) पंगु किया हुआ; (दे० ना० मा० १, ६८)।

आलंकियय—वि० (सं० अलंकृत) विभूषित; (सं० रा०)।

आलंब—न० (दे०) भूमि-छत्र, वनस्पति-विशेष जो वर्षा में होता है; (दे० ना० मा० १, ६४)।

आल—न० (सं० प्रा० आल) १- मिथ्या भियोग, दोषारोपण; तुल० गु० आळ; (प्रा० गु० २३, ३६)। २- मिथ्यावचन (प्रा० गु० २३, ३६)। —माल पुं० धन; तुल० मगही आलमाल; (सरहपा, दोहा-कोश)।

आल—न० (दे०) १- छोटा प्रवाह; २- वि० कोमल; (दे० ना० मा० १, ७३)। —वालु न० (सं० प्रा० आलवाल) क्यारी थाला; (रा० ४२)। आलु—न० (सं० आल=छत्र> प्रा० आल) दोषारोपण; (रा० २६)।

आलइं—न० (सं० प्रा० आलय) घर; (व० १०, २५, २)। आलउ (सि० १, २५)। आलय—पुं० १- घर, (भ०)। २- नीड़ (सं० रा०)।

आलग्ग—वि० (सं० आलग्न>प्रा० आलग्ग) लगा हुआ; संयुक्त; (प० च० ५, ११, ७; ण०२, ३, ३)।

आलण-खम्भ—पुं० (सं० आलान—स्तम्भ> प्रा० आलाण, आणाल+खंभ, क्खंभ) जहाँ हाथी बाँधा जाता है वह स्तम्भ; (प० च० २५, १५, १०)।

आलत्त—वि० (सं० आलपित:) १- संभाषित, आभाषित; (भ०)। २- आलप्त, (जंबू० ६, २, ३)। आलत्त-भू० का०, कहा; (रि० ४, ३)।

आलत्य—पुं० (दे०) मयूर; (दे० ना० मा० १, ६५)।

आलयण—न० (दे०) शय्या-गृह; (दे० ना० मा० १, ६६)।

आलावइ—क्रि० (सं० आ+लापय्> प्रा० आलव) बातचीत करना; (जंबू० ४, १७, १८)।

आलवणु—न० (सं० आलापनं>प्रा० आलवण) वार्तालाप, संभाषण (हे० ४२२, १६; दे० ना० मा० १, ५९)।

आलवनी—स्त्री० (सं० आलापिनी> प्रा० आलावणी) वाद्य-विशेष, (सि० २, ४)।

आलस—न० (सं० आलस्य>प्रा० आलस्स) आलस, सुस्ती; तुल० गु० आळस; (संधि० १०, ३, ३)। आलसि-आलस्य; (सं० रा०)।

आलाअ—पुं० (सं० आलाप>प्रा० आलाव, आलाअ) संभाषण; (जस० २, ५, १०)।

आलाणखम्भ—पुं० (सं० आलानस्तम्भ >प्रा० आलाण, आणाल+क्खंभ, खंभ) जहाँ पर हाथी बांधा जाता है वह स्तम्भ; (प० च० १६, १४, ३)।

आलाव—पुं० (सं० आलाप) १- संभाषण, बातचीत; २- शब्द, "हणइ सवणरंधा कोइलालावबंधा," कोयले का आलाप कानों के रंध्र में मार रहा है; (प्रा० पैं० २, १६५)।

आलावणि, विणी-स्त्री०(सं० आलीपिनी प्रा० आलावणी) वाद्य-विशेष, वीणा-विशेष; (ण० ३, ६, ४; प० च० १, ५, ८)। आलावाणी; (जंबू ६, ६, ११)।

आलास—पुं० (दे०) वृश्चिक, विच्छू; (दे० ना० मा० १, ६१)।

√आलिंग—(सं० आ+लिङ्ग, आलिङ्गति>प्रा० आलिंगइ) आलिंगन करना; (उ० व्य० प्र० ५-४)। आलिंगिउ-क्रि० भू० का०; (महा०)। आलिंगिवि-पू० का० क्रि०; (जंबू० ६, १२, १८)।

आलिंगण—न० (सं० आलिङ्गन>प्रा० आलिंगण) आलिंगन, भेंट; (जस० २, ५, ५; म०)।

आलिंगिअ— वि० (सं० आलिङ्गित) जिसका आलिंगन किया गया हो वह; (जं१ ४, १७, २)। आलिंगिय; (भ०)।

आलिंगियंगु—स्त्री० (सं० आलिङ्गित+अङ्ग) अर्धांगिनी; "सिरमइदेवी आलिंगयंगु," —उसकी अर्धांगिनी श्रीमती देवी थी, (ण० १, १५, ६)।

आलि[1]—न०(सं० अलीक>प्रा० अलिय) १- मिथ्या; (प्रा० गु० १६, ७३)। २- व्यर्थ; तुल० गु० एळे; (संधि० १०, ३, १६)। वि० दुर्विलसित; (प्रा० गु० ३८, ४६)।

आलि[2]—स्त्री० (सं० प्रा० आली) वयस्या, सखी; (सुदं० १२, २, १५)।

आलिद्ध—वि० (सं० आश्लिष्ट) आलिंगित; (जस०; प० च० २२, ८, २)।

आलियउ—क्रि० भू० का० बांधा; (प० च० १६, १४, ३)।

√आलिह—(सं० आ+लिख्>प्रा०आलिह)लिखना। आलिहिवि–पू०का०क्रि०, लिखकर, "आरत्तहिँ दव्वहिँ आलिहिवि" —लाल द्रव्यों से लिखकर; (क० ७,

१२, १०)।

आली—स्त्री० (सं० प्रा० आली) सखी; (प्रा० गु० २०, १)।

आलीढ—वि० (सं० प्रा० आलीढ) आसक्त; (जंबू० ४, ५, १३)।

आलीण—वि० (सं० आलीन>प्रा० आलीण) लीन, "झाणालीणु णिरुत्तरु अच्छमि," —ध्यान में लीन होकर मैं मौन बैठता हूँ; (जस० ३, २१, ५)।

आलील—न० (दे०) समीप का भय; (दे० ना० मा० १, ६५)।

आलीवण—न० (सं० आदीपन) आग लगाना; (दे० ना० मा० १, ७१)।

आलीविय—वि० (सं० आदीपित>प्रा० आलीविय) आग से जलाया हुआ, (प० च० १७, १४, ८)।

आलुंख—क्रि० (प्रा० आलुंख) स्पर्श करना; (ण० ७, २, ११)।

आलुंखिय—वि० (दे०) आस्वादित, चूसे गए, "गोवालमुहा लुंखियफलाइं", ग्वालों के मुखों से चूसे गए फल; (जस० १, ३, ८)।

आलु—न० (सं० अलीक>प्रा० अलिय न०) झूठ; (हे० ३७६, १)।

आलुञ्छिय—वि० (सं० आलुञ्छित) जिसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गए हों; (प० च० १३, ४, ६)।

√आलेह—(सं० आ+लिख्) आलेखन करना। आलेहिवि—पू०का०क्रि० आलेखन करके; "आलेहिवि जो मारंतु वेणु"—जो राजा वेणु लोगों को आलेखन करके मारता था; (जस० २, २५, १३)।

आलोइणिविज्जा—स्त्री० (सं० अवलोकिनी विद्या) ज्ञान प्रदायिनी विद्या; (जंबू० ५, २, १०)।

आलोय—पुं० (सं० आलोक>प्रा० आलोअ) तेज, प्रकाश; (भ०)।

आलोयण—न० (सं० आलोकन>प्रा० आलोअण) विलोकन, दर्शन (ण० ८, ४, ७)। आलोयंत—कृ० (सं० आलोकयत्) (जस० ४, १३, २)।

आलोयणिय—स्त्री० आलोकनी (विद्या); (ण० ६, २, ११)।

आवंग—पुं० (दे०) वृक्ष-विशेष, अपामार्ग, लटजीरा, एक जंगली पौधा जो दवा के काम में आता है; (दे० ना० मा० १, ६२)।

आवंडुर—वि० (सं० आ+पाण्डुर> प्रा० आवंडुर) थोड़ा सफेद, फीका; (ण० २, ८, ११)।

√आव—पुं० (सं० आयुष्>प्रा० अप० आउ >अव० प्रा० हिं० आव) आयु, जीवन-काल; (की० ३, १४८)।

√आव—(सं० आयाति, आ+√या> प्रा० आव) आना, आगमन करना; (उ० व्य०प्र० ११, २३)।–इ(की० ३, ११०; रा० ५; हे० ४१६; प० च० ५, ११, ६; –थि, क्रि०, आता है (की० २, ११३)। आवंतउ–कृ० आते हुए; (ण० ५, ३, १) –हिं, क्रि०, आते हैं (की० २, २१६)। –हि, क्रि०, आना (प० च० ७, १२, ५; सि० १, २५)। –हुं, क्रि०, आगमन करना (प० च० २, १५, २)। आवेउ–क्रि० आ०, आवें; (ण० ८, १४, ८)। –प्पिणु पू०का०क्रि०(ण० ७, ११, १५)। आवेसइं– क्रि० (सं० आ+यास्यति) आयेंगे; (सि० २, १४)।

आवइ—स्त्री० (सं० आपद्>प्रा० आवइ) आपत्ति, विपत्, संकट; (प० च० ३३, ५, १०)।

आवग्ग—वि० १- आरूढ़, चढ़ा हुआ; (ण० ७, ६, १०)। २. अधीन;(प० च० ३१; २, ७)।

आवग्गउ—वि० (सं० आपद्गत) विपत्ति में फंसे हुए; "तो पर सरणु मरणु आवग्गउ"; (भ० ७, ११, ६)।

आवग्गी—वि० (दे०) स्वाधीन, समस्त-कण्टक-रहित; (प० च० २१, ८, १)।

√आवज्ज— (सं० आपद्यते, आ+पद् >प्रा० आवज्ज) प्राप्त होना; (भ०)। —ज्सक० (सि० १, ३०)।

आवज्जिअ—(आ+√वृज्) इकट्ठा करके; "धणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ"—धन को इकट्ठा करके धर्म के लिए अर्पण कर दिया, (प्रा० पैं० १, १२८)।—ण न० (सं० आवर्जन) उपयोग;(जंबू० ११, १४, १)। आवज्जिय—वि० (सं० आपद्यित) अर्जित;(जंबू० १, ५, १२)।

आवज्जिअ—वि० (सं० आवर्जित>प्रा० आवज्जिय) १- प्रसन्न किया हुआ, अभि-मुख किया हुआ; (ण० ३, ८, १३)।

आवज्जिय—वि० (सं० आवर्जित) १- दृष्ट; (प० च० २६, १, १) २- त्याग किया हुआ; (व० १, १५, ४)।

√आवट्ट— (सं० आ+√वृत्>प्रा० आवट्ट) चक्र की तरह घूमना-फिरना। —इ अक० (सं० आवर्तते) (भ०)। —वट्ट पुं० (सं० आवर्त वर्त्मन्) दाएँ घूमने वाला मार्ग; (कौ० २, ८४)। —य वि० (सं०आवर्तित) घेरा हुआ; (इक्षुरस) (सं० रा०)। —न्तय कृ० घूमते हुए, फिरते हुए; (प० च० १७, ३, ४)।

आवट्टिउ—क्रि० भू० का० पहुँचा दिया; (प० च० ७, ६, ६)।

√आवट्ट—(सं० आ+वृत्>प्रा० आव-ट्ट=शोधण करना) विलीन होना; —इ, क्रि०, व०(हे०प्रा०व्या० ४१६,४)। आवट्ट —विलीन, नष्ट; (प०च० २६, ६, ६)।

आवट्टइ—क्रि० (सं० आ+वृत्>प्रा० आवत्त) औंटना; (हे० ४१६, ४)।

आवट्टिय—वि० (सं० आवर्तित) घूमता हुआ; (जंबू० ६, ३, २)।

आवट्ट वट्ट—पुं० (सं० आवर्त+वर्त्म >प्रा० आवत्त+वट्ट) दाएँ घूमने वाला मार्ग; (कौ० २, ८४)।

आवट्टिआ—स्त्री० (दे०) १- दुलहिन, २- परतन्त्र स्त्री; (दे० ना० मा० १, ७७)।

आवट्टिय—वि० (दे०) नष्ट, "भिक्खा-यर जे तुज्झ पेटि मह-भड आवट्टिय॥ मानासिस कईढिसु ति अज्झु आपणा माँटिय," (प्रा० गु० १२, ३८)।

√आवड—(दे०)रुचना, अच्छा लगना। —इ सक० "भल्लु वि भल्लउ महु आवडइ," (जस० २, ३२, १)।

आवडिअ—वि० (दे०) १- संगत, संबद्ध; २- सार, मजबूत; (दे० १, ७८)।

आवण—पुं० (सं० आपण>प्रा० आवण) हाट, दुकान; (ण० ७, २, ८)।

आवणि—स्त्री० बाजार; (सि० १, ३३)।

आवण्ण—वि० (सं० आपन्न>प्रा० आवण्ण) आपत्ति-युक्त, प्राप्त; (जंबू० ५, १, ३)।

आवत्त—पुं० (सं० आवर्त> प्रा०

आवत्त चक्राकार परिभ्रमण) १- चक्र, समूह; (की० ४, १०४)। २- चक्राकार परिभ्रमण; (ण० ६, २०, १६)।

आवत्त-विवत्त—पुं० (सं० आवर्त-विवर्त >प्रा० आवट्ट-विवट्ट) चक्राकार आगे-पीछे घूमना; (की० ४, ११२)।

आवन्ता जन्ता—कृ० (सं० आ+या+शतृ >प्रा० आव+अन्त (शतृ प्रत्यान्त); सं० या >प्रा० जा) आने जाने वाले; (की० २, २२७)।

आवय—स्त्री० (सं० आपद् >प्रा० आवया) आपदा, विपत्ति, दुःख; (भ०)। आवया—स्त्री० (जस० ४, २१, ५)।

आवरेइया—स्त्री० (दे०) मद्य परोसने का पात्र-विशेष; (दे० ना० मा० १, ७१)।

आवज्ज—क्रि० (सं० आवर्ज्जति, सं० आ+वर्ज् >प्रा० आवज्ज) संमुख करना, प्रसन्न करना; (उ० व्य० प्र० ७-७)।

आवर्त-विवर्त—पुं० आना-जाना, आगमन-निर्गमन 'आवर्त-विवर्त रोलहो, नश्वर नहि समुद्रओ,' (की० २, ११२)।

आवल—वि० (सं० आकुल >प्रा० आउल) व्यग्र, व्याकुल; "कवणु इत्थु मणि आवलउ," (भ०)। —इ, वि० व्याकुल; (सं० रा०)।

आवलि—स्त्री० (सं० प्रा० आवलि) श्रेणी पङ्क्ति; (भ०; जस० १, २, १३)। रोमावलि; (रा० २५)।

आवली—स्त्री० छन्द-विशेष; (सुदं० ८, २६, १२)।

आवागमण—पुं० गमनागमन; तुल० गु० आवगमण; (प्रा० गु० ६, ६)।

आवाणअ—न० (सं० आपानक >प्रा० आवाणय) मद्यगृह या चषक; (जंबू० ४, २, ७)।

आवाल, आवालय—न० (दे०) जल के निकट का प्रदेश; (दे० ना० मा० २, ७०)।

आवास—पुं० (सं० प्रा० आवास) वासस्थान; (भ०; जंबू० १०, १४, २)।

आवासिय—वि० (सं० आवासित >प्रा० आवासिय) पडाव डाला हुआ; (प० च० ३, ६, ३)। आवासिअ; (जंबू ५, १०, २५)।

आवाह—पुं० (दे०) इक्षुवाटी (sugar-cane plantation) (प० च० ३१, ६, ७)।

आवि—न० (दे०) १- प्रसव-पीड़ा; २- वि० नित्य, शाश्वत; ३- दृष्ट; (दे० ना० मा० १, ७३)। —य, आगत; (जंबू० ७, ४, १६)।

आविअ—पुं० (दे०) १- इन्द्रगोप; क्षुद्रकीट-विशेष; २- वि० मथित, आलोडित; ३- प्रोत—सिला हुआ, बँधा हुआ, जड़ा हुआ; गुजरा हुआ; (दे० ना० मा० १, ७६)।

आविअज्झा—स्त्री० (दे०) दुलहिन, पराधीन स्त्री; (दे० ना० मा० १, ७७)।

आविद्ध—वि० (दे०) प्रेरित; (दे० ना० मा० १, ६३)।

आविल—वि० १- (सं० प्रा० आविल) मलिन, अस्वच्छ। अविलु; (रा० ८)। २- व्याप्त; (व० ४, १२, ३)।

आविलुंपिअ—वि० (दे०) आकाङ्क्षित,

अभिलषित; (दे० ना० मा० १, ७२)।

√आविहूव—(सं० आविर्+भू> प्रा० आविहूव) प्रकट होना। आविहूसि—क्रि० क० का०, आओगे; (सं० रा०)।

आवीलिय—कृ० (सं० आ+पीड्>प्रा० आवीड, आवील) १- पीड़ते हुए, २- दबाते हुए; (प० च० १४, १, ७)। वि० (सं० आपीडित) दबा हुआ; (म०)।

आवुण्ण—वि० (सं० आपूर्ण) पूर्ण, भर-पूर; (दे० ना० मा० २, १०२)।

आवेल्लण—न० (सं० आवर्त्तन) शरीर√ को मटकाना; (सुदं० ११, ११, ५)।

√आश्वास—(सं० आश्वासयति) आश्वा-सन देना, (उ० व्य० प्र० ६-१)।

√आसंक—(सं० आ+शङ्क्> प्रा० आसंक) संदेह करना। आसंकइ—सक० (सं० आशंकते) (भ०)।

आसंका—स्त्री० (सं० आशङ्का>प्रा० आसंका) संशय, शङ्का; (जस० ४, ८, ११; भ०)।

आसंग—पुं० (सं० आसङ्ग) शयन-कक्ष, शय्या-गृह; (दे० ना० मा० १, ६६)। आसंगि—शयन—कक्ष में; (सं० रा०)।

आसंघ—स्त्री० (दे०) आशंसा, इच्छा, अभिलाषा; (भ०)।

आसंवइ—क्रि० १- (प्रा० आसज्ज= प्राप्त करके) आमिलना, भेंट करना; "को जमकरणु जंतु आसंवइ," कौन जाते हुए यम के दूत से भेंट करता है, (म० २, २२, २)। २- घनिष्ठता होना; "पुव्वक्कमु सप्पुरिस ण लंवहिं, कज्ज उत्तरुत्तरु आसंवहिं," (व० ४, ३, ७)।

आसंघा—स्त्री० (दे०) इच्छा; (दे० ना० मा० १, ६३)।

आस[1]—स्त्री० (सं० आशा>प्रा० आसा) उम्मीद; (की० ३, १११)। —कय आशाकृतः (जंबू० ६, ७, १६)।

आस[2]—न० (सं० आस्य>प्रा० आस) मुख, मुँह, (प० च० १४, १२, ७)।

आस[3]—पुं० (सं० अश्व>प्रा० आस) अश्व, घोड़ा; तुल० म० आस; (संधि० १३, ६, ४)। —वार, पुं० घुड़-सवार; (संधि० २, ७, ७)।

१ आस—अक० (सं० आस्) बैठना; (क्रम०)।

आसउ—पुं० (सं० आश्रव>प्रा० आसव) आश्रव—जैन मत के अनुसार मन, वाणी और शरीर से किए हुए कर्म का संस्कार जिसे जीव ग्रहण करके बद्ध होता है। वह दो प्रकार का होता है—१- पुण्याश्रव, २- पापाश्रव; "आसउ दुविहु सुहासुह भेएँ," —शुभ-अशुभ के भेद से आश्रव दो प्रकार का है; (व० १०, २६, २०)।

आसउज—पुं० (सं० आश्वयुज) क्वार; (प्रा० गु० २४, ४)।

√आसङ्घ—(सं० आ+श्रि) सहारा लेना, आश्रित होना।—नि, क्रि०; व० (आ+श्रयति); (प० च० ४०, १४, २)।

आसङ्किय—वि० (सं० आशङ्कित>प्रा० आसंकिय) १- संदिग्ध, २- संभावित; (प० च० १, १२, ५)।

आसण—न० (सं० आसन>प्रा० आसण) जिस पर बैठा जाता है वह चौकी आदि; (म०)।

आसणत्थ—वि० (सं० आसन+स्थित >प्रा० आसण+थिअ) आसन पर बैठा हुआ; (प० च० ७, २, ८)।

आसण्ण—न० १- (सं० आसन>प्रा० आसण) जिस पर बैठा जाता है वह चौकी आदि; (ण० १, ४, १)। २- न० (सं० आसन्न>प्रा० आसण्ण) समीप, पास; वि० समीपस्थ; (प० च० ७, ४, २)। –भव्व वि० (सं० आसन्न भव्य) नजदीक में रह कर सुंदर लगने वाले; (प० च० १८, ४, ४)।

आसण्णीहूउ—क्रि० (सं० आसन्नीभूत) निकट पहुँचा; (प० च० १, ८,५)।

आसत्त—वि० (सं० आसक्त>प्रा० आसत्त) लीन, अनुरक्त; (भ०; जस० २, १, १७)। आसत्तिय–वि०, आसक्त; (भ० २२, ८, ११)।

आसत्ती—स्त्री० (सं० आसक्ति>प्रा० आसत्ति) अनुरक्ति; (जस० २,२६,६)।

आसत्थ—वि० (सं० आश्वस्त) १- आश्वासन-प्राप्त, स्वस्थ; २-विश्रान्त; (दे० ना० मा० ७, २८)।

आसत्थाम— पुं० (सं० अश्वत्थामन्) १. अश्वत्थामा २. (सं० अश्वत्थ पीपल का गाछ (जंबू० ५, ८, ३२)।

आसन्न—न० (सं० आसन्न>प्रा० आसण्ण) समीप। वि० समीपस्थ; (भ०; सं० रा०)।

आसपास—पुं० (सं० आशा+पाश आशा का जाल, आशा की शृंखला; (जस० ३, ८३, ३)।

आसम—पुं० (सं० आश्रम>प्रा० आसम) तापस आदि का निवास-स्थान; (भ०)।

आसय—पुं० (सं० आशय>प्रा० आसय) अभिप्राय; (क० १०, २६, ६)। न० (दे०) निकट, समीप; (दे० ना० मा० १, ६५)। पुं० (सं० आश्रय> प्रा० आसय) आधार, अवलम्बन; (भ०)।

आसरिअ—वि० (दे०) सामने आया हुआ; (दे० ना० मा० १, ६९)।

आसव—पुं० (सं० आश्रम>प्रा० आसम) तापस आदि का निवास-स्थान, तीर्थ-स्थान; (प० च० ६, १, ६)।

आसव—पुं० (सं० आश्रव>प्रा० आसव) कर्मों का प्रवेश-द्वार; जिससे कर्म-बन्धन होता है वह हिंसा आदि; (ण० १, १२, ६)।

√आसव—(सं० आ+स्रु A-srava-flow, discharge >प्रा० आसव) धीरे-धीरे झरना, टपकना; (जस० ४, १५, ३)। –इ अक्र० "रयणायरें जल-संघाउ जेव, कम्माण णिवंहु आसवइ तेव" —जिस प्रकार समुद्र में जल का समूह एकत्र होता है, उसी प्रकार जीव के साथ कर्मों के पुंज का आस्राव (बहाव) होता है; (क० ६, १२, १)।

आसवण—न० (दे०) वास-गृह, शय्या-घर; (दे० ना० मा० १, ६६)।

आसवाइं—न० (सं० प्रा० आसव) आसव, मद्य; (विला०)।

आसवार—पुं० (सं० अश्ववार) अस-वार, घुड़सवार; (भ०; ण० ३, १४, ८)। आसवारु—पुं० अश्वारोही; (रि० ३, ७)।

आसा—स्त्री० (सं० आशा>प्रा० आसा) उम्मीद। -चक्कु पुं० आशाचक्र (व० २, २१, ६)।-सव्वाहा स्त्री० (सं० सर्वाशा) सब आशाएँ; (प्रा० पैं० १, ११६)।

आसाइ—स्त्री० आसाई नगरी; (क० १०, २८, ४)। वि० सं० आसादित) प्राप्त, लब्ध; (प० च० ७४, ६, ४)।

आसाऊरिय—वि० (सं० आशापूरित) आशावान; (क० ७, ८, ११)। आसा-ऊरिय-वि० आशा से पूरित, (प० च० २०, १, ५)।

आसाढ—पुं० (सं० आषाढ>प्रा० आसाढ) आषाढ़ मास; (भ०)।

आसाय—न० (सं० आस्वाद) स्वाद; (जस०)। —ण, न० (सं० आस्वादन >प्रा० आसायण) स्वाद लेना; (जस० ३, १, १२)।

आसावरि—पुं० आसावरी देश-विशेष, 'जिणि आसावरि देसा दिण्हउ' —जिस राजा ने आसावरी देश दे दिया, (प्रा० पैं० १, १२८)।

√आसास—(सं०आ+√श्वासय्>प्रा० आसास) आश्वासन देना। आसासेवि—पू० का० क्रि० आश्वस्त कर; (व० २, १, १३)।

आसास—न० (सं० आश्वासन>प्रा० आसासण) आश्वासन; (सं० रा०)।

आसासण—न० (सं० आश्वासन>प्रा० आसासण) तसल्ली, दिलासा, आशा-प्रदान; (सुदं० १, १०, ३)।

आसासय—पुं० (सं० आश्वासक>प्रा० आसासअ) ग्रन्थ का अंश, सर्ग, परिच्छेद; अध्याय; (प० च० १, २, ५)।

आसासिय—वि० (सं० आश्वासित> प्रा० आसासिअ) आश्वासन-प्राप्त; (भ०)।

आसि—क्रि० (सं० आसीत्>प्रा० आसि, अस=होना) था; (सुदं० १० ६, ६; ण० ६, ८, ११; प० च० १, १२, ८)। पूर्व काल में; (जस० २, ८, ५)। —काल पुं०(सं० आसीत्+काल, भूतकाल (सुदं० ६, ४, ११)।

आसिअ—वि० (सं० आश्रित>प्रा० आसिअ) आश्रय-प्राप्त, (ण० ६, १६, १५)। -अ, वि० (दे०) लोह-निर्मित; (दे० ना० मा० १, ६७)। आसिय वि० आश्रित स्थित; (जंबू० ११, ६, २)।

आसीण—वि० (सं० आसीन) बैठा हुआ; (जंबू० १०, २४, २)।

आसीवअ—पुं० (दे०) दरजी, कपड़ा सीने वाला; (दे० ना० मा० १, ६६)।

आसीवाअ—न० (सं० आशीर्वाद>प्रा० आसीवाय) आशीर्वाद; (क० ८, ७, ३; जस० ३, ८, ११)। आसीवाउ; (सि० १, ८)।

आसीविस—पुं० (सं० आशीविष>प्रा० आसीविस) विषैला सर्प; (भ०)। —सप्प पुं० (सं० आशीविष-सर्प>प्रा० आसी-विस सप्प) विषैला साँप; (प० च० ११, ३, ८)।

आसीस—पुं० (सं० आशिष्>प्रा० आसीसा, आसी) आशीर्वाद; (भ०)।

आसु—अव्य० (सं० आशु>प्रा० आसु) शीघ्र, तुरंत; (जस० १, ८, ७)।

आसेअणय—वि० (सं० आसेचनक) जिसको देखने से मन को तृप्ति न होती

हो वह; (दे० ना० मा० १, ७२)।

आसोज—पुं० (सं० आश्वयुज>प्रा० आसोज) आसोज, आश्विन मास; तुल० गु० आसो; (संधि० १७, ५, १)।

आहंडल—पुं० (सं० आखण्डल) इन्द्र; (जंबू० २, ४, ७; सि० १, ३२)।

आह—स्त्री० (सं० आभा) चमक-दमक, कान्ति; (भ०)।

√आहण—(सं०आ+हन्>प्रा० आ+हण=मारना, वध करना) प्रहार करना।—इ सक०; तुल० म० हणणें; (भ०)। आहणहों—क्रि०, व० व०, आ०, (तूर्य-वाद्य) बजाए; (प० च० १९, ३, १०)। आहणन्ति—क्रि० (स्त्रीलिंग में प्रयुक्त। (प० च० १८, ११, ५)।

आहय—वि० (सं० आहत>प्रा० आहय) आघात-प्राप्त; (भ०; जंबू० ८, ७, १२)।

√आहर— (सं० आ+हृ) छीनना, खींच लेना।—इ सक० (सं० आहरति) (भ०)।

आहरण—पुं० न० (सं० आभरण> प्रा० आहरण) भूषण, अलंकार; (ण० १, १६, ५; प० सि० च० १, १४, ७६; सुअंध २, ४, २; क० २, १७, २; सि० १, १४); आहरणे; (रा० ५)।

√आहल्ल—(सं० आ+चल्) हिलना, चलना।—इ अक० (सं० आस्फालयति) (भ०)।

आहव—पुं० (सं० प्रा० आहव) युद्ध (की० ४, २३७)।—भूमि स्त्री० (सं० आहव-भूमि) युद्ध का क्षेत्र; (प० च० २०, ५, ८)।

आहाकम्म—पुं० (सं० अधः कर्म) १- नीच कर्म; (म० २, ७२, ९)। २- हिंसा; (जस० ३, २१, ७)।

√आहाण—क्रि०(सं० आ+हन्>प्रा० आहण) आघात करना, मारना। आहणेइ— क्रि० जीत लेना, "सो वयणइं सुरगुरु आहणेइ," —वह अपने वचन से बृहस्पति को भी जीत लेता है; (क० ९, २४, ४)।

आहाणअ—न० (सं० आख्यानक>प्रा० आहाणय) उक्ति, वचन; (सुदं० ७, १२, ६)।

आहाणय—पुं० (सं० आभानक) कहावत; (प० च० ४३, ६, ९)।

आहारंगु—पुं० (सं० आहारक+अङ्ग) आहारक शरीर, जैनशास्त्रानुसार एक प्रकार की उपलब्धि जिसके द्वारा चतुर्दश पूर्वधारी मुनिराज अपनी शंका के समाधान के लिए हस्त मात्र शरीर धारण कर तीर्थंकरों के पास उपस्थित होते हैं; (व० १०, ६, २)।

√आहार—(सं० आ+हारय्> प्रा० आहार) भोजन करना।—इ सक० (महा० ६८, २)।

आहार—पुं० १- (सं० प्रा० आहार) खुराक, भोजन; (भ०)। २- (सं० आधार) आश्रय; (जस० ३, २१, ७, ११)।—ण पुं० आहार; (व० १०, ७, ११)।

√आहास— (सं० आ+भाष्>प्रा०

आभास, आहास) कहना, संभाषण करना; (ण० १, १, २)। –इ सक० (सं० आभाषते); (भ०)।

आहासिअ—वि० (सं० आ+भाषित) संभाषित; (ण० ८, २, २)।

√आहिड—(सं० आ+हिण्ड् >प्रा० आहिंड) घूमना, परिभ्रमण करना; (जस० ४, १८, १४)। आहिण्डइ–क्रि०, व० (प० च० १०, १२, ६)।

आहि—स्त्री० (सं० आधि>प्रा० आहि) मन की पीड़ा; (क० १, १६, ३)।

आहिन्दोलन—पुं० सं० प्रक्षोभणम्; उत्तेजना, क्षोभ; (प० च० ४१, १, ४)।

आहिन्दोलित—वि० प्रक्षोभित, उत्तेजित; (प० च० २५, १८, १२)।

आहीर—पुं० (सं० आभीर >प्रा० आहीर) अहीर जाति विशेष; (क० ७, ३, ६; प० च० ३०, २, ११)।

आहुंजेइ— क्रि० (सं० आ+√भुज्) खाना; "सुहिवंधवजणेहिं परियरियउ आहुंजेइभोयणं"; (सुदं० ५, ६, २)।

आहुंदुर, आहुंदुरु—पुं० (दे०) बालक, बच्चा; (दे० ना० मा० १, ६६)।

आहु—पुं (दे०) उल्लू; (दे० ना० मा० १, ६१)।

आहुट्ठ—वि० (सं० अध्युष्ठ>प्रा० अड्ढुट्ठ>प्रा० अद्धुट्ठ, अद्धुट्ठ) अर्द्धत्रि, साढ़े-तीन; तुल० गु० ऊंठ, उंठ; (रि० ८, १; ध० ६, ६, ३)।

आहुड—क्रि० (दे०) गिरना; (दे० ना० मा० १, ६९)। न० १- विक्रय, २- सिसकारी, सी-सी का शब्द; (दे० ना० मा० १, ७४)।

आहुडिअ—वि० (दे०) गिरा हुआ, (दे० ना० मा० १, ६९)।

आहुत्त—न० (दे०) अभिमुख, सम्मुख, सामने; "रणाहुत्तकाले"; (भ०)।

आहूय— वि० (सं० आहूत>प्रा० आहूअ) बुलाया हुआ; (क० ७, १२, ५)।

आहेडय—पुं० (सं० आखेट+क>प्रा० आहेडग) शिकार; (प० च० २७, ३, १)।

आहोय—पुं० (सं० प्रा० आभोग) विस्तार; (ण० ६, ४, ८)।

इ

इं—अव्य० (सं० एव) निश्चय, ही, समानता; (उ० व्य० प्र० १६- २३)।

इंगल—पुं० (सं० अङ्गार>प्रा० अंगार, इंगाल) जलता हुआ कोयला; (सुदं० ६, १५, ७)। इंगाल–कोयला; (ण० ६, ६, १०)।

इंगाली—स्त्री० (दे०) इंगारी, अंगारी, इक्षुखण्ड, ईख का टुकड़ा; (दे० ना० मा० १, ७९)।

इंगिय—न० (सं० इङ्गित>प्रा० इंगिअ) संकेत, अभिप्राय के अनुरूप चेष्टा; (ण० ४, ७, १)।

इंघिअ—वि० (दे०) सूंघा हुआ; (दे० १, ८०)।

इंति—क्रि० (सं० यन्ती,√या) आती है; "माउर इंति गिह्वण-कएण"; (व० १, ४, १२)।

इंतीए—वि० (सं० यन्ती) आने वाली, "अहमेंतीए तीए सामी' —मैं ही उस आने वाली प्रेयसी का प्रेमी हूँ; (जस० १, १२, १६)।

इंतु—भू० का० कृ० (सं० यात, या+क्त) गया हुआ; "इंतु ण दीसइ जीउ पहंतरि,"—कि जीव तो शरीर से पृथक् मार्ग पर जाता हुआ दिखाई नहीं देता; (जस० ३, २१, ७)।

इंद—पुं० १- (सं० इन्द्र>प्रा० इंद) १- देव-राज, देवताओं का राजा (सि० १, ३४; भ०)। २. इंद्रवज्रा नामक छंद; (प्रा० पैं० २, ११८)। —वज्जा, पुं० (सं० इन्द्रवज्रा) इंद्रवज्रा छंद; (प्रा० पैं० २, ११४)। —वाय पुं० (सं० इन्द्रवात>प्रा० इंदवाय) एक मांण्डलिक राजा; (भ०)।

इंदगाह—पुं० (दे०) साथ में संलग्न रहने वाले कीट-विशेष; (दे० ना० मा० १, ८१)।

इंदगोवय—पुं० (सं० इन्द्रगोपक) इंद्र-गोप, खद्योत, वर्षा ऋतु में होने वाला रक्त वर्ण का क्षुद्र जन्तु-विशेष; "पिय पेक्खु इंदगोवयविरेणु।" प्रिये इस विरेणु अर्थात् 'रजरहित निर्मल इंद्रगोप (खद्योत) को देखो'; (जंबू० ४, १८, ६)।

इंदग्गि—पुं० (दे०) बर्फ, हिम; (दे० ना० मा० १, ८०)। —धूम न० (दे०) बर्फ; (दे० ना० मा० १, ८०)।

इंदजाल—न० (सं० इन्द्रजाल>प्रा० इंदजाल) माया-जाल, छल; (ण० ३, १, १२)।

इंदड्डलअ—पुं० (दे०) इन्द्र का उत्था-पन (जगाना, ऊपर उठाना); (दे० ना० मा० १, ८२)।

इंद-णंदण—पुं० (सं० इन्द्र+नन्दन) इन्द्र का नन्दन वन; (व० ३, ६, २)।

इंदणील—पुं० न० (सं० इन्द्रनील> प्रा० इंदणील) नीलममणि मणि-विशेष; (ण० १, १४, ३)। इंदनील; (जंबू० ३, ३, १०)।

इंदभूइ—पुं० (सं० इन्द्रभूति) गौतम गणधर; (व० १०, २, ३)।

इंदमंदिर—पुं० (सं० इन्द्र+मन्दिर) इन्द्र-भवन; (महा० ६८, ४)।

इंदमह—वि० (दे०) १- कुमारी में उत्पन्न; २- कुमारता, यौवन; (दे० ना० मा० १, ८१)।

इंदमहकामुअ—पुं० (सं० इन्द्रमह-कामुक) कुत्ता, श्वान; (दे० ना० मा० १, ८२)।

इंदयालु—न० (सं० इन्द्रजाल>प्रा० इंदजाल, याल) माया-कर्म, छल, कपट की विद्या; (व० ५, १३, १६)।

इंदाएस—पुं० (सं० इन्द्र+आदेश) इन्द्र का आदेश; (जंबू० १, १६, ३)।

इंदाणि—स्त्री० (सं० इन्द्राणि>प्रा० इंदाणी) इन्द्र की पत्नी; (व० ९, १२, १०)।

इंदासण—पुं० (सं० इन्द्रासन) पंचकल गण का नाम (छंदशास्त्र में प्रयुक्त); (प्रा० पैं० १, १६)।

इंदिदिर—पुं० (सं० इन्दिन्दिर>प्रा० इंदिदिर) भ्रमर; (जंबू० ८, १३, ६)।

इंदिदिरि—स्त्री० (सं० इन्दिन्दिर:) भ्रमरी; (ण० ३, ५, १२)।

इंदिय—पुं० न० (स० इन्द्रिय>प्रा० इंदिय) १- वह शक्ति जिससे वाहरी विषयों का ज्ञान होता है, २- ज्ञानेन्द्रिय—आंख, कान, जीभ, नाक और त्वचा; कर्मेन्द्रिय—जिनसे कर्म किये जाते हैं, यथा—हाथ, पैर आदि; (सा० ६५)। -वल पुं० (सं० इन्द्रियवल) इन्द्रियों का वल; (जस० २, १३, २०)। -सुह पुं० (सं० इन्द्रियसुख) इन्द्रियों का सुख; (जस० ३, २०, ७)।

इंदियगिद्धि—स्त्री० (सं० इन्द्रियगृद्धि) इन्द्रिय प्रलोभन; (जंबू० ११, १४, ७)।

इंदियदप्प—पुं० (सं० इन्द्रियदर्प) इन्द्रिय-अहंकार; (जंबू० ३, ६, २)।

इंदियदमण—पुं० (सं० इन्द्रिय+दमन) इन्द्रियों का दमन; (जंबू० २, १८, ३)।

इंदियफडालु—पुं० (सं० इन्द्रिय+फणा+ल (स्वार्थे प्र०) इन्द्रिय रूपी फणा, फ़ण (भोग) "इंदियफडालु चउगइवयणु"—इन्द्रियों रूपी फण, चतुर्गति रूपी मुख; (जंबू०)।

इंदियवित्ति—स्त्री० (स० इन्द्रिय+वृत्ति) इन्द्रिय-प्रकृति या का[illegible]; (जंबू० ११, ८, २)।

इंदियवि[illegible]—पु० (सं० इन्द्रिय+विषय) इन्द्रियों के विष[illegible] (अर्थात् भोग-वासना); "नासइ इंदियविसय[illegible]"; (जंबू० २, २०, [illegible])।

इंदियाल—न० (सं० इन्द्रजाल>प्रा० इंदयाल) मायां-कर्म; (प्रा० गु० ५, ११; संधि० १४, १, २)।

इंदीवर—(सं० इन्दीवर>प्रा० इंदीवर) कमल, पद्म; (भ०)।

इंदु—पुं० १- (सं० इन्दु>प्रा० इंदु) चन्द्र, चन्द्रमा; (भ०)। २- पुं० इन्दु नामक दूत; (व० ३, ३१, ८)। ३- रोला छन्द का एक भेद; (प्रा० पैं० १, ९३)। ४- षट्कल गण का नाम (छंद शास्त्र में प्रयुक्त); (प्रा०पैं० १, १२५)।

इंदोअ—पुं० (दे०) इन्द्रगोप, कीट-विशेष; (सं० रा०)।

इंदोवत्त—पुं० (दे०) इन्द्रगोप, कीट-विशेष; (दे० ना० मा० १, ८१)।

इंधण—न० (सं० इन्धन) जलावन, ईंधन; (उ० व्य० प्र० २१-३०; की० ३, ९८)। इंधणु (परमा०)। -पाणि न० (स० इन्धन+पानीयम्) इन्धनोदकम् (उ० व्य० प्र० २१-३०)।

इहां—अव्य० (सं० प्रा० इह) यहाँ; (उ० व्य० प्र०, २०-५)।

इ—अव्य० १-(सं० एव) ही (रा०३)। २- (सं० अपि) भी; (प० च० ३, १३, ७)। पुं० (सं० प्रा० इ) अपभ्रंश वर्ण माला का तृतीय स्वर-वर्ण।

इअ—अव्य० (सं० इत:) यहाँ; (की० २, २२६)। २- सर्व०(सं० इदम्) यह; (क० १, १०, १०)। ३- अव्य० इव; (सं०-रा०)।

इअर—वि० (सं० इतर>प्रा० इयर) अन्य; (की० ३, ७०)। इअरा—वि० स्त्री० (सं० इतरा) अन्य; (प्रा० पैं० १, ८३)। इअरी-वि० अन्य; (की० १, ४६)।

इआलिस—वि० (सं० एकचत्वारिंशत्) इकतालीस, चालीस और एक; (प्रा० पैं० १, १५९)।
इउं—अव्य० (सं० इतस् > इओ) इस लोक में, यहाँ; (रा० २९)।
इउ—सर्व० (सं० इदम्) यह; तुल० गु० आ; (संधि० १९, ६, १३)।
इओ— अव्य० इतने में; "इओ तत्य ईसाणचंदस्स धूया"; (विला०)।
इक—वि० (सं० एक > प्रा० एक्क, इक्क) एक; "इक-गुणी पूज किय कुँवरि कंत"—कुमारी और कान्त ने पहले दिन एक गुनी पूजा की; (सि० १, १७, २६)।
इकट्ठु—अव्य० (सं० एकत्र) इकट्ठा, सारा; (सं० रा० १८०)।
इकलि—वि० स्त्री० (सं० एकला) अकेली; (प्रा० पैं० २, १९३)। —य; अकेली (सं० रा०)।
इक-संथ—स्त्री० (सं० एक संस्था) एक रूप या आकार, "इक-संथ... बि-संथिय बाला जं ति-संथिय जंपइ। वररुचि रूठउ राओ, रोसिहिं मणु कंपइ"; (प्रा० गु० १६, ८)।
इक्क—वि० (सं० एक > प्रा० एक्क, इक्क) इकाइयों में सबसे छोटी और पहली पूरी संख्या, एक; (ण० २, १, ६; जंबू० १, ५, १७; पाहु० १७७)।—ति वि० एक ही, एकत्र; (सं० रा०)।
इक्कइया—अव्य० (सं० एकदा > प्रा० एक्कइया) एक समय में, एक बार; (जस० ४, २४, २९)।
इक्कण—वि० (दे०) चोर, चुराने वाला; (दे० ना० मा० १, ८०)।
इक्कल्ल—वि० (सं० एकल) अकेला; तुल० गु० एकलु; (संधि० १४, १, ४)। —अवि० अकेला; (जंबू० १०,२६,११)।
इक्कल्लिय—त्रि० (सं० एकल) अकेली; (सं० रा० १९०)।
इक्कासी— सं० (सं० एकाशीति) इक्यासी; तुल० गु० एकाशी, पं० इकासी; (संधि० १६, ३, १)।
इक्किक्कि—वि० (सं० एक-एक) एक-एक; (सं० रा०)।
इक्कुस—न० (दे०) कमल; (दे० ना० मा० १, ७९)।
इक्ख—पुं० (सं० इक्षु > प्रा० इक्खु) ईख, ऊख; (सं० रा०)। इक्खु; (क० ४, १०, ५)।
इक्खक्कु—पुं० (सं० इक्ष्वाकु > प्रा० इक्खागु) एक प्रसिद्ध क्षत्रिय राजवंश; (प० च० ३८, ११, ७)।
इक्खण—न० (सं० ईक्षण) अवलोकन, प्रेक्षण; (भ०)।
इक्खा—स्त्री० (सं० प्रा० इच्छा) इच्छा; (सि० १, ३)।
इक्खाउ—पुं० (सं० इक्ष्वाकु > प्रा० इक्खागु) इक्ष्वाकु नामक वंश; (महा० ६८, ९, ६)।
इगसठि—वि० (सं० एकषष्ठि > प्रा० एक्कसट्ठि) साठ और एक; तुल० गु० एक-सठ; (प्रा० गु० ४०, १३)।
इग्ग—वि० (दे०) भीत, डरा हुआ; (दे० ना० मा० १, ७९);
इग्गारह—वि० (सं० एकादशन् > प्रा० एक्करह) ग्यारह; (प्रा० पैं० १, ९३)।

इग्घिअ—वि० (दे०) तिरस्कृत; (दे० ना० मा० १, ८०)।

√इच्छ—(सं० इष् > प्रा० इच्छ) इच्छा करना; (उ० व्य० प्र० १३, १)। —इ सक०, ए० व० (सं० इच्छति) (भ०)। —त कृ० (सं० इच्छत्) (उ० व्य० प्र० १२-२७)। —मि क्रि०, व०, ए० व० (प० च० १४, ८, ४)। —हु क्रि० व० चाहना, (हे० ३८४)।

इच्छ—स्त्री० (सं० प्रा० इच्छा) अभिलाषा; (प० च० १४, ८, ४)।

इच्छिय—वि० (सं० इच्छित > प्रा० इच्छिय) जिसकी इच्छा की गई हो वह; (भ०)।

इच्छु—वि० (सं० प्रा० इच्छु) इच्छुक, अभिलाषी; (सि० १, २१)।

इच्छेवय—वि० (सं० एषतव्य) इच्छा; "होउ मज्झु इच्छेवय-संपइ," (जस० ४, २७, १२)।

√इछ—(सं० √इष् > प्रा० इच्छ) इच्छा करना, चाहना। —इ सक० (प्रा० पैं० २, १९३)।

इट्ट—स्त्री० (सं० इष्टका > प्रा० इट्टा) ईंट; तुल० गु० ईंट; (प० च० ३३, ६, ४)। इट्टा-स्त्री० ईंट (संधि ३, १२, ४)। इट्ठाल-वि० इष्टकामय ईंटों से युक्त; (प० च० २५, ७, ३)।

इट्ठ—वि० (सं० इष्ट > प्रा० इट्ठ) अभिप्रेत, प्रिय, अभिपित; (भ०)। इट्ठु (हे० ३५८, २)। —च्छर-स्त्री० (सं० इष्ट+अप्सरा) (जंबू० २, २, ७)। —देवो पुं० (सं० इष्टदेवः) प्रिय देवता; (प्रा० पैं० १, ३४)।

इडिका—स्त्री० (सं० एडक > प्रा० एडक्क); भेड़ (की० ४, ११४)।

इड्ढिवंत—वि० (सं० ऋद्धिमत् > प्रा० इड्ढिमंत) वैभव या शक्ति, सामर्थ्य वाला; (सुदं० २, ९, ९)।

इणं—सर्व०(सं० इदम्) यह; (ण० २, ३, १; दे० ना० मा० १, ७९)।

इणि—सर्व० (सं० एतत्) इस; (सं० रा०)।

इण्णि—सर्व० (सं० एतानि) यह; (प्रा० पैं० २, १६०)। इण्णे—सर्व० (सं० एते) ये; (प्रा० पैं० २, २८)।

इण्हिं—अव्य० (सं० इदानीम्) इस समय; (दे० ना० मा० १, ७९)।

इत—अव्य० (सं० इत्यम् > प्रा० इत्थं) इस तरह, इस प्रकार; (की० ३, १४८)।

इत्तउं—वि० (सं० एतावत् > प्रा० इत्तिय) इतना; (हे० ३९१)।

इत्तलउ—वि० (सं० एतावत्, इयत् > प्रा० इत्तिय) इतना; (प्रा० गु० १२, १३)।

इत्तहि—अव्य० (सं० अत्र) यहाँ पर; (भ०)।

इत्ति—स्त्री० (सं० इयत्ता) सीमा, परिमिति; (की० ४, ११)।

इत्तिअ—वि० १. (सं० इयत्, एतावत् > प्रा० एत्तिअ) इतना; (क० ३, ७, ९)। इत्तिय (भ०)। २. इत्वर, चपल; (जस०)।

इत्यंतरि—अव्य० (सं० अत्र+अन्तर) इसी बीच; (सं० रा०)।

इत्थ—अव्य० (सं० अत्र>प्रा० एत्थ) यहाँ, यहाँ पर; (भ०)। (जस० १, १८, २०; म० १, २३, ५)। इत्थि—अव्य० यहाँ (प्रा० पैं० १, ६)। इत्थु; (भ०)।

इत्थन्तरें—अव्य० (सं० अत्रान्तरे) यहाँ इसके बाद; (प० च० १, १४, १)।

इत्थिम्म—अव्य० (सं० एतस्मिन्) यहाँ, "इत्थम्मि हवेसइ तित्थवरु," यहाँ एक बड़ा तीर्थ बनेगा; (क० ५, ६, ६)।

इत्थिरज्जं—पुं० (सं० स्त्री+राज्य) देश-विशेष; (जंबू० ६, १६, १२)।

इत्थी—स्त्री० (सं० स्त्री>प्रा० इत्थि, इत्थी) महिला, औरत; (विला०)।

इत्थि—अव्य० (सं० अत्र>प्रा० इत्थ) यहाँ; (की० ४, १२)।

इत्थेन्तर—क्रि० वि० (सं० अत्रान्तर) इस बीच में; (की० ३, ६३)।

इद्दंड—पुं० (दे०) मधुकर; (दे० ना० मा० १, ७६)।

इन—सर्व० (सं० एतत्) यह; (रा० १२)।

इन्द—पुं० (सं० इन्द्र) सूर्य; (की० २, २६)।

इन्दत्तणु—पुं० (सं० इन्द्रत्व>प्रा० इंदत्त) इन्द्र का असाधारण धर्म; (प० च० ३, ६, ११)।

इन्द-दिस—स्त्री० (सं० इन्द्र-दिशा) पूर्व-दिशा; (प० च० २४, १४, ६)।

इन्दवह—पुं० (सं० इन्द्रमह>प्रा० इंद-मह) इन्द्र की आराधना के लिए किया जाता एक उत्सव; (प० च० ८, ६, ६)।

इन्दिन्दिर—पुं० (सं० इन्दिंन्दिर>प्रा० इंदिदिर) भ्रमर; (प० च० १३, ७, ४)।

इब्भ—पुं० (सं० इभ्य>प्रा० इब्भ) धनी, धनवान; (जंबू० ३, १०, १२)। पुं० (दे०) वणिक, व्यापारी; (दे० ना० मा० १, ७६)।

इमं—सर्व० (सं० इदम्>प्रा० इम) यह; (जंबू० २, ३, १); इमम (भ०)।

इम—क्रि० वि० (सं० एवम्) ऐसा ही, इस प्रकार; तुल० गु० 'एम; (संधि० ११, १, ८)। २- यह, ऐसा; ऐसे; (प्रा० पैं० २, ७४)। ३- इस प्रकार; (सं० रा०)।

इमराहिमसाह—पुं० इब्राहीमशाह; (की० २, १५३)।

इमु—सर्व० (सं० इदम्>प्रा० इम) यह; (प० च० १५, ११, ६)।

इय—अव्य० (सं० इति>प्रा० इय) इस प्रकार, एवं (ण० १, १०, १२)। सर्व० यह; (सं० रा०)।

इयर—सर्व० (सं० इतर>प्रा० इयर) स्त्री० इयरा, षष्ठी एक व० इयरहु, इयरसु, दूसरा; तुल० पुरानी म० येंर, येरु; (भ०; जस० ३, ३२, ४)। —ह अव्य० (सं० इतरथा) अन्यथा, अन्य प्रकार से; (जस०)। इयरा—वि० (सं० इतरा स्त्री०) दूसरी; (जंबू० ८, ११, १)।

इयराउत्त—पुं० (सं० इतर+आयुक्त) अन्य (लोगों के) मुखिया, "पुणु सामंत महंत थिय सेणिउ इयराउत;" (जंबू० ५, १, १०)।

इरमंदिर—पुं० (दे०) करभ; ऊंट; (दे० ना० मा० १, ८१)।

इरावय—पुं० (सं० ऐरावत > प्रा० इराव) हाथी; (ण० ९, १३, ५)।

इरि—पुं० (सं० प्रा० गिरि, प्रा० इरि) पर्वत; (प० च० ३, ८, ७)।

इरिण—न० (दे०) कनक, सुवर्ण; (दे० ना० मा० १, ७९)।

इरिया—स्त्री० (दे०) कुटी, कुटिया, (दे० ना० मा० १, ८०)।

इल—स्त्री० (सं० प्रा० इला) पृथ्वी, भूमि; (प० च० १२, ११, ६)। इला; (जस० ४, १७, ११)।

इलरक्ख—वि० (सं० इला+रक्षक > प्रा० इला+प्रा० रक्खअ) खेत का रखवाला; (संधि० २, १३, ५)।

इल्ल—पुं० (दे०) १- प्रतिहार, चपरासी; २- दाँती, ३- वि० दरिद्र; ४- कोमल, ५- काला; (दे० ना० मा० १, ८२)।

इल्लि—पुं० (दे०) १- व्याघ्र; २- सिंह; ३- छाता; (दे० ना० मा० १, ८३)।

इल्लीर—न० (दे०) १- आसन-विशेष; २- छाता; ३- दरवाजा, गृह-द्वार; (दे० ना० रा० १, ८३)।

इव—अव्य० (सं० प्रा० इव) इन अर्थों का सूचक—१- उपमा, २- सादृश्य, ३- उत्प्रेक्षा; (प० च० ५, १३, ८)।

इव्वहि—अव्य० (दे०) सं० इदानीम्; अभी; (म० २, २८, ६)।

इस—वि० (सं० ईदृश) ऐसा।—उ (संधि १७, २, ५; रा० १०)।

इसि— पुं० (सं० ऋषि > प्रा० इसि) मुनि, साधु, ज्ञानी, महात्मा; (ण० १, १२, ३)।

इह—सर्व० (सं० प्रा० इह) इस लो० –'इह भूरि पुण्णवंतहं णराहँ किं पि वि ण असज्झु मणोहराइँ'—महान् पुण्यशाली पुरुषों के लिए इस संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है; (व० ८, ५, २)।

इहदह—वि० (सं० एकादश) ग्यारह; प्रा० पैं० १, ८६)।

इहरत्त—अव्य० (सं० इह +अत्र) इस संसार में; (संधि० १२, ७, ५)।

इहलोय—पुं० (सं० इहलोक > प्रा० इहलोग, इहलोअ) मनुष्य-लोक, (प० च० ४, १३, ४)।

इहां—अव्य० (सं० इह) यहाँ, इस स्थान में; (उ० व्य० प्र०, २०–३; रा० २८)।

इहिकारा—पुं० (सं० इहिकाराः) इकार तथा हिकार वर्ण; (प्रा० पैं० १, ५)।

इहु—अव्य० (सं० प्रा० इह) यहाँ, इस जगह; (भ०)। २-सर्व० (सं० ईदृक) यह; "एँहु दीसइरिउवलें 'विजउसाहु" —यह शत्रु-सेना में विजय का उत्साह दिखाई दे रहा है; (जंबू० ७, ३, ७)।

ई

ईंधण—न० (सं० इन्धन > प्रा० इंधण) ईंधण, लकड़ी आदि जलाने की वस्तु; (उ० व्य० प्र० १५, ४)।

ई—सर्व० (सं० एतत् > प्रा० ईअ) यह; (की० १, २६)। पुं०—अपभ्रंश वर्णमाला का चतुर्थ वर्ण; स्वर-विशेष।

√ईच्छ—(सं० इच्छति) इच्छा करना; (उ० व्य० प्र० ५२–११)।

ईर—सक० (सं० प्रा० ईर) कहना। ईरियउ क्रि० भू० का० कहा; (महा० ६६, १६, ६)।

ईरिअ—वि० (सं० ईरित, √ईर= कहना) १- कथित; (सुदं० २, १, ८)। २- प्रेरित (जस० २, १८, १६)।

ईश—पुं० (सं० ईश > प्रा० ईस) ईश्वर; (की० १, १०३)।

ईसंति—क्रि० (सं० दृश्यन्ते) दिखाई देना; (ण० ६, १७, ३२)।

ईस[1]—सक० (सं० ईर्ष् > प्रा० ईस) ईर्ष्या करना, द्वेष करना। ईसाइवि–पू० का० क्रि० (जंबू० ८, १४, ७)।

ईस[2]—न० (सं० ईर्ष्या > प्रा० ईसिअ) द्वेष; (जंबू० ६, १३, २)। न० (दे०) खूंटा, खीला, कीलक; (दे० १, ८४)।

ईस[3]—पुं० (सं० ईश > प्रा० ईस) ईश्वर; (भ०)।

ईसअ—पुं० (दे०) हरिण की एक जाति; (दे० १, ८४)।

ईसर—पुं० (सं० ईश्वर > प्रा० ईसर) १. परमेश्वर, प्रभु; (भ०)। २. ईश्वर नामक विद्याधर योद्धा; (व० ४, ६, ६)। ३. कामदेव (सं० रा०)। ४. समृद्ध, "घरि-घरि गोरिउ सीमंतिणिउ सक्कु धणउ ईसरु जणु," –वहां घर-घर में गोरी सीमन्तिनियां (स्वर्ग में एक ही गौरी है) तथा शक्र और धनद–कुवेर जैसे धनी या समृद्ध लोग हैं, (जंबू० १, ६, १०)।

ईसरवाअ—(सं० ईश्वरवाद > प्रा० ईसर +वाय) ईश्वर में विश्वास संबंधी तत्त्व-विचार; (ण० ६, ७, १०)।

ईसरसंगउ—(सं० ईश्वरसंगत:) महेश्वर का साथी, 'जो सामि वि णउ ईसरसंगउ वह स्वामी होता हुआ भी स्वामी (कार्तिकेय) के समान महेश्वर का साथी नहीं था, (सुदं० २, ४, ६)।

ईसरसरि—पुं० (सं० ईश्वर+स्वर > प्रा० ईसर+सर) काम पीड़ित स्वर; (सं० रा०)।

ईसरहि—पुं० (सं० ईश्वरम्) प्रभु, मालिक, राजा, शासक, धनी या बड़ा आदमी; (उ० व्य० प्र० ५०–१७)।

ईसा[1]—स्त्री० (सं० ईर्षा > प्रा० ईसा) ईर्ष्या, द्रोह; (म० १, १४, ४; प्रा० पैं० २, २०१)।

ईसा[2]—स्त्री० (सं० ईषा=हलस) हल का एक काष्ठ; (दे० ना० मा० २,६६)।

√ईसाअ—(सं० √ईर्ष् > प्रा० ईस) ईर्ष्या करना, द्वेष करना। ईसाएँवि–पू० का० क्रि० (प० च० ५५, १०, ७)।

ईसाण—पुं० (सं० ईशान > प्रा० ईसाण) स्वर्ग-नाम; (जस० ४, २८, २८)। —सग्गि (सं० ईशान–स्वर्ग) देवलोक–विशेष; (व० २, १०, १०)।

ईसाणिद—पुं० (सं० ईशान इन्द्र) देव-लोक का इन्द्र; (व० ६, १२, १२)।

ईसालुअ—वि० (सं० ईर्ष्यालु+क > प्रा० ईसालुअ) द्वेषी; (जंबू० ३, ११, ५)।

ईसास—वि० (सं० ईर्ष्यालु) ईर्ष्या करने वाला; "सुलहउ ईसासे जणे कसाउ"— ईर्ष्यालु व्यक्ति में कसाय सुलभ है, (सुदं० ८, ३२, ६)।

ईसासिहि—पुं० [सं० ईर्ष्या+शिखिन् पुं०>प्रा० ईसासिहि] ईर्ष्या की अग्नि; (जस० २, १०, १३)।

ईसि—अव्य० (सं० ईषत्>प्रा० इसि) थोड़ा, अल्प; (भ०)।

ईसिअ—वि० (सं० ईर्ष्यित) जिस पर ईर्ष्या की गई हो वह; (दे० ना० मा० २, १६)।

ईसीसी—अव्य० (सं० ईषत्>प्रा० ईसि) थोड़ा, अल्प; हल्का सा; (ण० ५, ६, १; प० च० ४, १३, ८)।

√ईह—(सं० ईक्ष्>प्रा० ईह=देखना, विचारना) देखना; (संधि० १३, १४, ६)। -इ सक० (सं० इष्>प्रा० इच्छ) चाहना, "साचइ जम्मण-मरण जु वीहइ, सिवकुमार जिम सो सिवु ईहइ"; (प्रा० गु० १, १२३)। -हि, सक०, चाहना, "हियवइ ईहहि" -हृदय से चाहती है; जंबू(० ६, १५, २)। ईहंतिय-कृ० (ईह+शतृ (स्त्रियाम्) समझकर, विचार कर; (जंबू० १, १०५)।

ईहां—अव्य० (सं० प्रा० इह) यहाँ (उ० व्य० प्र० १४-२८)। ईहां हुंत—सं० इतस् (उ० व्य० प्र० १४-३०) इधर से।

उ

उंछअ—पुं० (दे०) वस्त्र छीपने का काम करने वाला शिल्पी, छीपी; जो कपड़ा छापता है या छींट बनाता है; (दे० ना० मा० १, ९८)।

उंजिय—वि० (सं० ऊर्जित) १. शक्ति-संपन्न; २. उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, ३. समृद्ध ४. तेजस्वी, ५. गंभीर; (जस०)।

उंजु—वि० (सं० ऋजु प्रा० उज्जु) सीधे; 'सोमउंजुअंगयाइ' —सौम्य और सीधे अंग वाली; (जस० ३, २, १२)

उंट—पुं० स्त्री० (सं० उष्ट्र>प्रा० उट्ट) ऊँट, "खसपीडिउ अडविहि उंटु मुक्कु" -खारिश (व्याधि) से पीड़ित ऊँट को अटवी में छोड़ दिया; (जंबू० १०, ७, १)।

उंठ—क्रि० (सं० उत्+स्था>प्रा० उट्ठ) उठ गया हो, (की० २, १०५)।

उंड—वि० (दे०) गहरा तुल० राज० उंडाण (गहराई); (दे० ना० मा० १, ८४)।

उंडल—न० (दे०) १. मञ्च, मचान, उच्चासन, २. निकर, समूह; (दे० ना० मा० १, १२९)।

उंतालीस—वि० (सं० ऊनचत्वारिंशत्) उनतालीस; (प्रा० पैं०)।

उंद—पुं० (दे०) वाद्य; (सुदं० ७, ६, ५)।

उंदरं—पुं० स्त्री० (सं० उन्दुर>प्रा० उंदुर, उंदर) मूषक, (व० ६, ११, १)। उंदर (दे० ना० मा० १, १०२)।

उंदुर[1]—पुं० स्त्री० (सं० उन्दुर>प्रा० उंदुर, उंदर) मूषक, चूहा; (जस० ४, १६, ७)। उंदुरु (व० १०, ८, १६)।

उंदुर[2]—पुं० दोहा छंद का एक भेद; (प्रा० पैं० १, ८०)।

उंदुरअ—पुं० (दे०) लम्बा दिवस; (दे० ना० मा० २, १०५)।

उंदेस—पुं० (सं० उपदेश>प्रा० उव-

एस) शिक्षा, बोध; (सि० १, २)।

उंन—वि० (सं० ऊन) न्यून, हीन; (रा० ३०)।

उंवर¹—पुं० (सं० उदुम्बर>प्रा० उंवर) १. उदुम्बर, गूलर का वृक्ष, वृक्ष-विशेष; गु० उंवरो; (जंवू० ४, २१, २; संधि० २, ५, ६)। २. न० उदुम्बर का फल (सुदं० ६, २, १)। ३. देहली, द्वार के नीचे की लकड़ी; (दे० ना० मा० १, ६०)।

उंवर²—वि० (दे०) बहुत, प्रचुर; (दे० ना० मा० १, ६०)।

उंबा—स्त्री० (दे०) बंधन; (दे० ना० मा० १, ८६)।

उंवी—स्त्री० (दे०) पका हुआ गेहूं; (दे० ना० मा० १, ८६)।

उंस—स्त्री० (सं० अवश्याय>प्रा० उस्सा) ओस; (जंबू० १०, ७, ६)।

उंअआर—पुं० (सं० उपकार>प्रा० उअआर) परोपकार; (की० २, ३६)।

उंगर—पुं० (सं० उत्कर>प्रा० उक्कर) समूह; (की० २, १०८)।

उंछल—क्रि० भू० का० (सं० उत्+शल् >प्रा० उच्छल) उछला; (की० ३, ३७)।

उंठ—क्रि० (सं० उत्+स्था>प्रा० उट्ठ) उठ गया हो; "कोलाहल, कान भरन्ते मर्यादा छांडि महार्णव उंठ," (की० २, १०५)।

उंण—अव्य० (सं० पुनर्>प्रा० पुणो, पुण, उण) पर, फिर; (की० २, ४५)।

उंद्धार—पुं० (सं० प्रा० उद्धार) बचाव; (की० २, १६)।

उंपताप—पुं० (सं० उत्ताप=पीड़ा, कष्ट) दुःख; (की० ३, ५२)।

उंपास—पुं० न० (सं० उपवास>प्रा० उववास) उपवास, अनाहार; (की० ३, ११, २)।

उंप्पत्ति—स्त्री० (सं० उपपत्ति>प्रा० उववत्ति) उत्पत्ति, जन्म; (की० ३, ११०)।

उंप्पर—अव्य० (सं० उपरि> प्रा० उप्परि) ऊपर; (की० २, १३०)।

उंलटि—क्रि० भू० का० (दे०) बदली; "कुरुम उंलटि करवट्ट दे" — 'कूर्म ने करवट बदली; (की० ४, ६७)।

उंवार—स्त्री० (सं० उद्+वृ>प्रा० अप० उव्वर=बच जाना, सुरक्षित रहना) रक्षा; (की० ३, ८८)।

उ—पुं० (सं० उ) अपभ्रंश वर्णमाला का पञ्चम अक्षर, स्वर-विशेष। अव्य० (सं० अपि) भी; (उ० व्य० प्र० ६, २६)।

उअंचण—न० (सं० उदञ्चन) १. ऊँचा फेंकना, २. ढकने का पात्र; (दे० ना० मा० ४, ११)।

√उअ—(लोट् लकार) (सं० अव+लोक् >प्रा० अवलोअ) देखो, देख, विलोकन करो; (हे० ३६७; दे० ना० मा० १, ८६)। —ह अक० देखो देखिए; (दे० ना० मा० १, ६८)।

√उअ—(सं० उत्+गम्>प्रा० उग्गम, उग) उगना। —इ अक० (प्रा० पैं० २, ३७)।

उअग्ग—वि० (दे०) ऋजु, सरल, सीधा; (दे० ना० मा० १, ८८)।

उअआर—पुं० (सं० उपकार>प्रा०

उअआर) उपकार; (की० १, ३२; प्रा० पैं० २, १८६)।

उअक्किअ—वि० (दे०) पुरस्कृत, आगे किया हुआ; (दे० ना० मा० १, १०७)।

उअचित्त—वि० (दे०) १. अपगत, पलायित, भागा हुआ, पलटा हुआ, हटा हुआ; दूरीभूत; २. निवृत्त; (दे० ना० मा० १, १०८)।

उअय—पुं० (सं० उदय>प्रा० उअअ) उन्नति, अभ्युदय; (भ०; जंबू० ११, ६, ७)।

उअर—न० (सं० उदर>प्रा० उअर) उदर, पेट; (जस०)।

उअरी—स्त्री० (दे०) शाकिनी, देवीविशेष; (दे० ना० मा० १, ६८)।

उअसंझहि—अव्य० (सं० उपसंध्य) संध्या के निकट आने पर; सायंकाल के समय, "तो उअसंझहि मज्जु पुर विप्पघरहि करु वास;" (की० २, २५१)।

उअहारी—स्त्री० (दे०) दोग्ध्री, दोहने वाली स्त्री; (दे० ना० मा० १, १०८)।

उअहि—पुं० १. (सं० उदधि>प्रा० उवहि, उअहि) समुद्र; (भ०)। २. पुं० विद्याधर वंशीय राजा; (प० च० ५, १६६)।

उआअ—पुं० (सं० उपाय>प्रा० उवाय) हेतु, साधन; (दो० को०)।

उआय—वि० (सं० उपागत) समीप में आया हुआ। उआया; (रा० ३५)।

उआर—पुं० (सं० उपकार>प्रा० उअआर) १. परिचर्या, २. अनुग्रह; (स० दो० को०)।

उआलि—स्त्री० (दे०) अवतंस, शिरोभूषण; (दे० ना० मा० १, ६०)।

उआसीण—वि० (सं० उदासिन्>प्रा० उआसीण) उदासीन, तटस्थ, जो विरोधी पक्षों में से किसी की ओर न हो; (प्रा० पैं० १, ३५)।

उआसे—वि० (सं० उदास>प्रा० उआस) दुःखी, खिन्न चित्त; (प्रा० पैं० १, ३७)।

उइंराण—न० (दे०) उत्तरीय वस्त्र, चादर; (दे० ना० मा० १, १०३)।

उइअ—पुं० विद्याधरवंशीय राजा, (प० च० ५, १६६)। —परक्कम पुं० इक्ष्वाकुवंशीय राजा; (प० च० ५, ६)।

उइउ—क्रि० भू० का० (सं० उद्+इ>प्रा० उइ) उत्पन्न हुआ; 'सुउ चंदचूलु चंदु व उइउ'; (महा० ६६, ४, ११)।

उइय—वि० (सं० उदित>प्रा० उइय) १, उदय-प्राप्त, निकला हुआ, उद्गत; (ण० ५, ३, ८; जंबू० ८, १५, ४)। २. उगा हुआ, ऊपर चढ़ा हुआ, उत्पन्न हुआ; (प० च० १, १६, ६) लो०—उइय चंदि किं तारियहँ अर्थात् चंद्र के उदय हो जाने पर तारों से क्या? (प० सि० च०)।

उएस—पुं० (सं० उपदेश>प्रा० उवएस) उपदेश, शिक्षा, बोध; (सं० दो० को०)।

उकड्ढ (कट्ठ)— (सं० उत्+कृष्) निकालना, डालना; उक्किट्ठ (प्रा० पैं० २, १६); उक्किट्ठा (प्रा० पैं० २,

१५०); उक्किट्ठाआ; (प्रा० पं० १, १४४)।

उकिल—अक० (सं० उत्किलति) क्रीडा करना; "संविरा कापडु उकिल" —मु (उ) त्किलति। 'उकेल'—उत्केलयति। 'संकेल' —संकेलयति। किल श्वैत्य-क्रीडनयोः। (उ० व्य० प्र०, ५२–१२)।

उक्कुट्टु—वि० (सं० उत्कृष्ट) श्रेष्ठ; (सि० १, २८)।

उकेल—अक० (सं० उत्केलयति) क्रीड़ा करना; (उ० व्य० प्र०; ५२–१२)।

उकोल—क्रि० (सं० उत्कोलति) गर्म करता है; (उ० व्य० प्र० ४९–८)।

उक्कंखिरिय—वि० स्त्री० (सं० उत्कण्ठित>प्रा० उक्कंठिय, उक्कंठिर) उत्कंठिता, उत्सुक; (सं० रा०)।

उक्कंठ—वि० (सं० उत्कण्ठ) उत्सुक; (जस० ३, ३३, ७)।

उक्कंठा—स्त्री० (सं० उत्कण्ठा>प्रा० उक्कंठा) उत्कंठा, उत्सुकता, औत्सुक्य; (विला०)।

उक्कंठि—स्त्री० (सं० उत्कण्ठा>प्रा० उक्कंठा) उत्सुकता, औत्सुक्य; (व० ४, २, ३)।

उक्कंठिउ—वि० (सं० उत्कण्ठित>प्रा० उक्कंठिय) उत्कंठित, (व० २, २०, ५)।

उक्कंठिय-वि० उत्सुक; (ण० ५, १२, २)। उक्कंठिव; (व० २, ४, ७)।

उक्कंडा—स्त्री० (दे०) घूस, रिश्वत; (दे० ना० मा० १, ९२)।

उक्कंति—स्त्री०, विशेषण के रूप में प्रयुक्त (सं० आक्रान्त) आक्रान्त, "गोट्ठं-गणे नीलनियंसणिहिं घणथणरमणुक्कंतिहिं। पहि किज्जइ गमणविलंबु जहिं गोविहिं रासु रमंतिहिं। —उस देश में गोकुल के आँगनों में नीले वस्त्रों को धारण करने वाली तथा अन्य घने स्तनों व विलास क्रीड़ाओं के भार से आक्रान्त रास खेलती हुई गोपियों के द्वारा (पथिकों के लिए) पथ में गमन करने में विलंब कर दिया जाता है, (जंवू० १, ७, १०)।

उक्कंदर—वि० (दे०) ऊँचा; (रि० ५, ६)।

उक्कंदि, उक्कंदी—स्त्री० (दे०) कूप-तुला; (दे० १, ८७)।

उक्कंमंत—कृ० (दे०) धनुप पर डोरी चढ़ाते हुए; (जंवू० ६, ७, ११)।

उक्क—पुं० विद्याधरवंशीय राजा; (प० च० १०, २०)।

उक्कच्छ—स्त्री० (सं० उत्कच्छा>प्रा० उक्कच्छा) छन्द-विशेष, रसिका छन्द का दूसरा नाम; (प्रा० पं० १, ८८)।

उक्कड—वि० (सं० उत्कट>प्रा० उक्कड) तीव्र, प्रचण्ड, प्रखर; "तो उक्कड-मयण वियारयाए," तव उत्कट कामदेव से विदारित; (विला०)।

उक्कत—वि० (सं० उत्क्रान्त) ऊँचा गया हुआ (भ०)।

उक्कत्तिय—वि० (सं० उत्+कर्तित>प्रा० उक्कत्तिय) काटे हुए, "उक्कत्तिय-चित्तयछवधराइं" काटे हुए चीतों के शव पड़े हुए थे; (जंवू० ५, ८, २६)।

√उक्कम—(सं० उत्+क्रम> प्रा० उक्कम) ऊँचा जाना, उलटे क्रम में

रखना। –वि० पू० का० क्रि० (जंबू० ६, ७, ८)।

उक्कर—पुं० (सं० उत्कर>प्रा० उक्कर) समूह, संघात; (सं० रा०)।

उक्कराउ–पू० का० क्रि० दोनों हाथ ऊपर कर; "वुड्डउ उक्कराउ महए-विउ," दोनों हाथ ऊपर कर महादेवी पानी में डूब गई; (प० च० १४, ५, ५)।

उक्करिसिय—वि० (सं० उत्+कर्षित) उल्लसित; 'सव्वंगुक्करसिय करिसणेहिं'–(फूली हुई) खेती से मानो सर्वांग उत्कर्षित अर्थात् उल्लसित हो रही है; (जंबू० १, ८, ५)।

उक्कलि—स्त्री० (सं० उत्कलिका>प्रा० उक्कलिया) उत्कलि नाम की वायु, "उक्कलि मंडलि आइ करंतउ, मरुण ठाइ दिसि विदिसिहिं जंतउ" उत्कलि, मण्डलि आदि करती हुई (साँय-साँय करती हुई) जो वायु ठहरती नहीं, दिशा-दिशाओं में चली जाती है, वह वायु कायिक जीव है; (व० १०, ७, ७)।

उक्कलिय—वि० (सं० उत्कलिक) उत्कण्ठित; (जस० ३, ५, १०)।

उक्कस्स—पुं० (सं० उत्कर्ष>प्रा० उक्कस्स, उक्कस) उन्नति, उदय, उत्कृष्टता; (भ०)।

उक्का—स्त्री० (दे०) कूप-तुला; (दे० ना० मा० १, ८७)।—मुह पुं० महुरा का राजपुत्र, व्यक्ति-नाम, (प० च० १६, २०)। —लंगूल पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५४, २३)।

उक्कासियं—वि० (सं० उत्कर्ष) उत्थित, उठा हुआ; टि०—हिंदी में 'उकसने' का का अर्थ उकेलने के अर्थ में मिलता है, इसे अर्थ-विस्तार माना जा सकता है; (दे० ना० मा० १, ११४)।

उक्किख—स्त्री० (सं० आकांक्षा>प्रा० आकंखा) इच्छा, चाह, अभिप्राय; (सं० रा०)।

उक्कि—स्त्री० (सं० उक्ति>प्रा० उत्ति) वचन; (प्रा० पैं० २, २११)।

उक्कीरअ—(सं० उत्+कॄ > प्रा० उक्किर) खोदना, उकेरना। –मि सक० 'कुलनामुक्कीरमि चंदफलए" –मैं चन्द्र मण्डल पर अपने कुल के नाम को उकेरूँगा;' (जंबू० ८, ८, ११)।

उक्कीरिय—वि० (सं० उत्कीर्ण>प्रा० उक्कीरिअ, उक्करिअ) खोदा हुआ; (जंबू० २, १५, १)।

उक्कुक्किरिय—वि० (सं० उत्क+उत्क +कृतः) ऊपर उठे हुए; (जंबू० ४, १३, १२)।

उक्कुट्ठ—न० (सं० उत्कुष्ट>प्रा० उक्कुट्ठ) ऊँचे स्वर से रोदन; (दे० ना० मा० १, ४७)।

उक्कुरुड—पुं० (दे०) राशि; तुल० म० उकिरडा; (जस० ३, १३, १८; दे० ना० मा० १, ११०)।

उक्कुरुडी—स्त्री० (दे०) धूल, कूडे का ढेर; (दे० ना० मा० १, ११०)।

उक्केर—पुं० १. (सं० उत्कर>प्रा० उक्कर) समूह; (ण० ५, ६, ४)। २. पुं० (दे०) उपहार, भेंट (दे० ना० मा० १, ९६)।

उक्कोइय—वि० (दे०) उत्पादित;

(जस० ३, २३, ५)।

उक्कोडा—स्त्री० (दे०) घूस, रिश्वत; (दे० ना० मा० १, ६२)।

उक्कोडी—स्त्री० (दे०) प्रतिशब्द, प्रतिध्वनि; (दे० ना० मा० १, ६४)।

उक्कोयण-गारय—वि० (सं० उत्कोपन-कार) उद्दीपक; (प० च० ४१, १०, ३)।

उक्कोयणु—वि० (सं० उत्कोपन>प्रा० उक्कोवण, उक्कोयण=उद्दीपन, उत्तेजन) उत्पादक "चोज्जुक्कोयणु" —आश्चर्य उत्पन्न करने वाला; (ण० ४, १२, ६)।

उक्कोल—पुं० (दे०) घाम, धूप, गरमी; (दे० ना० मा० १, ८७)।

उक्कोव—(सं० उत्कोपय्) उत्तेजित करना, क्रोधित होना; (प० च० ३६, ११, ६)।

उक्कोवण—न० (सं० उत्कोपन) उद्दीपन, उत्तेजन; "मयणुक्कोवण"; (भ०)।

उक्खंड—पुं० (दे०) संघात, समूह, २. विषमोन्नत प्रदेश; (दे० ना० मा० १, १२६)।

उक्खंडिअ—वि० (दे०) आक्रान्त, दबाया हुआ; (दे० ना० मा० १, ११२)।

√उक्खण—(सं० उत्+खन्> प्रा० उक्खण) उखेड़ना, उच्छेदन करना। –इ सक० (सं० उत्खनति) तुल० म० उखणणें; (भ०)। २. खांडना, कूटना, मुशल आदि से धान आदि का छिलका दूर करना; (दे० ना० मा० १, ११५)।

उक्खेवि–पू० का० क्रि० (सं० उत्खनितुं) "तहो पुत्त तुम्ह उक्खेवि आउ" (भ० १५, ४, ६)।

उक्खणण—न० (दे०) खांडना, भूसी से वियुक्त करना, निस्तुषीकरण; (दे० ना० मा० १, ११५)।

उक्खणिअ—वि० (दे०) खण्डित, भूसी से वियुक्त; (दे० ना० मा० १, ११५)।

√उक्खन्ध—क्रि० (सं० अवस्कन्द>प्रा० उक्खंद) आक्रमण करना, छल से शत्रु सैन्य को मारना। उक्खन्धु– भू० का०, घेरा डाल दिया; (प० च० १०, ६, ६)। उक्खंधेंं–कृ० घेरा डालकर, आक्रमण कर; (रि० ४, ५)। उक्खन्धेंवि—पू० का० क्रि०; (प० च० ८५, १६, ७)।

उक्खय—वि० (सं० उत्खात>प्रा० उक्खय=उखाड़ा हुआ, खुला हुआ) १. उठाये हुए; (प० च० १, १४, ७)। २. उखाड़ा हुआ, उन्मूलित; (जस० १, १६, १६)। ३. उखड़ी हुई; (प० च० १३, ३, १)।

उक्खय—वि० (सं० उद्गत) १. निकला हुआ, उत्पन्न, २. प्रकट; ३. गया हुआ; (प० च० २१, ८, ७)।

उक्खल—पुं० न० (सं० उदूखल>प्रा० उक्ख, उक्खलग, उऊखल, उऊहल) उलुखल; (प० च० १७, १३, २)।

उक्खलिया, उक्खली—स्त्री० (दे०) थाली, पात्र-विशेष, (दे० ना० मा० १, ८८)।

उक्खली—स्त्री० (दे०) थाली, पात्र-विशेष; (दे० ना० मा १/८८)।

उक्खा—स्त्री० (सं० इक्षु>प्रा० इक्खु पुं०) ईख, ऊख; (सि० १, ११)।

उक्खाय—वि० (सं० उत्खात>प्रा० उक्खाय, उक्खय) उखाड़ा हुआ, उन्मूलित; (ण० ८, १२, १)।

√उक्खिण—(सं० उत्+खन्> प्रा० उक्खण) उखेड़ना, उच्छेदन करना, काटना; —मि सक० (भ०)।

उक्खिण्ण—वि० (दे०) १. अवकीर्ण; ध्वस्त, चूर्णित; २. गुप्त; ३. एक तरफ से ढीला; (दे० ना० मा० १, ३०)।

उक्खित—वि० (सं० उत्क्षिप्त) १. फेंका हुआ, डाला हुआ; (प्रा० पैं० १, १६८)। २. उखाड़े हुए; (जंबू० ५, १४, १)।

उक्खिप्त—वि० (सं० उत्क्षिप्त>प्रा० उक्खित्त, उक्खित्तय) उन्मूलित, उत्पाटित; (भ०)।

√उक्खिव—(सं० उत्+क्षिप्> प्रा० उक्खिव) १. फेंकना, २. ऊँचा फेंकना, ३. उठाना। —इ, सक० (सं० उत्क्षिपति>उक्खिवेइ; (भ०)। उक्खेविउ—भू० का० (सं० उत्+क्षेपित) फेंका; (जंबू० ७, १०, १५)।

उक्खुंड—पुं० (दे०) १. मसाल, २. समूह, ३. अञ्चल, वस्त्र का एक अंग; (दे० ना० मा० १, १२५)।

उक्खुरुहुंचिअ—वि० (दे०) फेंका हुआ; (दे० ना० मा० १, ४)।

उक्खेव—पुं० (सं० उत्क्षेप> प्रा० उक्खेव) उन्मूलन; (जंबू० ८, १३, ४)।

उक्खेविअ—वि० (सं० उत्क्षेपित) जलाया हुआ; (भ०)।

उक्खोडिअ—वि० (सं० उत्खोटित) १. उत्क्षिप्त; उड़ाया हुआ; २. उखाड़ा हुआ; (दे० ना० मा० १, १०५; १११)।

√उग—(सं० उत्+गम्) उगना। उगो (प्रा० पैं० २, ५५); उगे (प्रा० पैं० २, २०५)।

उगसेण—पुं० उग्रसेन, नाम-विशेष; (संधि० १५, ३, १०)।

उगाहिय—सक० (सं० उद्ग्राह>प्रा० अप० उग्गाह) कर वसूल करना, उगाहना, ग्रहण करना, "...धरिअ छत्त तिरहुति उगाहिअ" छत्र धारण करके तिरहुत से कर ग्रहण करता है; (की० ३, २२)।

उगिल—सक० (सं० उद्+गृ, सं० उद्गिलति) निगलना; "पुणि उगिल—उद्गिलति। गृ निगरणे"; (उ० व्य० प्र०, ५१–२५)।

उग्गंठिय—वि० (सं० उत्+ग्रथित) खुली हुई, "उग्गंठियविसरिसकुंचधरु,' खुली हुई विसदृश (असमान या अद्भुत) कूर्चा को धारण किये; (जंबू० ६, १८, ४)।

√उग्ग—अक० (सं० उत्+गम्) उदित होना; उग्गमिउ–भू० का० कृ०, उगा हुआ; 'उग्गमिउ रवि सहसकिरणु'—उगा हुआ हजारों किरणों वाला सूर्य, (महा० ६६, १२, २)। २. उदित हुआ; (प० सि० च० ३, २)। उग्गिह—भू० का० उदय हुआ; (की० २, १२५)।

उग्ग—वि० (सं० उग्र>प्रा० उग्ग) तेज, तीव्र, प्रबल; (ण० २, ६, १३)। पुं० १. राजपुत्र; (प० च० ८८, १६)। २. विद्याधरयोद्धा; (प० च० १२, १८)। –णाअ पुं० राक्षस योधा; (प० च०

५६, २६)। —तव पुं० (सं० उग्र तप) कठोर तपस्वी; (व० ३, १७, १)। —सिरी पुं० राक्षसवंशीय राजा; (प० च० ५, २६४)। —सेण पुं० रावण मंत्री; (प० च० ८, १६)। उग्गु—वि० उग्र; (व० ३, १३, १; जस० १, १३, १)।

उग्गअ—वि० (सं० उद्गत>प्रा० उग्गअ) उत्पन्न, उदित; (जस० ८, २, १०)।

उग्गम—पुं० (सं० उद्गम> प्रा० उग्गम) उत्पत्ति, उद्भव; तुल० म० गु० उगम; (भ०)। उग्गमु; (व० ४, ६, ५)।

उग्गमाण—वि० (सं० उदीयमान) जिस का उदय हो रहा हो; (ण० ६, १७, १)।

उग्गमिय—वि० (सं० उद्गमित>प्रा० उग्गमिय) उद्गत, उत्पन्न, उगे हुए; (ण० २, १२, ६)।

उग्गय—वि० (सं० उद्गत> प्रा० उग्गय) उगे हुए, "जहिं सरवरि उग्गय पंकयाइं"; जहाँ के सरोवर में कमल उगे हुए हैं; (क० १, ३, ६)।

उग्गयणेसर—पुं० (सं० उद्गत+दिनेश्वर) उदित हुआ सूर्य; (ण० ६, १३, ६)।

उग्गहिअ—वि० (दे०) अच्छी तरह लिया हुआ; (दे० ना० मा० १, १०४)।

√उग्गाम—(सं० उद्+√गम् >प्रा० उग्गम) ऊपर उठाना, उत्थापन करना, ऊँचे उठाना; उन्नत करना; तुल० गु० उगामवुं। —इ, क्रि०, व० (प० च० २५, १४, ८)।

उग्गार—पुं० (सं० उद्गार>प्रा० उग्गार) वचन, उक्ति; (जंबू० ६, १२, २)

उग्गाविर—वि० (सं० उद्गमक) ऊपर उठा हुआ, उत्थापित (raisins); (प० च० ४८, ८, २)।

उग्गाह—पुं० (सं० उद्गाथा>प्रा० उग्गाहा स्त्री०) उद्गाथा छंद, मात्रिक छंद; उग्गाहउ (प्रा० पैं० १, ५७); उग्गाहो, (प्रा० पैं० १, ६८)।

उग्गाहिअ—वि० (सं० उद्ग्राहित) १. गृहीत, लिया हुआ; २. फेंका हुआ, ३. प्रवर्तित; (दे० ना० मा० १, १३७)।

उग्गाहिउ—क्रि० (सं० उद्+घाटय्> प्रा० उग्घाड, उग्घड) उद्घाटित किया; (प० च० १६, ५, १०)।

उग्गिअ—क्रि०, भू० का०(सं० उद्+√गम्>प्रा० उग्ग) उदित हुआ, "घरे-घरे उग्गिअ चंद"; (की० २, १२५)।

उग्गिण—वि० (सं० उद्गीर्ण>प्रा० उग्गिण) १. उत्क्षिप्त, उगला हुआ; (प० च० ५१, ११, २)। २. उक्त, कथित; (भ०) ३. उठाये हुए; (जस०१,११,४)।

उग्गिन्न—वि० उक्त, कथित; (भ०)।

उग्गिल—क्रि० (सं० उद्+गॄ>प्रा० उग्गिल) १. कहना, बोलना, २. डकार करना, ३. उलटी करना ४. उठाना। —इ (सं० उद्गिलति) उगालना, तुल० म० उगाळा; (भ०)। उग्गिलंत-कृ० उगलता हुआ; (सं० रा०)।

उग्गीय—वि० (सं० उद्गीत) उच्च स्वर से गाया हुआ; (दे० ना० मा० १, १६३)।

उग्गीरिय—वि० (सं० उद्गीर्ण>प्रा० उग्गिण्ण, उग्गिन्न, उग्गीरिअ) १. उक्त, कथित २. उठाया हुआ, ऊपर किया हुआ; (प० च० ४, १३, ४)।

उग्गीव—वि० (सं० उद्ग्रीव>प्रा० उग्गीव) उत्कण्ठित, उत्सुक; (ण० ७, २, २)।

उग्गुलुंछिआ—स्त्री० (दे०) भावोद्रेक; (दे० ना० मा० १, ११८)।

√उग्गोव—(सं० उद्+गोपय्>प्रा० उग्गोव) प्रकट करना। —इ सक० "पंचवीस भावण उग्गोवइ" —पच्चीस भावनाओं का उद्गोपन करता है; (सुदं० ११, ४, १५)।

उग्घटि, उग्घट्टी—स्त्री० (दे०) अवतंस, शिरो-भूषण; (दे० ना० मा० १, ६०)।

उग्घवियय—वि० (प्रा० अग्घवियय) पूर्ण; (उग्घव हे० प्रा० व्या० ४, १६६; अग्घव हे० प्रा० व्या० ४, ६६)।

उग्घाअ—पुं० (दे०) १. समूह, २. विषमोन्नत प्रदेश; (दे० ना० मा० १, १२६)।

√उग्घाड—(सं० उत्+घाटय्>प्रा० उग्घाड) खोलना, प्रकट करना, बाहर करना। उग्घाडइ-सक० (सुदं० ४, १०, ६)। तुल० म० गु० उघाड। उग्घाडिउ-क्रि० भू० का० उघाड़ा; (व० २, १३, ८)। –डेवि पू० का० क्रि० (क० १०, १३, ८)।

उग्घाडणु—पुं० (सं० उद्घाटन) १. खोलना, उघाड़ना, २. प्रकट करना >प्रकाशित करना; (सि० १, ३७)।

उग्घाडिय—वि० (सं० उद्घाटित>प्रा० उग्घडिअ) खुला हुआ, उघडा हुआ; (ण० २, १० १०)।

√उग्घोस—(सं० उद्+घोषय्>प्रा० उग्घोस) घोषणा करना, ढिंढोरा पीटना। –इ सक० (सं० उद्घोषयति) (भ०)।

उग्घोसिय—वि० (सं० उद्घोषित) घोषित; (भ०)।

उघाडे—वि० (सं० उद्घाटय्>प्रा० उग्घाड) खुला हुआ, अनाच्छादित। आघूघाडे; (रा० १७)।

उचरु—पुं० (सं० प्रा० उच्चार) उच्चारण; (सि० १, ३६)।

√उचल—अक० (सं० उत्+चल्, सं० उच्चलति, प्रा० उच्चल) चला जाना, सरकना; (उ० व्य० प्र० ५२-१४)।

उचाअ—क्रि० (सं० उच्चायते) ऊँचा करना, 'टोप उचाअ—स्तूपकमुच्चायते;' (उ० व्य० प्र०, ४६-२५)।

उचिअ—वि० (सं० उचित>प्रा० उचिय, उच्चिय) योग्य; (प्रा० पैं० २, १२६)।

उच्चंत—व० कृ० (सं० उच्च+शतृ) ऊँचा करके; (जंबू० ७, ६, १५)।

उच्चंपिअ—वि० (दे०) दीर्घ, आयत; (दे० ना० मा० १, ११६)।

उच्च—वि० (सं० प्रा० उच्च) १, ऊँचा, २. उत्तम, उत्कृष्ट; (भ०)। ३. न० नाभि-तल; (दे० ना० मा० १, ८६)।

—उ वि० ऊँचा, बड़ा (प्रा० पैं० १, १७४)।

उच्चत्तण—न० (सं० उच्चत्व>प्रा० उच्चत्त) ऊँचाई; (जंबू० ११, १०, ११)।

उच्चत्तवरत्त—न० (दे०) दोनों तरह का स्थूल भाग; २. अनियमित भ्रमण; (दे० ना० मा० १, १३६)।

उच्चत्थ—वि० (दे०) दृढ़; (दे० ना० मा० १, ९७)।

उच्चप्प—वि० (दे०) आरूढ़, ऊपर बैठा हुआ; (दे० ना० मा० १, १००)।

उच्चय—पुं० (सं० अवचय) इकट्ठा करना, एकत्रीकरण; (दे० ना० मा० २, ५६)।

√उच्चर—(सं० उत्+चर्> प्रा० उच्चर) कहना, बोलना। —हिं सक० उच्चारण करते हैं; (सं० रा०)। उच्च-रेवि–पू० का० क्रि० (जंबू० ६, १७, ४)।

उच्चरिय—वि० (सं० उच्चारित>प्रा० उच्चारिअ) कथित, उच्चारण किया हुआ; (जस० १, २७, ६)।

√उच्चल—(सं० उत्+चल्) उछ-लना। —इ अक०, व० (सं० उच्च-लति) ऊपर उठाना, उचलना, तुल० म० उचलणें (भ०) उच्चलंत–व० कृ० (सं० उत्+चल्+शतृ) (जंबू० ४, २१, ११)।

उच्चलिय—वि० (सं० उच्चलित>प्रा० उच्चलिय) १. चलित, गत; (भ०)। २. समीप में आया हुआ, ३. गया हुआ; (प० च० ६, १३, २०)।

उच्चल्लण—पुं० (सं० उत्+शल्> प्रा० उच्छल) उछलना; (सुदं० ३, ११, १२)।

उच्चाअ—(सं० उच्चय्) उठाना। उच्चाइउ–क्रि० भू० का० उठा लिया, उठाया; (प० च० २, ११, २; प० च० १२, १०, ६)। उच्चाइयउ–भू० का० (प्रा० उच्चाइय=उठाया हुआ) ऊपर उठाया; (ण० २, १०, ६)। उच्चाइव–भू० का० ऊँचा उठा दिया; (महा०)। उच्चाइवि–पू० का० क्रि० ऊँचाकर; (व० २, १०, ६); उठाकर; (जंबू० ६, १४, ७)। उच्चाएँवि–पू० का० क्रि० (सं० उद्+√चि=एकत्र करना+णिच्) उठाकर; (क० ५, ७, ५)। उच्चायिउ–क्रि०, भू० का० (सं० उद्+चायित) उठा लिया; "उच्चायिउ तें सो णियक-रेण," (क० २, १, ७)।

उच्चाइय—वि० (सं० उच्चैः कृतः, उच्चायित) उत्थापित, उठाया हुआ; (भ०)। २. ले जाया गया; (प० च० २५, ११, २)।

उच्चाड—वि० (दे०) विपुल, विशाल; (दे० ना० मा० १, ९७)।

उच्चाडण—न० (सं० उच्चाटन>प्रा० उच्चाडण) उखाड़ा जाना; (हे० ४३८, ३)।

√उच्चार—(सं० उत्+चारय>प्रा० उच्चार) बोलना, उच्चारण करना। —इ सक० (सं० उच्चारयति। (भ०)। वि० (दे०) विमल, स्वच्छ; (दे० ना० मा० १, ९७)।

उच्चारिअ—वि० (दे०) गृहीत; (दे०-

ना० मा० १, ११४)।

उच्चारिय—वि० (सं० उच्चारित) कथित; (जंबू० १, १७, ८)।

√उच्चाल—(सं० उत्+चालय्>प्रा० उच्चाल) १. ऊँचा फेंकना, २. तोड़-फोड़ डालना –इ सक० "वहुमंडव मडउ-ल्ल उचालइ" –बहुत से मण्डपों तथा चबूतरों को तोड़-फोड़ डालता था; (ण० ३, १५, ११)। उच्चालिउ—क्रि० भू० का० (सं० उत्+चालित) ऊपर उठाया, "इय भणिवि विमाणुच्चालियउ"–ऐसा कहकर जब उसने विमान को ऊपर उठाया; (जंबू० ५, ४, १०)।

उच्चासण—पुं० (सं० उच्चासन) बैठने के लिए ऊँचा आसन; (जस० १, ६, २४)।

उच्चिट्ठ—वि० (सं० उच्छिष्ट>प्रा० उच्छिट्ठ) जूठा उच्छिष्ट; (प० च० ३३, ११, ५; जस० ३, ३५, ८)।

√उच्चिण—(सं० उत्+चि> प्रा० उच्चिण) पुष्प आदि तोड़ कर एकत्रित करना। –इ सक० (सं० उच्चिनोति प्रा० उच्चिणइ) (भ०)। उच्चिणंति (बहु व०) (जंबू० ८, १५, १२)।

उच्चुंच—वि० (दे०) अभिमानी; (दे० ना० मा० १, ९९)।

उच्चुप्पिअ—वि० (दे०) आरूढ़, ऊपर चढ़ा हुआ; (दे० ना० मा० १, १००)।

उच्चुलउलिअ—न० (दे०) कुतूहल से शीघ्र-शीघ्र जाना; (दे० ना० मा० १, १२१)।

उच्चुल्ल—वि० (दे०) १. उद्विग्न; २. आरूढ़, ३. डरा हुआ; (दे० ना० मा० १, १२७)।

उच्चेडिय—कृ० भू० का० (सं० उच्चा-टित) हटाकर, उचाट कर, "उच्चेडिय-फेडिय-मुहवडाइँ" जिनके मुखपटों को उचाट कर फेर दिया गया था; (जंबू० ६, ४, ६)।

उच्चोल—पुं० (दे०) गोद, "उच्चोलिहि पुणु वइसारियउ," (रि० १, १०)।

उच्चोलि—स्त्री० (दे०) स्त्री के कटि-वस्त्र की नाडी, (प० च० ६, ३, १)।

उच्चोलिउ—पुं० (दे०)उपानह, जूते 'जो परपयउच्चोलिउ वहइ,' जो दूसरों के जूते भी पहन लेता था; (जस० २, ६, १६)।

उच्छंग—पुं० (सं० उत्सङ्ग>प्रा० उच्छग) क्रोड, गोद; (सुदं० ६, १८, ४)। उच्छङ्गि—स्त्री० गोद; (हे० ३३६, १)। उच्छंग स्त्री० गोद 'तो सा मइं प्रिय-उच्छंगि लेवि'; (विला०)।

उच्छंगिअ—वि० (दे०) आगे किया हुआ, आगे रखा हुआ; (दे० ना० मा० १, १०७)।

उचछुरु—पुं० (दे०) झड़प से की हुई चोरी; (दे० ना० मा० १, १०१)।

उच्छु—पुं० (सं० इक्षु>प्रा० इक्खु) ईख; (प० च० २६, १७, २)। २. पुं० (दे०) आँत का आवरण; (दे० ना० मा० १, ८५)।

उच्छअ—पुं० (सं० उत्सव>प्रा० उच्छअ) मंगल कार्य, मंगल समय; (जस० १, २६, ९)। उच्छहु; (सि० १, ४७)।

उच्छट्ट—पुं० (दे०) चोर, डाकू; (दे० ना० मा० १, १०१)।

उच्छडिअ—वि० (दे०) चुराई हुई चीज, चोरी का माल; (दे० ना० मा० १, ११२)।

उच्छण्ण—वि० (सं० उत्सन्न>प्रा० उच्छन्न) छिन्न, खण्डित, नष्ट; (भ०)। वि० (सं० आच्छन्न) १. ढका हुआ, २. तिरोहित; (व० २, १२. ७)।

√उच्छल—(सं० उत्+शल्> प्रा० उच्छल, उल्छल) उछलना, ऊँचा जाना। उच्छलंत—कृ० (सं० उत्+शल् +शतृ) उछल-कूद करते हुए; (व० २; ३, ८)। उच्छरिउ—क्रि० 'एहु संजमु उच्छरिउ,' —यह संयम उछल रहा है; (म० २, ३०, २)। उच्छलिअ–भू० का० (सं० उत्पन्न) उत्पन्न हुई; (की० ४, २५४)। उच्छल्लिय–अक०, भू० का० उछल उठे, "तहो बलेण तिण्णि वि उच्छल्लिय," (म० २, ३७, १)। उच्छेवि –पू० का० क्रि० तुल० उसळणें, गु० उछलवुं; (प० च० १७, ६, १०)। उछलि–भू० का०, निकल रहा था "उछलि डमरु डक्कार वर" –डमरु से डक्कार शब्द निकल रहा था, (की० ४, २१२)।

उच्छलण—न० (सं० उच्छलन) उछलना; (दे० ना० मा० १, ११८)।

उच्छलिअ—वि० (सं० उच्छलित>प्रा० उच्छलिअ) उछला हुआ, ऊँचा गया हुआ; (ण० २, ६, ७) उ छलिय-वि० उछला हुआ, ऊँचा गया हुआ; (प० च० १३, ५, ७)।

उच्छलिय—वि० (सं० उच्छलित>प्रा० उच्छलिअ=उछला हुआ, ऊँचा गया हुआ) झिलमिल, "उच्छल्लिय सिय-छत्त-समाणी, सुद्ध सिद्ध संदोहें माणी," झिलमिल-झिलमिल करती हुई श्वेत छत्र के समान शुद्ध सिद्ध-समूहों से युक्त सिद्ध शिला है; (व० १०, ३१, ११)। उच्छल्लिया–वि० स्त्री० (सं० उच्छलिता) उछली हुई (सुदं० ११, १८, १८)।

उच्छल्ल—वि० (सं० उच्छलत्) उछलने वाला; (भ०)।

उच्छलिअ—वि० (दे०) जिसकी छाल काटी गई हो वह; (भ०)।

उच्छव—पुं० (सं० उत्सव> प्रा० उच्छव, उच्छअ) उत्सव; तुल० म० उच्छव, उच्छाव; गु० ओछव; (प० च० १६, ११, ७; जस० १, ४, ६; की० २, ३१३; संधि० १७, २, ८)। उच्छव्व; (प्रा० पैं० १, ११६)।

उच्छविल—न० (दे०) शय्या, बिछौना; (दे० ना० मा० १, १०३)।

√उच्छह—(सं० उत्+सह्> प्रा० उच्छह) उत्साहित होना। —इ अक० (सं० उत्सहते) (प० च० १६, ३, १०)। उच्छहंत–व० कृ०; (भ०)।

उच्छहिय—वि० (सं० उत्साहित>प्रा० उच्छहिय) उत्साह-युक्त; (जंबू० ७, ६, १६)।

उच्छाडिय—वि० (सं० अवच्छादित) ढका हुआ; (भ०)।

उच्छाह—पुं० (सं० उत्साह>प्रा० उच्छाह) १. उत्साह; तुल० म० उच्छाह; (ण० ५, १०, १; की० ३, ५७),

२. सूत का डोरा; (दे० ना० मा० १, ९२)। ३. गीत-प्रकार विशेष, उत्साह नामक छंद में गाया जाने वाला गीत; (प० च० ३१, १६, ८)। —मण वि० (सं० उत्साह+मनस्) उत्साहित मन; (जंबू० ३, ५, ३)।

उच्छाहिय—वि० (सं० उत्साहित>प्रा० उच्छहिय) उत्साह-युक्त; (जंबू० ५, ८, ३८)।

उच्छिण्ण—वि० (सं० उच्छिन्न>प्रा० उच्छिण्ण) उन्मूलित; मूलोच्छेद किया हुआ, नष्ट किया हुआ; (प० च० १७, ५, ७)।

उच्छिल्ल—न० (दे०) छिद्र, विवर; (दे० ना० मा० १, ९५)।

उच्छुंडिअ—वि० (दे०) १. वाण आदि से, २. अपहृत; (दे० ना० मा० १, १३५)।

उच्छु—पुं० १. (सं० इक्षु>प्रा० इक्खु) ईख, ऊख; तुल० म० ऊंस; (म० १ ५, २; ण० ६, १, ४)। पुं० (दे०) वायु; (दे० ना० मा० १, ८५)। —वण (सं० इक्षुवन) गन्ने के खेत; (जस० १, ३, १०)। २. पुं० (सं० इषु>प्रा० इसु) वाण; (जंबू० ३, १०, १४)।

उच्छुअ—न० (दे०) डरते-डरते की हुई चोरी; (दे० ना० मा० १, ९५)।

उच्छुअरण—न० (दे०) ईख का खेत; (दे० ना० मा० १, ११७)।

उच्छुआर—वि० (दे०) ढका हुआ (दे० ना० मा० १, ११५)।

उच्छुच्छु—वि० (दे०) अभिमानी; (दे० ना० मा० १, ९९)।

उच्छुरण—न० (दे०) १. ईख का खेत; २. ईख; (दे० १, ११७)।

उच्छुल्ल—पुं० (दे०) १. अनुवाद; २. खेद, उद्वेग; (दे० ना० मा० १, १३१)।

उच्छेवण—न० (दे०) घृत; (दे० ना० मा० १, ११६)।

उच्छेह—पुं० (सं० उत्सेध) ऊँचाई; (दे० ना० मा० १, १३०; जंबू० ३, १, १२)।

उच्छित्त—भू० का० कृ० (उत्क्षिप्त) फेंका हुआ, बिखेरा हुआ, उछाला हुआ; डाला हुआ; (सं० रा०)।

उजडल—क्रि० (दे०) उजड़ी, ध्वस्त हुई; (की० ३, ४०)।

उजाअ—क्रि० (दे०) बहाओ; (हि० का०, च० ३८)।

उजाल—पुं० (सं० औज्ज्वल्य) उज्ज्वलता, उजालापन। उजालु; (भ० २५)।

उजु—वि० (सं० ऋजु>प्रा० उज्जु) सरल, सीधा, निष्कपट; (च० ३२)।

उजुअ—क्रि० (सं०√उज्ज आर्जवे, सं० उज्जति) सीधा करना; "उजुअ"—उज्ज (ज्ज) ति। उजु (ज्ज) आर्ज्जवे," (उ० व्य० प्र०, ५१-२६)।

उजुआर—क्रि० (सं० उज्जयति) सीधा करना, 'सिलु उजुआर'— सेल्लमुज्ज (ज्ज) यति;" (उ० व्य० प्र० ५१-२६)।

उजुवालिया—स्त्री० (सं० ऋजुवालिका) नदी-विशेष; (संवि० २, १९, ८)।

उजोली—स्त्री० (सं० औज्ज्वल्य>प्रा०

उज्जल्ल) प्रकाश; मगही अंजोर; (भूसुकुपा, चर्यापद)।

उज्जंगल—न० (दे०) १. बलात्कार, जबरदस्ती; २. वि० दीर्घ; (दे० ना० मा० १, १३५)।

उज्ज—पुं० रावणमंत्री; (प० च० ८, १६)।

उज्जअ—वि० (सं० उद्यत) तैयार, तत्पर, प्रस्तुत; (क० ७, १२, १)।

उज्जउ—पुं० (सं० उद्यापनम्) धर्मोद्योग, व्रतादि का पारण; 'रइवेयए उज्जउ कियउ ताव' —तब रतिवेगा ने धर्मोद्योग (व्रतसाधन) किया; (क० ७, १२, १)।

उज्जगउ—पुं० (दे०) जागरण; (सं० रा०)।

उज्जगुज्ज—वि० (दे०) स्वच्छ, निर्मल; (दे० ना० मा० १, ११३)।

उज्जड—वि० (दे०) ऊजाड़; (सुदं० २, १४, ७; दे० ना० मा० १/९६)।

उज्जण—पुं० (सं० उद्यापन) किसी व्रत की समाप्ति पर किया जाने वाला कृत्य, जैसे यज्ञ, गोदान इत्यादि; (सि० २, ३३)।

√उज्जम—(सं० उद्+यम्) उद्यम करना।—मेइ—अक० (क० १०, १७, १)।

उज्जम—पुं० (सं० उद्यम) उद्योग, प्रयत्न; (भ०; संधि १०, ४, ११)।

उज्जमण—न० (सं० उद्यापन) व्रत-समाप्ति-कार्य; (भ०)।

उज्जमि—वि० (सं० उद्यमिन्) परिश्रमी, अध्यवसायी; (जस० ३, ३१, ५)।

उज्जमित—वि० (सं० उद्यमित) प्रयत्नशील; (भ०)।

उज्जय—वि० (सं० उद्यत) उद्योगी, प्रयत्नशील; (भ०)।

उज्जर—वि० (सं० उज्ज्वल>प्रा० निर्मल, स्वच्छ; प्रा० पैं० १, १८५)।

उज्जल—वि० (सं० उज्ज्वल>प्रा० उज्जल) निर्मल, स्वच्छ; तुल० म० उजळ; (ण० १, १०, ११; प्रा० पैं० १, १८५; जंबू० १, १४, ३)।

उज्जलिय—वि० (सं० उज्ज्वलित> प्रा० उज्जलिअ) १. उद्दीप्त, प्रकाशित; २. ऊँची ज्वालाओं से युक्त; (प० च० १४, ६, ६)।

उज्जल्ला—स्त्री० (दे०) बलात्कार, जबरदस्ती; (दे० ना० मा० १, ९७)।

उज्ज्वण—न० (सं० उद्यापन>प्रा० उज्जावण,उज्जवण) व्रत का समाप्ति-कार्य; तुल० म० उजवणें; (ण० ९, २१, १९)।

उज्जाडिय—वि० (दे०) उजाड़ किया हुआ; (भ०)।

उज्जाण—न० (सं० उद्यान>प्रा० उज्जाण) उद्यान, बगीचा, उपवन; (ण० १, ८, ११)। उज्जाणु; (महा० ६८, २; जस० ४, १७, १५)।

उज्जाणिअ—वि० (दे०) नीचा किया हुआ; (दे० ना० मा० १, ११३)।

√उज्जाल—(सं० उत्+ ज्वालय्) उजाला करना, जलाना। —इ सक० (जंबू० ८, ८, ४)।

उज्जालिय—वि० (सं० उज्ज्वलित)

जलाया हुआ, सुलगाया हुआ; (भ०)।

उज्जित—पुं० (सं० उज्जयन्तु > प्रा० उज्जयंत) गिरनार पर्वत; (ण० ७, १, २)।

उज्जीर—पुं० (अ० वजीर) अमात्य, मंत्री, सचिव; (की० ३, ६)।

उज्जीरिअ—वि० (दे०) अपमानित, तिरस्कृत; (दे० ना० मा० १, ११२)।

उज्जीविय—वि० (सं० उज्जीवित > प्रा० उज्जीविय) पुनर्जीवित, जिलाया हुआ; (प० चं० १६, १५, २)।

उज्जुअ—वि० (सं० ऋजु+क > प्रा० उज्जु) सरल, निष्कपट, सीधा; तुल० म० उजू; (भ०)। उज्जुय वि० (सं० ऋजु+क) सीधे; (जस० ४, १०, ११)।

उज्जुयत्त-पुं० (सं० ऋजुकत्व) सीधापन (जस० ३, ३५, ५)। उज्जुव-वि० (सं० ऋजु+क) सीधी, उज्जुवहिं णासाहिं, (जस० १, १७, २५)।

उज्जुय—वि० (सं० उद्+युक्त) १. संयुक्त, २. सहित; (ण० ७, १४, १)।

उज्जुरिअ—वि० (दे०) १. क्षीण, नष्ट; २. शुष्क; (दे० ना० मा० १, ११२)।

उज्जुव—वि० (सं० ऋजु+क > प्रा० उज्जु) "सीधी; परलोयकज्जें उज्जुवगईहिं," –परलोक कार्य में सीधी गति से चलने वाले; (क० ३, १, ९)। —वई स्त्री० (सं० ऋजुमति) दाशरथी भरत की प्रणयिनी; स्त्री–नाम–विशेष; (प० च० ८०, ५२)।

उज्जुवेइ—सक० (सं० उद्+यापय) प्राप्त करना, "सोलहमउ तासु जु उज्जुवेइ" —उपवासों का उद्यापन करने वाली को सोलहवाँ स्वर्ग प्राप्त होता है; (व० १०, १६, ८)।

उज्जेणय—स्त्री० (सं० उज्जयनी–यिनी, प्रा० उज्जेणी, उज्जइणी) उज्जयिनी, नगर–विशेष; (प० चं० २५, १७, २)।

उज्जेणि—स्त्री० (सं० उज्जयिनी > प्रा० उज्जइणी, उज्जेणी) नगरी,–विशेष; (ण० ७, ३, ८; जस० १, २१, १२; हे० ४४२, १)।

√उज्जोअ—(सं० उद्+द्योतय् > प्रा० उज्जोव, उज्जोअ) प्रकाश करना—इ सक० (सं० उद्योतयति > प्रा० उज्जोएइ) उद्द्योत करना; (भ०)। उज्जोइयाउ –भू० का०, उद्योतमान करती थी; (सुअंध० २, ४, ४)। उज्जोवंतिय–कृ० प्रकाशित करते हुए; (प० च० ७, ३, ८)।

उज्जोइअ—वि० (सं० उद्योतित > प्रा० उज्जोइअ) प्रकाशित, (जंबू० १, १५, ६)। उज्जोइय; (प० च० १५, १४, ५)।

उज्जोत्तिय—क्रि० भू० का० (सं० उद् +योक्तितः) जोत उतार दिये गए, "संदण उज्जोत्तिय जोत्तारहिं" —योक्ताओं ने रथों के जोत उतार दिये; (जंबू० ५, १०, २०)। वि० घोड़े आदि पर बिना साज के होना, "नव मेल्लिय उज्जोत्तिय तुरङ्ग;" (प० च० ५६, १५, ३)।

उज्जोमिआ—स्त्री० (दे०) रश्मि, किरण; (दे० ना० मा० १, ११५)।

उज्जोय—पुं० (सं० उद्योत>प्रा० उज्जोअ) प्रकाश; उजाला; (ण० ६, १, ६; भ०)। उज्जोयंत–कृ० (सं० उद्योतय्+शतृ) (जंबू० ३, १३, ३)।

उज्जोव—पुं० (सं० उद्योत>प्रा० उज्जोअ) प्रकाश; (प० च० ३५, २, ८)।

उज्जोविय—वि० (सं० उद्योतित> प्रा० उज्जोइय) प्रकाशित; (व० ५, १८, ३)।

उज्झ—पुं० (सं० अयोध्या) अयोध्या नगर; (प० च० २३, १, १०)।

उज्झमण—न० (दे०) पलायन, भागना; (दे० ना० मा० १, १०३)।

उज्झर—पुं० (सं० उद्+क्षर्>प्रा० उज्झर) पर्वत से गिरने वाला जल-प्रवाह, निर्झर; (प० च० १४, १०, ८)।

उज्झरिअ—वि० (दे०) टेढ़ी दृष्टि से देखा हुआ, २- विक्षिप्त; ३- फेंका हुआ; ४- परित्यक्त; (दे० ना० मा० १, १३३)।

उज्झस—पुं० (दे०) उद्यम, उद्योग, प्रयत्न; (दे० ना० मा० १, ९५)।

उज्झा—पुं० १- (सं० उपाध्याय>प्रा० उज्झाय) ओझा, तुल० गु० ओझा; (भ०)। २- स्त्री० (सं० अयोध्या) सूर्य-वंशी राजाओं की राजधानी; (जस०)। –हिउ पुं० (सं० अयोध्या+अधिप) अयोध्या के राजा; (जस० २, १०, २)।

उज्झाय—पुं० (सं० उपाध्याय>प्रा० उज्झाय) ओझा, विद्यादाता गुरु, (ण० १, २, ८)।

उज्झिंखिअ—न० (दे०) १- लोकापवाद, २- वि० निन्दनीय; ३- कथनीय; (दे० ना० मा० ३, ५५)।

उज्झिअ—पुं० वानर योधा; (प० च० ५७, १२)।

उज्झिय—वि० (सं० उज्झित>प्रा० उज्झिय) परित्यक्त, विमुक्त; (ण० ७, ११, १; प० च० ३, १०, ६)।

उट्ट—पुं० स्त्री० (सं० उष्ट्र>प्रा० उट्ट) उष्ट्र, ऊँट; (प० च० २५, १०, ८)।

उट्टण—पुं० छंदों की उद्वर्त्तनी या उट्टवणिका, "वुलउ छंद उट्टवण अत्थ विणु दुव्वल कहिअउ" उट्टवणिका से रहित (अर्थात् जहाँ मनमाने गणों का प्रयोग कर पट्कल गण के स्थान पर पंचकल या त्रिकल का प्रयोग कर दिया गया हो; (प्रा० पैं० १, ११६)।

√**उट्टिय**—क्रि० भू० का० (सं० आ+वृत्>प्रा० आवट्ट, आवत्त) ओटे, चरखी द्वारा कपास से बिनौले अलग किये; "चीहणु वुणणहँ जाइ वढ, विणु उट्टिय इं कपासि," (पाहु०)।

उट्ठ—पुं० (सं० ओष्ठ) होठ, अधर; तुल० गु० म० ओठ; (भ०)।—उड पुं० सं० ओष्ठ+पुट (क० २, १४, ६)। –चम्म पुं० (सं० ओष्ठ+चर्म) अधर का चर्म; (जंबू० ६, १, १०)।

√**उट्ठ**—(सं० उत्+स्था>प्रा० उट्ठ; उट्ठाव) उठना, खड़ा होना, उठाना। —इ अक० (सं० उत्तिष्ठति) (भ०)। उट्ठंत–कृ० (उत्+स्था+शतृ) उठते हुए

(ण० ८, ३, ६) तुल० म० उठणें–विअ वि० (सं० उत्थापित>प्रा० उट्ठाविअ) उठाया हुआ, खड़ा किया हुआ; (जंबू० १०, १३, ६) उट्ठि–पू० का० क्रि० (कौ० ३, ५)। उट्ठिअउ–भू० का० (सं० उत्थित:) उठा; (हे० ४१५, १)। उट्ठिउं–कृ० (सं० उत्+स्था+तुमुन्= उत्थातुम) उठने में "उट्ठिउं न पारए तरट्टि खोट्टिया"–धक्का दिये जाने पर राजमार्ग से उठने में भी समर्थ न हो सकी; (जंबू० ४, २१, १२)। उट्ठिउ–भू० का० (व० ३, २५, १३)। उट्ठिय–भू० का० उठी; (सं० रा०); उठ खड़ी हुई; (जस० २, २३, ४)। उट्ठेहि–क्रि० आ०, उठो "वसुभूइ भणइ उट्ठेहि मित्त, (विला०)। उट्ठेवि–पू० का० क्रि० उठकर; (प० च० ६, ६, ७)। उठाइउ–भू० का० (सं० उत्थापित) उठाया, तुल० गु० उठाव्युं, (संधि १२, ६, १६)।

उट्ठद्ध, उट्ठद्धय—वि० (दे०) नियन्त्रित; (प० च० २५, २०, ७)।

उट्ठद्ध—वि० (सं० अवष्टब्ध आवृत, आवेष्टित) परिपूर्ण, "णव-विवरहिं जुत्तु असुइ सुरालि–णिबद्धु। किम कुन-संपुन्नु खइ मलेण उट्ठद्धु ॥" अर्थात् 'यह काय नौ–छिद्रों से युक्त, अपवित्र, शिरा-समूह से भरा हुआ, विनश्वर तथा मल से परिपूर्ण रहती है;' (व० ६, १४, १२)।

उट्ठवण—न० (सं० उत्थापन) ऊँचा करना, उठाना; (दे० ना० मा० १, ८२)।

उट्ठब्भइ—क्रि०, व० ढकना; "जइ उट्ठब्भइ तो कुहइ अह डज्झइ तो छारु" यदि इसे ढका जाय तो दुर्गन्ध आने लगे, यदि जलाया जाय तो राख हो जाए; (हे० ३६५ ३)

उड्डंग—वि० (सं० ऊर्ध्वाङ्ग) उन्नत, "उड्डंग–णिविट्ठ मणो सयावि, जहिं सोहहिं पवर सुहावियावि," –जहाँ उन्नत एवं मन को निरन्तर सुन्दर लगने वाली सुशीतल जलवाली वापिकाएँ सुशोभित रहती हैं; (व० ६, २, ६)।

उट्ठावियअ—वि० (सं० उत्थापित> प्रा० उट्ठाविअ) उठाया हुआ, उठ खड़ा हुआ; (जस० २, ६, १७)।

उट्ठासउ—वि० दुष्टाशय, "कहिं सो सरोसु णारियण–इट्ठु युज्जउ उट्ठासउ रिउ तिविट्ठु" –उसने रोषपूर्वक पूछा –"नारी जनों के लिए इष्ट, दुर्जय दुष्टाशय (वह) शत्रु त्रिपृष्ठ कहाँ है? (व० ५, २१, ८)।

उट्ठिअ – वि० (सं० उत्थित>प्रा० उट्ठिय) खड़ा हुआ; (ण० १, ६, २)।

उट्ठिय्–वि० (सं० उत्थित) (जस० ३, ३, १४)।

उडद—पुं० (प्रा० उडिद) माप, उडद, धान्य विशेष; तुल० गु० अडद; (संधि० १६, ५, ११)।

उडास—क्रि० (सं० उद्दासति) देना, "पा (खा) ट डास, उडास'–प (ख) ट्वां दासति, उद्दासति। दासृ दाने।" (उ० व्य० प्र० ४६–२७)।

उडिउ—पुं० (दे०, प्रा० उडिद) उरद, माप, धान्य-विशेष; (दे० ना० मा० १, ९८)।

उडिद—पुं० (दे०) उडिद, माष, धान्य-विशेष; (दे० ना० मा० १, ९८)।

उडु—न० (सं० प्रा० उडु) नक्षत्र; (जस० २, २, ११)। –यण पुं० (सं० उडुगण) नक्षत्र-समूह; (भ०)। –वइ पुं० (सं० उडुपति) नक्षत्रराट्, चन्द्र; (जस० १, १७, २६)। —हिअ न० (दे०) विवाहित स्त्री का कोप, २. वि० उच्छिष्ट, जूठा; (दे० १, १३७)।

√उड्ड—(सं० उद्+डय्) उड़ना। —इ क्रि० व० (प० च० १, ५, ४)।

उड्डंत–कृ० (सं० उत्+डी+ शतृ) (जंबू० ६, ७, २)। उड्डन्त–भू० का० उड़ जाते थे (की० ४, १९७)। उड्डि–पू० का० क्रि०—उड़कर (की० ४, १३०)। उड्डिज्जइ— उड़ने लगा, वायसेण, उड्डिज्जइ दीणें'— वह दुःखी कौआ उड़ने लगा (जंबू० ९, ५, ८)।

उड्डियाइं—क्रि० (सं० उद्+डी>प्रा० उड्डी) उड़ना; "उड्डियाइं णाणाविहचित्तइं" जहाँ नाना प्रकार के घन उड़ रहे हैं; (ण० ३, १२, ६)। उड्डेंवि–पू०-का० क्रि० उड़कर, (प० च० १०, ९, ८)।

उड्ड—वि० (दे०) कुँआ आदि खोदने वाला; खनक; (दे० ना० मा० १, ८५)।

उड्डण—पुं० (दे०) बैल, सांड़। वि० दीर्घ; (दे० ना० मा० १, १२३)।

उड्डणसीला—वि० (सं० उड्डनशील) उड़नशील, "उड्डणसीला तंबोललग्ग, जहिं हरि सज्जंता कहि मि भग्ग" –जहाँ उड़नशील हरित शुक ताम्बूल की लता से चिपटकर अन्यत्र भाग जाते हैं; (जस० ३, १५, ११)।

उड्डमर—पुं० (सं० उग्र भय) अत्यधिक भय; "डिव–डमर उड्डमर-मारि; (प्रा० गु० १२, ६)।

उड्डस—पुं० (दे०) उड़िस, खटमल; (दे० ना० मा० १, ९६)।

उड्डहण—पुं०(दे०) चोर, डाकू; (दे०-ना० मा० १, ९१)।

उड्डाण—न० (सं० उड्डयन) उड़ान; (सुदं० २, ६, ६)। पुं० (दे०) १-प्रतिशब्द, प्रतिध्वनि; २- पक्षी-विशेष; ३. विष्ठा, पुरीष; ४- अभिलाषा, ५- वि० अभिमानी; (दे० ना० मा० १, १२८)।

√उड्डाव—(सं० उद्+डायय्>प्रा० उड्डाव) उड़ाना। –इ सक० (सं० उड्डायति), तुल० गु० उडाना, म० उडवणें; (ण० ३, १५, ८)।

उड्डाविय—वि० (सं० उड्डायित> प्रा० उड्डाविअ) उड़ाया हुआ; (ण० ३, ९, १४; जस० १, २१, ४)।

उड्डास—पुं० (दे०) उड़ास, संताप, परिताप; (दे० ना० मा० १, ९९)।

उड्डिआहरण—न० (दे०) छुरी पर रक्खे हुए फूल को पाँव की दो उँगलियों से लेते हुए चलना; (दे० ना० मा० १, १२१)।

उड्डिय—वि० (सं० उड्डित) ऊपर किया हुआ, ऊर्ध्वीकृत; (जस० २, ३३, ६)।

उड्डिर—वि० (सं० उद्+डी>प्रा० उड्डी+इर कर्तृत्व बोधक प्र०) उड़नशील; (जस० २, २७, ८)।

उड्ढं—न० (सं० ऊर्ध्वम्>प्रा० उड्ढ) ऊपर, ऊँचा; (जस० २, ३२, ७)।

उड्ढण—पुं०(दे०)उत्तरीय, ऊपर पहिनने का कपड़ा, तु० गु० ओढणु, ओढणी। (प० च० १४, ३, ३)।

उड्ढल, उड्ढल्ल—पुं० (दे०) उल्लास; (दे० ना० मा० १, ९१)।

उड्ढिय—वि० (सं० उर्ध्वीकृत) ऊपर की ओर किया हुआ; (ण० २, १२; ५)।

उढक्किय—क्रि० (सं० उद्+ढौक) चल देती है; (प० च० १७, १३, ७)।

उढण—पुं० (दे०) १- उत्तरीय, ओढनी, ओढ्ढण। उढणु; (रा० २६)। २- परिधान; (प्रा० गु० २६, ५)।

उणंदी—वि० (सं० उन्निद्र) उनींदी, बहुत जागने के कारण अलसायी हुई; (सं० रा०)।

उण—क्रि० वि० (सं० पुनः) फिर, अनेकशः, पुनः; तुल० राज०, गु०, म० पण (की० २, ४३; प्रा० पैं० १, ७)। उणो; (प्रा० पैं० १, १२७)।

उणाइ—पुं० (सं० उणादि) उणादि, उण प्रत्यय से शुरू होने वाले शब्द; व्याकरण का एक प्रकरण; (प० च० १, ३, ६)।

उण्णइ—स्त्री० (सं० उन्नति>प्रा० उण्णइ) अभ्युदय, उन्नति; (क० १, १६, १०)। अध्यात्मपरक उक्ति— 'उण्णइ ण करइ कहों मुणियवग्गु'—कहिए कि मुनि-वचन किसकी उन्नति नहीं करते ? (व० ६, १९, ११)।

उण्णइय—वि० (सं० उन्नयित) उदित; (प० च० २, १४, ९)।

उण्णइवंत—वि० (सं० उन्नतिमत्) उन्नत; (जस० ४, २७, २३)।

उण्णम—वि० (दे०) समुन्नत, ऊँचा; (दे० ना० मा० १, ८८)।

उण्णय—स्त्री० (सं०उन्नति> प्रा० उण्णइ) उन्नति, अभ्युदय; (दे० सा० दो०)। वि० (सं० उन्नत>प्रा० उण्णय)। (ण० ३, ४, ८; जस० ४, ७, २०)। —कंधर वि० (सं० उन्नत+स्कन्ध) ऊँचे कन्धों वाले; (जस० ४, २७, १९)।

उण्णापिपीलिया—स्त्री० (सं० ऊर्णा+पिपीलिका) जन्तु-विशेष; (दे० ना० मा० ६, ४८)।

उण्णामय—वि० (सं० ऊर्णामय) ऊन से बना हुआ, "उण्णामय—कंकणबद्धकर" —हाथ में ऊन से बना हुआ कंकण बँधा है; (जंबू० २, १०, ५)।

उण्णामिय—वि० (सं० उन्नमित>प्रा० उण्णामिय) उन्नत, उन्नति किया हुआ, उत्कर्षित; (व० २, ७, १०)। —भाल (स० उन्नमित+भाल) उन्नत भाल; (व० २, ३, १९)।

उण्णालिय—वि० (दे०) १- कृश, दुर्बल; २- ऊँचा किया हुआ; (दे० ना० मा० १, १३६)।

उण्णाविय—वि० (सं० उन्नमित>प्रा० उण्णामिय), ऊपर किये हुए, ऊँचा किया हुआ, 'विण्णि वि उण्णाविय-करया,' (तुम लोग अपने दोनों हाथ ऊपर कर), (प० च० २, १४, ९)।

उण्णाह—पुं० (दे०) तीव्र प्रवाह, वाढ़; (जंबू० ६, १०, १)।
उण्ह—वि० (सं० उष्ण>प्रा० उण्ह) गरम; (ण० १, ५, ५)।
उण्हउ—वि० (सं० उष्णं) गर्म; (हे० ३४३, १)।
उण्हविअ—वि० (सं० ऊष्णापित) ऊष्णीकृत, गर्म किया हुआ; (प० च० २८, ३, ६); उण्हविय; (जंबू० ८, १३, ५)।
उण्हिआ—स्त्री० (दे०) कृसरा, तिल-चावल आदि की खिचड़ी; (दे० ना० मा० १, ८८)।
उण्हिया—स्त्री० (सं० उष्णिका) छन्द-विशेष; (सुदं० ८, २३, ११)। स्त्री० (दे०) कृशरा, खिचड़ी; (दे० ना० मा० १, ८८)।
उण्होदयभंड—पुं० (दे०) भ्रमर; (दे० ना० मा० १, १२०)।
उतए—क्रि० (सं० उत्तान>प्रा० उत्ताण) पिछले पैरों पर खड़े होकर मुँह ऊँचा कर लिया; (की० ४, ११६)।
उतरथि—क्रि० (सं० उत्+तॄ>प्रा० उत्तर) बाहर निकलना, ऊपर उठना (की० ४, ११६)।
उतिम्म—वि० (सं० प्रा० उत्तम) उत्तम, श्रेष्ठ; (संधि० ११, ४, ४)।
उतंग—वि०(सं० उत्तुङ्ग) ऊँचा; (सं० रा०)।
उत्तंपिअ—वि० (दे०) खिन्न, उद्विग्न; (दे० ना० मा० १, १०२)।
उत्तंस—पुं० (सं० अवतंस) शिरोभूषण; (दे० ना० मा० २, ५७)।
उत्त—वि० (सं० उक्त>प्रा० उत्त) कथित; कहा गया; (ण० ३, ११, १०)। पुं० (सं० पुत्र>प्रा० पुत्त, उत्त) पुत्र (वाणिउत्त); (भ०)।
उत्तट्ठिया—वि० स्त्री० (सं० उत्त्रस्ता) भयभीत, चकित डरी हुई, कांपती हुई; (सं० रा०)।
उत्तत्त—वि० (सं० उत्तप्त) देदीप्यमान; (क० ३, २, १०)।
उत्तद्ध—पुं० (सं० उत्तरार्ध) पिछला भाग, पीछे का आधा भाग; (प्रा० पैं० १, ५२)।
उत्त-पडुत्तियए—स्त्री० (सं० उक्त+प्र-उक्ति) उक्ति-प्रति-उक्ति, क्षणिक उत्तर, व्यंग्य उक्ति; (प० च० १२, ६, १०)।
उत्तपडुत्ती—स्त्री०(सं० उक्त+प्रत्युक्ति) अभिहित या कथित उत्तर; (ण० ३, ७, १०)।
उत्तप्प—वि० (दे०) १- गर्वित; २- अधिक गुणवाला; (दे० ना० मा० १, १३१)।
उत्तम—वि० (सं० प्रा० उत्तम) श्रेष्ठ, सुन्दर; (भ०; जस० १, १४, ३)। पुं० राक्षस वंशीय राजा; (प० च० ५, २६४)। उत्तमंग—न० (सं० उत्तमाङ्ग >प्रा० उत्तमंग) मस्तक, सिर; (जस० १, २६, २२; सि० १, २)। —खम स्त्री० (सं० उत्तम क्षमा;>प्रा० उत्तम खमा) उत्तम क्षमा; (जंबू० ११, १४, २)।
उत्तम्मिअ—वि० (दे०) खिन्न; (दे० ना० मा० १, १०२)।

√उत्तर—(सं० उद्+तॄ>प्रा० उत्तर) बाहर निकलना, पार करना; (जस० २, १४, ६)। —इ क्रि०, व० (सं० उत्तरति) पार उतर जाना; तुल० म० उतरणें; (हे० ३३६, १; भ०)। उत्तरिअ—भू० का० उतरे, (की० ३, ८६)। उत्तरिवि—पू० का० क्रि० (जंबू० १०, २०, ७)। उत्तरेवि–पू० का० क्रि० (जंबू० ७, १३, ५)।

उत्तरगइ—पुं० राक्षसवंशीय राजा; (प० च० ५, २६४)।

उत्तरज्झयण—पुं० (सं० उत्तराध्ययन) आगमग्रन्थ-विशेष; (संवि० १३, १, १)।

उत्तरण—न० (सं० प्रा० उत्तरण) १- उतरना, पार करना, २- अवतरण; (भ०)।

उत्तरद्ध—पुं० (सं० उत्तरार्ध) पीछे का अर्ध भाग, पिछला आधा; (प्रा० पैं० १, ५२)।

उत्तरफग्गुण—पुं० (सं० उत्तरा-फाल्गुनी) उत्तराफाल्गुनी नामक नक्षत्र, बारहवां नक्षत्र; (व० ६, ८, १)।

उत्तरयल—पुं० (सं० उत्तरतट) उत्तर तट; (व० २, १०, ३)।

उत्तरसेणि—स्त्री० (सं० उत्तरश्रेणि पर्वत की) उत्तर की श्रेणि या शृंखला; (व० ४, ४, १२)।

उत्तरावह—पुं० (सं० उत्तरापथ>प्रा० उत्तरापह) उत्तर दिशा-स्थित-देश, उत्तरीय देश; (भ०)।

उत्तरिय—वि० (सं० उत्तरित) उत्तीर्ण, उतरा हुआ, नीचे आया हुआ; (व० २, ६, ४)।

उत्तरुत्तर—क्रि० वि० (सं० उत्तरोत्तर) एक के अनंतर दूसरा; दिनोदिन; (व० ४, ३, ७)।

उत्तलहअ—पुं० (दे०) विटप, अङ्कुर; (दे० ना० मा० १, ११६)।

उत्तसिय—वि० (सं० उत्त्रस्त>प्रा० उत्तसिय) भयभीत; (सुदं० १, १, ६)।

उत्तहु—अव्य० (दे०) तत्र, उधर; (सुदं० ८, ३, १०)।

उत्ताणपत्तय—वि० (दे०) एरण्ड संबंधी पत्ती आदि; दे० ना० मा० १, १२०)।

√उत्तार—(सं० उद्+तारय् प्रा० उत्तार) पार पहुँचाना; (प० च० ३३, १२, ६; जस० ४, ७, २६)। उत्तरितु—कृ० (सं० अवतरत्) उतार कर; (संवि० ५, ४, ८)।

उत्तारय—वि० (सं० उत्तारक>प्रा० उत्तारय) पार उतारने वाला; (प० च० १, १, १)।

उत्तारिय—वि० (सं० उत्तारित>प्रा० उत्तारिअ) पार पहुँचाया हुआ; (भ०, जंबू० ७, ८, १)।

उत्ताल—वि० (दे०) उतावला; (जंबू० ५, २, ११)। उत्तालिया–वि० (स्त्री०) उतावली; (जंबू० ४, ११, ६)। न० (दे०) निरंतर रुदन, अन्तर-रहित क्रन्दन की आवाज; (दे० ना० मा० १, १०१)।

उत्तावलय—वि० (प्रा० उत्तावल) जल्दी मचाने वाला, जल्दबाज; (सं० रा०)।

उत्तावलि—वि० स्त्री० (प्रा० उत्तावल)

त्वरणशीला, उतावली; तुल० राज० तावलो, म० गु० उतावल (शीघ्रता के अर्थ में), कन्नड उत्ताल (जल्दी के अर्थ में); (सं० रा० २६)। —अ, वि०, जल्दबाज, तुल० गु० उतावली; (प० च० ३६, १५, २)। —हुअय वि० त्वरा-युक्त; (प० च० ५६, १५, ८)।
उत्ताविय—वि० (सं० उत्+तापित) तप्त; (जंबू० ५, १०, ४)।
उत्ताहिय—वि० (दे०) फेंका हुआ; (दे० ना० मा० १, १०६)।
उत्ति—स्त्री० (सं० उक्ति>प्रा० उत्ति) वचन, वाणी; (सि० १, ९)। —य वि० (सं० उक्त) कहा गया; (जस०)।
उत्तिण्णउ—क्रि० भू० का० (सं० उत्+तीर्ण>प्रा० उत्तिण्ण) उतरा, 'जंबुकुमा-रुत्तिण्णउ;' (जंबू० ५, ११, २१)।
उत्तित्थ—पुं० न० (सं० उत्तीर्थ) कुपथ, अपमार्ग; (भ०)।
उत्तिम—वि० (सं० प्रा० उत्तम) श्रेष्ठ; (जस० ३, १५, १२)।
उत्ती—स्त्री० (सं० पुत्री) लड़की, बेटी; (ण० २, २, १६)।
उत्तुंग—वि० (सं० उत्तुङ्ग> प्रा० उत्तुंग) ऊँचा, उन्नत; (जस० ४, ७, ६)।
उत्तुरिद्धि—स्त्री० (दे०) १- गर्व, २- वि० गर्वित; (दे० ना० मा० १, ९९)।
उत्तुहिय—वि० (दे०) छिन्न, नष्ट; (दे० ना० मा० १, १०५)।
उत्तूह—पुं० (दे०) तट-शून्य कूप; (दे० ना० मा० १, ९४)।
उत्तोओ—पुं० (सं० उत्तोजाः) काव्य-छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ११३)।
उत्फुल्ल—वि० (सं० उत्फुल्ल) प्रसन्न, (भ०)।
उत्थग्घ—पुं० (दे०) सम्मर्द, भीड़भाड़ (दे० ना० मा० १, ९३)।
उत्थट्ठि—वि० (सं० उच्च स्थित) उच्च स्थल में स्थित; (व० ६, ६, ८)।
√उत्थर—(सं० आ+क्रम, प्रा० उत्थर =आक्रमण करना) लड़ना। —इ सक० (भ०)। —न्ति बहु व० (प० च० ४३, १५, ७)। उत्थरहों—भू० का०, "तो वे वि परोप्परु उत्थरहों, जो को वि जिणइ जयकारु तहों" (तो आपस में लड़ लो, जो जीतेगा उसकी जय-जयकार होगी); (प० च० १२, ६, ३)।
उत्थरियउ—क्रि० भू० का० (सं० आक्रम्, प्रा० उत्थर) आक्रमण किया; 'जो जसु उत्थरियउ सो तें धरियउ' अर्थात् जिसने जिस पर आक्रमण किया, उसने उसको पकड़ लिया, (प० च० १७, १७, १०)।
√उत्थर—(सं०अव+स्तृ), १- आच्छा-दन करना, ढकना, २- पराभव करना।
उत्थरंत—कृ० (सं० अव+स्तृ+शतृ), (सुदं० ६, १५, ७)।
उत्थरिय—वि० (प्रा० उत्थरिअ) आक्रा-न्त; (जंबू० ७, ८, ६)।
उत्थल्ल—क्रि० (सं० उत्+शल्>प्रा० उत्थल्ल) उछलना, कूदना। —इ उछ-लना, (भ०; प० च० ३१, ३, २)। —न्तय, कृ०—उछलते हुए, कूदते हुए; 'पेक्खें वि उत्थल्लन्तइं छत्तइं' अर्थात्

उछलते हुए छत्र देखकर; (प० च० १७, ३, ५)। उत्थरिउ–भू० का० उछल पड़ा; त वयणु सुणेप्पिणु विजयसीहू, उत्थरिउ पवर-भुव फलिह-दीहु', अर्थात् यह वचन सुनकर प्रवल और विकसित वाहुओं वाला विजय सिंह उछल पड़ा; (प० च० ७, ५, १)।

उत्थल्ला—स्त्री० (दे०) परिवर्तन; (दे० ना० मा० १, ९३)।

उत्थल्लिय—वि० (सं० उच्छलित>प्रा० उत्थल्लिअ) उछलता हुआ; (प० च० १, ३, १३)। २- भू० का०, कूदा; (प० च० ३०, ४, ७)।

उत्थाइ—वि० (स० उत्थायिन्) उठने वाला; (दे० ना० मा० ८; १९)।

उत्थाइयइँ—क्रि० भू० का० (सं० उत्थापित>प्रा० उत्थाइय) उठवाये; (जस० २, २५, १६)।

उत्थामिय—वि० (स० उत्थापित) उठाया हुआ; (भ०)।

उत्थि—क्रि० वि० (सं० तत्र>प्रा० तत्थ) वहाँ; (की० २, २३४)।

उथि—क्रि० वि० (सं० तत्र>प्रा० तत्थ) वहाँ; (की० २, २३४)। उथिय क्रि० वि०, वहाँ (की० २, २३४)।

उदंभो—पुं० (सं० उद्दम्भः) काव्य-छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ११४)।

उदए—पुं० न० (सं० उदक>पा० उदग) उदक, जल; (सि० २, ३१)।

उदय—पुं० (सं० प्रा० उदय) अभ्युदय, उन्नति; (भ०)।

उदयगिरि—पुं०(सं० उदयगिरि) उदयगिरि, उदयाचल, पर्वत-विशेष; (जस० ३, २५, ३)।

उदयरह—पुं० इक्ष्वाकुवंशीय राजा; (प० च० २२, ९७)।

उदयसुंदर—पुं० राजपुत्र नागपुर का; (प० च० २१, ४५)।

उदहिकुमार—पुं० भवनवासी देव; (प० च० १, ४३)।

उदिअ—पुं० दूतपुत्र; (प० च० ३९, ४०)।

उदिट्ठअ—वि० (सं० उद्दिष्ट) कथित; (जंबू० ९, ४, १३)।

उद्दंड—वि० (स० उद्दण्ड>प्रा० उद्दंड); प्रचण्ड, उद्धत; (जस० १, २९, ५)। उद्दण्ड (प० च० ३, ३, ६)।

उद्दंडा–वि० स्त्री० प्रवल (प्रा० पैं० २, ३४)।

उद्दन्तुर—वि० (सं०>प्रा० उद्दन्तुर) जिसका दान्त वाहर बाहर आया हो वह; (प० च० ६, ७, ६)।

उद्दम—पुं० (उद्यम) उद्योग; (की० २, ७५)।

उद्दाम—वि० (सं० प्रा० उद्दाम) प्रचण्ड, प्रखर; "जुज्झंती उद्दामे कालिक्का संगामे। णच्चंती हम्मारो दूरित्ता संहारो"; (प्रा० पैं० २, ४२)। पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, ७९)।

√उद्दाल—(प्रा० उद्दाल) खींच लेना, हाथ से छीन लेना। —इ सक्र० (भ०) —हो क्रि० आ० छीन लो, 'उद्दाहो वहु वरइत्त हणहो' —अर्थात् वधू छीन लो और वर को मार डालो; (प० च० ७, ४, ७)। उद्दालिउ–भू० का०

(सं० उद्दालित) छीन लिया; (रि० ८, १) । उद्दालिप्पिणु–पू० का० क्रि० अपहरण कर; (ण० ३, ११, ५) । उद्दालेँवि—पू० का० क्रि०; 'एयहों उद्दालेँवि जेमि तिय, कइयहुँ-माणेसहुँ रायसिय' अर्थात् इसको उखाड़कर, मैं स्त्री के समान कब राज्यश्री मानूंगी ? (प० च० ६, ६, ५) ।

उद्दालिय—वि० (सं० उद्+दारित) आच्छिन्न, छीना हुआ, खींच लिया गया । भू० का० उड़ा लिया; (क० २, ८, ८) ।

उद्दिट्ठा—वि० (सं० उद्दिष्ट) कथित, प्रतिपादित; "उद्दिट्ठा जाणहु," (प्रा० पैं० १, ३६) । —अ वि० उपदिष्ट; (जम्बू० १०, २, ५) ।

उद्दित्ता—वि० (सं० उद्दीप्त) प्रज्वलित; (जंबू० १, १८, १०) ।

√उद्दिस— (सं० उद् +दिश्>प्रा० उद्देस, उद्दिस) १- नाम निर्देशपूर्वक वस्तु का निरूपण करना, २- देखना, ३- लक्ष्य करना, ४, उपदेश देना । उद्देसइ –सक० (सं० उद्दिशति); (भ०) ।

उद्दिसिअ—वि० (दे०) अनुमानित; उत्प्रेक्षित, वितर्कित; (दे० ना० मा० १, १०६) ।

उद्दीविय—वि० (सं० उद्दीपित) प्रदीपित, प्रज्वालित; (भ०) ।

उद्दुमण—वि० (सं० उद्+दुर्मनस्) उदास, "उद्दुमण अच्छहिँ जा मणम्मि," —वे अपने मन में इस प्रकार उदास खड़े थे; (क० २, २१, २) ।

उद्देस—पुं० (सं० उद्देश>प्रा० उद्देस) लक्ष्य; (की २, ५८; जस० ३, २१, ७) ।

√उद्देस— (सं० उद् + दिश्> प्रा० उद्दिस) नाम निर्देशपूर्वक वस्तु का निरूपण करना; (जस० १, ६, २६) । —हि सक०(विधि०) (सं० उपदेशय्) (जंबू० १०, १४, ८) ।

√उद्देहिया, उद्देही—स्त्री० (सं० उपदेहिका) दीमक, जंतु-विशेष; (दे० ना० मा० १, ६३) ।

उद्धंत—वि० (सं० उद्धत>प्रा० उद्धअ) गर्वित; (म० २, ४, २) ।

उद्ध—वि० (सं० ऊर्ध्व>प्रा० उद्ध, उड्ढ) ऊँचा, सीधा खड़ा, ऊपर का; (भ०; जंबू० ५, १४, १२; जस० १, ६, ७) ।

उद्धच्छवि—वि० (दे०) अप्रमाणित; (दे० ना० मा० १, ११४) ।

उद्धच्छविअ—वि० (दे०) सज्जित, तैयार; (दे० ना० मा० १, ११६) ।

उद्धच्छिअ—वि० (दे०) निषिद्ध; (दे० ना० मा० १, १११) ।

उद्धत्तणु—पुं० (सं० उद्धतता) उद्दण्डता; (व० ८, ७, ३) ।

उद्धत्थ—वि० (दे०) वञ्चित; (दे० ना० मा० १, ६६) ।

उद्धदिट्ठी—स्त्री० (सं० उर्ध्व दृष्टि) आँखे उठाकर देखना; (जंबू० १, १५, ६) ।

उद्धद्धए—कृ० छीन लिये जाने पर, 'उद्धद्धए रज्जेँ णिविस वि जिज्जइ ताय किह'; अर्थात् हे तात, राज्य के छीन लिये जाने पर एक पल भी किस प्रकार जिया जाता है; (प० च० ७, ११, ६) ।

√उद्धर— (सं० उद् + √हृ > प्रा० उद्धर) फँसे हुए को निकालना; ऊपर उठाना। —इ सक० (सं० उद्धरति) उद्धार करना; (भ०)। —उ भू० का० उद्धार हुआ; (की० २, २)। —ओ-क्रि० उद्धारूँ; (की० २, ४३)। —णु भू० का० उठा रखा था; (प० च० १३, ६, २)। उद्धारिअउ-क्रि० उद्धार किया गया; (की० १, ५४)। —वु उद्यापन करे, 'उद्धखुवउ' —व्रत का उद्यापन करे! (जस० २, १८, १४)। उद्धरि-क्रि० आ० उद्धार करो; (जंबू० ७, ३, १३)। उद्धरि पू० का० क्रि०—चुका कर, (की० १, ९४); उद्धार करके, (की० १, ९८); उत्पन्न करके (की० १, १०२)।

उद्धरण—वि० (दे०) उच्छिष्ट, जूठा; (दे० ना० मा० १, १०६)।

उद्धरियलि—वि० (सं० उद्धृता) जिस का उद्धार किया गया हो, 'गउ अणहिल-पुरि जेसुल राउ जिणि उद्धरियलि पुहवि सयाउ'; (प्रा० गुं० ५, ४४)।

उद्धतंत—वि० (स० उद्धत) गर्वित, उद्दंड, (ण० ४, १०, ३)।

उद्धवअ—वि० (दे०) फेंका हुआ; (दे० ना० मा० १, १०६)।

उद्धविअ—वि० (दे०) पूजित; (दे० ना० मा० १, १०७)।

उद्धसिय—वि० धँसे हुए; (सं० रा०)।

उद्धसिय—क्रि० भू० का० (सं० उत् + हसित) हँस उठे; "उद्धसिय नृपति णहेँ ससि-दिणिंद, आकाश में चंद्र और सूर्य तत्काल हँस उठे; (सुदं० १, १, ८)।

उद्धहत्थ—वि० (सं० उर्ध्व + हस्त) हाथ ऊपर उठाये हुए या हाथ ऊपर किये हुए; "कयउद्धहत्थणारीणरेहिँ" —हाथ ऊपर किये हुए नर नारियों ने; (जस० २, २६, ७)।

उद्धाअ—पुं० (दे०) १- विषमोन्नत प्रदेश; २- समूह ३- थका हुआ; (दे० ना० मा० १, १२४)।

उद्धाइय—क्रि० (स० ऊर्ध्वाय् > प्रा० उद्धाअ = ऊँचा होना) उठे, 'उद्धाइय मच्छर-मलिय-कर, भीसावण-पहरण-णियर-धर, अर्थात् मत्सर से हाथ मलते हुए भयंकर हथियारों का समूह धारण करने वाले वे उठे, (प० च० १५, १, ५)। —उ उठे हों 'दीसइ विञ्झ महीह-रहों', मेहउलु णाइँ उद्धाइयउ' ऐसा दिखाइ देता है जैसे विन्ध्याचल से महा-मेघ उठे हों; (प० च० ८, ३, ९)।

उद्धाइय—वि० (स० उद् + धावित) दौड़ते हुए; (ण० ४, १४, ६)।

उद्धाणणु—वि० (सं० उर्ध्व + आनन) मुँह उठाये हुए, 'विहलंघलु उद्धाणणु भमइ'—विह्वल रूप से मुँह उठाये इधर-उधर फिरता था; (क० ६, १, १२)।

उद्धार—पुं० (सं० उद्धार = बिना व्याज का ऋण) उधार, "काहु देल ऋण उद्धार;" (की० २, ६९)।

उद्धाविउ—क्रि० भू० का० (सं० उद् + धावित) दौड़ पड़ा; (क० ५, १४, ३)।

उद्धिरसण—वि० पराभव करने वाला "उद्धिरसणभीषणरूवधारि"; अर्थात् परा-करने वाला और भीषण रूप धारण करने वाला; (रि० ७, ३)।

उद्धुद्ध—वि० (सं० उर्ध्व+उर्ध्व) ऊपर; (ण० २, १२, ४)।

उद्धुय—वि० (सं० उद्धूत> प्रा० उद्धुय) १- पवन से उड़ा हुआ, २- फैला हुआ, 'पवणुद्धुयउ जडाउ रिसहहों रेहन्ति विसालउ'। सिहिहें वलन्तहों णाइँ धूमाउल-जाला-मालउ', अर्थात् ऋषभ जिनकी हवा में उड़ती हुई विशाल जटाएँ ऐसी लगती थीं मानो जलती हुई आग की धूमाकुल ज्वालमाला हो,' (प० च० २, ११, ६)। ३- प्रकम्पित; (ण० ४, ८, १३)।

उद्धुसिय—वि० (सं० उद्धुपित) रोमाञ्चित, पुलकित; (जंबू० १०, १३, ६)।

उद्धूयमाणु—कृ० (सं० उद्+धू> प्रा० उद्धू) (चामर) चलाते हुए, (प० च० १, ७, ५)।

उद्धूलिउ—वि० (सं० उद्धूलिय> प्रा० उद्धूलिय) धूलि से लपेटा हुआ; (प० च० २, १३, ५)।

उन—वि० (सं० ऊन) न्यून, हीन (रा०)।

उनाउ—क्रि० (सं० उन्नयति) ऊपर चढ़ना, ऊपर उठना; (उ० व्य० प्र० ४६–५)।

उन्न—वि० (सं० विषण्ण) विषाद-प्राप्त, खिन्न (पड्)।

उन्नइउ—क्रि० भू० का० (सं० उन्नीत) उन्नत हुआ; (जंबू० ७, ६, ६)।

उन्नमियय, उन्नवियय—वि० (सं० उन्नमित) उनए हुए, उन्नत किया हुआ, बढ़ाया हुआ; (सं० रा०)।

उन्नय—वि० (सं० उन्नत> प्रा० उण्णय) उन्नत, ऊँचा; (भ०)।

उन्नयण—पुं० (सं० उन्नयन) ऊपर की ओर उठाना या ले जाना; (जंबू० ११, १, ६)।

उन्हत्त—पुं० (सं० उष्णत्व) उष्णता, गर्मी; (सं० रा०)।

उन्हय—वि० (सं० उष्ण> प्रा० उण्ह) गरम; (सं० रा०)।

उन्हाला—पुं० (सं० उष्णकाल) ग्रीष्म-काल, उष्ण काल; तुल० म० उन्हाळा, गु० उन्हाळो; (भ०)।

उपइल—वि० (सं० उत्पतित) ऊँचा, उन्नत, ऊपर का। उपइलें; (रा० ३५)।

उपकरति—क्रि०, व० (सं० उप+√कृ) उपकार करना, "ते गुणै जाणि उपजति जे सवहि न उपकरति' (उ० व्य० प्र० १०–१०)।

उपकारिआ—वि० (सं० उपकर्तृ) उपकारी; (उ० व्य० प्र० १०–८)।

उपगार—पुं० (सं० उपकार) सेवा, सहायता, अनुग्रह, आभार; (प० च० १२, ११, ४)।

उपजति—क्रि० (सं० उत्+पद्> सं० उत्पद्यन्ते, प्रा० उप्पज्ज) उत्पन्न होना; (उ० व्य० प्र० १०–६)। उपजु-भू० का०, उपजी, (की० ३, ७४)। उप्पज्जिउ–भू० का० उत्पन्न हुआ, (जंबू० ४, ३, ३)।

उपटि—पू० का० क्रि० उपट कर, उछल कर (की० ४, १७३)।

उपभोय—पुं० (सं० उपभोग) किसी

वस्तु के व्यवहार का सुख; (क० ६, २२, १०)।

उपमा—स्त्री० (सं० उपमा) सादृश्य, समानता, किसी वस्तु, व्यापार या गुण को दूसरी वस्तु, व्यापार या गुण के समान प्रकट करने की क्रिया; (प्रा० पं० २, १५३)। उप्पम-स्त्री० उपमा; (जस० ४, २३, १७)।

उपमान—न० (सं० उपमान>प्रा० उवमाण) दृष्टांत, वह वस्तु जिससे उपमा दी जाए। उपमानु; (रा० ३६)।

उपमिज्जइ—क्रि० (सं० उपमीयते) तुलना करना; (प० च० १, ६, १; म०)।

उपयाण—न० (सं० उप+दान) दाम (नीति), सामभेयउवयाणेयहि मग्गिय तेण कुमरि," उसने साम, भेद व दाम से उस कुमारी को मांगा; (जंबू० ५, ३, ४)।

उपर—अव्य० (सं० उपरि>प्रा० उवरि) ऊपर; (कीं० २, २०५)।

उपरवट्ट—वि० (दे०) अधिक; तुल० गु० उपरवट; (प्रा० गु० २६, २२)।

उपलु—क्रि० भू० का० (सं० उत्पत्>प्रा० अप० उप्पलु) निकला; (की० ४, ८)।

उपसगो—अव्य० उपसंग, साथ; (की० ४, १०३)।

उपसम—पुं० (सं० उपशम) मृत्यु; (की० ४, १०१)।

उपसोह—स्त्री० (सं० उपशोभा>प्रा० उवसोहा) शोभा; (प० च० ६, ३, ४)।

उपित्य—वि० (दे०) कुपित; (जेकोबी द्वारा संपादित प० च० ८, १७५)।

उपेक्खिअ—क्रि० उपेक्षा हो जाती थी; (की० २, १४०)।

उपेक्खइ—क्रि० देखभाल करता है; (की० ३, १३२)।

उप्पइअ—वि० (सं० उत्पतित) १- ऊँचा गया हुआ, २- उन्नत; (म०)।

उप्पङ्किय—वि० (दे०) पंक; कीचड़ या पंक में लिप्त; (प० च० २६; ११, ३)।

√उप्पज्ज—(सं० उद्+√पद्>प्रा० उप्पज्ज) उत्पन्न होना, उपजना।—इ अक० (सं० उत्पद्यति) (परम० १, ६८; प० च० १, १२, ४; ण० ३, २, ८)। उप्पज्जंति; (जंबू०-३, १, १०)। उप्पज्जवि—पू० का० क्रि० उत्पन्न होकर; (प० च० ६, ३, ६)। उप्पज्जेसइ—भ० का० उत्पन्न होंगे; (रि० ८, २)।

उप्पण्ण—वि० (सं० उत्पन्न>प्रा० उप्पण्ण) उत्पन्न, उद्भूत; (म०; जस० ३, ३४, ५)।

उप्पण्णाहा—स्त्री० (सं० उत्पन्न+आभा>प्रा० उप्पण+आभा) उत्पन्न हुई आभा; (रि० १, १)।

उप्पण्णउ—क्रि० भू० का० (सं० उत्पन्नः) उत्पन्न हुआ; (महा० ६६, १४६; की० २, २)।

उप्पत्ति—स्त्री० (सं० उत्पत्ति>प्रा० उप्पत्ति) उत्पत्ति, जन्म, उत्पादन, उद्गम, प्रादुर्भाव; (ण० १, १२, १०)।

उप्पन्नमति—वि० व्युत्पन्न बुद्धिवाला (कौ० १, ६६)।
√उप्पय—(सं० उत्+पत्) कूदना। उप्पएँवि–पू० का० क्रि० उछल कर; (प० च० १७, ८, ६)।
उप्पर—अव्य (सं० उपरि>प्रा० उप्परि) ऊपर; (प्रा० पैं० १, १०६)।
उप्परन्तेँ—अव्य० (सं० उपरान्त) अनन्तर, पीछे, तुल० गु० उपरांत; (प० च० ४४, १२, ६)।
उप्परि—अव्य० (सं० उपरि>प्रा० उवरि) ऊपर, उर्ध्व; (ण० १, १३, १०; प० च० १, २, ३; हे० ३३४, १; कौ० २, १२३; भ०) २- वि० श्रेष्ठ।
उप्परियणु—पुं० (सं० उपरितन=) उपरनी, ओढ़नी; ऊपर का वस्त्र: तुल० म० उपराणा; (ण० ३, ८, १०; जस० २, ३२, ११)।
उप्पल—न० (सं० उत्पल>प्रा० उप्पल) पद्म, कमल; (ण० ३, ८, १३)। —खेडि पुं० (सं० उत्पलखेटी) उप्पलखेड़ नामक नगर; (क० ६, ११, २)।
उप्पल्लाणेँवि—कृ० (सं० उद्+पर्याण >उप्पल्लाण) उतर कर, 'तहिँ लय–मण्डवेँ उप्पल्लाणेँवि'; अर्थात् वहाँ लता मण्डप में उतरकर, (प० च० ५, ४, ५)।
उप्पलिआ—स्त्री० वणिक स्त्री, मित्तमई की सखी; (प० च० ४८, २१)।
उप्पाअ—पुं० (सं० उपाय>प्रा० उवाय) साधन; (प्रा० पैं० २, १२०)।
√उप्पाअ—(सं० उत्+पादय्> प्रा० उप्पाय) उत्पन्न करना। –इवि पू०–का० क्रि० (जं० ४, ३, १२)। उप्पायमि –क्रि०, व० (जंबू० १, १३, ८)।
उप्पायहि—भ० का० (सं० उत्पादयिष्यति) उत्पन्न करेगा; (जंबू० ६, ४, १४)।
उप्पाइय—वि० (सं० उत्पादित>प्रा० उप्पाइय) उत्पन्न किया हुआ; (जंबू० १०, १, १३)।
उप्पाड—पुं० (सं० उत्पाट>प्रा० उप्पाउ) उन्मूलन; (म० २, २२, ३; प० च० ३३, ७, ३)। –ण न० (सं० उत्पाटन>प्रा० उप्पाडण) उन्मूलन; (जस० ४, २, १२)।
√उप्पाड—(सं० उत+√पत्>प्रा० उप्पड, उप्पाड) उपाड़ना, उखेड़ना, उन्मूलन करना। —न्तु व० कृ० उखाड़ता हुआ; तुल० गु० उपाडवुं; (प०च० ६, ३६)। उप्पाडिय—क्रि० भू० का० "उप्पाडिय कुंतल कुडिलवंत"—उसने अपने घुंघराले केशों को उखाड़ डाला; (क० १०, २३, ६); "णिहि दक्खालेँवि मज्झु पइँ लोयण पुणु कि उप्पाडिय",—तूने मुझे एक निधि दिखला कर मेरी आँखों को क्यों उपाड़ डाला; (सुदं० ८, ४१, १२)। वि० (सं० उत्पादित) उत्पन्न किया हुआ; (व० ३, १५, १०)।
उप्पाडेँवि—पू० का० क्रि० निकालकर; (प० च० ८, ६, २)।
उप्पाडण—पुं० (सं० उत्पादन) उत्पत्ति; (जंबू० १०, २०, ४)।
√उप्पाय—(सं० उत्+पादय्>प्रा० उप्पाय, उप्पाएहि (सं० उत्पादयति) उत्पन्न करना, बनाना।—इ सक० (ण०

३, १५, ६; प० च० १, १४, ४)। उप्पायमि (प० च० ६, ११, ३)।
उप्पायअ—वि० (सं० उत्पादित>प्रा० उप्पाइय) उत्पन्न किया हुआ; (जंबू० ६, १४, ३)।
उप्पायण— न० (सं० उत्पादन>प्रा० उप्पायण) उत्पादन, उपार्जन; (भ०)।
√उप्पाल— (सं० उत्+प्लावय्> प्रा० उप्पाव=उड़ाना) उड़ना; उप्पालेँवि—पू० का० क्रि०, "अक्खउ गयणमग्गेँ उप्पालेँवि, आउ खणद्धेँ सिल संचालेँवि"; (प० च० ५२, ५, ३)।
उप्पिंगलिआ— स्त्री० (दे०) हाथ का मध्य भाग; (दे० ना० मा० १, ११८)।
उप्पिजल— न० (दे०) १. संभाग, २. रज; ३. अपयश; (दे० ना० मा० १, १३५)।
√उप्पिड— (सं० उत्+ पत्>प्रा० उप्पड) कूदना —इ अक० उछल-कूद करना; (जंबू० ५, १०, १४)।
उप्पित्थ—वि० (दे०) विधुर, आकुल; (दे० ना० मा० १, १२९)।
उप्पीलु—पुं० (दे०) १. संघात, संयोग, २. उत्पीड़न, दबाना; 'जहिँ मणि सिलायलुप्पीलु फुट्टु'; अर्थात् जहाँ उत्पीड़न से शिला-तल फूट चुके थे; (प० च० १२, ६, ३)।
उप्पुंछिय—वि० (सं० उत्प्रोञ्छित> प्रा० उप्पुंसिअ) प्रोञ्छित, मसृण, (ऐसा गाढ़ा तरल जिसमें चिकनापन और लायमत हो), "उप्पुंछियनिद्धजंघजुगु"—'उसकी जंघाएँ स्निग्ध और मसृण थीं'; (जंबू० १०, १६,२)।
√उप्पेक्ख—१. (सं० उत् प्र+ईक्ष्> प्रा० उप्पेक्ख) संभावना करना, कल्पना करना। –इ सक० (सुदं० ८, १५, १०)। —मि० सक०, ऊपर देखना; (प०च०)। २. (सं० उप+ईक्ष् > प्रा० उविक्ख) उपेक्षा करना, अनादर करना। उप्पेक्खण—उपेक्षा करना, "पाविट्ठजीवउप्पेक्खएण"—जो पापी जीवों की उपेक्षा करता है; (ण० ४, २, १३)।
उप्पेक्खिअ— वि० (सं० उत्प्रेक्षित) संभावित, विकल्पित; (दे० ना० मा० १, १०९)।
उप्पेत्थ— वि० उन्मत्त; (ण० ८, ८, २)।
उप्पेल्लिअ—वि० (सं० उत्प्रेरित) जो प्रेरित हुए हों; (जस० ३, ३, १३)।
उप्पेहड—वि० (दे०) उद्भट, आडंबरवाला; (दे० ना० मा० १, ११६)।
√उप्फड—(दे०) हवा में उड़ना; (व० ४, २१, २)।
उप्फडइ—क्रि० (सं० उत्पाटय्>प्रा० उप्फाल) उठना, छिटकना; उखाड़ना; (की० ४, १८२)। उफरि—पू० का०- क्रि० उखाड़ कर; (की० ४, २०८)।
√उप्फाल— (सं० आ + स्फालय् अथवा उद्+ पाटय्>प्रा० उप्फाल) उठाना, उखेड़ना। उप्फालिवि—पू० का० क्रि० उछाल कर; 'हत्थेँ उप्फालिवि गहइ चंड', हाथ से उछाल कर तीव्रता से ग्रहण कर लेता था; (जस० १, ६, ५)।
उप्फालण—न० (सं० उत्फालन) उछालना, "जुज्झिरमयरकरिकरुप्फालणतसि-

यतडत्यवाणरा",—उसके जल में जो मकर और हाथियों का युद्ध हो रहा है उसके कारण हाथियों द्वारा अपनी सूंड़ों से उछाले हुए जल से तटवर्ती वानर त्रस्त हो रहे हैं; (जस० ३, १, १५)।

उप्फुंकिआ—स्त्री० (दे०) कपड़ा धोने वाली; (दे० ना० मा० १, ११४)।

उप्फुंडिअ—वि० (दे०) बिछाया हुआ; (दे० ना० मा० १, ११३)।

उप्फुण्ण—वि० (दे०) आपूर्ण, भरा हुआ, व्याप्त; (दे० ना० मा० १, ९२)।

उप्फुल— वि० (सं० उत्फुल्ल>प्रा० उप्फुल्ल) विकसित; (जस० ४, १७, १३)।

उप्फोडिय— क्रि० भू० का० (दे०) संवारी हुई थी; 'उप्फोडियदाढिय-वामकह'—उसकी दाढ़ी खूब सुंदरता से संवारी हुई थी; (जंबू १०, १६, ६)।

√उब्बल—(सं० उद्‌वलति) सांस लेना, जीना; 'अंग उवल'—अंगमुद्‌वलति। बल प्राणने।" (उ०व्य० प्र०, ४९-७)।

उब्बरइ—क्रि० बचता था; 'खाणि खेदि खुन्दि घिसि मारइ जीवहु जन्तु न उब्बरइ'—वहीं-वहीं खोद कर खेद कर, खूंद कर और पकड़ कर मनुष्य और पशुओं को मारा जाता था, कोई भी बचता न था, (की० ४, १३२)।

उब्बस—वि० (दे०) ऊजड़; (परमा०)।

उब्बाहुल—पुं० (दे०) उत्कण्ठा; (भ०)।

उब्बाहुलिय— वि० (दे०) उत्कण्ठित; (भ०)।

उब्बिब—वि० (दे०) १. खिन्न, उद्विग्न; २. शून्य, ३. क्रान्त, ४, प्रकट वेष वाला ५. भीत, डरा हुआ, ६. उद्‌भट; (दे० ना० मा० १, १२७)।

उब्बिबल— न० (दे०) कलुष जल, मैला पानी; (दे० ना० मा० १, १११)।

उब्बिवर— वि (दे०) फीका, खिन्न; (सं० रा०)।

उब्बूर—वि० (दे०) १. अधिक, २. पुं० समूह; ३. विषमोन्नत प्रदेश; (दे० ना० मा० १, १२६)।

उब्भंड—न० (सं० उद्‌भाण्ड) कुत्सित वचन, गाली; "उब्भंडवयण"—(भ०)।

उब्भंत—वि० (सं० उद्‌भ्रान्त) आकुल, व्याकुल, खिन्न; (दे० ना० मा० १, १४३; जस० ४, १७, १४)।

√उब्भ— (सं० ऊर्ध्वय्>प्रा उब्भ्) ऊँचा करना। —इ सक० (सं० ऊर्ध्वयति) तुल० प्राचीन म० उभवणें; गु० ऊंचुं करवुं; (भ०; प्रा० गु० २, २, २८)। —हों—क्रि० आ० सजाओ, 'उब्भहों मणि-कञ्चण—तोरणई' अर्थात् मणिस्वर्ग के वन्दनवार सजाओ; (प० च० १९, ३, ९)।

उब्भवि—पू० का० क्रि० (सं० उत्+धृ) उठाकर; (व० १, १२, १३)। उभारि—पू० का० क्रि०, उभारकर (की० २, १३७)।

उब्भउ—वि० (सं० प्रा० उभय) दोनों; (सि० १, ३९)।

उब्भड— वि० (सं० उद्‌भट>प्रा० उब्भड) १. भयंकर विकराल; (प० च० ४, ८, ५)। २. योद्धा, "ते जिणसेण्णि मिलिय पंच वि जण तह णिग्गंथ उब्भड", उसी प्रकार पाँचों निग्रन्थ योद्धा

भी आकर सम्मिलित हो गए; (म० २, ५, २)। ३. प्रचण्ड, महान् "पइसरइ दुक्खभारुब्भडउ"— दुःख का महान् भार आ पड़ता है; (ण० २, ४, ७)। ४. अत्यंत वेगवान, फुर्तीला; (जंबू० ६, ७, ८)।

उब्भन्ती—वि० १. (सं० उद्भ्रान्ता) आकुल, व्याकुल); (प० च० २६, ५, ७)। २. उह्यमाना (सं०√उह् = पीड़ित करना); (प० च० २६, ५, ७)।

उब्भम्— वि० (सं० ऊर्ध्वम्) ऊँचा; ऊपर का, ऊपर की ओर किए हुए; (भ०)। उब्भा—वि० ऊँचे, "पुक्कारहिँ उब्भा कर करेवि", ऊँचे हाथ करके पुकार मचाने लगे; (क० ५, १५, ६)।

उब्भमिय— वि० (सं० उद्+भ्रमित) उद्भ्रान्त, व्याकुल, भ्रान्तियुक्त, (जस० १, २२, ११)।

उब्भरिय—भू० का० कृ० (सं० उद्+भृत=धारण किया हुआ) भरा हुआ, "उब्भरियसुहासुहफलगरलु"— शुभाशुभ कर्मफल रूपी गरल से भरा हुआ है; (जंबू० ३, ७, १४)।

उब्भव— पुं० (सं० उद्भव>प्रा० उब्भव) जन्म, उत्पत्ति, उद्गम, मूल (सं० रा०; जस० ३, ५, २)।

उब्भविअ—पुं० (सं० उद्भव) उत्पत्ति, प्रादुर्भाव; (जंबू० ६, १२, ७)।

उब्भाअ—वि० (दे०) शांत, ठंडा; (दे० १, ९६)।

उब्भाविअ—न० (दे०) रमण, संभोग, सुरत, क्रीड़ा; (दे० ना० मा० १, ११७)।

उब्भासिणि—वि० (सं० उद्+भासिनी) प्रकाशित करने वाली; (ण० ११, ६, ६)।

उब्भासिय—वि०(सं० उद्भासित) प्रकाशित; (जंबू० ८, १३, २)।

उब्भासुअ—वि० (दे०) शोभा-हीन; (दे० ना० मा० १. ११०)।

√उब्भि—(सं० उत्+धृ)। -वि० पू० का० क्रि०, ऊठा-उठाकर; 'सरलंगुलिउब्भिवि जंपिएहिँ'— सरल अंगुलियों को उठा-उठाकर बोलने वाले, (जंबू० १, ८, १२)।

उब्भिज्ज—क्रि० (सं० उद्+भृ-भरणे to support) थामना, सहारा देना उब्भिज्जइ— "दोहिँ वि घरहिँ असमु तोरणु उब्भिज्जइ", दोनों ही घरों में अनुपम तोरण लगाए गए, (सुदं० ५, ४, ६)।

उब्भिण्ण— वि० (सं० उद्+भिन्न> प्रा० उब्भिण्ण, उब्भिन्न) रोमाञ्चित; (प० च० १७, १६, १)। उब्भिन्न; (भ०)।

उब्भिय— वि० (सं० ऊर्ध्वित>प्रा० उब्भिय) ऊँचा किया हुआ, ऊर्ध्वीकृत; (पं० च० १, ७, ८; जंबू० ७, २, ६; सुदं० ५, ५, ३)।

उब्भुआण—वि० (दे०) उबलता हुआ; (दे० ना० मा० १, १०५)।

उब्भुग्ग—वि० (दे०) अस्थिर; (दे० ना० मा० १, १०२)।

उब्भुब्भ— वि० (सं० ऊर्ध्व+ऊर्ध्व) उत्तरोत्तर, "उब्भुब्भउ णं जालहिँ जलइ"— उत्तरोत्तर ही ज्वाला से

जलता है; (जस० २, १०, १४)।

उब्भूय— वि० (सं० उद्भूत) उत्पन्न; (जस० ४, १७, १४)।

उब्भूसिउ—क्रि० भू० का० (सं० उद्-भूषित) शोभायमान हुआ, "उब्भूसिउ काहें वि तणु विहाइ",— किसी का भूषा (वस्त्राभूषण विलेपनादि) रहित शरीर ऐसा शोभायमान हो रहा था; (जंबू० ४, १६, १३)।

उब्भे— अव्य० (सं० उभतस् > प्रा० उभओ) दोनों ओर; 'उब्भे तोरण-मय-गल-गुलीउ'— दोनों ओर तोरण बाँधे गए; (सि० २, २५, २)।

उब्भेइ—क्रि० भू० का० (सं० ऊर्ध्वय्> प्रा० उब्भ; उब्भेउ) उठाई, "दलउ चप्पिवि वाह उब्भेइ", भाट ने अपने ओंठ चबाकर बाँह ऊपर उठाई; (म० २, १५, १)। उब्भेंवि-पू० का०क्रि०उठा कर; (प० च० १०, १०, ६)। उब्भेवि-पू० का० क्रि उठा कर, "मुक्कधाहमुब्भेवि करयले, अंसुवाह णिवडंति धरयले"— वे धाड़ देकर हाथ उठाकर धरातल पर आँसू बहा रहे थे; (ण० ६, १८, १८)।

उब्भेय— पुं० (सं० उद्भेद) उद्गम, उत्पत्ति; (भ०)।

उभउ—वि० (सं० प्रा० उभय) दोनों; (सि० १, १४)।

उभय—वि० (सं० प्रा० उभय) युगल, दो, दोनों, (प० च० ४, ७, १०; सि० २, २२)।

उमग्ग— पुं० (सं० उन्मार्ग > प्रा० उम्मग्ग) कुपथ, उलटा मार्ग; (जंबू० ४, ११, ११; प० च० २१, ७, ८)।

उमागि—उन्मार्ग; (प्रा० गु० १, ७५)।

उम्मग्गे— पुं० उत्मार्ग या कुपथ में (की० १, ६७)।

उमत्त—वि० (सं० उन्मत्त) मस्त; (प्रा० पैं० २, ६७)।

उमा—स्त्री० (सं० प्रा० उमा) गौरी, पार्वती; (सुदं० ४, ४, ५)।

उमात— वि० (सं० उन्मत्त > प्रा० उम्मत) उन्मादयुक्त। उमातउ; (रा० १२)।

उमालिवि—पू० का० क्रि० भूतकाल के रूप में प्रयुक्त (सं०√माल्, प्रा० माल =शोभना, वेष्टित होना) सुसज्जित किया, 'जिण सरीरु कुसुमहिं उमालिवि' जिनेन्द्र के पार्थिव शरीर को पुष्पों से सुसज्जित किया; (व० १०, ४०, १६)।

उमुक्क—वि० (सं० उन्मुक्त>प्रा० उम्मुक्क) बंधन रहित, आजाद; (सं० रा०)।

उम्मंड—पुं० (दे०) १- हठ; २- वि० उद्वृत्त; (दे० ना० मा० १, १२४)।

उम्मग्गिम—पुं० (सं० उन्मार्ग+इमन्) विपथगमन; (प० च० ३३, ३, ६)।

उम्मच्छिअ—वि० (दे०) १- रुष्ट; २- व्याकुल; (दे० ना० मा० १, १३७)।

उम्मड्डा—स्त्री० (दे०) बलात्कार, जबरदस्ती; (दे० ना० मा० १, ६७)।

उम्मण—वि० (सं० उन्मनस्) उत्कण्ठित, उत्सुक; (ण० ४, ८, ८)।

उम्मणदुम्मण—वि० (सं० उन्मनस्> दुर्मनस्>प्रा० उम्मण+दुम्मण) उत्क-

ण्ठित तथा खिन्नमनस्क; (प० च० १६, १३, १)।

उम्मत्त—पुं० (दे०) १- धतूरा, वृक्ष-विशेष; २- एरण्ड, वृक्ष-विशेष; (दे० ना० मा० १, ८६)।

उम्मत्थ—वि० (दे०) अधोमुख, विपरीत; (दे० ना० मा० १, ९३)।

उम्मर—पुं० (दे०) देहली द्वार के नीचे की लकड़ी, (दे० ना० मा० १, ९५)।

उम्मरिअ—वि० (दे०) उत्खात, उन्मूलित; (दे० ना० मा० १, १००)।

उम्मल—वि० (दे०) स्त्यान (ढेर किया हुआ, गाढ़ा, कोमल, ध्वनिकारक, स्निग्ध); (दे० ना० मा० १, ९१)।

उम्मला—स्त्री० (दे०) तृष्णा; (दे० ना० मा० १, ९४)।

उम्मल्ल—पुं० (दे०) १- नृप, २- मेघ, ३- बलात्कार, ४, वि० पुष्ट; (दे० ना० मा० १, १३१)।

उम्मल्ला—स्त्री० (दे०) तृष्णा; (दे० ना० मा० १, ९४)।

√**उम्मह**—सं० आ+मुच्, त्याग देना, छोड़ देना; —इ "जो घइँ णिसि-भोयणु उम्मइइ विमलत्तणु विमल-गोत्तु लहइ" (प० च० ३४, ८, ८)।

उम्माइय—वि० (सं० उन्मादित) उन्मत किया हुआ; (भ०)।

उम्माइलु—वि० (सं० उन्मीलित>प्रा० (सं० उम्मिल्लिय) खुला हुआ, विकसित; (भ०)।

उम्माय—पुं० (सं० उन्माद>प्रा० उम्माय) चित्त-विभ्रम, उन्मादन; (म० २, ५७, २)। —उ वि० उन्मादित; (सुदं० ८, ७, ७)।

उम्मायण—(पुं०) (सं० उन्मादन) कामाधीनता, विषय में अत्यंत आसक्ति, कामदेव के तीरों में से एक, (प० च० २७, ३, ६)।

उम्मालिय—वि० (सं० उन्मालित) सुशोभित; (भ०)।

उम्माह—पुं० १- (सं० उन्माथ>प्रा० उम्माह) विनाश; (म० १, ४, ५)। २- पुं० (सं० उत्साह>प्रा० उच्छाह) उत्साह, (सुदं० ४, ३, १)।

उम्माहय—पुं० (सं० उन्माथ) विरहोत्कण्ठा; (प० च० २७, १५, १)। वि० १- (सं० उन्माथक) विनाशक; (भ०)। २- व्याकुल, बहु-दिवसेंहिं उम्माहय-जणणु। णिय-साउल पेक्खेंवि गमण-मणु' अर्थात् बहुत दिनों के पश्चात् पिता के लिए व्याकुल अपने साले को जाने के लिए इच्छुक; (प० च० ६, ४, २)।

उम्माहिय—वि० (सं० उन्माथित) उन्मत्त, उमाहा हुआ; (सुदं० ११, ६, २०)।

उम्माहिअ—वि० (दे०) उत्साहित; (जंबू० १० १६, १२)।

उम्माहिज्जन्तय—वि० वियोग में आकुलित होना (being made to yearn in separation); (प० च० २४, १, १)।

उम्माहिय—वि० (सं० उन्माथित) विनाशित; (भ०)।

उम्माहियअ—वि० (दे०) उत्साहित; (जंबू० १०, १६, १२)।
उम्हाविअ—न० (दे०) सुरत, सम्भोग, मैथुन; (दे० ना० मा० १, ११७)।
√उम्मिल्ल—(सं० उद्+मील्>प्रा० उम्मिल्ल) विकसित होना, खिलना।
उम्मीलइ-अक० (सं० उन्मीलति) खोलना; (हे०३ ५४)। उम्मीलन्त-व० कृ० विकसित होते हुए, खुलते हुए; 'सलील-तरन्तहुँ उम्मीलन्तहुँ मुह-कमलहुँ केइ पधाइय'; अर्थात् 'लीलापूर्वक तैरते हुए और विकसित होते हुए मुख-कमलों के लिए कितने ही (भौंरे) दौड़े'; (प० च० १४, ५, ६)।
उम्मिल्ल—वि० (सं० उन्मीलित) उदित; (प० च० ३२, ६, ६)।
उम्मी—स्त्री० (सं० ऊर्मिः) लहर; (सुदं० २, १२, ६)।
उम्मीलण—न० (सं० उन्मीलन>प्रा० उम्मिल्लण) विकास, उल्लास; (जंबू० ५, ७, १७)।
उम्मीलिय—वि० (सं० उन्मीलित>प्रा० उम्मिल्लिय, उम्मीलिय) १- विकसित, २- खुला हुआ; (प० च० ६, ५, ४)।
उम्मीसिय—वि० (सं० उन्मेषित>प्रा० उम्मिसिय) विकसित, प्रफुल्ल; (जंबू० १, ६, ६)
उम्मुच्छिउ—पू० का० क्रि० (सं० उन्मूर्च्छित) मूर्च्छा हटते ही, "उम्मुच्छिउ धाहावंतु राउ" —मूर्च्छा हटते ही वह राजकुमार धाड़ मार कर रोने लगा; (जस० २, २५, ४)।
उम्मुच्छियउ—भू० का० (सं० उन्मूर्च्छित) मूर्च्छित हो गई; (रि० ७, १२)।
उम्मुह—वि० १- (सं० उन्मुख>प्रा० उम्मुह) संमुख, ऊर्ध्व-मुख; (भ०)। वि० (दे०) अभिमानी; (दे० १, ६६)।
उम्मूढय—वि० (सं० उद्+मूढ) नष्ट मोह; (प० च० ४४, ४, ३)।
√उम्मूल—(सं० उद्+मूलय्) उखेड़ना, मूल से उखाड़ फेंकना। —मिसक०, व० (जंबू० ६, ४, ११)
उम्मूलिउ—क्रि० भू० का० (सं० उन्मूलित) उखाड़ लिया; (प० च० १३, ४२)। उम्मूलेंवि—पू० का० क्रि० मूल से उखाड़ फेंकते हुए; (प० च० १३, ३, १०)।
उम्मूलिय—वि० (सं० उन्मूलित>प्रा० उम्मूलिअ) मूल से उखाड़ा हुआ, (जस० ४, २२, १७)।
उम्मेठ्ठय—वि० (सं० उद्+मेण्ठ=महावत) हस्तीपक-रहित, महावत-रहित, निरंकुश, (प० च० ८६, ५, ६)।
उम्मोहणिया—वि० (सं० उन्मोहनिका) मोहित करने वाली; (ण० ६, ६, ११)।
उम्मोहिउ—क्रि० भू० का० (सं० उन्मोहित) मोह से विरक्त हो गए, 'चारु देवसंई उम्मोहिउजं'; हे देव, बहुत सुंदर जो आप स्वयं मोह से विरक्त हो गए; (प० च० २, १०, ४)।
उम्मोहिय—वि० (सं० उन्मोहित) जो मोहित हुआ हो, (ण० ६, १६, ७)।

उयपट्ट—पुं० वस्त्र-विशेष; (सधि० ४, ४, ७)।

उयय—पुं० (सं० उदय) उदय (काल); (ण० १, ८, ८; महा० ६८, ४; सु० ६–८)। उयरु–पुं० (सि० ४, १०)।

उययाचल—पुं० (सं० उदयाचल) पर्वत-विशेष; (जंबू० १०, १८, १४)।

उयर—न० (सं० उदर>प्रा० उअर) पेट; (ण० ३, ५, १२)।

उयहि—पुं० मुनि, आठवें वासुदेव के पुर्वजन्म गुरु; (प० च० २०, १७७)।

उर—पुं० न० (सं० उरस्>प्रा० उर) वक्षः स्थन, छाती; (ण० २, ३, १७; भ०)। पुं० (सं० पुर) नगर, शहर, (ण० ३, १३, ४)।

उरअ—पुं० (सं० प्रा० उरग>प्रा० उरअ) १- सर्प, सांप; (जस० २, ३६, ११)। २- मुनि पिंगल की उपाधि; (प्रा० पैं० २, १६०)। उरय–पुं० (सं० उरग) (प० च० १०, १२, ४)।

उरगमण—पुं० (सं० प्रा० उरग) उरग, सांप, (प० च० २१, ६, ६)।

उरभुययर—पुं० (सं० उर+भुज+चर) सर्प या उरग जाति; (जस० ४, १६, ६)।

उरयल—पुं० (सं० उर+स्तल) १- वक्षः स्थल; (जस० १, ६, ३)। २- हृदयतल; (व० ८, १३, ४)।

उरयारि—पुं० (सं० उरगारि) उरुड़ (व० ५, ६, ३)।

उररि—पुं० (दे०) पशु बकरा; (दे० ना० मा० १, ८८)।

उरस—पुं० (सं० उरस्) छाती, वक्षः स्थल; (प० च० १०, ११, ८)।

उरसप्प—पुं० (सं० उरसर्प) सर्प का एक प्रकार; (व० १०, ८, १५)।

उरि—अव्य० (सं० उपरि> प्रा० उप्परि, उवरि) ऊपर; (चं० २, १०)।

उरिण—वि० (सं० उऋण) उऋण, ऋण–रहित, ऋण–मुक्त; (सि० १, २६)।

उरिधाने—पुं० एक प्रकार का चावल; (की० २, २०६)।

उरु—वि० (सं० प्रा० उरु) विशाल; (जंबू० ८, १६, ८)।

उरुन्न उरुन्नय—वि० अधिक रोए, रुआंसे; (सं० रा०)।

उरें उरें—अव्य० संबोधन का शब्द, अरे–अरे; तुल० गु० ओरे ओरे; (प० च० १७, १४, २)।

उल—पुं० न० (सं० प्रा० कुल, प्रा० उल) १- वंश, कुल, जाति, २- कुटुम्ब; (सि० १, २७)। —इं समूह (हे० ३५३, १)। –हुँ (ण० १, १२, १०)।

उलट्टो पलट्टो—पू० का० क्रि० उलट-पुलट कर; 'उलट्टो–पलट्टो कबन्धो पलन्तो' –कबन्धों को उलट-पुलट कर खाते थे; (की० ४, २०३)।

उलसु—वि० (सं० उल्लसित>प्रा० उल्लसिअ) प्रसन्न; (प्रा० पैं० २, २१३)।

उलित्त—न० (दे०) ऊँचा कुँआ; (दे० ना० मा० १, ८६)।

उलुउंडिअ—वि० (दे०) विरेचित, दस्त

कराया हुआ; (दे० ना० मा० १, ११६)।

उलुखंड—पुं० (दे०) अधजला काठ या लकड़ी, जलता हुआ काठ या लकड़ी, उल्मुक (अंगारा), लूका (जलती हुई लकड़ी); (दे० ना० मा० १, १०७)।

उलुहंत—पुं० (दे०) काक, कौआ; (दे० ना० मा० १, १०६)।

√उलुह—(सं० √लुट् (लुठ) संश्लेषणे >लुटति, लुठति, (सं० उल्लठति) लुढकना, 'पाणि वरिसें विडवा उलुह'—पानीये वृष्टे विटप उल्लठति। पुट लुट संस्ले (श्ले) पे," (उ० व्य० प्र० ५२-२२)।

उलुहलिअ—वि० (दे०) तृप्ति-रहित, (दे० ना० मा० १, ११७)।

उलोव—पुं० (सं० उल्लोच) वितान या शामियाना, चंदोआ तिरपाल; (ण० ६, २१, ३४)।

उल्लंघिय—वि० (सं० उल्लङ्घित) लांघा हुआ, अतिक्रमण किया हुआ; (व० १, ६, ६)। उल्लंघिवि—पू० का० क्रि०, उल्लंघ्य (व० २, ७, ७)।

उल्लट्ट—वि० (दे०) खाली किया हुआ; (दे० मा० ७, ८१)।

उल्लल—अक० (सं० उत्+लल्>प्रा० उल्लल=चलित होना, चञ्चल होना)। —इ १- कांपना "तो उल्लेइ चलइ खलइ तसइ ल्हसइ णीससइ पणासइ। णिसियरवलु णिवसाहणहों णववहु जेम ससज्झय दीसइ"; —तब राजा के सैन्य के समक्ष वह निशाचर की सेना कांपने, चलने, स्खलित होने, त्रस्त होने, खिसकने, श्वासें छोड़ने व भागने लगी, जिस प्रकार की नव वधू भयभीत दिखाई देती है; (सुदं० ६, ४, ६)। २- प्रभा फैलना, शोभित होना; "जहिं चंदकंति माणिक्क-दित्ति उल्लइ गयणि" —उस उज्जयिनी नगरी में चन्द्रकान्त और माणिक्य रत्नों की प्रभा आकाश में फैल रही थी; (जस० १, २२, १)। ३- उछलना, "पेल्लइ, दलइ, मलइ, उल्ललइ महाणरु घायवे-वियं" —वह महाशूर वीर व्याल अपनी मार से कम्पायमान शत्रुओं को पेलता, दलता, मलता और उछालता था; (ण० ४, १५, १)।

उल्ललण—न० (सं० उत्+√लल्> प्रा० उल्लल्ल) उछलना-कूदना; "गयणु-ल्ललवलण परियत्तण लंघियवारि-विब्भमो" —आकाश में उछलने-कूदने, परावर्तन करने तथा जल की भौंरों को लांघने में वह कुशल हो गया; (जस० ३, २, २)।

उल्ललिय—क्रि० भू० का० (सं० उल्ल-लित) विकीर्ण किया, "पवणपेल्लणुल्ल-लियभप्परं भग्गमाणविक्खित्तप्परं" —वहां पवन की प्रेरणा से चिताओं की भस्म उड़ रही थी और फूटे-टूटे कपाल इधर-उधर बिखरे दिखाई दे रहे थे; (जस० १, १३, ८)। कृ०—पीटते हुए "उल्ल-लिय वइल्लु" —बैल को पीटते हुए; (जंबू० ५, ७, १६)।

√उल्लव—(सं० उत्+लप्> प्रा० उल्लव) कहना। —इ सक० (भ०)। —वेइ, "उल्लवेइ सिरिगोत्तमु गणहरु"

—श्री गौतम गणधर कहते हैं, (सुदं० २, १, ३)।

उल्लस—पुं० (सं० प्रा० उल्लास, प्रा० उल्लस) आनंद, हर्ष; (व० ५, १३, ४)।

√उल्लस—(सं० उद्+लस>प्रा० उल्लस) उल्लसित होना, खुश होना; —इ अक० (ण० १, ७, २)।

उल्लसिय—वि० (सं० उल्लसित>प्रा० उल्लसिअ) हर्षित; (विला०)।

उल्लाल—पुं० न० (सं० प्रा० उल्लाल) छंद-विशेष; उल्लाला छंद; (प्रा० पैं० १, १०५)।

उल्लालिय—वि० (सं० उन्नमित>प्रा० उल्लालिअ) ऊँचा किया हुआ, उठाए हुए; 'किय-अङ्गइं उल्लालिय-खग्गइं' अर्थात् कवच पहने और खड्ग उठाए हुए; (प० च० २०, ६, १)। वि०—उछाला हुआ, लात खाया हुआ; (जंबू ५, ७, २३)।

√उल्लाव—(सं० उत्+लप्, लापय) १- कहना, बोलना, २- बकवाद करना, ३- बुलवाना, ४- बकवाद करना। —इ सक० (भ०)।

उल्लाव—पुं० (सं० उल्लाय>प्रा० उल्लाव) १- उक्ति, कथन, २- संभाषण, वार्तालाप; (प० च० १३, ६, ४)।

उल्लावण—न० (सं० उत्+लापन आलाप, संभाषण; (जंबू० ८, ११, १४)।

उल्लिंचण—न० (सं० उद्+रिच्> प्रा० उल्लिंच=खाली करना) घटी यंत्र, २- रहट, जल उलीचने वाला; (जंबू० ४, ११, ६)।

उल्लिय—वि० (सं० आर्द्रित>प्रा० उल्लिअ) गीला किया हुआ; (जस० १, ४, ३; जंबू० ६, १५, ११)।

उल्लियउ—क्रि० (सं० आर्द्रय्>प्रा० उल्ल, उल्लेइ) गीला किया, आर्द्र किया; (ण० ६, २, ५)।

√उल्लिह—(सं० उद्+लिख्>प्रा० उल्लिह) १- रेखा करना, २- लिखना, ३- खिसना। —इ सक० लिखती है, कुरेदती है; (सं० रा०)।

उल्ली—स्त्री० (दे०) चूल्हा, अलाव (दे० ना० मा० १, ८७)।

उल्लुक्कइ—क्रि० (सं० नि+ली>प्रा० णिलीअ, णिलुक्कु, णिलुक्कइ) छिप जाना; (प० च० १५, ३, ६)।

उल्लुट्ट—वि० (दे०) असत्य, मिथ्या; (दे० ना० मा० १, ८६)।

√उल्लुर—(सं० तुड् का धात्वादेश) तोड़ना। —इ सक० (भ०)।

उल्लुरुह—वि० (दे०) छोटा शङ्ख; (दे० ना० मा० १, १०५)।

उल्लूढ—वि० (दे०) १- आरूढ़- २- अंकुरित; (दे० ना० मा० १, १००)।

उल्लेव—पुं० (दे०) हास्य; (दे० ना० मा० १; १०२)।

उल्लेहड—वि० (दे०) लम्पट, लुब्ध; (दे० ना० मा० १, १०४)।

उल्लोच—पुं० (दे०) चंद्रातप, चाँदनी; (दे० ना० मा० १, ६८)।

उल्लोल—पुं० (दे०) कोलाहल; (प० च० २४, २, ५)।

√उल्लोल—(सं० उद् + लुल् > प्रा० उल्लोल,=लेटना) उछलना; 'जं जलु खलइ वलइ उल्लोलइ। रसणा-दामु तं जि णं घोलइ।' अर्थात् जो जल खल-वल हुआ करता और उछलता है वही रसनादाम की तरह शोभित है, (प० च० १४, ३, ४)।

√उल्लोल—(दे०) आह भरना; 'मणु उल्लोलेंहिं जाइ णन्दिहो" (प० च० २६, ८, २)।

उल्लोव—पुं० (सं० प्रा० उल्लोच) १- चंद्रातप, चांदनी, २- आच्छादन; (भ०)।

उल्लोय—पुं० (सं० उल्लोच > प्रा० उल्लोय) चंद्रातप, चांदनी (वितान मित्यर्थः) (जस० १, १६, १४)।

√उल्हव—सं० वि + ध्मापय्; ठंडा करना, आग को बुझाना। —इ सक० "अह रिउरुहिरें उल्हवइ अह अप्पणें न भन्ति" –या तो शत्रु के रक्त से उसे ठंडा कर देगा या अपने, इसमें कुछ भी भ्रांति नहीं है; (हे० ४, १६, १)।

√उल्हस – (सं० उत् + √लस्) हुल-सना। उल्हसंत—व० कृ० तुल० राज० हुलसवो; (प्रा० पैं० १, ७)। उल्हसिउ—भू० का० उल्लसित हुई, तुल० मगही हुलसइ; (भूसुकुपा, चर्यापद)।

उल्हसिअ—वि० (दे०) उद्भट, उद्धत; (दे० ना० ना० १, ११६)।

√उल्हाव—सं० वि० + ध्मापय् > प्रा० उल्हव बुझ जाना; गु० ओलववुं, होल-ववुं; —इ क्रि०, व० (प० च० २४, १, ६)। –मि क्रि०, उ०पु० शांत कर देना; आग को बुझा देना; 'हउं पुणु वरुणु वरुणु फलु दावमि, पइं दहमुह-दवग्गि उल्हावमि' मैं वरुण हूं और तुम्हें वरुण फल दूंगा, तुम्हारे दस मुखों की आग को शान्त कर दूंगा', (प० च० २०, ६, ३)। उल्हावियउ-क्रि०भू० का० शांत कर दिया; (प० च० १७, १४, ६) –हि सक० "आणि जुवाणु को वि गलि लावहि संदीवउ वम्महु उल्हावहि," किसी जवान को लाकर गले लगाओ, और संदीप्त मन को बुझाओ; (जंबू० १०, १५, ८)।

उल्हावयर—वि० विध्मायक, धौंककर प्रज्वलित करने वाला, (सं० रा०)।

√उवअ—(√सं० उदय्) उवइ–क्रि० व० का० १- प्राप्त होना; "पक्कउ फलु तलें निवडियउ विटें पुणु वि जेम नउ लग्गइ। कम्मु वि निज्जरसाडियउ पुणु वि न उवइ नाणें जो जग्गइ। अर्थात् पका फल नीचे गिरकर जिस प्रकार पुनः डंठल में नहीं लगता, उसी प्रकार जो कर्म निर्जरा (संचित कर्म का तप द्वारा निर्जरण या क्षय करना) द्वारा दूर कर दिया गया हो, वह भी व्यक्ति को पुनः प्राप्त नहीं होता जो ज्ञान में अर्थात् ज्ञानाराधना में निरंतर जागरूक रहता है। (जंबू० ११, ६, १०)। २- (सं० उप + इ > प्रा० अव० अवे) समीप आता है; (कीं० १, २२)।

उवइट्ठ—वि० (सं० उपदिष्ट > प्रा० उवइट्ठ) कथित, जिसे उपदेश दिया गया हो; ज्ञापित, निर्दिष्ट; (भ०)।

√उवइस—(सं० उप + दिश् > प्रा० उवइस) उपदेश देना, दिखाना। उवए—

समि—'मपहु न जाणइ सइँ उवएसमि', यह नहीं जानती, अतः मैं स्वयं इसको शिक्षा देता हूँ; (जंबू० १०, १४, ७)।
उवउज्ज—पुं० (दे०) उपकार; (दे० ना० मा० १, १०८)।
उवएइआ—स्त्री० (दे०) शराव परोसने का पात्र; (दे० ना० मा० १, ११८)।
उवएस—पुं० (सं० उपदेश>प्रा० उवएस) शिक्षा, सीख, दीक्षा(भ०)। उवएसु, (सु० ८, ८)।
उवएसिय—वि० (सं० उपदेशित) उपदिष्ट; (जंबू० ११, २, १०)।
उवएसु—पुं० (सं० उपदेश>प्रा० उवएस) शिक्षा, बोध; (व० २, ६, १३)।
उवओगा—स्त्री० (दे०) दूतपत्नी; (प० च० ३६, ३६)।
उवकण्ठ—वि० (सं० उपकण्ठ>प्रा० उवकंठ, उवअंठ) समीप का, आसन्न; (भ०)।
उवकय—वि० (दे०) सज्जित, तैयार; (दे० ना० मा० १, ११६)।
उवकसिअ—वि० (दे०) संनिहित २- परिसेवित, ३- सर्जित, ४- उत्पादित; (दे० ना० मा० १, १३८)।
उवकिइ, उवकिदि—स्त्री० (सं० उपकृति) उपकार; (दे० ना० मा० ४, ३४)।
उवगय—वि० (सं० उपगत) प्राप्त, "सुरकीलाथाणहो उवगयम्मि," –देवों के क्रीड़ा स्थान को प्राप्त; (क० ५, ७, २)।
उवगरण—न० (सं० उपकरण>प्रा० उवगरण) साधन, सामग्री, साधक वस्तु; (जस० ४, १४, १४)।
उवगह—पुं० (सं० उपग्रह=कृपा>अनुग्रह) उपकार, "उवगह सत्ति हवंति सुपयडइँ" —उपकार करने की शक्ति भी उनमें स्पष्ट रूप से रहती है, (व० १०, ३२, ७)।
उवजाइ—स्त्री० (सं० उपजाति) उपजाति छंद, छंद-विशेष; (प्रा० पैं० २, ११८)।
उवझाय—पुं० (सं० उपाध्याय>प्रा० उवज्झाय, उवज्झय) अध्यापक, पढ़ाने वाला; २- सूत्राध्यापक जैन मुनि को दी जाती एक पदवी, "नीलवन्न उवझाय सीस पाढंताँ पच्छिम"; (प्रा० गु० ४०, ६)।
उवट्टि—पू० का० क्रि० (सं० उद्वर्तय् >प्रा० उव्वट) चलते-फिरते हुए; (की० २, ६४)।
उवठवियइँ—क्रि० (सं० उप+स्थापय् >प्रा० उवट्ठव=उपस्थित करना) सम्पन्न की; "उवठवियइँ भोयणभूसणाइँ —भोजन-भूषण आदि विधियाँ सम्पन्न की; (ण० ५, ८, १७)।
उवडिंडिम—स्त्री० (सं० डिण्डिम>प्रा० डिंडिम) डुगडुगी, चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा; (सि० ७, २२)।
उवणिय—वि० (सं० उपनीत>प्रा० उवणीय, उवणिय=समीप में लाया हुआ) लिए हुए; (ण० २, १०, ३)।
उवण्णी—क्रि० भू० का० (सं० उप+√जन्>प्रा० उवजा=उत्पन्न होना) उत्पन्न हुई; "सहउयरि उवण्णी तुज्झु राय," (जस० ४, २६, १८)।

उवत्थि—स्त्री० सेणापुर की एक स्त्री, स्त्री-विशेष का नाम; (प० च० ३१, ५)।

उवदाण—न० (सं० उपदान) नजराना, भेंट, (भ०)।

उवदीव—न० (दे०) द्वीपान्तर, अन्य द्वीप; (दे० ना० मा० १, १०६)।

उवद्दव—पुं० (सं० उपद्रव>प्रा० उवदव, उवद्दव) १- ऊधम, दंगा, २- उत्पात, आकस्मिक बाधा; (भ०)।

√उवभुंज—(सं० उव+भुज्>प्रा० उवहुंज) उपभोग करना, कार्य में लगना। —इ सक० (जंबू० २, १३, ६)। -हि (जंबू० १०, ५, ५)।

उवभोय—पुं० (सं० उपभोग>प्रा० उवभोग, उवभोअ। १- किसी के व्यवहार का सुख, २- व्यवहार में लाना; (भ०)।

उवम—स्त्री० (स० उपमा) समरूपता, समता, साम्य; (सं० रा०)। —ा (उवमा) उपमा; (जस० ४, १४, २)।

उवमच्चु—पुं० पुरोहित; (प० च० ३१, २१)।

उवमिअइ—क्रि० (सं० उपमीयते) उपमा देना; (हे० ४१८)। उवमिज्जइ क्रि० उपमा देना (व० २, १६, ३)।

उवयंठएस—पुं० (सं० उपकंठदेश) समीप प्रदेश; (जस०)।

उवय—पुं० १, (सं० प्रा० उदय) उन्नति, उत्पत्ति (भ०)। २- (सं० उदक >प्रा० उदग, उदय) जल, (भ० १६, ४, ५)। —आगउ (सं० उदयागत) "उदयागउ भावसरुवें," उदयागत भाव (कर्मों) के अनुसार; (जंबू० ६, १, १८)।

उवयद्दि—पुं० (सं० उदयाद्रि) उदयाचल, पर्वत-विशेष, जहाँ सूर्य उदित होता है; (व० १, ५, ४)।

उवरंभा—स्त्री० विद्याधर नलकुव्वर की स्त्री०; (प० च०प १, ५७)।

√उवयर—(सं० उप+कृ> प्रा० उवयर, उवयरेइ =उपकार करना) —इ सक० वचना- "छत्तें छायउ कि उवयरइ" -क्या छत्र से आच्छादित होकर मृत्यु से वच सकता है; (ण० ६, ४, २)।

उवयरियउ—क्रि० भू० का० उतर पड़ा; (ण० ५, २, २)।

उवयायल—पुं० (सं० उदयाचल>प्रा० उदयायल) उदयाचल, पर्वत-विशेष; (व० ६, ८, ८) व्यावहारिक लोकोक्ति -"उवयायल-कडिणि परिट्ठि ओवि रवि परियरियइ तेएँण तोवि" —उदयाचल की तलहटी में स्थित रहने पर भी रवि क्या तेज से घिरा हुआ नहीं रहता? (व० ६, ८, ८)।

उवयार—पुं० १- (सं० उपकार>प्रा० उवयार) भलाई, हित; (प० च० १२, ११, ४)। २- (सं० उपचार>प्रा० उवयार) चिकित्सा, शुश्रूषा; (भ०)।

उवयारि—वि० (सं० उपकारिन्>प्रा० उवयारि) उपकारक; (ण० ५, ३, १)। अ- वि० (सं० उपकारिन्) (जस० ४, ३०, ४)।

उवयासिउ—सक०, भू० का० (प्रा०

अवयास = आलिंगन करना) आलिंगन किया; "राहव चन्दें पुणु उवयासिउ;" (प० च० ३५, २, ६)।
उवर—पुं० (सं० उदरम्) पेट; (सं० रा०; प० च० १३, ४, ५; प्रा० गु० ५, ६)। अव्य० (सं० उपरि > प्रा० उवरि) ऊपर, ऊर्ध्व; (जंबू० ७, ३, ३६)।
उवरल—वि० (सं० उपरि + ल) उद्वृत्त, वृद्धि को प्राप्त, जोड़ वाला, "उवरल-अंक लेक्खि कहु आणहु" —जोड़ के अंक को लिखकर लाओ; (प्रा० पैं० १, ३६)।
उवराउ—पुं० कोढ़ का एक भेद; (सि० १, १०)।
उवरिं—अव्य० (सं० उपरि > प्रा० उवरि) ऊपर, ऊर्ध्व; (प० च० १७, ८, १०)। उवरि; (ण० २, १, ५; सं० रा०; भ०; प० च० २, २, ६, सु० ८, ६)।
उवरिम—वि० (सं० उपरिम) ऊपर का, ऊर्ध्व-स्थित; (जंबू० ११, १०, १)।
उवरिल्ल—वि० (सं० उपरि + इल्ल (षष्ठ्यर्थ) ऊपर का; (जंबू० ११, १२, ६)।
उवरिल्लिय—वि० (सं० उपरि + तन > प्रा० उवरि + ल) ऊर्ध्व स्थित, ऊपर की; 'उवरिल्लियएँ विसालएँ भिउडि-करालएँ हेट्ठिम दिट्ठ परज्जिय', अर्थात् भौंहों से विकराल ऊपर की विशाल दृष्टि से नीचे की दृष्टि पराजित हो गयी; (प० च० ४, ६, ६)।
उवरोह—पुं० (सं० उपरोध > प्रा० उवरोह) अड़चन, बाधा; (जस० ४, २६, ६; भ०)।
उवरोहिउ—पुं० (सं० पुरोहित > प्रा० पुरोहिअ) पुरोहित, "अह तहिँ अत्थि तासु रायहो हिउ कविलभट्टु णामें उवरोहिउ' —उसी नगर में कपिल भट्ट नाम के राजा का प्रिय पुरोहित रहता था; (सुदं० ११, ५, ६)।
उवल—पुं० (सं० उपल > प्रा० उवल) पाषाण; (ण० ३, १६, १)।
उवलंभ—पुं० (सं० उपलम्भ > प्रा० उवलंभ) १- उपलब्धि, प्राप्ति; (जंबू० ८, ७, १३)। २- उपालम्भ, (जंबू० २, १६, ६)।
√उवलंभ—(सं० उप + लभ्) उलाहना देना। —इ सक०; (जंबू० ६, १३, ७)।
√उवलक्ख—(सं० उप + लक्षय् > प्रा० उवलक्ख) जानना, पहिचानना। —इ, सक० (सं० उपलक्षयति > प्रा० उवलक्खेइ) गु० ओळखवुं; (भ०; प्रा० गु० २, ४, २६)। उवलक्खहिँ—उपलक्षित की हैं; (व० १०, ४, ४)। उवलक्खियाइँ—क्रि० भू० का०, अवलोकन किया (जस० १, २४, ७)। —क्खिवि, पू० का० क्रि० (जंबू० १०, ८, ८)।
उवलक्खण—न० (सं० उपलक्षण > प्रा० उवलक्खण) पहिचान; (भ०)।
उवलक्खिय—वि० (सं० उपलक्षित > प्रा० उवलक्खिय) लक्ष्य किया हुआ, संकेत से बताया हुआ; (भ०)।
उवलग्ग—वि० (सं० उपलग्न) लगा हुआ; (भ०)।
उवलद्ध—वि० (सं० उपलब्ध > प्रा० उवलद्ध) प्राप्त; (जंबू० ६, १७, १५)।

उवलद्धिय—क्रि० भू० का० (सं० उपलब्ध>प्रा० उवलद्ध) प्राप्त की, "उवलद्धिय वहुविहकयमहिमा," नाना प्रकार की महिमा से युक्त एक जिन प्रतिमा प्राप्त की; (क० ५, ६, २)।

उवलभत्ता, उवलयभग्गा—स्त्री० (दे०) वलय, कंगन; (दे० ना० मा० १, १२०)।

उवललय—न० (दे०) सुरत, मैथुन; (दे० ना० मा० १, ११७)।

उववण—न० (सं० उपवन>प्रा० उववण) वगीचा; (ण० १, १३, ६)।

उववण्ण—(सं० उपपन्न) उत्पन्न; (जंवू०)।

उववयाणु—पुं० (सं० उपप्रदान=राजस्व, रिश्वत, प्रा० उव+पदाण) दाम, 'कि सामु भेउ कि उववयाणु, किं दण्डु अवुज्झिय- परिपमाणु' अर्थात् क्या साम, दाम और भेद ? क्या दण्ड जिसका परिणाम अज्ञात है ? (प० च० १६, ५, ४)।

उववस—पुं० (सं० उपवास>प्रा० उववास) उपवास, अनाहार; (प० च० ३०, १०, ६)।

उववसिउ—वि० (सं० उपवासित) उपवास किये हुए; (जंवू० २, १५, ७)।

उववाय—पुं० (सं० उपाय>प्रा० उवाय), हेतु, साधन उपाय; (संधि १६, ५, १३)। २- पुं० (सं० उपपाद), जन्म, जीवों की उत्पत्ति, "तिविहु जम्मु भासिउ जिणुराएँ, गब्भुववाय समुच्छण भेएँ" —जिनराज से गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छन के भेद से तीन प्रकार के जन्म वताए हैं। टि०—पोतज, जरायुज और अण्डज नामक जीवों का गर्भ जन्म होता है। देवों और नारकियों का उपपाद जन्म होता है। शेष जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है; (व० १० १२, ४)।

उववास—पुं० न० (सं० उपवास) उपवास, अनाहार; तुल० म० उपास; (ण० ६, १७, ३३; (भ०)।

उववासिय—वि० (सं० उपवासित) उपवास किया हुआ; (भ०)।

उवविट्ठ—वि० (सं० उपविष्ट>प्रा० उवविट्ठ) बैठा हुआ; (ण० २, १२, ७)।

उवविस—अक० (सं० उप+विश्) बैठना। उवविट्ठु- भू० का० बैठ गया; (विला०)। उवविसंत-कृ० (सं० उप+विश्+शतृ) (जंवू० ५, १, २१)। उवविसिवि-पू० का० क्रि०, बैठ कर; (विला०)।

उवसंतु—पुं० (सं० उपशान्त) उपशांत (मोह) (गुणस्थान); (व० १०, ३६, ६)।

√उवसप्प—(सं० उप+√सृप) समीप में जाना। उवसप्पिवि-पू० का० क्रि० पास आकर; (विला०)।

√उवसंधर—(सं० उपसं+हृ) उपसंहार करना। —इ सक० (सं० उपसंहरति) (भ०)।

उवसंत—वि० (सं० उपशान्त>प्रा० उवसंत) क्रोधादि- विकाररहित; (भ०)।

उवसग्ग—वि० (दे०) मंद, आलसी; (दे० ना० मा० १, ११३)।

उवसग्गु—पुं० (सं० उपसर्ग>प्रा० उवसग्ग=उपद्रव, बाधा) विघ्न; "उवसग्गु वि हवंतु पासिज्जइ"; विघ्न के उत्पन्न होते ही उसका विनाश निश्चित है, (प० ३, ३, १०)। २- पुं० उपसर्ग (व्याकरण संबंधी); (व० ६, १, १४)।

उवसप्पिणि—वि० (सं० उपसर्पिन्) समीप में जाने वाला; (म०)। स्त्री० (सं० उत्सर्पिणी) कालचक्र, "भरहेरावएसु उवसप्पिणि विहि मि पवत्तइ तह अवसप्पिणि," –भरत और ऐरावत दोनों क्षेत्रों में काल के उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी आरों का प्रवर्त्तन होता है; (जंबू० ११, ११, ७)।

उवसम—पुं० (सं० उपशम>प्रा० उवसम) १- इन्द्रिय-निग्रह, निवृत्ति, शांति क्रोध का अभाव; (म०)। भूषित- "उवसम विणयहिँ पयणिय पणयहिँ। भूसिउ पुरिसो विगयामरिसो"।—अर्थात् उपशम एवं विनय द्वारा प्रकटित प्रेम से भूषित पुरुष क्रोध-रहित हो जाता है, (व० ४, १३, १–२)।

√उवसम—(सं० उप+शमय्) क्रोध रहित होना, शांत होना; (जंबू० २, १८, ४)। उवसमिउ-भू० का० व्रत लिया "महव्वयइँ को वि को अणुव्वयइँ, को वि सिक्खावयइँ गुणव्वयइँ। को वि दिढु सम्मत्तु लएवि थिउ, पर रावणु एक्कु ण उवसमिउ,' अर्थात् कोई महाव्रत और कोई अणुव्रत। कोई शिक्षाव्रत और गुणव्रत। कोई दृढ़ सम्यकत्व लेता हुआ देखा गया, परन्तु रावण ने एक भी व्रत नहीं लिया; (प० च० ० १८, १, ६)।

उवसममण—पुं० (सं० उपशम+मनस्) उपशान्तमन, मन में क्रोध का अभाव होना; (जंबू० ३, ६, १५)।

उवसम-सिरि—स्त्री० (सं० उपशम+श्री) उपशमश्री, शांति के प्राचुर्य या लालित्य; (व० २, १०, १७)।

उवसमहर—वि० (सं० उपशम+धर) उपशमधारी, क्रोध-रहित; (प० ६, १५, ११)।

उवसमिय—वि० (सं० उपशमित) उपसम-प्राप्त, शांति-प्राप्त; (म०)।

उवसामण—न० (सं० उपशमन>प्रा० उवसामण) उपशांति, उपशम; (जंबू० ८, १०, १४)।

उवसामिअ—वि० (सं० उपशमित) शांत किया हुआ। उवसामिउ-भू० का०, उपशांत हो गया; (जंबू०६, ५,११)।

√उवसाव—(सं० उप+शद्,+शामय् >प्रा० उवसाम) क्रोध रहित होना, शांत होना। —मि (जंबू० २, ८, १०);

उवसाहिअ—वि० (सं० उपसाधित> प्रा० उवसाहिय)तैयार किया हुआ; (क० ५, २, ७)।

उवसे—पुं० (सं० उपदेश>प्रा० उवएस) उपदेश, शिक्षा, बोध; (सि० १. ४३)।

उवसेर—वि० (दे०) रति-योग्य; (दे० ना० मा० १, १०४)।

उवसेवय—वि० (सं० उपसेवक) सेवा करने वाला; (म०)।

उवसेवियं—वि० (सं० उप+सेवित) सेवित; (रि० १, १२)।

उवसोवणि—पू० का० क्रि०मोहित कर; "सव्वजणहों उवसोवणि देप्पिणु," (प० च० २, २, ७)।

उवसोह—स्त्री० (सं० उपशोभा > प्रा० उवसोहा) शोभा; (भ०)।

उवसोहिय—वि० (सं० उपशोभित > प्रा० उवसोभिय, उवसोहिय) सुशोभित; (भ०)।

√उवहस—(सं० उप+हस्) उपहास करना, हँसी करना। —इ सक० (सं० उपहसति); (भ०)।

उवहसिउ—वि० (सं० उपहसित > प्रा० उवहसिअ) जिसका उपहास किया गया हो वह, उपहास करने योग्य; (जंबू० १०, ३, ११)। उवहसिय; (क० ६, ४, १)।

उवहाण—न० (सं० उपधान = धार्मिक अनुष्ठान) तप-विशेष; (सचि० १६, १, १)।

उवहाणइं—न० (सं० उपाख्यान) उपदेशात्मक दृष्टांत; "जाणामि हउं उवहाणइं किं तुहुं चवहि बहुत्त," —मैं भी उपाख्यान जानती हूँ। तू क्या बहुत बतलाती है; (सुदं० ८, ६, ३)।

उवहाणय—न० (सं० उपधान > प्रा० उवहाण) तकिया; (प० च० २४, १, १०)।

उवहासइ—सक० (सं० उपहसति) उपहास करना, (भ०)।

उवहासण—पुं० (सं० उपहासन) उपहास करने वाला; (जंबू० ११, १, १०)।

उवहि—पुं० (सं० उदधि > प्रा० उवहि) समुद्र, सागर, (णं० १; ५, २; जंबू० ४, १६, १३; सि० २, ५; प० च० २, १०, ५; १३, २, ६)।

उवहुंजिय—त्रि० (सं० उपभुञ्जित) उपभुक्त; (जंबू० ४, ६, १२)।

उवाअ—पुं० (सं० उपाय > प्रा० उवाय) हेतु, साधन; (म० २, १६, ५)।

उवाउ—पुं० (व० ३, १३, ५)। उवाय—पुं० उपाय (ण० ६, १७, २०)।

उवाइउ—न० (सं० उप+याच् > प्रा० उवाय = मनौती करना; सं० उपयाचित प्रा० उवयाइय = मनौती) मनौती, किसी किसी काम के पूरा होने पर देवता की विशेष आराधना करने का मानसिक संकल्प, "उवाइउ किज्जइ घरि जि घरे"; (रि० १, ८)।

उवास—पुं० न० (सं० उपवास > प्रा० उववास) उपवास, अनाहार; (प्रा० गु० ३७, १)।

उवाहि—पुं० स्त्री० (सं० उपाधि) कर्मजनित विशेषण, "जीसेसनिरत्योवाहि सहइ जंगमेंण अजंगमु जेम वहइ," प्रत्येक शरीरी जीव सर्वथा अनात्मस्वरूप कर्मजनित शरीर से सुख-दुःखात्मक उपाधि को उसी प्रकार सहन करता है, जिस प्रकार जंगम (सजीव) वलीवर्दादिक प्राणी अजंगम (निर्जीव) शकटादि वस्तु को ढोता है; (जंबू० २, १, ७)।

उंविद—पुं० (सं० उपेन्द्र) विष्णु; (जस० १, ६, २०)। उंविदु—पुं० नारायण, (व० ३, २६, १)।

उंविदवज्जा—स्त्री० (सं० उपेन्द्रवज्रा > प्रा० उंविदवज्जा) ग्यारह अक्षरों के पाद

वाला एक छंद; (प्रा० पैं० १, ११६)।

उविउ—न० (दे०) शीघ्र, जल्दी; (दे० ना० मा० १, ८६)।

उविट्ठु—क्रि० भू० का० (सं० उप+√विश्=बैठना) बैठे; (महा० ६८, ८, १)।

√उविड—(सं०√विल भेदने to break, वेलयति; सं० उद्विल्लति) तोड़ना 'गोरू उवेल' —गोरूपाण्युद्वेलयति। 'उविड' —उद्विलति। विल भेदने। (उ० व्य० प्र०, ५२–१५)।

उविय—वि० (सं० उपेत>प्रा० उवेय) सहित, युक्त; (भ०)।

√उविस—(सं०√विश् प्रवेशने, सं० उद्विशति) प्रवेश करना; 'खांत उविस'—खाद्यमानमुद्विशति। विश प्रवेशने। (उ० व्य० प्र० ५२–५)।

उवेउ—पुं० (सं० उद्वेग) १. क्षोभ, उत्तेजना, २. कांपना, हिलना; (सं० रा०)।

उवेल—सक० (सं०√विल भेदने to break, वेलयति, सं० उद्वेलयति) तोड़ना; (उ० व्य० प्र०, ५२–१५)।

उवेस—पुं० (सं० उद्देश) नाम-निर्देश-पूर्वक वस्तु-निरूपण; (रा० २७)।

उवोवरणट्ट—पुं० नाटकों के उपकरण (वस्त्र, मुकुट आदि); (ण० ६, २१)।

उव्व—क्रि० वि० (सं० पूर्व) पहले; (सं० रा०)।

√उव्वग्ग—(सं० उप+वल्ग्>प्रा० ओवग्ग, उव्वग्ग) आक्रमण करना।—इ सक० (सं० उद्वल्गति) (भ०)।

उव्वट्ट—वि० (दे०) १. रोग-रहित, २. गलित; (दे० ना० मा० १, १२६)।

√उव्वड—(सं० उत्+पत्> प्रा० उप्पड) कूदना, ऊँचा जाना; उड़ना; —इ अक० "उव्वडइ भिडइ पाडइ तुरङ्ग महि कमइ भमइ भामइ रहङ्ग" (प० च० २६, ६, ५)।

√उव्वम—सक० (सं० उद्+वम्> प्रा० उव्वम) उलटी करना, "णं मेइणि भीए उव्वमेइ" —मानों मेदिनी भय से वमन करने लगी; (क० ४, १४, ४)।

उव्वर—पुं० (दे०) घर्म, ताप; (दे० ना० मा० १, ८७)।

√उव्वर—सं० उद्+वृ>प्रा० उव्वर =शेष रहना, बच जाना) —इ अक० बचना, "मरणदिणे उव्वरइ" मरने से बचना; (महा० ६६, ६, २; ण० ६, ४, ३)। उव्वरहि—बचेंगे; (म० १, २६, ४)। उव्वरिया—भू० का० अवशिष्ट रहे. बच गए. (प० च० ५, ११, ३)। शरण में रख लिया। उव्वरेमि—अक० उबर जाना; "सुहृदंसणु चिंतइ उव्वरेमि अभया चिंतइ सुंदरु धरेमि—सुदर्शन सोचता, मैं उबर जाऊं या बच जाऊं; अभया सोचती, इस सुंदर को पकड़ रखूं, (सुदं ८, ३१, ३)। उव्वरिउ—क्रि० भू० का० उबर गया. निकल गया, "जइ कहमवि उव्वरिउ हउं," (सुदं० ८, २४, १७)।

उव्वरिअ—वि० (दे०) अधिक, बचा

हुआ, अवशिष्ट; (दे० ना० मा० १, १३२)।

उव्वरिआ—वि० (सं० उद्वृत्त>प्रा० उव्वरिआ) वाम भाग 'सरिस सरिसा पंति, उव्वरिआ गुरुलहु देहु' समान पंक्ति में उद्वृत्त (वाम भाग) में क्रमशः गुरु लघु देना चाहिए; (प्रा० पैं० १, १४)।

उव्वरिय—वि० (दे०) अवशेष, "उव्वरियपुण्णदेवीरएनु' देवी के प्रति भक्ति का पुण्य अवशेष है; (जस० ४, २०, ६)। —य अवशिष्ट; (प० च० ४०, ३, १०)।

√उव्वल—(सं० उद्+वल्) पीछे लौटना। उव्वलंत—कृ० (उद्+वल् शतृ); (जंबू० ४, २१, ११)।

उव्वसि—स्त्री० (सं० उर्वशी>प्रा० उव्वसी) एक अप्सरा; (ण० ५, ६, ३)। वि० (सं० उद्वस>प्रा० उव्वस) उजाड़; (क० ८, ११, ८)।

उव्वसी—स्त्री० उर्वशी नामक छंद; "सहइ छंदो इमो उव्वसी भासिओ"; (सुदं० ७, ७, १०)। २. रावण की स्त्री; (प० च० ७४, ८)।

√उव्वह—(सं० उप+वह्) धारण करना, उठाना। —इ सक० उद्वेलित होना, 'जाणमि करि खन्धारुहणु अच्चन्तु होइ भय-भासुरउ। णवर पहत्थ मज्भु मणहों', उव्वहइ णवल्लु णाइं सुरउ', अर्थात् मैं जानता हूँ कि हाथी के कंधे पर चढ़ना अत्यन्त खतरनाक होता है, फिर भी हे प्रहस्त! मेरा मन नए सुरति-भाव से उद्वेलित हो रहा है;" (प० च० ११, ५, ६)। उव्वहन्ति—क्रि० व० उठाना, 'किह वाणर, गिरिवर उव्वहन्ति,' अर्थात् वानर पहाड़ उठा सकते हैं? (प० च० १, १०, ६)।

उव्वहण—न० (सं० उद्वहन>प्रा० उव्वहण) १. धारण, २. उत्थापन (भ०)। ३. महान् आवेश; (दे० ना० मा० १, ११०)।

उव्वा—स्त्री० (दे०) घर्म, ताप; (दे० ना० मा० १, ८७)।

उव्वाअ, उव्वाइअ—वि० (दे०) खिन्न, परिश्रान्त; (दे० ना० मा० १, १०२)।

उव्वाउल—पु० (दे०) १. गीत, २. उपवन; (दे० ना० मा० १, १३४)।

उव्वाह—वि० (दे०) १. विस्तीर्ण, विशाल; २. दुःख रहित; (दे० ना० मा० १, १२६)।

√उव्वार—(सं० उद्+वर्तय्) त्याग करना, छोड़ देना। उव्वारिज्जइ—सक० (सं० उद्वार्यते) छोड़ देना; (हे० ४३८, १)।

√उ+व्वास— (उद्+वासय्) दूर करना, देश निकाला देना, उद्वासित करना। —इ सक० (प्रा० पैं० १, १४४)।

उव्वाह—पुं० (दे०) घर्म, ताप; (दे० ना० मा० १, ८७)।

उव्वाहिअ—वि० (दे०) फेंका हुआ; (दे० ना० मा० १, १०६)।

उव्वाहुल—न० (दे०) १. उत्सुकता, उत्कण्ठा। २. वि० अप्रीतिकर; (दे० ना० मा० १, १३६)।

उव्वाहुलिय—वि० (दे०) उत्सुक, उत्कण्ठित; (भ०)।

उव्विविर—वि० (सं० उद्विग्न+इर) उद्विग्न, विह्वल; "उव्विविर सो णिउ धुणइ अंगु–विह्वल होकर अपने अंग को ऐसे छटपटाने लगे; (सुदं० २, १४, ६)।

उव्विड्डिम—वि० (दे०) १, अधिक प्रमाण वाला; २. मर्यादा-रहित, निर्लज्ज; उव्विड्डिमो अधिक प्रमाणो विमुक्तमर्यादश्चेति द्वयर्थः;" (दे० ना० मा० १, १३४)।

उव्विन्न—वि० (सं० उद्विग्न>प्रा० उव्विन्न) संतप्त, पीड़ित, शोकग्रस्त, चिंतित; (सं० रा०)।

√उव्विल्ल—(सं० उद्+वेल्) चलना, कांपना, फैलना, पसरना। –इ फैलना, पसरना; (भ०)। उव्वेल्लइ–क्रि० व० नृत्य करना, नृत्य की तरह तेजी से चलना; (प० च० ३४, ३, ८) उव्वेंल्लवि–पू० का० क्रि० घूमने के लिए; (प० च०६, २, ४)।

उव्वेल्लिउ—भू० का० प्रारम्भ किया, 'केहि मि उव्वेल्लिउ भरहुत्तउ,' किसी ने भरत नाट्य प्रारम्भ किया; (प० च० २, ४, ५)।

उव्विव्विर—वि० (दे०) उद्विग्न; "हुओ उव्विव्विर तासु पियाउ" (सुदं० ११, १, १७)।

उव्वीढ—वि० (दे०) खोदा हुआ; (दे० ना० मा० १, १००)।

उव्वीरण—पुं० (दे०) विदारण, चूर्णन; (प० च० ४७, ४, ५)।

उव्वुण्ण—वि० १. (सं० उल्बण, उल्वण =दृढ़) उद्भट, प्रबल (दे० ना० मा० १२३)। २. (दे०) उद्विग्न, उत्सिक्त (अभिमानी, क्रोधी, चंचल, विकल); (दे० ना० मा० १२३)।

उव्वेअ—वि० कामोद्विग्न; (जंबू० ६, ३, ६)।

उव्वेविर—वि० (सं० उद्विग्न+इर) उद्विग्न, खिन्न, "उव्वेविरु उम्मग्गें धावइ" —कोई उद्विग्न होकर उन्मार्ग से भागा; (जंबू० ६, १, १०)।

उव्वे—क्रि० (सं० उपैति>प्रा० उवि, उवे; उवेइ=निकट आना, प्राप्त होना) पास आना; (की० ३, ४०)।

उव्वेअ—पुं० (सं० उद्वेग>प्रा० उव्वेग) मनोवेग, चित्त की व्याकुलता; (की० ३, ५६)।

उव्वेइय—वि० (सं० उद्वेजित) उद्विग्न, "संसारहों उव्वेइयउ" संसार से उद्विग्न हो गया हूँ; (जंबू० २, १६, १०)।

उव्वेक्खिय—वि० (सं० उपेक्षित> उप्पेक्खिय) जिसकी उपेक्षा की गई हो, तिरस्कृत; (प० च० २६, २, ४)।

उव्वेढ—वि० (सं० उद्वेष्टित>प्रा० उव्वेढिअ) उन्मुक्त, बंधन रहित किया हुआ; (प० च० १८, १०, ४)।

√उव्वेढ—(√सं० उद्+ वेष्ट्) १. बाँधना, २. पृथक् करना, बंधन-मुक्त करना। उव्वेढावियउ–सक०भू० का०> बन्धन मुक्त किया, 'रणउहें पइसन्तें वइरि वहन्तें रावणु उव्वेढावियउ' अर्थात् युद्धमुख में प्रवेश कर, दुश्मनों को खदेड़

कर रावण को मुक्त किया,' (प० च० २०, ७, ६)। उव्वेढिवि–पू० का० क्रि० लपेट कर, बांध कर, (ण० ३, १७, १०)।

उव्वेढाविय—वि० (सं० उद्वेष्टित) बंधन-मुक्त किया हुआ (freed from siege); (प० च० २१, ७, ४)।

उव्वेढिअ—वि० (सं० उद्वेष्टित) १. बंधन-रहित किया हुआ, २. परिवेष्टित; (दे० ना० मा० ४, ४६)।

उव्वेत्ताल—न० (दे०) निरंतर रोदन; (दे० ना० मा० १, १०१)।

उव्वेलरं—न० (दे०) १. ऊपर भूमि, २. जघन (कटि देश, नितंब) स्थानीय केश "उव्वेलरं खिलभूमी जघनरोमाणि च;" (दे० ना० मा० १, १३६)।

उव्वेल्लिअ—वि० (सं० उद्वेल्लित> प्रा० उव्वेल्लिअ) उद्वेलित; "तह खिल्लहिँ किल्लिउ णउ उव्वेल्लिउगयकुमरु"–उसी प्रकार गजकुमार खीलों से कीले जाने पर भी उद्वेलित नहीं हुआ; (सुदं ११, ६, १०)।

उव्वेव—पुं० (सं० उद्वेग>प्रा० उव्वेग) १. चित्त की आकुलता, २. मनोवेग; (भ०)।

उव्वेविरु—वि० (सं० उद्+वेप्+इर) कांपता हुआ, "उव्वेविरु हिंडइ महिहिँ दीणु" –(वह) कांपता हुआ हीन भाव से पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा; (क० ५, १५, २)। २. वि० (सं० उद्विग्न>प्रा० उव्विग, उव्विग्गिर) उद्विग्न, उद्वेग करने वाला; (सुदं० ४, ३, ७)।

उसणसेण—पुं० (दे०) बलभद्र; (दे० ना० मा० १, ११८)।

उसभ—पुं० प्रथम तीर्थंकर; (प० च० १, ३५)।

उससंतिया—वि० (सं० उत्+श्वस्) उसाँसे लेती हुई; (सं० रा०)।

√उस्सस—(सं० उत्+श्वस्>प्रा० उस्सस) उच्छ्वास लेना, साँस लेना। उसइ–अक० "..."उसइ करहओ." करभ श्वांस लेने लगा, (सुदं० ६, ३, ६)।

उसह—न० (सं० औषध>प्रा० ओसह) औषध, दवाई, भैषज; (क० ६, १०, १२)। पुं० धायईसंड अरिंजयपुर का राजा; (प० च० ५, १०६)। —सेण पुं० उसह–जिन के गणधर; (प० च० ४, ३५)।

उसार—न० (दे०) कमल–दण्ड, बिस; (दे० ना० मा० १, ६४)।

उसास—स्त्री० (सं० उच्छ्वास>प्रा० उस्सास) श्वास; साँस अन्दर खींचना, साँस बाहर निकालना; (सं० रा०)।

उसिणीस—पुं० (सं० उष्णीष) फेंटा, साफा, पगड़ी, मुकुट, पहचान का चिह्न (प्रा० गु० १३, १३)।

उसीसइ—पुं० (सं० उच्छीर्षकम्) सिर; "विहि विद्धाता वसइ उसीसइ," तुल० गु० उशीसुं; (प्रा० गु० ५, ३४)।

उसुअ—पुं० (दे०) दोष; (दे० ना० मा० १, ८६)।

उसूर—पुं० (सं० उत्सूर) सायंकाल संध्या; तुल० गु० असूर; (प्रा० गु० १६, १४)।

√उस्सस—(सं० उत्+श्वास्) उच्छ्वास लेना, ऊँचा श्वास लेना। उससंतिया–

उससि लेती हुई; (सं० रा०)। उसस्से—पुं० (सं० उच्छ्वास); (की० ४, २०५)।

उस्सा—स्त्री० (सं० उस्रा>प्रा० उस्सा) गैया, गौ; (दे० ना० मा० १, ८६)।

उस्से-निस्से—पुं० (सं० उच्छ्वास-निश्वास) श्वास-प्रश्वास; (की० ४, २०५)।

उहय—वि० (सं० उभय>प्रा० उहय) दोनों; (प० च० ४, ११, ६; ण० ७, ६, १४)।—मई वि० (सं० उभयमति) दोनों प्रकार की प्रतिभा से संपन्न (काव्य-रचना व व्याख्या करने की); (जंबू० १, २, १०)।

उहर—पुं० जलचर-विशेष, सुंसुयार; (प० च० १, २, २; ३, ५, ६)।

उहु—अव्य० (सं० प्रा० अहो) 'हे' सम्बोधक शब्द; (प० च० ७, ३, ५)। संकेतवाचक सर्व०—वह (प० च० २६, १२, ६)।

ऊ

ऊ—पुं० (सं० प्रा० ऊ) अपभ्रंश वर्ण-माला का षष्ट स्वर-वर्ण; जिसका उच्चारण ओष्ठ से होता है।

ऊंचउ—वि० (सं० उच्च) ऊंचा; (रा० १२)।

ऊँप्पत्ति—स्त्री० (सं० उत्पत्ति) जन्म; (की० ३, ११०)।

ऊँमग्गे—स्त्री० (दे०) जोश; उमंग, चित्त का उभाड़, (की० ४, १७७)।

ऊआ—स्त्री० (दे०) यूका, जू; (दे० ना० मा० १, १३९)।

ऊआस—पुं० न० (सं० उपवास>प्रा० उववास) अनाहार, वह व्रत जिसमें भोजन छोड़ दिया जाता है; (प्रा० गु० ६, ६)।

ऊखल—पुं० न० (सं० उदूखल>प्रा० उऊखल, उऊहल) उलुखल, ओखली; तुल० गु० उखळ; (संधि० ११, ६, ६)।

ऊगट—पुं० (सं० उद्वर्तन) उवटन; तुल० गु० ऊकटो; (प्रा० गु० २२, १०)।

ऊजल—वि० (सं० उज्ज्वल) निर्मल, स्वच्छ; (रा० ८)।

ऊणदिअ—वि० (दे०) आनन्दित, हर्षित; (दे० ना० मा० १, १४१)।

ऊण—वि० (सं० ऊन) न्यून, हीन; (प० च०)।—वीसइम वि० (सं० ऊन-विंशतितम) उन्नीसवाँ; (प० च०)।

ऊणय—वि० (दे०) उत्सुक; (प० च० ४५, १०, १०)।

ऊणुरायउ—क्रि० भू० का०, अनुरक्त हुआ; (ह०)।

√ऊतर— (सं० अव+तृ>प्रा० उत्तर) उतरना, उतरना। ऊतरिअउ, "सोइर वानाहं सवहं ऊतररिअउ' (उसके वर्ण से) सब वर्णों का सौंदर्य उतर गया है, (रा० ३१)।

ऊपर—अव्य० (सं० उपरि>प्रा० उप्परिं, उवरि) ऊपर; (रा० २१)। ऊपरि; (रा० २६)।

ऊबाहुल—वि० (दे०) उत्कण्ठित; (प्रा० गु० २३, ३८)।

ऊभव—वि० (सं० ऊर्ध्व>प्रा० उद्ध)

उठा हुआ, ऊँचा; खड़ा हुआ; तुल० गु० उभो; (प्रा० गु० १२, ३१)।

ऊमाहउ—पुं० (दे०) उत्कण्ठा; (प्रा० गु० २३, १६)।

ऊमाही—वि० (दे०) उत्कण्ठिता, "प्रिय-ऊमाही गइ गिरिनारि"; (प्रा० गु० २३, ३६)।

ऊमित्तिअ—न० (दे०) दोनों पार्श्वों में आघात करना; (दे० ना० मा० १, १४२)।

ऊम्माहियउँ—क्रि० भू० का० (सं० उत्कण्ठितः) उत्कंठित हुआ; (प्रा० गु० १०, ५३)।

ऊरं—पुं० न० (सं० उरस् >प्रा० उर) छाती, वक्षःस्थल "कि तुरएँ ऊरं ढंकिएण," —और वह तुरंग कैसा, जिसका उरस्थल ढका हुआ हो, (सुदं० ११, ६, ८)।

ऊर—पुं० न० (सं० ऊरस् >प्रा० उर) उरस्थल, छाती; (की० ४, ३२)। २. पुं० (दे०) १. ग्राम, २. संघ, समूह; (दे० ना० मा० १, १४३)।

ऊरणी—स्त्री० (दे०) मेष, भेड़; (दे० ना० मा० १, १४०)।

ऊर पूर—वि० पूर्ण रूप से भरा हुआ; (की० ४, ३३)।

ऊरय—वि० (सं० पूरक) पूर्ति करने वाला; (भ०)।

ऊरिण—वि० (सं० उऋण) ऋण-मुक्त; (प्रा० गु० ५, ४३)।

ऊरिया—वि० स्त्री० (सं० पूरित) भरी हुई, पूरिता; (जंबू)।

ऊरीकय—वि० (सं० अंगीकृत) अंगीकृत; (संधि० १८, ३, ४)।

ऊरु—पुं० (सं० प्रा० ऊरु) जंघा, जाँघ; (चं० २, १०)। वि० (सं० पूर्ण) पूर्ण; (भ०)। —व पुं० (सं० ऊरु); (प० च० ५५, १, १५)।

ऊल—पुं० (दे०) गति-भंग; (दे० ना० मा० १, १३६)।

ऊवडीय—क्रि० भू० का० (सं० उत्पतित) उतर पड़े, "तहो उवरि खणद्धे ऊवडीय" क्षणार्द्ध में वे उस पर्वत के ऊपर उतर पड़े; (क० ५, ४, ७)।

ऊवँ—पुं० (सं० उष्मन्) गर्मी, गर्माहट, ग्रीष्म ऋतु; (उ० व्य० प्र० ५१-१६)।

ऊस—स्त्री० (सं० अवश्याय >प्रा० उस्सा, ओसा) ओस; (म० १, १४, ८)।

ऊसण—न० (दे०) गति-भंग; (दे० ना० मा० १, १३६)।

ऊसत्थ—पुं० (दे०) १. जम्भाई, २. वि० आकुल; (दे० ना० मा० १, १४३)।

√ऊसर—(सं० + उत् + सृ) १. खिसकना, २. दूर होना; ३. त्यागना। —इ अक० (सं० उत्सरति >प्रा० ऊसरइ) (भ०)। ऊसरि–क्रि० आ० (सं० अपसर = हटना) हट जाओ; "जइ वीहेहि मयण तो ऊसरि," —यदि डर लगता है तो हे मदन ! यहाँ से हट जाओ; (म० २, २२, ८)।

ऊसर—न० (सं० ऊषर) क्षार भूमि, वह भूमि जिसमें रेह अधिक हो और कुछ न पैदा होता हो; (ज़स० १, १६, २)।

—छेत्त न० (सं० ऊपरक्षेत्र>प्रा० ऊसर+छेत्त) क्षार-भूमि, जिसमें बीज नहीं पैदा होता हो; (सुदं० ६, ८, ६)।

ऊसल—वि० (दे०) पीन, पुष्ट; (दे०- ना० मा० १, १४०)।

ऊसविस—वि० (दे०) १. ऊँचा किया हुआ; २. उद्भ्रान्त; (दे० ना० मा० १, १४३)।

√ऊसस—(सं० उत्+श्वस्) उच्छ्वास लेना, ऊँचा श्वास लेना। —इ (व० ६, ६, ४)। ऊससेइ-क्रि०, व०, श्वास ले पाना, "तहों भीए कोवि ण ऊससेइ," उसके भय से कोई श्वास भी नहीं ले पाता; (क० २, ११, २)।

ऊसह—न० (सं० औषध>प्रा० ओसह) दवाई, भैषज; (क० ६, २३, ५)।

ऊसाअंत—वि० (दे०) खेद होने पर शिथिल; (दे० ना० मा० १, १४१)।

ऊसाइअ—वि० (दे०) विक्षिप्त, २. उत्क्षिप्त; (दे० ना० मा० १, १४१)।

√ऊसार—(सं० उत्+सारय्) हटाना, दूर करना, त्यागना। —इ, सक० (सं० उत्सारयति) (भ०)।

ऊसार—पुं० १. (सं० उत्सार) परित्याग; (भ०)। २. पुं० (दे०) गर्त-विशेष; (दे० ना० मा० १, १४०)।

ऊसारिअ—वि० (सं० अपसारित) दूर किया हुआ; (भ०)।

ऊसारिय—वि० (सं० अपसारित) दूर किया हुआ, दूर-दूर हटाया हुआ; (जंबू० ७, ७, १२)।

ऊसास—पुं० (सं० उच्छ्वास>प्रा० ऊसास) लंबी सांस, ऊपर को चढ़ती हुई श्वास; (भ०)।

ऊसिय—वि० (सं० उत्सुक>प्रा० ऊसुअ) उत्सुक, उत्कण्ठित; (प्रा० गु० १४, २७)।

ऊसुंभिअ—न० (दे०) रोदन-विशेष, गला बैठ जाय ऐसा रुदन, (दे० ना० मा० १, १४२)।

ऊसुरुसुंभिअ—(दे०) देखो ऊसुंभिअ; (दे० ना० मा० १, १४२)।

ऊहट्ठ—वि० (दे०) उपहसित; (दे०- ना० मा० १, १४०)।

ऊहणु—न० (सं० ऊहन) मोल-भाव, तर्क-वितर्क; "किउ ऊहणु तें सहुं टक्कएण" —उस टक्क (पंजाब देशवासी) के साथ मोल-भाव किया; (क० ८, १६, २)।

ऊहसिय—वि० (सं० उपहसित) जिसका उपहास किया गया हो वह; (दे० ना०- मा० १, १४०)।

ऋ

ऋ—(सं० ऋ)—संस्कृत या नागरी वर्णमाला का स्वर। इसका उच्चारण-स्थान मूर्द्धा है। वैदिक और लौकिक संस्कृत में इसका स्वल्प प्रयोग हुआ। इसका उच्चारण प्राकृतों में समाप्त हो गया। अपभ्रंश में प्राकृतों की अपेक्षा कुछ अधिक प्रयोग मिलते हैं। हेमचंद्र ने तृणु और तृणु, सुकिदु और सुकृदु, गृहण्णइ, घृण आदि में ऋकार रखा है।

कीतिलता में 'ऋण, शृंगार, शृंगाटक' और 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' में 'ऋतु' का प्रयोग उपलब्ध है। वस्तुतः अपभ्रंश में 'ऋ' का अ, इ, उ, ए, अर, रि में वर्ण-विकार हो गया है। आजकल लोग इसके वास्तविक उच्चारण को भूल गए हैं और 'रि' की तरह उच्चारण करते हैं।

ऋतु—पुं० (सं० ऋतु) मौसम; (उ० व्य० प्र०, १५–२४)।

ऋण—न० (सं० ऋण>प्रा० रिण) ऋण, कर्ज; (की० २, ६६)।

ए

ए—पुं० (सं० प्रा० ए) स्वर-वर्ण-विशेष। इसका उच्चारण स्थान कण्ठ और तालु है।

एं'न्ह—सर्व० (सं० एषाम्) उनको; (उ० व्य० प्र० १९–३०)।

एं'रंडु—पुं० (सं० एरण्ड>प्रा० एरंड) एरण्ड का वृक्ष, वृक्ष-विशेष; सुभाषित—"कप्पतरु तोडि एं'रंड से वव्वए" अर्थात् 'कल्पवृक्ष को तोड़कर ऐरंड को बोता है;' (भावना संधि प्रकरण)।

ए—१. सर्व० (सं० एतत्>प्रा० एअ) यह; (प्रा० पैं० २, ११; उ० व्य० प्र० १९–१८)। २. अव्य० (सं० प्रा० ए) आह्वान सूचक अव्यय, "सुसाहूण जो देइ ए मच्चलोए" (म० १२, ३, १८)। ३. अव्य० (सं० एव) ही। सोए (रा० २४)। ४. एअं–सर्व० यह; (प्रा० पैं० २, ६६)। ५. एअ–सर्व० यह (क० १, ११, ५)। ६. एउं–सर्व० (सं० एतत्) यह; (भ०)। —जि (सं० एतदेव) यह ही, (भ०)। ७. एउ–सर्व० (सं० एतत्) यह; 'एउ ण जाणहुँ कहिँ गउ सन्दणु' अर्थात् यह भी पता नहीं लगा कि रथ कहाँ गया; (प० च० १७, ७, २; रा० २९; प्रा० पैं० २, १०)। 'एउ नाम जं मुणिणा लइयउ,' (जंबू० २, १३, ७)।

ए—सक० (सं० आ+इ) आना, आगमन करना।

एइ—क्रि० व० (सं० आयाति, सं० आ+इ>प्रा० ए, एह; भ० का०—एहिइ) आना; "णवजोव्वणु णासइ एइ जरा," नए यौवन का नाश होता है और बुढ़ापा आता है, (ण० २, ४, ५, हे० ४०६)।

एज्ज–क्रि० आना; (प० च० ३७, १३, ३)।

एंत—व० कृ० (सं० आ+इ>+शतृ>प्रा० ए, एंत=आना, आगमन करना) आते हुए; (ण० ६, ३, ७, जस० ३, २२, १)। एन्तउ–कृ० आते हुए; (प० च० ८, ९, ७)। एन्तु–भू० का०, आता, (हे० ३५१, १)।

एँअदह—वि० (सं० एकादशन्>प्रा० एआरह) ग्यारह; (प्रा० पैं० १, ८६)।

एआईसेहि—वि० (सं० एकविंशति) इक्कीस; तुल० राज० अक्कीस, इक्कीस, (प्रा० पैं०)।

एआरह, एआरहहि, एआरहि—वि० संख्यावाचक (सं० एकादशन्) ग्यारह; (प्रा० पैं०)।

एइंदिय—वि० (सं० एकेन्द्रिय एक)

एक इन्द्रिय वाले जीव; (वं० १०, ५, ६)।

एइ—सर्व० (सं० एते) ये, (हे०, ३३०, ३)।

एऊणविसा—वि० (सं० एकोनविंशत्) उन्नीस; (प्रा० पैं० २, १८६)।

एए—सर्व० (सं० एतत्>प्रा० एअ) यह; (ण० १, १७, ४)। (सं० एते) ये; (जंबू० १, १८, १०)। -ण वि०(सं० एतेन) अकेला; (जंबू० ५, ५, ७)।

एक—वि० (सं० एक>प्रा० एक्क) (की० १, ३६; भ०)। एकु–वि० एक (रा० २८)। एक्क, एक्का, एक्कइ, एक्कउ, एक्के, एक्क, एक्कं; सविभक्ति-करूप एक्के, एक्केक्के, एक्केण; (प्रा०-पैं०)। —चूड पुं० विद्याधर,वंशीय राजा; (प० च० ५, ४५)।

एकक्के रंगे—पुं० (सं० एकैक+रङ्ग) एक के साथ एक का युद्ध, तुमुल युद्ध; की० ४, १७८)।

एकचोई—पुं० एक चोव पर खड़ा होने वाला तम्बू, (की० ४, १२०)।

एकट्ठ—क्रि० वि० (सं० एकत्र) एकट्ठा, एक जगह; (म० २, २४, ३)।

एकत्थ—वि० (सं० एकस्थ) एक साथ; (की० १, ६४)।

एकलडइ—वि० (सं० एकल+डह (प्र०) एकाकिन्, अकेला; तुल० गु० एकलडे; (संधि० १३, ५, २)। एकलडउ–वि० एकाकी; (प्रा० गु० १, ३८)।

एकल्ल—वि० (सं० एकिकन्>प्रा० एक-लिय) अकेला, तुल० म० एकला; (क० ७, १०, १०; भ०) एक्कल्लिय–एका-किनी (भ०)। एकल्लु; (सि० २, १४)।

एकवीसतो—वि० (सं० एकविंशतिः) इक्कीस; (प्रा० पैं० १, १८७)।

एकहा—वि० (सं० एकशः) एक-एक; (की० ४, ८८)।

एक्कै—वि० (सं० एकमेव) एक ही; (उ० व्य० प्र० ३७, ३०)।

एक्कंग—वि० (सं० एकाङ्ग) अकेला; (भ०)। न० (दे०) चंदन, सुगंधि काष्ठ-विशेष; (दे० ना० मा० १, ४४)।

एक्कंत—पुं० (सं० एकल>प्रा० एक्कंत) निर्जन स्थान; तहिँ अंधकूम एक्कंति ठीउ, "वहाँ एकांत में एक अंधकूप था; (क० ७, ४, ४)।

एक्कंतर—वि० (सं० एकान्तर) एक का अंतर देकर पड़ने या होने वाला; एक के वाद होने वाला; (भ०; क० ५, १०, २; जंबू० ३, ६, १२)।

एक्क—वि० (सं० एक>प्रा० एक्क) एक, प्रथम संख्या (ण० १, १४, ६)। —इ वि० (सं० एकाकिन्) अकेला; (भ०)। —सि अव्य० (सं० एकशस्> प्रा० एक्कसि) एक वार; (सुदं० ७, १३, ८)। —णउय वि० (सं० एकनवत) ९१ वाँ; (प० च०)। —ासीय वि० (सं० एकाशीत) ८१ वाँ (प० च०) —ोत्तरसय वि० (सं० एक्कोत्तरततम) १०१ वाँ (प० च०)। लो०–'एक्कें-हत्थें ताल कि वज्जइ' –एक हाथ से ताली नहीं वजती; (सु० च०)। एक्कु–वि० एक (हे० ४२२, १; सि० १, २२)।

एक्क—वि० (दे०) प्रेम-तत्पर; (दे० ना० मा० १, १४४)।

एक्कइया—अव्य० (सं० एकदा) एक वार; (जस० ४, ३०, ३)।

एक्कई—वि० (सं० एकाकिन्) एकाकी, अकेला; (भ०)।

एक्कओ—वि० (सं० एक+अपि >प्रा० एक्क+अवि) एक भी; (की० ३, ११८)।

एक्कखंधु—पुं० (सं० एक+स्कन्ध) खंड, विभाग, प्रदेश; "णहि ठिउ एक्क-खंधु तिल्लोक्कु वि चउदहरज्जुमाणओ" –यह त्रैलोक तो आकाश में चौदह रज्जु प्रमाण एक स्कंध के समान स्थित है। टि०–इस समस्त लोक को एक महास्कंध कहा जाता है, उसके अर्धभाग को जिनेन्द्र देश कहते हैं, और आधे के भी आधे भाग को प्रदेश कहते हैं; (जस० ४, १२, २)।

एक्कखुर—वि० (सं० एकक्षुर) एक खुर वाला पशु; (सींग वाले चौपायों के पैर का निचला भाग जो बीच में से फटा होता है); (जंवू० ४, १६, ७)।

एक्कघरिल्ल—पुं० (दे०) देवर, पति का छोटा भाई; (दे० ना० मा० १, १४६)।

एक्कचित्त—पुं० (सं० एक+चित्त) एकाग्र चित्त; एक्क चित्त जइ सेविअइ धुअ होसइ परकार' (की० ३, ६२)।

एक्कठाण—पुं० (सं० एक+स्थान) एक स्थान; (जस० ३, ३०, १६)।

एक्कत्त—क्रि० वि० (सं० एकत्र) एक-ट्ठा, एक जगह; (जंवू० ११, १२, ८)।

एक्कत्तहें—अव्य० (सं० एकतः) १. एक ओर से, एक ओर, २. एक एक करके; (प० च० १८, ४, ३)।

एक्कत्थ—वि० (सं० एकस्थ) एकत्र; (की० १, ५०)। वि० (सं० एकस्थ) एक व्यक्ति या स्थान पर केंद्रित, एकत्र; (जंवू० १०, १०, १३)।

एक्कन्त—वि० (सं० एकान्त>प्रा० एक्कंत) एकांत; निर्जन; (भ०)।

एक्कवीसती—वि० (सं० एकविंशत्) इक्कीस; (प्रा० पैं०)। एअबीसत्ता, एआईसेहिं; (प्रा० पैं०)।

एक्कमण—वि० (सं० एक+मनस्> प्रा० एक्कमण, एगमण) एकाग्रचित्त, तल्लीन, एकाग्रमन; (प० च० १२, १२, ६)।

एक्कमित्त—वि० (सं० एकमात्रम्) एक ही, केवल एक, अकेला; "एक्कमित्तएहिं कस्स दिज्जए सुविब्भमम्," (भ०)।

एक्कमुह—वि० (दे०) १. धर्म-रहित, २. दरिद्र, ३. प्रिय, इष्ट; (दे० ना० मा० १, १४८)।

एक्कमेक्क—वि० (सं० एकमेएक>प्रा० एक्केक्कम) १. परस्पर, अन्योन्य; तुल० गु० एकमेक; (प० च० १७, १४, १; जंवू० १, ६, २)। २. वि० प्रत्येक एकैक; (जस० ३, २, २०)।

एक्क-यल—स्त्री० एक–कला, (प० च० १४, ११, ६)।

एक्कया—अव्य० (सं० एकदा) एक बार; (व० ३, ६, ४)।

एक्करयणि—स्त्री० (सं० एक+अरत्नि)

एक अरत्नि प्रमाण, मीमांसा शास्त्र के अनुसार एक माप। विशेष—इससे प्राचीन काल में यज्ञ की वेदि आदि मापी जाती थी। यह माप कुहनी से कनिष्ठा के सिरे तक होती है; (व० १०, २०, ६)।

एक्कल्ल—वि० अकेला; (जवू० ५, ८, १७)। –उ अकेला; (जंबू० ६, १०, १६)। –वीर वि० अकेला बहादुर जिसकी कोई सहायता न कर रहा हो; तुल० गु० एकलवीर; (प० च० ५५, ७, ५)।

एक्कल्लय—वि० (सं० एकल>प्रा० एक्कल्ल) अकेला, एकाकी; तुल० गु० एकलु, एकली; (प० च० १७, १४, १)।

एक्कवयकण्ण—पुं० (सं० एक+पद+कर्ण) एक चरण व एक कान वाली जाति; (जंबू० ६, १६, ६)।

एक्कवार—अव्य० (सं० एकवार>प्रा० एक्कवार, एगवार) एक वार या समय; तुल० गु० एकवार; (प० च० १८, ८, ६; भ०)।

एक्कवीसम—वि० (सं० एकविंशतिम्) इक्कीस, बीस से एक अधिक; (ण० ८, ८, ६)।

एक्कसाहिल—वि० (दे०) एक स्थान में रहने वाला; (दे० ना० मा० १, १४६)।

एक्कसिवली—स्त्री० (दे०) शाल्मली पुष्पों और नूतन फलों से युक्त; (दे० ना० मा० १, १४६)।

एक्कसि—वि० (सं० एकशः) एक एक करके, अकेले; (प० च० २, १४, १)। अव्य० (सं० एकदा) एक बार; (जंबू० २, १५, १४)।

एक्का—वि० (सं० एक>प्रा० एक्क) एक; (की० ३, २५)। —णउय वि० (सं० एकनवत्) ६१ वाँ; (प० च०)। –सीय वि० (सं० एकाशीत) ८१ वाँ (प० च०)।

एक्कासिय—वि० (सं० एकाश्रित) एक-पक्षीय; (सुदं० ५, १, ११)।

एक्कूणासी—वि० (सं० एकोननवति) नवासी; (महा०)।

एक्केक्क—वि० (सं० एकैक>प्रा० एक्कक्क) हर एक, प्रत्येक; (प० च० १७, १४, १)। —म वि० परस्पर, अन्योन्य; (दे० ना० मा० १, १४५)।

एक्केक्कमेक्क—वि० (दे०) परस्पर; (जंबू० ६, ४, ६)।

एक्को—वि० (सं० एक>प्रा० एक्क) एक; (जंबू० ५, १; सि० २, १०)।

एक्कोयरु—पुं० (सं० एकोदर) एक उदर से उत्पन्न, सहोदर; (रि० ७, ६)। एक्कोवर; (प० च० ३१, १, ३)।

एग—वि० (सं० एक>प्रा० एग) एक; (सं० रा०)। —कण्ण पुं० राजा-विशेष का नाम, लंपाग देश का राजा; (प० च० ६८, ५६)। —चूड पुं० (सं० एक-चूड) विद्याधर वंश का एक राजा; (प० च०)। —ट्ठं अव्य० (सं० एकत्र) एक स्थान में; (प० च०)। —पन्नास वि० (सं० एकपञ्चाशत्) पचास और एक। —पन्नासइम त्रि० (सं० एक-पञ्चाशतम्) ५१ वाँ; (प० च०)। —वीसइम वि० (सं० एकविंशतितम्)।

इक्कीसवाँ; (प० च०)। —ट्ठ वि० (सं० एकषष्ट) ६१ वाँ; (प० च०)। —सत्तर वि० (सं० एकसप्तत) ७१ वाँ; (प० च०)। —दसुत्तरसय वि० (सं० एकादशोत्तरशततम) १११ वाँ; (प० च०)। एगुणचालीस-वि० (सं० एकोनचत्वारिंशत्) उनचालीस। एगुणवीस—वि० (सं० एकोनविंशति) उन्नीस।

एगारह एगारहि, एग्गारह, एग्गाराहा—वि० (सं० एकादशन्>प्रा० एवकरह) ग्यारह; तुल० राज० ग्यारा, गु० अग्यार; (प्रा० पैं० १, ६१)।

एगूणचत्ताल—वि० (सं० एकचत्वारिंश) उनचालीसवाँ, (प० च०)।

एगूणविंस—वि० (सं० अपगुण-विंशति (पिशेल का प्राकृत व्याकरण, ४४४)। उन्नीस।

एण—सर्व० (सं० एतेन) इसके द्वारा; (जंबू० २, ४, ५)।

एणुवासिअ—पुं० (दे०) मेंढक; (दे० ना० मा० १, १४७)।

एण्हि—अव्य० (सं० इदानीम्>प्रा० एण्हिं) अधुना, संप्रति; (सुदं० ११, १८, ६)।

एतें—वि० (सं० इयता) इतना; (उ० व्य० प्र० २३-१६)।

एत्त—वि० (सं० इयत्) इतना; (प० च० ३०, ५, २)।

एत्तडय—वि० (सं० एतावत्) इतना; (प० च० १०, १०, ८; जंबू० ७, ७, ५)। एत्तडिय; (प० च० ३०, ८, ७)।

एत्तहिं—अव्य० (सं० इतस्) १. इधर; (सुदं० ७, ४, ८)। २. (सं० एतावति) इस, "एत्तहि महुमासहो आगमणु (भ० ८, ८, ६)। ३. यहाँ; (म० २, २, १)।

एत्तहिँ—अव्य० (सं० इतस्) यहाँ से; (जंबू० ३, १०, ४)। २. इधर; (जंबू० ४, ३, १)।

एत्तहे—अव्य० (सं० अत्र>प्रा० इत्तहे, एत्तहे) इधर; यहाँ पर, (सुदं० ८, ३, १०)। एत्तहें (प० च० ७, ११, ३; हे० ४३६, १)।

एत्ता—वि० (सं० एतावत्>अप० एत्तए>अव० एत्ता) इतना; (की० ३, १२६)।

एत्तिअ—वि० (सं० इयत्, एतावत्) इतना; (जंबू० ८, ६, ४; क० ४, १७, ७; जस०)।

एत्तिउ—अव्य० (सं० इयत्) इतना; (हे०, ३४१)।

एत्तिय—वि० (सं० इयत् एतावत) १. इतना; तुल० म० इतकें; (प० च० ७, ६, २)। २. इस, (प० च० १२, ७, ६)।

एत्तिएँ—अव्य० अब, इस समय, इस विषय में, अभी, अब भी; (प० च० १०, १, ७)।

एत्तुल—वि० (सं० एतावत्>प्रा० एत्तिल) इतना; (हे० प्रा० ४, ४०८)।

एत्ते—वि० (सं० एतावत्) इतने; (की० १, ४५)।

एत्तोअ—अव्य० (दे०) यहाँ से लेकर; (दे० ना० मा० १, १४४)।

एत्यन्तरि—अव्य० (सं० अत्रान्तरे) इस बीच में; (भ०)।

एत्थंतर—अव्य० (सं० अत्रान्तर) इसी बीच; (जंबू० २, ५, ११)। एत्थंतरि; (विला०; व० ३, १६, ६)।

एत्थ—अव्य० (सं० अत्र>प्रा० एत्थ) यहां, यहां पर; (जस० ३, १५, ५)।

एत्थि-अव्य० यहां; (प्रा० पैं० २, १४४)। एत्थु; (ण० १, १३, ३, जस० १, ११, ७)। —त्थि (सं० अत्र+अस्ति); (क० १, ३, ५)।

एत्थु—अव्य० (सं० अत्र>प्रा० एत्थ) , यहाँ; (प० च० १६, ८, ८)।

एथु—अव्य० (सं० अत्र>प्रा० एत्थ) यहाँ; यहाँ पर (रा० १५)।

एथ्यन्तर—क्रि० वि० (सं० अत्र>अप० एत्थ, अव० एथ्थ+सं० अन्तर>प्रा० अंतर) इसके बाद; (की० ३, ४७)। इस बीच में; (की० ३, ४५)।

एमं—अव्य० (सं० एवं>अप० एमं) ऐसा; (की० ४, २५२)।

एम—अव्य० (सं० एवम्>प्रा०एम) १, इस तरह, ऐसा; (ण० १, ३, १२)। २. इस प्रकार "एम भणह मुणह छप्पअ प अ " इस प्रकार छप्पय में छः चरणों को समझो; (प्रा० पैं० १, १०५); "एम पेक्खिअ दूर दारपोल" —इस प्रकार राजद्वार दूर से दिखाई पड़ता था, (की० २, २४८)। —ईं अव्य० (सं० एवमेव) ऐसा ही; (जंबू० २, १८, १६)। —हि अव्य० इस समय, अब; (भ०; जंबू० ८, १०, ७)।

एमिणिआ—स्त्री० (दे०) वह स्त्री, जिसके शरीर को, किसी देश की प्रथा के अनुसार, सूत के धागे से माप कर, उस धागे को फेंक दिया जाता है; (दे० ना० मा० १, १४५)।

एमेव—अव्य० (सं० एवमेव>प्रा० एमेव, एमेअ) इसी तरह, इसी प्रकार; (भ०)।

एम्वइ—अव्य० (सं० एवमेव) इसी तरह, इस प्रकार; (हे० ४२०)। टि०-सं० एवमेव को अपभ्रंश में एम्वइ आदेश होता है।

एम्वहिं—अव्य० (सं० इदानीम् को एम्वहिं आदेश होता है) इस समय; (हे० ४२०, २)।

एयं—सर्व० (सं० एतत्) यह; (जंबू० ४, १८, ४)। एय—सर्व० यह; (सं० रा०)।

एयंतनअ—पुं० (सं० एकान्त+नय) सांख्यमत, "अह एयंतनएण अवद्धउ, अच्छउ परएँ जीउ सुविसुद्धउ" एकांतनय (सांख्यमत) से जीव अबद्ध है और पूर्णतः विशुद्ध रहता है; (जंबू १०, ५, १)।

एय—(सं० एक>प्रा० एक्क) एक; (भ०)।

एयचक्क—पुं० (सं० एकचक्र) नगर-विशेष; (सुदं० ६, ३, ८)।

एयमण—पुं० (सं० एकमनस्) एकाग्र मन; (क० ५, २, १०)।

एयहों—सर्व० (सं० एतस्य) इसी को, "एयहों पियहों विणयगुणधामहों" (जंबू० ४, १, ८)।

एयाउ—सर्व (सं० एताः, स्त्रीलिंग प्रथम पुरुष, ब० व०) ये; (जंबू० ४, १२, ७)।

एयारसंग—पुं० (सं० एकादश+अङ्ग) ग्यारह अंग, "अह सवणसंघसंजुउ पवरु

एयारसंगधरु विज्जुचरु। विहरंतु तभेण विराइयउ पुरि तामलित्ति संपाइयउ।" इसके अनंतर ग्यारह अंगों के धारी, एवं तप से सुशोभित श्रेष्ठ विद्युच्चर महामुनि विहार करते हुए अपने श्रमसंघ सहित ताम्रलिप्ति नामक नगर में आए; (जंबू० १०, २४, १३)।

एयारस—वि० (सं० एकादशन्) ग्यारह; (क० १०, १६, ६)।

एयारसमो—वि० (सं० एकादशम्) ग्यारहवीं "...... एयारसमो संधि समत्तो;" (जंबू० ११, १५)।

एयारसि—स्त्री० (सं० एकादशी) तिथि-विशेष, प्रत्येक चांद्र मास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि; (क० १०, १६, ६)।

एयारह—वि० (सं० एकादशन्) प्रा० एक्कारह) ग्यारह; (ण० १, १२, ६)। —म वि० (सं० एकादशम्) ग्यारहवां; (ग०)।

एयारहमि—वि० (सं० एकादशम्) ग्यारहवें; (क० १०, १६, ६)। 'एयारहि दिणि वहु फल-फलीय,' (सि० १, १७)।

एयारहमें—वि० (सं० एकादशम्) ग्यारहवें, (जंबू० १, १८, १५)। —इ वि० ग्यारहवें (जस० ४, ६, १०)।

एयारिस—वि० (सं० एतादृश) ऐसा; (जस०)।

एराणी—स्त्री० (दे०) इंद्राणी, इंद्राणी व्रत का सेवन करने वाली स्त्री; (दे० १, १४७)।

एराघअ—पुं० (सं० ऐरावत) जंबूद्वीप के अन्तर्गत ऐरावत नामक क्षेत्र; (जंबू० ११, ११, ७)।

एरावइ—पुं० ऐरापति; छंद शास्त्र में आदि लघु पंचकल, (आदि लघु पंचकल के नाम —सुनरेंद्र, अहित कुंजर, गजवर, दंत, दंती, मेघ, ऐरावत, तारापति, गगन, झम्प, लंप; (प्रा० पैं० १, २८)।

एरावण—पुं० १. देवेन्द्र का हाथी; (प० च० २, ३८)। २. विद्याधर इंद का हाथी; (प० च० ७, १०)।

एरिस—वि० (सं० ईदृश > प्रा० एरिस) ऐसा; (प्रा० पैं० १, १६४)। २. इस प्रकार; (सं० रा०)। —हि (प्रा० पैं० २, १७०) एरिसि; (प्रा० पैं० १, १६४)। एरिसिअं; (प्रा० पैं० २, १५४)।

एल—वि० (दे०) कुशल) निपुण; (दे० ना० मा० १, १४८)।

एलविल—वि० (दे०) १. धनी, २. पुं० वैल; (दे० ना० मा० १, १४८)।

एला—स्त्री० (सं० प्रा० एला) एलायची का पेड तथा इसका फल (भ०; विला०)।

एल्ल—वि० (दे०) दरिद्र; (दे० ना० मा० १, १७४)।

एव—अव्य० (सं० प्रा० एव) ही; (व० १, १५, ५)। २. इस प्रकार (की० ३, १०३)। —व्व अव्य० इस प्रकार (की० ४, १३४)। —विह वि० (सं० एवम्+विध) इस प्रकार; (क० २, १२, ७)।

एवड—वि० (सं० ऐतावत्) इतना; तुल० गु० एवडुं; (प्रा० गु० २, ३, १३; सुदं० ८, ३६, ४)।

एवड्ड—वि० (सं० एतावत्) इतना अधिक, तुल० म० एवढा; (पृ० च० ३४, ३, ६)।

एवमाई—वि० (सं० एवमादि>प्रा० एवमाइ, एमाइ) इत्यादि, वगैरह; (म०)।

एवँहि—अव्य० (सं० इदानीम्) इस समय; (न० २, ५५, १०)। अव्य० (सं० एवम्) इस तरह, इस रीति से, इस प्रकार; (क० १, १०, १०)।

एवँहिं—अव्य० (सं० इदानीम्) इस समय; (प० च० १, १२, ७)। एव्वँहि (भ०)। एवहि—अव्य० इस समय (जंबू० ३, १०, ७)। एव्वहि—अव्य० अधुना इस समय; (पड्)।

एवाप—अव्य० (दे०) यों, (की० २, २४७)।

एवि—सर्व० (सं० एतद्) यह "जसु पलइ सेँकउ पयहरह ऍक्क। चउमत्त वे वि महुभार एवि" —जिस छंद में (प्रत्येक चरण) में दो चातुर्मात्रिक पड़े तथा अंत में चतुर्मात्रिक गण जगण हो, यह मधुभार छंद है; (प्रा० पैं० १, १७५)। २- (सं० आगम्य) पू० का०क्रि०,आकर; (जंबू० ७, ७, ३)।

एस—सर्व० (सं० एषः) यह; (जंबू० १, १८, ५)। एसा–सर्व० (सं० एषा स्त्रीलिंग) यह; (प्रा० पैं० २, ६३; ण० २, २, १२)।

एसो—सर्व० (सं० एषः) यह; (प्रा० पैं० २, ८४)। २. अव्य० इस प्रकार (की० ४, १०२)।

एह—सर्व० (सं० एषः) यह; (सं० रा० हे० ३६२, १; प० च० १६, ७, ५; प्रा० पैं० १, १६; क० २, ११, ३)। वि० (सं० ईदृक्) ऐसा, इसके जैसा; (भ०)। एहु—सर्व० यह; (रा० ३६)।

एहत्तरि—वि० (सं० एकसप्तति) इकहत्तर, स्त्री० संख्या-विशेष। तुल० राज० इगत्तर; (प्रा० पैं० १, ११७)। एहत्तरिहिं; (प्रा० पैं०)।

एहि—(बैं० सं० एभिः) इन, (की० ०, १६); इससे (प्रा०पैं० १, १२४)। एही–यही (की० २, २४१)। एहैं—सर्व० तृतीया एक व० (सं० एतेन>प्रा० एहेँण) इसके द्वारा।

एही—सर्व० (सं० एषा) यह, "भणु एही का कहि कासु कण्ण" —भला कहो तो सही यह कन्या कौन है और किसकी पुत्री है; (ण० १, १५, ४)।

एहु—सर्व (सं० एषः) १. यही, (हे० सा० दो०; जंबू० ३, १०, २)। २. यह; (प्रा० पैं० १, ३०, की० २, २३७)।

ऐ

ऐ—इसका उच्चारण कण्ठ और तालु से होता है। महाभाष्यकार ने इसे सन्ध्यक्षर (अ+ए) बताया है। प्राकृत काल में ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति के कारण ऐ> अए>अइ उच्चारण होने लगा। 'कीर्तिलता, में 'ऐ' के प्रयोग—'ऐसो, दैव, पैं, पैठि, पैरि और लैं' तथा 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' में 'कैसेहिं' उपलब्ध हैं।

ऐसो—क्रि० वि० इस प्रकार; (डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा संपादित

कीर्तिलता, ४, १०२)। वि० (सं० ईदृश) ऐसा; (डॉ० शिवप्रसाद सिंह द्वारा संपादित कीर्तिलता ४, १०५)।

ओ

ओ—पुं० १. (सं० प्रा० ओ) स्वर वर्ण-विशेष; इसका उच्चारण ओष्ठ और कंठ से होता है। २. सर्व० (सं० एतत्) यह; (प्रा० पैं० १, ७९)। ३. वह; "ओ परमेसर सेहर सोहइ"—वह (चंद्रमा) शिव के मस्तक पर सुशोभित होता है, (की० १, २५)।

ओंडल—न० (दे०) केश-गुम्फ, केश-रचना; (दे० ना० मा० १, १५०)।

ओअंक—पु० (दे०) गर्जित, गर्जना; (दे० ना० मा०; १, १५४)।

ओअ—न० (दे०) वार्ता, कथा, कहानी; (दे० ना० मा० १, १४९)।

ओअक्ख—सक० सं० दृश् देखना। —इ (पइ)।

ओअग्गिअ—वि० (दे०) १. अभिभूत (१. पराजित, २. पीड़ित, ३. वशीभूत, ४. चकित), २. न० केश आदि को एकत्रित करना "ओअग्गिअं अभिभूतं केशादीनां पुञ्जीकरणं च," (दे० ना० मा० १, १७२)।

ओअग्घिअ—वि० (दे०) घ्रात, सूँघा हुआ; (दे० ना० मा० १, १६२)।

ओअम्मअ—वि० (दे०) अभिभूत पराभूत; (पइ)।

√ओअर—सक० (सं० अव+तॄ>प्रा० ओअर) जन्म-ग्रहण करना, नीचे उतरना।

ओअरेंवि—पू० का० क्रि० उतरकर; 'तावेंहि गयणहों ओअरेंवि अञ्जणहें वसन्तमाल मिलिय' अर्थात् इतने में आकाश से उतरकर वसन्तमाला अंजना से मिलती है; (प० च० १९, ८, १०)।

ओअरिय—वि० (सं० अवतीर्ण>प्रा० ओअरिअ) उतरा हुआ; (प० च० १९, २, १०)।

ओअल्ल—पुं० (दे०) १. कम्प, काँपना; (दे० ना० मा० १, १६५; पइ)। २. खराब आचरण। ३. गोओं का वाड़ा। ४. वि० प्रक्षिप्त। ५. लटकता हुआ; (दे० ना० मा० १, १६५)।

ओअल्लअ—वि० (दे०) १. जिसे चाही हुई वस्तु न मिले; २. जिसे धोखा दिया गया हो; (पइ०)।

ओआअ—पुं० (दे०) १. ग्रामाधीश, गाँव का स्वामी; २. आदेश; ३. हस्ती आदि को पकड़ने का गड्ढा; ४. वि० छीना हुआ; (दे० ना० मा० १, १६६)।

ओआअव—पुं० (दे०) अस्त-समय; (दे० ना० मा० १, १६२)।

ओ आइय—क्रि० भू० का० (सं० आ+या=आना, आगमन करना) वापिस आए; (की० ३, ४४)।

ओआरा पार—अव्य० (दे०) वार-पार, इस तरफ से उस तरफ तक; (की० ४, १८०)।

ओआल—पुं० (दे०) छोटा प्रवाह; (दे० ना० मा० १, १६१)।

ओआवल—पुं० (दे०) सुवह का सूर्य-

ताप; (दे० ना० मा० १, १६१)।

ओइणी—पुं० कीर्तिसिंह का राजवंश, वंश-विशेष, (की० १, ४६)।

ओइण्ण—वि० (सं० अवतीर्ण>प्रा० ओइण्ण) अवतीर्ण, उतरा हुआ; (जस० ४, १७, १२)।

ओइत्त, ओइत्तए—न० (दे०) परिधान, वस्त्र; (दे० ना० मा० १, १६५)।

ओइल्ल—वि० (दे०) आरूढ; (दे० ना० मा० १, १५८)।

ओउल्लिय—वि० (दे०) पुरस्कृत, आगे किया हुआ; (पड्)।

ओऊल—न० (सं० अवचूल) लटकता हुआ वस्त्राञ्चल; (प० च०)।

ओए—सर्व० (सं० एते) वे; (प० च० ३८, ७, ८)।

ओकरा—सर्व० (दे०) उस, 'ओकरा काजरा चाँद कलंक', उस धुएँ के काजल के कारण ही चंद्रमा में कलंक है; (की० २, १३१)।

ओक्कंदी—स्त्री० (दे०) कूपतुला; (दे० ना० मा० १, ८७)।

ओक्कणी—स्त्री० (दे०) यूका, जू; (दे० ना० मा० १, १५६)।

ओक्किअ—न० (दे०) १- वमन, उल्टी; २- निवास, अवस्थान (जगह); (दे० ना० मा० १, १५१)।

ओक्खंडिअ—वि० (दे०) आक्रान्त; (दे० ना० मा० १, ११२)।

ओक्खली—स्त्री० (दे०) थाली, पात्र-विशेष; (दे० ना० मा० १, १७४)।

ओक्खिण्ण—वि० (दे०) १- अवकीर्ण; २- खण्डित, ३- ढका हुआ; ४- पार्श्व में शिथिल; (दे० ना० मा० १, १३०)।

ओख—पुं० (सं० ओष=जलन) दाह; (रा० ७)।

ओग्गर—पुं० (सं० ओगर) एक प्रकार का चावल; धान्य-विशेष; (प्रा० पैं० २, ९३)।

ओग्गाल—पुं० (दे०) छोटा प्रवाह; (दे० ना० मा० १, १५१)।

ओग्गिअ—वि० (दे०) अभिभूत, पराभूत; (दे० ना० मा० १, १५८)।

ओग्गीअ—पुं० (दे०) हिम, वर्फ; (दे० ना० मा० १, १४६)।

ओघउ—पुं० (दे०) उपकरण-विशेष; गु० ओघो (जैन० परि०) (संवि० ११, ३, ६)।

√ओचुंव—(सं० अव+चुम्ब्>प्रा० ओचुंव) चुंवन करना। ओचुम्वइ–क्रि० (सं० अवचुम्बति); (भ०)।

ओचुल्ल—न० (दे०) चुल्हे का एक भाग; (दे० ना० मा० १, १५३)।

ओच्चेल्लर—न० (दे०) ऊरर-भूमि, जघन (१- पेड़ू, २- चूतड) के रोम (रोआँ); (दे० ना० मा० १, १३६)।

ओच्छंदिअ—वि० (दे०) १- अपहृत, २- पीड़ित, (पड्)।

ओच्छत्त—न० (दे०) दंत-धवन, दतवन; (दे० ना० मा० १, १५२)।

√ओच्छाय—(सं० अव+छादय्) आच्छादन करना। ओच्छाइवि–पू० का० क्रि० (सं० अवच्छाद्य); (भ०)।

ओच्छिअ—न० (दे०) केश-विवरण; (दे० ना० मा० १, १५०)।

ओछप्पिणी—स्त्री० (सं० उत्सर्पिणी) काल-चक्र; (जं० ३, १, १०)।

ओज्जर—वि० (दे०) भीरु, डरपोक; (पड्)।

ओज्जल्ल—वि० (दे०) बलवान्, प्रबल; (दे० ना० मा० १, १५४)।

ओज्जा—पुं० (सं० ऊर्जा) ओज, "पक्खि समूहहँ ओज्जाहारो"—पक्षी समूहों का ऊर्जा अथवा ओज का आहार होता है, (व० १०, ३५, ३)।

ओज्जाअ—पुं० (दे०) गर्जित, गर्जारव; (दे० ना० मा० १, १५४)।

ओज्झ—वि० (दे०) मैला, अस्वच्छ; (दे० ना० मा० १, १४८)।

ओज्झर—पुं० (सं० निर्झर>प्रा० ओज्झर) झरना; (प० च० ३१, ३,७)।

ओज्झरउ—क्रि०भू०का०(सं०अव+क्षर= संचनने to flow) निर्झर प्रवाहित हुआ; 'ताव-गलिय दाणोज्झरउ, कण-चमर-हय महुयरउ। जिग वन्दण-गयगंमगउ, परि-वड्ढिउ अइरावणउ।' अर्थात् 'इतने में जिससे मदजल का निर्झर बह रहा था और जिसका मन जिनभगवान् की वन्दना के लिए व्याकुल था, ऐसा ऐरा-वत महागज आगे बढ़ा।' (प० च० ३, ६, १)।

ओज्झरिअ—वि० (दे०) १- टेढ़ी दृष्टि से देखा हुआ; २- विक्षिप्त; ३- फेंका हुआ; ४- परित्यक्त (दे० ना० मा० १, १३३)।

ओज्झा—पुं० (सं० उपाध्याय>प्रा० उवज्झाय) उपाध्याय; 'नय मग्ग चतुर ओज्झा भवेस'; उपाध्याय भवेश नय मार्ग के विद्वान् हैं; (की० २, १४१)।

ओझा—पुं० (सं० उपाध्याय>प्रा० उवज्झाय, उवज्झाअ> उअज्झा> ओझा) पंडित; (की० २, १६६; उ० व्य० प्र० १३-२८)।

ओंझाउलु—पुं० (सं० उपाध्यायगृहम्) पंडित का घर; (उ० व्य०प्र० २२-२)।

ओट्ठ—पुं० (सं० ओष्ठ>प्रा० ओट्ठ) ओठ; (प्रा० पैं० २, १६६; जस० ३,६,१६)। ओठइं; (रा० ३५)।

ओट्ठद्धय—वि० (सं० ओष्ठ+आबद्ध) नियन्त्रित; (प० च० ४६, ११, १०)।

ओडु—स्त्री० (दे०) अंट, आड; (रा० ३८)।

ओंड्ड—पुं० (सं० ओड्र>प्रा० ओड्ड) ओड्र देश का राजा; (प्रा० पैं० १, १२६)। ओड्डा; (प्रा० पैं० १, १६८)। ओड्डिआ; (प्रा० पैं० २, १२८)।

ओडवएं— भू० का० (सं०√ अर्पय् > प्रा० अप्पिण=अर्पण करना) अर्पण किया, "परिवलु दल जो ओडवएं, जिणि पेलिउ सुरिताणु। राजु करइ अन्नय तणओं जासु अंगजिउमाणु।" (प्रा० गु० ७, १२)।

ओडिअ—वि० (सं० ओड्रीय> प्रा० ओड्डिअ) उत्कल देशीय; (रा० ३०)।

ओडिय—वि० (सं० उद्धृत) उठाने वाला, "धम्ममहारहओडियकंधरु," धर्म रूपी महारथ (की धुरा) को कंधों पर उठाने वाला है; (जंबू० १, ११, ८)।

ओडड्ढ—वि० (दे०) अनुरक्त; (दे० ना० मा० १, १५६)।

ओड्ढण—न० (सं० उपवेष्टन> प्रा० ओवेड्ढण) ओढ़न, ओढ़नी, उत्तरीय चादर, (दे० ना० मा० १।१५५। टि०—गु०, म०, राज० में इसका ओढ़ने तथा उत्तरीय अर्थ में प्रयोग उपलब्ध है।

√ओढ— (दे०) ओढ़ना। ओढि-अल—सक० भू० का० (पूर्णभूत) ओढ़ा; "धवलर कापड ओढिअल कइसे,"—जो धवल कपड़ा ओढ़ा वह कैसा; (रा० २६, २६)।

√ओणल्ल—(सं० अव+लम्ब्) अवनत होना, लटकना; "स्कन्ध केसकलाउ खन्धि ओणल्लइ," (भ० १६,४,६)।

ओणल्लन्तउ—व० कृ० (सं० अव+लम्ब्>प्रा० ओणल्ल=लटकना) अवनत होते हुए, विनष्ट होते हुए (प० च० १७, १५, ४)।

ओणल्लय—वि० (सं० अवनत) पतित; (प० च० २६, ५, ५)।

ओणल्लिया—वि० (दे०) भिड़ा हुआ; (सुदं० ११, २१,३)।

ओणाविय—वि० (सं० अवनमित>प्रा० ओणामिय, ओणाविय) अवनत किया हुआ; (जस० ३, ३५, ११, भ०)।

ओणिव्व—(दे०) वल्मीक, चींटियों का खुदा हुआ मिट्टी का ढेर; (दे० ना० १, १५१)।

ओणीवी—स्त्री (दे०) कटि-सूत्र, नीवि (वह डोरी जिससे स्त्रियाँ लहँगे की गाँठ बाँधती हैं; (दे० ना० मा० १, १५०)।

ओणुणअ—वि० (दे०) अभिभूत, पराभूत; (दे० ना० मा० १, १५८)।

ओणुल्लउ—भू० का० लुढ़क गया; "भूरीसउ णियरहे ओणुल्लउ;" (रि० ३, ११)।

ओण्णिद्द—न० (सं० औन्निद्रय) निद्रा का अभाव; (दे० ना० मा० १, ११७)।

ओत्तलहअ—पुं० (दे०) विटप; (दे०-ना० मा० १. ११६)।

ओत्थअ—वि० (सं० अवस्तृत) आच्छादित; (दे० ना० मा० १, १५१)।

ओत्थर—पुं० (दे०) उत्साह; (दे० ना०-मा० १, १५०)।

ओत्थल्लपत्थल्ला—स्त्री (दे०) दोनों पार्श्वों से परिवर्तन, ऊथलपुथल; (दे० ना० मा० १, १२२)।

ओत्थविअ—वि० (सं० अवस्तृत>प्रा० ओच्छइअ>ओत्थइअ, ओत्थअ) आच्छादित; (कौ० ४, १८८)।

ओत्थाडिअ—वि० (सं० अवस्तृत) बिछाया हुआ; (भ०)।

ओत्था ओत्थी—कृ० (सं० उत्+स्था>प्रा० उट्ठाव) उठ-उठकर, (प्रा० पैं० १, १४५)।

ओत्थाडिय—वि० (सं० अवस्तृत) बिछाया हुआ; (भ०)।

ओदन—न० (सं० ओदनम्>प्रा० ओदण) भोजन, भात; (उ० व्य० प्र० १३-२१)।

ओद्दंदिअ—वि० (दे०) १. आक्रान्त, २. नष्ट; (दे० ना० मा० १, १७१)।

ओप्प—वि० (दे०) ओप (चमक) दिया हुआ; (दे० ना० मा० १, १४८,)। टि०—गुं०, म० पं०. बं०, राज० में चमक देने के अर्थ में प्रयुक्त। कन्नड में स्वच्छ, सुंदर, ठीक, पालिश अर्थ में प्रयोग मिलता है।

ओप्पा—स्त्री० (दे०) शाण आदि पर मणि आदि का घर्षण करना; (दे० ना०-मा० १, १४८)।

ओमंस—वि० (दे०) १. मृत; २. नष्ट,

३. भागा या हटा हुआ; पड्)।
ओमल्ल—न० (सं० निर्माल्य) देवोच्छिष्ट द्रव्य, किसी देवता पर चढ़ा हुआ पदार्थ; (पड्)। वि० (दे०) घनीभूत, कठिन, जमा हुआ; (पड्)।
√ओमाल—(सं० उप+माल्) शोभना, शोभित होना—इ (सं० अवमानयति) (भ०)।
ओमालिय—वि० (सं० उपमालित) १. शोभित, २. पूजित; (भ०)।
ओम्मालिय—वि० (सं० उन्मालित> प्रा० ओमालिअ) विभूषित, शोभित; (प० च० २५.७, ६)। —य (प० च० ३६, ३, ४)।
ओमुंछियअ · वि० (सं० उन्मूर्च्छित, अवमूर्च्छित) मूर्च्छा को प्राप्त; (जंबू ३, ७,७)।
ओमुच्छिय—वि० स्त्री० (सं० उन्मूर्च्छिता) मूर्छा को प्राप्त; (जंबू० ८, ७, ११)। —य वि० उन्मूर्च्छित, (प० च० २७, ३, ७)।
ओयण—न० (सं० ओदन>प्रा०ओदण) भात, रंधे हुए चावल; (महा० ६६, ११, ७)।
ओयरइहि—स्त्री० (सं० अपवरक>प्रा० अववरक) उपवरक, तंग कोठरी, अवधी ओवरि, (सं० रा०)
ओयरिउ—क्रि० भू० का० (सं० अव+तृ>प्रा० अवयर) नीचे उतरा, नीचे आया; (ण० ५, ५, १५)।
ओयाइय—वि० (सं० उपयाचित> प्रा० उवयाइय) १. प्रार्थित, २. न० मनौती, किसी काम के पूरा होने पर किसी देवता की विशेष आराधना करने का मानसिक संकल्प; (दे० ना० मा० ४, २२)।
ओरल्ली—स्त्री० (दे०) दीर्घ मधुर ध्वनि; (दे० ना० मा० १, १५४)।
√ओरस—(सं० अव+तृ) नीचे उतरना। —इ सक० (सं० अवतरति) "अवतरेरोहओरसौ" (भ० ४, ८, ५)।
ओराए—भू० का० बीतती; (की ३, १४८)। उरइ=समाप्त होना बीतना।
√ओराल—(दे०) गर्जना, ओरालेंवि—पू० का० क्रि० (प० च० ३८, ६, ५)।
ओरालिउ—न० (सं० औदारिक,>प्रा० ओरालिय) शरीर; (व० १०, ६, ११)।
ओरालिय—वि० (दे०) १. बहुत जोर की आवाज या चिल्लाहट से युक्त; "आसन्न विहुर उल्लावइहिं ओरालिउ एहिं निज्जावइहिं"; (भ० ७, ११, १०)। २. पोंछा हुआ, "मुहि करयलु देविपुणु ओरालिउ मुहकमलु," (भ० १५, १०, १२)। ३. फैलाया हुआ, प्रसारित," दसदिसि वहकयंबु ओरालिओ," (भ०)।
ओरिल्ल—पुं० (दे०) दीर्घकाल; (दे० १, १५५)।
ओरुंज—न० (दे०) क्रीडा-विशेष (दे० ना० मा० १, १५६)।
ओरुंजइ—अक० (दे०) गरजता है, "णं केसरि-किसोर ओरुंजइ," मानो सिंह का नवजात शिशु गरजता है; (रि० ५, २)।
ओरुम्भेंवि—पू० का० क्रि० (सं० अव-

रुह्>प्रा० ओल्हि) रुक कर, (प० च० ६; ६,६) ।

ओल्हण—स० (सं० अवरोहण) नीचे उतरना; (प० च०) ।

ओलंबिअ—वि० (सं अव+लम्बित> प्रा०ओलंबिय) आश्रित, जिसका अवलम्ब लिया गया हो वह; (प० १, ८, ६) । ओलम्बिअ, अवलम्बित; जंबू० ५, ८, २५) ।

ओल—वि० (सं० अतुल>प्रा० अउल) सुंदर, अनुपम; (क्री० २, १२६) । २. वि० (सं० आर्द्र) गीला हुआ, (जस० १, ४, ३) । —ओल वि० (सं० आर्द्रार्द्र) ओत-प्रोत "ललललियर्अंहु रुहि-रोलओल"—उसकी लपलपाती हुई जीभ रक्त से ओत-प्रोत थी; (जस० १, ६, ५) ।

ओलअ—पुं० (दे०) १. श्येन पक्षी, २. अपलाप; (दे० ना० मा० १, १६२) ।

ओलअणी—स्त्री० (दे०) नवोढा, कुल-हित; (दे० ना० मा० १, १६०) ।

ओलइअ—वि० (सं० अवलगित) १. शरीर में सटा हुआ, (दे० ना० मा० १, १६२) ।

√ओलक्ख— (सं० उपलक्ष्) देखना; (संवि २, १७, ६) ।

ओलक्खिय—वि० (सं० उपलक्षित> प्रा० ओलक्खिअ) पहिचाना हुआ; तुल० म० ओळखणें; (म०) ।

ओलग—स्त्री० (दे०, प्रा० ओलग्गा) सेवा, चाकरी, भक्ति; (ना० १४) ।

ओलगाणउ—पुं० (दे०, प्रा० ओलुग्ग) सेवक; तुल० गु० राज० ओळगाणो, । ओलगाणी स्त्री० सेविका "ता ओल-गाणा," (प्रा० गु० २६, १०) ।

ओँलगि—वि० (सं० अवलागिन्>प्रा० ओलग्गि) सेवा करने वाला; 'ओँलगि मुत्ति आहोन्ति आछ —अवलग्य मुक्ती भवन्तास्ते, भविष्यति वा, मुक्तौ वेति,' (उ० व्य० प्र० ११–१३) ।

√ओलग्ग—(सं० अव+√लग्>प्रा० ओलग्ग) —इ सक० सेवा करना; (प० च० ७, ६, ५) । ओँलगिहउँ—सक० पीछे लगूँगा, "ओँलगिहउँ–अवलगि-ष्यामि," (उ० व्य० प्र० २०–१३) ।

ओलग्ग—स्त्री० (सं० अवलग्>प्रा० ओलग्ग, ओलग्गा) सेवा; "णरवइअग्गएँ थिएँ ओलग्गएँ" —नरपति के आगे उसकी सेवा में स्थित हुए; (सुदं० ६, १६, ४; प० च० २५, ३, १०) । —एँ स्त्री० सेवा; 'तिहुअण-गुरुहेँ जाहि ओलग्गएँ' अर्थात् त्रिभुवन स्वामी की सेवा में जाओ; (प० च० २, ६, ६) ।

ओलग्ग, ओलुग्ग—वि० (सं० अवलग्न >प्रा० ओलग्ग) १. सेवक; नौकर; २. निस्तेज, निर्बल; (दे० ना० मा० १, १६४) । वि० अनुलग्न, पीछे लगा हुआ; (म०) ।

ओँलगि—पू० का० क्रि० (सं० अव+लगित, अथवा लग्न=पीछे लगा हुआ) उलटे हो-हो कर "सहसत्ति तुरंगम रहु मुएवि हाहाकारु करंतहँ । ओँलगि विलग्गा खयरवर सुरणवरहँ भिडंतहँ ।" विद्याधर-गण सहसा ही तुरंगम-रथ छोड़-छोड़कर हाहाकार करते हुए देवों और

मनुष्यों के देखते-देखते ही उलटे होकर गिरने लगे; (व० ५, १७, २०)।

ओलग्गिअ—वि० (सं० अव+लग्न> प्रा० अवलग्ग) संलग्न, लगा हुआ, सहित; "ओलग्गिउ भावें दिणि जि दिणे ......"; (ण० १, २, ६)।

ओलम्बिय—वि० (सं० अवलम्बित) किसी के आधार या सहारे पर ठहरा या टिका हुआ; (प० च० ४, १२, ८)।

ओँलर—(सं० लल्>प्रा० लल; सं० अवललति) विलास करना, मौज करना, "सेजं ओँलर-श्य्यायामवललति" (उ० व्य० प्र० ६-२०)।

ओलाँघि—पू० का० क्रि० लाँघ कर; "पर्वत ओलाँघि पार क मारिअ," (की० ४, ४५)।

ओलावअ—पुं० (दे०) श्येन, बाज पक्षी; (दे० ना० मा० १, १६०)।

ओलिभा—स्त्री० (दे०) उपदेहिका, दीमक; (दे० ना० मा० १, १५३)।

ओलि—स्त्री०(सं० आवलि, लीक रेखा, पंक्ति, श्रेणी; (भ०)। ओली; (सं० आवलि) (जस०)।

ओलुट्ट—वि० (दे०) १- असंगत, २- मिथ्या; (दे० ना० मा० १, १६४)।

ओलेहड—वि० (दे०) १- अन्यासक्त, २- प्रवृद्ध (१. पूरा बढ़ा हुआ, वृद्धि को प्राप्त, २. विस्तारित, ३. घमंडी, ४. प्रचण्ड, ५. पूरा, गहरा) ६. तृष्णा-पर, लोभी, प्यासा; (दे० ना० मा० १, १७२)।

ओलोअण—न० (सं० अवलोकन>प्रा० ओलोयण) १- देखना, २- दृष्टि; (संधि० ६, १, २१)।

ओल्ल—वि० (सं० आर्द्र>प्रा० उल्ल) गीला, आर्द्र; (प० च० ४, ८, ८)।

ओल्लणी—स्त्री० (दे०) दही में चीनी और मसाले डाल कर बनाया गया स्वादिष्ट पदार्थ; (दे० ना० मा० १, २४५)।

ओल्लरण—न० (दे०) निद्रा, सोना; (दे० ना० मा० १, १६३)।

ओल्लरिअ—वि० (दे०) सुप्त, सोया हुआ; (दे० ना० मा० १, १६३)।

ओँल्ला—पुं० (अ० मुल्ला) मुसलमान मुल्ला, मौलवी, या मुसलमान एलची; (प्रा० पैं० १, १४७)।

ओल्लिय—वि० (सं० आर्द्रित>प्रा० ओल्लिअ, उल्लिअ) गीला किया हुआ; तुल० म० ओलें; (भ०; प० च० ११, ८, ३)।

ओल्लु—वि० (सं० आर्द्र>प्रा० उल्ल, ओल्ल) गीला; (ण० ३, ८, ६)।

ओव—न० (दे०) हाथी आदि को बाँधने के लिए किया हुआ गड्ढ़ा; (दे० ना० मा० १, १४६)।

√ओवग्ग— (सं० उप+ वल्ग्) १- पराभव करना, २- आक्रमण करना। —इ (भ०)। ओवग्गिवि-पू० का० क्रि० (भ०)।

ओवग्गिय—वि० (सं० उपवल्गित) आक्रान्त; (प० च० ४, ११, ३)।

√ओवङ्क—(सं० अप+वक्र) घृणा के कारण चेहरे का फेर लेना या मोड़ लेना; (turn away face in dislike) —हि क्रि०, आ० (प० च०)।

ओवच्च—सक० (सं० उप+व्रज्) पास जाना; (भ०)।

ओवट्टिअ—न० (दे०) खुशामद, चापलूसी, मधुर तथा प्रिय वचन, मीठी बात; (दे० ना० मा० १, १६२)।

√ओवड—(सं० अव+पत्) गिर पड़ना, गिरना, नीचे पड़ना; —इ अक० (प० च० ५३, १, ७)।

ओवडिय—कृ० (सं० अवपतित) झपट कर; "तक्खणे ओवडिय पेक्खिवि भिडिय रहकरितुरंग संकिण्णइ" —उस समय 'उन दोनों को एक दूसरे पर झपटकर भिड़े हुए देखकर रथ, हाथी और तुरंगों से संकीर्ण'; (जंबू० ६, १०, १०)।

ओवड्डा—स्त्री० (दे०) ओढ़नी का एक भाग; (दे० ना० मा० १, १५१)।

ओवयार—पुं० (सं० उपचार>प्रा० उवयार=पूजा, सेवा, आदर, भक्ति) उपचार (नमस्कार); 'पणमिउ विणएण सणंकुमारु। तेण वि सो विहिउ किओवयारु' —उसने विनय से सनत्कुमार को प्रणाम किया। उसने भी, वह किया गया उपचार (नमस्कार) किया; (विला०)।

ओवर—पुं० (दे०) निकर, समूह; (दे० ना० मा० १, १५७)।

ओवरी—स्त्री० (सं० अपवरक) एकांत गृह, छोटा घर, कोठरी; (की० २, ६७)।

ओवसेर—न० (दे०) चंदन, १- सुगंधित काष्ठ विशेष; २- वि० रति-योग्य; (दे० ना० मा० १, १७३)।

ओवहि—पुं० (सं० उदधि) सागर; (व० १०, ६, २)।

ओवाअअ—पुं० (दे०) आपातप, जल-समूह की गरमी; (पड्)।

ओवास—पुं० (सं० उपवास) उपवास; (प० च०)।

ओविअ—वि० (दे०) १- आरोपित, २- परित्यक्त, ३- छीना हुआ, ४- न० खुशामद, ५- रोदन; (दे० ना० मा० १, १६७)।

ओस—स्त्री० (सं० अवश्याय>प्रा० उस्साव>प्रा० उस्सा, ओसा, ओस) तुषार, शबनम; (सं० रा०)।

ओसट्ट—वि० (दे०) विकसित, प्रफुल्लित; (पड्)।

ओसडिअ— वि० (दे०) व्याप्त; (पड्)।

ओसण—न० (दे०) उद्वेग, खेद; (दे० ना० मा० १, १५५)।

ओसप्पिणि—स्त्री० (सं० अवसर्पिणी) दश कोटाकोटि सागरोपम परिमित काल-विशेष, जिसमें सर्व पदार्थों के गुणों की क्रमशः हानि होती जाती है; (प० च० १, ११, ६)।

√ओसर— (सं० अप+सृ>प्रा० ओसर=१-पीछे हटना, २-सरकना, खिसकना) —इ अक० हटना; 'छुड्डु धीरत्तणु होइ मणूसहों, लच्छि कीत्ति ओसरइ ण पासहों,' अर्थात् यदि मनुष्य में थोड़ा धैर्य हो, तो उसके पास से लक्ष्मी और कीर्ति नहीं हटती; (प० च० ८, ३, ७)। —मि व० अपसरण करना; (सुदं० ११, १९, २४)। ओसरहि—क्रि० आ० हट जाओ; (जंबू० ५, ७, २४)। ओसरंत—व० कृ० (सं० अप+सृ+शतृ); (जंबू०

६, १२, ११)। ओसरसु—क्रि० आ० हट जा, "लविर्यं सुकंठेण मा मरसु ओसरसु" –इस पर सुकण्ठ ने कहा–अरे मरो मत, यहाँ से हट जा,', (ण० ७, १३, ७)। ओसरु–क्रि० आ०, हट; 'ओसरु दुट्ठ दारें',' अर्थात् 'हे दुष्ट स्त्री, हट; (प० च० १८, १०, ८)। ओसारि-क्रि० आ० हटा लीजिए; (प० च० १३, २, ६)। ओसारिवि–पू० का० क्रि० हटाता हुआ, मार्ग से बचाता हुआ; (ण० ४, १२, १३)। ओसारेप्पिणु पू० का० क्रि० हटाते हुए, (प० च० २०, ४, ३)।

ओसरिअ—वि० (दे०) १- आकीर्ण, व्याप्त; २- आँख के इशारे से संकेतित; (पड्) । ३- अधोमुख, अवनत; ४- आँख का इशारा; (दे० ना० मा० १, १७१)।

ओसरिय—वि० (सं० अपसृत>प्रा० ओसरिअ) पीछे हटा हुआ; (जंबू० ७, ६, १०)।

ओसरिया—स्त्री० (सं० अपसार = निकास, प्रा० ओसार। अथवा सं० उपशाल) आंगन, अलिन्दक, वाहर के दरवाजे का प्रकोष्ठ; तुल० राज० ओसारो (दालान, वरामदा), गु० ओसरी (वरामदा, मकान के सामने का भूभाग) (दे०-ना० मा० १, १६१)।

ओसविय—वि० (सं० उच्छ्रित, उद्+श्रि+कत) उत्थापित, ऊँचा किया हुआ; (प० च०)।

ओसव्विअ—वि० (दे०) १- शोभारहित; २- न० अवसाद, खेद; (दे० ना०-मा० १, ६८)।

ओससिउ—वि० ओससिक्त, उच्छ्वसित (सं० रा०)।

ओसह—न० (सं० औषध>प्रा०ओसह) १- दवाई, भैषज; (ण० ३, १, १४)। लो—'ओसहु निरु मिट्ठउं विज्जुवइट्ठ अहुजण कासुन होई पिउ'—अतिशय मधुर वैद्य निर्दिष्ट औषध किसे प्रिय नहीं, (प० सि०च०)।

ओसहत्थु—पुं० (सं० औषध+अर्थ) औषधि के लिए; "ओसहत्थु लुउ पुच्छ-सकण्णउ" —'औषधि के लिए उसकी पूंछ व कान काट लिये'; (जंबू० ६, ११, ८)।

ओसहि—स्त्री० (सं० औषधि>प्रा० ओसहि, ओसही) जड़ीबूटी, वनस्पति; (प० च० ४, ६, १०)।

ओसा—स्त्री० (सं० अवश्याय>प्रा० ओसाअ) ओस; (दे० ना० मा० १, १६४; ण० ४, ८, १६)। —सित्त वि० (सं० अवश्याय+सिक्त) ओस से सिंचे हुए; (जस० ४, ४, १६)।

ओसार—पुं० (सं० उत्सार>प्रा० ऊसार, ओसार) परित्याग; (भ०)।

√ओसार—(सं० अप+सारय्>प्रा० ओसार) दूर करना। —इ सक० (सं० अपसारयति) (भ०)।

ओसारिअ—वि० (सं० अपसारित> प्रा० ओसारिअ) १- दूर किया हुआ, (प० च० ४, ६, ३)। २- उत्सारित, हठाए गए; (सं० रा०)। ओसारिय (ण० १, ८, १२)। ओसारिय-पेसणु–

वि० जिसने आज्ञा को टाल दिया हो ऐसी; (रि० ३, १५)।

ओसास— पुं० (सं० उच्छ्वास) १- साँस, साँस अन्दर खींचना, साँस बाहर निकालना; तुल० म० उसासा; (भ०)। २- पुं० (सं० अवकाश >प्रा० ओवास) अवकाश; (भ०)।

ओसिंघिअ—वि० (दे०) घ्रात, सूँघा हुआ; (दे० ना० मा० १, १६८)।

ओसिअ—वि० (दे०) १- बल-रहित, २- अपूर्व, असाधारण; (पड्)।

ओसिक्खिअ—न० (दे०) १- गति-व्याघात; २- अरति-निहित; (दे० ना० मा० १, १७३)।

ओसित्त—वि० (दे०) उपलिप्त (besmeared) —(१) आलेपन किया हुआ, चिपचिपे या चिकने पदार्थ से लेप किया हुआ, पोता हुआ, लेसा हुआ, अपमानित किया हुआ; (२) अभिषिक्त, (anointed); (दे० ना० मा० १, १५८)।

ओसिरण—न० (दे०) व्युत्सर्जन, परित्याग; (पड्)।

ओसीअ—वि० (दे०) अधोमुख, अवनत; (दे० ना० मा० १, १५८)।

√ओसीस—अक० (सं० अप+वृत्) १- पीछे हटना, २- घूमना, फिरना; (दे० ना० मा० १, १५२)। ३- स्त्री० अपवृत्त (ह्रास reduction to a common measure); (दे० ना० मा० १, १५२)।

ओसुंखिअ—वि० (दे०) उत्प्रेक्षित, कल्पित; (दे० ना० मा० १, १६१)।

ओसुक्क—वि० (सं० अवशुष्क) सूखा हुआ; (प० च०)।

ओसुद्ध— वि० (दे०) विनपतित (१- विनाशित; नष्ट किया हुआ, २- मारा हुआ, ३- फेंका हुआ); (दे० ना० मा० १, १५७; जेकोबी द्वारा संपादित प० च० १, १५७)।

ओसुविणायइ—क्रि०, व० (सं० उत्स्वप्नाय्) स्वप्न देखना; (प० च० १७, १५, ३)।

ओसोवणि—स्त्री० (सं० अवस्वापनी > प्रा० ओसोयणी, ओसोवणिया, ओसोवणी) विद्या-विशेष, जिसके प्रभाव से दूसरे को गाढ़ निद्राधीन किया जा सकता है; (प० च० १०, ६, ८)।

ओहंक—पुं० (दे०) हास, हँसी, हँसने की क्रिया; (दे० ना० मा० १, १५३)।

ओहंस—पुं० (दे०) १- चंदन, २-जिस पर चंदन घिसा जाता है वह शिला, चन्द्रौटा; (दे० ना० मा० १, १६८)।

ओह—पुं० (सं० प्रा० ओघ; प्रा० ओह) समूह, संघात; (जस०)।

ओहच्छमि—वि० (सं० अव या अप+आस्) (देखिए अच्छ) बैठना; (ण० ८, १४, ८)।

ओंहट—क्रि० (सं० अवघटते, सं० अप+√घट्ट >प्रा० ओहट्ट) कम होना, ह्रास पाना, ह्रास होना; "धर्मे वाढत पापु ओंहट" —धर्म्मे वर्द्धमाने पापमवघटते; (उ० व्य० प्र० ५–२४)।

ओहट्ट—वि० (दे०) १- अपसृत, पीछे हटा हुआ; तुल० म० ओहटी; (भ०)। २- ह्रास को प्राप्त; तुल० गु० ओट; (प० च० ४२, ११, ८)। पुं० (दे०)

१- अवगुण्ठन; २- कटि-वस्त्र, नीवी, ४- वि० पीछे हटा हुआ, (दे० ना० मा० १, १६६)।

√ओहट्ट—(सं० अप+घट्ट्>प्रा० ओहट्ट) कम होना, ह्रास को प्राप्त होना। —इ (सं० अवघटते) क्रि० व० गिरिणइपुरु व ओहट्टइ बलु," अर्थात् बल गिरि नदी के पूर के समान ह्रास को प्राप्त होता है; (जंबू० ८, ७, ७)। —मि व०, ए०, पीछे हटना (प० च० ४६, २, ६)। ओहट्टन्तय—व० कृ० (सं० अप+घट्ट>प्रा० ओहट्ट =कम होना, ह्रास पाना) नष्ट होती हुई; (प० च० १७, ३, ४)।

ओहट्टिअ—वि० (दे०) दूसरे को दबा कर हाथ से गृहीत; (दे० ना० मा० १, १५९)।

ओहट्ठ—पुं० (दे०) हास, हँसी; (दे० ना० मा० १, १५३)। वि० (सं० अव-घृष्ट) घिसा हुआ; (प० च०)।

ओहड्णी—स्त्री० (दे०) अर्गला; (दे० ना० मा० १, १६०)।

ओहत्त—वि० (दे०) अवनत; (दे० ना० मा० १, १५६)।

ओहर—पुं० जलचर-विशेष, ओघर नामक जलचर जीव; (प० च० २३, १३, ९, व० १०, ८, १२)।

ओहरण—न० (दे०) १- हिंसा, २- असंभव अर्थ की संभावना; (दे० ना० मा० १, १७४) ३- वि० आघ्रात; (पइ०)।

ओहरिस—वि० (दे०) आघ्रात, सूँघा हुआ; (दे० ना० मा० १, १६९)।

ओहसिअ—वि० (सं० उपहसित) जिसका उपहास किया गया हो वह; (दे० ना० मा० १, १७३)।

ओहाइअ—वि० (दे०) अधोमुख; (दे० ना० मा० १, १५८)।

ओहाडणी—स्त्री० (दे०) पिधानी, चादर, एक प्रकार की ओढनी; (दे० ना० मा० १, १६१)।

ओहामिअ—वि० (सं० अधम+कृत) लज्जित; "णियणेत्तोहामियहरिणणेत्त—"जिसने अपने नेत्रों की शोभा से हरिण के नेत्रों को भी लज्जित कर दिया था, (ण० १, १४, ७)। २- वि० तिरस्कृत; (सुदं० ४, २, ४)।

ओहामिय—वि० (दे०) १- तिरस्कृत, २- अभिभूत; "चरणोंहामिय-कोमलक-मलं" —अपने चरणों की शोभा से कोमल कमलों को तिरस्कृत करने वाली; (जंबू० ८, ५, ५)। २- स्थगित; (जेकोबी द्वारा संपादित प० च० ४६, ६) ३- क्षीण, "देहि ताम ओहामिय छायहो" अर्थात् जिसकी कान्ति क्षीण हो गई, (प० च० ११, १३, ६)। आहो-मिया; वि० स्त्री० (सं० अधःकृता) तिर-स्कृता, (सुदं० ७, ७, ६)।

ओहार—पुं० (दे०) १- कच्छप; २- द्वीप, ३- अंश, विभाग; (दे० ना० मा० १, १६७)।

ओहालिअ—वि० (सं० अवलिप्त) १- लगा हुआ, २- सना हुआ; "घाएं गयणगइ हुउ वियलमइ कीलालोहालिय-देहउ," आघातों से गगनगति विकलमति (विह्वल) और लोहु-लुहान शरीर हो

गया; (जंबू० ६, १०, १३)।

ओहाव— सक० (सं० आ+क्रम् का धात्वादेश आक्रमण करना; (पड्)।

ओहावण—न० (सं० अवभावना) अनादर, तिरस्कार, अपमान; (प० च० ३७, ८, ५)।

ओहासिय—वि० (सं० उपहासित) जिसकी मज़ाक या हंसी उड़ाई गई हो, वह; (सुदं० ४, ३, ६)।

ओहित्थ—न० (दे०) १- विषाद, खेद; २- वेग; ३- विचारित, (दे० ना० मा० १, १६८)।

ओहीरिअ—वि० (दे०) १- खिन्न, २- ऊँचे स्वर में गाया हुआ; (दे० ना०-मा० १, १६३)।

√ओहुंज—(सं० उपङ्भुक्ते, उप+√भुज्>प्रा० उवहुंज) उपभोग करना, —इ सक० (भ०)।

ओहु—सर्व० वह, "ओहु पास दरवार सएल महि मण्डल उप्परि," (की० ३, ५८)।

ओहुअ—वि० (दे०) अभिभूत, पराभूत; (दे० ना० मा० १, १५७)।

ओहुड—वि० (दे०) निष्फल, विफल; (दे० ना० मा० १, १५७)।

ओहुर—वि० (दे०) १- अवनत, २- खिन्न, ३- ध्वस्त; (दे० ना० मा० १, १५७)।

ओहुल्ल—वि० (सं० अवफुल्ल, उत्फुल्ल का विलोम) अप्रसन्न, खिन्न, "जाम न दइरिमुहइं ओहुल्लइं; (भ० १४, ११, ५)।

ओहुल्लिय—वि० (दे०) प्रा० ओहुल्ल) नीचा किए हुए, (प० च० ५, २, २)।

औ

औ—इसका उच्चारण स्वर अ+ओ के मिलाने से बनता है। संस्कृत वर्णमाला का बारहवाँ वर्ण 'औ' प्राकृत काल में उपलब्ध नहीं होता है। 'कीर्तिलता' में औकार के प्रयोग औका, चौदिस, चौपट, चौस, चौहट्ट, तौ, तौन, तौलन्ति, दौरि आदि उपलब्ध हैं, जिनको प्रस्तुत कोश में समाविष्ट किया गया है। प्राकृत काल में 'औ' सन्ध्यक्षरत्व से विघटित होकर 'अउ' में परिणत हो गया था, परन्तु चौदहवीं शताब्दी के कवि विद्यापति के अवहट्ट भाषा के काव्य में 'औ' का प्रयोग मिलता है। इसका उच्चारण स्थान कंठ और ओष्ठ है।

औका—वि० अओक, दूसरे 'एक हाट के ओर औका हाट के कोर' (डॉ० शिवप्रसाद सिंह 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा २, १२६)।

औकी—स्त्री० (सं० अवक्रीता>प्रा० अवक्किआ) पण्य स्त्री; (की० २, ८१ तथा २, १२६)।

औकीहाट—(सं० अवक्रीता हट्ट) पण्य स्त्रियों का बाजार, शृंगारहाट); (की० २, १२६)।

क

क—पुं० (सं० प्रा० क) १- अपभ्रंश वर्णमाला का प्रथम व्यञ्जनाक्षर, जिस का उच्चारण-स्थान कण्ठ है। ब्रह्मा; (ण० ८, २, ५; दे० ना० मा० ५,

२६)। ३- न० जल, पानी; "एवकमेवक्क सिंचयंति पंजलीहिँ कं धित्तंति'; (जस० ३, २, १८)। ४- सर्व० (सं० कस्य) किसका; (उ० व्य० प्र० १५, १) ५-प० का०, संबंध की विभक्ति, (की० २, १०७)। टि०—कारक विभक्तियों के लोप की प्रक्रिया अपभ्रंश काल से दिखाई पड़ती है। अवहट्ट भाषा तक आते-आते प्रायः विभक्तियों का स्थान परसर्गों ने ले लिया था। ६- सर्व० (सं० कः=क्या) कौन, कोई; (सं० रा०)।

कं—१- पुं० (सं० कम्) जल; (प० च० ५३, ६, ५; जंबू० १०, २, ६)। २- अव्य० किसी तरह, (की० ४, २४७)।

कं कं—पुं० (ध्व०) कांव-कांव; (जंबू० ६, ५, १०)।

कंक—पुं० (सं० कङ्क>प्रा०-कंक) पक्षी-विशेष, वक पक्षी; (जस० १, १०, ५; जंबू० ४, १८, ७)।

कंकड—पुं० (सं० कङ्कट>प्रा० कंकड) रक्षा-कवच, वक्तर; (जंबू० ११, ३, २)। पुं० राजा; (प० च० ३२, ३२)।

कंकण—न० (सं० कङ्कण>प्रा० कंकण) १- हाथ का आभरण-विशेष, कंगन; (भ०)। २- गुरु वर्ण; (प्रा० पैं० २, १८०)। ३- चक्र (जंबू० १०, २०, ६)।

कंकर—पुं० (सं० कर्कर) कंकर, कौड़ी; (जंबू० ४, २, ८)।

कंकाल—न० (सं० कङ्काल>प्रा० कंकाल) शरीरास्थि, चमड़ी और मांस-रहित अस्थि-पञ्जर; (जंबू० १, ६, ११)। —धारि वि० कंकालधारी; (जंबू० १०, २५, २)।

कंकिल्लि—पुं० (सं० कङ्केल्लि>प्रा० कंकेल्लि) कंकेल्ली, अशोक का पेड़, वृक्ष-विशेष; (व० १, ६, २)।

कंकेल्लि—पुं० (सं० कङ्केल्लि) अशोक वृक्ष; (जस० २, १२; दे० ना० मा० २, १२)। कंकेल्ली; (सुदं० ४, ३, २)।

कंकोड—न० १- (दे०) वनस्पति-विशेष, ककरैल, एक प्रकार की सब्जी जो वर्षा-काल में होती है; (दे० ना० मा० २, ७)। २- पुं० (सं० कर्कोट>प्रा० कंकोड) एक नागराज, आठ मुख्य सर्पों में से एक; (पद्द)।

कंख—सक० (सं० काङ्क्ष्>प्रा० कंख) चाहना; (जस० २, २१, ८)।

कंख—स्त्री० (सं० काङ्क्षा>प्रा० कंखा) चाह, अभिलाषा; (ण० ४, ३, ४)।

कंखिर—वि० (सं० काङ्क्षितृ) चाहने वाला, अभिलाषी; (जस० ३, ७, ७; भ०)। वि० स्त्री० आकांक्षा वाली; (सं० रा०)।

कंखिरु—पुं० (सं० काङ्क्षा>प्रा० कंखा) आकांक्षा, (जंबू० ८, ११, १४)

कंगु—स्त्री० न० (दे०) धान्य-विशेष; (दे० ना० मा० ७, १)।

कंचण—पुं० (सं० काञ्चन>प्रा० कंचण) सोना, सुवर्ण; (व० १, ६, ६; भ०)। —गुह; स्त्री० (सं० काञ्चन+गुहा>प्रा० कंचण+गुह) कांचनगुफा, गुफा-विशेष; (ण० ६, १, ६)। —पुहइ, स्त्री० काञ्चनपृथिवी; (भ०)। —महि,

स्त्री० काञ्चनमही (भ०)। —माला, स्त्री० काञ्चनमाला, नाम-विशेष, (भ०)। कंचणाभा- स्त्री० रानी-विशेष का नाम, पियवय की पत्नी; (प० च० ३६, ७७)।

कंचणार—पुं० (सं० कञ्चनार>प्रा० कंचणार) वृक्ष-विशेष; (प० च० ५३, ७६)।

कंचना—पुं० (सं० काञ्चन) सुवर्ण; (की० ३, ११६)।

कंचाइणी—स्त्री० कात्यायनी नामक स्त्री, चामुण्डा, (सुदं० ६, १५, २, जंवू० ७, ६, ८)।

कंचि—स्त्री० (दे०) लहंगा, धोती; (व० ८, ६, ७)।

कंचिपुर– पुं० (सं० काञ्चीपुर) नगर-विशेष; (जंवू० ६, ११, ३)।

कंचिवाल— वि० काञ्चीदेशोत्पन्न; (जंवू० ८, १२, ११)।

कंची—स्त्री० १- (दे०) मुशल के (धान कूटने का मूसल) मुँह पर रखी जाने वाली लोहे की एक वलयाकार वस्तु; (दे० ना० मा० २, १)। २- स्त्री० (सं० काञ्चि, ॰ञ्ची>प्रा० कंचि, कंची) कटिमेखला, कमर का आभूषण, कांचीदाम; (ण० १, १६, १०)। —कलाव पुं० (सं० काञ्ची+कलाप) "कंचीकलाव गुप्पंतियाउ" —कटिमेखला को दूर करती हुई; (जस० ४, २, १८)।

कंचुअ—पुं० (सं० कञ्चुक>प्रा० कंचुअ) १- चोली (रा०)। कंचुय— चोली; (जंवू० ४, ११, ८)। २- वस्त्र कपड़ा, "तो उज्झिऊण लज्जा (लज्जं), ओइंघइ कंचुयं सरीराओ," (प० च० ३४, १५)।

कंचुइ—स्त्री० (सं० कञ्चुक>प्रा० कंचुअ) कंचुकी, चोली; (विला०)। २- पुं० (सं० कञ्चुकिन्) अंतःपुर का प्रतीहार, चपरासी, (प० च० ८, ३६)।

कंचुलिय—स्त्री० १- (सं० कञ्चुलिका>प्रा० कंचुलिआ) चोली, कंचुकी; (जस० २, ३२, १०)। २- (सं० कञ्चुक>प्रा० कंचुअ) केंचुली, साँप की कांचली; (पाहु० १५)।

कंचुली—स्त्री० (सं० कञ्चुलिका>प्रा० कंचुलिआ, कंछुल्ली) चोली; स्त्री का स्तनाच्छादक वस्त्र; तुल० म० कांचोळी; (भ०)।

कंचू—पुं० (सं० कञ्चुक>प्रा० कंचुअ) चोली; (प्रा० गु० २६, १७)।

कंछुल्ली—स्त्री० (दे०) हार, कण्ठाभरण; (भ०)।

कंज—पुं० (सं० कञ्ज) कमल; (जंवू० ४, ११, ५)। —केसर पुं० (सं० कमलकेसर) बाल को तरह पतले-पतले वे सींके कमल के बीच में रहते हैं; (व० २, ३, ११)।

कंजिअ—पुं० (सं० काञ्जिक>प्रा० कंजिअ) एक प्रकार का खट्टा रस जो कई प्रकार से बनाया जाता है और जिसमें अचार और वड़े आदि भी पड़े रहते हैं; (जस० ३, ३१, १)। कंजिय; (जंवू० ३, ६, १३)।

कंजिउ—पुं० (सं० काञ्जिक) कांजी; (सु० ८, ८)।

कंटअ—पुं० (सं० कण्टक>प्रा० कंटग) काँटा; (सं० रा०)। कंटय; (भ०)।

कंटइय—वि० (सं० कण्टकित>प्रा० कंटिय) कँटीला; कण्टक-युक्त; (ण० १, ६, २)।

कंटउच्चिच—वि० (दे०) काँटे से विद्ध किया हुआ; (दे० ना० मा० २, १७)।

कंटक—पुं० (सं० कण्टक>प्रा० कंटग) काँटा; (की० ३, ६४)। कंटय—पुं० काँटा, (जंबू० ५, ८, २४)।

कंटयतरु—पुं० (सं० कण्टकतरु) कँटीला वृक्ष; (जस० २, २८, ५)।

कंटिवोरी—स्त्री० कंटीली वेरी, (जंबू० ५, ८, ६)।

कंडुल्ल, कंटोल—न० (दे०) वनस्पति-विशेष, ककरैल; (दे० ना० मा० २, ७)।

कंठ[1]—पुं० (दे०) १- सूकर, सूअर; २- मर्यादा, सीमा; (दे० ना० मा० २, ५१)।

कंठ[2]—पुं० (सं० कण्ठ>प्रा० कठ) गला; (प्रा० पैं० १, ६८; जस० २, ३, ३)। —अ पुं० कण्ठा, कण्ठाभरण; (जंबू० ३, १४, १३)। —कंदलि स्त्री० (सं० कण्ट+कन्दल) गला और गाल तथा कनपटी, "त रसइ कंठ-कंदलि स-कोउ दंसाणिउ विसहर इव सुभोउ," अर्थात् किसी ने उस शत्रु-भट की कण्ठ-कंदलि में इस प्रकार काटा, जिस प्रकार कि सर्प अपने फण से (अपने शत्रु को) काट लेता है; (व० ५, १४, ६)।

कंठकल—पुं० (सं० कण्ठ+कल) कण्ठ-कूजन, (जंबू० १, १२, ३)।

कंठदीणार—पुं० (दे०) छिद्र, विवर; (दे० ना० मा० १, २४)।

कंठमल्ल—न० (दे०) १- ठठरी, मृत-शिविका; २- वाहन; (दे० ना० मा० २, २०)।

कंठागहणउ—क्रि० आ० (सं० कण्ठ+आग्रहण) कंठ को ग्रहण करो, "का वि भणइ पिय कंठागहणउ, करि लइयमेरउ कंठाहरणउ"—कोई कहती है हे प्रिय, मेरे कण्ठ को ग्रहण करो और मुझे अपना कण्ठाभरण बना लो; (ण० ३, १०, ३)।

कंठाल—पुं० (दे०) कडाह, भार, काँठी; (जंबू० ४, ११, ८)।

कंठाहरण—पुं० न० (सं० कण्ठ+आभरण>प्रा० कंठ+आहरण) कंठ का आभूषण; (ण० ३, १०, ३)।

कंठिअ—पुं० (दे०) चपरासी, प्रतीहार; (दे० ना० मा० २, १५)।

कंड[1]—पुं० न० (सं० काण्ड>प्रा० कंड) १- वाण; (जस० १, १६, १)। २- धनुर्दण्ड; (जस० १, १२, १२)। ३- खण्ड (जस० ४, २५, ३)।

कंड[2]—पुं० (दे०) १- फेन; २- वि० दुर्बल, ३- विपन्न; (दे० ना० मा० २, ५१)।

कंडपंडवा—स्त्री० (दे०) यवनिका, परदा; (दे० ना० मा० २, २५)।

कंडवइ—पुं० (सं० काण्डपति) कर्णधार, नाविक; तुल० म० काण्डरी; (भ० ७, ३, ४)।

कंडवडु—पुं० (सं० काण्डपट) एकांत विभागीय पर्दा; (व० ४, २४, १०)।

कंडु—पुं० (सं० कन्दुक) खेलने के लिए

गेंद; "थंभिय कंडु कइय णेराइय," (भ०)।

कंडुअ[1]—पुं० (सं० कन्दुक) गेंद; (दे०-ना० मा० ३, ५६)।

कंडुअ[2]—सक० (सं० कण्डूय) खुजवाना।

कंडुयंत—व० कृ० (सं० कण्डूय+शतृ); (जंबू० १०, २६, ७)।

कंडुयण—न० (सं० कण्डूयन>प्रा० कंडुयण) खुजली, खाज, रोग-विशेष; (ण० ८, ६, ४)। कंडुवण— (जंबू० ८, १६, ६)।

कंडुरु—पुं० (सं० कण्डुरु) एक प्रसिद्ध राजा, जिसने रामचंद्र के भाई भरत के साथ जैनी दीक्षा ली थी; (प० च० ८५, ५)।

कंडू—स्त्री० (सं० कण्डू>प्रा० कंडू) १- खुजलाहट, २- रोग-विशेष; (जस० २, १०, ७)।

कंडूअण—न० (सं० कण्डूयन>प्रा० कडूयण, कंडुयण) खुजली, खाज; (जस० २, १०, ७)।

कंडूर—पुं० (दे०) वक, वगुला; (दे० ना० मा० २, ६)।

कंडोहिय—वि० (दे०) मथित; (जस० ३, ३, १२)।

कंढ—पुं० (सं० कण्ठ) गला; कंढि; (रा० १६)।

कंढी—स्त्री० (सं० कण्ठिका) गले का आभरण; (रा० १६)।

कंत[1]—पुं० (सं० कान्त>प्रा० कंत) पति, स्वामी; राज० गु० कंत; (प्रा० पैं० १, ६)। कन्त; (की० ३, १)। कन्तु; (हे० ३४५, १)।

कंत[2]—स्त्री० (सं० कान्ता>प्रा० कंता) स्त्री, नारी, सुंदरी; (ण० १, १७, ३)।

कंता—स्त्री०, १- स्त्री (जम० २, १, १०)। रावण की एक पत्नी का नाम; (प० च० ७४, ११)।

कंतारि - न० (सं० कान्तार>प्रा० कंतार) अरण्य, वन; (जस० २, २१, २)। कन्तार—जंगल; (की० ४, १२६)।

कंतावसाण—वि० (सं० कान्ता+वशानाम्) कान्ता के वशवर्त्ती; (जंबू० ४, १८, १०)

कंतासोग—पुं० (सं० कान्ताशोक) राजा-विशेष का नाम, विजयावती के समीपवर्ती मत-कोकिलरव नामक ग्राम का राजा; (प० च० १०३, १२६)।

कंति—स्त्री० १- (सं० कान्ति>प्रा० कंति) कांति, सौंदर्य, चमक, दीप्ति, प्रेम के कारण बढ़ा हुआ सौंदर्य, शृंगार (सं० रा०; ण० १, १४, ३)। २- गाथा का भेद; (प्रा० पैं० १, ६०)। –वंतु वि० (सं० कान्तिवान्>प्रा० कंतिवंत) कान्ति-युक्त; (व० २, ३, ५)। –विणिज्जिय वि० (सं० कान्ति+विनिर्जित) कान्ति से जीतने वाला; (व० २, ४, ६)।

कंतिउर—पुं० (सं० कान्तिपुर) एक कस्बा जो कि ग्वालियर के उत्तर में २० मील दूरी पर स्थित है और अब कोटवाल कहा जाता है; (भ०)।

कंतिल्लु—वि० (सं० कान्ति+मत्>प्रा० कंति+ल्ल) कान्ति-युक्त; (रि० ८, ६)।

कंती—स्त्री० (सं० कान्ति>प्रा० कंति)

शोभा, सौन्दर्य; "रूपेण कामु कंतीइ चंदु;" (जस० १, ११, २)। —इ स्त्री० कांति 'कंतीइ चंदु तेएण भाणु' –वह कांति में चन्द्रमा और तेज में सूर्य था; महा० ६८, ६, ६)।

कंतु—पुं० (दे०) काम, कामदेव; (दे०-ना० मा० २, १)।

कंथारी—स्त्री० (सं० कन्थारी) वनस्पति-विशेष; (संधि० ५, ६, ५)।

कंद¹—पुं० १- (सं० कन्द>प्रा० कंद) मूल, जड़; (प्रा० पैं० १, ९८; व० १०, १६, ६)। २- पुं० (दे०) मेघ; 'पमायणासु कंदभासु संजओ दयावरो," –'(वे) प्रमादों के विनाशक, मेघ के समान गंभीर-ध्वनि, संयमी व दयापरायण थे,' (सुदं० १०, ३, १७)।

कंद²—वि० (दे०) १- दृढ़, २- उन्मत्त, ३- न० आच्छादन; (दे० ना० मा० २, ५१)।

√कंद³—(सं० क्रन्द>प्रा० कंद) रोना। —इ, क्रि० व० (सं० क्रन्दति) (भ०)। —हि (विधि०) (जंबू० २, २, ६)।

कंदण—पुं० (सं० क्रन्दन) विलाप, रोदन; (जंबू० ४, २१, ११)।

कंदप्प—पुं० (सं० कन्दर्प>प्रा० कंदप्प) १- कामदेव, अनंग; (ण० २, ६, १३)। २- प्रेम; (सं० रा०)।

कंदर—न० (सं० कन्दर>प्रा० कंदर) गुहा, गुफा, कंदरा; "भरंतरुंदकुंडकूवकंदरं;" (जस० ३, १६, ३)। कंदरी-स्त्री० (सं०कन्दरा>प्रा० कंदरा, कंदरी) कंदरा; (व० १, १३, ३)।

कंदल—पुं० (सं० कन्दल>प्रा० कंदल) अङ्कुर; (जस० १, १७, २१)। २- न० (दे०) कपाल; (दे० ना० मा० २, ४)। ३- पुं० न० (सं० कन्दल) कलह, झगड़ा; (जंबू० ४, २, १६)। शोरगुल; (व० ४, ३, ११)। कन्दल—पुं० (सं० कन्दल) लड़ाई-झगड़ा; (की० ४, ६३)।

कंदलि—स्त्री० गर्दन के चारों ओर पहने जाना वाला एक आभूषण, "कंबु कंठकंदलिए खन्नउं;" (भ० ६, १७, ४)।

कंदावण—वि० (सं० क्रन्दापन) रुलाने वाले, "एणं तियसिदविंदकंदावणें रावणें कुद्धे सुरवलं" –अर्थात् जैसे कि देवगणों को रुलाने वाले रावण के क्रुद्ध होने पर देवों की सेना की दशा हुई थी; (ण० ४, ११, २)

कंदाविय—वि० क्रन्दन कराने वाला, रुलाने वाले, (जंबू० १०, १, १२)।

कंदिअ—न० (सं० क्रन्दित>प्रा० कंदिय) रोदन; (ण० ३, १६, १०)।

कंदियं—वि० (सं० क्रन्द्रित>प्रा० कंदिय) आक्रान्त; (रि० १, १२)।

कंदिर—वि० (क्रन्द+इर; सं० क्रन्दिन्>प्रा० कंदिर) क्रन्दन करने वाला; (भ०)।

कदिवसु—अव्य० किसी दिन; (प० च० २२, ३, ४)। कन्दिवसु –अव्य० किसी दिन; (प० च० ४७, ३, ५)।

कंदुट्ट—न० (सं० कन्दोट) नील कमल; (सं० रा०)।

कंदुल्ल—[सं० कन्द+उल्ल (प्र०)] कंद; "कंदुल्लगहरगहब्भु जेत्थु," जहाँ

वनगर्दभ कन्दों से युक्त वनअटवी में दिखाई पड़ता है; (जस० २, २७, १०)।

कंदोट्ट—न० (सं० कन्दोट:) नील कमल; (दे० ना० मा० २, ६; जस० ४, १७, १३; भ०)।

कंध—पुं० (स० स्कन्ध>प्रा० कंध, खंध) कन्धा; (की० ४, ३०)। –र, पुं० कन्धा; (ण० ६, १६, १०)।

कंप—अक० (सं० कम्प्>प्रा० कंप) कांपना। —इ; (हे०, प्रा० व्या० १, ३०)। कंपंत–व० कृ० (√कम्प्+शतृ); (जंबू० ७, ८, ११)। कंपंता—वर्तमान; कालिक कृ० एक व० (सं० कम्पत्) कांप रहा; (प्रा० पैं० २, ८६)। कंपावइ—क्रि० (सं० कम्पयति); भ०। कंपिआ–क्रि० भू० का०, कांप गया; (की० ३, ६७)। कम्पइ–क्रि०, व० कांपता है; (की० २, २२६)। कम्पा–कांपती है; (की० ४, ११०)।

कंपड—पुं० (दे०) पथिक, मुसाफिर; (दे० ना० मा० २, ७)।

कंपण—न० (सं० कम्पन>प्रा० कंपण) कम्प, हिलन, कंपकंपी; (व० २, २१, १)।

कंपावण—न० (सं० कम्पन>प्रा० कंपण) कँपावन। वि० (सं० कम्पिन्> प्रा० कंपि) कँपाने वाला; (जंबू० ५, १३, ६)।

कंपि—स्त्री० रसिका छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ८६)।

कंपिय—वि० (सं० कम्पित>प्रा० कंपिअ) कांपा हुआ; (व० २, १३, ४)।

कंपिरंग—पुं० (सं० कम्पितृ+अङ्ग) कांपने वाला अंग; (जंबू० १०, १७, १६)।

कंपिर—वि० (सं० कम्पितृ>प्रा० कंपिर) कांपने वाला; (क० १०, १६, १०)।

कंपिल्ल—पुं० (सं० काम्पिल्या) शहर-विशेष का नाम, (भ०)। —पुर न० (सं० काम्पिल्यपुर) नगर-विशेष; (प० च० ८, १४३)।

कंब—स्त्री० (सं० कम्बा>प्रा० कंबा, कंब) यष्टि, चाबुक; (जंबू० ६, ४, ५)।

कंबर—पुं० (दे०) विज्ञान; (दे० ना०-मा० २, १३)।

कंबी—स्त्री० (सं० कम्बी=बांस की गांठ) यष्टि; (संधि० २, ११, ६)।

कंबु—पुं० (सं० कम्बु>प्रा० कंबु) शङ्ख; (जंबू० ५, १२, १४)। २- इस नाम का द्वीप; (प० च० ४५, ३२)। ३- पर्वत–विशेष; (प० च० ४५, ३२)।

कंबोय—पुं० (सं० कम्बोज) देश-विशेष; (प० च० २७, ७)।

कंयडिअ—स्त्री० (देशज) कान का एक आभरण। —हिं; (रा० १६)।

कंवल—पुं० न० (सं० कम्बल>प्रा० कंबल) कामरी, ऊनी कपड़ा; (जस० ३, १६, ४)।

कंस—पुं० (सं० प्रा० कंस) श्रीकृष्ण का मातुल, पुरुष-विशेष; (ण० ४, ६, ११)। राजा का नाम; (प्रा० पैं० २, ७१)।

कंसार—(दे०) कँसेरा, ठठेरा; (जंबू० ५, ७, १७)।

कंसाल—पुं० (सं० कांस्याल>प्रा० कंसाल) वाद्य-विशेष; (प० च० २४, २, ३; प्रा० गु० ३२, ३)। —य पुं० (सं० कांस्यतालक) वादित्र, वाद्य-विशेष, (प० च० ५७, २३)।

कँसेरी—स्त्री० (सं० कांस्यकार>प्रा० कंसयर>अप० कंसेर+ई प्र०) कसेरों का बाजार; (की० २, १०१)।

कअ—वि० (सं० कृत>प्रा० कड, कय) किया हुआ, बनाया हुआ; (ण० १, १८, १)।

कआ—पुं० (सं० प्रा० काय) शरीर, देह; (प्रा० पैं० २, ६४)।

कइंद—पुं० (सं० कवीन्द्र) नाम-विशेष; (ण० ५, २, ४)।

कइ—वि० (सं० कति>प्रा० कइ) कई, कितना; "कइहिँ दिणेँहि परिणाविउ देविउ, णन्दसुणन्दाइउ सिय-सेयिउ," अर्थात् कई दिनों बाद, उन्होंने नन्दा सुनन्दा नामक श्री से सेवित दो देवियों से विवाह किया, (प० च० २, ८, ७)। पुं० (सं० कवि>प्रा० कइ) कवि (ण० १, २, १०; की० २, १४)। प० (सं० कै>कइ) की; (की० ४, २७)। पुं० (सं० कपि) बंदर; (व० १०, १८, १)। प० —के (संधि १२, ४, ८)। क्रि० वि० (सं० कदा>प्रा० कया) कभी; (की० १, १३६)। –अरो पुं० (सं० कविवरः) श्रेष्ठ कवि; (प्रा० पैं० १, २०)। —कुल, पुं० (सं० कविकुल) बंदरों का समूह (जंबू० ५, ८, ३४)। (सं० कविकुल) कविजन; (की० २, १४)। —केय, पुं० (सं० कपिकेतन) कपिध्वज, वानर-द्वीप के एक राजा का नाम; (प० च० ४८, १३, ६)। —यण पुं० (सं० कविजन) कवियों; (सुदं० २, ३, २)। —रव न० (सं० कैरव>प्रा० कइरव) कमल; "वियासाविय–कइरख–कलिय कैरव-कलियों को विकसित करने वाला; (व० ६, ६६)।—वय, –वाह वि० (सं० कतिपय) कई एक; (प० च० ६१, १६)। कईसा–पुं० (सं० कवीश>प्रा० कईस) श्रेष्ठ कवि; (प्रा० पैं० २, १४५)।

कइअंक, कइअंकसइ—पुं० (दे०) निकर, समूस; (दे० ना० मा० २, १३)।

कइउल्ल—वि० (दे०) थोडा, अल्प; (दे० ना० मा० १, २१)।

कइगई—स्त्री० (सं० कैकयी) राजा दशरथ की रानी; (प० च० ६५, २१)।

कइत्त—पुं० (सं० कवित्त) १- कविता, पद्य; (प्रा० पैं० १, १५२)। २- पुं० (सं० कवित्व) १- काव्य का गुण; २- काव्य-रचना शक्ति; (जंबू० १, ५, १३)। —ण पुं० (सं० कवित्व) १- काव्य-रचना-शक्ति, २- काव्य का गुण; (जस० ४, १४, १५)। –धाम पुं० (सं० कवित्वधाम) कवित्व से संपन्न; (जंबू० ११, १, १)।

कइत्थ—वि० (सं० कृतार्थ) कृतज्ञ; (सुदं० ११, ११, ६)।

कइदिण—पुं० (सं० कतिपय+दिनम् प्रा० कइअ+दिण) कई दिन; (जंबू० १०, २१, ६)।

कइद्धअ—पुं० वानरवंशीय राजा; (प० च० ६, ८३)।

कइमइ—स्त्री० (सं० कवि+मति>प्रा० कइ+मइ) कवि की बुद्धि; (जस० १, २३, १०)।

कइयलग्गि—क्रि० वि० कव से; (सं०-रा०)।

कइयहुँ—अव्य० (सं० कदा) कव; (प० च० ६, ६, ५)।

कइयह—अव्य० (सं० कदापि) कभी; (भ०)। –ा (कइयहा) (सं० कदा) कव, किस-समव (सण०; जस० १, ५, १२)।

कइरव—न० (सं० कैरव>प्रा० कइरव) कमल; (जंबू० ८, १४, १५)।

कइराअ—पुं० (सं० कविराज) श्रेष्ठ कवि; (जस०)।

कइलास—पुं० (सं० कैलाश>प्रा० कइलास) कैलाश पर्वत; (प० च० १३, ६, २)। —गिरि (सं० कैलाशगिरि) कैलाश पर्वत; (जंबू० ६, ६, १)।

कइल्लवइल्ल—पुं० (दे०) स्वच्छन्द-चारी वैल; (दे० ना० मा० २, २५)।

कइवंसिय—वि० (सं० कपिवंशिक) कपिध्वजी; (प० च० १२, २, ७)।

कइवइ—पुं० (सं० कवि+पति>प्रा० कइवइ) श्रेष्ठ कवि; कविराज; (जस० २, १०, ३)।

कइवय[1]—वि० (सं० कतिपय) कई एक; (ण० ४, ७, १०)।

कइवय[2]—पुं० (सं० कैतव) कपट, झूठ, धोखा; चालवाजी; (ण० ८, १२, १०)।

कइवार—पुं० स्तुति पाठ (panegyric); तुल० प्राचीन गु० कइवार; (प० च० ३५, ८, ९)।

कइवित्त—पुं० (सं० कवित्व) कविपन; (ण० ६, ९, ८)।

कइस—वि० (सं० कीदृश) कैसा; (रा०)। कइसीं (रा० १४)। कइसउ (रा० २४)। कइसे; (रा० २०; की० २, १४९)।

कई—वि० (सं० कति>प्रा० कई) कितना-कितनी; (प्रा० पैं० १, ४९)।

कउ—क्रि० भू० का० (सं० कृत) किया "णिग्गन्थु णिएँवि उवहासु कउ," अर्थात् 'निर्ग्रन्थ देख कर उसने तुम्हारा मजाक उड़ाया'; (प० च० ६, १५, ४)।

कउ—अव्य० (सं० कुतः) कहाँ से "कउ दीसन्ति पडीवा उज्झहिँ एक्कहिँ-मिलिया" अर्थात् 'कहाँ से वे एक साथ मिलकर अब अयोध्या में दिखाई देंगे,' (प० च० ५, १२, ९; हे० ४१६, १)। २- (सं० कथं) कैसे; (हे० ४१८, १)। कैसा, "अण्णु वि एत्तिउ सोहग्गु कउ। जें कङ्कणु देइ कुमाए तउ" अर्थात् 'और तुम्हारा इतना सौभाग्य कैसे हो सकता है कि कुमार तुम्हें कंगन दे,' (प० च० ११, २, ३)। ३- प०, को; "हर कउ भगत हरदत्त नाम"; (की० ३, १३७)।

कउअ—वि० (दे०) प्रधान, मुख्य, २- चिह्न; (दे० ना० मा० २, ५६)।

कउच्छेअय—पुं० (सं० कौक्षेयक) पेट पर बँधी हुई तलवार; पड्)।

कउडी—स्त्री० (सं० कपर्दिका) कौड़ी; गु० कोडी, (प्रा० गु० १६, ४०)।

कउण—सर्व० (सं० कः+पुनः>प्रा० कवण) कौन। कउणु; (रा० ४१)।

कउतिग—पुं० (सं० कौतुक) आश्चर्य; (संधि० २, १, ६)।

कउतुकमङ्गल—पुं० (सं० कौतुकमङ्गल) नगर-विशेष; (प० च० २१, २, १)।

कउत्तल—पुं० (सं० कुन्त>प्रा० कुंत) भाला; (क० ३, १३, ६)।

कउल—पुं० (सं० कौल) कापालिक, शैव मत का तांत्रिक साधु, कुलाचार्य; (जस० १, ५, २१)। २- न० संप्रदाय-विशेष; (ण० ९, ६, २)। ३- न० सूखा गोबर, करीष; (दे० ना० मा० २, ७)। ४- पुं० (सं० कपोल) गाल; (संधि० २, १३, ३)। —उल पुं० (सं० कौल+कुल) कापालिक आदि दुष्ट धार्मिक समूह; (जस०)।

कउलेवउ—वि० (सं० कवलित>प्रा० कवलिअ) कवलित, भक्षित; 'काले कउलेवउ हउ मि तेम' – उसी प्रकार मैं भी काल से कवलित होऊँगा; (महा० ६८, ११, ३)।

कउसंबि—स्त्री० (सं० कौशाम्बी) नगर-विशेष; (क० १, ७, ९)।

कउसीसे—पुं० (सं० कपिशीर्ष>प्रा० कविसीस) कंगूरा; "मणिमय तोरण दंड धज कउसीसे नव घाट," तुल० गु० कोशीसुं; (प्रा० गु० १०, १६)।

कउह—पुं० (सं० ककुभ) ककुभ वृक्ष, अर्जुन का पेड़; (जंबू० ५, ८, १२)। न० (दे०) नित्य, सदा; (दे० ना० मा० २, ५)।पुं० न० (सं० ककुद) बैल के कंधे का कुब्बड; (पइ्)।

कउमहग्ग—पुं० (सं० ककुभ्+मार्ग> प्रा० कउहा+मग्ग) दिशा-मार्ग; (प० च० १०, १, ८)।

कए[1]—अ० (सं० कृते) लिये; (प्रा० पैं० १, ६७)।

कए[2]—क्रि० भू० का० (सं० कृत>प्रा० कए) किया, "अन्तरिक्ख अच्छरा विमल कए वीजए अञ्चल," अर्थात् आकाश में अप्सराएँ पुण्यात्मा वीरों के ऊपर अंचल से पंखा झलती थी, (की० ४, २, १६)। व० कृ० – करके; "तुम्हे सत्तुहि मित्त कए भुञ्जह तिरहुत राज," तुम्हे शत्रु को मित्र बनाकर तिरहुत का राज भोगना चाहिए; (की० २, २७)।

कओल—पुं० (सं० कपोलः) गाल; (मं० रा०)।

ककु—पुं० इक्ष्वाकुवंशीय राजा; (प० च० २२, २९)।

कक्कड[1]—वि० (सं० कर्कश>प्रा० कक्कस, कक्कखड) कठोर, परुष; (प० च० ३५, १, ५३)।

कक्कड[2]—पुं० (सं० कर्कर>प्रा० कक्कर) कर्कराशि (कर्क नक्षत्र); "जिह गयणु तेम सो मीणजुत्तु जिह गयणु तेम कक्कडविचित्तु" –वहाँ मछलियाँ भी थीं और अतः वह मीन राशि युक्त गगन के समान था। वह कर्कश और विचित्र था, अतएव कर्कराशि और चित्रा नक्षत्र से युक्त गगन के समान था; (सुदं० २, १४, २)।

कक्कर—वि० (सं० कर्कर>प्रा० कक्कर) कठोर; (ण० ७, १०, ८; प०

च० ८, १०, ८) । पुं० (सं० कर्कर> प्रा० कक्कर) कंकर, कंकड; तुल० गु० कांकरी; (प० च० २४, ३, ६) ।

कक्कस¹—वि० (सं० कर्कश >प्रा० कक्कस) कठोर; (भ०; जस० २, ३१, २) ।

कक्कस², कक्कसार—पुं० (दे०) करम्ब, दध्योदन; (दे० ना० मा० २, १४) ।

कक्केअण—पुं० न० (सं० कर्केतन) रत्न की एक जाति; (प० च० ३, ७५) ।

कक्खंतर—पुं० (सं० कक्ष+अन्तर) पेट, कुक्षि; "कक्खंतरु कहेइ क वि कवणें मउलिनयणकण्णकंडुवणें," –कोई आंखे वंद करके कान खुजलाने के वहाने से अपनी कुक्षि को वतलाने लगी; (जंवू० ८, १६, ६) ।

कक्ख—वि० (सं० कर्कश >प्रा० कक्कस) कठोर; (जस० १, ५, १६) । पुं० (सं० कक्ष >प्रा० कक्ख, कच्छ) कमरा; तुल० म० काख; (प० च० १६, १५, ३) । –उ (पुं० सं० कक्ष) लतावृक्ष आदि गुल्म (ऐसा पौधा जो एक जड़ से कई तनों के रूप में निकले, जैसे ईख, वाँस आदि); (जस० ३, ३२, ६) ।

कक्खड—वि० (सं० कर्कश >प्रा० कक्कस, कक्खड) १- कठोर, परुस; (प० च० १३, ८, ४) । "पहुआएसु सकक्खडमाणउ;" (भ० १०, ४, १) । २- तीक्षण; (प० च० १३, ८, ४) । ३- पीन, पुष्ट; (दे० ना० मा० २, ११) ।

कक्खड—पुं० कटाक्ष; "कक्खउ दावइ मुहु वियसावइ"—अर्थात्" कटाक्ष देती; मुख विकसाती;' (मुदं० ८, २८, ८) ।

कक्खडंगी—स्त्री० (दे०) सखी, सहेली; (दे० ना० मा० २, १६) ।

कगलंतउ—पुं० (सं० कङ्काल >प्रा० कंकाल) चमड़ी और मांस-रहित अस्थिपञ्जर; कंकाल; "वंदिगु आवंतउ णं कगलंतउ खुडियसीसु विग्गुत्तउ" वन्दी को मुंडे सीस व विकृत अवस्था में कंकाल जैसे आते हुए; (म० २, १६, ११) ।

कग्घाड—पुं० (दे०) १- चिरचिरा; २- दूध की मलाई; (दे० ना० मा० २, ५४) ।

कचोर—पुं० सूखा हुआ और भूना हुआ या छौंका हुआ अचार (drid and fried pickles); तुल० गु० काचरी, म० कच्चरा; (प० च० ५०, ११, ६) ।

कच्च—न० (सं० काच >प्रा० कच्च) शीशा, काँच; (प० च० २२, १०, ८) । लो०–कच्चे, पल्लटइ को रयणु, पित्तलइ हेम विक्कइ कवणु–अर्थात् 'कांच से रत्न को कौन वदलेगा ? पीतल से सोने को कौन वेचेंगा ? तुल० पं० कच्च; (जस०) । २- न० (सं० कृत्य) कार्य; (दे० ना० मा० २, २) ।

कच्चरा—स्त्री० (दे०) कचरा, कच्चा खरवूजा २- कचरा को सूखाकर, तल कर और मसाला डालकर वनाया हुआ खाद्य-विशेष, एक प्रकार आचार; तुल० गु० काचरी, म० काचन्या, कचोत्या, "पुणो कच्चरा पप्पडा दिण्णभेया," (भ० १२, ३, ८) ।

कच्चासण—पुं० (सं० कपण+अशन)

कच्चा भोजन, आँच पर न पका हुआ भोजन; (सा० १४)।

कच्चें—न० (सं० काच>प्रा० कच्च) काँच, शीशा; (जंबू० २-१८)।

कच्चोल—पुं० (प्रा० कच्चोल, कच्चोलय) पात्र-विशेष, प्याला, कटोरा; तुल० म० कचोलें; (जस० २, २३, १०; प० च० २५, ११, ३)। —अ (सुद० ८, १७, १०)।

कच्छ¹—पुं० (सं० कच्छप) दोहा छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ८०)। २- पुं० (सं० प्रा० कच्छ) (१.) लँगोट; (प० च० ४, ११, ८)। (२.) देश-विशेष; (भ०)। —डंअ (य) कछौटा, कछौटक; (जंबू० ५, ७, १३)। —व, पुं० कच्छ, देश-विशेष; (भ०)। —अवणीसु पुं० कच्छ देश का राजा; (व० ३, ३०, २)। —णरेसर पुं० (स० कच्छनरेश्वर) कच्छ देश का नृप; (व० ३, ३०, २)।

कच्छ²—पुं० (सं० कच्छप>प्रा० कच्छभ) कच्छुआ; तुल० पं० कच्छू; (रि० २, २)।

कच्छप—पुं० (सं० कच्छप>प्रा० कच्छभ) कूर्म, कछुवा; (व० १० ८, १२)। कच्छव-पुं० (सं० कच्छप); (जंबू० ४, ६, ५)।

कच्छर—पुं० (दे०) पङ्क, कीच, कर्दम; (दे० ना० मा० २, २)।

कच्छरिच्छ—पुं० (सं० कक्ष+ऋक्ष) नक्षत्रमाला; (ण० ३, ९, १५)।

कच्छा—पुं० (सं० प्रा० कच्छ) कच्छ देश; (व० ८, १, २)। स्त्री० (सं० कक्ष्या) विभाग, अंश; (प० च० १६, ९०)।

कच्छी—स्त्री० कटिवस्त्र, कच्छा; (जंबू० ५, १०, ८)।

कच्छुरिअ—वि० (दे०) ईर्षित, जिसके साथ ईर्ष्या की जाए वह; (दे० ना० मा० २, १६)।

कच्छुरी—स्त्री० (दे०) कपिकच्छु, केवाँच; (दे० ना० मा० २, ११)।

कच्छेल्ल—पुं० कच्छ देश; (जंबू० ९, १६, ४)।

कछु—सर्व० (सं० कश्चित्) कुछ; (की० २, ४१)।

कज्जंतर—पुं० (सं० कार्यान्तर) कार्य का अंतर; (जंबू० ८, ९, ११)।

कज्ज—पुं० (सं० कार्य>प्रा० कज्ज) १- काज, अदालती फर्याद या दरबारी अर्जी (पारिभाषिक शब्द), (की० २, ११५)। २- काम; (ण० १, ३, १०; प्रा० पैं० १, ३६)। —कज्जि; (व० १, ७, १२)। कज्जु (व० १, १६, १)। —उड पुं० (दे०) अनर्थ; (दे० ना० मा० २, १७)। —गइ (सं० कार्यगति) (जंबू० ९, १६, ५)। —त्थिअ वि० (सं० कार्यार्थी+क) किसी पदार्थ की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील; (जंबू० ६, १२, ३)। —बंध पुं० सं० (कार्य-बन्ध) कार्य का बंधन, (प्रा० पैं० १, ३७)। —लुद्ध वि० (सं० कार्यलुब्ध); (जंबू० ४, १७, ५)। —कज्ज-पुं० (सं० कार्य+अकार्य) (जंबू० ५, १३, १६)। —णुराअ-पुं० (सं० कार्यानुराग); (जस० १, ८, १)। कज्जु—पुं० (सं० कार्यम्) कार्य; (विला०; हे० ३४३,

२)। कज्जें—पुं० कारण, हेतु, के लिए, "सिरिकण्ठहकज्जे थिउ देवि सिरु" अर्थात् 'श्रीकण्ठ के लिए अपना सिर तक देने को तैयार था'; (प० च० १२, ५, ५)।

कज्जल—न० (सं० प्रा० कज्जल) काजल; (की० २, ८६)।

कज्जलध्वज—पुं० (सं० कज्जलध्वज) दीपक; (की० १, ८)।

कज्जव—पुं० (दे०) विष्टा; (प० च० २, ११)।

कज्जे(२)—प० (सं० कार्ये) के लिए।

कञोण—सर्व० (सं० कः+पुनः>प्रा० कवण) कौन; (की० ३, १६)।

कञ्चण—न० (सं० काञ्चन>प्रा० कंचण) सोना; (प० च० १, ५, ८)। २- पुं० कंचन नामक वृक्ष; (प० च० ३, १, १०)।

कञ्ची—स्त्री० (सं० काञ्चि, ञ्ची> प्रा० कंची) काञ्ची नगर; (प० च० ४६, ८, ६)।

कञ्चु—(सं० कञ्चुक>प्रा० कंचुअ, कंचु) चोली, स्त्री का स्तनाच्छादक वस्त्र; (प० च० २६, ११, ६)।

कञ्चुआ—स्त्री० (सं० कञ्चुकं>प्रा० कंचुअ, कंचु) कञ्चुक, चोली; (हे० ४३१, १)।

कञ्चुय—पुं० (सं० कञ्चुक>प्रा० कंचुअ, कंचु) कवच, वक्षस्त्राण, जिरह-बख्तर; (प० च० ४, ७, १०)।

कञ्ज—पुं० (सं० कञ्जः) कमल; (प० च० १८, ६, १)।

कटक—पुं० (सं० कटक) सेना, राजशिविर; (की० ३, ६२)। —वाल पुं० (सं० कटकपाल) सेनापति; (उ० व्य० प्र० ५१-११)।

कटकाई—स्त्री० सेना की यात्रा, फौज की कूच; (की० ३, १५६)।

कटकाञी—स्त्री० कटकाई, कटक या सेना का प्रयाण; (की० ४, १०६)।

कटरि—अव्य० आश्चर्य, आश्चर्योद्गार; (सवि० १, ८, ५)।

कटाक्ष—पुं० (सं० कटाक्ष) १- तिरछी चितवन, २- किसी पर आक्षेप करने के लिए कही जाने वाली कोई व्यंग्यपूर्ण बात; (की० २, १५१)।

कटारिय—न० (दे०) कटारी, क्षुरिका; (भि० २, २४)।

कट्टारी—स्त्री० (दे०) कटारी, छुरी; (दे० ना० मा० २, ४)।

√कट्ट—(सं० कृत्>प्रा० कट्ट) काटना, छेदना। —इ, क्रि० (सं० कर्तयति) तुल० म० काटणें, गु० काटवुं (म०)। कट्टि-पू० का० क्रि० कट कर; (की० ३, ७)। कट्टिअ, (प्रा० पैं० १, १३४)। —ट्टिवि पू० का० क्रि० (क० ८, १२, ६)। कट्टु-वि० (सं० कर्तृ) कर्त्ता; (पड्)।

कट्टण—न० (सं० कर्तन>प्रा० कत्तण) काटना; (रि० ६, १५)।

√कट्ठ—(सं०√कर्ष्) काढना, निकालना कट्ठिएउ; (प्रा० पैं० २, ७१)।

कट्ठ—न० (सं० काष्ठ) काठ लकड़ी; तुल० म० काठी; (ण० ५, १२, १०)।

कट्ठाइ (काष्ठ+आदि); (जंबू० ११, १५, ६)। – कम पुं न० (सं० काष्ठ +कर्म) काष्ठकर्मन्, काठ का काम, व्यापार; (जस० १, २४, ४)। -मअ-वि० (सं० काष्ठमय) लकड़ी-युक्त; (ण० ६, ७, १०)। कट्ठिय-धर—वि० (सं० काष्ठिका-धर) लकड़ो को रखने वाले; (प० च० ३, ५, १०)। कट्ठियवाले—पुं० (सं० काष्ठिका+पाल) दण्डधारी; (प० च० ३, ६, ६)। कट्ठीहर—वि० (सं० काष्ठ+घर>कट्ठ+घर) काष्ठ-घर, पहरेदार "कट्ठीहरम्मि आउच्छि-यए," यष्टिधारी पहरेदार ने पूछा; (सुद० ८, १२, ५)।

कट्ठ[2]—पुं० (सं० कष्ट>प्रा० कट्ठ) दुःख, पीड़ा, व्यथा; (की० ४, १२३)। —डा पुं० कष्ट (दे० सा० दो०)। —भार पुं० कष्टभार; (जंबू० १०, १३, १)।—मय वि० कष्टमय; (जंबू० ६, १, ६)। —वुत्त पुं० (सं० कष्ट+उक्त) (ण० ६, १७, २७)। कट्ठे-पुं० कष्ट; (की० ३, १०५)।

कट्ठिअ—पुं० (दे०) चपरासी, द्वारपाल, प्रतिहार; (दे० ना० मा० २, १५)।

कट्ठियधर—वि० (सं० काष्ठधर) काष्ठ को धारण करने वाला, दण्डधर; (जंबू० ७, ७, ११)।

कठिण—वि० (सं० कठिन>प्रा० कट्ठिण, कढिण) १- कठिन; (सं० रा०; भ०)। २- कठोर; (प्रा० पैं० १, ७६)।

कठिणि—स्त्री० (सं० कटिनी) मेखला, करधनी; (रि० ६, १)।

कट्ठु—न० (सं० कष्टम्>प्रा० कट्ठ) दुःख, पीड़ा, व्यथा; (उ० व्य० प्र० ४६-११)।

कडंतर—न० (दे०) पुराना सूर्प (छाज) आदि सामग्री; (दे० ना० मा० २, १६)।

कडंतरिअ—वि० (दे०) विदारित, विनाशित; (दे० ना० मा० २, २०)।

कडंभुअ—न० (दे०) १- कुम्भग्रीव-नामक पात्र-विशेष, २- घड़े का कण्ठ-भाग; (दे० ना० मा० २, २०)।

कडअ—पुं० (सं० कटक) छावनी; (जंबू० ६, १, १८)।

कडअल्ल—पुं० (दे०) द्वारपाल, प्रतिहार; (दे० ना० मा० २, १५)।

कडअल्लो—स्त्री० (दे०) कण्ठ, गला; (दे० ना० मा० २, १५)।

कडइअ—पुं० (दे०) वढई, स्थपति; (दे० ना० मा० २, २२)।

कडइल्ल—पुं० (दे०) प्रतिहार, दरवान; (दे० ना० मा० २, १५)।

कडउ—पुं० (सं० कटक) कड़ा, कंकण, चूड़ा; (जंबू० ३, १४, १३)।

कडउल्ल—पुं० न० (सं० कटक+उल्ल (स्वार्थे)] सेना के रहने का स्थान; "को रक्खइ एवहिँ कडउल्लउ" –ऐसी अवस्था में कौन कटक की रक्षा करे; (ण० ३, १३, १०)।

कडउल्ला—पुं० (दे०) आभूषण-विशेष, कटिसूत्र; तुल० गु० कडलुं; (प० च० १४, ५, ७)।

कडक्किय—वि० (सं० कडकडकृत) कडकडायित (ध्वन्य०); (जंबू० ७, ८, १२)।

√कडक्ख—सक० (सं० कटाक्षय्) कटाक्ष करना। —इ, क्रि० (सं० कटाक्षयति) (भ०; जंबू० ११, १४, ११)।

कडक्ख—पुं० (सं० कटाक्ष>प्रा० कडक्ख) कटाक्ष, तिरछी चितवन, आँख का संकेत, भावयुक्त दृष्टि; तुल० म० कडाखा; (सं० रा०; प्रा० पैं० १, ४; ण० ६, १४, २; म० २, ७८, ३)।

कडक्खण—न० (सं० कटाक्षण) कटाक्ष करना; (भ०)।

कडक्खिय—वि० (सं० कटाक्षित) जिस पर कटाक्ष किया गया हो वह; (जंबू० २, २०, ११)।

कडच्छ—पुं० (सं० कटाक्ष>प्रा० कडक्ख) कटाक्ष, तिरछी चितवन; (जंबू० ६, १३, ५)।

कडच्छू—स्त्री० (दे०) चमची, करछुल, कर्छी; तुल० पं० कड़छी; (दे० ना० मा० २, ७)।

कडतल—न० (सं० कटितल>प्रा० कडियल) कटितल, कटि-प्रदेश; (सि० २, २४)।

कडतला—स्त्री० (दे०) लोहे का एक प्रकार का हथियार, जो एक धार वाला तथा वक्र होता है; (दे० ना० मा० २, १९)।

कडत्तरिअ—वि० (दे०) विदारित, विनाशित; (भ०)।

कडत्ति—पू० का० क्रि० कड़-कड़ करके; (रि० ५, ८)।

कडद्दरिअ—वि० (दे०) १- छिन्न, काटा हुआ; २- न० छिद्रता; (पइ)।

कडन्तरिय—वि० (दे०) दारित, चीरा हुआ; (भ०)।

कडप्प—पुं० (दे०) कलाप, समूह, निकर; तुल० गु० कडपलो, म० कडप्पा; (प० च० १३, ६, १; भ०)। कडप्पु (प० च० १३, ८, ४)।

कडमद्दण—पुं० विनाश, विध्वंस; (प० च० ३६, ५, ३)। विनाशक; (प० च० ३७, १३, १)।

कडय—पुं० न० (सं० कटक>प्रा० कडग, कडय) १- शिविर, सेना का रहने का स्थान; (ण० ७, १०, ३)। १- सेना; (सि० २, १८)। ३- आभूषण; (च० १०, ३१, १६)। ४- कड़ा; (जंबू० २, २०, २१)।

कडयडंत—व० कृ० (सं० कडकडाय्+शतृ) (ध्वन्या०) कड़-कड़ की आवाज करते हुए; तुल० गु० कडकडतुं; (जंबू० ११, १५, ६)।

कडयड—पुं० (सं० कडकड>प्रा० कडयड) कटकट या कड़-कड़ की आवाज; (म० २, ८१, ७; ण० ४, १५, ६)।

कडयडिय—वि० (सं० कडकडायति, ध्वन्या०) कड़-कड़ की आवाज करने वाला; (जंबू० ७, ५, ६)।

कडविमद्दण—पुं० (सं० कृत+विमर्दन) १- रौंदना, कुचलना, २- नाश, ध्वंस, "पत्तमोह-पडिय-जोह-कडविमद्दणे", मूर्च्छित होकर पड़े हुए योद्धाओं का मर्दन हो रहा था; (जंबू० ६, १०, ४)।

कडसी—स्त्री० (दे०) श्मशान; (दे० ना० मा० २, ६)।

कडह—पुं० (सं० कटभू>प्रा० कडहू)

वृक्ष-विशेष, कटहल; (जंबू० ५, ८, १०)।

कडाय—पुं० (सं० कटाह>प्रा० कडाह) कढ़ाही; (व० ४, २१, १३)।

कडार—न० (दे०) नारियल; (दे० ना० मा० २, १०)।

कडाह—पुं० (सं० कटाह>प्रा०कडाह) कडाह, लोहे का पात्र, लोहे की बड़ी कड़ाही; तुल० म० कढई, वडें; (जस० २, २८, ३; भ०)। २- वृक्ष-विशेष; (प० च० ५३, ७९)।

कडाहपल्हत्थियं—न० (दे०) दोनों पार्श्वों का पलटाव या उलट-फेर, पार्श्वों का घुमाना-फिराना; (दे० ना० मा० २, २५)।

कडि—१- स्त्री० (सं० कटि>प्रा० कडि) कमर, कटि; (जस० १, १६, ३)। —हत्थ पुं० (सं० कटि+हस्त) कमर पर रखा हुआ हाथ; (दे० ना० मा० २, १७)। २- स्त्री० तलहटी, "उवयायल-कडिणि परिट्ठिओवि"—उदयाचल की कटमी— तलहटी में स्थित होने पर भी; (व० ६, ८, ८)।

कडिअ—वि० (दे०) प्रीणित, प्रसन्न किया हुआ; (षड्)।

कलिखंभ—पुं० (दे०) कमर पर रखा हुआ हाथ; (दे० ना० मा० २, १७)। २- कमर पर किया हुआ आघात; (दे० ना० मा० २, १७)।

कडित्त—पुं० (सं० कटित्र १- करधनी, मेखला, २- धोती, कमरबंद; (म० २, १५, २)।

कडित्तु—न० (दे०) जुआ खेलने का तख्ता या फलक, द्यूतफलक; "किं कडित्तु णं णं गयणंगणु" अर्थात् द्यूतफलक क्या है मानो गगनरूपी आंगन है; (ण० ३, १२, ५)।

कडिदोरय—पुं० (सं० कटिदोरक) कटि-सूत्र; (सुदं० ३, ७, ८)।

कडिपरिहाण—पुं० (सं० कटि+परिधान) कमर पर पहने जाने वाला वस्त्र; (जंबू० ६, १२, १३)।

कडिबिंब—पुं० (सं० कटि+बिम्ब)कटि-तल, "वियडकडिबिंबखिन्नाएँ थक्किज्जए" – 'जहां अपने कटितल की विशालता से क्लान्त हुई'; (जंबू० ५, ६, ११)।

कडियल—न० (सं० कटितल>प्रा० कडियल) कटी-प्रदेश; (भ०)।

कडिल्ल—(दे०) १- वन (प० च० २, ५२)। २- वि० छिद्र-रहित; (दे० ना० मा० २, ५२)। ३- न० (दे०) कटि-वस्त्र, कमर में पहनने का वस्त्र; (भ०)। ४- विपक्ष, शत्रु; (दे० ना० मा० २, ५२)। कडिल्लइं–न० कटिवस्त्र (रि० ६, ७)। —य (प० च० ४६, ५, ६; दे० ना० मा० २, ५२)।

कडिसरउ—न० (सं० कटिसूत्र>प्रा० कडिसुत्त) करधनी, मेखला, कमर में पहनने का एक गहना; (प० च० १३, ६, ३)।

कडिसुत्त—न० (सं० कटि+सूत्र>प्रा० कडिसुत्त) कमर का आभूषण, मेखला, (ण० ३, १०, ५; भ०) —य (सं० कटिसूत्र+क) मेखला; (जस० १, ६, ६)।

कडिहार—न० (सं० कटिहार) कमर पर पहने जाने वाला आभूषण; "कडिहा-रदोरकुंडलधरहो," अर्थात् कटिहार, कटिसूत्र और कुण्डलों को धारण करने वाली; (जंबू० ३, ३, १४)।

कडु—वि० (सं० कटुक>प्रा० कडुअ) तिक्त रस वाला, कडुआ; (ण० ३, १४, २; हे० ३३६, १)। —यड वि० कटु; (जस० ३, १२, १५)। —वसर पुं० (सं० कटुक+स्वर) कटु स्वर; (जस० १, १४, ७)।

कडुआल—पुं० (दे०) घण्टा; (दे० ना० सा० २, ५७)।

कडुआविय—वि० (सं० कटु+वृत> प्रा० कडुइय) १- कड़आहट से पूर्ण, (प० च० ११, १२, ५)। २- चिन्तित, भारी विपद् में फंसा हुआ, खराव; (भ०)। ३- पीडित, पराभूत; (प० च० २५, १५, ७)।

कडुक्क—वि० (सं० कटुक>प्रा० कडुअ) कडुआ, तिक्त; (जंबू० ७, ६, १०)।

कडुय—वि० (सं० कटुक>प्रा० कडुअ) कडुवा; तुल० गु० कडवुं, म० कडूं; (प० च० १२, ७, १)।

कडुरडिय—पुं० (सं० कटु+ रटित) कटु रुदन; (जंबू० ४, २२, १८)।

कडुवयण—पुं० (सं० कटु+वचन) कड़ुवे वचन; (जंबू० ६, १२, ६)।

कडेवर—न० (सं० कलेवर>प्रा० कडेवर) कलेवर, शरीर, देह; (प्रा० गु० ३६, २८)।

√कड्ढ—(सं० कृष्>प्रा० कड्ढ) खींचना। —इ सक० (सं० कर्षति); भ०। —मि क्रि०, व० निकालना, खींचना; (प० च० १५, २, ७)। कड-ढंत—व० कृ० (कृष्+शतृ) (जंबू० ४, १५, १६)। कडढंतउ-कृ० खींचते हुए; (विला०)। कड्ढि—भू० का० निकाल ली; (की० ३, ७२)। कड्ढिज्जइ—क्रि०, व० खींच लिया जाना, काढ़ लिया जाना "वच्छु पियंतु खीरु कड्ढिज्जइ" बछड़े के पीते-पीते ही गाय का दूध काढ लिया जाता है, (ण० ६, ६, २)। कड्ढिवि—पू० का० क्रि० निकाल कर (ण० ४, ११, ३)। कड्ढेवि पू० का० क्रि० खींच कर; (सुदं० ८, १८, ४)। तुल० म० काढणें।

कड्ढण—न० (सं० कर्षण>प्रा० कड्ढण) आकर्षण; (जंबू० ७, ६, २६)।

कड्ढणिय—वि० (सं० कर्षणीय) निकसनशील; (जंबू० ५, ७, २४)।

कड्ढय—वि० (सं० कर्षक) खींचने वाला; (जस० ३, २२, १)।

कड्ढाकड्ढि—स्त्री० (सं० कर्षापकर्षि) खींचतान करते हुए लड़ना; (fight involving mutual tugging and pulling) (प० च० ५२, ६, ५)।

कड्ढिणु—वि० कठिन; (व० ५, १, ६)।

कड्ढिये—वि० (सं० कृष्ट>प्रा० कड्ढिय) निकाला हुआ, खींचा हुआ; (ण० ५, १, ६; प० च० १४, १३, ६)।

कड्ढिय—क्रि० भू० का० (सं० कृष्ट> प्रा० कड्ढिय) आकर्षित किया; (रि० ३, १)।

कढ—सक० (सं० क्वथ्) १- क्वाथ

करना २- उबालना, ३- तपाना, गरम करना। कढंत–व० कृ० (स० क्वथ्+शतृ); (जंवू० २, २, २)।

कढए ँ—पुं० न० (सं० कटक>प्रा० कडग) पर्वत का मूल भाग; (प० च० ७, १, २)।

कढन्ता—कृ० का० वर्तमान में प्रयोग क्रिया की तरह हुआ है सं० कृष् का धात्वादेश प्रा० कड्ढ=पढ़ना, उच्चारण, करना, (हे० प्रा० व्या० ४, १८७) + 'अन्त' (शतृप्रत्यान्त);(कीं० २, १७२)।

√कढकढकढ—कड़–कड़ की आवाज के साथ उबलना (boil intensely)। —न्ति–क्रि० व०, व० (प० च० २७, ५, ६)।

कढकढकढंत — वि० (सं० कडकडायमान) कड़–कड़ आवाज करता; (प० च० २१, ५०)।

कढकढन्त—व० कृ० (सं० क्वयन्) क्रोध से जलते हुए; (भ०)।

कढिआ—स्त्री० (दे०) कढ़ी, भोजन-विशेष; (दे० ना० मा० २, ६७)।

कढिण—वि० (सं० कठिन>प्रा० कढिण) कठिन, कर्कश, कठोर; (ण० ७, ७, ६)। —त्त पुं० काठिन्य; (व० ३, २३, ११)।

कढियल—न० (सं० कटि+तल>प्रा० कडियल) कटी-प्रदेश; (ण० ३, १०, ५)।

कढियाइ—स्त्री० कढ़ी, एक प्रकार का खाद्य पदार्थ; (दे० ना० मा० २, ६७)।

कढोर—वि० (सं० कठोर) कठोर, निष्ठुर; (प० च० २३, १५, ६)। पुं० इस नाम का एक राजा; (प० च० ३२, २३)।

√कण—क्रि० (सं० क्वण्>प्रा० कण) शब्द करना, आवाज करना। —इ सक० (ण० १, ७, ३)। व० कृ०—कणंत (ण० ८, १, ४)। कणेइ– व० ध्वनि करना; "सरिकमलु घुणइ दीहरु कणेइ; (क० ४, १५, ६)।

कण—पुं० (सं० प्रा० कण) १- धान्य; (व० २, ११, १०)। २- कन, कण, लेश, अंश; तुल० पुं० कणी (a small particle) (व० २, १७, १२; सं० रा०, जस० १, ३, ११)। —भर वि० कण-भर (धान्यभार); (जस० ४, २३, ८)।

कणअ—पुं० (सं० कनक>प्रा० कणग) सोना; (प्रा० पैं० १, १०)। २- प्रथम द्विकल गण (S) का नाम; (प्रा० पैं० १, १३३)। ३- राजा जनक के भाई; (प० च० २७, २५)। ४- राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३२)।

कणइर–कंब—न० सं० कर्णिकार+कम्ब) कर्णिकार-यष्टिका, कनेर के वृक्ष की लकड़ी; तुल० गु० कणेरनी कांब; (प्रा० गु० २, ३, २५)।

कणइलु—पुं० (सं० कर्णफूल) करनफूल, कान का एक आभूषण; (पुष्पदंत, आदि–पुराण)।

कणइल्ल—पुं० (दे०) शुक, तोता; (दे० ना० मा० २, २१)।

कणई—स्त्री० (दे०) लता, वल्ली; (दे० ना० मा० २, २५)।

कणउज्ज—पुं० (सं० कान्यकुब्ज) नगर-विशेष; (क० २, १०, ४)।
कणएँ—पुं० (दे०) वाण; (प० च० ११, ८, ४)।
कणओयरी—स्त्री० रानी-विशेष का नाम; (प० च० १७, ५५)।
कणकाणिय—वि० (सं० कणक्वणित) कण-कण आवाज वाला; (सुदं० ७, ६, ३)।
कणग—पुं० मत्तियावई का एक वणिक्; (प० च० ४८, १६)। —प्पह पुं० विद्याधर राजा; (प० च० १०३, १०८)।
कणयंदी—स्त्री० (दे०) वृक्ष-विशेष, पाढल; (दे० ना० मा० २, ५८)।
कणय—न० (सं० कनक>प्रा० कणग, (कणय) सुवर्ण, सोना; (ण० १, ६, १३; सं० रा०; सा० २११)। पुं० (दे०) शर, वाण, तीर, इषु, (प० च० २, ५, ६)। पुं० राजा जनक के एक भाई का नाम, (प० च० २८, १३२)। रावण का इस नाम का एक सुभट; (प० च० ५६, ३२) —ावली स्त्री० कणया-वली; एक राज-पत्नी; (प० च० ७, ४५)। —उरु पुं० (सं० कनकपुर) नगर-विशेष; (व० ७, १ १२)। —कूट कनककूट (व० १, १२, ७)। —कूला स्त्री० (सं० कनककूला) नदी-विशेष; (व० १०, १६, ३)। —देवि स्त्री० (सं० कनकदेवी) दिक् कुमारी। (व० ६, ५, १०)। —द्धउ पुं० (सं० कनक-ध्वज) राजकुमार; (व० ७, १२, १०)। —प्पभा स्त्री० रावण-स्त्री; राजा मरुअ की पुत्री; (प० च० ११, १००)। —प्पह स्त्री० (सं० कनकप्रभा) कन्या; (व० ७, ३, १०)। —प्पहु पुं० (सं० कनकप्रभ) राजा-विशेष, (व० ७, २, १)। —मइ स्त्री० (सं० कनकवती) स्त्री-विशेष का नाम; (क० ६, १४, ६)। —मय वि० (सं० कनकमय) सोने से युक्त; (जस० २, १३, १)। —माल स्त्री० (सं० कनकमाला) स्त्री-नाम-विशेष; (व० ३, १६, २)। —माला स्त्री० (सं० कनकमाला) कुस की स्त्री; (प० च० ६८, ४)। —रह पुं० कंचण नगर का विद्याधर राजा; (प० च० १०६–१, २)।

कणय-डोर—स्त्री० (सं० कनक+दोर >प्रा० कणग, कणय+दोर) सोने की करधनी; तुल० गु० कन्दोरो; (प० च० ७, २, ७)।

कणयदीव—पुं० (सं० कनकद्वीप) एक द्वीप या देश का नाम; (भ०)।

कणयसिरी—स्त्री० विद्याधररानी; (प० च० ६, २४१)।

कणया—स्त्री० (सं० कनक>प्रा० कणग) सोना; (सि० २, १८)। —भा स्त्री० १- सोदास की रानी; (प० च० २२, ७६); २- सत्तुदमण की रानी; (प० च० ३८, २७); ३- पियवय की पत्नी; (प० च० ३६, ७६); ४- अयल की माता; (प० च० ८८–१७); ५- विद्याधर रानी; (प० च० १०३, ५८)।

कणयावली—स्त्री० १- विद्याधर राज-पुत्री; मालवंत की स्त्री; (प० च० ६,

२४१)। २- लोकपाल कुबेर की माता; (प० च० ७, ४५)।

कणरणंति—क्रि० कन-कन का शब्द होना, कनकना उठना, "कणरणंति कडियलकिंकिणियउ," (ण० ७, १४, ११)।

कणा—स्त्री० कन्या (प० च० १२, ४, १)। कणालग्गउ कृ० (सं० कर्ण+आलग्न) कान से लग कर; (ण० ८, १७, १२)।

कणिग्रारिअ—वि० (दे०) १- कानी आंख से जो देखा गया हो वह, २- न० कानी नजर से देखना; (दे० ना० मा०- २, २४)।

कणिउ—न० (सं० क्वणित) ध्वनि "किंकिणकणिउ सुणेंवि विहसंतउ," घंटियों की ध्वनि सुनकर हँसने लगा; (सुदं० ३, ७, ८)।

कणिका—स्त्री० (सं० कणिक) रोटी के लिए पानी से भिगोया हुआ आटा; (दे०- ना० मा० १, ३७)।

कणिक्क—स्त्री० (सं० प्रा० कणिका) गुंथा हुआ आटा लोई; (dough); तुल० गु० कणक, कणेक। कणिका, कणिक्का दे० ना० मा० १, ३७)। (प० च० ४५, १२, ४)।

कणिट्ठ—वि० (सं० कनिष्ठ>प्रा० कणिट्ठ) लघु, छोटा; (ण० ४, ७, ६)। —अ वि० (सं० कनिष्ठ+क) लघु; (जस० ४, २४, ४)।

कणिय—स्त्री० (सं० कणी) कणी, कनी, कणिका; "हीरयकणिय कवणु फिर पावइ," (जंबू० ११, १३, २)।

कणियार—पुं० (सं० कर्णिकार) कनेर का वृक्ष; (जंबू० ५, ८, ११)।

कणिर—वि० (सं० क्वणितृ) आवाज करने वाला; (भ०)। क्वाणित; (जंबू० ३, ८, ३)।

कणिस—न० (सं० कणिश) धान की बाल, धान्य का अग्रभाग; तुल० म० कणिस cornear; (दे० ना० मा० २, ६; ण० १, १३, ५)। न० (दे०) सस्य (अन्न, किसी वृक्ष के केल का अग्रभाग) "धान्यशीर्षवाची तु कणिस शब्दः संस्कृतभवः"; (दे० ना० मा० २, ६)।

कणेड्डिग्रा—स्त्री० (दे०) गुञ्जा, घुंघची; (दे० ना० मा० २, २१)।

कणोवग्र—न० (दे०) गरम किया हुआ जल, तेल आदि; (दे०ना० मा०२, १६)।

कण्ठाइं—न० (सं० कण्ठिका>प्रा० कंठिआ) गले का आभूषण, तुल० गु० कंठी; (प० च० ७, २, ६)।

कण्ठि—स्त्री० (सं० कण्ठ>प्रा० कंठ) कण्ठ, घांटि; (हे० ४४४, १)।

कण्ठिय—स्त्री० (सं० कण्ठिका >प्रा० कंठिआ) कंठा, गले का एक आभूषण; (प० च० १, ४, ३)।

कण्ड—पुं० न० (सं० काण्ड>प्रा० कंड) बाण, शर; (की० ४, १७२)।

कण्डाकण्डि—स्त्री० काण्डाकाण्डि (a fight employing arrows); (प०- च० ५२, ६, ३)।

कण्डुइय—क्रि० (सं० कण्डूय्>प्रा० कंडुअ, कंडुअइ) खुजवाना, "लङ्गूलदण्ड कण्डुइय- सिरु" अर्थात् जो पूंछ के दण्ड से अपने सिर को खुजला रहा है,

(प० च० १६, ७, १०)।

कण्डुरु—पुं० काण्डोर, दाशरथी भरत के साथ दीक्षित राजा; (प० च० ८५, ५)।

कण्णंजलि—स्त्री० (सं० कर्णाञ्जलि) कर्ण रूपी अंजलि, "जिण वयणु-रसायणु पविरलुवि, कण्णंजलि-पुडहि पियहि खलु वि," अर्थात् दुष्ट स्वभाव होते हुए भी उस सिंह ने जिनवाणी रूपी रसायन का अपने कर्ण रूपी अंजलि-पुटों से पान किया; (व० ६, १६, २)।

कण्णंत—पुं० (सं० कर्ण+अन्त>प्रा० कण्णंत) कानों का सिरा; "कण्णंतपत्तन-यण जि धवला सिरभारु पुप्फमाला विमला," – उसके नेत्र कानों के सिरे तक पहुँचे हुए हैं, तथा धवल पुष्पमाला उसके सिर पर भारमात्र है'; (जंबू० ५, २, १६)।

कण्णंबाल—न० (दे०) कान का आभूषण-कुण्डल आदि, (दे० ना० मा० २, २३)।

कण्ण—पुं० (सं० कर्ण) राजा का नाम, कुन्तीसुत (प्रा० पैं० १, ६६, जस० १, ५, १)। स्त्री० (सं० कन्या>प्रा० कण्णा) कन्या, जस० १, १५, १)। पुं० द्विगुरु चतुष्कल गण का नाम (ऽऽ), (प्रा० पैं० २, ८८)। १- पुं० (सं० कृष्ण>प्रा० अप० कन्ह) कृष्ण; (की० २, ५१)। २- (सं० प्रा० कण) कण, (सुदं० ३, ८, ४)। पुं० कर्णराज, (जंबू० १०, १, ६)। पुं० किनारा, (जंबू० ५, १०, २४)। पुं० न० (सं० कर्ण>प्रा० कण्ण) कान; (ण० १, १५, ४; की० ३, १)। —पवित्त (सं० कर्णप+मात्रम्) कान का आभूषण (ण० ३, १३, ५)। —पुड पुं० (सं० कर्ण-पुट; (जंबू० ३, १, २)। —माणु त्रि० (१) विनयशील, लज्जायुक्त, (२) कर्ण+मरज (सम्मान); (सुदं० २, ३, ३)। —रअ पुं० (सं० कर्ण+रव) कानों में होने वाली आवाज; (क० ४, ६, ५)। —रवा स्त्री० सं० कर्णरवा, नदी-विशेष; (प० च० ४०, १३)। —वडिअ वि० (सं० कर्ण+पतित) शोर के कारण कान में पड़ी हुई या आयी हुई आवाज सुनाई न पड़ना; (जंबू ४, ७, १३)। —सूल पुं० (कर्णशूल) कान की पीड़ा; (जस० ४, ६, ३)। —हीण वि० (सं० कर्ण+हीन) बहरा; (जंबू० ६, २, ६)।

कण्णउ—स्त्री० (सं० कन्या>प्रा० कण्णा) कन्या, लड़की; (सि० २, ११, रि० १, १३)।

कण्णउज्ज—पुं० (सं० कान्यकुब्ज>प्रा० कण्णउज्ज) कन्नौज नगर; (जंबू० ६, १६, १३)।

कण्णजाउ—पुं० (सं० कर्ण+जाप> प्रा० कण्ण+जाव) मन में देवता का स्मरण; कान में मन्त्र का जाप या जप, "मुणि कण्णजाउ दिण्णउ वरेण," मुनि ने कान में णमोकार मंत्र का जाप दिया; (क० ८, २०, ८)।

कण्णड—पुं० (सं० कर्णाट>प्रा० कण्णाड) कर्नाटक प्रदेश, कन्नड़वासी व्यक्ति; (सि० २, ६)।

कण्णडय—पुं० (सं० कर्ण>प्रा० कण्ण) १. कर्ण, कान, २. कोना, वस्तु के छोर

का एक अंश (हे०प्रा० व्या० ४, ४३२)।

कण्णदान—पुं० (सं० कन्यादान) विवाह वर को कन्या देने की रीति; (व० ४, ४, ९)।

कण्णला—पुं० (सं० कर्णाट>प्रा० कण्णाड) कर्णाट देश के लोग; (प्रा० पैं० २, १२८)।

कण्णस्सरिय—वि० (दे०) १. कानी दृष्टि से देखा हुआ २. न० कानी दृष्टि से देखना; (दे० ना० मा० २, २४)।

कण्णा—स्त्री० (सं० कन्या>प्रा० कण्णा) कन्यारत्न; (व० ८, ४, ४)।

कण्णाउज—पुं० (सं० कान्यकुब्ज नगर-विशेष; (ण० ५, २, ११)।

कण्णाड—पुं० (सं० कर्नाट>प्रा० कण्णाड) प्रदेश-विशेष, जो आजकल कर्नाटक नाम से प्रसिद्ध है; (जंबू० ६, ६, ११)।

कण्णाडि—स्त्री० (सं० कर्णाट>प्रा० कण्णाड, पुं०) कर्णाटि स्त्री, कर्णाट (आजकल कर्नाकट) देश की स्त्री, कर्नाटक वासिनी, कर्नाटी; (जंबू० ४, १५, ९)। कण्णाडी; (सुदं० ४, ६, ९)।

√कण्णारय—(सं० कर्ण+आर) आँकुस या पैना चुभोना (to goad); (प० च० ४३, ६, ११) कण्णारिउ–भू० का०; कानों के पास अंकुश लगाया, (प० च० १९, १४, २) कण्णारियय–भू० का० पैना चुभोया (goaded); (प० च० २७, १०, १)।

कण्णारयण—पुं० (सं० कन्या+रत्न) कन्यारत्न, कन्या रूपी रत्न; (जंबू० ७, १३, ९)।

कण्णावतंस—पुं० (सं० कर्ण+अवतंस) करनफूल, कान की बाली, बालीनुमा एक आभूषण; (जंबू० ४, १५, ९)।

कण्णास—पुं० (दे०) पर्यन्त, अन्त-भाग; (दे० ना० मा० २, १४)।

कण्णिआ—स्त्री० (सं० कर्णिका) कमल का बीज-कोष; (दे० ना० मा० ६, १४०)।

कण्णिय—स्त्री० (सं० कर्णिका>प्रा० कण्णिआ) बाण-विशेष; (जंबू० ७, १०, ५)।

कण्णुप्पल—न० (सं० कर्णोत्पल) कान का आभूषण-विशेष; (व० ४, ६, ३)।

√कण्णे—कान देना; (प० च० १२।६ २)।

कण्णोच्छडिआ—स्त्री० (दे०) दूसरे की बात छिपकर सुनने वाली स्त्री; (दे० ना० मा० २, २२)।

कण्णोड्डिआ—स्त्री० (दे०) स्त्रियों का पहनने का वस्त्र-विशेष; (दे० ना० मा० २, २०)।

कण्णोल्ली—स्त्री० (दे०) १. चञ्चु, २. चोंच; भूषण-विशेष, शेखर; (दे० ना० मा० २, ५७)।

कण्णोवगण्णिआ—स्त्री० (सं० कर्णाक-र्णिक) कानाफूसी, चर्चा, कानाकानी; (दे० ना० मा० २, ६१)।

कण्णोस्सरिअ—(दे०) देखो कण्णास्स-रिअ; (दे० ना० मा० २, २४)।

कण्ह—पुं० (सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह) श्रीकृष्ण, माता देवकी और पिता वासुदेव से उत्पन्न नववाँ वासुदेव; (ण० ७, १५,

३)। —डणंदण पुं० (सं० कृष्ण+नन्दन) कृष्ण के पुत्र गन्धर्व, "गंधव्वें कण्हडगंदणेण"; (जस० ४, ३०, १४)। —पुत्त पुं० (सं० कृष्ण+पुत्र) कृष्ण का पुत्र पण्डित ठाकुर; "हो पंडियठक्कुर कण्हपुत्त; (जस० ४, ३०, ४)। —राय पुं० (सं० कृष्णराज) पुरुष-विशेष; (ण० १, १, ११)।

कण्हवण्ण—स्त्री० (सं० कृष्णववर्णा) नदी-विशेष; (प० च० ३६, १, ३)।

कण्हायणु—न० (सं० कृष्ण+अजिन) कृष्ण-मृगचर्म, काले हिरन का रोंएदार चमड़ा; (ण० ६, ६, ५)।

कण्हु—पुं० (सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह) श्रीकृष्ण, माता देवकी और पिता वासुदेव से उत्पन्न नववां वासुदेव; (महा०)।

कत—वि० (सं० कति) कितने अनेक; (की० ३, ६६)। अव्य० (सं० कुत्र) कहां; (रा० १६)। अव्य०-क्यों; (की० ३, १४८); कौन; (की० ४, ५८); कैसा; (की० ४, ८४)। —न्हिक वि० कितनों का; (की० ४, ८८)। —हुं अव्य० (सं० कुत्र) कहीं; (रा० १६)। —हुँ कहीं; (की० २, १६४)। कतेहु—वि० (सं० कति) कितने ही; (की० २, ७४)।

कतवार—पुं० (दे०) कूड़ा- करकट (दे० ना० मा० २, ११)।

कत्त—अव्य० (सं० कुतः>प्रा० कत्तो) कहाँ तक; (की० ३, १३६)। वि० (सं० कियत्>प्रा० कित्त) कितनी; (की० ३, १३८)।

कत्तउ—वि० (सं० कर्तृ>प्रा० कत्तु) कर्त्ता, करने वाला; (व० २, ६, ८)।

कत्तरि—स्त्री० सामरिक या युद्ध संबंधी साहसिक कार्य; "ढोक्करकत्तरिकरणपवंचइं," (भ० २, २, ७)।

कत्तरी—स्त्री० (सं० कर्तृ>प्रा० कत्तरी) कतरनी, कैंची; (ण० ६, १८, १२)।

कत्तविरिय—पुं० सावत्थी नरेश; चक्रवर्ती सुभूम के पिता; (प० च० २०, १३६)।

कत्तार—वि० (सं० (कर्तृ) कर्त्ता, करने वाला; (जस० २, १६, १३)।

कत्ति—स्त्री० (सं० कृत्ति>प्रा० कत्ति) चर्म, चमड़ा (व्याघ्र आदि का चर्म); (जस० १, १६, १४)।

कत्तिकेअ—पुं० (सं० कार्त्तिकेय) महादेव का चक पुत्र, षडानन; (दे० ना० मा० ३, ५)।

कत्तिग—पुं० (सं० कार्त्तिक>का० कत्तिय) कातिक मास; (प्रा० गु० २३, ११)।

कत्तिय—स्त्री० (सं० कर्तृ>प्रा० कत्तरी) कटार; (ण० ६, ६, ७)। पुं० (सं० कार्तिक) कार्तिक मास; (भ०)। —मासि कातिकमास; (व० १०, ४०, १२)।

कत्तियसाढ—पुं० (सं० कार्त्तिक+अषाढ>प्रा० कत्तिय+आसाढ) कातिक एवं अषाढ़ मास; (ण० ६, २१, २०)।

कत्ती—स्त्री० (सं० कर्तिका >प्रा० कत्तिया) कतरनी, कैंची; (क० १०, १६, ८)।

कत्तीअ—पुं० (सं० कार्त्तिक>प्रा०

कत्तिय) कार्तिक मास; (ण० ९, २०, ४)।

कत्थ—अ य० (सं० कुत्र>प्रा० कत्थ) कहाँ; (म० १, २१, २)। कहीं-कहीं, (प्रा० पैं० १, ४) —ई, अव्य० (सं० कुत्रचित्>प्रा० कत्थइ) कहीं, किसी जगह; (सुदं० ७, ५, १०)। —ए, अव्य० कहीं (सुदं० १०, ६, ६)।

कत्थइ—अव्य० (सं० क्वचित् अथवा सं० कुत्रचित्) कहीं, किसी जगह; (भ०; जंबू० ७, १, १९)।

कत्थवि—अव्य० (सं० कुत्रापि) कहीं भी; (प्रा० पैं० १, ७६)।

कत्थूरिय—स्त्री० (सं० कस्तूरिका> प्रा० कत्थूरिया) कस्तूरी, एक सुगंधित पदार्थ जो एक प्रकार के नर हिरन की नाभि के पास की गाँठ में उत्पन्न होता है और दवा के काम में आता है; (जंबू० ८, १४, १९)।

कथकेस—पुं० (सं० क्रथकैशिक) जनपद नाम; (जस० १, २५, १)।

कथा—स्त्री० (सं० कथा>प्रा० कहा) हाल; (की० २, ९८)।

कथिअ—सक० (सं० कथय्>प्रा० कह) बखान करना; (की० ४, १४५)।

कदंबअ—पुं० (सं० कदम्ब)कदंब के फूल; (प्रा० पैं० १, १८८)।

कदिहि—अव्य० (सं० कदापि,कभी; गु० कदी; (प्रा० गु० ४०, ५)।

कद्दम—पुं० (सं० कर्दम>प्रा० कद्दम, कद्दमग) कीच; (ण० ४, १०, ९; जस० १, ६, ५)। कद्दमु; (व० ४, २३, ३)।

कद्दमिअ—पुं० (दे०) महिष, भैंसा; (दे० ना० मा० २, १५)।

कद्दमिउ—वि० (सं० कर्दमित) कीच-युक्त, पंक-युक्त; (व० ४, १४, ३)।

कद्दमिल्ल—वि० (सं० कर्दम+इल्ल) कीचड़-युक्त, "वंकएहिं पंकएहिं कद्दमेल्ल-कुल्लतल्लपूरिया," बांके पंकजों से छोटी नदी (अथवा नाले) के कर्दम-युक्त तल को पूर दिया; (जंबू० ४, २१, ६)।

कद्दविय—वि० (सं० कर्दमित>प्रा० कद्दमिअ) पंक-युक्त, कीच वाला; (जंबू० ४, २२, ३)।

कद्दिउ—अव्य० (सं० कदा) कब; तुल० गु० कदी (किसी दिन); (प० च० २९, २, ६)।

कद्दिवसु—अव्य० किसी दिन; (प० च० ४५, ७, १०)।

कनग्र—पुं० (सं० कनक>प्रा० कणग) स्वर्ण; (की० २, ८६)।

कनवास—पुं० (सं० कर्ण+पार्श्व) कान का एक आभरण। —हीं; (रा० ३४)।

कनिक—पुं० (सं० कणिक) गेहूं; (की० ३, १००)।

कनिट्ठ—वि० (सं० कनिष्ठ>प्रा० कणिट्ठ) लघु, छोटा; (की० १, ९०)।

कन्ता—स्त्री० १. रावण की स्त्री; (प० च० ७४, ११)। २. दाशरथी भरत की प्रणयनी; (प० च० ८०, ५०)।

कन्द—पुं० वानर योद्धा; (प० च० ६१, २७)।

कन्द—पुं० न० (सं० कर्ण>प्रा० कण्ण) कान; (की० ४, २३६; प० सि० च० ३, ७, ९६)। स्त्री० कन्या; (विला०;

भ०)। —धारी वि० (सं० कर्णधारी); (भ०)।

कन्नपंगुरण—पुं० (सं० कर्णप्रावरण) पर्वतीय जन-जाति; (भ०)।

कन्नाड—पुं० (सं० कर्णाट>प्रा० कण्णाड) प्रदेश-विशेष, जो आजकल 'कर्णाटक' नाम से प्रसिद्ध है; (भ०)।

कन्नाडी—स्त्री० (सं० कर्णाटी) कर्नाटक देश की स्त्री; (संधि० ६, ५, १०)।

कन्नारिय—वि० (विभूषित, अलंकृत; (भ०)।

कन्या—स्त्री० (सं० कन्या>प्रा० कण्णा) अविवाहित लड़की या पुत्री; (उ० व्य० प्र० ५१–३)।

कन्ह—पुं० (सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह) श्रीकृष्ण, कान्ह; तुल० गु० कहान; (प्रा० गु० १८, १७; प्र० चि०)।

कपासि—स्त्री० (सं० कर्पास>पा० प्रा० कप्पास) कपास, रूई; तुल० पं० कपाह; (परमा०)।

कपूर—पुं० (सं० कर्पूर>प्रा० कप्पूर) सफेद रंग का एक प्रसिद्ध सुगन्धित द्रव्य जो दारचीनी की जाति के पेड़ों से निकलता है; (की २, १८५; सि० २, ३१)।

कप्पंघिव—पुं० (सं० कल्प+आंघ्रिप:) कल्पवृक्ष; (जव० १, १, ८)।

कप्पंत—पुं० (सं० कल्प+अन्त) काल-विशेष का अंत; (जंवू० ५, ५, ५)।

√कप्प¹—(सं०√कृप्>प्रा० कप्प) काटना। —इ, (सं० कृन्तति) काट दिया गया है; तुल० म० कापणें, गु० कापवुं; (प० च० २६, ८, ५)।

कप्पेंवि – पूं० का० क्रि०, "खणे तिलु तिलु कप्पेंवि मारहु," (सुदं० ८, ३७, २२)।

√कप्प²—(सं०√कल्प> प्रा०कप्प) कल्पना करना, (प्रा० पं० २, २०७)।

√कप्प³—(सं०√कम्प्>प्रा० कंप) काँप गई, "पाओ पहारे पुहवि कप्प गिरि सेहर टुट्टइ," –पैरों के आघात से धरती काँप गई और पहाड़ों की चोटियाँ टूटने लगीं, (की० ४, १६२)। कप्पंत–कृ० (सं० कल्पमान्) काँपते हुए; "के वि कोवेण धावंति कप्पंतया" –कितने ही कोप से काँपते हुए दौड़े; (क० ३, १४, ६)।

कप्प⁴—पुं० (दे०) १. प्रमाण, तुल्य "अट्ठवरिस कप्पेण कुमारें" –आठ वर्ष की आयु होने पर, (जंवू० ४, ६, ४)। २. बन्दी का उद्धार मूल्य, मुक्ति-मूल्य; "सो नात्थि जो न महु देह कप्पु," (भ०)। ३. (सं० कल्प>प्रा० कप्प) काल-विशेष, काल का एक विभाग, जिसे ब्रह्मा एक दिन कहते हैं और जिसमें १४ मन्वंतर या ४३२०००००० वर्ष होते हैं; (जस० ४, २७, १८)। —जाय पुं० (सं० कल्पजात) देव; (१०, १३, १०) —तरु पुं० (सं० कल्पतरु) कल्पवृक्ष; (की० ३, १५७)। —द्दुमु पुं० (सं० कल्पद्रुम) कल्पवृक्ष; (व० २, १२, ८)। —यरु पुं० (सं० कल्पतरु) कल्पवृक्ष; (सा० २१६; वा १, ६)। —रुक्ख पुं० (सं० कल्पवृक्ष) कल्पवृक्ष; (क० २, १, ३)। —वच्छ पुं० कल्पवृक्ष; (क० ७, ५, १०)। —वास पुं० (सं० कल्प-

वास) स्वर्गवास; (व० ६, १, ११)। —विक्ख पुं० (सं० कल्पवृक्ष) कल्पतरु; (जस० ४, २५, ६)। —विडउ पुं० (सं० कल्पविटप) कल्पवृक्ष; (सि० १, ३१)। कप्पामार-पुं० (सं० कल्पामर) देव; (व० १०, १, २)।

कप्पड—पुं० (सं० कर्पट> प्रा० कप्पड) कपड़ा, वस्त्र; (भ०; जंबू० ११, ७, ४, महा० ३६, ८, ६); कप्पडु (क० १०, २०, ६)। तुल० म० कापड़।

कप्पण—न० (सं० कल्पन>प्रा० कप्पण) कतरना, काटना; (जंबू० ७, ६, ११)।

कप्पद्दुम—पुं० (सं० कल्प+द्रुम> प्रा० कप्प+दुम, द्दुम) कल्पवृक्ष, मनोवाञ्छित फल को देने वाला वृक्ष-विशेष; (ण० ५, १२, ६; जंबू० ३, ३, ११)।

कप्पधारि—वि० (सं० कल्पधारिन्) देह को नवीन और नीरोग करने की क्रिया को करने वाला व्यक्ति; "हउं जरइं ण घिप्पमि कप्पधारि' – फिर भी मैं जमा-ग्रस्त नहीं हुआ, मैं कल्पधारी जो ठहरा; (जस० १, ६, ६)।

कप्पयरु—पुं० (कल्पतरु) कल्पवृक्ष; (जंबू० ४, १६, ८)।

कप्परिअ—वि० (दे०) विदारित, चीरा हुआ; (दे० ना० मा० २, २०)। कप्परिय; (प० च० ३६, ६, ६)।

कप्पवासि—पुं० (सं० कल्प+निवासिन्) कल्पवासी देव; (जंबू० १, १६, ६)।

कप्पिय—वि० (सं० कर्त्तित) कतरा हुआ, काटा हुआ; (प० च० ३६, ७, ५)।

कप्पुरिस—पुं० (सं० कापुरुषः) डरपोक; (प० च० ३६, ४, ८)।

कप्पूर—पुं० (सं० कर्पूर>प्रा० कप्पूर) कपूर, सुगंधित द्रव्य-विशेष; तुल० म० कापूर, गु० कपूर; (ण० ७, ५, ८; कीo २, ८६)। —फार पुं० (सं० कर्पूर+स्फार=आधिक्य) कर्पूर की सुगंध, "कप्पूरफारमहुयरमिलंतु"; (जस० ४, ७, ८)।

कप्पूरायरु—पुं० (सं० कर्पूर+अगरु) कर्पूर व अगर "सुमहुरु कप्पूरायरु डज्झइ," सुगंधित कर्पूर व अगर जलाया; (जंबू० ८, १६, ५)।

कफाड—पुं० (दे०) गुफा, गुहा; (दे० ना० मा० २, ७)।

कबंध—पुं० १. (सं० कबन्ध>प्रा० कमंध) धड़, कबंध नामक दैत्य; (प्रा० पैं० २, १८३)। २. कवच, (जंबू० ६, १४, ३)। कबन्धो-पुं० विना सिर का धड़; (की० ४, २०४)।

कबाबा—पुं० (अ० कबाब)-गोश्त के भूने हुए टुकड़े; (की० २, १७८)।

कब्ब—न० (सं० काव्य>प्रा० कव्व) (संदेशरासक प्रक्रम १, छंद १७)।

कब्बाड—पुं० (दे०) कबाड़ीपन; "किसि कब्बाडु सेव मणइ वरु," कृषि, कबाड़ (कबाड़ीपन) व सेवा को ही अच्छा मानते हैं; (सुदं० ६, २३, ५)।

कब्बुर—वि० (सं० कर्बुर>प्रा० कब्बुर, कब्बुरय) कबरा, चितकबरा, चित्तला; (ण० २, १४, ३)।

कब्बुरिय—वि० (सं० कर्बुरित>प्रा०

कब्बुरिअ) अनेक वर्ण वाला, चितकबरा किया हुआ; (भ०)।

कम—पुं० (सं० कफ) एक गाढ़ी, लसीली चीज जो प्रायः खाँसने से बाहर आती है, श्लेष्मा, बलगम; (षड्)।

कमंडलु—पुं० न० (सं० कमण्डलु>प्रा० कमंडलु) संन्यासियों का एक मिट्टी या काष्ठ का पात्र; (जस० ४, १५, १४)।

कम—पुं० (सं० क्रम>प्रा० कम) पद, पाँव, चरण; (ग० ३, ४, १०; सं० रा०; भ०)। —ग्ग पुं० (सं० क्रमाग्र) चरणाग्र, (प्रा० गु० ३५, ११)।

√कम[1]—(सं०√क्रमु पाद विक्षेपे, क्रामति) चलना, पदार्पण करना। —इ "कइया वि तुरइ आरुहिवि भमइ धर खुंदिवि खरखुरखण्णु कमइ," कभी तो वह राजा घोड़े पर सवार होकर भ्रमण करता और घोड़ों के तीक्ष्ण खुरों से धरा रो रौंद कर खोद डालता था; (जस० १, ५, १२)।

√कम[2]—(सं० कम् प्रा० कम) चाहना, वाञ्छना। कमंत; (जंबू० ५, १४, २)।

कमट्ठ—पुं० (सं० कर्म+अष्ट) अष्ट कर्म, आठ कार्य; "विउलइरिसिहरि कमट्ठचत्तु, सिद्धालय—सासयक्खपत्तु," विपुलगिरि के शिखर पर अष्ट कर्मों को त्याग मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त किया; (जंबू० १०, २४, ६)।

कमठ—पुं० (सं० कमठ>प्रा० कमढ) कूर्म, कछुआ; (प्रा० पैं० १, ९२)।

कमठाय—पुं० (सं० कर्मस्थान) कार्य करने का स्थान; तुल० गु० कमठाण, कमठायो; (प्रा० गु० ७, ३०)।

कमढ—पुं० (दे०) १- दही की कलशी, २- हंडी, हँडिया, मिट्टी की रिकावी; ३- बलदेव; ४- मुख; (दे० ना० मा० २, ५५)।

कमढि—स्त्री० (सं० कमठ>प्रा० कमढ) कमठ, कछुआ, (प्रा० गु० १२, १६)।

कमण[1]—सर्व० (सं० कः पुनः>प्रा० कवण) कौन; (की० २, ५३; प्रा० पैं० २, २६)। कमन—कौन; (की० ४, २४३)। कमने—किसने; (की० २, २२, ७)।

कमण[2]—पुं० राक्षस योधा; (प० च० ७१, ३६)।

कमणी—स्त्री० (दे०) सीढी; (दे०ना०मा० २, ८)।

कमल[1]—न० १- (सं० प्रा० कमल) अरविंद, पद्म; (भ०) २- षट्कलगण का नाम; (प्रा० पैं० १, १५)। —इँ, न०, व० (सं० कमलानि) कमलों; (हे० ३५३, १)। —कंता स्त्री० साध्वी; (प० च० ३०, ६७)। —दलच्छि वि० (सं० कमलदल+अक्षि) कमलदल के समान नेत्र वाली; (जंबू० ३, ३, १)। —ासण पुं० (सं० कमलासन) ब्रह्मा, विधाता; (दे० ना० मा० ७, ६२)।

कमल[2]—पुं० (दे०) १- स्थाली, हंडि, हँडिया, २- ढोल, पटह, ३- हरिण, ४- मुख; (दे० ना० मा० २, ५४), ५- कलह, झगड़ा; (षड्)

कमलगब्भ—पुं० मुनि; (प० च० ३१-१६, २४)। —नामा स्त्री० वानर

सुग्रीव की पुत्री; (प० च० ४६, १४)।

कमलप्पह—स्त्री० (सं० कमलप्रभा) स्त्री-विशेष का नाम; (ण० ७, ११, ८)।

कमलबंधु—पुं० इक्ष्वाकुवंशीय राजा; (प० च० २२, ९८)।

कमलमई—स्त्री० दाशरथी भरत की प्रणयिनी; (प० च० ८०, ५१)।

कमलमहासिरि—स्त्री० (सं० कमलमहाश्री) स्त्री-विशेष का नाम; (भ०)।

कमलमाला—स्त्री० राजा आनन्द की रानी; (प० च० ५, ५२)।

कमलरुह—पुं० ब्रह्मन्; (ण० १, ५, १०)।

कमलसिरी—स्त्री० (सं० कमलश्री) १- स्त्री-विशेष का नाम; (ण० ७, ११, ८)। २- विद्याधरी, लक्ष्मण की स्त्री; (प० च० ५४, ४२)। ३- रावण की स्त्री; (प० च० ७४, ६)।

कमला—स्त्री० (सं० प्रा० कमला) १- लक्ष्मी; (जंबू० ३, ३, २)। २- रावण की एक पत्नी; (प० च० ७४; ९)।

कमलाअरु—पुं० छप्पय छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, १२३)।

कमलायर—पुं० (सं० कमल+आकर प्रा० कमलाअर) कमलाकर, सरोवर, तालाब, पुष्कर; "कमलायरो व्व गोविसनिहाणु मंडलवइ व्व महिसीपहाणु" वह जल (गो) और पद्मिनी (विस) के अंकुरों के निधान कमलाकर के समान अनेक गायों (गो) और वृषभों (विस) का निधान था; (जंबू० २, ५, ३)। २- पुं० कमलाकर, मुनिराज; (व० ६, १७, ६)।

कमलाहारो—पुं० (सं० कवलाहार) अन्न या भोज्य पदार्थ की वह मात्रा जो खाने के लिए एक बार मुँह में डाली जाए; (व० १०, ३५, २)।

कमलु—पुं० (सं० कमल) रोला छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ९३)।

कमलुज्जल—वि० (सं० कमल+उज्ज्वल) कमल के समान उज्ज्वल, "कमलुज्जलसरीरा," कमल सदृश उज्ज्वल शरीर वाली; (जंबू० ३, ३, २)।

कमलुल्ल—न० [सं० कवल+उल्ल (स्वार्थे)] कमल; (ण० ५, ६, ६)।

कमलुस्सवा—स्त्री० राजपुत्री; देशभूषण और कुलभूषण की भगिनी; (प० च० ३६, ९४)।

कमवह—पुं० (सं० क्रम+पथिन्>प्रा० कत+वह) पैरों का रास्ता; (रि० ३, ६)।

कमान—स्त्री० (फ़ा० कमान) धनुष; (की० ४, ८०)।

कमायअ— वि० (सं० क्रमागत) १- क्रमशः किसी रूप को प्राप्त, २- जो सदा से होता आया है, परंपरागत; (जंबू० २, ४, ८)।

कमिअ—वि० (दे०) पास आया हुआ; (दे० ना० मा० २, ३)।

कम्म—पुं० (सं० कर्मन्>प्रा० कम्म कर्म, काम, क्रिया; (ण० १, १२, ६; की० २, १८)। तुल० पं० कम्म। —इ, न० ब०—कर्मों (महा० ६८, १)।

—कर पुं० (सं० कर्मकर) मेहतर, प्राचीन काल की एक जाति जो सदैव सेवा-कर्म करती थी; (जंबू० १०, १७, ७)। —यर वि० (सं० कर्मकर >प्रा० कम्मयर) नौकर, चाकर; (भ०)। कम्मिय—वि० (सं० कर्मिन् >प्रा० कम्मिअ) कर्म करने वाला; (भ०)।

कम्म—सकं० (सं० कृ) १- हजामत करना, क्षौर-कर्म करना। —इ, (पड्)। २- (√भुज्) भोजन करना। —इ; (पड्)।

कम्मकिअ—वि० (सं० कर्मक्रीत) कर्मों का दास; (जंबू० १०, ६, ८)।

कम्मकिस—वि० (सं० कर्म+कृश) क्षीण कर्म वाले; (जंबू० २, ३, ६)।

कम्मक्खय—पुं० (सं० कर्मक्षय) कर्मों का विनाश। टि०—भूतकाल में किये गए पापकर्मों का विनाश उनके विपरीत पुण्य कर्म करने से प्राप्त होता है; (जंबू० ११, १४, ८)।

कम्मट्ठगंठि—स्त्री० (सं० कर्म+अष्ट+ग्रन्थि) अष्ट कर्म रूपी ग्रन्थि; (क० ३, २२, ६)।

कम्मडहण—वि० (सं० कर्म+दहन) कर्मों का दहन करने वाला, "अणसणु पहिलारउ कम्मडहणु, नियमियदिणेसु आहारचयणु" सर्वप्रथम कर्मों का दहन करने वाला अनशन नामक तप है, जिसमें नियमित दिनों (अष्टमी चतुर्दशी आदि) में आहार त्याग किया जाता है; (जंबू० १०, २१, ८)।

कम्मपयडि—स्त्री० (सं० कर्म+प्रकृति) कार्य की प्रकृति; (जस० ३, २२, १३)।

कम्मपास—पुं० (सं० कर्म+पाश) कर्म-बंधन; (जस० ४, ७, १४)।

कम्मफल—पुं० (सं० कर्म+फल) पूर्व जन्म में किये गए कर्मों का फल, दुःख-सुख आदि; (जंबू० ११, ४, ६)।

कम्मबंध—पुं० (सं० कर्म+बन्ध, बन्धन) अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार जन्म और मृत्यु का बंधन; (जस० ३, २३, २)।

कम्मभूमि—स्त्री० (सं० कर्मभूमि) कर्म-क्षेत्र; (ण० १०, ६, १०)।

कम्ममल—पुं० (सं० कर्म+मल) कर्मों का मल अर्थात् पाप; (जस० २, ५, १)।

कम्मरइ—स्त्री० (सं० कर्म+रति प्रा० कम्मरइ) कर्म में आसक्ति; (जंबू० १०, ५, १२)।

कम्मवस—वि० (सं० कर्मवश) कर्म के वशीभूत; (जंबू० ११, ३, १)।

कम्मविवाय—पुं० (सं० कर्म+विपाक) पूर्व जन्म में किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का भला और बुरा फल; (जस० ३, २२, ११)।

कम्मसत्ति—स्त्री० (सं० कर्म+शक्ति) >प्रा० कम्मसत्ति) कार्य करने की शक्ति, "नाणु वि कम्मसत्तिसंवलियउ, जायइ मिच्छादंसणे मिलियउ"; (जंबू० १०, ४, ११)।

कम्माण—पुं० (फ़ा० कमान) धनुष; (की० २, १६०)।

कम्मायत्तउ—वि० (सं० कर्म+आयत्त =आधीन) कर्म के वशीभूत, "संभु वि

बुंभु वि वि कम्मायत्तउ" –शम्भु और सुह्मा जी भी कर्म के वशीभूत है; (जस० ३, २२, ११)।

कम्मावणि—स्त्री० (सं० कर्म+अवनि, नी>प्रा० कम्म+अवणि) कर्मभूमि; (व० १०, ६, १०)।

कम्मासय—पुं० (सं० कर्म+आसव) १. कर्मास्रव, कर्मों के विकार या दोष; (जंबू० २, ७, ११)। २. कर्म का वहाव; "जय रंभियकम्मानववहंत," –आपने कर्म के प्रवाह को अवरुद्ध कर डाला है; (क० ४, १०, ६)।

कम्मिंधण—पुं० (सं० कर्मेन्धन>प्रा० कम्म+इंधण) कर्म रूपी ईंधन; "कम्मिंधण भाव हो कम्मुवि तिह" —कर्म रूपी ईंधन कर्म कर्म-भाव से परिणमन को प्राप्त होता है; (व० १०, ३६, १९)।

कम्मोवहि—स्त्री० (सं० कर्म+उपाधि) कर्म की वह स्थिति जिसके संयोग से कोई वस्तु और की और अथवा किसी विशेष रूप में दिखाई दे; "मासु वि तड-यडंतु तुट्टंतउ पेक्खइ कम्मोवहि खुट्टंतउ," –मांस के तड़-तड़ करके टूटने को वह महामुनि कर्मोपाधि के खंड-खंड होने के समान देखता; (जंबू० ११, १५, ५)।

कम्बूदीप—पुं० (सं० कम्बूद्वीप) द्वीप-विशेष का नाम; (प० च० ४४, ६, ६)।

कम्हिअ—पुं० (दे०) माली, मालाकार; (दे० ना० मा० २, ८)।

कयंजलि—वि० (सं० कृत+अञ्जलि >प्रा० कय+अंजलि, 'ली) कृताञ्जलि नमस्कार के लिए जिसने हाथ ऊंचा किया हो वह; (ण० ३, ७, ४; जस० ३, ५, ४)।

कयंत—पुं० १. राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३१)। २. दाशरथी राम का सेनापति; (प० ८६, ४७)। पुं० (सं० कृतान्त>प्रा० कयंत) पाप-कर्म, "कलि-विलसियदुरिय कयंतएण," कलिकाल के विलास रूप पापों का विनाश करने वाले; (ण० १, ३, २)। २. यमराज; "जीवि-यंति सोणिहउ कयंतें;" (व० २, १६, ५)। ३. रावण का इस का नाम का एक योद्धा; (प० च० ५६, ३१)। —मुह पुं० (सं० कृतान्तमुख>प्रा० कयंतमुह) रामचंद्र के एक सेनापति का नाम; (प० च० ६४, ६२)। —वयण पुं० (सं० कृतान्तवदन>प्रा० कयंतवयण) राम का एक सेनापति; (प० च० ६४, २०)। कयंपु–पुं० (सं० कृतान्त) यम; (सि० २, २१)।

कयंब—पुं० १. (सं० कदम्ब>प्रा० कलंब) वृक्ष-विशेष; (भ०)। २. समूह; "तुट्ठु पइट्ठु दिट्ठु मुहतंबें खद्धउ फाडिवि नउलकयंबें," –प्रसन्न होकर वहाँ लाल मुंह वाले नकुल समूह ने उसे देखा, और फाड़कर खा लिया? (जंबू० ९, १०, २०)। —विडव पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३८)।

कय—(१) वि० (सं० कृत>प्रा० कड, कय) किया हुआ, बनाया हुआ, (ण० ३, ४, ६)। (२) संयो० अथवा, कि, तुल० गु० के, (प्रा० गु० ३७, ४)। २. पुं० (सं० क्रय>प्रा० कय) खरी-

देना, (भ०)। —आयर पुं० (सं० कृत+आदर) प्रदर्शित आदर, (प० १, ४, १०)। —उज्जम पुं० (सं० कृतोद्यम) किया हुआ प्रयत्न, की हुई मेहनत, (व० ४, ३, ८)। –चित्ता स्त्री० रावण-पुत्री; (प० च० ११, १०१)। —वम्म पुं० कंपिल्लपुर का राजा, तीर्थंकर विमल के पिता; (प० च० २०, ३६)।

कयउन्न—पुं० (सं० कृतपुण्य) किया गया पुण्य, (भ०)।

कयग्गह—कृ० (सं० कृत+आग्रह आग्रह करके, "बोल्लइ घरिणि कयग्गहु पुणु पुणु" गृहिणी आग्रह करके पुनः पुनः कहने लगी, (जंबू० ६, ४, ३)।

कयडिल्ल—न० (दे०) कटिवस्त्र, कमर में पहनने का वस्त्र, (जंबू० ६, १८, ३; दे० ना० मा० २, ५, २)।

कयणाएं—पुं० (सं० कृतनाद) आवाज करना; "मारिउ ताम बाण कयनाएं"; (जंबू० ६, ११, १४)।

कयणिच्छय—वि० (सं० कृत+निश्चय) जिसने दृढ़ निश्चय कर लिया हो, कृत संकल्प, दृढ़ प्रतिज्ञ; (जस० २, २६, ८)।

कयनीडइं—न० (सं० कृत+नीड>प्रा० कय+णिड्ड, णीड) बनाया गया घोंसला, "कयनीडइं वीढइं चुण्णियाइं," विस्तीर्ण घोंसलों में रहने वाले पक्षियों को भी भयभीत कर दिया गया; (जंबू० ५, ३, १२)।

कयतविडवि—पुं० (सं० कृत+विटपिन् >प्रा० कय+विडवि) समृद्धि रूपी वृक्ष; (जंबू०)।

कयत्थ—वि० (सं० कृतार्थ>प्रा० कयत्थ) सफल मनोरथ, कृतकृत्य; (जंबू० ६, १, २)।

कयत्थकिय—क्रि० पू० का०, कृतार्थ किया; (रि० ४, १२)।

कयत्थय—वि० (सं० कृतार्थ) १- कृतकृत्य, जिसका अभिप्राय पूरा हो चुका हो; २. संतुष्ट; (म०)।

कयदोष—वि० (सं० कृतदोष) दोष करने वाले, अपराधी; "कयदोसेसु रोसु वंचिज्जइ" —दोष अपराध करने वालों के प्रति रोष का त्याग करना चाहिए; (जंबू० ११, १४, २)।

कयपयन्न—वि० (सं० कृत+प्रतिज्ञ) जिसने प्रतिज्ञा कर ली हो; (जंबू० ८, ४, १)।

कयपारण—वि० (सं० कृत+पारण) जिसने उद्धार किया हो; (जस०)।

कयपुलय—वि० (सं० कृत+पुलक) पुलकित; (जस० १, १५, १३)।

कयबंध—पुं० (सं० कच+बन्ध) केश-बंध; (जंबू० ८, ११, २५)।

कयमण—वि० (सं० कृतमनस्) कृत-मना, जिसने मन में निश्चय कर लिया हो; (जंबू० ८, ४, १)।

कयरु—वि० (सं० कृत+रूप) रूप बनाये हुए; "पासट्ठिओ वि तरुणीनियरु मण्णइ वहिपुंजउ व्व कयरु," अर्थात् पास में स्थित तरुणी-समूह को वह रूप बनाये हुए व्याधिपुंज के समान मानने लगा; (जंबू० ३, ६, ६)।

कयरोल—पुं० (सं० कृत रवण) किया गया कोलाहल; (सुदं० ४, १२, ६)।

कयल—पुं० (दे०) अलिजर, पानी रखने का मिट्टी का घड़ा, सुराही आदि; (दे० ना० मा० २, ४)।

कयलि—स्त्री० (सं० कदली>प्रा० कयलि, ली) केले का पेड़; तुल० गु० केळ; (प्रा० गु० १३, ४२)। कयली; (ण० ८, ११, ८)।

कयवन्नउ—पुं० (सं० कृतपुण्य>प्रा० कय+पुण्य, पुण) कृतपुण्य, किया गया पुण्य कर्म, "भणइ कयवन्नउ अभय-कुमारु"; (प्रा० गु० २५, १)।

कयवर—पुं० (सं० कृतिकर) मायावी, नट; (सं० रा०)।

कयाइ—अव्य० (सं० कदाचित्>प्रा० कयाइ) किसी समय भी, कभी भी; (भ०)।

कयाण—पुं० ब्राह्मण, व्यक्ति-विशेष-नाम; (प० च० ३०, ६, १)।

कयाणउँ—न० (सं० क्रयाणकम्>प्रा० कयाण) बेचने योग्य वस्तु; तुल० गु० करियाणुं; (प्रा० गु० ३२, ३)।

कयायर—वि० (सं० कृत+आदर-प्राप्त, "पडिपुच्छियकुसलकयायरेण माया-मामेण विज्जुच्चरेण," अर्थात् कुशल समाचार-पृच्छा आदि के द्वारा प्राप्त छद्म मामा विद्युच्चर; (जंबू० १०, १)।

कयार—पुं० (दे०) तृणाद्युत्कर, कवाड, कचरा, कतवार, कूड़ा, मैला; (प० च० ५४, ११, १; भ०; दे० ना० मा० २, ११; क० ६, १८, ७)।

कयावि—अव्य० (सं० कदापि>प्रा० कयावि, कयाइ) कभी भी, किसी समय भी; (विला०; प० च० ४, ३, ३; भ०)।

कय्यल—पुं० (सं० कज्जल) काजल; (रा० १६)।

करंक—पुं० (सं० करङ्क=नारियल का बना पात्र) १. भिक्षापात्र। २. (दे०) अशोक वृक्ष; (दे० ना० मा० २, ५५)। ३. पुं० न० (सं० करङ्क>प्रा० करंक) अस्थि, धड़; (जंबू० ६, ६, १०)।

करंज—पुं० (सं० करञ्ज) १. वृक्ष-विशेष, कंजा, एक प्रकार का छोटा जंगली पेड़; (दे० ना० मा० १, १३)। २. सूखी त्वचा; (दे० ना० मा० २, ८)।

करंड—पुं० (सं० करण्डक>प्रा० करं-डग, करंड) करंडक, बाँस का बना छोटा पिटारा या पेटिका; (जस० २, ३४, ३)।

करंब—पुं० (सं० करम्ब) दही और भात का बना हुआ एक खाद्य पदार्थ; (दे० ना० मा० २, १४)।

करंबिय—वि० (सं० करम्बित) १. व्याप्त; (भ०)। २. मिश्रित; (जस० ४, १७, २५)।

कर—पुं० (सं० प्रा० कर) हाथ; (भ०)। लो०—"करे कंकणु कि आदि से दीसइ" —हाथ कंगन को आरसी क्या अर्थात् जो चीज़ सामने हो उसके लिए किसी प्रमाण की क्या आवश्यकता है, (सुदं०) २. किरण, अंश, (सं० रा०) ३. शुण्डा; (जंबू० ४, २२, ७)। ४. टैक्स; (की० १, ३८)। —अल पुं०

अंतगुरु चतुष्कल (।।ऽ) (प्रा० पैं० १, १७)। —अलु पुं० छप्पय छंद का भेद (प्रा० पैं० १, १२३)। —यल पुं० (सं० करतल) हथेली।

√कर—(सं० कृ > प्रा० कर) करना। —इ, सक० व० (सं० करोति > प्रा० करइ) करना (ण० २, १, ११)।—उं (सं० करोमि); (उ० व्य० प्र० १६, ७)। —उ आ० (सं० कुर्यात्) करो, करे, (उ० व्य० प्र० १०, १, की० १, ७७, महा० ६८, ८, १५)। —ओ करता है; (की० ३, २५)। —हं आ० करो; मगही करहु (भूसुकुपा, च०)। करत–कृ० (सं० कुर्वत) करते हुए; (जस० १, ५, २०)। करंतहों –भू० का० कर रहे थे, "सरि जल कील करंतहों"; (ण० २, १, १२)। करंति–क्रि० व०, करती है, (ण० १, १, ५)। करन्ता –कृ० व० के रूप में प्रयुक्त, करते हैं, (की० २, २२, ७)। करि—करो" म सोउ करि—" शोक मत करो; (विला०)। करि–कृ० (कृत्वा) करके; (हे० ३५७, ३)। करिअ—भू० का०, किया; (की० ३, ८५)। करिअइ—कीजिए; (की० २, २४)। करिअउं—भू० का० किया; (की० १, ४१)। करिज्जइ—व० करना चाहिए; (की० ३, ५७)। करिवि—पू० का० क्रि० करके; (महा० ६९, ९, १)। करिहसि—भ० का० (सं० करिष्यसि) करेगा; (उ० व्य० प्र० २०–१३)। करु—क्रि० आ० (सं० कुरु = कृ) करो, (उ० व्य० प्र० ९, ३०; हे० ३३०, २)। करेइ—क्रि० (सं० कारयति) कराता है; (हे० ४१४, ४)। करेज्जसु—व० करना, " विणउ करेज्जसु" विनय करना, (ण० ५, १३, ९)। काउं—कृ०, सं० कृत्वा करके; (भ०)। तुल० राज० करवो–ब्रो, गु० करवुं। किज्जइ–कर्मवाच्य कराया जाता है, (जस० १, २०, १)। विध्यर्थ, किया जाय, (ण० ३, २, १०; हरिवंश पुराण ५१/७)। विध्यर्थ, कर (महा० ६८, ७)। करना चाहिए (सुअंध २, ११) तुल० प्राचीन गु० कीजे। किज्जइ—कर्मवाच्य व०; (प्रा० पैं० १, ५२)। कित्तिअ भू० का०, किया; (की० १, ६६)। कियउं–भू० का० (स० कृतम्) किया; (हे० ३७१, १)। कुरु—विध्यर्थ (जंबू० १०, १४, १३)।

करअडी—स्त्री० (दे०) स्थूल वस्त्र, मोटा कपड़ा; (दे० ना० मा० २, १६)।

करकंकण—न० (स० कर+कङ्कण > प्रा० करकंकण) करकंगन; (सि० २, १७)।

करकट्ट—पुं० (दे०) ले जाने योग्य वस्तुएँ; (जंबू० ५, ६, ५)।

करकत्तिया—स्त्री० (सं० करकर्तिका) कैंची; (जंबू० ७, ६, १४)।

करकंटि—पुं० स्त्री० (दे०) जंतु-विशेष, करकंटा (जंबू० ९, १०, १४)।

करग्ग—पुं० (सं० कराग्र) उंगलि; (जस० ३, १०, ७)।

करघायल—पुं० (दे०) दूध की मलाई; (दे० ना० मा० २, २२)।

करजोडण—पुं० (सं० कर +योजन)

हाथ मिलाना; (सुदं० ४, ५, ११)।

करडंत—व० कृ० (ध्व०) करड-करड ध्वनि करते हुए; (जंबू० १०, १२, ७)।

करड—पुं० (सं० करट> प्रा० करड) हाथी का गण्ड-स्थल; (ण० ७, १३, २)। वि० (दे०) कठिन; (जस० १, १६, ८)। पुं० वाद्य-विशेष; (सुदं० ३, ४, ३)। —डाह पुं० (स० करट+ओघ) वाद्यसमूह; (सुदं० ७, ६, ६)। पुं० (दे०) श्राद्ध-विशेष; (दे०- ना० मा० २, ५५)। वि० (दे०) चित-कबरा; (दे० ना० मा० २, ५५)।

करडयल—पुं० (सं० करट+स्थल) हाथी के गाल की जगह, कुम्भस्थल, हाथी का गण्ठ-स्थल; (जंबू० ७, ५, ३)।

करडि—स्त्री० (दे०, प्रा० करडी) वाद्य-विशेष; (प्रा० गु० ३२, ३)। पुं० (सं० करटिन्>प्रा० करडि) हाथी, हस्ती; (जंबू० ६, ६, १०)।

करडिम्ब—पुं० कानों में पहना जाने वाला एक आभरण; (रा० ११)। टि०— करट अर्थात् गण्डस्थल पर लटकते रहने के कारण इसका यह नाम पड़ा होगा।

करण—न० (सं० प्रा० करण) कृति, क्रिया, विधान; (जस० १, ७, २)। २. राजसाधन, पैंतरा, ३. मैथुन-विधि; (जंबू० ६, १३, १२)। —गाम पुं० (सं० इन्द्रियग्राम) इन्द्रिय-समूह, (जंबू० २, १, ११)।

करणाहिवइ—पुं० (सं० करणाधिपति >प्रा० करणाहिवइ) जेल का अध्यक्ष; (भ०)।

करणि—स्त्री० (दे०(रूप, आकार; (दे० ना० मा० २, ७)।

करणिय—वि० (सं० करणीय) करने योग्य; (भ०)।

करणु—न० आज्ञा, "पणवइ णियभिच्चहु करहि करणु" —अपने इस सेवक को आज्ञा दीजिए, (ण० ८, ६, १२)।

करतक्कड—पुं० (दे०; ध्व०) करत-क्कड की ध्वनि का होना; (जंबू० १, १५, ५)।

करतण—पुं० (सं० कर्तृत्व) कर्त्ता का भाव, कर्त्ता का धर्म; (क० १०, १२, ८)।

करतार—पुं० (सं० कर्तार) सृष्टि करने वाला, ईश्वर; (प्रा० गु० ५, १६; की० २, २३७)।

करधणु—पुं० (सं० कर+धनु) धनुप; (जंबू० ७, १०, २)।

करप्पियइ—क्रि० कर्मवाच्य, करपत्र (आरा) से चीरा जाता है; (सं० रा०)।

करफंसण—पुं० (सं० कर+स्पर्शन) हाथ से स्पर्शन; (जंबू० २, १०, ३)।

करम—वि० (दे०) क्षीण, दुर्बल; (दे०-ना० मा० २, ६)।

करमर—पुं० (दे०) वृक्ष-विशेष; (जंबू० ४, १६, ५)।

करमरी—स्त्री० (दे०) बांदी, दासी; (दे० ना० मा० २, १५)।

करमुद्द—स्त्री० (सं० कर+मुद्रा) मुद्रिका; (जंबू० ४, १३, ७)।

करम्विय—वि०(सं० करम्वित) मिश्रित,

मिला-जुला; (प० च० २६, ६, ७)।

करयंदी—स्त्री० (दे०) मल्लिका, वेला का पेड़; (दे० ना० मा० २, १८)।

करयत्थु— वि० (सं० कर+स्थ) करवे में रखा हुआ; (जंबू० १, ५, ११)।

√करयर— (सं० करकराय्) कर-कर आवाज करना; (सुदं० ११, १५, ६)। करयरंत-व० कृ० (सं० करकरत्) शब्दानुकरण; (जस० १, १३, ३)।

करयरिउ—वि० [सं० करकरायित (ध्वन्यात्मक)] किटकिटाता हुआ; "योवतरें कटयडुमें णिविट्ठ करयरिउ रिट्ठु," (सुदं० ८, १५, ७)।

करयल—पुं० (सं० करतल>प्रा० करयल) हथेली; (जंबू० ४, १७, २०)।

कररुह—पुं० (सं० कररुह) पंजा; "केसरि-कररुह-दारिय मयगलि"—कहीं सिंहों के पंजों से मदोन्मत्त हाथी विदारित हो रहे थे; (वी० १, २)। २. नख; (जंबू० २, १५, १५)। ३. पुं० राजा-विशेष-नाम, पुष्पावतीर्ण नगर का राजा; (प० च०)।

करवंद—पुं० (सं० करमर्द, करमर्दक) करौंदा, फल-विशेष, करौंदा, वृक्ष-विशेष, (जस० २, ३५, १२)।

करवंदि—स्त्री० (सं० करमन्दी>प्रा० करवंदी) करौंदा वृक्ष; (जंबू० ५, ८, १२)। करवंदी—स्त्री० लता विशेष, एक प्रकार का पेड़; (दे० ना० मा० ८, ३५)।

करवत्त—पुं० (सं० करपत्र>प्रा० करवत्त) करपत्र, आरा, शस्त्र-विशेष, एक दाँतेदार औजार जिससे लकड़ी काटी जाती है; (सं० रा०; जस० २, ३१, ६)।

करवाल—पुं० (सं० प्रा० करवाल) खड्ग; (प्रा० पैं० १, १०६; प० च० १२, ४, ५)। —हि करवाल से (भी० ३, ७४)। करवालु; (है० ३७६, १)।

करवावड—वि० (सं० कर+व्यापृत) व्याकुलहस्ता; (जंबू० ८, १५, १०)।

करसंगह—पुं० (सं० कर+संग्रह) पाणिग्रहण, (जंबू० ८, १२, ५)।

करसाहु—स्त्री० (सं० कर+शाखा) उँगली; (सं० रा०)।

करहंच—पुं० करहंच छंद, (प्रा० पैं० २, ६२)।

करह—पुं० (सं० करभ>प्रा० करह) ऊँट, उष्ट्र; (सि २, १२; प० ५, ४, २)। —उल्ल (स्वार्थ) (ण० ७, २, ३)। करहु—ऊँट; (व० ४, २१, ६)।

करहाड—पुं० (सं० करहाटक) नगर-विशेष; (जंबू० ६, १६, १०)।

करहाडह—पुं० (सं० करहाटक) देश-विशेष; (प० च०)।

करही—स्त्री० रड्डा छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, १३६)।

करहु—पुं० करभः, दोहा छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ८०)।

कराइणी—स्त्री० (दे०) शाल्मली-वृक्ष, सेमल का पेड़; (दे० ना० मा० २, १८)।

कराइय—क्रि०, भू० का० (सं० कारापित) किया; (व० २, १३, १०)।

करांफोडि—स्त्री० (सं० कर+स्फोट) अंगुलिस्फोट; (व० ६, ११, ७)।

कराल—१. वि० (सं० प्रा० कराल) भयंकर; (भ०; जंबू० १०, २६, १)। २. वि० (सं० कडार) कपिल, भूरा रंग; (जस०)।

कराली—स्त्री० (दे०) दतवन, दाँत साफ करने का काष्ठ; (दे० ना० मा० २, १२)।

करावलि—स्त्री० (सं० कर+अवलि) किरण-जाल; (जस० १, ३, ३)।

करावए—क्रि० कराता है; (की० ३, २८)। करावहुँ—(सं० कृ+णिच्) बनवायेंगे; "जिणबिंब करावहुँ तहिँ रएण"; (क० ५, ७, ३)। कराविय—भू० का०. कर्मवाच्य करवायी; (सि० २, १३, ६)। कारविउ—भू० का०, कर्म-वाच्य, कराया गया; "अब्भंतरु सुंदरु कारवीउ"; उसका भीतरी भाग सुंदर कराया गया; (क० ५, ३, २)।

करिंदु—पुं० (सं० करिन्+इन्द्र) हाथी, ... "आयउ वणकरिंदु"; (ण० ३, १५, १३)।

करि—पुं० (सं० करिन्>प्रा० करि) हाथी; (सं० रा०; वी० १, २; महा० ६८, १०६)। पुं० (सं० कर) हाथ; (व० ५, २, १३)। —कर पुं० (सं० करिन्+कर) शुण्डा, सूँड; (जस० १, ५, ३)। —दंत पुं० (सं० करिन्+दन्त) गाजदंत (व० ४; ६, २)। —मिहुण पुं० (सं० करि+मिथुन) हाथी और हस्तिनी का जोड़ा; हाथी और हस्तिनी का समागम, संभोग; (जस० ४, १३, ३)। —राअ पुं० (सं० करिराज) ऐरावत हाथी; (क० १, १६, ३)।

करिआ—स्त्री० (दे०) मदिरा परोसने का पात्र, (दे० ना० मा० २, १४)।

करिखंधरोह—पुं० (सं० कर+स्कन्ध+आरोह) महावत; (जंबू० ६, ११, ४)।

करिघड—पुं० (सं० करि+घटा) गज-समूह; (जंबू० ५, ७, १)।

करिठाण—पुं० (दे०) पैंतरा, दाव-पेंच; (जंबू० ५, १४, २१)।

करिणि—स्त्री० (सं० प्रा० करिणी) हथिनी, हस्तिनी; (जंबू० १, १४, १०)।

करिणिया, करिणी—स्त्री० (सं० करिणी) हस्तिनी, हथिनी; (प० च० ८०, ५३)।

करिल्ल—न० (दे०) बाँस का नया कल्ला, कोंपल; (दे० ना० मा० २, १०)।

करिविसाणु—पुं० हाथी दाँत; (रि० ६, ६)।

करिसण—न० (सं० कर्षण>प्रा० करिसण) १. कृषि; (जंबू० १, ८, ५)। २. आकर्षण, खींचाव; (ण० १, ६, ८)।

करिसार—पुं० (सं० करि+सार=अत्युत्तम) श्रेष्ठ हाथी; (जंबू० ५, १०, १)।

करिसिरमुत्ताहल—पुं० (सं० करि+शिर+मुक्ताफल) गजमुक्ता, गज के

मस्तक से निकलने वाला मोती; (जंबू० ८, १५, १३)।

करीर—पुं० (सं० प्रा० करीर) करील का पेड़, झाड़ी; (जंबू० १०, ७, ३)।

करीस—पुं० (सं० करीश) हाथियों में श्रेष्ठ, गजराज; (व० ४, २२, १)।

करुआ—वि० (सं० कटुक>प्रा० कडुअ) कडुआ; (की० ३, १०३)।

करुण—वि० (सं० करुण>प्रा० कलुण) १. दया-जनक; (भ०)। २. कोमल; (जंबू० ४, १६, ५ भ०)। करुणि; स्त्री० (सं० प्रा० करुणा) दया, करुणा. "हियउल्लउ करुणि कंपियउ"; (जस० २, १४, ५)। करुणु–वि० करुण; (व० २, २१, ३)। —वंत वि० (सं० करुणा+वत्) करुणावान् (क० ६, ६, ३)। —सर पुं० (सं० करुण+स्वर) करुणामय आवाज; (क० ७, १०, १४)।

करुणायर—वि० (सं० करुणाकर) करुणा उत्पन्न करने वाला; (जस० ४, २८, ६)।

करेडु—पुं० (दे०) गिरगिट; (दे० ना०-मा० २, ५)।

करेओ—प०, का; (की० २, १०३)।

करेवअ—वि० (सं० कर्त्तव्य) करने योग्य; (ण० ७, ४, १०)।

करोड—पुं० (दे०) १. नारियल, २. कौआ, ३. वृषभ, बैल; (दे० ना०-मा० २, ५४)।

करोडी—स्त्री० १. (सं० करोटि=कटोरा या पात्र) कांस्य-पात्र विशेष; (दे० ना० मा० ७, १५)। २. स्त्री० (दे०) एक प्रकार की चींटी, क्षुद्र- जंतु विशेष; (दे० ना० मा० २, ३)।

करोह—पुं० (सं० करौघ) किरण-समूह; (व० १, १२, ८)।

कर्मवियार—पुं० (सं० कर्म+विकार) कर्म-दोष, कर्मों का बुरा होना; (जंबू० ६, १३, १३)।

कलंक—पुं० (सं० कलङ्क>प्रा० कलंक) दाग, दोष, लाच्छन; (भ०)। पुं० (दे०) बाँस; (दे० ना० मा० ३, ८)। —वइ वाड, काँटे आदि से घिरी हुई स्थान-परिधि; (दे० ना० मा०-२, २४)।

√कलंक—(सं० कलङ्कय) कलंकित करना। —इ क्रि० व० (सं० कलङ्कयति) कलंकित करना; (भ०)। कलङ्केइ – क्रि०, व० (सं० कलंकय्) दागी करना; (की० ४, १९३)।

कलंबु—स्त्री० (दे०) १. वल्ली-विशेष, २. नालिका (पद्मदंड); (दे० ना० मा० २, ३)।

कल—पुं० कर्दम, कीच; तुल० गु० कळ; (प्रा० गु० २०, ३)।

√कल—(सं० कलय्) १. संख्या करना, २. आवाज करना, ३. पहिचानना, ४. संबंध करना। कलइ–क्रि०, व० (सं० कलयति) (सं० कलय्>प्रा० कल=जान लेना, पहिचानना,) सुन लेना; "बोल्लु कुमारहों कलु कलइ," कुमार के मधुर बोल को सुन लेती है; (जंबू० ४, १७, २३; सुदं० ४, ९, २)।

कलंत–कृ० (सं० कलय्+शतृ) जानकर; (जंबू० ९, १४, १)।

कलइत्तअ—वि० (सं० कलायुक्त+क)

कलायुक्त; (जंबू० १, ११, ७)।
कलउ—पुं० (सं० प्रा० कला) किसी कार्य को भलीभाँति करने का कौशल; किसी काम को नियमानुसार करने की विद्या; (क० २, १८, ९)।
कलकंठ—पुं० (सं० कल+कण्ठ) मनोहर कंठ; (व० २, ८, ६)।
कलकलाअ—पुं० (सं० कलाकलाप) कला समूह; (जस० १, २३, ३)।
कलकलिए—न० (सं० कलकलित) कोलाहल; (दे० ना० मा० ६, ३६)।
कलकोकिल—स्त्री० (सं० कल+कोकिल>प्रा० कल+कोइल) मधुर शब्द करने वाली या कलकंठी कोकिला; (जंबू० ३, १२, ६)।
कलघोसु—पुं० (सं० कल+घोष) कलकल ध्वनि; (जस० १, २६, १५)।
कलचुलि—पुं० कलचुरि वंश का राजा, (प्रा० पैं० १, १८५)।
कलणुल्ल—पुं० (सं० कलन=शब्द√उल्ल (स्वार्थे) करुणाजनक, "णिविघरिणिहिँ कंदिउ कलुणुल्लउ," —सब राजा के अन्तःपुर की स्त्रियों ने करुणाजनक आक्रंदन किया, तुल० म० काळजी=चिंता (ण० ३, १६, ८)।
कलत्त—न० (सं० कलत्र) पत्नी; स्त्री, भार्या; (भ०; प्रा० पैं० २, ११७; हरिवंश पुराण ५१, ७)। कलत्तु; (महा० ६९, ६, २)।
कलभ—पुं० स्त्री० (सं० प्रा० कलभ) हाथी का बच्चा; (जस०)।
कलम—पुं० (सं० कलम) चोर, तस्कर; (दे० ना० मा० २, १०)।
कलमसालि—पुं० (सं० कलम√शालि) कलम और शालि किस्म के धान्य या चावल (जस० १, २१, १)।
कलयंठ—पुं० (सं० कल+कण्ठ> प्रा० कल+कंठ) मधुर गला; (जंबू० ४, १६, ७)।
कलयंठि—स्त्री० (सं० कल कण्ठी> प्रा० कल+कंठी) कोकिला, कोकिल (ण० २, १, १०; सं० रा०)।
कलयंदि—वि० (दे०) १. प्रसिद्ध, विख्यात; २ स्त्री० वृक्ष-विशेष; पाडल; (दे० ना० मा० २, ५८)।
कलय—पुं० (दे०) १. अर्जुन वृक्ष; २. सुवर्णकार; (दे० ना० मा० २, ५४)। —ज्जल न० (दे०) ओष्ठ-लेप, होठ पर लगाया जाने वाला, (भ०)।
कलयल—पुं० (सं० प्रा० कलकल> प्रा० कलयल) कलकल का शब्द; ध्वन्यात्मक शब्द; (ण० २, ९, ७; जंबू० १, १५, १)।
√कलयल—अक० (सं० कलकलाय्> प्रा० कलकल) 'कल-कल' आवाज करना; (जस० २, १०, १४)। कलयलंत–कलकल ध्वनि; "कलयलंत-कोइल खाउले," कोकिलों की कल-कल ध्वनि से आकुल था; (व० १, ८, १०)। कलयलंति–क्रि०, व० प्र०पु०, व० कल-कल शब्द करना; (विला०)।
कलयलि—स्त्री० (दे०) कलरव; (वी० १, २)।
कलरव—पुं० (सं० कल+रव) 'कल-कल' का शब्द; (जस० २, ३, ७)।
कलरुद्दाणी—स्त्री० (सं० कालरुद्राणी)

रसिका छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ८९)।

कलरोल—पुं० (सं० कल+रवण) 'कलकल' ध्वनि; (जंबू० ९, १३, ११)।

कलल—न० (दे०) वीर्य और शोणित का समुदाय, "पाइज्जंति रडंता सुतत्तत-वुतंबसंनिभं कललं" (प० च० ११८, ८); "वसकललसंभसोणिय"; (प० च० ३९, ५६)।

कलवेणु—पुं० (सं० कल+वेणु) मधुर-वंशी; (जंबू० ४, ८, ६)।

कलस—पुं० १- (सं० कलश) घड़ा! तुल० पं० कलस, म० कळशी; (रा०)। २. स्कंधक छंद का भेद; (प्रा० पैं० १; ७५)। —सर पुं० (सं० कल+स्वर) मधुर स्वर; (क० २, ८, १२)। —हो पुं० कलश; (सु० ८, ६)।

कलहंस—पुं० (सं० कलहंस) १. हंस, २. राजहंस; (भ०; महा० ६९, १०, १०)। कलहंसि-स्त्री० कलहंसिनी; (व० ८, १, ८)।

कलह[१]—पुं० (सं० प्रा० कलभ, प्रा० कलह) हाथी का बच्चा; (ण० २, १३, २)। —मूल पुं० (सं० कलह+मूल) कलह का मूल, "रे रे वड्ढारिउ कलह-मूलु," (जंबू० ६, १२, ६)। न० (दे०) तलवार की म्यान; (दे० ना० मा० २, ५)। —य पुं० (सं० कलभक) हाथी का बच्चा; (प० च० ७८, २८)।

कलह[२]—पुं० राजा-विशेप-नाम; (प०-च० ३७, ७)।

कलहारिणी—वि० (सं० कलहकारिणी) कलह उत्पन्न करने वाली; (प्रा० पैं० १, १९९)।

कलहावणीय—(सं० कलभ+आपन्न=प्राप्त) भू० का०, कलह हुआ; "चंदणहिँ चार कलहावणीय," चंद्रनखा के कारण यहाँ कलह हुआ था, (जंबू० ५, ८, ३३)।

कलहि—वि० (सं० कलहिन्) झगड़ा-खोर; (दे० ना० मा० ५, ५४)।

कलहोय—न० (सं० कलधौत>प्रा० कलहोय) सुवर्ण, सोना; (जंबू० १, १२, ४)।

कला—स्त्री० (सं० कला) (छंदशास्त्र में) मात्रा छंद; (प्रा० पैं० १, १२)।

कलाथाण—पुं० (सं० कला+स्थान> प्रा० कला+थाण) कला का धाम; "सयलविज्जा-कलाथाणु संपत्तओ"; (जंबू० ३, ४, ६)।

कलाभरण—पुं० (सं० कला+भरण= धारण करने वाला) चंद्रमा; (प्रा० पैं० २, १५५)।

कलायर—पुं० (सं० कलाकर) कलाओं का आकर, कलाधर, चंद्र; (क० २, १६, ९)। टि०— पुराणों के अनुसार चन्द्रमा में अमृत विद्यमान है, जिसे देवता पीते हैं। चंद्रमा शुक्ल पक्ष में कला-कला करके बढ़ता है और पूर्णिमा के दिन उसकी सोलहवीं कला पूर्ण हो जाती है। कृष्ण पक्ष में उसके एकत्रित अमृत को कला-कला करके पी जाते हैं। यह माना जाता है कि पहली कला को अग्नि, दूसरी कला को भानु, तीसरी को विश्वेदेवा, चौथी को वरुण, पाँचवी को

वषट्कार, छठी को इंद्र, सातवीं को देवऋषि, आठवीं को अजयएकपात्, नवीं को यम, दसवीं को वायु, ग्यारहवीं को उमा, बारहवीं को पितृगण, तेरहवीं को कुबेर, चौदहवीं को पशुपति, पंद्रहवीं को प्रजापति और सोलहवीं कला अमावस्या के दिन जल और औषधियों में प्रवेश कर जाती है, जिनके खान-पान से पशुओं में दूध उत्पन्न होता है। दूध से घी होता है और यह घी आहुति द्वारा चंद्रमा तक पहुँचता है।

कलाव—पुं० १. (सं० कलापम् > प्रा० कलाव) समूह, "सुकलाकलाव" –सुंदर कलाओं के समूह (ण० २, १०, १; उ० व्य० प्र० १२–६)। २. (सं० कलाप) मयूर (प० च० २७, १५, ६)। ३. पुं० तरकश, तूणीर, जिसमें बाण रखे जाते हैं; (दे० ना० मा० २, १५)।

कलाहरु—पुं० (सं० कलाधर) चंद्रमा; (व० ८, २, ६)।

कलिंग—पुं० (सं० कलिङ्ग > प्रा० कलिंग) देश-विशेष, यह उड़ीसा से दक्षिण की ओर गोदावरी के मुहाने पर है, कलिंग देश; (जंबू० ६, १६, १५)। —चार पुं० १. कलिङ्ग (राजा), २. आम्रवृक्ष धारक; (जंबू० ५, ८, २२)। —हिअ पुं० (सं० कलिङ्गाधिप) कलिंग का राजा; (जस० ४, २७, २७)। कलिंगा–कलिंग देश; (प्रा० पैं० १, १४५)।

कलिंगवइ—पुं० (सं० कलिङ्गपति) कलिंग देश का राजा; (जस० ३, ३७, १७)।

कलिंज—न० (दे०) छोटी लकड़ी; (दे०-ना० मा० २, ११)।

कलिंजर—पुं० पर्वत-विशेष; (क० १, १२, ६)।

कलि—१. पुं० (सं० प्रा० कलि) युग-विशेष, कलि-युग; (जम० १, १४, ३)। २. षट्कल गण का नाम; (प्रा० पैं० १, १५)। ३. झगड़ा, कलह, ४. शत्रु; (जंबू० ४, १, ११)। न० (सं० कल्य = आने वाला अगला दिन) कल; (वैराग्य-सार)।

कलिअ—वि० (सं० कलित > प्रा० कलिअ) १. युक्त, सहित; (क० १, २, २)। २. प्राप्त, गृहीत ३. ज्ञात; (दे०-ना० मा० २, ५६)। ४. वि० (दे०) गर्वित, गर्व-युक्त; (दे० ना० मा० २, ५६)।

कलिम—न० (दे०) कमल, पद्म; (दे०-ना० मा० २, ६)।

कलिय—स्त्री० (सं० कलिका > प्रा० कलिआ) अविकसित पुष्प; (ण० ८, १, ६)। वि० (सं० कलित > प्रा० कलिअ) युक्त, सहित; (जस० १, २१, १३)।

कलिया—स्त्री० (सं० कलिका > प्रा० कलिआ) सखी, सहेली; (जस० १, १२, ३)।

कलियारउ—वि० (सं० कलि + कारक) कलह करने वाला; (रि० ४, ४)।

कलियारय—वि० (सं० कलिकारक) कलह-कारक; (प० च० २१, १, ८)।

कली—स्त्री० (सं० कलि) कलिका, बिना

खिला फूल; तुल० पं० कली; (सं० रा०)।

कलुख—न० (सं० कलुष>प्रा० कलुख) त्रुटि; (की० ३, १४२)।

कलुण—वि० (सं० करुण>प्रा० कलुण) दया-जनक, करुण; (सुदं० ६, १२, १; जस० ४, २४, १६; म० २, ६६, १०)।

कलुस—न० (सं० कलुष>प्रा० कलुस) पाप, दोष, मैल; (ण० १, ११, ६)। —भाव पुं० (सं० कलुष+भाव) पाप-पूर्ण विचार; (जस० २, २६, ६)।

कलेर—पुं० (दे०) १. कंकाल, अस्थि-पञ्जर; । २. वि० भयानक; (दे० ना० मा० २, ५३)।

कलेवर—न० (सं० प्रा० कलेवर) शरीर; (प्रा० पैं० १, १०६; जस० २, २६, ४)।

कलोह—पुं० (सं० कला+ओघ) कला-समूह; (जस० १, १७, ७)।

कल्ल¹—न० (सं० कल्य>प्रा० कल्ल) कल, गया हुआ या आगामी दिन; (सुदं० ८, २४, १८)। —इं सं० श्वः, कल; (जस० २, १२, १)।

कल्ल²—वि० (सं० कल्य) १. स्वस्थ, रोग-रहित, २. दक्ष, चतुर; (दे० ना० मा० ८, ६५)।

कल्लविअ—वि० (दे०) १. आर्द्रित, २. विस्तारित; (दे० ना० मा० २, १८)।

कल्ला—स्त्री० (दे०) मद्य, दारू; (दे० ना० मा० २, २)।

कल्लाण—पुं० (सं० कल्याण>प्रा० कल्लाण) मंगल-क्षेम; (म०)। कल्लान; (की० ३, १३)। —गुणवर पुं० मुनि-विशेष-नाम; (प० च० १३, ४४)। —माला स्त्री० राजा वालिविल्ल की पुत्री; (प० च० ७९, ८)। —मित्त पुं० (सं० कल्याणमित्र) पुरुष-विशेष का नाम; (जस० ३, ३८, ६)। —मुणि पुं० मुनि-विशेष; (प० च० ८८, १२)। —य वि० (सं० कल्याणक) कल्याणकारक; (क० १, २, २)।

कल्लाल—पुं० (सं० कल्यपाल>प्रा० कल्लाल) दारु बेचने वाला; मद्य-विक्रेता; (जस० २, १७, ७; जंबू० ५, ७, २१)।

कल्लि—न० (सं० कल्य>प्रा० कल्ल) कल, गया हुआ या आगामी दिन; (जंबू० २, १३, ११)।

कल्लूरिय—स्त्री० (दे०) कान्दविकी, मीठा बनाने वाली, पाक-स्त्री; (प० च० ४५, १२, ४)।

कल्लोल—पुं० (सं० प्रा० कल्लोल) १. तरंग, ऊर्मि, लहर; (सं० रा०; की० २, १०४; जंबू० ७, ६, ६)। कल्लोलु; (सि० २, १२)। २. पुं० शत्रु, दुश्मन; (दे० ना० मा० २, २)।

कल्लोलिनी—स्त्री० (सं० कल्लोलिनी>प्रा० कल्लोलिणी) नदी; (की० २, १४४)।

कल्होड—पुं० (दे०) वत्सतर, बछड़ा; (जंबू० ५, ७, २३; दे० ना० मा० २, ९)।

कल्होडी—स्त्री० (दे०) बछिया जवान

गाय जो ब्यायी या गाभिन न हो; (दे० ना० मा० २, ६)।

कवइय—वि० (सं० कवचित) बख्तर वाला, वर्मित; (प० च० ७०, ७१)।

कवए—पुं० न० (सं० कवच>प्रा० कवय) लोहे की कड़ियों का वह आवरण जो लड़ाई के समय योद्धा पहनते थे; (च० ५, ७, १५)।

कवचह—पुं० न० (सं० कवच>प्रा० कवय) कवच, बख्तर; (कौ० ४, १८४)।

कवड—न० (सं० कपट>प्रा० कवड) माया, छद्म; (जस० ३, १८, ६; जंबू० १०, ८, ४; भ०)।

कवडकूड—पुं० (सं० कवडकूट>प्रा० कवडकूड) कपट युक्त वस्तु (सुद० ८, ३५, ५)।

कवड्डा—पुं०, ब० (सं० कपर्दकान्) बड़ी कौड़ियां; (उ० व्य० प्र० ५१-८)।

कवडी—स्त्री० (सं० कपर्दिका>प्रा० कवड्डिया) कौड़ी; तुल मगही कौड़ी; (डोम्बिपा; चर्यापद)।

कवडि-जक्ख—पुं० (सं० कपर्दियक्ष) जटाजूटधारी यक्ष; "कवडि-जक्ख तह दीनवउ संघ-वणु अवधारि"; (प्रा० गु० १६, १६)।

कवड्ड—पुं० (सं० कपर्द) बड़ी कौड़ी; (दे० ना० मा० १, ११०)।

कवण—सर्व० (सं० कः पुनः>प्रा० कवण) कौन, तुल० गु० कोण, (ण० ३, १३, १२; हे० ३५०; को० १, १३; सं० रा०)। २. कौन-सी (जंबू० १, ३, १)। —हिं सर्व० (सं० कस्मिन्) किस (हे० ४२५, १); कवणु—सर्व० कौन, तुल० मगही कउन, कौन; (सरह, दोहाकोश; प० च० १३, ५, १०; म० २, १६. ६)। कवणें—सर्व० किस; (विना०)। कवणे-सर्व० किस (कौ० २, २२७)। कवणेण-सर्व० (सं० केन) किस, (हे० ३६७, २)।

कवय—पुं० न० (सं० कवच>प्रा० कवय) लोहे की कड़ियों के जाल का बना हुआ पहनावा जिसे योद्धा युद्ध के समय पहनते थे। जिरह-बकतर; (जंबू० ६, १३, ६)। २. न० (दे०) वनस्पति-विशेष; (दे० ना० मा० २, ३)।

कवरी—स्त्री० (सं० कबरी, कवरी> प्रा० कवरी)। गुथी हुई चोटी, चोटी-बंद, केशपाश; (जंबू० ४, ११, १०)।

कवल—पुं० (सं० प्रा० कवल) कवल, ग्रास, भोज्य पदार्थ की वह मात्रा जो खाने के लिए एक बार मुंह में डाली जाए; (जंबू० २, २०, ५)। कवलु; (प० च० १२, १०, ७)।

कवल—सक० (सं० कवलय्>प्रा० कवल) ग्रसना, हड़प करना। कवलिज्जइ-ग्रसित किया जाता है (रि० ६, ६)]

कवलिय—वि० (सं० कवलित>प्रा० कवलिअ) ग्रसित, भक्षित; (जंबू० ८, १४, २१; जस० २, २५, १४)।

कवसी—वि० (सं० कपिश) पीला-भूरा या लाल-भूरा; "सिहि-सिहि-कयासु कवसी कयासु"; —दिशाओं को लाल-भूरा (उज्ज्वल) बना देने वाला अग्नि-शिखर-समूह; (व० ६, ६, २६)।

कवहु—अव्य० १. कभी-कभी; (कीं० २, २४)। २. कब; (प्रा० पैं० १, २०२)।
कवाड—पुं० न० (सं० कपाट>प्रा० कवाड) किवाड़; तुल० म० कवाड; (ण० ५, १०. १८)।
कवाण—पुं० न० (सं० कपाट>प्रा० कवाड) किवाड़; (सि० २, ३२)।
कवाल—न० (सं० कपाल>प्रा० कवाल) खोपड़ी, खोपड़ी की हड्डी (ण० २, ३, १६; सं० रा०)। —कुट्ठ पुं० (सं० कपाल+कोष्ठ) खोपड़ी; (जंबू० ७, ६, ८)।
कवालिय, कावालिय कावालिणी—पुं० स्त्री० (सं० कापालिक:) शैव संप्रदाय के अंतर्गत विशिष्ट संप्रदाय का अनुयायी जो मनुष्य की खोपड़ियों की माला धारण करते हैं और उन्हीं में खाते-पीते है; (सं० रा०)।
क वि—सर्व० (सं० किम्+अपि) कोई; (जंबू० ४, १०, ६)।
कवि—पुं० (सं० प्रा० कवि) कविता करने वाला; (जस० १, १८, १०)। —गुण पुं० (सं० काव्यगुण) काव्य को सौंदर्य प्रदान करने वाले तत्त्व। ओज, प्रसाद, माधुर्य); (जंबू० १, ४, ४)। —लहो भूदेव पुं० (सं० कपिल-भूदेव) कपिल भूदेव नामक ब्राह्मण, (व० २, १६, ६)। —लाइय –पुं० कपिल आदि; (व० २, २५, १०)।
कविट्ठ—पुं० (सं० कपित्थ>प्रा० कवित्थ,कइत्थ)वृक्ष-विशेष, कैंथ का पेड़; (प० च० ४२,६)।
कविड—न० (दे०) घर का पिछला आँगन; (दे० ना० मा० २, ६)।
कवित्त—पुं० (सं० कवित्व) १. काव्य, कवित; (प्रा० गु० २०, ६३)। २. कवि का भाव; (सं० रा०) ३. काव्यप्रबंध (जंबू० ५, १, ३)।
कवित्थ—पुं० (सं० कपित्थ>प्रा० कवित्थ, कइत्थ) १. वृक्ष-विशेष, कैंथ का पेड़, २. फल-विशेष, कैंथ; (भ०)।
कविल—पुं० १. (सं० कपिल>प्रा० कविल) वर्ण-विशेष, भूरा रंग; (ण० ७, ५, ८; प्रा० पैं० २, ६७)। २. पुं० विप्र-बालक; (प० च० ३५, ५६)। —केस पुं० (सं० कपिलकेश) कपिलकेश नामक राक्षस; (क० २, १२, ३)।
कविस—न० (दे०) दारू, मद्य, मदिरा; (दे० ना० मा० २, २)।
कवोय—पुं० (सं० कपोत) म्लेच्छ देश-विशेष; (प० च० २७, ७)।
कवोल—पुं० (सं० कपोल>प्रा० कवोल) गाल, गण्ड; (भ०; जस० १, ६, ५)। —तय पुं० (सं० कपोल+त्वचा) गाल का चर्म; (जंबू० २, १८, १२)।
कव्वंग—पुं० (सं० काव्य+अङ्ग) काव्य; के अंग; (जंबू० ८, १, ३)।
कव्व—पुं० (सं० काव्य>प्रा० कव्व) काव्य;(कीं०, १, १७; प्रा० पैं० १, ११; म० १, ३, ३; ण० १, ३, ४)। —ह (कव्वह) काव्य; (कीं० १, ३१)। —हीं (कव्वहीं) काव्य; (कीं० २, ६१)। —कलाउ स्त्री० काव्य-कला; (कीं० १, ७)। —पिसल्ल वि० काव्य-धुरंधर (ण० १, २, १०)।

कव्वड—पुं० न० १. (सं० कपाट> प्रा० कवाड) किवाड़ (ण० ३, १५, १०)। २. (सं० कर्पट>प्रा० कप्पड) कपड़ा; (भ०)। ३. खराब गांव; (सि० १, ३)।

कव्वत्थ—पुं० (सं० काव्यार्थ) काव्य का भावार्थ; (जस० १, २३, १०)।

कव्वपीऊस—पुं० (सं० काव्य+पीयूष) काव्य रूपी अमृत; (जंबू० ३, १, १)।

कव्वभेअ—पुं० (सं० काव्य+भेद) काव्य के भेद; (जंबू० १, ३, ४)।

कव्ववर—पुं० (सं० काव्यवर) श्रेष्ठ-काव्य; (प्रा० पैं० २, १६०)।

कव्वाड¹—पुं० (दे०) दाहिना हाथ; (दे० ना० मा० २, १०)।

कव्वाड²—पुं० (दे०) कवाड़ीपन; "होसइ कव्वाडण वि भोयणु," अपना भोजन तो कवाड़ीपन से भी चलता रहेगा; (जंबू० ९, ८, १६)।

कव्वाडिअ—पुं० (दे०) कवाड़ी; "संखिणि नाम को वि कव्वाडिउ," संखिणी नाम का कवाड़ी रहता था; (जंबू० ९, ८, २)।

कव्वामय—पुं० (सं० काव्य+अमृत; (जंबू० ७, १, १)।

कव्वाल—न० (दे०) १. कर्म-स्थान; कार्यालय; २. घर; (दे० ना० मा० २, ५२)।

कव्वुर—वि० (सं० कर्बुर>प्रा० कव्वुर) कबरा, चितकबरा; (सुदं० ८, १, ७)।

कस—पुं० (दे०) कश, चाबुक, अंकुश; "सामंतकुमरकस हयहरिल्लु," —सामंत-कुमारों के कशों (चाबुकों) से आहत होते हुए अश्वों; (जंबू० ५, ७, ११)।

कस—वि० (सं० कीदृश>प्रा० कीस) कैसा; (उ० व्य० प्र० ३२-१)। सर्व० (सं० कस्य) किसका; (संवि० १५, २, ६)। पुं० (सं० कष>प्रा० कस) कसौटी; (जंबू० १, ४, २)।

कसई—स्त्री० (सं० कशुक) फल-विशेष, गवेधुक या कशुक नामक पौधे के फल, जो कि गोल लंबोतरे और एक ओर नुकीले होते हैं; (दे० ना० मा० २, ६)।

कसण—वि० (सं० कृष्ण>प्रा० कसण) कृष्ण वर्ण, काला; (ण० १, १३, १०; प० च० २७, ८, २)।

कसण पक्ख—स्त्री० (सं० कृष्ण पक्ष) १. वह पक्ष जिसमें चंद्रमा का ह्रास हो; २. अंधियार पक्ष; (सु०)।

कसणाणण—पुं० (सं० कृष्णानन) कृष्ण मुख; (व० २, २, १२)।

कसणोरय—पुं० (सं० कृष्ण+उरग) कृष्ण वर्ण का सर्प, (व० १, ४, १२)। —आलि (सं० आली) कृष्ण वर्ण के बड़े या लंबे सर्प; (व० १, ४, १२)।

कसताडणु—पुं० (सं० कश=चाबुक+ताडनम्=मारना-पीटना) कोड़ा मारना; "णरणाहें तुरयहो सुयछलेण कसताडणु किउ कोऊहलेण," —राजा ने कौतूहलवश सूए की आंख बचाकर घोड़े को एक कोड़ा मारा; (क० ८, ९, ५)।

कसमस—स्त्री० (दे०) कसमसाहट, कसमसाना; (म० २, ५५, १०)।

कसमसत्ति—स्त्री० (सं० कृश+शक्ति) दुर्बल; (जस० ३, १४, १२)।

कसमीर—पुं० (सं० कश्मीर > प्रा० कसमीर, कम्हीर) प्रदेश का नाम; (जंबू० ९, १९, १०)।

कसर—पुं० (दे०) गरियार, अधम बैल; मट्ठर (बैल) २. (दे० ना० मा० २, ४; (जंबू० ७, ३, १३)।

कसरक्क—पुं० (दे०) कुड्मल, फूल की कली; (जंबू० ७, १, २)।

कसवट्ट—पुं० (सं० कषपट्ट > प्रा० कस-श्रट्ट) कसौटी का पत्थर; तुल० गु० कसोटी, (की० ३, ११९)। —उ पुं०; (प्रा० गु० ३८, ६)।

कसाइयंत—कृ० (सं० कषायमानः) कसैला बनाता हुआ; (जंबू० ४, १५, १४)।

कसाय—पुं० (सं० कषाय > प्रा० कसय) चतुर्विध कसाय-क्रोध, मान, माया, और लोभ; (ण० १, १२, ५)।

कसार—पुं० (सं० कृसर > प्रा० कंसार) कसार, चीनी मिला हुआ भुना आटा तथा सूजी; (भ०)।

कसिट—वि० (सं० कृष्ट) खींचा हुआ, आकृष्ट, चासा हुआ; (पङ्)।

कसिण—वि० (सं० कृष्ण > प्रा० कसण) कृष्ण वर्ण वाला; (जंबू० १०, २५, १०)। पुं० वर्ण-विशेष; (सं० रा०)।

कसिव—पुं० (सं० काशी + अधिप) काशी का राजा; (प० च० १०४, ११)।

कसीदा—पुं० (अ० क़सीदः) उर्दू या फ़ारसी भाषा की एक प्रकार की कविता या नज़्म, जिसमें प्रायः किसी की स्तुति या निंदा हो। उसमें किसी महान् पुरुष की प्रशंसा की जाती है परंतु उस प्रशंसा में यथार्थता कम पाई जाती है; (की० २, १७२)।

कशीस—स्त्री० (फ़ा० कशिश) खिंचाव; (की० ४, ६५)।

कसु—सर्व० (सं० कस्य) किसका; (जंबू० ४, २२, २५)।

कसेर—पुं० न० (सं० कशेरु > प्रा० कसेरु, कसेरुय) जलीय कंद-विशेष, तृण-विशेष; (ण० १, ६, १२)। कसेरु; (महा० १, ३, १२)। —दल पुं० (सं० कशेरु+दल) जलीय कंद-विशेष का समूह; (जस० २, ३५, ११)।

कस्स—पुं० (दे०) कर्दम, पङ्क, कीचड; (दे० ना० मा० २, २)।

कस्सीर—पुं० (सं० कश्मीर) नगर-विशेष; (ण० ५, ७, ७)। —य, पुं० (सं० कश्मीरज) केसर; (सुदं० ८, २६, ३)।

कस्सु—सर्व० (सं० कस्य) किसका; (हे० ४२२, ६)।

कष-वट्टइ—स्त्री० (सं० कर्ष-पट्टिका > प्रा० कसवट्टिआ) एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर रगड़ कर सोने की परख की जाती है; तुल० पं० कसवट्टी; (हे० ३३०, १)।

कहं—अव्य० (सं० कथं) १. कैसे; (प्रा० पैं० १, ६९)। २. क्यों, किस लिए; (पङ्)।

कहंतर—पुं० (सं० कथान्तर) पूर्व जन्मों की कथा; (जस० ४, ४, १)।

कहंतर—पुं० (सं० कथा+अंतर) दूसरी घटना; (ण० ४, १, ५; संधि० ६८, १) ।

कह—स्त्री० (सं० कथा>प्रा० कहा) कथा, वार्त्ता; (ण० ६, ६, २७; सं० रा०; म० १, ३, ३) ।

कह—अव्य० (सं० कथम्>प्रा० कहं) कैसे, किस तरह; (भ०) । कह व–अव्य० (सं० कथम्+अपि>प्रा० कहं+अवि) कैसे भी, किसी तरह भी; (ण० ३, ६, ७) ।

कह—सक० (सं० क्वथ्) क्वाथ करना, ऊबालना । —इं; (पद्) ।

√कह—(सं०√ कथ्>प्रा० कह) बोलना । —इ सक० व० (सं० कथयति >प्रा० कहइ) कहना, बोलना; (महा० ६८, ८; ण० १, ५, ४) । कहउं–क्रि० व०, कहता हूँ (की० १, ५०) । कहए–व० कहता है (की० ३, १९) । कहओ–कहूँ; (की० ३, १३६) । कहणह, कहणु —कहने के लिए; (सं० रा०) । कहमि–क्रि०, व०, कहना (म० १, ३, ३) । —वा कहूँ (की०, १, ६८) । —सि कहो, बखान करो; (की० १, ४०); —हु आ०, कहो, बखान करो; (की० २, ३) । तुल० राज० कहवो, गु० कहेवुं; (प्रा० दं० २, १६६) । कहंत–कृ० (सं० कथय्+शतृ); (जंबू० ५, ४, ९) । कहण लग्ग–क्रि० कहने लगे; (संधि० १२, ८, २३) । कहल—क्रि० भू० का० बतला दिया, "काहु बाट कहल सोझ" –अर्थात् किसी ने सीधा रास्ता बतला दिया; (की० २, ७२) ।

कहकह—पुं० (सं० प्रा० कहकहकह) हँसी की आवाज; (प० च० २८, १२, १) ।

√कहकह—अक० कहकह आवाज करना, (संधि० १२, २, ८) । कहकहंत- कह रहे थे; (जस० १, १६, ६) । —न्ति क्रि० व० जोर, से हँसना; (प० च० ३२, ६, २) ।

कहण—न० (सं० कथन>प्रा० कहण) कथन, उक्ति; (जंबू० ७, १, ६) ।

कहनी—स्त्री० (सं० कथानिका) हाल-चाल, वार्ता; तुल० पं० कहाणी; (की० ३, १९) ।

कहबंध—पुं० (सं० कथा+प्रबन्ध) कथा की गठन या बंदिश; (जंबू० १, ७, ५) ।

कहय—वि० (सं० कथक>प्रा० कथग) कहने वाला । पुं० कथाकार; (दे० ना० मा० १, १४५) ।

कह व—अव्य० (सं० कथम् वा) १. किसी तरह; (जंबू० २, १६, ७) । २. (सं० कथम् अपि) किसी प्रकार भी; (क० १, २, ६) । ३. कदापि, कभी; (क० २, १४, १) ।

कहा—स्त्री० (सं० कथा>प्रा० कहा) कथा; (जस० ३, ११, १४; की० ४, २३५; विला०) । —वसेस पुं० (सं० कथा+अवशेष) कथा का शेष भाग; (जंबू० ९, १४, ५) —विराम पुं० (सं० कथा+विराम) कथा का रुकना; (जंबू० ४, ४, ९) ।

कहा—अव्य० (सं० कथम्) क्या; (रा०

२६)। सर्व० सं० कस्य, कोई, "ठं निपुवि ण कहीं अच्छरिउ जाइ," किन्तु वह देखकर कोई आश्चर्य-चकित नहीं था; (व० १, ५, ६)।

कहाणअ—न० (सं० कथानक>प्रा० कहाणग, कहाणय) कथा, वार्ता; (सुदं० ७, १०, ६)। कहाणय (म०)। तुल० म० कहाणी।

कहाणी—स्त्री० (सं० कथानक>प्रा० अप० कहाणय) १. पूरी वार्ता या हाल चाल; (कौ० ४, १४१)। २. कहानी; (क० २, १६, १)।

कहार—पुं० (सं० स्कन्ध भार+क> प्रा० काहार) धीमर, एक हिंदुओं की जाति जो पानी भरने और डोली उठाने का कार्य करती है; "करह-वसह-कहारियहिं संवाहिय करकइद," ऊँटों; बैलों व कहारों द्वारा ले जाने योग्य वस्तुएँ ले जायी जाने लगीं; (जंबू० ५, ६, ५; उ० व्य० प्र० ४६—२६)।

कहि—क्रि० वि० (सं० क्व>प्रा० कहि, कहिआ) कहीं, कहाँ, किस स्थान में (सं० रा०)। कहि-कहीं (प० २, १, ७, हे० ३५७; म०; महा० ६६, ८, १३)। कहिं; क्रि० वि० (जंबू० १, ६, ११)। कहिं मि-क्रि० वि० (सं० क्वापि) कहीं भी; (जंबू० १, १५, २)।

कहिअ—वि० (सं० कथित>प्रा० कहिय) कथित, उक्त; (जस० १, १, ६)। कहिय; (जस० १, २५, ५; पा० २, २, १)।

कहिनी—स्त्री० (सं० कथनी) बातचीत; (कौ० २, ११७)।

कहियंतर—पुं० (सं० कथित+अन्तर) कहा हुआ अंतर; (जंबू० ७, ४, ६)।

कहुँ—क्रि० वि० (सं० कुतः) १. कहीं से भी, (कौ० ४, १४७)। २. कहाँ; (प्रा० पैं० १, १०६)। ३. व० कृ० (सं० कृत्वा>काउं>कउं, कहुँ) करके; (कौ० १, ५७)।

कहु—१. सर्व० (सं० कस्य) किसका; (जंबू० ७, १, १३)। कहो-सर्व० किसका; (जंबू० ३, ६, ८)। २. क्रि० वि० (सं० कुतः) किसी तरह, कहीं से भी; (कौ० ४, २२३)। २. कहाँ से; (पडु)। ३. किस से; (म०)। ४. किससे; (महा० ६६, १५, ८)।

कहेड—वि० (दे०) तरुण, युवक; (दे० ना० मा० २, १३)।

कह्न—पुं० (सं० कृष्ण) कृष्ण, (कौ० १, २१)।

कांइ—अव्य० कैसे, क्यों कर; (कौ० १, १५)। -

कांचिडअ—स्त्री० (दे०) एक कर्णाभरण; कांचडिअउ; (रा० ११)।

कांठ—पुं० (सं० कण्ठ) गला; कांठहि; (रा० २३)।

कांठी—स्त्री० (सं० कण्ठिका) गले का एक आभरण; (रा० ३)।

कांड—पुं० (सं० काण्ड) तीर, बाण; (कौ० ४, १६३)।

कांती—स्त्री० गाथा छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ६०)।

कांध—पुं० (सं० स्कन्ध>प्रा० कंध,

खंघ) कंधा, कांध; (उ० व्य० प्र० ६–२१)।

कांवल—पुं० न० (सं० कम्बलम्>प्रा० कंवल) कामरी, ऊनी कपड़ा; (उ० व्य० प्र० ५–१५)।

कांहो—अव्य० (सं० कुत्र) कहाँ; (उ० व्य० प्र० ३०–३)।

कां—प० का (की० २, १३)।

कांधे—पुं० (सं० स्कन्ध>प्रा० कंध) स्कन्ध, कंधा, (की० ४, ४४)।

का—१. सर्व० (सं० कः या किम्) क्या; तुल० मगही का; (सरहपा, चर्यापद; की० १, २७)। २. प० (सं० कः) संबोधक परसर्ग; (प्रा० पैं० २, १२०)। ३. सर्व० सं० कस्य, किसका; (उ० व्य० प्र० १५–१) ४. सर्व० स्त्री० (सं० का) कोई; (जंबू० २, १४, ६)।

काअ—पुं० (सं० प्रा० काय) शरीर; (ण० १, ६, २)। पुं० (सं० प्रा० काक) कौआ; (प० च० ८, ७६)। —ा स्त्री० (सं० काय) शरीर; (की० ४, १६४)।

काअथ—पुं०(सं० कायस्थ) कायस्थ नामक जाति; (की० २, १२१)।

काअर—वि० (सं० कातर) दीन; (की० २, ३६; प्रा० पैं० १, १५७)। २- कायर; (प्रा० पैं० १, १६३)।

काइं—सर्व० न० (सं० किम् =कानि) क्या; तुल० मारवाड़ी काइं, गु० कां; (प० च० ३४, १, १; हे० ३५७, ३; क० ४, १२, ६) काइँ–सर्व० न०, क्या; (प्रा० पैं० १, ६)। काइँ—सर्व, न० (सं० किम्) कैसे, "इय रूव-सरिच्छउ हियउ तिरिच्छउ सल्लु काइँ तुम्हहं थियउ," अर्थात् इस सदृश रूप तुम्हारे हृदय में कुटिल शल्य की भाँति कैसे स्थित रहा? (जंबू० २, १८, १४)।

काइ—सर्व० क्या, (की० ४, १४५)।

काइ—पुं० (सं० प्रा० काय) शरीर; (सं० रा०; महा० ६८, ८, १२)।

काइणी—स्त्री० (दे०) गुञ्जा, लाल रत्ती; (दे० ना० मा० २, २१)।

काउ—पुं० (सं० प्रा० काक) कौआ, वायस, "हंसु व काउ न याणइ घूयडु" —उल्लू हंस के समान (दीखने वाले) कौवे को पहचान नहीं पाया; (जंबू० ८, १५, १४)। कृ० (सं०√कृ+तुमुन्=कर्तुम्) कर; "एत्यंतरें पिय परियरिय काउ रायहों धुर अप्पिवि सुअहों जाउ," (व० १, १२, १)।

काउरिस—पुं० (सं० कापुरुष>प्रा० काउरिस) कायर पुरुष; (जंबू० ७, २, १६)।

काउल—पुं० (सं० प्रा० काक) काक, कौआ; (जस० १, १०, ६)।

काउइाइ—न० (सं० प्रा० केवल) केवल ज्ञान; (क० ६, १३, ८)।

काउल्ल—पुं० (दे०) बक, बगुला; (दे० ना० मा० २. ६)।

काउसग्ग—पुं० (सं० कायोत्सर्ग) १. जैन शिल्प में अर्हत् की वीतरागावस्था में खड़ी मूर्ति, २. जैन धर्म के अनुसार एक प्रकार की अग्नि। तपस्या; (संवि० १, ६, २)। काओसग्ग; (भ०)।

काए—पुं० (सं० प्रा० काय) शरीर; (विला०)।

काएथ्य—(सं० कायस्थ) कायस्थ नामक जाति; (की० ३, ११६)।

काओल—पुं० देश-विशेष; (प० च० ४६, ८, १५)।

कागलि—स्त्री० (सं० काकलि,-ली > प्रा० कागलि, ली) मंद मधुर स्वर, स्वर-विशेष, सूक्ष्म गीत-ध्वनि; (क० ३, ६, ३)।

कागोणंद—पुं० (सं० काकोनन्द) काकोनंद नाम की चक म्लेच्छ-जाति; (प० च० ३४, ४१)।

काचले—वि० (सं० कृत्य > प्रा० कच्च) कामदार या जड़ाऊ; (की० ४, ४२)।

काछ—स्त्री० (सं० कक्षा) कमर पर बांधने का एक वस्त्र; (रा० २६)। (सं० कक्ष्या) पार्श्व भाग, (की० ४, १६)।

काजर—पुं० (सं० कज्जल) काजल, कालिमा; तुल० पं० कज्जल; (की० २, १३१)।

काटि—सक०, भू० का० (सं० कृत् > कट्ट) काटते थे; (की० ४, ७८)।

काठडू—न० (सं० काष्ठ > प्रा० कट्ठ) काठ, लकड़ी; (उ० व्य० प्र० १३-२१)।

√काढ—(सं० √कृष् > प्रा० कड्ढ) खींचना; गु० काढवुं; (संधि० १६, ५, ८)।

काढल—क्रि० भू० का० (सं० कृष् > प्रा० कड्ढ) निकाले गए; "सिन्धु पार सम्भूत तरणि रथ वहइतें काढल,"—वे सिंधु पार के देश में उत्पन्न हुए थे और सूर्य के रथ को खींच कर निकाले गए थे; (की० ४, ५३)।

काढिय—वि० (सं० कर्षित) खींची हुई; (जंबू० ६, ४, ६)।

काण—वि० (सं० प्रा० काण) काना, अक्षिविकल, एकाक्ष; तुल० पं० काणा; (जस० २, १७, ३)।

काणच्छि—स्त्री० (दे०(टेढ़ी नजर से देखना, कटाक्ष; (दे० ना० मा० २, २४)।

काणण—न० (सं० कानन > प्रा० काणण) १. जंगल; (जंबू २, १३, १२)। २. उपवन; (प्रा० पैं० १, १३५)।

काणट्ठी—स्त्री० (दे०) परिहास; (दे० ना० मा० २, २८)।

काणा—वि० (सं० प्रा० काण) काना, एकाक्ष; तुल० राज० काणूं; (प्रा० पैं० १, ११६)।

काणि—स्त्री० (दे०) मर्यादा का ध्यान, लोक-लज्जा, संकोच; (संधि० १, ३, ५)। २. चिंता; (प्रा० गु० ७, २३)। ३. वि० काणी, अक्षिविकला, (जस० २, ३६, ६)।

काणिउँ—क्रि० भू० का० (दे०) छिद गए; "भक्खंतेण दंत-वणें काणिउँ," (उसे) खाते-खाते उसके दांत व मुख छिद गए, (जंबू० ६, ११, ३)।

काणीण—पुं० (सं० कानीन > प्रा० काणीण) कुंवारी कन्या से उत्पन्न पुत्र, कुमारी-पुत्र, कन्याकाजात, (प० च० ३४, २, ७; जस० २, १७, ३)।

काण्ण—पुं० न० (सं० कर्ण > प्रा० कण्ण) कान; मुहा० 'काण्ण समाइअ अम्रिरस' —कानों में अमृत रस समाना

अर्थात् श्रवण से आनन्द होना; (की०)।

काती—अव्य० (सं० कुतः) 'काती पढिअ ककरें घर'—कुतः पठ्यते गृहे कस्य ? (उ० व्य० प्र० २८, ८)।

कादम्बरि—स्त्री० (सं० कादम्बरी) एक विशेष प्रकार की श्रेष्ठ सुरा; (की० ४, ७५)।

कादी—पुं० (अ० क़ाज़ी) काज़ी, न्यायकर्त्ता, मुंसिफ; (की० ४, ७)।

कान—पुं० न० (सं० कर्ण>प्रा० कण्ण) श्रोत्र, कान; तुल० पं० कन्न; (उ० व्य० प्र० ५१-१२)।

कानोड—पुं० (सं० कर्णाट+ओड्र) मोनियर विलियम्स ने ओड्र शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है—"of a comtry (the modern Orissa) the inhabitants of that country, कर्णाट से मिले हुए उड़ीसा प्रांत का निवासी। —उं; (रा० १०)।

कान्ति—स्त्री० (सं० कान्ति>प्रा० कंति) सौंदर्य, शोभा; (की० १, ७१)।

कान्ह—पुं० (सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह) कृष्ण; तुल० राज० कान्हु; (प्रा० पैं० १, ६)।

कान्हइ—अव्य० समीप में; "कहिय वात कान्हइ वइसारिउ," तुल० गु० कने, (प्रा० गु० ७, १८)।

कापड—पुं० (सं० कर्पट>प्रा० कप्पड) कपड़ा; (रा० २६)।

कापडी—पुं० (सं० कार्पटिकः) तीर्थयात्री; (उ० व्य० प्र० ५-२५)।

कापडु—पुं० (सं० कर्पट>प्रा० कप्पड) १. पुराना, जीर्ण-शीर्ण या थेगली लगा कपड़ा, २. कपड़े का टुकड़ा; (उ० व्य० प्र० ५२-१२)। कापडें; (की २, ६५)।

कापल—पुं० (सं० कर्पट>प्रा० कप्पड) वस्त्र, कपड़ा; (की० २, ६५)।

कावि, कावि—सर्व० (सं० कोऽपि) कोई, कोई, भी; (सं० रा०)।

कापिट्ठ—पुं० कापिष्ठ नामक विशेष कल्प; "कपिट्ठए कप्पि विसिट्ठए देवाणंद सुरूवउ," —देवों को आनंदित करने वाले कापिष्ठ नामक विशेष कल्प में स्वरूपवान् देव हुआ; (व० ७, ८, १२)।

कामंदुहा—स्त्री० (सं० कामदुघा) कामधेनु; (प० च० ८२, १४)।

√काम—(सं०√कामय्) इच्छा करना। कामंती-वि० कामयमाना, (प्रा० पैं० १, ३)।

काम—पुं० (सं० प्रा० काम) १. छंदविशेष; (प्रा० पैं० २, ३)। २. कामदेव (सं०रा०); ३. इच्छा;(जबू० ११, १, ३; की० १, ४०)। —ग्गह पुं० (सं० काम+ग्रह) कामाग्रह; (ण० ३, ६, ८)। —जर पुं० (सं० काम+ज्वर); (जस० २, १०, १२)। —न, इच्छा (की० २, १३३)। —रूव पुं० (सं० कामरूप) स्थान-विशेष; (ण० ८, २, ६)। —लेह, पुं० छंद; (सुदं० ७, ८, १६)। —वाण पुं० छंद (सुदं० ३, ६, १६)।

कामएउ—पुं० (सं० कामदेव) कंदर्प, मदन, कामदेव; (विला०)।—वंधु पुं० (सं० कामदेव+वन्धु) वसन्त, "पत्तु कामएव-वंधु उच्छलंत-फुल्ल-गंधु"; (व० २, ३, ८)।

कामकरि—पुं० (सं० काम+करि) मदन-हस्ति; (जंबू० ८, ११, ५)।

कामकरेणु—स्त्री० (सं० काम+करेणु) कामोन्मत्त हस्तिनी; "दरिसावइ कामक-रेणु कील," अर्थात् कामोन्मत्त हस्तिनी के समान क्रीड़ा दिखाने लगी; (जंबू० ४, ११, ५)।

काम-कित्ति—स्त्री० (सं० काम+कीर्ति >प्रा० काम+कित्ति) काम रूपी कीर्ति; "जोण्हणाई काम कित्ति," वह काम रूपी कीर्ति के लिए ज्योत्स्ना के समान था; (व० २, ३, १६)।

कामकील—स्त्री० (सं० काम+क्रीडा) रति-क्रिया, संभोग; (जंबू० १०, १३, ३)।

कामग्गि—पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३६)।

कामदाइणी—स्त्री० (सं० कामदायिनी) ईप्सित फल को देने वाली विद्या-विशेष; (प० च० ७, १२५)।

कामदेउ—पुं० (सं० कामदेव>प्रा० कामदेव, कामदेअ) मदन, कंदर्प रतिपति, अनंग, स्त्री पुरुष के संयोग की प्रेरणा करने वाला एक पौराणिक देवता, जिसकी स्त्री रति, साथी वसंत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूलों का धनुष बाण है; (व० १, ५, २)।

कामधेणु—स्त्री० (सं० कामधेनु>प्रा० कामधेणु) ईप्सित फल देने वाली गाय; (जंबू० ४, १८, ६)। कामधेणू; (भ०)।

कामपंडुर—वि० (सं० काम+पाण्डुर) कामोद्रेक के पाण्डुर वर्ण वाली "काम-पांडुरकवोला," अर्थात् कामोद्रेक पाण्डुर वर्ण कपोल वाली (कामिनी); (जंबू० १, ६, ४)।

काम-मयहु—पुं० (सं० काम+मद, काममद); "काम-मयहु जीवाहहो," काममद को जीतने वाले; (व० ३, ४, १३)।

कामरूअ—पुं० (सं० कामरूप>काम-रूअ) आसाम का एक जिला जहाँ काम-क्ष्या देवी का स्थान है; (प्रा० पैं० २, १११)। पुं० कामरूप नामक शत्रु; (व० ३, १०, ३)।

कामरूव—पुं० (सं० कामरूव>प्रा० कामरूअ) असम-प्रदेश, प्रदेश-विशेष, (जंबू० ६, १६, १५)।

कामलय—स्त्री० (सं० काम+लता) वेश्या; (जंबू० ६, १२, ४)।

कामवण्ण—पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३५)।

कामवेअ—पुं० (सं० काम+वेग) कामोत्तेजना; (जंबू० ४, १६, १)।

कामस्थान—पुं० (सं० काम+स्थान> प्रा० काम+ठाण) कामक्रीडा का स्थल; (जंबू० ६, १३, ६)।

कामाउर—वि० (सं० काम+आतुर> प्रा० काम+आउर) काम से पीड़ित; (ण० ३, २, १५; जंबू० ६, ७, २)।

कामाउल—वि० (सं० काम+आकुल >प्रा० काम+आउल) कामातुर; (जंबू० २, ६, ६);

कामार्थ—पुं० (सं० काम+अर्थ) काम और धन, "धम्मकामत्थसेवासु"; (जंबू० ५, ६, १५)।

कामालसु—वि० (सं० काम+अलस) काम में आसक्त; (जस० २, १, १)।
कामावआर—पुं० (छंदशास्त्र में) कामावतार नामक छंद; (प्रा० पैं० २, ५०)।
कामिंजुल—पुं० (दे०) कामिञ्जुल पक्षी-विशेष; (दे० ना० मा० २, २६)।
कामिणि—स्त्री० (सं० कामिनी>प्रा० कामिणी) १. मनोहर और सुंदर स्त्री; २. सामान्य स्त्री; (सं० रा०)। —या स्त्री० कामिनि (जस०)।
कामिणी—स्त्री० (सं० कामिनी>प्रा० कामिणी) स्त्री, कांता; (जंबू० १, ६, ३)। —जणावलि स्त्री० (सं० कामिनी-जन+अवलि) कामनियों की पंक्ति; (जंबू० ५, १, ८)।
कामिनी—स्त्री० (सं० कामिनी>प्रा० कामिणी) कामिनी, कांता, स्त्री; (कौ० १, १०५)।
कामिय—वि० (सं० कामुक>प्रा० कामुअ) प्रेमी, कामातुर; (सं० रा०)।
कामी—वि० (सं० कामिन्>प्रा० कामि) विषयाभिलाषी; (जस० १, १२, १६)।
कामुअ—वि० (सं० कामुक>प्रा० कामुग, कामुअ) कामी, विषयाभिलाषी; (जंबू० ४, २१, ६)। कामुय; (जंबू० ३, १२, ४)।
कामुक्कोयण—पुं० (सं० काम+उत्कोपन>प्रा० काम पुं० उक्कोवण, उक्कोयण न०) कामोद्दीपन; "परिहरियइं कामुक्कोयणाइं" —उसने कामोद्दीपन का परिहार किया; (क० १०, २७, ७)।
कामुच्छाह—पुं० (सं० काम+उत्साह>प्रा० काम+उच्छाह) कामोत्साह (जंबू० १०,२, २)।
कामुय— वि० (सं० कामुक>प्रा० कामुअ, कामुग) कामी, विषयाभिलाषी; (ण० १, १७, २)।
कामेसर—पुं० (सं० कामेश्वर) कामेश्वर नामक राजा; (कौ० १, ६६)।
कायंचुल—पुं० (दे०) कामिञ्जुल, जल-पक्षी-विशेष; (दे० ना० मा० २, २६)।
कायंदी—स्त्री० (दे०) परिहास, उपहास; (दे० ना० मा० २, २८)।
कायंधुअ—पुं० (दे०) कामिञ्जुल, जल-पक्षी-विशेष; (दे० ना० मा० २, २६)।
कायंवर—न० (सं० कादम्बर) कदम्ब के फूलों की शराब; मद्य-विशेष; (प० च० १०२, १२२)।
काय—पुं० (सं० काक>प्रा० काय) १. कौआ; (भ०)। २. पुं० (सं० प्रा० काय) देह, शरीर; (जंबू० २, २०, ३)। ३. पुं० (दे०) १. लक्ष्य, निशाना; २. उपमान, जिस पदार्थ की उपमा दी जाए; (दे० ना० मा० २, २६)।
कायउल—पुं० (सं० काककुल) कौवों का समूह; (जस० १, १३, ३)।
कायपिउच्छा, कायपिउला—स्त्री० (दे०) कोकिला, कोयल, पिकी; (दे० ना० मा० २, ३०)।
कायमाण—पुं० (दे०) आसन; (जंबू० ८, १३, ३)।
कायम्वरि—स्त्री० (सं० कादम्बरी>

प्रा० कादंबरी) मदिरा; (प० च० ३८, ११, ४)।

कायर—वि० (दे०) प्रिय, स्नेह-पात्र; (दे० ना० मा० २, ५८)। २. (सं० कातर) डरपोक; तुल० गु० कायर; (प० च० ३२, २, ७)।—णर पुं० (सं० कातर नर>प्रा० कायर णर) डरपोक मनुष्य; (व० २, १, १०)।

कायरी—वि० स्त्री० (सं० कातरा) अधीर, डरपोक; (जंवू० ६, १७, १)।

कायरु—वि० (सं० कातर>प्रा० कायर) डरपोक; (व० २, १, १०)।

कायल—पुं० (दे०) १. कौआ; २. वि० प्रिय, स्नेह-पात्र; (दे० ना० मा० २, ५८)।

कायाकिलेश—पुं० (सं० काया+क्लेश) काया का कष्ट; (जंवू० १०, २२, ८)।

कारंकड—वि० (दे०) कठिन, कठोर; (दे० ना० मा० २, ३०)।

कारंड—पुं० (सं० कारण्ड>प्रा० कारंड) पक्षी-विशेष; (सि० १, ८; जस० १, १२, ७)। २. पुं० (दे०) मण्डल, नीड़; (सं० रा०)।

कार—सक० (सं० कारय्>प्रा० कार) करवाना, वनवाना; (जंवू० ६, ३, ७)। कारिवि–पू० का० क्रि० (जंवू० ३, १३, १२)। कारेंवि–पू० का० क्रि० (जंवू ६, ३, ७)।

कार—वि० (दे०) कटु, कड़वा; (दे० ना० मा० २, २६)। वि० (सं० प्रा० कार) करने वाला; (प० च० १७, ७)।

कारण—न० (सं० प्रा० कारण) हेतु, कारण; (जंवू० ४, १२, १२)।

कारवस—पुं० (सं० कारवश) देश-विशेष; (भ०)।

कारा—स्त्री० (सं० कारा) जेल, कैद-खाना; (दे० ना० मा० २, २०)। —गार पुं० न० (सं० कारागार) कैद-खाना, (जस० ४, २७, ३०)।

कारायणी—स्त्री० (दे०) सेमल का पेड़; (दे० ना० मा० २, १८)।

कारावइ—वि० (सं० कारित>प्रा० काराविअ) करवाया हुआ; (व० १, १२, ७)।

कारावय—वि० (सं० कारक) कराने वाले; (महा० ६६, १५, ११)।

काराविअ—वि० (सं० कारित>प्रा० काराविअ) करवाया हुआ, वनवाया हुआ; (ण० ३, १५, ६)।

काराविय—वि० (सं० कारित>प्रा० कारिय) कराया हुआ, वनाया हुआ; (प० च० ३०, ११, ७)।

कारिअ—वि० (सं० कारित>प्रा० कारिय) कराया हुआ, वनाया हुआ; (जंवू० २, १६, ५)।

कारिम—वि० (दे०) कृत्रिम, वनावटी; (दे० ना० मा० २, २७; जस० ४, १८, १)।

कारिमय—वि० (दे०) कृत्रिम, रचित, निष्पादित; (प्रा० गु० ५, १६)।

कारिय—वि० (सं० कारित) कराया हुआ, वनवाया हुआ; (भ०)।

कारु—पुं० (सं० प्रा० कारु) कारीगर, शिल्पी; (संधि० २, १३, ७)।

कारुण्ण—न० (सं० कारुण्य>प्रा० कारुण्ण, करुन्न) दया, करुणा; (ण० ३, ७, ११)। कारुन्न; (सं० रा०)।
कारोहण—पुं० (सं० कारु=पहाड़ी) वन, "कारोहणें गउ वम्हणु वलेवि," (क० १०, १६, ७)।
कालंगुलि—स्त्री० कनिष्ठिका उंगली; (सं० रा० २, ८०–८१)।
कालंजर—पुं० (सं० कालिञ्जर>प्रा० कालिंजर) देश-विशेष; (प्रा० पैं० १, १२८)।
काल—पुं० (सं० प्रा० काल) समय; (सं० रा०; जस० १, १, ६)। २. पुं० मृत्युराज; (जबू० २, १६, १) ३. न० (दे०) अंधकार; (दे० ना० मा० २, २६)। ४. पुं० राजा-विशेष का नाम; (प० च० ८, १५६)। विभीषण का मुख्य भट; (प० च० ५५; २३)। वानरयोद्धा; (प० च० ५७, ११)। दाशरथी राम की प्रजा का अगुआ; (प० च० ६३, १७)। —ग्गि पुं० विद्याधर राज; (प० च० ७, ४६)।
काइल—क्रि० काला करती है; (महा० ५४, २, २–५)।
कालउं—वि० काली; (उत्तर पुराण)।
कालकूड—न० (सं० कालकूट>प्रा० कालकूड) उत्कट विष विशेष; (जंबू० १०, ५, ६)।
कालक्खर—पुं० न० (सं० कालाक्षर) अल्प ज्ञान; (ण० ३, १, ३)।
कालगोयर—वि० (सं० कालगोचर) यम-गोचर, यम से साक्षात्कार; (जस० १, १३, २)।
कालण्णव—पुं० (सं० कालार्णव, काल+अर्णव>प्रा० काल+अण्णव) काला समुद्र; (व० १०, १०, १)।
कालदव्व—पुं० (सं० कालद्रव्य>प्रा० कालदव्व) काल-परिमाण; "सव्वु वि कालदव्वु तहु तिणसमु जे संपन्ननाणसा," परन्तु जो ज्ञान-लक्ष्मी संपन्न है, उनके लिए तो समस्त कालद्रव्य (काल-परिमाण) भी एक दिन के समान है; (जंबू० ३, १, ८)।
कालभुयंग—पुं० (सं० काल+भुजङ्ग) काल रूपी सर्प; (जंबू० ३, ८, १०)।
कालय—वि० (दे०) धूर्त, ठग; (दे० ना० मा० २, २८)।
कालरत्ति—स्त्री० (सं० काल+रात्रि) अँधेरी और भयावनी रात; (जबू० १०, १३, ७)।
कालवट्ठ—न० (सं० कालपृष्ठक) धनुष; (दे० ना० मा० २, २८; जंबू० ५, १४, २१)।
कालवेक्खा—स्त्री० (सं० कालापेक्षा) काल पर समय-समय पर दृष्टि रखना; (जस०)।
काला—स्त्री० (छंदशास्त्र में) कला, मात्रा 'चारी हारा अट्ठा काला, (जहाँ) चार हार (गुरु) हों, आठ कलाएँ (मात्राएँ) हों, (प्रा० पैं० २, २७)।
कालाणल—पुं० (सं० कालानल>प्रा० काल+अणल) प्रलयकालीन अग्नि; (जस० १, २८, १)।
कालाहि—पुं० (सं० काल+अहि) कृष्ण सर्प; (जंबू० १, १८, ८)।
कालिंग—वि० (सं० कालिङ्ग) कलि-

ङ्ग देश में उत्पन्न; (प० च० ९९; ५५)।

कालिंगी—स्त्री० (सं० कालिङ्ग>प्रा० कलिंग पुं०) कलिङ्ग देशवासिनी स्त्री; (सुदं० ४, ६, ६)।

कालिंजण—न० (दे०) श्याम तमाल का पेड़ या फूल; (दे० ना० मा० २, २९)।

कालिंजर—पुं० (सं० कालिञ्जर>प्रा० कालिंजर) १- पर्वत-विशेष; (क० ६, २, ४)। २- जंगल-विशेष; (प० च० ५८, ९)।

कालिंदी—स्त्री० (सं० कालिन्दी) एक इंद्राणी, शक्रेंद्र की एक पटरानी; (प० च० १०२, १२९)।

कालि—पुं० (सं० प्रा० काल) समय, वक्त; "जाहि कालि ललिय भू-सुंदरीएँ, कुसुमाउह-केसरि-कंदरीएँ," (व० १, १३, ३)। पुं० राक्षसयोधा; (प० च० ६१, २७)।

कालिअ—पुं० (सं० प्रा० कालिय) कालिय नाग, इस नाम का एक सर्प; (प्रा० पैं० १, २०७)।

कालिआ—स्त्री० (दे०) १- शरीर, देह, २- कालांतर; ३- मेघ; (दे० ना० मा० २, ५८)।

कालिक्का—स्त्री० (सं० कालिका) चंडिका, काली, कालिका नामक देवी; "जुज्झंती उद्दामे कालिक्का संगामे'—उद्दाम संग्राम में युद्ध करती तथा नाचती कालिका हमारे दुःख का नाश करे, (प्रा० पैं० २, ४२)।

कालिया—वि० (सं०>प्रा० काला=श्याम वर्ण वाली) काली; "रुणु-झुणंति भमरालि कालिया;" (व० १, ८, १)।

कालि-सवरी—स्त्री० (सं० काल+शवरी) काली नामक शवरी; "सवरु कालि-सवरी-भुव-लालिउ" (उन मुनीन्द्र ने) एक शवर को काली नामक शवरी के साथ देखा; (व० १, १३, ३)।

काली—स्त्री० (सं० प्रा० काली) रसिका छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ९९)।

कालेज्ज—न० (दे०) श्याम तमाल का वृक्ष; (दे० ना० मा० २, २९)।

कावडिअ—पुं० (दे०) कावर अथवा बहङ्गी से भार ढोने वाला; (प० च० ७५, ५२)।

कावडिय—पुं० दास-विशेष-नाम; (प० च० ५, १०२)।

कावालिय—पुं० (सं० कापालिक>प्रा० कावालिअ) शैव मत का तांत्रिक साधु; (हे० ३८७, ३)। कावालिनी स्त्री० कापालिनी; (ण० ८, १४, ५)।

कावि—सर्व० (सं० कोऽपि) कोई; (व० १, ११, १०)।

कावेरि—स्त्री० (सं० कावेरी) नदी-विशेष, (प० च० ४८, १०, ४)।

कास—पुं० (सं० काश>प्रा० कास) १- कास पुष्प, कास का पुष्प जो सफेद और शोभायमान होता है; (प्रा० पैं० १, ७७)। २- पुं० (सं० काश, कास>प्रा० कास) खाँसी, रोग-विशेष; (जंबू० २, १३, ९)। ३- न० (सं० कांस्य>प्रा० कंस) धातु-विशेष, काँसा; (पद्)।

कासग—पुं० (सं० कायोत्सर्ग) १- जैन

शिल्प में अर्हत् की वीतरागवस्था में खड़ी मूर्ति। २- जैन धर्म के अनुसार एक प्रकार की अग्नि। तपस्या; (प्रा० गु० २७, ४)।

कासद्धय—पुं० उवरंभा के पिता; (प० च० १२, ७०)।

कासय—पुं० (सं० कृषक) किसान; (दे० ना० मा० १, ८७),

कासव—पुं० दाशरथी राम की प्रजा का अगुआ; (प० च० ९३, १७)।

कासवगोत्त—पुं० (सं० काश्यपगोत्र> प्रा० कासवगोत्त) काश्यप नाम का गोत्र; (जस० ४, ३१, २)।

कासा—स्त्री० (सं० कृशा) दुर्बल स्त्री; (पड्)।

कासायपड—पुं० (सं० काषायपट> प्रा० कासायपड) कषाय रंग से रंगा हुआ वस्त्रादि, (जस० २, १८, ४)।

कासार—न० (दे०) धातु-विशेष, सीस-पत्रक; (दे० ना० मा० २, २७)।

कासिअ—न० (दे०) १- सूक्ष्म वस्त्र, बारीक कपड़ा; २- सफेद वस्त्र; (दे० ना० मा० २, ५९)।

कासिज्ज—न० (दे०) काकस्थल-नामक देश; (दे० ना० मा० २, २७)।

कासिपुर—न० (सं० काशिपुर) काशी नगरी, बनारस शहर; (प० च० ६, १३७)।

कासिय—पुं० (सं० काशि>प्रा० कासि) काशी-देश; (प० च० ४९, ८, १४)।

कासिव—पुं० (सं० काशि+अधिपः) काशीदेश का राजा; (प० च० १०४, ११)।

कासीस—पुं० (सं० काशि+ईश) काशीराज; टि०—काशीराज की प्रशंसा करते हुए कवि ने कहा है कि काशीश, चंद्रमा आदि श्वेत पदार्थों ने उनकी कीर्ति को जीत लिया है, (प्रा० पैं० १, ७७)। —र पुं० काशीश्वर नामक राजा; (प्रा० पैं० १, १४५)।

कासु—सर्व० (सं० कस्य) १- किसका; (व० १, ३, १४, हे० ३५८, २; ण० १, १५, ४)। २- किसे; (महा० ६९, ९, ९)।

काष्ठा—स्त्री० (सं० काष्ठा) सीमा चरम अवधि; (की० ३, १२०)।

काह—क्रि० वि० (सं० कथम्) क्या; (की० ३, ५६)। काहु; (रा० २१)। २- सं० किम् क्यों; (उ० व्य० प्र० १९-२३)।

काहणअ—न० (सं० कथानक>प्रा० कहाणग, कहाणय) कथा, वार्ता; (ण० ६, २०, १४)।

काहल—पुं० (सं० काहल—बाण ने हर्ष की सैनिक यात्रा के समय पाँच बाजों का उल्लेख किया है—पटह, नांदीक, गुंजा, काहल और शंख) बड़ा ढोल, वाद्य-विशेष; तुल० म० कहळा; (सि० १, ११; की० ४, १५९; सं० रा०, जस० २, २०, ३) २- वि० लघु; (प्रा० पैं० १, ३१)। ३- पुं० कोल, भील; (जंबू० ५, ८, २१)। वि० (दे०) १- मृदु, कोमल; २- ठग, धूर्त; (दे० ना० मा० २, ५८)।

काहलिय—पुं० (सं० प्रा० काहला=

बड़ा ढोल) १- काहली, वाद्य-विशेष; (जस० १, २१, ५)। २- वि० कातर; (सि० २, २२)।

काहली—स्त्री० (दे०) तरुणी; (दे०-ना० मा० २, २६)।

काहा—अव्य० (सं० कुत्र) कहाँ; (उ० व्य० प्र० २७–६)।

काहार—पुं० (दे०) कहार, एक हिंदुओं की जाति जो पानी भरने और डोली उठाने का काम करती है; (भ०; दे० ना० मा० २, २७)।

काहावण—पुं० (सं० कार्षापण) सिक्का-विशेष; (पइ)।

काहि—सर्व० (सं० कस्या) किसकी; (जंबू० ४, ११, १)। २- (सं० कस्मै) किस के लिए; (उ० व्य० प्र० २२-२७)।

काहितौ—अव्य० (सं० कस्मात्) किस से; (उ० व्य० प्र० ३२–२)।

काहिल—पुं० (दे०) ग्वाला; (दे० ना०-मा० २, २८)।

काहु—सर्व० किसी ने; (की० २, ६५)।

काहें—सर्व० (सं० केन) किस लिए ,'देउ काहें धाए'– देवं केन ध्यायति, (उ० व्य० प्र० २२–६)।

काहे—क्रि० वि० क्यों, किस लिए; (प्रा० पैं० २, १४२)।

काहेणु—स्त्री० (दे०) गुञ्जा, लाल रत्ती; (दे० ना० मा० २, २१)।

कि—सर्व०(सं० किम्) १- क्या; (प्रा०-पैं० १, ६; जंबू० २, १४, ११)। २- क्रि० वि०—क्यों; लो०–'किं सुक्कें सक्खें सिंचिएण' –सूखे वृक्ष को सींचने से क्या ? (जस०)। सुभाषित—"किं लोहइं घडिउं हियं तुज्झ," क्या तुम्हारा हृदय लोहे का बना है ? (भावना, संधि प्रकरण)। —पि (सं० किमपि) कुछ भी; (प्रा० पैं० १, १०५)।

किंकर—पुं० (सं० किङ्कर>प्रा० किंकर) नौकर, दास; (जस० १, ८, ३)।

किंकिअ—वि०(दे०) सफेद; श्वेत; (दे०-ना० मा० २, ३१)।

किंकिणि—स्त्री० (सं० किङ्किणी>प्रा० किंकिणी) क्षुद्र घण्टिका; (भ०; जंबू० २, ३, ७)।

किंचि—अव्य० (सं० किंचित्) कुछ; (विला०)।

किंचूणा—वि० (सं० किञ्चिद्+ऊन> प्रा० किंचूण) कुछ कम, पूर्ण-प्रायः; (व० १०, ३८, २)।

किंजक्ख—पुं० (दे०) सिरस का पेड़; (दे० ना० मा० २, ३१)।

किंणर—पुं० (सं० किन्नर>प्रा० किंनर) देवों की एक जाति "लयाहरत्थ-कीलमाणकिंणरं," -लतागृहों में स्थित होकर किन्नर क्रीड़ा कर रहे थे; (जस० ३, १६, ६)।

किंतु—अव्य० (सं० किन्तु>प्रा० किंतु) परंतु, लेकिन; (वैराग्यसार)।

किंबुअ—पुं० (सं० कन्दुक) कन्दुक, गेंद; (भ०)।

किंधर—पुं० (दे०) छोटी मछली; (दे०-ना० मा० २, ३२);

किपय—वि० (दे०) कृपण, कंजूस; (दे० ना० मा० २, ३१)।
किंपाग—पुं० (सं० किम्पाक) वृक्ष विशेष; (प० च० ३३, ४२)।
किंपि—अव्य० (सं० किम्+अपि) कुछ, कुछ भी; (सं० रा०; जंबू० ८, ७, १)।
किंपुरिस— पुं० (सं० किंपुरुष) १- किन्नर, देव, २- नीच या हीन पुरुष; (जंबू० ६, १२, १०)। २- सिहिपुर का नागरिक; (प० च० १३, २६)।
किंवोड—वि० (दे०) स्खलित, गिरा हुआ, भुला हुआ; (दे० ना० मा० २, ३१)।
किंसारु—पुं० (सं० किंशारु) सस्य या किसी भी पौधे के फल का अग्र भाग; (दे० ना० मा० २, ६)।
किंसुय—पुं० (सं० किंशुक>प्रा० किंसुअ) पलाश का पुष्प; (जंबू० ३, १२, १३)। टि०–पलाश के फूल सुग्गे की चोंच की तरह कुछ टेढ़े और लाल होते हैं; इसी से पलाश का यह नाम पड़ा।
किंसुया—स्त्री० (सं० किंशुक>प्रा० किंसुअ) पलाश, वृक्ष-विशेष; (विला०)।
कि—अव्य० (सं० किम्>प्रा० किं) क्या; मगही की, का; (सरहपा, दोहा कोश)।
किअ—वि० (सं०कृत> प्रा० कड्, कय किअ) किया हुआ, वनाया हुआ; रचित; (जस० १, ६, ७; ण० १, ५, १०)।
किअउ—क्रि० भू० का० (सं० कृत> प्रा० कड, कय, किअ) किया; (कीं० ३, ८)। किउ–भू० का०, किए; (पाहु०)।
किआ—भू० का० (सं० कृत>प्रा० कड, कय, किअ) किया; 'दुई कपोल जैसे (विधाता) ने किए (वनाए); (रा० ३३, ३४)।
किउ—क्रि० भू० का० (सं० कृत>प्रा० कड, कय, किअ) किया; (व० १, ५, १०)।
किक्कंडि—पुं० (दे०) सर्प, साँप; (दे०-ना० मा० २, ३२)।
किक्किंध—पुं० (सं० किष्किन्धा>प्रा० किक्किंधा) नगरी-विशेष; (जंबू० ६, १६, ४)।
किक्किंधि—पुं० (सं० किष्किन्धि) पर्वत-विशेष; (प० च० ६, ४५)। २- विद्याधर राजा; (प० च० १०, २०)। ३- वानर वंशीय नाम का नृप; (प० च० ६, १५४)। —दंड पुं० हाथी; (प० च० ६८, १)। —पुर न० (सं० किष्किन्धिपुर) नगर-विशेष; (प० च० ६, ४५)।
किक्किन्ध—पुं० (सं० किष्किन्ध) पर्वत-विशेष; (प० च० ३१, १, ८)। —णयरि स्त्री० सं० किष्किन्धनगरी (प० च० ४३, ११, १)।
किच्चिहर—पुं० (सं० कृत्तिधर) महादेव, शिव; (षड्)।
किच्छ—न० (सं० कृच्छ्>प्रा० किच्छ) दुःख, कष्ट, (जंबू० ६, ४, १६)।
किछु—अव्य० (सं० किञ्चित>प्रा० किंचि) अल्प, थोड़ा; (उ० व्य० प्र० १५–५)। सर्व०, वि० (सं० कश्चित्)

कोई कुछ; (को० २, ४१; प्रा० पैं० १, ३८) ।

किछ्उं—अव्य० (सं० कीदृश) कैसा; (प्रा० गु० २७, ४, १) ।

किट्ठ—वि० (सं० कृष्ट > प्रा० किट्ठ) हल से जोता हुआ, "हल किट्ठछेत्तमालेसु संदु"; हल चलायी हुई क्षेत्र-मालाओं में खूब घना; (जंवू० ९, ९, १०) ।

किडि—पुं० (सं० किरि > प्रा० किडि) सूकर, सूअर; (ण० १, ४, ८; सुदं० ११, २१, १०) ।

किडिकिडजन्त—कृ० सूखी हड्डी की आवाज करते हुए; emitting rattling sound (as of dry bones) (प० च० ४७, ५, १) ।

किणंक—वि० (सं० किणाङ्कित) चिह्न-युक्त, किणयुक्त; "परकज्जभारधुरधरण-गरुयनिहसणकिणंकदिढखंधा," अर्थात् दूसरे के कार्य भार के धुरे अर्थात् जूए को धारण करने से उसके गुरुतर घर्षण से जिनके कंधे किणयुक्त हो गए हैं; (जंवू० ७, ४, ७) ।

किण—सक० (सं० क्री > प्रा० कीण) खरीदना । —वि पू० का० क्रि०, खरीद कर; (जंवू० १०, ११, ५) । —ह (विध्यर्थक म० पु०) (जंवू० ९, १, २) ।

कि (ण)—अव्य० सं० किं (न) क्या नहीं; (प० च० ३२, १४, ३) ।

किण—अव्य० (सं० किम्) क्या; (प० च० २८, १२, ५) ।

किणइय—वि० (दे०) शोभायमान, विभूषित; (प० च० २, ३०) ।

किणिअ—वि० (सं० क्रीत > प्रा० किणिय) खरीदा हुआ; (जंवू० १०, ११, २) ।

किणीस—सक० (सं० शानय् का धात्वादेश) शान निशाने to sharpen) तीक्ष्ण करना । —इ व०(प्रा० पैं० १, १८८) ।

किणो—अव्य० (सं० किमित) क्यों, किस लिए; (दे० ना० मा० २, ३१) ।

किण्ण—अव्य० (सं० किनु > प्रा० किण्णं) क्या नहीं ? प्रश्नार्थक अव्यय; "जलहि-जलहों महत्तु आहासइ किण्ण तरंग संनइँ," —समुद्र की तरंग पंक्ति, क्या उसके जल की अति गंभीरता को नहीं वतला देती ? (व० ५, १, ४) ।

किण्णरी—स्त्री० (सं० किन्नरी > प्रा० किनरी) किन्नर देव की स्त्री; (ण० ३, ६, २) ।

किण्ह—वि० १- (सं० कृष्ण > प्रा० किण्ह, कण्ह) कृष्ण या काला रंग; (जस० ४, ७, ११) । २- न० (दे०) वारीक कपड़ा, सफेद कपड़ा; (दे० ना० मा० २, ५९) ।

कितउ—अव्य० (सं० कियत्) कितना; (हे० ३६७) ।

कितव—पुं० (सं० कितव = धूर्त, कपटी) जूआरी; (दे० ना० मा० ४, ८) ।

कितेवा—स्त्री० (अ० किताव) कुरान शरीफ; "कितेवा पढन्ता तुरुक्का अनन्ता," (की० २, १७२) ।

कित्त—पुं० पाँसा (a stake at dice); (ण० ३, १२, ५) ।

कित्तण—न० (सं० कीर्तन > प्रा०

कित्तण) वर्णन, "गुणकित्तणाइँ" गुणों का कीर्तन; (ण० ४, ३, ३)। २- श्लाघा, स्तुति, "दियवरवरकइकित्तणि पुज्जइ," द्विजवरों तथा कविवरों के कीर्तन से पूजा होती है; (जस० ३, २६, ६)।

किर्त्ति—स्त्री० (सं० कीर्ति>प्रा० किर्ति) १- विद्या-देवी; (प० च० ७, १४१)। २- रावण की स्त्री; (प० च० ७४, ११)। पुं० मुनि, पाँचवें बलदेव के गुरु; (प० च० २०, २०५)। ३- सुख्याति, यश; (ण० ५, ७, ७)। —धर पुं० (सं० कीर्तिधर) १- इक्ष्वाकु राजा; (प० च० २१, ७८)। २- मुनि; (प० च० ७४, ३४)। ३- एक जैन मुनि, द्वितीय बलदेव के गुरु; (प० च० २०, २०५)। —धवल पुं० राक्षसवंशीय राजा; (प० च० ५, २६६)। —नाम पुं० वानर योद्धा; (प० च० ५७, ६)। —मई स्त्री० वणिक् स्त्री; (प० च० ५, ८३); अंजना की सास; (प० च० १५, २७)। —लय स्त्री० (सं० कीर्ति-लता) यश की बेल; (जंबू० १०, १, १२)। —वल्लि स्त्री० (सं० कीर्तिवल्लि >प्रा० कित्तिवल्लि) कीर्तिलता; (की० १, १५)। कित्ती-स्त्री० यश; (प्रा० पैं० १, ५३)।

कित्तिअ—वि० (सं० कियत्>प्रा० कित्तिय) कितना; (जस० २, २३, ४)। कित्तिय; (व० २, १५, ६)।

कित्तिउ केत्तिउ—वि० (सं० कियत्) कितना; (परम० २, १४१)।

कित्तिम—वि० (सं० कृत्रिम>प्रा० कित्तिम) बनावटी, नकली; (जस० २, २३, ४; की० २, १३२)।

कित्थ—अव्य० (सं० कुत्र) कहाँ; तुल० पं० कित्थे; (जंबू० १०, १०, ३)।

किवियम्मु—पुं० (सं० कृतिकर्म) किए जाने वाले कार्य; (सुदं० ११, ३, ३)।

किद्धउ—क्रि० भू० का० (सं० कृत) किया; तुल० गु० कीधुं, कयुँ; (संधि० १२, ६, ३)।

किन्न—अव्य० (सं० किनु>प्रा० किण्णं) क्या नहीं? (व० ४, १८, १)।

किपाड—वि० (दे०) गिरा हुआ; (षड्)।

किपिण—वि० (सं० कृपण) कंजूस; (जंबू० ७, ८, १४)।

किम—अव्य० (सं० किम्+इमं= किमिदम्) क्या यह, (जस०)।

किम—अव्य० (सं० कथम्) क्यों, क्या, कैसे; (जंबू० ५, ४, ३; सं० रा०; भ०)।

किमु—अव्य० (सं० किम्) क्या, तुल० गु० केम; (संधि० १८, ४, १९)।

किमि—पुं० (सं० कृति>प्रा० किमि) कीट,विशेष, क्षुद्र-जीव; (जस० ३, १३, १२)। —उल पुं० (सं० कृमि+कुल) कीट-विशेष का कुल; (जस० २, २८, ७)। अव्य० (सं० कथम्>प्रा० किम्) कैसे; (की० १, २८)। —प्राग, राय पुं० (दे०) किरमीजी का रंग; (दे०-ना० मा० २, ३२)।

कियंत—पुं० (सं० कृतान्त) पापकर्म, "जहि खयहो पवच्चइ कलिकयंतु,"

जहां कलिकृतान्त क्षय हो जाता है, (जंबू० ८, ८, १५)।

किय—वि० (सं० कृत>प्रा० कठ, कय, किअ) किया हुआ; (जस० २, ३७, ५)।

किय—स्त्री० (सं० क्रिया>प्रा० किरिया, किया) क्रिया, कृति, व्यापार, प्रयत्न; (भ०)। वि० (सं० कृत) किया हुआ; (भ०)। —ा (किया) स्त्री० (सं० क्रिया>प्रा० किरिया) क्रिया; (जंबू० २, १६, ६)।

कियत्थ—वि० (सं० कृतार्थ) जिसका अभिप्राय पूरा हो चुका हो, कृतकृत्य; (भ०)।

किर—अव्य० (सं० किल>प्रा० किर) इन अर्थों का सूचक अव्यय १- संभावना, २- निश्चित कारण, ३- संशय, ४- अरुचि ५- असत्य, "णारीरुवइं किर के ण होय," —कौन ऐसे हैं जो नारी के रूप से विनष्ट न हुए;' (जस० २, ६, ६)। ६- निश्चयार्थक, निश्चय ही, बेशक; (ण० ३, १०, ६; हे० ४१९, १; प्रा० पैं० १, ६७)। ७- संबोधनार्थे; (क० ३, ६, ३)।

किर—पुं० (दे०) सूकर, सूअर; (दे०-ना० मा० २, ३०)।

किरण—पुं० न० (सं० प्रा० किरण) १- प्रभा (जंबू० १, ६, ७)। २- रश्मि; (जस० १, ३, ३)। —मंडला स्त्री० विद्याधर रानी; (प० च० १०१, ५८)।

किरणाहय—वि० (सं० किरण+आहत) किरणों को तिरोहित करने वाले; (जंबू० १, १७, १)।

किरणोलि—स्त्री० (सं० किरणावलि किरण+आवलि) किरणों का समूह; (व० ५, ६, ६)।

किरणोह—पुं० (सं० किरणौघ) किरण-समूह; (जस० १, २, ६)।

किराड—पुं० (सं० किरात>प्रा० किराड, किराय) भील, एक जंगली जाति; (ण० ६, २२, १०; उ० व्य० प्र० १०-१७)। किराय-किरात; (क० ८, १६, २)।

किराण—पुं० (सं० क्रयानक) करियाना, किराना; तुल० म० किराणा, गु० करियाणुं, पं० करयाना (grocery); (प्रा० यु० १४, १६)।

किरि—अव्य० (सं० किल>प्रा० किर) निश्चय ही, निःसन्देह, बेशक; (संवि० १७, १, ३; सं० रा०)। २- पुं० (सं० किरि=सूअर) भालु की आवाज, "कत्थइ हिरिति कत्थइ छिरित्ति कत्थइ छिरित्ति रिच्छाणं सद्दो," (प० च० ६४, ४५)।

किरिइरिआ, किरिकिरिआ—स्त्री० (दे०) १- कर्णोपकर्णिक, एक कान से दूसरे कान गई हुई बात, गप, २- कुतूहल; (दे० ना० मा० २, ६१)।

किरिकिरिरि—क्रि० (ध्वन्यात्मक) किर-किर की आवाज करना; (सुदं० ७, ६, १२)।

किरिमाल—पुं० वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, ११)।

किरिय—स्त्री० (सं० क्रिया>प्रा०

किरिता) क्रिया, कृति, प्रयत्न; (संवि० १०, ४, ४)।

किरिया—स्त्री० (सं० क्रिया) कृति, प्रयत्न, क्रिया; "किरियागुणविवाज्जिओ" क्रिया-गुण से रहित; (जस० ३, २३, १)। —वर वि० (सं० क्रियापर) अनुष्ठान-कुशल; (षड्)।

किरिरि—स्त्री० वाद्य-विशेष; (जंबू० ५, ६, ११)।

किरीड—पुं० वानरयोद्धा, (प० च० ५७, ६)।

किरिस—वि० (सं० कृश) कमजोर; (की० ३, १०६)।

किलंत—वि० (सं० क्लान्त) श्रांत, खिन्न; (भ०; षड्)।

किल—१- अव्य० (सं० किल>प्रा० किर) निश्चयार्थक अव्यय; (प्रा० पैं० २, १२०)। २- पुं० मनुष्य-जाति-विशेष; (संधि० १०, २, ४)।

किलकिल—अक० (सं० किलकिलाय्> प्रा० किलकिल) खुशी से चिल्लाना, तुल० गु० किलकिलाट=खुशी की चिल्लाहट। किलकिलंति–क्रि० 'किलकिल' आवाज करना; (ग० ४, १५, ८; सुदं० ११, १५, ४)। किलकिलंत–व० कृ० (ध्वान्यात्मक) (सुदं० ८, १६, ३)। किलकिलंत–व० कृ० किलकिलाते हुए; (जस० १, १३, ५)।

किलणी—स्त्री० (दे०) रथ्या, गली, (दे० ना० मा० २, ३१)।

किलाचक्क—पुं० (सं० क्रीडाचक्र) छंद का नाम; (प्रा० पैं० २, १८२)।

किलाड—पुं० (दे०) दूध का विकार-विशेष, मलाई; (दे० ना० मा० २, २२)।

किलामिअ—वि० (सं० क्लमित) खिन्न किया हुआ, पीड़ित, हैरान किया हुआ; (प० च० १०३, २२)।

किलाविय—वि० (सं०√क्लमय्>प्रा० किलाम=क्लान्त करना, खिन्न करना) पीड़ित, "भुक्खाइँ किलावियणिद्धणाहँ सो देहइ भोयणु विण्हिं जणाहँ;" वह भूख से पीड़ित व निर्धन हम दोनों को भोजन देगा; (क० ६, ५, ३)।

किलिट्ठ—वि० (सं० क्लिष्ट) कठिन, विषम; (भ०)।

किलिण्ण—वि० (सं० क्लिन्न) आर्द्र, गीला; (भ०)।

किलित्त—वि० कल्पित, रचित; (षड्)।

किलीण—वि० (सं० क्लिन्न>प्रा० किलिण्ण, क्लिन्न) आर्द्र, गीला; (भ०)।

किलेस—पुं० (सं० क्लेश>प्रा० किलेस) दुःख, पीड़ा; (जस० २, १, ५)।

किव—स्त्री० (सं० कृपा>प्रा० किवा) दया, मेहरवानी; (ण० ६, १०, ११)।

किवण—वि० (सं० कृपण>प्रा० किवण) कृपण, कंजूस; (दे० ना० मा० २, ३१; सि० १, ३४)। किविण-दीन, कृपण; (जंबू० ३, १, ७)।

किवाड—पुं० (सं० कपाट>प्रा०

कवाड, कवाल) किवाड़; तुल० गु० कमाड, (प्रा० गु० ५, २३)।

किवाण—पुं० न० (सं० कृपाण>प्रा० किवाण) खड्ग, तलवार; (ण० ४, ११, ३; जस० १, २, १२)।

किवालु—वि० (सं० कृपालु) दयालु; (प० ज० ३४, ५०)।

किवावन्न—वि० (सं० किवापन्न) कृपा-प्राप्त; (प० च० ६५, ४७)।

किवि—क्रि० वि०, वि० (सं० किम्+अपि) कुछ, कुछ भी; (सं० रा०)।

किविट्ट—न० (दे०) १- खलिहान, २- वि० खलिहान में जो हुआ हो वह; (दे० ना० मा० २, ६०)।

किविडी—स्त्री०(दे०) १. किवाड, २. घर का पिछला आँगन; (दे० ना० मा० २, ६०)।

किविण—वि० (सं० कृपण>प्रा० किविण, किवण) कंजूस; (भ०)।

किव्विस—पुं० (सं० किल्विष) पाप; (जंवू० १०, ५, ७)।

किस—वि० (सं० कृश) दुर्वल; (भ०);

किसउ—वि० (सं० किदृशम्) कैसा; तुल० गु० केवुं (संधि० १३, ६, ४)।

किसण—वि० (सं० कृष्ण) कृष्ण, काला; (सं० रा०)।

किसणु—पुं० छप्पय छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, १२३)।

किसरा—स्त्री० (सं० कृशरा) खिचड़ी, चावल-दाल का मिश्रित भोजन-विशेष; (दे० ना० मा० १, ८८)।

किसलय—पुं० न० (सं० प्रा० किसलय नव पल्लव, नया पत्ता; (जस० १, १२, ७)।

किसाण—पुं० (सं० कृपाण) कृषक, किसान; (जंवू० ६, १३, १३)। किसाणु; (सि० १, ३१)।

किसाणु—पुं० १- (सं० कृशानु>प्रा० किसाणु) अग्नि; (ण० १, १४, ८)।

किसि—स्त्री० (सं० कृषि>प्रा० किसि) खेती; (जंवू०)।

किसिय—वि० (सं० कृशित>प्रा० किसिअ) कृशता-युक्त; (भ०)।

किसोयरी—वि० (सं० कृशोदरी) पतले पेट वाली; (क० ७, १३, १०)।

किसोर—पुं० (सं० किशोर) वाल्याव-स्था के वाद की अवस्था वाला वालक; (जंवू० ५, १२, १४)।

किह—अव्य० १- (सं० कुत्र) कहाँ; (जस० ४, २६, १०)। २- अव्य० (सं० कथं>प्रा० कहं, किहं, किह; (ण० ३, ११, २; हे० ४०१; ३)।

किहु—अव्य० कुछ; (सं० रा०)।

कीहु—सर्व० (सं० किम्> प्रा० कि) क्या; (की० ४, १४५)।

कीड—स्त्री० (सं० क्रीडा>प्रा० कीड, किड्ड) क्रीड़ा; (भ०)। पुं० (सं० कीट>प्रा० कीड) कीड़ा, क्षुद्र-जंतु; तुल० पं० कीड़ा; (जंवू० ७, २, १२)।

कीडी—स्त्री० (सं० कीटिका) पिपी-लिका, चींटी; (दे० ना० मा० २, ३)।

कीनि—कृ० (सं० क्री>प्रा० कीण=

खरीदना, मोल लेना) खरीदकर; (की० ३, ६५)।

कीय—वि० १- (सं० क्रीत) मूल्य देकर लिया हुआ; (भ०)। २- वि० (सं० कृत) किया हुआ, अनुष्ठित, क्रियान्वित; (क० १, २, ७)।

√कीर—(सं० कृ>प्रा० कर) करना; (जस०)। —इ (√कृञ करणे, कर्मणि क्रियते) (भ०; विला०)। (सं० करोति) करना; (क० १, १०, १)।

कीर—पुं- (सं० प्रा० कीर) १- शुक, तोता; (दे० ना० मा० २, २१; जस० १, ३, १२)। २- देश-विशेष; (जंबू० ६, १६, १०)। —ल पुं० कीरल, देश-विशेष; (प० च० ६८, ६४)। —आलि (कीरालि) स्त्री० (सं० कीर+आवलि) शुकपंक्ति; (व० १, ८, १०)।

कील¹—स्त्री० (सं० क्रीडा> प्रा० कीला) क्रीड़ा, खेल, (ण० ६, ७, १०; विला०)। (सं० कीलः) खूंटी; (संधि० १०, २, १३)।

कील²—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १२)।

√कील¹—अक० (सं० क्रीड्>प्रा० कील) क्रीड़ा करना; (ण० २, ८, ५)। कीलंत—व० कृ० (ण० ५, ७, २)। कीलंति—व०, व० व०, क्रीड़ा करती हैं; (विला०)। —सि व० (प्रा० पैं० १, ७)।

√कील²—(दे०) कीलना, मन्त्रादि से किसी को जड़ कर देना; (सि० १, १८)।

कील³—वि० (दे०) अल्प, थोड़ा; (दे० ना० मा० २, २१)।

कीलण—न० (सं० क्रीडण>प्रा० कीलण) क्रीडा, खेल; (भ०)। —अ न० (सं० क्रीडनक>प्रा० कीलणअ) खिलौना; (जंबू० ५, २, १६)। —त्थ क्रीडनार्थ; (क० ५, ४, २)।

कीलणिआ, कीलणी—स्त्री० (दे०) रथ्या, गली; (दे० ना० मा० २, ३१)।

कीला—स्त्री० (दे०) १- नव-वधू, दुलहिन; (दे० ना० मा० २, २३)। २- सुरत समय किया जाता हृदय-ताड़न विशेष; "कीला सुरत उरः प्रहणन-विशेष"; (दे० ना० मा० २, ६४)। ३- स्त्री० (सं० क्रीडा>प्रा० कीला) खेल; (जस० ३, ३, ४) —इ स्त्री० क्रीड़ा; (महा० ६८, ६)। —घर पुं० (सं० क्रीडागृह) क्रीड़ा का स्थान; (क० ४, ४, ६)।

कीलामहिहर—पुं० (सं० क्रीडा+महिधर) क्रीड़ापर्वत, "मुणिवर-मंडियकीला-महिहर," बाहर मुनिवरों से शोभायमान क्रीड़ापर्वत हैं; (जंबू० ३, २, ७)।

कीलाल—न० (सं० प्रा० कीलाल) रक्त, रुधिर; (जस० १, १५, ६; जंबू० ६, १०, १३)। —लीला रुधिर-प्रवाह; (जंबू० १०, २६, १)।

कीलिय—न० (सं० क्रीडित>प्रा० कीलिअ) क्रीड़ा, रमण; (ण० ७, १०, ४)।

कीव—पुं० (सं० क्लीव>प्रा० कीव) नपुंसक; (जंबू० ४, १५, १५)।

कीस—वि० (सं० (कीदृश) किस तरह का, कैसा; (क० १०, १, ३)। — ।

(कीला) कैसा; (प० च० २८, १२, ३)।

कुंकुम—न० (सं० कुङ्कुम>प्रा० कुंकुम) १- केसर, २- लाल रंग की बुकनी जिसे स्त्रियाँ माथे में लगाती हैं; (जंबू० १, ६, ३; जस० १, ४, १०)। —पिंडु पुं० (सं० कुङ्कुम+पिण्ड) कुंकुमपिंड; (जस० २, १२, ७)।

कुंग—पुं० (सं० कुङ्ग) देश-विशेष; (भ०)।

कुंच—पुं० मनुष्य-जाति-विशेष; (संधि० १०, २, ६)। पुं० न० (सं० कूर्च) दाढ़ी; (जंबू०)।

कुंचइय—वि० (सं० कुञ्चित>प्रा० कुंचिय) संकुचित; (जंबू० १, ६, ६)। वि० (सं० कञ्चुकित) १- कंचुतिक, जो कंचुक युक्त हों, २- जो कवच धारण किए हों, "तहय कुसग्ग कुंचइय-सिवरवि दूण दीव दूणंवुहि पुणरवि;" तथा पुनः कुसर्ग कंचुकित अर्थात् 'भूमि पर व्याप्त दूने-दूने विस्तार वाले द्वीप और समुद्र हैं,' (व० १०, ६, ८)।

कुंचण—पुं० (सं० आकुञ्चन) सिकुड़न, संकोचन; (जस० २, १७, १३)।

कुंचल—न० (दे०) मुकुल, कलि, वौर; (दे० ना० मा० २, ३६)।

कुंचिय—वि० (सं० कुञ्चित>प्रा० कुंचिय) सकुचित; (भ०)।

कुंज—पुं० क्रौंच; (सं० रा०)।

कुंजर—पुं० (सं० कुञ्जर>प्रा० कुंजर) हाथी; (जस० १, १०१; सं० रा०; जंबू० १, १४, २)। कुंजरु १- हाथी; (व० १०, २६, ७)। २- छप्पय का भेद; (प्रा० पैं० १, १२२)।

कुंट—वि० १- (सं० कुण्टक=मोटा, स्थूल) कुब्ज, कुबड़ा; (जस० २, १७, २)। २- वि० (सं० कुण्ट>प्रा० कुंट) हस्त-रहित; (सुदं० ६, ११, ६)। कुंटिउ-वि० टूंटी स्त्री (सुदं० ६, १५, ६)।

कुंठ—वि० (सं० कुण्ठ>प्रा कुंठ) ठूंठा, कुण्ठित, "वायाकंठु वंठु दप्पुब्भडु," जो वाणी से कुंठित है, मूक है, अत्यंत अभिमानी है; (जस० ३, २४, ३)।

कुंड[1]—न० (सं० कुण्ड>प्रा० कुंड) हौज, जलद्रोणी, जलाशय-विशेष; (जस० ३, १६, ३; महा० ४–३–७)। —उरि स्त्री० (सं० कुण्डपुर) ग्राम-विशेष; (व० ६, १६, २)। —पुर पुं० (सं० कुण्ड-पुर) नगर-विशेष; (व० ६, १, १५)।

कुंड[2]—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५४, २१)।

कुंडय—पुं० (दे०) कुंडा, छोटा पात्र- (दे० ना० मा० २, ६३)।

कुंडल—पुं० १- (सं० कुण्डल>प्रा० कुंडल) कान का आभूषण; (भ०; जस० २, १६, ४)। २- प्रथम द्विकल गण (ऽ) का नाम; (प्रा० पैं० १, २१)। ३- कुण्डल, द्वीप-विशेष; (व० १०, ६, ७)। ४- राजा-विशेष-नाम; (प० च० २६, ६५)।

कुंडलिआ—स्त्री० छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, १४६)।

कुंडलियंग—पुं० (सं० कुण्डलित+

अङ्ग) गोल आकार वाले अंग; (जंबू० ६, १०, ८)।

कुंडलिय—वि० (सं० कुंडलिन्) मण्डलाकृत, कुण्डली मारे हुए, गोलाकार; (सं० रा०)।

कुंडली—स्त्री० (सं० कुण्डली) घोड़े की नाड़िका या मंडलाकार चाल; "कुण्डली कुरली कुंडली अकृति नाना गति करती भाव मग"; (वी० ४, ४८)।

कुंडवाल—पुं० मण्डल, कुंडल, कुंडली, (वर्तुल); (सं० रा०)।

कुंडिअ—पुं० (दे०) गांव का मुखिया; (दे० २, ३७)।

कुंडिअपेसण—न० (दे०) ब्राह्मण-विष्टि, ब्राह्मण का धंधा, ब्राह्मण की मजदूरी या सेवा; (दे० ना० मा० २, ४३)।

कुंडय—न० (दे०) १- कुन्डा, २- छोटा बरतन; (दे० ना० मा० २, ६३)।

कुंत—पुं० १- (सं० कुन्त > प्रा० कुंत) भाला, आयुध-विशेष, शस्त्र; (प० २, २, ३, थ० ५, १४, ५)। भाला (प्रा० पैं० २, १७१)। २- बाणयोद्धा; (प० च० ५९, ३८)। —अ पुं० चतुष्कल गण का नाम; (प्रा० पैं० १, १७६)।

कुंतल—पुं० १- (दे०) तृण-विशेष; (दे० ना० मा० २, ३६)। २- पुं० (सं० कुन्तल > प्रा० कुंतल) केश, बाल; (जस० १, १७, २६)। —भार पुं० (सं० कुन्तल + भार) केशकलाप; (जंबू० ४, १५, १०)।

कुंतली—स्त्री० (दे०) परोसने का एक उपकरण; (दे० ना० मा० २, ३८)।

कुंताउह—पुं० (सं० कुन्तायुध) कौंत नामक आयुध; (जंबू० ७, १०, १३)।

कुंती—स्त्री० (दे०) मञ्जरी, बौर; (दे० ना० मा० २, ३४)।

कुंतीपुत्त—पुं० द्विगुरु चतुष्कल गण, कर्ण; (प्रा० पैं० २. ८०)।

कुंतीपोट्टलय—वि० (दे०) चतुष्कोण, चार कोण वाला; (दे० ना० मा० २, ४३)।

कुंथु—पुं० (सं० कुन्थु > प्रा० कुंथु) १- एक जिन-देव, सत्तरहवाँ तीर्थंकर; (न०)। कुन्थुनाथ (तीर्थंकर); (प० १, १, ११)। २- कुन्थ्वादि जीव; (प० १, १, ११)। ३- हरिवंश का एक राजा; (प० च० २२, ६८)। ४- अति सूक्ष्म शरीर वाला प्राणि-विशेष; (जस० ३, २२, १४)। —पहुअगिसदय-वि कुन्थु आदि शरीरधारी जीवों पर दया करने वाले; (जस० १, २, ६)।

कुंद—पुं० (सं० कुन्द) १. कुंद पुष्प, (प्रा० पैं० १, ७७)। २- कुंद नामक वृक्ष; (जंबू० ४, ११, १४)। ३- रोला छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ९२)। ४- छप्पय छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ११२)।

कुंदय—वि० (दे०) कृश, दुर्बल; (दे० ना० मा० २, ३७)।

कुंदलया—स्त्री० (सं० कुन्दलता) माधवी-लता; (प० च० २१, ४६)।

कुंदीर—न० (दे०) बिम्बी-फल, कुन्दरन का फल; (दे० ना० मा० २, ३६)।

कुंधर—पुं० (दे०) छोटी मछली; (दे० ना० मा० २, ३२)।

कुंपल—पुं० न० (सं० कुड्मल > प्रा०

कुंपल) मुकुल, कलि, कलिका; तुल० गु० कूंपळ; (प्रा० गु० ३८, ३४)।
कुंभ—पुं० (सं० कुम्भ>प्रा० कुंभ) १. घड़ा, कलश; (ण० १, १०, ५)। २- हाथी का गण्डस्थल; (व० ५, १३, १४)। ३- स्कंध का भेद; (प्रा० पैं० १, ७५)। ४- कुंभकर्ण का पुत्र; (प० च० ७१, ३६)। ५- मिथिलापुरी का राजा; जिनमल्ली के पिता; (प० च० २०, ४५)। —कण्ण पुं० (सं० कुम्भकर्ण) रावण का भाई; (प० च० ७५, ५)।
कुंभत्थल—पुं० (सं० कुम्भ+स्थल) हाथी का गण्ड-स्थल; (ण० २, १३, ७)।
कुंभयल—पुं० (सं० कुम्भस्थल) हाथी का गंडस्थल; (जंबू० ४, २०, ८)।
कुंभयलोलोक्खल विदइ—न० गंडस्थल रूपी चंचल ऊखल; (रि० ६, ११)।
कुंभविलया—स्त्री० पनिहारिन, घटवारिणी; (जंबू० १, ६, १)।
कुंभि—पुं० (सं० कुम्भिन्>प्रा० कुंभि) हस्ती, हाथी; (जंबू० ८, १५, ३)।
कुंभिल—पुं० (सं० कुम्भिल) १- चोर, २- दुर्जन; (दे० ना० मा० २, ६२)।
कुंभिल्ल—वि० (दे०) खोदने योग्य; (दे० ना० मा० २, ३६)।
कुंभी—स्त्री० (दे०) केश-रचना, केश-संयम; (दे० ना० मा० २, ३४)।
कुंभोद्भव—पुं० (सं० कुम्भ+उद्भव) घड़े से उत्पन्न पुरुष, अगस्त्य; (कौ० ४, २४)।
कु—सर्व० को, कोई; (जंबू० १०, ७, ५)।
कुइअ—वि० (सं० कुपित>प्रा० कुइय) कोप-युक्त, क्रुद्ध; (ण० ४, ८, १०)।
कुउ—पुं० (सं० कूप) कुआँ, (सि० २, ५)।
कुउआ—स्त्री० (दे०) तुंबी-पात्र, तुंबा; (दे० ना० मा० २, १२)।
कुऊल—न० (दे०) नीवी, १- वह डोरी जिससे स्त्रियाँ लहँगे की गाँठ बाँधती हैं; २- साड़ी या चादर का सिरा, पल्ला; (दे० ना० मा० २, ३८)।
कुकइ—पुं० (सं० कु+कवि>प्रा० कु+कइ) बुरा कवि; (ण० ३, ११, १२)। —त्तण पुं० (सं० कुकवित्व) खराब या कुत्सित काव्य; (जस० १, ३, ६)।
कुकम्म—पुं० (सं० कुकर्मन्) बुरा कार्य; (जस० २, २७, १५)।
कुकलत्त—न० (सं० कु+कलत्र>प्रा० कु+कलत्त) बुरी पत्नी, दुष्ट चरित्र वाली स्त्री, खोटी स्त्री; "कुकलत्तहि अण्णासत्तहि चित्तु ण केण वि घिप्पइ," किन्तु अन्य पुरुष में आसक्त हुई दुष्ट-चरित्रा के चित्त को कोई नहीं जान पाता; (जस० २, १२, २२)। कुकलत्तु; (रि० ३, १५)।
कुकवित्त—पुं० (सं० कुकवित्व) निकृष्ट काव्य; (सं० रा०)।
कुकुला—स्त्री० (दे०) नवोढ़ा, दुलहिन; (दे० ना० मा० २, ३३)।
√कुक्क—(प्रा० कोक्क) बुलाना, आह्वान करना। कुक्कत्तिहँ—[कुक्क इति शब्दानुकरणे (धातुः)] "दोहिँ मि

कुक्कुतिएँ आरडियउ," –हम दोनों ने कुक्कुड़-कू की रट लगा दी; (उत्त० ३, १४, ५)।

कुक्कुड—१- वि० (दे०) मत्त, उन्मत्त; (दे० ना० मा० २, ३७)। २- पुं० (सं० कुक्कुट>प्रा० कुक्कुड) मुर्गा; तुल० म० कुक्कुड; (म०)। —अ पुं० (सं० कुक्कुट+क) मुर्गा; (जन०) कुक्कुडिला-स्त्री० (सं० कुक्कुटिका) मुर्गी; (उत्त० ३, १३, १७)।

कुक्कुर—पुं० (सं० प्रा० कुक्कुर) कुत्ता; (प० च० ६, ४, ८०)। कुक्कुरी-स्त्री० कुकरी; (उत्त० २, ३१, ६)।

कुक्कुरुड—पुं० (दे०) निकर, समूह; (दे० ना० मा० २, १३)।

कुक्कुस—पुं० (दे०) धान्य आदि का छिलका, भूसा; (दे० ना० मा० २, ३६)।

कुक्खि—स्त्री० (सं० कुक्षि>प्रा० कुच्छि, कुक्खि) उदर, पेट; (म०; व० ३, १६, ३)।

कुगइ—स्त्री० (सं० कु+गति) १- दुर्गति; (जबू० ११, ७, ७) २- बुरी चाल; (प्रा० पैं० १, ६)। —पह पुं० (सं० कुगतिपथ) दुर्गति वाला रास्ता; (जंबू० २, १६, २)।

कुगुरु—पुं० (सं० कु+गुरु) बुरा या दुष्ट चरित्र वाला गुरु; (उत्त० ३, ३१, १२)।

कुच्छि—स्त्री० (सं० कुक्षि>प्रा० कुच्छि) उदर, पेट; (व० १०, २५, २५)। —मई स्त्री० (सं० कुक्षिमती) गर्भिणी; (दे० ना० मा० २, ४१)।

कुच्छिय—वि० (सं० कुत्सित>प्रा० कुच्छिय) १- खराब, निंदित; (प० ४, ३, ७)। २- खोटी। —मइ वि० खोटी बुद्धि वाला; (महा० ६८, ६)।

कुच्छेअय—पुं० (सं० कौक्षेयक) तलवार, खाँडा, खड्ग; (दे० ना० मा० १, १६१)।

कुजम्म—पुं० (सं० कुजन्मन्) कुत्सित जन्म; "अच्छमि जाम कुजम्मि पवण्णउ;" (उत्त० ३, ७, ५)।

कुज्जउ—पुं० (सं० कुब्जक) कुब्जक नामक संस्थान; "कुज्जउ वामणु णग्गोहंगउ तिरिय णरहँ णियकम्म-वसंगउ,"– इसी प्रकार कुब्जक, वामन, न्यग्रोध (तथा स्वाति) नामक संस्थान तिर्यंचों व मनुष्यों को अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त होते हैं; (व० १०, ११, १२)।

कुज्जय—पुं० (सं० कुब्जक) वृक्ष-विशेष; (प० च० ५३, ३६)।

कुटुम्बिणि—स्त्री० (सं० कुटुम्बिनी) पत्नी; (प्रा० पैं० २, ९५)।

कुट्ट—सक० (सं० कुट्ट>प्रा० कुट्ट) कूटना, पीटना, ताडन करना। कुट्टिए-भू० का० कर्मवाच्य, कूटे गए; (व० २, १०, ८)।

कुट्ट—पुं० (सं० √कुट्ट>प्रा० कुट्ट =कूटना, पीटना, ताड़न करना) प्रहार; (सं० रा०)।

कुट्टण—न० (सं० कुट्टन>प्रा० कुट्टण) १- छेदन, भेदन, २- कूटना, ताड़न; (जन० २, १३, १४)।

कुट्टणि—स्त्री० (सं० कुट्टिनी>प्रा० कुट्टिणी) कुटनी, दूती; (जंबू० ५, ७,

२४)। कुट्टिणी-स्त्री० कुट्टिनी; (जंबू० ४, १६, २०)।

कुट्टा—स्त्री० (दे०) गौरी, पार्वती; (दे० ना० मा० २, ३५)।

कुट्टाय—पुं० (दे०) चर्मकार, मोची; (दे० ना० मा० २, ३७)।

कुट्टिम—पुं० (सं० प्रा० कुट्टिम, प्रा० कोट्टिम) पक्का फर्श; (कौ० २, ८०)। वि० (सं० कृत्रिम) बनावटी; (व० ६, २, ३)।

कुट्टोअरअ—पुं० (सं० कूटोदार) शयनागार; (जस० २, ८, ८)।

कुट्ठ—न० (सं० काष्ठ) लकड़ी; (ण० ५, ८, १२)। २- पुं० न० (सं० कुष्ठ) रोग-विशेष, कोढ; (जस० २, ११, ११)। पुं० (सं० कोष्ठ>प्रा० कुट्ठ) कोठा, धान्य भरने का बड़ा भाजन; (जंबू० ७, ६, ७)। —गइरव पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, ६)।

कुडंग—पुं० न० (सं० कुटङ्क) १- झाड़ी; (संधि० ५, ६, ५)। २- लता-गृह, लता से आच्छादित घर; (दे० ना० मा० २, ३७)। —ा स्त्री० (सं० कुटङ्का) लता-विशेष; (प० च० ५३, ७६)।

कुडंब—वि० (सं० कुटुम्बिन्>प्रा० कुडुंबि) कुटुम्बी; (जंबू० ४, ६, १)।

कुड—पुं० (सं० कुट) घड़ा, कलश; (दे० ना० मा० २, ३५)।

कुडय—पुं० न० (सं० कुटज>प्रा० कुडय) कुटज वृक्ष; (जंबू० ५, ८, ११)।

कुडि—पुं० (सं० कुटि=देह, शरीर) शरीर; "कुडि दाझंती गंवि न आवइ," (प्रा० गु० ५, १५)। स्त्री० (सं० कुटी) कुटिया; (जंबू० ६, १०, २)।

कुडिआ—स्त्री० (दे०) बाड़ का विवर; (दे० ना० मा० २, २४)।

कुडिच्छ—न० (दे०) १- बाड़ का छिद्र, २- कुटी; ३- वि० त्रुटित, छिन्न; (दे० ना० मा० २, ६४)।

कुडिल—वि० (सं० कुटिल>प्रा० कुडिल) १- वक्र, टेढ़; (ण० १, ११, ३)। २- कपटी, जालसाज; (सं० रा०)। —त्तण, पुं०, कुटिलत्व (ण० १, १७, ५)। —भाअ पुं० (सं० कुटिल भाव) कपटयुक्त भाव; (जबू० ११, ७, ६)।

कुडिला—स्त्री० (सं० कुटिला) विद्या-विशेष (प० च०)।

कुडिल्ल—१- स्त्री० (सं० कुटी>प्रा० कुडी+इल्ल (स्वार्थे)] कुटिया; "विच्छिण्णघणचम्मछाइयकुडिल्लम्मि," वहाँ की कुटियाँ काटे हुए सघन चमड़ों से छायी गयी थीं; (जस० ३, १३, १३)। २- वि० (सं० कुटिल) वक्र टेढ़ा; (भ०)।

कुडिहर—पुं० कुटीगृह>प्रा० कुडीहर) झोंपड़ा, पर्णशाला, कुटी; (जस० ३, २७, २०)।

कुडी[1]—वि० (सं० कुटिल) कपटी; (संधि० १६, ६, १०)।

कुडी[2]—स्त्री० (सं० कपर्दि) कौड़ी; (रा० २२)।

कुडीर—न० (सं० प्रा० कुडीर) कुटीर, कुटी, झोंपड़ा, (प० च० ३३, ८५)।

—उ न० कुडी (प्रा० गु० ३९, २२)।

कुडीरय—न० (सं० कुटीर+क प्रा० कुडीर+अ) तृणगृह, कुटीर; (प० च० २२, ६, ४)।

कुडुंग—पुं० (दे०) लतागृह, लताओं से ढका हुआ घर; (पड)। —ण पुं० (दे०) लतागृह; (जस० १, २१, ६)।

कुडुंबी—वि० (सं० कुटम्बिन्>प्रा० कुडुंबि) कुनबे वाला, गृहस्थ; (जंबू० १, ८, ७)।

कुडुंबु—न० (सं० कुटुम्ब>प्रा० कुडुंब) परिजन, परिवार; (सुअंव० १, २, २; ण० ६, ६, ३)।

कुडुल्ली—स्त्री० (सं० कुटी) कुटिया; (हे० ४२२, १२)।

कुडुव—पुं० न० (सं० कुतुप>प्रा० कुतुव) तेल आदि भरने का चमड़े का पात्र; (सि० १, ६)।

कुड्डं—पुं० (सं० कुड्य>प्रा० कुड्ड) भींत; "क वि लज्जएँ कुड्डंतरिय थक्के," (सुदं० ३, १२, २)। कुड्ड न० भित्ति; (जंबू० १, १६ ४)।

कुड्ड, कोड्ड—न० (दे०) आश्चर्य; (दे० ना० मा० २, ३३)।

कुट—पुं० न० (दे०) १. चुरायी हुई वस्तु की खोज में जाना; (दे० ना० मा० २, ६२)। २. छीनी हुई चीज को वापिस लेने वाला; (दे० ना० मा० २, ६२)।

कुढार—पुं० (सं० कुठार>प्रा० कुडार) कुल्हाड़ी, परसा; (जंबू० ९, १५, १४)।

कुडे—क्रि० वि० पीछे, नीचे; "कुडे लग्गउ जं रयणियर-वलु," (प० च० १२, ३, ७)।

कुण—क्रि० (सं० क्वणति>कुणइ) शब्द करना; (सं० रा०)। २. (सं० कृ०, प्रा० कुण) करना।

कुणइ—क्रि० (सं० करोति; भ०; ण० ६, ४, १; ९, ३, १५)। कुणंत—कृ० (सं० कुर्वत्) (जस०)।

√कुण—करना —इ (सं० कृणोति, पंचमगण का 'कृ' धातु'। टि—वेदों में कृणोति, कृणुते अवेस्ता में कृअर्‌अनओ-इति (प्राचीन फा० 'अकुनवं') रूप पाया जाता है; (प्रा० पैं० १, ३)। कुणंतउ कृ० (सं० कुर्वत्) करता हुआ, (क० १, ९, ८)। कुणहु क्रि० आ० (प्रा० पैं० १, ९४)। कुणहु आ० (प्रा० पैं० १, ९४)। कुणिवि —पू० का० क्रि० (जंबू० १०, १७, १२)। कुणेहि—क्रि०, आ० मध्यम पुरुष एक व० (प्रा० पैं० १, ९३)।

कुणिआ—स्त्री० (दे०) वाड़ का छिद्र; (दे० ना० मा० २, २४)।

कुणिम—पुं० हरिवंशीय राजा; (प० च० २१, ३०)।

कुतक्क—पुं० (सं० कुतर्क) गलत तर्क; (जस० ४, १४, १६)।

कुतत्ती—स्त्री० (दे०) मनोरथ, वाञ्छा; (दे० ना० मा० २, ३६)।

कुतपस्वी—पुं० (सं० कु+तपस्विन्) खराब तपस्वी; (ण० ४, ३, १)।

कुताई—न० (सं० कुन्त>प्रा० कुंत

पुं०) भाला, हथियार-विशेष; (क०)।

कुतित्थ—पुं० (सं० कु+तीर्थ) कुत्सित स्थान; 'पंगुलउ कुतीर्थपंथगमणि मूअउ विकहावण्णणइ"—कुतीर्थ-पंथ में गमन करने में लँगड़ा एवं अधार्मिक कथा-वर्णन में मूक रहता हूँ; (जस० ३, २०, १४)।

कुतुव—पुं० न० (सं० कुतुप) तेल आदि भरने का चमड़े का पात्र; (दे० ना० मा० ५, २२)।

कुत्थर—न० (दे०) विज्ञान; (दे० ना० मा० २, १३)।

कुत्थिय—वि० (सं० कुत्सित) १. नीच, दुष्ट, अधम; २. निंदित, खराब; (जस० १, २८, ७)।

कुत्थुहवत्थ—न० (दे०) नीवी, इजार-बंद; (दे० ना० मा० २, ३८)।

कुदिट्ठि—स्त्री० (सं० कु०+दृष्टि) बुरी दृष्टि; (णा० ४, ३, ३)।

कुदेव—पुं० (सं० कुदेव) १. बुरा देवता, २. राक्षस, ३. जैनियों के अनुसार ऐसे देवता जो उनसे भिन्न धर्म के हों; (जस० १, ६, १२)।

कुद्दाल—पुं० (सं० प्रा० कुद्दाल) कुदाल, भूमि खोदने का लोहे का बना एक औजार; (म० २, १६, २)।

कुद्ध—वि० (सं० क्रुद्ध>प्रा० कुद्ध) कुपित, क्रोध-युक्त; (जंबू० ५, ८, १४)।

कुद्धउ—वि० (सं० क्रुद्ध) क्रोधित; (महा० ६६, ८, ३)।

कुद्धमण—पुं० (सं० क्रुद्धमनस्) क्रोधित मन; (जंबू० ६, ७, ८)।

कुन्द—पुं० (सं० कुन्द>प्रा० कुंद) पुष्प-विशेष; (की० १, ७५)।

कुपत्त—वि० (सं० कुपात्र) १. किसी विषय का अनधिकारी, अयोग्य; २. वह जिसे दान देना शास्त्रों में निषिद्ध हो; (जस० ४, २०, ११)।

कुपह—पुं० (सं० कुपथ>प्रा० कुपह) बुरा मार्ग; (म०)।

कुपुरिसु—पुं० (सं० कु+पुरुष) बुरा व्यक्ति; (व० ०, १, १०)।

√कुप्प—(सं०√कुप्>प्रा० कुप्प, कुप्पइ) क्रोध करना, कोप करना। —इ, क्रि० (सं० कुप्यति>प्रा० कुप्पइ) (भ०; ण० ५, ६, ६) कुप्पिअ—व० नाराज होना; (प्रा० पै० २, १३०)।

कुप्प—सक०.(सं०√भाष् का धात्वादेश) बोलना, कहना। —इ; (भ०)।

कुप्पर—१. पुं० (सं० कूर्पर>प्रा० कुप्पर) कोहनी, हाथ का मध्य भाग, 'अण्णोण्णुप्पेल्लिय कुप्परेहिँ" (सुदं० ६, १०, ७)। २. न० (दे०) सुरत के समय किया जाने वाला हृदय-ताड़न विशेष; ३. सदाचार, ४. हँसी, ठट्ठा; (दे० ना० मा० २, ६४)।

कुप्पास—पुं० (सं० कूर्पासक) चोली, कञ्चुक; (सं० रा०)।

कुप्पिस—देखो कुप्पास; (दे० ना० मा० २, ४०)।

कुबेर—पुं० (सं० प्रा० कुबेर) १. काञ्चनपुर के एक राजा का नाम; (प० च० ७, ४५)। —कंत पुं० कम्यर्णपुर (प्रा० कम्मणपुर) का राजा; (प० च० ६८, ५८)। —दत्त पुं० इक्ष्वाकुवं-

शीय राजा; (प० च० २२, ६८)।

कुबेरी—स्त्री० दाशरथी भरत की प्रणयिनी; (प० च० ८०, ५१)।

कुभोयधरा—स्त्री० (सं० कु+भोग+धरा) कुभोगभूमि (जिस भूमि पर सयम से भोगोपभोग न हुआ हो); (जस० ४, २०, १२)।

कुमति—पुं० (सं० कु+मंत्रिन्) बुरा मंत्री; (ण० ३, ६, ६)।

कुमइ—स्त्री० (सं० कु+मति) खराब बुद्धि; (जंबू० ५, १३, २३)।

कुमग्ग—पुं० (सं० कुमार्ग>प्रा० कुमग्ग) बुरा रास्ता; (महा० ६६, ३, ११; जस० १, २७, ४)।

कुमणु—वि० (सं० कु+मनस्) बुरे विचारों से युक्त मन; (जस० २, १८, १६)।

कुमन्त—पुं० (सं० कुमन्त्रणा) बुरा विचार; (की० ४, १४४)।

कुमयेमग्गो—पुं० (सं० कुमतिमार्ग> प्रा० कु+मइ+मग्ग) खराब बुद्धि उत्पन्न करने वाला मार्ग; (व० २, १६, १)।

कुमर—पुं० (सं० प्रा० कुमार) कुंवर, युवराज; (संधि० १, ८, ५)। —त्तण पुं० (सं० कुमारत्व) कुंआरापन; (क० ६, ८, ६)।

कुमरी—स्त्री० (सं० कुमारी) अविवाहित कन्या; (जस० १, १८, ३१)।

कुमाणुसत्त—पुं० (सं० कु+मनुष्यत्व) बुरा मनुष्य; (जंबू० ११, ७, ७)।

कुमार—पुं० (सं० प्रा० कुमार) १. स्वामिकार्तिकेय; (प्रा० पैं० २, ११०)। २. युवराज, युवावस्था या उससे पहले की अवस्था वाला पुत्र; (जस०)। —भाव पुं० (सं० कुमार+भाव) कुमारावस्था; (जंबू० ४, १४, १३)।

कुमारिया—स्त्री० (सं० कुमारिका) कुमारी; (जंबू० ४, १२, ७)।

कुमारिलभट्ट—पुं० (सं० कुमारिलभट्ट) नाम-विशेष; प्रसिद्ध मीमांसक और शबर भाष्य तथा अन्य श्रौत सूत्रों के टीकाकार; (जस० ३, २६, ११)।

कुमारी—स्त्री० (सं० प्रा० कुमारी) अविवाहित कन्या; (जस० १, १८, ११)। स्त्री० गौरी, पार्वती; (दे० ना० मा० २, ३५)।

कुमास—पुं० (सं० कुल्माष) १. कांजी, एक प्रकार का अनाज, २. कुलथी, ३. उर्द, माप, ४. वोरो धान, ५. वह अन्न जिनमें दो भाग या दल हों, जैसे—चना, उर्द, मटर आदि; (प्रा० गु० ६, २६, ३०)।

कुमुअ—पुं० १. (सं० कुमुद>प्रा० कुमुअ) कुमुदिनी, चंद्र-विकासी कमल; (प्रा० पैं० २, २०५)। २. वानरयोद्धा-प्रमुख; (प० च० ६२, ३०)। कुमुय; (प० सि० च० ३–२)।

कुमुइणि—स्त्री० (सं० कुमुदिनी>प्रा० कुमुइणी) सफेद कमल का पौधा; (ण० ८, १, १०)।

कुमुय—न० (सं० कुमुद>प्रा० कुमुअ) लाल कमल; (प० च० ४३, २)।

कुमुयायर—पुं० (सं० कुमुदाकर) सरो-

वर जो कमलों से भरा हो; (ण० ६, २, १०)।

कुमुयावत्त—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, ३)।

कुमुली—स्त्री० (दे०) चुल्हा; (दे० ना०-मा० २, ३६)।

कुम्म—पुं० (सं० कूर्म>प्रा० कुम्म) कच्छप, कछुआ; (प्रा० पैं० २, ५६; जस० १, १०, ७)। कुम्मु—पुं० कूर्म जिसकी पीठ पर पृथ्वी स्थित है, (क०)। कुम्मायार पुं० (सं० कूर्म+आकार) कूर्म का आकार; (जंबू० ४, १३, १७)।

कुम्मण—वि० (दे०) म्लान, शुष्क; (दे० ना० मा० २, ४०)।

कुम्मी—स्त्री० (सं० कूर्मी) १. स्त्री-कछुआ, कच्छपी, २. नारद की माता का नाम; (प० च० ११, ५२)।

कुम्मागारु—पुं० कच्छप, कछुआ; (प० च० १३, ६, १०)।

कूम्मासणट्ठ—वि० (सं० कूर्मासन+स्थ) योग के एक विशेष आसन में स्थित। इस आसन में दोनों पैरों को तले ऊपर रखकर एँड़ियों से गुदा को दबाकर घुटनों के बल खड़ा होना पड़ता है; (जंबू० ५, १४, २१)।

कुम्मी—स्त्री० ब्राह्मणी-विशेष- नाम; (प० च० ११, ५०)।

कुरंग—पुं० (सं० कुरङ्ग>प्रा० कुरंग) मृग, हरिण; (जस० ३, १, १४)। —सिसु पुं० (सं० कुरङ्ग+शिशु) हिरण का बच्चा; (जंबू० ५, १०, १५)।

कुरंगि—स्त्री० (सं० कुरङ्गी>प्रा० कुरंगी) हिरनी; (सं० रा०)।

कुरणंकुर—पुं० (सं० किरणांकुर) प्रकाश की वह सूक्ष्म रेखा जो प्रज्वलित पदार्थ से निकलती है; (व० ७, १५, ५)।

कुरवय—पुं० (सं० कुरवक) कुरवक नामक फूल और उसका वृक्ष, लाल कट-सरैया; (प० च० ६२, ७)।

कुरर—पुं० (सं० प्रा० कुरर) पक्षी-विशेष, कुरल-पक्षी; (वी० १, २; जस० १, १०, ५)।

कुररी—स्त्री० (सं० प्रा० कुररी) गाथा का भेद; (प्रा० पैं० १, ६१)। स्त्री० (दे०) पशु, जानवर; (दे० ना० मा० २, ४०)।

कुरली—स्त्री० (सं० कुरली) कुरल-पक्षी; (प० च० १७, ७६)।

कुरवअ—पुं० (सं० कुरवक) १. कुरुवक वृक्ष-विशेष। २. वि० (सं० कु+रत) कुरत, बुरी बातों में रुचि लेने वाला; (जंबू० ४, १७, २)। कुरवय-पुं० कट सरैया; (दे० ना० मा० ५, ६)।

कुरु—पुं० (सं० कुरु) आर्य देश-विशेष, जो उत्तर भारत में है; (भ०(।—वइ पुं० (सं० कुरुपति) कुरु देश का राजा; (भ०)।

कुरुआ—पुं० (सं० कुरुवक>प्रा० कुरुवअ) कटसरैया, अडूसे की तरह का एक काँटेदार पौधा, जिसमें पीले, लाल-नीले और सफेद कई रंग के फूल लगते हैं। उसके दानों से बहुत ही घटिया तरह

का तेल निकाला जाता है; (की० ३, १०१)।

कुरुकुरिअ—न० (दे०) औत्सुक्य; (दे० ना० मा० २, ४२)।

कुरुचिल्ल—पुं० (दे०) १. कुलीर; जलजंतु-विशेष; २. न० ग्रहण, प्राप्त करना; (दे० ना० मा० २, ४१)।

कुरुड—वि० (सं० क्रूर) १. निर्दय, निष्ठुर; तुल० गु० करडुं (कठोर); (प० च० २५, १८, ७; दे० ना० मा० २, ६३)। २. (दे०) निपुण, चतुर; (दे० ना० मा० २, ६३)।

√कुरुड—व०, (सं० कृत्) काटना। –हिं व०, प्र०पु०, व० "कुरुडहिं सपयासं"–प्रयासपूर्वक काटर हे हैं, (सुदं० ६, १६, ६)।

कुरुदुम—पुं० (सं० कुरुद्रुम>प्रा० कुरु+दुम) कुरुवृक्ष; "चउ गुणिय पणरह विहंग सरि पवहंति कुरु-दुमइं दहवीस गयदंत दिप्पंति,"– १५ की चार गुनी अर्थात् ६० विभंग नदियाँ प्रवाहमान रहती हैं। कुरुवृक्ष १० तथा देदीप्यमान २० गजदंत हैं; (व० १०, १६, ६)।

कुरुम—पुं० (सं० कूर्म) कच्छप या कछुआ नामक जंतु; (की० ३, ३६)।

कुरुल—पुं० (सं० कुरुल=बालों का गुच्छा) कुटिल केश, वक्र बाल; (दे० ना० मा० २, ६३; जस० ४, २, १२)। (सं० प्रा० कुरर) कुरल-पक्षी; (स्त्री० कुररी); (प० च० १४, १८)। पुं० (दे०) पर्वत; (जंबू० ५, १०, ११)। —भंग पुं० (सं० कुरुल+भङ्ग) केश-भंगिमा; (जंबू० ४, १५, ८)।

कुरुव—पुं० (सं० प्रा० कुरु) इस नाम का एक वंश; (भ०)।

कुरुवक—पुं० (तुर्की कूरवेग) शस्त्रास्त्र और शाही झंडों का अधिकारी; (की० ३, ४१)।

कुरुविंदा—स्त्री० (सं० कुरुविन्दा) इस नाम की एक व्यापारी (वणिज्) भार्या; (प० च० ५५, ३८)।

कुलंकर—पुं० (सं० कुलङ्कर) इस नाम का एक राजा; (प० च० ८२, २९)।

कुल—पुं० न० (सं० प्रा० कुल) १. वंश; (प्रा० पैं० १, १८२)। २. कूल, किनारा (हि का० च० ३८)। ३. पूर्वजः (की० १, १५४)। ४. कौल, "मोक्खं वजोमां कुलमग्गलग्गा" —कुल (कौल) मार्ग में लगे रह कर मोक्ष प्राप्त करते हैं; (प्रा० पैं० ११५)। —उत्तिया स्त्री० (सं० कुलपुत्रिका) कुलपुत्री; (जस० ४, ३, ३)। —उत्ती स्त्री० (सं० कुलपुत्री) कुलपुत्री, कुलीन कन्या; (जस० २, ७, १०)। —कम पुं० (सं० कुलपरंपरा; (जंबू० ५, ३, १५)। —क्कम पुं० (सं० कुलक्रम) कुल-परंपरा (व० १, १५, ६)। —गुरु पुं० (सं० कुलगुरु) वंश या खानदान का गुरु; (जस० २, १५, ११)। —दिनमणि—पुं० कुल को सूर्य की तरह प्रकाशित करने वाला व्यक्ति; (व० २, ७, ३) —दीव पुं० (सं० कुलदीपक) वंश को दीप की तरह प्रकाशित करने वाला व्यक्ति; (व० ४, ६, ३)। —देवय पुं० (सं० कुलदेवता) वह देवता जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती

आयी हो; (जस० १, ६, २)। —देवी स्त्री० (सं० कुलदेवी) वह देवी जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आयी हो; (जस० २, १४, २) —धम्म पुं० (सं० कुलधर्म) पूर्व पुरुषों द्वारा पालित धर्म, वंश-परंपरा से आने वाला कर्त्तव्य-कर्म; (जस० ३, ३२, ३)। —मग्ग पुं० (सं० कुल-मार्ग) कौल-मार्ग, कुल-क्रम से आगत मार्ग; (जस० १, ६, २) —पर पुं० (सं० कुल+परम) श्रेष्ठ कुल; (जंबू० ४, १, १२)। —पहु पुं० (सं० कुलप्रभु) कुल देवता; (जंबू० ६, १०, १४)। —वालिया स्त्री० (सं० कुलवालिका) कुल की लड़की; (जंबू० २, ६, १४)। —भूसण पुं० न० (सं० कुल+भूषण>प्रा० कुल+भूसण) कुल के शृंगार; (जंबू०)। —मंगल न० (सं० कुल+मङ्गल>प्रा० कुलमंगल) कुल का कल्याण; (जंबू० ४, ७, ११)। —मग्ग पुं० (सं० कुलमार्ग>प्रा० कुलमग्ग) कुलमार्ग, पतिव्रत धर्म, "विणु नाहें किह कुलमग्गें ठिया," अर्थात् पति के विना क्या वह कुलमार्ग (पतिव्रत धर्म) में स्थित रही; (जंबू० २, १७, ७)। —मग्गचारि वि० (सं० कुलमार्ग-चारिन्) कुल के मार्ग पर चलने वाला, (जस० १, ६, २५)। —यर पुं० (सं० कुलकर) कुल का आदि पुरुष; (जस० २, २५, १४)। —यार पुं० (सं० कुल+आचार>प्रा० कुलायार) कुलाचार, वंश-परम्परा से चला आता रिवाज; (जंबू० २, १६, ३)। —सारु वि० (सं० कुलसारः) श्रेष्ठ; (प्रा० पैं० १, १०१)। —हर न० (सं० कुल+गृह>प्रा० कुलघर, कुलहर) पिता का घर; (ण० ३, ५, ६)।

√कुलकुल— (सं० कुरकुराय>प्रा० कुरुकुरु) कुलकुलाना, कुर-कुर की आवाज करना; (जंबू० ५, १०, १६)। —इ; (भ०)। कुलकुलंति व०, प्रथम पुरुष, ब०, (सुदं० ११, १५, १०)।

कुलख—पुं० (सं० कुलक्ष>प्रा० कुलक्ख) मनुष्य-जाति-विशेष; (संधि० १०, २, ५)।

कुलछल—पुं० (सं० कुल+छल) कुल-चातुरी; (जंबू० ७, ५, १५)।

कुल-भूसण—पुं० मुनि, सिद्धत्थनगर का राजकुमार; (प० च० ३६-८७, ११२)।

कुलमंती—स्त्री० (सं० कुलवन्ती) कुलीन पतिव्रता; (प्रा० पैं० १, ६३)।

कुलमइलण—वि० (सं० कुल+मलिन) कुल को मलिन करने वाला; (जंबू० ४, ३, ४)।

कुलवद्धण—पुं० कुलवर्द्धन; मधु राजा का पुत्र; (प० च० १०५, १०६)।

कुलवयमालिणी—स्त्री० छंद का नाम; (सुदं० ११, १६, १८)।

कुलसंतइ—स्त्री० (दे०) चुल्हा; (दे० ना० मा० २, ३६)।

कुलाल—पुं० (सं० प्रा० कुलाल) कुंभकार, कुम्हार; (व० ५, ८३, ७)।

कुलाहल—पुं० (सं० प्रा० कोलाहल) कोलाहल, शोरगुल; (सि० १, ४०)।

कुलिंग—वि० (सं० कुलिङ्ग) बुरे लिंग का; (जस० १, ६, १२)।
कुलिर—पुं० (सं० कुलिर) कर्कराशि; (प० च० १७, १०८)।
कुलिस—पुं० न० (सं० कुलिश>प्रा० कुलिस) वज्र, इंद्र का मुख्य आयुध; (ण० २, ७, ५)। —उदर पुं० राक्षस-योद्धा; (प० च० ५६, ३१)। —धार पुं० कुलिशधर नामक विप्र, (प० च० ८८, ७)। —मज्झ न० (सं० कुलिश-मध्य) एक प्रकार की तपश्चर्या; (प० च० २२, २४)।
कुलीण—वि० (सं० कुलीन>प्रा० कुलीण) प्रतिष्ठित, उत्तम कुल में उत्पन्न। अकुलीण-वि० अप्रतिष्ठित; (रि० ७, ५)।
कुलीर—पुं० (सं० कुलीर) जंतु-विशेष; (जस० ३, ४, ८; दे० ना० मा० २, ४१)।
कुलुत्तिय—स्त्री० कुल स्त्री; (भ०)।
कुल्ल—पुं० (दे०) १. ग्रीवा; २. वि० असमर्थ, ३. छिन्न-पुच्छ, जिसका पूँछ कट गया हो वह; (दे० ना० मा० २, ६१)।
कुल्ल—अक० (सं० कूर्द्) कूदना।
कुल्लंत—व० कृ० (प० च० ५३, ७९)।
कुल्लड—न० (दे०) कुल्लड़, मिट्टी का बना छोटा पात्र; (दे० ना० मा० २, ६३)।
कुल्लतल्ल—पुं० (सं० कुल्या+तल) छोटी नदी या नाले का तल; (जंबू० ४, २१, ७)।
कुल्लरिअ—पुं० (दे०) कांदविक, हलवाई; (दे० ना० मा० २, ४१)।
कुल्ह—पुं० (दे०) शृगाल, सियार; (दे० ना० मा० २, ३४)।
कुवइ—क्रि० (सं० कुप्यति,√कुप्) क्रोध करती है; (सं० रा०)।
कुवत्तय—पुं० (सं० कु+पात्र+क) कुपात्र, अयोग्य व्यक्ति; (ण० ४, ३, १)।
कुवरि—स्त्री० (सं० प्रा० कुमारी) अविवाहित कन्या; (सि० १, ६)।
कुवलअच्छि—वि० स्त्री० (सं० कुवलय+अक्षि) नीलकमल के समान नेत्र वाली; (जंबू० ४, १२, ६)।
कुवलचन्दु—पुं० (सं० कुवलयचन्द्र) चंद्र विकासी कमल; (सि० २, १४)।
कुवलय—न० (सं० प्रा० कुवलय) नीला कमल, २. पृथ्वीमण्डल, (ण० १, १०, ७)। —चंद पुं० (सं० कु+वलय+चन्द्र) पृथ्वीमंडल के चंद्र; (जस० ३, ४, १२)।
कुवाइ—वि० (सं० कुवादिन्) दूसरे दर्शनों के प्रवर्तक, कुवादी; "अणिहणहि अणाइहि समिय-कुवाइहि पणविवि अरहंतावलिहिं," (जस० १, २, १४)।
कुवार—क्रि० पुकार मचाना। —रेवि "तो पहाए कुवारेवि डंभण गंजाविओ" फिर प्रभात होने पर पुकार मचाकर दंभ से तेरा अपमान कराया, (सुदं० ११, ६, ५)। —पुं० (दे०) पुकार (सुदं० ८, ३५, १)।
कुंवि—सर्व० (सं० कोऽपि) कोई भी; (जंबू० ६, ५, ७, सं० रा०)।

कुविअ—वि० (सं० कुपित>प्रा० कुविय) क्रुद्ध; (जंबू० ७, ७, . १०)। कुविय; (भ०)।

कुव्विवेय—पुं० (सं० कु+विवेक) दुष्टतापूर्ण विवेक या ज्ञान; (जस० ३, १२, ९)।

कुवेर—पुं० (सं० प्रा० कुवेर) धनाधिप, एक देवता जो इंद्र की नौ निधियों के भंडारी और महादेव जी के मित्र माने जाते हैं, (व० ७, १०, ६)।

कुसंग—पुं० (सं० कु+सङ्ग) बुरे लोगों का साथ; (जस० ३, १२, ९)।

कुस—पुं० न० (सं० कुश>प्रा० कुस) १. तृण-विशेष, काँस की तरह की एक पवित्र घास; "कुसुम-पत्त-कुस-पत्ती धारणु;" (व० २, १९, ६)। २. (सं० कुशा) लगाम, रस्सी; (ण० ३, १४, ४)। पुं० सीता का पुत्र; (प० च० १००, २)। —ग्ग पुं० (सं० कुशाग्र> प्रा० कुसग्ग) दर्भ या कुश का अग्र भाग जो अत्यंत तीक्ष्ण होता है; (व० १० ९, ८)। —द्धय पुं० (सं० कुशध्वज) कुशध्वज नामक ब्राह्मण; (प० च० १०३, १०५)।

कुसण—न० (दे०) आर्द्र करना; (दे० ना० मा० २, ३५)।

कुसमुग्गमु—पुं० (सं० कुसुमोद्गम> प्रा० कुसुम+उग्गम) कुसुम की उत्पत्ति; (व० १, ५, ५)।

कुसरीर—वि० (सं० कुशरीर) बुरे शरीर वाला; (भ०)।

कुसल—वि० (सं० कुशल>प्रा० कुसल) निपुण, दक्ष; (भ०)।

कुसलु—पुं० (सं० कुशल) खैरियत, राजीखुशी, "कुसलत्तु कुसलु ता तेण कहिउ" —कुशल प्रश्न पूछने पर अपनी कुशल की बात कही; (जस० १, २५, ५)।

कुसलत्त—पुं० (सं० कुशलत्व) कुशलवृत्त, क्षेम, मंगल; (जस० १, २५, ५)। —त्तण पुं० (सं० कुशलत्व) कुसलता।

कुसामि—पुं० (सं० कु+स्वामी) पृथ्वीपति; (जंबू० ७, ६, २५)।

कुसासण—पुं० (सं० कु+शासन) १. बुरा शासन। २. (सं० कुश+अशन) घास खाना या चरना; (ण० ७, १, ६)।

कुसी—स्त्री० (सं० कुशी=हल की फाल) लोहे का बना हुआ एक हथियार; (दे० ना० मा० ८, ५)।

कुसीलु—पुं० (सं० कु+शील) कुत्सित आचार; (ण० ४, ३, १)।

कुसीस—पुं० (सं० कु+शिष्य) बुरा शिष्य; (ण० ७, १, १६)।

कुसुंभ—पुं० (सं० कुसुम्भ>प्रा० कुसुंभ) रंग-विशेष, कुसुम्भ के पुष्प से बना रंग; (जंबू० ६, १४, १३)।

कुसुंमिल—पुं० (दे०) पिशुन, दुर्जन, चुगलीखोर; (दे० ना० मा० २, ४०)।

कुसुइ—पुं० (सं० कु+श्रुति) झूठे शास्त्र; (ण० ४, ३, १)।

कुसुमंबर—न० (सं० कुसुम+अम्बर> प्रा० कुसुम+अंबर) पुष्प और वस्त्र; (व० ५, ८, १)।

कुसुम—न० (सं० प्रा० कुसुम) पुष्प;

(प्रा० पैं० १, ६७; जस० १, १२, १) - कुसुमंकिअ—वि (सं० कुसुम+अङ्कित) पुष्पों से सुशोभित; (जंबू० १, १७, २)। —चए पुं० (सं कुसुमचय) कुसुम-समूह; (व० ३, २२, ११)। —दाम न० (सं० कुसुमदामन्>प्रा० कुसुमदाम) फूलों की माला; (जंबू० १, ६, ३)। —वाण पुं० (सं० कुसुमवाण) कामदेव; (जस० ३, २६, ७)। —माल पुं० १. वानर-योद्धा; (प० च० ५७, ६)। २. पुं० (सं० प्रा० कुसुममाला) पुष्पमाला; (व० २, १७, १०)। —सरु पुं० (सं० कुसुमशर) मदंन, कामदेव, "तुहुँ देउ भडारउ कुसुमसरु, तुहुँ सामि महारउ हिययहरु," —मेरे तो आप ही पूज्य देव हो, कामदेव हो और तुम्हीं मेरे हृदयहारी स्वामी हो," (जस० २, ७, ६)। —सिरि स्त्री० (सं० कुसुमश्री) पुष्प-शोभा, (व० ४, ११, १६)। —शय्या स्त्री० (सं० कुसुम-शय्या) फूलों की सेज; (की० २, २४५)। —आअरु (कुसुमाअरु) पुं० (सं० कुसुमाकरः) छप्पय छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, १२३)। —सर पुं० (सं० कुसुमशर) कामदेव; (सं० रा०) —इं न०, ब० व०, (प्रा० पैं० १, ६७) —ाउह पुं० (सं० कुसुमायुध> प्रा० कुसुमाउह) काम, कामदेव; (क० १, १३, ३)। —ालंकरिय वि० (सं० कुसुमालंकृत) पुष्पों से सुसज्जित; (व० २, १२, ६)। —ावई स्त्री० (सं० कुसुमावती) इस नाम की एक नगरी; (प० च० ५, २६)।

कुसुमाउह—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, ६)।

कुसुमाल—पुं० (सं० कुसुमाल) चोर; (प० च० २५, ३, २; जंबू० ६, १५, ७)।

कुसुमालिअ—वि० (दे०) भ्रांत-चित; (दे० ना० मा० २, ४२)।

कुसुमिअ—वि० (सं० कुसुमित) पुष्पित, खिला हुआ, (प० च० ३३, १४८)। कुसुमिय; (जस० १, ३, ७) कुसुमियउ; (परमा०)।

कुसुमो—पुं० (सं० कुसुमं) (छंदशास्त्र में) पंचकल गण के भेद का नाम (।ऽ।।); (प्रा० पैं० १, १६)।

कुसुमोह—पुं० (सं० कुसुमौघ) फूलों का समूह; (सि० २, २७)।

कुसुय—पुं० (स०कु+श्रुत) कुश्रुति, कुशास्त्र; (ण० ६, १२, ७)।

√कुह—(सं० क्रुध्) क्रोध करना; (जस०)।

√कुह—(सं० कुथ्) सड़ना। —इ (सं० कुथ्यति> प्रा० कुहइ); दुर्गंधि करना; (हे० ३६५)। तुल० गु० कोहवुं —न्ति (प० च० ३३, ७, ६)।

कुहड—वि० (दे०) कूबड़ा; (दे० ना०-मा० २, ३६)।

कुहर—न० (सं० प्रा० कुहर १- गुफा, पर्वत का अंतराल; (प्रा० पैं० १, ६३५ जस० ३, ३, २)। २. पुं० देश-विशेष; (प० च० ६८, ६७)। ३. न० गर्त, गड्ढा; (सं० रा०)।

कुहाड—पुं० (सं० कुठार) कुल्हाड, फरसा; (प० च० ६६, २४)।

कुहाडी—स्त्री० (सं० कुठारिका) छोटा

कुल्हाड़ा; (संधि० १४, ४, ८)।

कुहिअ—वि० (दे०) लिप्त, पोता हुआ; (दे० ना० मा० २, ३५)।

कुहिणि[१]—स्त्री० (दे०) मार्ग; (प० च० ३८, १०, ५; जस० ४, ८, ३)।

कुहिणी[२]—स्त्री० (दे०) १. हाथ का मध्य भाग; २. रथ्या, मार्ग; (दे० ना०-मा० २, ६२)।

कुहिय—वि० १. (सं० क्रोधित) क्रुद्ध; (जस०) २. वि० (सं० कुथित>प्रा० कुहिअ) व्याधि दूषित, दुर्गंध वाला; (जस० ३, २७, २०)।

कुहूरव—पुं० कोकिला की ध्वनि; (प्रा० पैं० २, १३४)।

कुहेड—पुं० (दे०) ओषधी-विशेष, गुरेटक; (दे० ना० मा० २, ३५)।

कुहेडय—पुं० (सं० कुहेट+क>प्रा० कुहेडअ) चमत्कार उपजाने वाला मंत्र-तंत्रादि ज्ञान; (प० च० ५४, ११, ४)।

कूअ—पुं० (सं० कूप>प्रा० कूय) कूप, कुंआ; (जंबू० १०, १७, ४)।

कूइय—न० (सं० कूजित>प्रा० कूइय) अव्यक्त आवाज; (जंबू० ४, ६, ३)।

कूकर—पुं० (सं० प्रा० कुक्कुर) श्वान, कुत्ता; (सि० १, ४४)।

कूच—पुं० (सं० कूर्च) दाढ़ी; (प्रा० गु० ४, २८)।

कूजा—स्त्री० (फ़ा० कूज:) सुराही; तुल० पं० कुज्जा (a small earthen pot); (की० २, १६२)।

कूट—पुं० न० (सं० कूट>प्रा० कूड) १. पहाड़ समूह; (की० ४, १६)। २. शिखर (ण० २, ३, ३; व० १, १३, ६)।

कूड—पुं० न० (सं० कूट>प्रा० कूड) भ्रांतिजनक वस्तु, कूड़ा, बेकार वस्तु (रा०)। २. छल, कपट, असत्य; (सि० २, २; जस० ४, १६, ४)। पुं० दास-विशेष का नाम; (प० च० ५, १०२)।

कूडउं—वि० (सं० कूटम्>प्रा० कुड) भ्रमपूर्ण; "नवि कूडउं वचन न दोह कीव," तुल० गु० कूडुं (संधि० २०, ३, ७)। कूडउ—वि० (सं० कूट+क >प्रा० कुडअ) झूठे, छल-युक्त, "कूडउ दम्मु निएवि विमत्तिएँ," –झूठे (द्रम एक प्रकार का सिक्का) को देखकर खेद करते हुए; (जंबू० ६, १३, ४)।

कूडमंतु—पुं० (सं० कूटमन्त्र) कूट मंत्र; "महिलाकिउ सयलु वि कूडमंतु," यह सारा (प्रपंच) महिला कृत कूट मंत्र है; (जंबू० ४, १७, १७)।

कूडायर—पुं० (सं० कूट+आदर> प्रा० कूड+आयर) झूठा या दिखावटी आदर; (जस० ४, १६, ३)।

कूणिअ—वि० (दे०) थोड़ा खिला हुआ; (दे० ना० मा० २, ४४)।

कूरंतरंगु—पुं० (सं० क्रूर+अन्तरंग) क्रूरता से बढ़ा हुआ अन्तरंग; "गल-गज्जिएँ वहिरंतउ दिसाउ, कूरंतरंगु वड्ढिय-कसाउ;" अर्थात् गल-गर्जना करता हुआ अपना बाह्य रूप दर्शाता हुआ तथा निर्दयता या कठोरता से बढ़े हुए कषाय वाले अंतरंग को दिखाता हुआ पंचाननसिंह उठा; (व० ३, २६, १०)।

कूर—न० (सं० प्रा० कूर) १. ओदन; (प० च० २५, ११, ७)। २. पुं० रावण का इस नाम का एक योद्धा; (प० च० ५६, २६)। अव्य० थोड़ा; अल्प; (पड्) ३. वि० (सं० क्रूर>प्रा० क्रूर) निर्दयी; (जस० १, ८, ६)। —गह पुं० (सं० क्रूर+ग्रह) अहितकारी ग्रह; (जंबू० १०, २५, १०)। —भाव पुं० (सं० क्रूरभाव) निर्दयतापूर्ण विचार; (व० २, ८, ८)। —ाणणु वि० (सं० क्रूरानन>प्रा० कूर+आणण) क्रूर मुख-वाला; (व० २, ७, ११)। —ासणु वि० (सं० क्रूर+अशन>प्रा० कूर+असण) क्रूरभक्षी; (व० ३, २६, ८)।

कूरउरि—स्त्री० (सं० कूलपुर) नगर-विशेष; (व० ६, २०, १२)।

कूल—न० (सं० प्रा० कूल) १. तट, किनारा; (जस० ३, १, ८)। २. राजा-विशेष का नाम; (व० ६, २०, १३)। ३. न० (दे०) सैन्य का पिछला भाग, (दे० ना० मा० २, ४३)। —अवहि (कूलावहि) (सं० कूल+अवधि) कूल तक, "लवणक्कूलावहि," लवणोदधि के कूल तक; (जंबू० १, १०, १४)।

कूव—पुं० (सं० कूप>प्रा० कूव) कुँआ; तुल० मगही कूँआ, गु० कूवो; (सा० ६६; सरह दोहाकोश; जस० ३, १६, ३)।

कूवडिय—पुं० (सं कूपिका) छोटा कुआं प्रा० गु० २२, १५)।

कूवतुला—स्त्री० (सं० कूप+तुला) ढेंकी, सिंचाई के लिए कूएँ से पानी निकालने का एक यंत्र; (दे० ना० मा० १, ६३)।

कूवयहं—पुं० सं० (कूपकः) कुएँ (सा० ६६)।

कूवल—न० (दे०) जघन-वस्त्र, जघन (पुट्ठा, कूल्हा, चूतड़, २. स्त्रियों के पेड़) पर पहने जाने वाला वस्त्र, "कूवलं जघनवसनम्," (दे०ना०मा० २, ४३)।

कूवार—पुं० (सं० पूत्कार) करुण पुकार; किसी अत्याचार या कष्ट निवा-रण के लिए प्रजा द्वारा सामूहिक रूप में राजा के सम्मुख करुण पुकार के साथ किया गया निवेदन; (रि० १, ६)।

कूवारें—पुं० 'णरणाहहु कय सासुद्धारें ता पयगय सयल वि कूवारें,' (पुप्फदंत, महा०)। — पुं० (सं० कू+ रव) १. सकरुण विलाप "तं कूवारु सुणवि" (भ० ८, १४, १); "एम करेवि सुइरु कूवारउ" (भ० ६, १५, १२)। २. अत्यधिक मुसीबत में सहायता के लिए की गई पुकार; (प० च० २३, ४, ११, ण० ७, ११, ७)। कूवारु—पुं० (सं०क+रवे>कोआर>कूवार) पुकार; (रि० ६, ६)। कूवार—पुं० (सं० कूपार) समुद्र, "तुमं पत्तसंसारकूवार-तीरो," —आप इस संसार सागर के तीर पर पहुँच गए हो; (जंबू० १, १८, ६)।

कूवि—स्त्री० (सं० कूप>प्रा० कूव) कुआँ; (महा० ६६, ३, ११)।

कूसार—पुं० (दे०) खड्डा, गर्त जैसा स्थान. "कूसारो गर्त्ताकारः," (दे० ना०-मा० २, ४४)।

कें—सर्व० (सं० कः) कौन; (जंबू० ७, ३, १०; रा० ३४)।

केंकाय—अक० (सं० केङ्काय्) कें-कें आवाज करना। केंकायंतं—व० कृ० "पेच्छइ तओ जहागि केंकायंतं महीप-डियं," (प० च० ४४, ५४)।

के—प०, के लिए; (की० २, १६)।

केअइ—स्त्री० (सं० केतकी>प्रा० केअइ) केतकी-पुष्प, पुष्प-विशेष; (प्रा० पैं० २, ६७)।

केआ—स्त्री० (दे०) रज्जु, रस्सी; (दे०-ना० मा० २, ४४)।

केइं—(सं० केन) किससे, किसके द्वारा; (उ० व्य० प्र० २१–३)। केइ (सं० केन); (उ० व्य० प्र० २७–४)।

केइय—वि० (सं० केका=मोर की बोली) शब्दित; (प० च० ५३, ६, ७)।

केउ—पुं० (सं० केतु>प्रा० केउ) ध्वज, पताका; (जस० १, १, ६)। राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, २६)। —मइ स्त्री० (सं० केतुमती) स्त्री-विशेष का नाम; (क० ६, १२, १); अंजना की सास; (प० च० १५, २७)।

केउर—पुं० न० (सं० केयूर>प्रा० केउर) हाथ का आभूषण-विशेष; (सि० २, ६)। २. दीर्घ अक्षर (ऽ); (प्रा० पैं० १, ३१)। केऊर; (ण० ३, १०, ६)। केऊरे; (व० ४, १, १६)।

केऊ—पुं० (दे०) कंद, कांदा, एक गुल्म जिसमें प्याज की तरह गांठ पड़ती है, गांठदार या गूदेदार जड़, "केऊ य कन्दमि," (दे० ना० मा० २, ४४)।

केकइय—पुं० (सं० प्रा० केकय) मनुष्य-जाति-विशेष (केकय देशीय); (संधि० १०, २, ६)।

केकई—स्त्री० (सं० केकयी) राजा दश-रथ की एक रानी, केकय देश के राजा की कन्या; (प० च० २२, १०८)।

केकय—पुं० (सं० केकय) केकय देश का राजा; (प० च० २२, १०८)।

केकसी—स्त्री० रावण की माता व विद्याधर राजा वोमबिंदु की पुत्री; (प० च० १, ४६)।

केकाण—पुं० अश्व-जाति-विशेष; (प्रा० गु० ५, १३)।

केक्कई—देखो केकई (प० च० ७६, २६)।

केक्कार—पुं० (सं० क्रेङ्कार) पक्षियों का शब्द-विशेष; (जस० १, २०, १२)।

केगई—देखो केकई; (प० च० १, ६४)।

केड्डुआल—पुं० (दे०) पतवार; (हि का०, च ३८)।

केढव—पुं० कैटभ, राजा-विशेष का नाम; (प० च० १०५, १३)।

केण—सर्व० (सं० केन) कौन; 'रइ-नाहह खंडिय आण केन'; (विला०)।

केणय—पुं० (सं० क्रीत>प्रा० किणिय) क्रय योग्य वस्तु; (जंबू० ५, ११, २)।

केणिय—वि० (सं० क्रीत>प्रा० किणिय) खरीदे हुए; "कयकिणियहों न सोह इह हारहों," —मूल्य से खरीदे हुए हार की यहां कोई शोभा नहीं है; (जंबू० ६, २, ३)।

केत—वि० (सं० कियत्) कितना —उ; (रा० ३४)।

केत्तडउ—वि० (सं० कियत्>केत्तिल) कितना; (सुदं० ८, २५, ५)।

केत्तडय—वि० (सं० कियत्>प्रा० केत्तिअ) कितना; (प० च० २१, १)।

केत्तहो—अव्य० (सं० कुत्रचित्) कहीं; पुरानी हिंदी कितहूं (कहीं भी); (क० ६, ८, १०)।

केत्तिल—वि० (सं० कियत्>प्रा० केत्तिअ) कितना; (पड)। केत्तिय; (ण० २, १३, ८; प० च० २१, ११, ९)।

केत्थु—अव्य० (सं० कुत्र, कुतः) कहाँ, किस जगह; (भ०)।

केदार—पुं० (सं० केदार) केदार नामक वृक्ष; "जाचक सिद्धि केदार दाने पंचम वलि जानल," –याचकों के लिए कल्पवृक्ष (सिद्धि केदार) के समान मनोवांछित फल देने वाले थे और पाँचवे दान में वलि के समान दानी थे; (की० १, ७२)।

केन—सर्वं० (सं० केन) किस; "केन पआरे निरसिअउ वड समथ्थ असलान," (की० ४, १४२)।

केम—अव्य० (सं० कथम्) कैसे, किस तरह; तुल० गु० केम; (भ०; जंबू० ,५ ४, २१)।

केय—पुं० (सं० केकिन्) मोर; (भ०)।

केयई—स्त्री० (सं० केतकी) एक प्रकार का झाड़ या पौधा, केवड़ा; (प० च० ५३, ७९)।

केयण—न० (सं० केतन) ध्वजा; (सुदं० १, ९, ४)।

केयइ—स्त्री० (सं० केतकी) एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा; (जस० १, १२, ६)।

केयरी—स्त्री० वृक्ष-विशेष; (प० च० ४२, ६)।

केयार—पुं० (सं० केदार) १. वह खेत जिसमें धान बोया जाता है, "जहिं चुमचुमंति केयारकीर," उस प्रदेश के खेतों में शुक चुन-चुनकर धान्य खाते हैं; (जस० १, २१, १)। २. क्यारी; (व० १, ३, ६)। —वाण पुं० (दे०) पलाश का वृक्ष; (दे० ना० मा० २, ४५)।

केर—प० १. संबंधकारक परसर्ग जो 'का' और 'के' विभक्तियों के स्थान में आता है; (जस०) —अ प० संबंकारक परसर्ग; (जंबू० ६, २, ३; जस०)। २. वि० (प्रा० केर, केरय) संबंधी वस्तु; (ण० १, ३, १४)। ३. पुं० (दे०) सेवा; (म० १, २२, ४)।

केरल—पुं० (सं० केरल) दक्षिण भारत का एक प्रदेश; (जंबू० ९, १९, १)। —नयरि स्त्री० केरलनगरी, केरलनयरिपएसहो," —केरलनगरी प्रदेश; (जंबू० ५, ५, १७)। —पुरी स्त्री० केरलपुरी; (जंबू० ५, ३, ६)। —बल पुं० (सं० केरल+बल) केरल सैन्य; (जंबू० ९, १९, १)। केरलि—स्त्री० केरल प्रदेश की रहने वाली; (जंबू० ४, १५, ८)।

केरा—प० का; (की० १, ६८)।

केरिस—वि० (सं० कीदृश) कैसा; (जंबू० ५, १८, ११)।

केरी—प० संबंधकारक परसर्ग; (जस० १, ६, २)।

केलास—पुं० (सं० कैलाश>प्रा० केलास) पर्वत-विशेष; (ण० ३, १५, १३; प्रा० पैं० १, ७३)।

केलि—स्त्री० (सं० केलि, ली>प्रा० केलि, ली) क्रीड़ा, खेल; (भ०)। २. स्त्री० (सं० कदली>प्रा० कयली, केली) केले का पेड़; (जंबू० ८, ७, १२)।

केलिदंड—पुं० (सं० केलिदण्ड) कदली-दण्ड, "उब्भिय चंदोवा केलिदंड;" (जस० २, २५, १७)।

केलिदत्त—पुं० (सं० कदली+पत्र) कदली पत्र; (सं० केलि+वृत्त) क्रीड़ा-वार्ता; (ण० १, १०, ४)।

केली—स्त्री० (दे०) कुलटा, व्यभिचा-रिणी स्त्री; (दे० ना० मा० २, ४४)।

केलीगिल—वि० (सं० कैलीकिल) केली-किल स्थान में उत्पन्न; (प० च० ५५, १७)। पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५४, २१)।

केलीहर—पुं० (सं० केलिगृह>प्रा० केलिघर, हर) क्रीड़ागृह, "कुरु केलि-विउले केलीहरए," विशाल क्रीड़ाघर में क्रीड़ा करो; (रि० १, १०)।

केवँ—वि० (सं० कथम्) कैसे; (हे० ३४३, १)। केव— वि० (सं० कथम्) (क० ४, १३, ७)।

केवट्ट—पुं० (सं० कैवर्त>प्रा० केव-ट्ट) धीवर, मच्छीमार; (जस० ३, ३, ११)।

केवट्टिणंदिणि—स्त्री० (सं० कैवर्तन-न्दिनी) केवट की कन्या; "हारोसरु चलि-यमणु मुयवि लज्ज केवट्टिणं दिणि" (सुदं० १०, ६, २)।

केवड—वि० (सं० कियत्>प्रा० केत्तिअ, केत्तिल) कितना (पाइअ०, पृ० २६१)।

केवल—वि० (सं० केवलिन्> प्रा० केवलि) सर्वज्ञ, केवल ज्ञान वाला "केव-लेण तित्थयरें जाणिय," —केवली तीर्थं-करों द्वारा ज्ञात है; (व० १०, १७, ६)। नं० (सं० प्रा० केवल) ज्ञान-विशेष; (ण० ६, ३, १)। वि० अकेला; (भ०)। —णाण पुं० केवल ज्ञान; (जस० १, १, १२)। —दीपक पुं० (सं० केवल+दीपक) ज्ञान-दीपक; (जंबू० ४, ३, १४)। —णाणि पुं० (सं० केवलज्ञानिन्) मुनि —णाणि वि० (सं० केवलज्ञानिन्) भ्रांतिहीन या विशुद्ध ज्ञान वाला व्यक्ति; (व० १०, ४०, ४)। —नाण न० (सं० केवल+ज्ञान > प्रा० केवल+णाण) संपूर्ण ज्ञान; (जंबू० १०, २१, ६)। —वाह वि० (सं० केवल+वाहक> प्रा० केवल+वाहय) ज्ञानवाहक; (जंबू० १, १६, २)।

केवलाअ—सक० आरम्भ करना। —इ; (षड्)।

केवलि—वि० (सं० केवलिन्) सर्वज्ञ; "आहाकम्मुद्देसहिँ चत्तउ पिंडु लेमि जिह केवलिवुत्तउ," मैं आधा कर्म और उद्देश्य से रहित शुद्ध आहार लेता हूँ जैसा केवली भगवान् ने कहा है; (जस० ३, २१, ७)।

केवि—सर्व० (सं० कोऽपि) किसी ने; (की० ३, ८०)।

केसंतरें—वि० (सं० केश+अन्तर> प्रा० केस+अंतर न०) केशों में छिपा हुआ; "चक्कहरें केसंतरें लुलिउ सुइ मूलि णिहालिउ णव-पलिउ," अर्थात् श्रुतिमूल (कान के पास) में केशों में छिपा हुआ एक नवपलित—श्वेत केश देखा; (व० ८, ७, १२)।

केस—पुं० (सं० केश>प्रा० केस) वाल; (भ०)। —पासाए-पुं० (सं० केशपाश) वालों की लट; (सणकु० ४४०)। —वंध पुं० (सं० केशवन्ध) वाल वाँवने का फीता; "सियकुसुमुब्भासियकेसवंधु," अर्थात् केशवंध श्वेतबंध श्वेत कुसुमों से उद्भासित; (जंवू ५, १२, १८)। —भरु पुं० (सं० केश+भार) केशपाश; (जंवू० १०, १६, ५)। —रालु वि० केशर-जटाओं वाला, "भू-भीसणु भासुर-केसरालु," अर्थात् भीषण भौंहों वाला, भास्वर केशर-जटाओं वाला; (व० ३, २६, ६)।—रोह पुं० (सं० केशर+ओत्र) केश-समूह; (ण० ४, १०२)।

केसर—पुं० (सं० प्रा० केसर) अयाल, घोड़े और सिंह आदि की गरदन के वाल; (की० ३, १५०)। २. पुं० केसर-तिलक, वृक्ष-विशेष; (जंवू० ४, १७, ३)। ३. पुं० पराग; (प्रा० पैं० २, १६३)। केसरु-पराग; (विला०)।

केसरिं—पुं० (सं० केसरिन्>प्रा० केसरि) केशरी सिंह; (हे० ३३५, १; भ०)।

केसरिं—पुं० १. विद्याधर योद्धा; (प० च० १२, ९८)। २. राजा-विशेष-नाम; (च० च० ३७, ११)।

केसरिविट्ठर—पुं० सिंहासन "पुणु केसरिविट्ठर पुणु विमाणु," अर्थात् फिर सिंहासन, फिर विमान; (रि० ८, ५)।

केसलडी—स्त्री० (सं० केश+लट्वा) केशों की लटें, केश-पाश, वालों का गुच्छा; (जंवू० ६, १८, ३)।

केसव—पुं०(सं० केशव) लक्ष्मण; (प०-च० ३२, २, ११)। २. नारायण; (जंवू० ४, ४, ४)। ३. कृष्ण, नारायण; (व० १०, १६, ८)।

केसि—पुं० केशी नामक दैत्य; (प्रा० पैं० २, ७१)।

केसी—१. पुं० लक्ष्मण "अन्ने जंपन्ति भडा, सत्ती वि हु रामकेसीणं," दूसरे भट राम और लक्ष्मण की शक्ति के वारे में कह रहे थे; (प० च० ७५, २०)। २. स्त्री० (सं० केशी) सातवें वासुदेव की माता; (प० च० २०, १८४)।

केसु—पुं० (सं० किंशुक) टेसू के फूल; (प्रा० पैं० १, १३५)।

केसुब्भड—वि० (सं० केश+उद्भट) भयंकर; (जस०)।

केसे—क्रि० वि० कैसे; (प्रा० पैं० १, ९७)।

केह—वि० (सं० कीदृश्) कैसा, किस तरह; (भ०)। —उ वि० कैसा, किस तरह (सुदं० २, १, १४)।

केहअ—वि० (सं० कीदृश>प्रा० केह) कैसा; (ण० ७, ११, १)।

केहउ—वि० (सं० कीदृश) कैसा; (जस० ४, २३, १६)।

केहि—अव्य० लिए, वास्ते; (दे० ना०-मा० ४, ४२५)।

केही—वि० (सं० कीदृशी) कैसी; (प्रा० गु० ३८, १३)।

कैसें—वि० (सं० कीदृशात्) कैसे, "कैसें काह करत;" (उ० व्य० प्र० ३२-१)।

कोंकण—पुं० (सं० कोङ्कण>प्रा० कोंकण) प्रदेश-विशेष; दक्षिण भारत का एक प्रदेश जिसके अंतर्गत कनारा, रत्नगिरि, कोलाव और थाना आदि हैं। टि०—प्राचीन काल में केरल, तुलव, सौराष्ट्र, कोंकण, करहाट, कर्णाट और वर्वर मिलकर सप्तकोंकण बनाते थे; (जंबू० ६, १६, ४)।

कोंकणवासिनी—स्त्री० (सं० कोङ्कणक +निवासिन्) कोंकणवासिनी स्त्री; (सुदं० ८, ६, ८)।

कोंग—पुं० कुर्ग देश; (जंबू० ६, १६, १४)।

कोंचा-ताल—पुं० (सं० कुञ्चिक= ताली,कुंजी;+सं० तालकम्=कुण्डी) ताला-ताली; मगही कुंजी-ताला; (गुण्डरीपा, चर्यागीति)।

कोंडिग्र—पुं० (दे०) ग्राम-निवासी लोगों में फूट करा कर छल से गाँव का मालिक बन बैठने वाला, "भेएण गामभोत्ता य कोंडिओ," (दे० ना० मा० २, ४८)।

कोंडिण्ण—न० (सं० कौण्डिन्य>प्रा० कोडिण्ण) वसिष्ठ गोत्र की शाखा रूप एक गोत्र; (ण० १, ३, ३)।

कोंडिल्ल—पुं० (सं० कौणिडण्य) गोत्र-विशेष; (जस० १, १, ३)।

कोंडुल्लु—पुं० (दे०) उलूक, उल्लू, पक्षी-विशेष; (दे० ना० मा० २, ४९)।

कोंत—पुं० (सं० कुन्त>प्रा० कुंत) हथियार-विशेष, भाला; (ण० ४, ७, १५)। —कोडि स्त्री० (सं० कुन्त+ कोटि) भाले की नोंक; (जंबू० ४, २१, ११)। —ग्ग पुं० (सं० कुन्ताग्र) अस्त्र-विशेष; (जंबू० ७, ६, १)। —ाउह (कोंताउह) न० (सं० कुन्त+आयुध) शास्त्र-विशेष; (जंबू० ६, ६, ९)।

कोअ—पुं० १. (सं० प्रा० कक) चक्रवाक पक्षी; (दे० ना० मा० ८, ४३)।

को—सर्व० (सं० कः) कौन; (म०; की० १, ५९)।

कोग्रंड—पुं० (सं० कोदण्ड>प्रा० कोदंड, कोअंड) धनुष, धनु; (जस० १, १६, १)।

कोइ—सर्व० (सं० कः+अपि, कोऽपि) (१) कोई; (परम० २, १८३)। (२) किसी को; (की० १, २१)।

कोइल—स्त्री० (सं० कोकिल) कोकिला, कोयल; तुल० गु० कोयल; (ण० २, ६, ७; जंबू० ५, १०, १६; सं० रा०)। २. रोला छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ९३)।

कोइला—पुं० (सं० कोकिलः=जलती हुई लकड़ी) काष्ठ के अंगार, कोयला; (दे० ना० मा० २, ४९)।

कोउ—सर्व० (सं० कोऽपि) कोई; (उ० व्य० प्र० २१-१८)। पुं० (सं० कोप) क्रोध; (व० २, १०, १५)।

कोउआ—स्त्री० (दे०) करीपाग्नि,

जंगली कंडा या वन उपला की अग्नि; (दे० ना० मा० २, ४८)।

कोऊहल— पुं० (सं० कौतूहल) १. जिज्ञासा, २. उत्सुकता, ३. आश्चर्य-जनक; (सं० रा०; जस० १, ६, ७)। —त्थ पुं० (सं० कौतूहल+अर्थ) कौतूहल औत्सुक्य, (जंबू० ९, १२, १३)। —यरु (सं० कौतूहल+कारक) कुतुहल वर्धक; (व० ४, २१, १०)।

√**कोक**—क्रि० (दे० प्रा० कोक्क) बुलाना, आह्वान करना; (रा०)। कोकाविउ—भू० का बुलाया; "कोकाविउ सों तें सुत्तधारि," (क० ४, १२, ४)।

कोक—पुं० (सं० कोक) चक्रवाक पक्षी, (दे० ना० मा० ८, ४३)।

कोकनदे—न० (सं० कोकनद>प्रा० कोकणय) कमल; (की० ३, ३४)।

√**कोक्क**—(प्रा० कोक्क) बुलाना, कूकना। —इ (भ०)। तुल० म० कोकणें। —उ, क्रि०, भू० का० बुलवाया; (ण० ३, १३, ७)। कोक्कंत—व० कृ० 'को-को' शब्द करते हुए; (जस० २, २७, ५)।

कोक्कासिय—वि० (दे०) विकसित, प्रफुल्ल; (दे० ना० मा० २, ५०)।

कोच्छर—वि० (दे०) कुत्सित; (सुदं० ४, ६, ९)।

कोञ्च—पुं० १. (सं० क्रौञ्च>प्रा० कोंच) पक्षी-विशेष; (प० च० ३, ५, ५)। २. पुं० कोंज नामक वृक्ष; (प० च० ३, १, ११)।

कोञ्चणइ—स्त्री० (सं० क्रौञ्चनदी) नदी-विशेष; (प० च० ३६, १, ९)।

कोडिह—वि० (सं० कोटि>प्रा० कोडि) करोड़ों; (का० दो० को०)।

कोट्ट—पुं० (सं० कोट) दुर्ग, किला; (जंबू० ५, ३, १३)। —ट्टाल पुं० (दे०) कच्चे फलों का समूह; (जंबू० ६, ४, १)। —वाल पुं० (सं० कोटपाल) कोतवाल; नगररक्षक; तुल० गु० कोट-वाळ; (जंबू० ५, ११, ३; प० च० ५१, १२, ७)।

कोट्टिंब—पुं० (दे०) द्रोणी, नौका, जहाज; (दे० ना० मा० २, ४७)।

कोट्टिम—वि० (सं० कृत्रिम) बनावटी; (प० च० ९६, ३९)।

कोट्टी—स्त्री० (दे०) १. दोह, दोहन, दुहना, दुग्धपात्र, दूध दूहने का पात्र; २. लड़खड़ाने की क्रिया, सत्पथ से भ्रष्ट होना; "कोट्टी दु दोहखलणासु;" (दे० ना० मा० २, ६४)।

कोट्टुंभ—पुं० न० (दे०) हाथ से फेंका हुआ जल, "कोट्टुंभं कराहतं वारि," (दे० ना० मा० २, ४७)।

कोट्ठ—पुं० (सं० कोष्ठ>प्रा० कोट्ठ, कुट्ठ) कोठा, कमरा। तुल० राज० कोठो; (ण० १, १२, १)। —य, पुं० अपवरक; (सुदं० १, ६, ५)। —ा (कोट्ठा) (सं० कोत्ठ+क) कोठा; (जंबू० १, १६, ४)।

कोट्ठार—पुं० न० (सं० कोष्ठागार) भाण्डागार; (प० च० २, २)।

कोट्ठु—पुं० (सं० क्रोष्टु) गीदड़, शृगाल; (षड्)।

कोडंव—न० (दे०) कार्य, काज; (दे० ना० मा० २, २)।

कोड—पुं० १. (सं० क्रोड) गोद, —ईं; (रा० ३५)। २. कौतुक; (जंबू० ३, ११, ८)।

कोडि—स्त्री० (सं० कोटि>प्रा० कोडि) राशि; "कणयरयणकोडिहिँ घडिउ" जो स्वर्ण और रत्नों की राशि से गढ़ा गया है; (ण० १, ६, १३)। २. किनारा, अग्रभाग; (जंबू० ६, ७, ४)। ३. पुं० दे० कुक्कुट, (जस० २, १३, ६)। करोड़, कोटि (पाहु०) ४. कौतुक, (पाहु० १७७)। —य (दे०) दुर्जन, चुगलीखोर; (सुदं० ३, १, ७)।

कोडियं—न० (दे०) छोटा मिट्टी का पात्र, लघु शराव, (दे० ना० मा० २, ४७)।

कोडिल्ल—पुं० (दे०) पिशुन, दुर्जन, चुगलीखोर; (दे० ना० मा० २, ४०)।

कोडिसिला—स्त्री० लक्ष्मण द्वारा उठायी गई शिला; (प० च० ४८, ६६)।

कोड्डु—न० (दे०, प्रा० कुड्ड) कौतुक, कुतूहल; (प० च० ३६, ११, ७)।

कोड्ड—न० (दे०) कौतुक, कुतूहल, आश्चर्य; तुल० म० कोड; (व० ५, २१, १, जंबू० ३, ११, ८, दे० ना० मा० २, १६)।

कोड्डावणय—वि० कौतुकोत्पादक; (प० च० ३६, १)। कोड्डावणिय–वि० कौतुककारक (प० च० २६, ५, ६; जस० ३, २६, १४)।

कोढ—पुं० (सं० कुष्ठ>प्रा० कोड्ढ, कोढ) कुष्ठ-रोग; (सुदं० ८, ५, ८)।

कोढिअ—वि० (सं० कुष्ठिन्>प्रा० कोढि) कुष्ठ रोग से ग्रस्त; (सुदं० ८, ५, ८)। कोढिय-कोढ़ी; (सि० १, १४)।

कोढिणि—स्त्री० (सं० कुष्ठिन्) कुष्ठवती, कुष्ठ-रोग से पीड़ित; (जस० ३, ११, ६)।

कोढियण—पुं० (सं० कुष्ठिन्+जन) कोढ़ी जन; (सि० १, १५)।

कोणंत—पुं० (सं० कोण+अन्त) कोना, "संगामकालम्मि कोणंत दडिएहिं," युद्ध के समय इसमें चढ़कर डर से कोने में जाने से क्या लाभ, (जंबू० ५, १४, १६)। —र पुं० (सं० कोण+अन्तर) एक कोना; (जंबू० २, १६, १३)।

कोण—वि० (दे०) १. काला, श्याम वर्ण वाला; २. लकड़ी, यष्टि; "कोणो कृष्णवर्णः। लकुट इत्यन्ये," (दे० ना० मा० २, ४५)। ३. वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १३)।

कोणू—स्त्री० (दे०) रेखा, लेखा, लकीर; (दे० ना० मा० २, २६)।

कोणो—पुं० (सं० कोण) गृह-कोण, घर का एक कोना; (दे० ना० मा० २, ४५)।

कोत्तलंका—स्त्री० (दे०) मद्य परोसने का एक पात्र; (दे० ना० मा० २, १४)।

कोत्थर—न० (दे०) विज्ञान; (दे० ना० मा० २, १३)।

कोत्थल—पुं० (दे०) १. कोष्ठ, कुशूल, अन्न भरने का कोठार; (दे० ना० मा०-

२, ४८) । २. थैला; (कौ० ४, ८६) ।

कोत्थुह—पुं० (सं० कौस्तुभ>प्रा० कोत्थुह) वासुदेव के वक्षस्थल का मणि; (रि० ८, १) ।

कोत्थुहमणि—स्त्री० (सं० कौस्तुभमणि >प्रा० कोत्थुभ, कोत्थुह) पुराणानुसार एक रत्न जो समुद्र मथने के समय निकला था और जिसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं; (व० ५, १०, १) ।

कोद्दव—पुं० (सं० कोद्रव>प्रा० कोद्दव, कुद्दव) धान्य-विशेष, कोदव, कोदों; (व० ८, ५, १०) ।

कोध—पुं० (सं० कोध) इस नाम का राजा; जिसने दाशरथि भरत के साथ जैन दीक्षा ली थी, (प० च० ८५, ४) ।

कोप्प—पुं० (दे०) अपराध, गुनाह; (दे० ना० मा० २, ४५) ।

कोप्पिअ—वि० (सं० कुपित) क्रोधित; (कौ० ३, ३२) ।

कोबेरी—स्त्री० (सं० कोवेरी) विद्या-विशेष; (प० च० ७, १४२) ।

कोमल—वि० (सं० प्रा० कोमल) मृदु, सुकुमार; (भ०) ।

कोमालय—वि० (सं० प्रा० कोमल) कोमल; (क० ८, १६. ६) ।

कोमाणय—वि० (दे०) म्लान, शुष्क; (प० च० २५, १६, ६) । कुम्मण; (दे० ना० मा० २, ४०) ।

कोमार—वि० (सं० कौमारः) कुमारी से उत्पन्न; (दे० ना० मा० १, ८१) ।

कोमारी—स्त्री० (सं० कौमारी) विद्या-विशेष. (प० च० ७, १३७) ।

कोमुई—स्त्री० (सं० कौमुदी) १. शरद ऋतु की पूर्णिमा; (दे० ना० मा० २, ४८) । २. नगरी-विशेष; (प० च० ३६, १००) । —नंदण पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १८) ।

कोयंड—पुं० (सं० कोदण्ड>प्रा० कोदंड) धनुप; (सं० रा०)। कोर—वि० (सं० केवल) कोरा, जो वरता न गया हो, अनुपभुक्त (वस्त्र); (क० १०, १७, ४) ।

कोरयंकुर—पुं० अंकुरित कोरकवृक्ष; (व० २, ३, ११) ।

कोरिंटय—पुं० (सं०कोरण्ट+क> प्रा० कोरंटग कोरंट, कोरिंट, कोरिंटय, कोरेंट) वृक्ष-विशेष; (प० च० ५३, ७६) ।

कोल—पुं० १. (सं० प्रा० कोल) शूकर, वराह, सूअर; (प्रा० पैं० २, १०७, ण० १, ६, २, कौ० ४, ६७) । २. (सं० क्रोड>प्रा० कोल) गोद; क्रि० वि० भीतर, अभ्यंतर, (कौ० २, १२६) । कोलं (क्रोड); (उ० व्य० प्र० ६–२०) । ३. पुं० (सं० कोल) देश-विशेप; (प० च० ६८, ६६) ।

कोलंब—पुं० (दे०) १. स्थाली, मिट्टी की रिकावी, हँड़िया; २. गृह, (दे० ना० मा० २, ४७) ।

कोलावसुंदर—पुं० विद्याधर राजा, (प० च० १०, २१) ।

कोलाहल— पुं० (सं० प्रा० कोलाहल) शोरगुल; (जस० ३, ३, १४) ।

२. पक्षी की आवाज; (दे० ना० मा०-२, ५०)।

कोलिअ—पुं० (दे०) जाल का कीड़ा, मकड़ा; (दे० ना० मा० २, २५)।

कोलिय—पुं० (सं० कौलिक>प्रा० कोलिअ) जुलाहा, तंतुवाय, कोरी; (सं०-रा०)।

कोलीर—न० (दे०) लाल रंग का एक पदार्थ, कुरुविंद; (दे० ना० मा० २, ४६)।

कोल्लर—पुं० (दे०) स्थाली, पिठर (वटलोई, देगची); (दे० ना० मा० २, ४७)।

कोल्हुअ—पुं० (दे०) कोल्हू, चरखी, ऊख से रस निकालने की कल; तुल० पं० कोल्हू, (दे० ना० मा० २, ६५)।

कोल्हुय—पुं० (दे०) शृगाल, सियार; (प० च० २, ६५; दे० ना० मा० २, ६५)।

कोवंड—पुं० (सं० कोदण्ड>प्रा० कोदंड) कमान, धनुष; (ग० ८, ६, १; म० १, ५, २)।

कोव—पुं० १. (सं० कोपम्>प्रा० कोव) क्रोध; (ण० ८, १५, १३; उ० व्य० प्र० ६-३१)। २. राक्षसयोद्धा; (प० च० ५६, १४)।

कोवग्गि—स्त्री० (सं० कोपाग्नि>प्रा० कोवग्गि) क्रोधाग्नि; (जस० १, ४, १४; व० ३, २६, २)।

कोवण्ड—पुं० (सं० कोदण्ड>प्रा० कोदंड) कोदण्ड, धनुष, धनु; (प० च० ३२, २, ११)।

कोवारुण—वि० (सं० कोपारुण) क्रोध से लाल होकर; (जस० ३, ३६, २)।

कोवि—सर्व० (सं० कोऽपि) कोई; तुल० मगही कोइ; (सरहपा, दोहाकोश)। कोँवि (कोऽपि); (प० च० २५, १५, ७)।

कोविआ—स्त्री० (दे०) शृगाली; (दे०-ना० मा० २, ४९)।

कोविय—वि० (सं० कुपित > प्रा० कोविय) क्रुध; (जंबू० ६, ४, ६)।

कोविलडी—स्त्री० (सं० कोकिल>प्रा० कोइल) कोकिला; तुल० गु० कुवेलडी; (प्रा० गु० ३८, १)।

कोविला—स्त्री० (सं० कोकिला>प्रा० कोइला) स्त्री-कोयल; (व० २, ३, १०)।

कोवीणु—न० (सं० कौपीन) लंगोटी; "कोवीणु कमंडलु भिकखपत्तु," (जस० ४, १५, १४)।

कोसंब—पुं० (सं० कोशाम्र>प्रा० कोसंव) फल वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, १३)।

कोस—पुं० (सं० क्रोश>प्रा० कोस) कोस, २ मील, मार्ग की लम्बाई का परिमाण; तुल० पं० कोह (a distance of two miles); (ण० ६, ६, ६)। कोसु; (सुअंध १, ८, १)। २. (दे०) कुसुम्भ रंग से रंगे वस्त्र; ३. समुद्र; (दे० ना० मा० २, ६५)। ४. (सं० कोश, प >प्रा० कोस) खजाना, भण्डार; (जंबू० ८, १४, ५)।

कोसट्टइरिआ—स्त्री० (दे०) पार्वती, गौरी, शिव-पत्नी; (दे० ना० मा० २, ३५)।

कोसयं—न० (सं० कोशक=drinking vessel) कोसा, लघु शराव (सं० शराव >हि सराव), कसोरा, कटोरा, मद्य पीने का प्याला (दे० ना० मा० २, ४७)।

कोसल—न० (दे०) नीवी, नारा, इजार-बंद; (दे० ना० मा० २, ३८)। पुं० इक्ष्वाकुवंशीय राजा; (प० च० २२, ५)।

कोसलणन्दण—पुं० (सं० कोसलन्दन) राम; (प० च० २२, १)।

कोसलपुरि—स्त्री० (सं० कोशलपुर) नगर-विशेष; (व० २, १६, ६)।

कोसलि—स्त्री० (सं० कोसल पुं०) कौशल देशवासिनी स्त्री; (सुदं० ४, ६, ३)।

कोसलिअ—न० (सं० कौशलिक) उपहार; (दे० ना० मा० २, १२)।

कोसल्लिअ—न० (सं० कौशलिक) भेंट, उपहार; (दे० ना० मा० २, १२)।

कोसिय—न० (सं० कौशिक>प्रा० कोसिय) मनुष्य का गोत्र-विशेष; (भ०)। स्त्री० (सं० कौशिकी) कौशिकी नाम की कामिनी या पत्नी; "तहो कोसिय कामिणि जण-मोहण;" (व० २, १८, ११)। स्त्री० केकसी की भगिनी; (प० च० ७, ५४)।

कोसिया—स्त्री० (सं० कोशिका) इस नाम की एक विद्याधर-राज-कन्या; (प० च० ७, ५४)।

कोसिल्ल—पुं० [सं० कौशली (=उपहार, चढ़ावा>प्रा० कोसल्लिअ) उपहार, भेंट; (सं० रा०, दे० ना० मा० २, १२)।

कोसेय—न० (सं० कौशेय>प्रा० कोसेअ) रेशमी वस्त्र, रेशमी कपड़ा; (क० १, ४, ४)।

कोहंडी—स्त्री० (सं० कूष्माण्डी) कुम्हड़ा नामक वृक्ष; (दे० ना० मा० २, ५०)।

√कोह—(सं० कुप्>प्रा० कुप्प; सं० कुप्यति) कोप करना, क्रोध करना; (उ० व्य० प्र० ८-४)।

कोह—पुं० (सं० क्रोध>प्रा० कोह) कोप, गुस्सा (की० ८, २४; ण० ३, ३, १४; रा०)। कोहाइ—क्रोधादि (क० ६, १०, ८) कोहाणल-पुं० (सं० क्रोधानल) क्रोध रूपी अग्नि; (क० २, ४, ७)। कोहे; (की० २, २५)।

कोहण—वि० (सं० क्रोधन) क्रोधी; (प० च० ३५, ७)। २. पुं० इस नाम का रावण का एक योद्धा; (प० च० ५६, ३२)।

कोहली—स्त्री० (सं० कूष्माण्डी) कोहले का वृक्ष; (दे० ना० मा० २, ५०)।

कोहल्ल—न० (सं० कुतुहल>प्रा० कुऊहल, कोहल) कौतुक, उत्सुकता; (षड्)।

कोहल्ली—स्त्री० (सं० कूष्माण्डी>प्रा० कोहंडी) कोहले का गाद; (षड्)।

कोहाए—क्रि० (सं० क्रोध>प्रा० कोह >नाम धातु कोहाए। सं० क्रुद्ध>प्रा० कुज्झ से 'कोहाना' नहीं बन सकता) क्रोध करना, (की० २, १७५)।

कोहाणा—वि० (सं० क्रोधन>प्रा० कोहण) क्रोधित; (की० ४, १८०)।

कौंडि—स्त्री० (सं० कपर्दिका>प्रा० कवड्डिआ) कौड़ी, धन, द्रव्य; 'बहुल कौंडि अनिक थोड' —कौड़िया अधिक और गेहूँ के दाने थोड़े थे; तुल० पं० कौडी; (कौ० २, ९६)। टि०—हिन्दू युग और मुसलमानी काल में मंडी में फुटकर क्रय-विक्रय के लिए कौड़ियों का प्रचलन था।

कौतुक—पुं० (सं० कौतुक) विनोद खेल-तमाशा; (कौ० २, ९२)।

कौसीस—पुं० (सं० कपिशीर्ष>प्रा० कविसीस) कंगूरे; (कौ० २, ९८)।

क्किय—वि० (सं० कृत>प्रा० कड, कय) किया हुआ, बनाया हुआ, रचित; (प० च० ४६, ६, ७)।

क्खालिय—वि० (सं० क्षालित) धोया हुआ, साफ किया हुआ; (जंबू० १, १३, ५)।

क्रीडाशैल—पुं० न० (सं० क्रीडा+शैल) क्रीडा-पर्वत; (कौ० २, २४४)।

क्रेङ्कार—पुं० क्रेंकार ध्वनि, "अष्टधातु घटना टाङ्कारे कंसेरी पसरां कांस्य क्रेङ्कार," अष्टधातु के घड़ने की टंकार और कंसेरों के स्थान में फैले हुए कांसे के बर्त्तनों की क्रेंकार ध्वनि हो रही थी, (कौ० २, १०१)।

क्षमा—स्त्री० (सं० क्षमा>प्रा० खमा) चित्त की एक प्रकार की वृत्ति जिसमें व्यक्ति दूसरे के द्वारा दिए गए कष्ट को सहन कर लेता है और बदला लेने की इच्छा नहीं करता है; (उ० व्य० प्र० ९–३१)। ० च

क्षुण्ण—वि० (सं० क्षुण्ण>प्रा० खुण्ण) दलित; (कौ० १, ९६)।

क्षेम—न० (सं० क्षेम>प्रा० खेम) कुशल, कल्याण, मंगल, हित; (उ० व्य० प्र० २१–१२)।

ख

ख—पुं० (सं० प्रा० ख) व्यञ्जन-वर्ण-विशेष, इसका उच्चारण-स्थान कण्ठ है। २. न० आकाश, गगन; (जंबू० २, ३, ७)।

खं—न० (सं० ख) आकाश; (जंबू० ५, ७, ४)।

खंच—सक० (सं० कृष्) १. खींचना, २. वश में करना। —इ क्रि०, (सं० कर्षति) (म०)।—हि० विधि० (जंबू० ५, ११, २६)। खंचेवि—पू० का० क्रि० (सुदं० २, १५, ६)। तुल० म० खेचणे। खेंचू— खींचना; तुल० गु० खेंचवुं; (प्रा० गु० १२, ३०)। खांचि करि—पू० का० क्रि०— खिंच कर; (प्रा० गु० ३७, ४)।

खंचण— पुं० (सं० कर्षण √ कृष्) खींचना। खंचणु<खिंचने लगे, "रहवर-खंचणु", बड़े-बड़े रथ खिंचने लगे, (प० ५, ४, १२)।

खंचिय—वि० कृष्ट, खींचा हुआ; (क० ३, ८, ६)।

खंज—वि० (सं० खञ्ज>प्रा० खंज) लंगड़ा, लूला। खंजयाई—ब० लंगड़े; (क० १, ५, ६)।

खंजण— पुं० (सं० खञ्जन>प्रा० खंजण) १. खंजन, पक्षी-विशेष; (प्रा० पैं० १, १३२; दे० ना० मा० २७०)। २. पुं० (दे०) कर्दम, कीच; (दे० ना० मा० २, ६६)।

खंजर— पुं० (दे०) सूखा हुआ पेड़; (दे० ना० मा० २, ६८)।

खंजा—स्त्री० छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, १५८)।

खंड— पुं० (सं० खण्ड>प्रा० खंड) १. खांड; तुल० अं० खंड (sugar); (पं०सि० च० ४, ७, ८६)। २. टुकड़ा, अंश; खण्ड, भाग; (जस० १, १२, ७; भ० १, ५; प्रा० पैं० १, १०८)।

√खंड— (सं० खण्डय्>प्रा० खंड) तोड़ना, टुकड़े करना, विच्छेद करना। खंडिआ; (प्रा० पैं० २, ७०)। —इ (सं० खण्डयति>प्रा० खंडइ) तोड़ना, खण्डित करना; (भ०)। खण्डइ; (हे० ३६७)।—मि० (जंबू० २, १५, १५)। खंडिअ— क्रि० भू० का०, नष्ट कर दिया; (की० १, ६५)। खंडिउ— भू० का० १. उखाड़ डाला, (सा० २१६)। २. काट लिया, "खंडिउ विवाहरु; अर्थात उसके विद्याधर को काट लिया; (जस० २, ६, १२)। खंडी— भू०का० खण्डित किया; (सि० १, ३१)। खण्डंते—क्रि०, भू० का०, काटती थीं; (की० २, १३६)।

खंडई—स्त्री० (दे०) असती, कुलटा; (दे० ना० मा० २, ६७)।

खंडणु—न० (सं० खण्डन>प्रा० खंडण) विच्छेद, भञ्जन; (पाहु० १३५)।

खंदयंद—पुं० (सं० खण्ड+चन्द्र) चंद्रकला; "गिरिसुय-जड-कंदल-खंदयंद", अर्थात् वे (महादेव) पार्वती, जटाओं एवं कपाल पर खंडचंद्र (चंद्रकला) से युक्त हैं, (जंबू० ५, ८, ३६)।

खंडा— पुं० (सं० खड्ग) खड्ग; (परम० १, १२१)।

खंडाविय—क्रि० भू० का० (सं० खण्डापित) कटवा लिया, "ता एक्कहि दिणि ते वंस तेण, खंडाविय तिण्णि वि तुरियएण", अर्थात् तब किसी एक दिन उसने शीघ्रता से उन तीनों वांसों को कटवा लिया; (क० २, ८, ६)।

खंडिनी— वि० खंडिनी, खंडन करने वाली; (प्रा० पैं० २, ३४)।

खंडिय—वि० (वि० (सं० खण्डित> प्रा० खंडिअ) छिन्न, विच्छिन्न; (ण० १, ६, २)।—उं वि०खंडित "महु एक्कु तं पि मुहुं खंडियउं"—'मेरा एक ही मुख है और वह भी खंडित', (महा० ६६, १)।

खंडिर— वि० (सं० खण्डित>प्रा० खंडिअ) खण्डनशील; (जस० ३, १५, ४)।

खंडी— वि० (सं० खण्डिन्) खंडिनी, खंडन करने वाली; (प्रा० पैं०, २, ३४)।

खंत—वि० (सं० क्षान्त>प्रा० खंत) क्षमा-शील; (जस० १, १५, १५)।

खंतव्य— वि० (सं० क्षन्तव्य) क्षमा करने योग्य; (भ०)।

खंतव्व— वि० (सं० क्षन्तव्य>प्रा० खंतव्य) क्षमा-योग्य; (जंबू० ७, १२, १२)।

खंति— स्त्री० (सं० क्षान्ति>प्रा० खंति) क्षमा; (भ०; ण० २, ८, १४)।

खंदग— पुं० (सं० स्कन्दक) मुनि-विशेष; (संधि० ३, ११, ५)।

खंधंत—पुं० (सं० स्कन्ध+अन्त) कंधे

का सिरा; (जंवू० १०; १६, ५)।
खंघ— पुं० १. (सं० स्कन्ध>प्रा० कंघ) कंघा; तुल० म० खान्दा; (ण० ८, ७, १, म० २, ५२, १३)। २. समूह; (जंवू० ७, ४, ७)। खंघआ— स्त्री० (प्रा० पैं० १, ७३)।
खंघमस— पुं० (दे०) भुजा, हाथ; (दे० ना० मा० २, ७१)।
खंघमसी—स्त्री० (दे०) हाथ, स्कंघ-यष्टि; (षड्)।
खंघयट्ठि— स्त्री० (दे०) भुजा, हाथ; (दे० ना० मा० २, ७१)।
खंघाण— पुं० छंद का नाम; (प्रा०-पैं० १, ७५)।
खंघार—पुं० (सं० स्कन्धावार) देश-विशेप; (जस० ४, २४, २९)।—ा पुं० देश-विशेष; (प० च० ९८, ६६)।
खंधावार—पुं० (सं० स्कन्धावार> प्रा० खंधावार) छावनी, सेना का पड़ाव; (सि० २, १८)।
खंधीधारो— पुं० (दे०) वहुत गरम जल की धारा; (दे० ना० मा० २, १८)।
खंधोह— पुं० (सं० स्कन्ध+ओघ) स्कंध-समूह, "पाणु वि खंधोहि गलि-यएण", प्राण भी स्कंध-समूह में गलित हो जाता है; (जस० ४, १०, ४)।
√खंप—सं० सिच्, सींचना, छिटकना, आर्द्र करना।—[illegible] (भ०)।
खंपण— न० ([illegible]०) क्षति, लाञ्छन; तुल० तुल० गु० खांपण, खोड; (प्रा० गु० ५, ५०)।
खंभ—पुं० (सं० स्तम्भ>प्रा० खंभ) खंभा, थंभा; तुल० म० खांभ; (सुदं० ७, ३, २; ण० ६, ५, ५; जंवू० १, १०, १२)।
खंभाइत्त—पुं० (सं० स्कम्भावती> खंभाइत्त) १. खंभात, स्तम्भतीर्थ, (गुज-रात के पश्चिम प्रांत का एक राज्य जो इसी नाम के एक उपसागर के किनारे है) २. इस राज्य की राजधानी, ३. अरवसागर की एक खाड़ी; (सं० रा०)।
खंभायच्च— पुं० खम्भायत नामक नगर, "तहों वारिणि मणोहर विहिवसइँ णिय खंभायच्चहों पट्टणहों", (क० ८, १२, १०)।
खंभायति—स्त्री० (सं० स्कम्भावती) खंभात, गुजरात के पश्चिमी प्रांत का एक राज्य जो इसी नाम के उपसागर के किनारे पर है, "खंभायति वर-नयरिविवु निप्पज्जए"; तुल० गु० खंभात; (प्रा०-गु० ७, ३७)।
खअ—पुं० (सं० क्षय) नाश; (जस० १, १, ८; जंवू० ६, ७, १५; को० १, ५५)।
खइअ—वि० १. (सं० खादित>प्रा० खइअ) खाया हुआ; (भ०)। २. (सं० क्षयित) क्षय-प्राप्त (भ०; जंवू० ३, ५, ८)। ३. (सं० खचित) १. जटित, २, मण्डित; (जंवू० ७, १०, २३)।
खइर—पुं० (सं० खदिर) खैर का वृक्ष, वृक्ष-विशेप; (जंवू० ५, ८, ६)।
खए— पुं० (सं० क्षय>प्रा० अप० खय) विनाश (को० ४, ९३)।
खगणाहु—पुं० (सं० खगनाथ) गरुड़,

''खगणाहु परिसरिउ सुरराउ थरहरिउ", अर्थात् 'खगनाथ खिसक गया और सुरराज थर्रा उठा; (क० ३, १८, ६)।
खगविज्जा— स्त्री० (सं० खगविद्या) (आकाशसंचारसामर्थ्यमित्यर्थः) आकाश में चलने की सामर्थ्य (जस० १, ७, १५)।
खगामिणी— स्त्री० (सं० खगामिनी) विद्या-विशेष; (प० च०)।
खगिंद—पुं०(सं० खगेन्द्र) गरुड़; (जस० १, १८, १)।
खग्गंक— पुं० (सं० खड्ग+अङ्क) खड्ग की गोद, "धाराखंडणभीयव्व जयसिरि वसइ जस खग्गंके", (जंबू० १, ११, १०)।
खग्ग— पुं० (सं० खड्ग) तलवार, खांडा, खड्ग; (प्रा० पैं० १, ११; सि० २, १८; हे० ३३०, ४; जंबू० ६, ३, ४)।—ग्ग पुं० खड्ग का अग्र भाग (की० ४, ७१)।—फरु पुं० (खड्गफलक) जंबू० ६, १४, ६)। खग्गो— पुं० (सं० खड्ग) तलवार; (की० ३, २८)।
खग्गिअ—पुं० (दे०) गांव का मुखिया; (दे० ना० मा० २, ६६)।
खच्चल्ल— पुं० (दे०) भालू; (दे०-ना० मा० २, ६६)।
खच्चोल— पुं० (दे०) व्याघ्र, शेर; (दे० ना० मा० २, ६६)।
खजुहाव—क्रि० (सं० खर्ज्जति) मांजना, सफा करना, झाड़ना-पोंछना, पवित्र करना, "दुं हाथें खजुहाव'–द्वाभ्यां हस्ताभ्यां खर्ज्जति। खर्ज्ज मार्ज्जने"; (उ० व्य० प्र० ७–१३)।
√खज्ज— (सं० खिद्; खिद्यते) खीझना; (व० २, १, २)।
खज्ज—न० (सं० खाद्य) खाद्य-विशेष; (भ०)।
√खज्ज—सं० खाद्>√खा का कर्मवाच्य passive be eaten। खज्जेसहुँ; (प० च० ३२, ६, ६)। —इ (सं० खाद्यते) खाना; (हे० ४२३; जंबू० २, २, २)। खज्जंत— कृ०(सं०√खा+शतृ) (जंबू० ६, १, १०)।
खज्जय—देखो खज्ज=खाद्य; (प० च० ६६, १६)।
खज्जा—न० (सं० खाद्य>प्रा० खज्ज) खाद्य-विशेष; खाजा; (सुदं० ५, ६, ६)। तुल० म० खाजा।
खज्जिअ—वि० (दे०) १. जीर्ण; सड़ा हुआ; २. जिसको उलाहना दिया गया हो वह; (दे० ना० मा० २, ७८)]
खज्जिर— वि० (सं० खाद्यमान) जो खाया गया हो वह; (सण०)।
खुज्जुल्लिय—वि० (सं० कुब्ज+उल्ल+क (स्वार्थे) कुबड़ी; "खुज्जुल्लिय अम्ह उवरि पडिय", (तभी) एक कुबड़ी मेरे ऊपर आ पड़ी; (जस० ३, २, २०)।
खज्जूर—न० (सं० खर्जूर) खजूर-फल; तुल० पं० खजूर, (प० च० ४, १, ६)।
खज्जूरी—स्त्री० (सं० खर्जूरी>प्रा० खज्जूरी) खजूर का वृक्ष; (प० च० ५३, ७६)।
खज्जूरय—पुं० (सं० कर्ण+खर्जूरक) लगभग एक बलिश्त का एक विषैला

कीट; तुल० गु० कानखजूरो; (सिंघ० ११, ५, ५)।
खज्जोअ— पुं० (दे०) नक्षत्र; (दे०-ना० मा० २, ६६)।
खज्जोय— पुं० (सं० खद्योत>प्रा० खज्जोअ) जुगनूँ; (सं० रा०)।—य पुं० (सं० खद्योतक>प्रा० खज्जोयय) कीट-विशेष, जुगनू; (जंबू० ७, २, १३)।
खट्टंग— १. (सं० खट्वांग>प्रा० खट्टंग) चारपाई का पैर, कापालिक की एक धारणीय वस्तु (सं० रा०)। २. न० (दे०) छाया (दे० ना० मा० २, ६८)।
खट्ट—न० (दे०) तीमन, कढ़ी; (दे० ना० मा० ३, ६७)।
खट्टा— स्त्री० (सं० खट्वा खट्वा, खाट, चारपाई; (ण० ७, ६, ११; प० च० ३९, ६, ६; म० २, ५५, ७)।
खट्वाहिंडोल—पुं० झूलती हुई शय्या; (की० २, २४५)।
खट्टावण्ण— पुं० खट्टे स्वाद वाली कढ़ी (curry) का प्रकार; (प० च० ५०, ११, ११)।
खट्टिअ— पुं० (सं० खट्टिक>प्रा० खट्टिअ) खटीक, कसाई; (दे० ना० मा० २, ७०)।
खड—न० (दे०) १. तृण, घास; (जस० ३, १४, ४; दे० ना० मा० २, ६७)। यासी वि० (सं०तृण+आशिन) घास-फूस खाने वाले पशु "खडयासीखेडय उच्छालइ"—अर्थात घासफूस खाने वाले पशुओं के खेटकों को (वह हाथी) नष्ट कर डालता था; ण० ३, १५; ११)। २. खली; "गाइ पइण्णइ खडभुसइ"; गाय को खली-भूसा खिलाया जाता है, (दे० सा० दो०)।
खडइअ—वि० (दे०) संकुचित; (दे०-ना० मा० २, ७२)।
खडक्क—पुं० पर्वत; तुल० गु० खडक; (प० च० ३१, ३, ६)।
खडक्कउ—पुं० (सं० खटत्कृत) खड़-खड़ आवाज; "णिसुणेवि खडक्कउ णिरु डरंति" (सुदं० २, १० १०)।
खडक्किआ, खडक्की— स्त्री० (दे०) खिड़की; (दे० ना० मा० २, ७१)।
खडक्किय—क्रि० भू० का० (सं० खट-त्कृत) ध्व०, खड़खड़ा उठे,···"खडक्किय-वीरकरवालं", वीरों के करवाल खड़-खड़ा उठे; (जंबू० ७, ६, ५)।
खड़क्की— स्त्री० (सं० खटक्किका) खिड़की, दरीचा, झरोखा (दे० ना०-मा० २,७१)।
खडखडिय—वि० (सं० खटत्कृत, ध्व०) खड़खड़ाती हुई, "रणं घडिय-खडखडिय-तिक्खासिधारं", वह आपस में मिलकर खड़खड़ाती हुई तीक्ष्ण असिधारा से युक्त था; (जंबू० ६, ७, ३)।
खडफड—क्रि० (दे०) छटपटाना; (म० २, ५५, १३)।
खडयासी—वि० (सं० तृण+आशिन्) घास खाने वाले; (ण० ३, १५, ११, दे० ना० मा० २, ६७)।
खडहड— पुं० छंद-विशेष; (प० च० २३, १, ७)।
खडहडी—स्त्री०(दे०) गिलहरी, गिल्ली, जंतु-विशेष; (दे० ना० मा० २, ७२)।

खडा—वि० (सं० षट्) छह; (प्रा० पैं० २, ५१)।

खडिया—स्त्री० (सं० खटिका>प्रा० खडिआ) खड़िया; (जंबू० ६, १४, १५)।

खडुआ—स्त्री०(दे०) मोती; (दे० ना० मा० २, ६८)।

खड्ड, खड्डग— न० (दे०) श्मश्रु, दाढ़ी-मूँछ; (दे० ना० मा० २, ६६)।

खड्डा—पुं० १. (सं० खात) पर्वत का खड्ड, गड्ढा; (दे० ना० मा० २,६६)। २. स्त्री० (दे०) खानि आकर; (दे० ना० मा० २, ६६)।

खड्डाग—वि० (सं० क्षुल्लक) थोड़ा, हलका; तुल० गु० हलकुं; (संधि० ८, १, ६)।

खणंतर—पुं० (सं० क्षणान्तर) क्षणमात्र; "विप्फुरइ खणंतरि विज्जसिद्धि", मेरी विद्यासिद्धि क्षणमात्र में स्फुरायमान हो जाती है, (जस० १, ७, १)।

खण— पुं० (सं० क्षण>प्रा० खण) लमहा, निमेष, एक सैकंड से ४/५ भाग के बराबर समय की माप, काल-विशेष, बहुत थोड़ा समय; तुल० म० खिण, मगही छन, खन; (तिलोपा, दोहाकोश; सि० १, ४१)। खणंतर–पुं० क्षणान्तर; (जंबू० २, १६, १३)। —दिट्ठ वि० (सं० क्षण+दृष्ट) (जंबू० ६, १२, ६)। –द्ध पुं०(सं० क्षण+अर्द्ध)क्षणार्ध (जंबू० ५, ५, १५)। खणा–क्षण; (प्रा० पैं० १, २०४)। खणु—पुं० क्षण; (महा०)।

√खण—(सं० खन्>प्रा० खण) खोदना। —इ, क्रि० (सं० खनति); तुल० म० खणणें; (म०)। खणखणंत—व० कृ० (सं० खनखनाय्+शतृ) (जंबू० ५, १०, ७)। खणन्त—व० कृ० खोदते हुए; (प० च० १२, ८, ५)।

खणक्खण, खणखणखण—अक० (सं० खणखणाय्) 'खण-खण' आवाज करना; (प० च० ३६, ५३)।

खणक्खेव—पुं० वानरयोधा; (प० च० ५७, १४)।

खणखण—पुं० (सं० खणखणाय्>प्रा० खणक्खण) खन-खन की ध्वनि; "खेल्लिवि खणखणसद्दें वलियहँ जित्तइँ आहरणइँ मंडलियहँ," खन-खन ध्वनि के साथ पासा खेल कर बलवान माण्डलिकों के आभरण जीत लिये; (ण० ३, १२, १०)।

खणखणाकार—पुं० (ध्वन्यात्मक) तलवारों के टकराने से होने वाली खन-खन की ध्वनि; (प० च० ४६, ४, ३)।

खणण—न० (सं० खननः) खोदना; (जंबू० ६, ७, ६)।

खणाव—वि० (सं० खानयति) खोदवाना, खुदवाना; "खणाव-खानयति। खन अवदारणे," (उ० व्य० प्र० ४६–२२)।

खणि—स्त्री० (सं० खनि) खान; (जस० ३, १, १७)।

खणित्त—न० (सं० खनित्र) खोदने का यंत्र; (दे० ना० मा० ४, ४)।

खणिय—वि० (सं० खणित) खुदा हुआ; (क० ४, ८, ७)।

खगुंस—स्त्री० (दे०) मन का दुःख या पीड़ा। —ई; (रा० ३४)।
खगुंसा—स्त्री० (सं० खिन्न-मनस्) मन का दुःख, मानसिक पीड़ा, (दे० ना०-मा० २, ६८)।
खण्ड-पयार—पुं० (सं० खण्ड-प्रकार) मिष्टान्न-भेद; (प० च० २५, ११, ३)।
खण्डय—पुं० (सं० खड्ग) तलवार; तुल० गु० खांडुं; (प० च० ५२, १, ६)।
खण्डसोल्ल—पुं० शक्कर से तैयार की गई मिठाई का एक प्रकार, गुडसोल्ल (सोल=पक्व); (प० च० ५०, ११, २)।
खण्डिआ—स्त्री० छोटा गुप्त द्वार; "सोपान तोरण यन्त्त जोवण जाल जाल-ओप खण्डिआ," अर्थात् नगर के विभिन्न भागों में सीढ़ियाँ बड़े द्वार, यंत्रवारागृह और गुप्तद्वार थे; (की० २, ८५)।
खण्ण—वि० (दे०) खोदा हुआ; (जस० १, ५, १२; दे० ना० मा० २, ६६)।
खण्णु—पुं० (सं० स्थाणु>प्रा० खाणु) ठूंठा वृक्ष; (दे० ना० मा० २, ६६)।
खण्णुअ—पुं० (सं० स्थाणुक) कीलक, खोंटी; (दे० ना० मा० २, ६८)।
खत—पुं० (अ० खत, त्त) फरमान, शाही हुकुम, परवाना; (की० ४, ८)।
खत्त—वि० (सं० क्षात्र>प्रा० खत्त) क्षत्रिय-संबंधी, क्षत्रिय का; (ण० १, १४, ६)। पुं० (सं० क्षत्र>प्रा० खत्त) क्षत्रिय, मनुष्य-जाति-विशेष; (भ०)। न० (दे०) गड्ढा, गर्त; (दे० ना० मा० २, ६६)।
खत्तवम्म—पुं० (सं० क्षत्रवर्म) क्षत्रिय धर्म; (जस० १, २३, २)।
खत्ति—पुं० स्त्री (सं० क्षत्रिय>प्रा० खत्ति) क्षत्रिय नामक जाति; (प्रा० पैं० १, ११७)।
खत्तिअ—पुं० स्त्री० (सं० क्षत्रिय> प्रा० खत्तिअ) क्षत्रिय वर्ण, हिंदुओं के चार वर्णों में एक वर्ण; (की० १, ५५)।
खत्तिणी—स्त्री० (सं० क्षत्रियाणी) क्षत्रिया, क्षत्रिय जाति की स्त्री; (प्रा० पैं० १, ६४)।
खत्तिय—पुं० (सं० क्षत्रिय>प्रा० खत्तिअ) क्षत्री, मनुष्य की एक जाति; (म० २, ७, १०)।
खत्तीअ—पुं० स्त्री० (सं० क्षत्रिय) क्षत्रिय नामक एक जाति; (प्रा० पैं० २, २०७)।
खद्ध—वि० (दे०) १. खाया हुआ, भुक्त, भक्षित, २. हत, "लक्खणकर व खद्धलंकेसउ" —वह लक्ष्मण के हाथ के समान था जो लंकेश रावण को खा गया था, (ण० ३, १४, ५, दे० ना० मा० २, ६७; जस० १, १२, २)।
खन्धय—पुं० (सं० स्कन्धक) छंद-विशेष; (प० च० २३, १, ६)।
√खप— (सं० क्षय्) नष्ट होना। खपिज्जइ; (रा० ३४)। खप्पिअ—क्रि० (सं० क्षपित) "को कुमन्त पहु करि हीन वयण का समअ खप्पिअ," बिताना चाहिए; (की० ४, १४८)।

खप्पर—पुं० (सं० खर्पर>प्रा० खप्पर) खोपड़ी; तुल० म० खापर; (भ०)। २. घट आदि का टुकड़ा; (प० च० २०, १६६)। वि० (दे०) निष्ठुर, रूखा; (दे० ना० मा० २, ६६)।

खब्भालइ—क्रि० (सं० क्षोभय्>प्रा० खोभ) विचलित करना, क्षोभित करना; (सुदं० ८, २७, १०)।

खम—सक० (सं० क्षम्>प्रा० खम) क्षमा करना; (जस०)। खमंतु (विधि०) (जंबू० ८, १, २)। खमाविमउ—क्रि० भू० का० क्षमा माँगी; (प० च० १६, १४, १)।

खम—१. वि० (सं० क्षम) उचित, योग्य, पर्याप्त सक्षम; (सि० २, ५)। २. स्त्री० (सं० क्षमा>प्रा० खमा) क्षमा, "जय खमदमसमजमणिवहणिलय," आप क्षमा, दम, शम और यमादि गुणों के समूहों के निधान हैं; (ण० १, ११, ८)। —वह पुं० (सं० क्षमापथ) क्षमा का मार्ग; (जस० ४, १५, ७)।

खमा—स्त्री० (छंदशास्त्र में) गाथा का भेद; (प्रा० पैं० १, ६०)।

खमिय—वि० (सं० क्षमित) क्षमा किया हुआ; (जंबू० ८, ७, १०)।

खम्भ—पुं० (वै० सं० स्कम्भ>प्रा० खंभ) खंभा, थंभा, तुल० गु० खांभो; (प० च० ७, ५, ४)।

खम्मक्खम—पुं० (दे०) १. संग्राम, लड़ाई; २. मन का दुःख; (दे० ना० मा० २, ७६)।

खयंकर—वि० (सं० क्षयकर) नाशकारक; (ण० ४, १४, २)।

खय—अक० (सं० क्षि) क्षय पाना, नष्ट होना। खउ—क्रि० आ० नष्ट हो; (प० च० १२, ६, ५)। टि०—हेमचंद्र ने ८, ४, ३८७ में विध्यर्थक क्रिया में इ, उ, ए का विधान किया है।

खय—पुं० (सं० क्षय>प्रा० खय) १. क्षय, विनाश; (सि० १, ४१; ण० ३, ७, ६)। २. रोग-विशेष; (भ०)। ३. खग; (जस०)।

खयकरि—वि० (सं० क्षयकारी) नाश या तबाही करने वाला; (जंबू० ८, ७, १६)।

खयकालु—पुं० (सं० क्षयकाल>प्रा० खयकाल, गाल) प्रलयकाल, अवनति का समय; (सि० २, १)।

खयचियउ—वि० (सं० क्षत+चित्) क्षतयुक्त; "णं नहखयचियउ निट्ठुरहियउ कण्णाउविलासिणिजोव्वणु;" (जंबू० ६, ६, ११)।

खयर—पुं० (सं० खचर>प्रा० खयर) विद्याधर, विद्या बल से आकाश में चलने वाला मनुष्य; "सुरणरविसहरवरखयरस-रणु, कुसुमसरपहरहरसमवसरणु" —राजा ने तीर्थंकर के उस समोसरण में प्रवेश किया जहाँ देव, मनुष्य, नाग और विद्याधर विराजमान थे, (ण० १, ११, १)। —कुल; पुं० (सं० खचरकुल) विद्याधर-कुल; (जस० ४, २६, १७)।

खयरंतअ—वि० (सं० खेचर+अन्तक=मारक) खेचरों के कालस्वरूप; (जंबू० ७, ११, १४)।

खयरवइ—पुं० (सं० खेचरपति) विद्याधर (विद्या बल से आकाश में चलने

वाला मनुष्य, आकाशचारी) "वलिउ खयरवइ तउ भिडिउ रणें मणिसहो," —वह खेचरपति रत्नसेन वापिस लौटा और रण में भिड़ गया; (जंवू० ७, ५, १०)।

खयरवि—पुं० (सं० क्षय+रवि) प्रलय-सूर्य; (जंवू० ५, १३, १४)।

खयराउ—पुं० (सं० खगराज) गरुड़; (वा० १, ६)।

खयरामर—पुं० (सं० खचरामर) विद्याधर एवं देव; (व० १, १२, १०)।

खयराहिव – पुं० (सं० खचराधिप) ज्वलनजटी नामक व्यक्ति; (व० ४, २, ३)।

खयरु—पुं० (सं० खेचर) खेचर-विद्याधर (जाति) (जंवू० ५, ४, १२)। २. खेचर, "इउ करिवि खयरु विज्जावलेण णिय-भवणु गयउ पुणु णहयलेण", अर्थात् यह सव करके, वह खेचर विद्या के वल से नभस्तल द्वारा अपने भवन को गया; (क० २, २१, ८)।

खयरूव—पुं० (सं० क्षयरूप) विनाश का रूप; (जस० ३, ४०, १४)।

खयरेश—पुं० (सं० खचरेश) ज्वलजटी नामक व्यक्ति; (व० ४, ४, ७)।

खयरोअ—पुं० (सं० क्षयरोग) रोग-विशेष; (जंवू० ३, ११, ३)।

खयरोरय—पुं० (सं० खचरोरग) विद्याधर और नाग; (व० २, १४, ८)।

खयसमए—पुं० (सं० क्षय-समय) प्रलय-काल; (व० ४, २०, ८)।

खयहि—अक० (सं० क्षयति, क्षि क्षये) क्षीण होती है; (सं० रा०)।

खयाण—पुं० खदान, खड्डा; ... (जंवू० ५, १०, ७)।

खयाल—पुं० कंदरा "..... निवसइ सिहरिखयालहिं," –जो सिंह गिरिकंदरा में (जाकर) रहता है; (जंवू० ५, १२, ३२)।

खर—पुं० १. खर पृथ्वी; "खर वालुआइ भिज्जइ णमहिणिब्भर सलिल पवाहहिं —खर, वालुका आदि (नरक—) पृथिवियाँ निरंतर जलप्रवाह से भेदी नहीं जा सकतीं; (व० १०, ६, १३)। २. पुं० (सं० प्रा० खर) गधा; (सि० १, १३)। ३. छप्पय छंद का भेद; प्रा० पैं० १, १२२)। ४. तिनका, तृण; (की० ३, ६०)। ५. वि० (सं० प्रा० खर) कठोर, तीक्ष्ण, प्रखर, (महा० ६८, ७; प्रा० पैं० १, ३६)। —किरण पुं० सूर्य; (जस०)।

खरडिअ—वि० (दे०) १. रुक्ष; २. भग्न, नष्ट; (दे० ना० मा० २, ७६)। खरदूसण—पुं० रावण का वहनोई; (प० च० १, ७४)।

खरमुही—स्त्री० (सं० खरमुखी) वाद्य-विशेष, (प० च० ५७, २३)।

खरवहुलु—पुं० खरवहुल, पृथ्वीखण्ड; (व० १०, २२, ८)।

खरसयण—पुं० (सं० खरशयन) कठोर शयन; (व० १०, २५, १६)।

खर-सिल—पुं० (सं० खरशिला) आधारशिला; (प्रा० गु० ७, ३२)।

खरहिअ—पुं० (दे०) पोता, पौत्र; (दे० ना० मा० २, ७२)।

खरिय—वि० (दे०, प्रा० खरिअ) भुक्त, भक्षित; (भ०)।

खरी—वि० (सं० खर=तीक्ष्ण) बिल्कुल, पूरी; तुल० मगही खरी; (विनयचंद्रसूरि, नेमिनाथ, चतुष्पादिका)।

खरुल्ल—वि० (दे०) १. कठिन, कठोर; २. विषम और ऊंचा; (दे० ना० मा०— २, ७८)।

खल—वि० (सं० प्रा० खल) १. दुष्ट, दुर्जन; (प्रा० पैं० १, १६६, जस० १, १७, २८)। २. खलिहान; (व० ६, १, ११)। ३. स्त्री० (सं० खलि, खली> प्रा०खली) तिल-पिण्डिका, तिल आदि का तेल रहित चूर्ण, खल —भक्खणि तासु किं चित्तु जाइ; (संधि० २, १०, ४)।

√खल—(सं० स्खल्>प्रा० खल) १. खिसकना, स्खलित होना। —इ व० (सं० स्खलति>प्रा० खलइ) (प्रा० पैं० १, १६०)। २. पड़ना, गिरना। —इ; व० (प० च० १४, ३, ४)। तुल० म० खळणें। खलंत—व० कृ०(सं०√स्खल्+ शतृ) गिरते हुए, पड़ते हुए; (जंबू०३, ८, ३)। खलंतु—व० कृ० भटकता हुआ; (क० २, ३, १)। खले—क्रि० स्खलित होना; (की० ४, १६२)। खीलिउ— क्रि० भू० का० स्खलित हो गया, गिर गया; (प० च० १३, १, ३)।

खलइयं—वि० (अ० खाली) खाली, जो भरा न हो, रिक्त (दे० ना० मा० २, ७१)।

खलक्खल—अक० (सं० खलखलाय्) खल-खल की आवाज करना। खलखलन्ति —खल-खल की आवाज करना (gurgling); तुल० गु० खळखळती; (प० च० ३१, ३, ६)। खलखलिय— क्रि० भू० का० (सं० खलखलित) खलखला उठे, "खयरउल खलखलिय"— खेचर समूह खलखला उठे, (सुदं० ६, १२, ६)।

खलखलिय— वि० (खलखलायित) खल-खल की ध्वनि करने वाले "कहिँ मि पज्झरियखलखलियजलवाहला,"— कहीं खल-खल करके झरते हुए जल के छोटे-छोटे प्रवाह थे; (जंबू० ५, ८, २१)।

खलगंडिल—वि० (दे०) मत्त, उन्मत्त; (दे० ना० मा० २, ६७)।

खलण—न० (सं० स्खलन) निपतन, गिर जाना; (जंबू० ४, १५, १०)।

खलणा—स्त्री० (सं० स्खलना) गिर जाना, निपतन; (दे० ना० मा० २, ६४)।

खलभल—पुं० (दे०) क्षोभ, खलभलाहट (म० २, ५२, १५)।

खलभलिय—वि० (दे०) क्षुब्ध, क्षोभ-प्राप्त; (भ०)।

खलहल—१. वि० (प्रा० खलभलिय) क्षुब्ध, क्षोभ-प्राप्त; तुल० गु० खळभळवुं (प० च० १३, ५, २)। २. पुं० (सं० प्रा० खलखल, प्रा० खलहल) (ध्व०) जल-प्रवाह के कारण उत्पन्न खलखल का शब्द; (जस० ४, ७, ४)।

खला—अक० (दे०) खराब करना, नुकसान करना; (भ०)।

खलाइं—न० (सं० खलान्) खलों को, दुष्टों को; (हे० ३३४, १)।
खलिअ¹—वि० (सं० स्खलित>प्रा० खलिअ) १. गिरा हुआ, पतित, २. रुका हुआ; (ण० ६, ४, ६; जस० २, २१, ५)। खलिय; (क० ३, १२, ४)।
खलिअ²—वि० (सं० खलिक) खल से व्याप्त; (दे० ना० मा० ४, १०)।
खलिज्जइ—क्रि० (सं० स्खल्>प्रा० खल) स्खलित करना, "तुह पोरिसु किर केण खलिज्जइ," तुम्हारा पौरुष कौन स्खलित कर सकता है; (ण० ७, ६, ८)।
खलिण—पुं० (दे०) लगाम; (व० ४, २४, ७)।
खलियार—पुं०(सं० खलीकार=१.चोट पहुँचाना, २. दुर्व्यवहार, ३. अनिष्ट) तिरस्कार, निर्भर्त्सना; (प० च० ३६, ११६)। टि०—प्रा० में खलियार (सं० खली-कृ) धातु भी है, जिसका अर्थ तिरस्कार करना, धूत्कारना है।
खलियारिअ—वि० (सं० खलीकृत) तिरस्कृत; (प० च० ६६, २)।
खली—स्त्री० (स० खली) तेल की तलछट, तिल-पिण्डिका; तुल० पं० खल्ल; (दे० ना० मा० २, ६६)।
खलु—वि० (सं० प्रा० खल) दुर्जन (भ०; हे० ३३७, १, महा० ६६, ३, ४)।
खल्ल—न० (दे०) १. उपानह, जूता; (संधि० १२, ४, ८)। २. बाड़ का छिद्र, ३. विलास; (दे० ना० मा० २, ७७)। ४. खाली, रिक्त; (दे० ना० मा० १, ३८)।
खल्लइअ—वि० (दे०) १. संकुचित, २. हर्ष-युक्त, (दे० ना० मा० २, ७६)।
खल्ला—स्त्री० (सं० खल्ल>पा० खल्ल>प्रा० खल्ला) शरीर का ऊपरी आवरण, चर्म, चमड़ा, त्वचा; तुल० पं० खल्ल; (दे० ना० मा० २, ६६)।
खल्लिरा—स्त्री० (दे०) संकेत; (दे० ना० मा० २, ७०)।
खल्लिहडउं—पुं० (सं० खल्वाट>प्रा० खल्लीड) जिसके सिर पर बाल न हों, गंजा; (हे० ३८६, १)।
खव—पुं० (दे०) १. बायाँ हाथ, २. गर्दभ; (दे० ना० मा० २, ७७)।
√खव—(सं० क्षपय्) १. नाश करना, २. डालना, प्रक्षेप करना, ३. उल्लंघन करना। —इ क्रि० (सं० क्षपयति>प्रा० खवेइ) (जंबू० २, १, १५)। —न्ति क्रि०, व०; (प० च० ३०, १०, ६)।
खवओ—पुं० (सं० स्कन्ध>प्रा० खंध) खवा, कन्धा; (दे० ना० मा० २, ६७)।
खवडिअ—वि० (दे०) स्खलित; (दे० ना० मा० २, ७१)।
खवण—न० (सं० क्षपण>प्रा० खवण>खवणअ) क्षय, नाश; (जस० ३, १८, ५)।
खवणय—पुं० (सं० क्षपणक>प्रा० खवणय) जैन भिक्षुक; (सि० १, ६)।
खवय—पुं० (दे०) स्कंध, कंधा; (दे० ना० मा० २, ६७; भ०)।

खवल—पुं० (दे०) क्षोभ, खलबलाना; (म० १, ३०, ४)।

खवलिअ—वि० (दे०) कुपित, क्रुद्ध; (दे० ना० मा० २, ६७)।

खवालिउ—क्रि० (सं० क्षोभय्>प्रा० खोभ) क्षोभित करना, क्षोभ उत्पन्न करना; "जइ वि खवालिउ, तइ वि ण चालिउ" —यद्यपि उसने क्षोभ उत्पन्न करने का प्रयत्न किया, तो भी वह चलायमान नहीं हुआ, (सुदं० ८, २८, १३)।

खविअ—वि० (सं० क्षपित) १. विनाशित; (जस० २, ८, ५)। २. पीड़ित; (जस० १, १२, १३)।

खविउ—क्रि० (सं० क्षपित>प्रा० खविअ) खपाया जाना, "भणु किं ण पाउ धम्में खविउ" कहिए, ऐसा कौन सा पाप है, जो धर्म के द्वारा न खपाया जा सके; (ण० ६, ५, ६)।

खवियारि—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५६, १२–१४)।

खव्व—पुं० (दे०) १. बाँया हाथ, २. गधा; (दे० ना० मा० २, ७७)।

खव्वुल—न० (दे०) मुख, मुंह; (दे० ना० मा० २, ६८)।

खस—पुं० (सं० प्रा० खस) १. खस देश में रहने वाला मनुष्य; (भ०)। २. वर्तमान गढ़वाल और उसके उत्तरवर्ती प्रांत का प्राचीन नाम; (प० च० ९८, ६६)। ३. खश, खुजली (व्याधि); (जंवू० ६, १६, ७)। —। पुं० जनपद-विशेप; (प० च० ६८, ६६)।

खस—अक० (दे०) खिसकना, गिर पड़ना। —हु स्खलित हो; (वैराग्यसार)।

खांटि—वि० सुंदर; (हिं० का०, च० ३८)।

√खा— (सं० खादति, प्रा० खाअइ) भोजन करना, भक्षण करना; (उ० व्य० प्र० ११, १६)। —इ व० खाना; (प० च० १६, ३, २)। —उ, भू० का० (ण० ७, ६, ६)। —ए (प्रा० पैं० २, १८३)। —हि (प्रा० पैं० २, १२०)।

खज्जंत, खज्जमाण—व० कृ०, (प० च० २२, ४३; १७, ८१; ८२, ४०)।

खाउं—कृ० (सं० खादितुम्) भोक्तुम्, खाने के लिए; (जंवू० १०, २६, ५)।

खाहु—क्रि० आ० खाओ; तुल० मगही खाहु; (सरह, दोहाकोश)।

खाअ—वि० (सं० खादित) भुक्त, भक्षित; (भ०)।

खाइआ—स्त्री० (सं० खातिका>पा० खाअ>प्रा० खाइआ) खाई, परिखा; (दे० ना० मा०, २, ७३)। तुल० गु० खाई। खाइय; (व० १, ४, ५; प० च० २३, ६, ६)। खातिका; (दे० ना० मा० २, ७३)।

खाट—स्त्री० (सं० खट्वा>प्रा० खट्टा) खाट, चारपाई; (उ० व्य० प्र० ४६, २७; शबरपा, चर्या० २८)।

खाडइअ—वि० (दे०) प्रतिविम्बित, प्रतिफलित; (दे० ना० मा० २, ७३)।

खाण—न० (सं० खादन>प्रा० खाण) भोजन, भक्षण; (प० च० २, ८, ४)। २. पुं०—(तुर्की खान) पठानों की उपाधि, खान, ख़ाँ साहब; ३. पुं० (सं० स्थाणु

>प्रा० खाणु) "तसु अछइए मन्ति आनन्द खाणु," –अर्थात् उस माता के पास आनंदेश्वर नाम का मंत्री है; (की० ३, १२९)। टि०–नाम के अंत में 'खाण' शब्द का अर्थ शिववाची ईश्वर शब्द से है। —पाण पुं० खान-पान; (सि० १, ३७)।

खाण—पुं० (सं० खानि>प्रा० खाणि) खान, खदान; (सि० १, ४४)। खाणि—स्त्री० (सं० खानि) खान; (दे० ना०-मा० २, ६६)।

खाणाविउ—क्रि० भू० का० खनायित खनवाया, "खाणाविउ करकंडें खणेण," करकण्ड (राजा) ने क्षणमात्र में उस वामी को खुदवाया; (क० ४, ८, ५)।

खाणि—स्त्री० (सं० खानि>प्रा० खाणि)। खान, निधान; (जंबू० १०, १८, ८)। खाणी; (ण० २, ३, १३)।

खाणेक्कु—पुं० (सं० क्षणैक) एक क्षण; (व० १, १६, ३)।

खांति—स्त्री० (सं० ख्यातिम्) प्रसिद्धि; (उ० व्य० प्र० १०–१७)।

खानी—स्त्री० (सं० खानि>प्रा० खाणि) खदान, खान, आकर; (सि० २, ११)।

खाम—वि० (सं० क्षाम>पा० खाम) १. क्षीण, २. दुर्बल, ३. पतला; (दे०-ना० मा० ६, ४६; जस० १, २५, ९)।

खामियअ—वि० (सं० क्षमित+क) जिसके पास क्षमा माँगी गई हो वह; (जंबू० २, ८, ५)।

खामोयरिय—स्त्री० (सं० क्षामोदरी) दुर्बल पतली कटिवाली; (सं० रा०)।

खाय—वि० (सं० खादित> प्रा० खाइअ) खाया हुआ; (भ०)।

खारफ़िडी—स्त्री० (दे०) गोधा, गोह, जंतु-विशेष; (दे० ना० मा० २, ७३)।

खार—पुं० (सं० क्षारक>प्रा० खार) खार, रेह; तुल० पं० खार, (सं० रा०)। —दूसण पुं० खरदूषण का मंत्री; (प० च० ४५–१५)। —समुद पुं० (सं० क्षार समुद्र) खारा सागर (जंबू० ६, १, १३)।

खारय—न० (दे०) मुकुल, कली; (दे०-ना० मा० २, ७३)।

खारिय—वि० १. चिढ़े हुए; (प० च० ६, १, ९)। २. (सं० क्षारित) खारे पानी में से टपकाया हुआ; (भ०)।

खाविय—वि० (सं० खादित) भक्षित; "मुंडखंडखावियचामुंडइं," –मुण्डों के टुकड़े-टुकड़े होने लगे, और उन्हें चामुण्डा खाने लगी; (ण० ७, ७, ५)। —उ, भू० का० भक्षण किया (प० च० ६, ११, २)।

खासण—वि० (सं० कासिन्>प्रा० खासि) खाँसी का रोग वाला; (सुदं० ८, ५, ३)। पुं० (सं० कास>प्रा० खास) खाँसना; (सुदं० ६, १९, ९)।

खिखिणी—स्त्री० १. (दे०) शृगाली; (दे० ना० मा० २, ७४)। २. (सं० किङ्किणी) वाद्य-विशेष; (प० च० १७, ११४)।

खिक्खिंड—पुं० (दे०) गिरगिट; (दे० ना० मा० २, ७४)।

खिक्खिरी—स्त्री० (दे०) डोम आदि के स्पर्श के परिहार अथवा रोकने की लकड़ी; (दे० ना० मा० २, ७३)।

खिच्च—पुं० न० (दे०) कृसरा, खिचड़ी, एक में दाल मिलाया या मिलाकर पकाया हुआ चावल; (दे० ना० मा० १, १३४)।

√खिज्ज— (सं० खिद् > प्रा० खिज्ज) १. खेद करना, अफसोस करना, २. उद्विग्न होना, थक जाना। (सं० रा०) तुल० गु० खीजवुं; (प्रा० गु० ६, १२, सं० रा०)। खिज्जइ—क्रि०, व० (सं० खिद्यते) खीझना, (रि० १, ७)।

खिज्जइ—क्रि० (सं० क्षयति, √क्षि क्षये) १. क्षीण होना "दिणि दिणि रयणीमाणु जहं खिज्जइ, —दिन प्रतिदिन जैसे रात्री का परिमाण घटता जाता है, (जंबू० ३, १२, सुदं० ५, २, १)। २. (सं० खिद् > प्रा० खिज्ज) खेद करना; तुल० म० खिजणे; (ण० ५, १, ११)।

खिज्जिअ—न० (दे०) उपालंभ; (दे० ना० मा० २, ७४)।

खिड्ड—न० (सं० खेल) क्रीड़ा; (भ०)।

खिणि—स्त्री० फल-विशेष, खिन्नी, खिरनी; (क० ६, २१, ५)।

खितिधर—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, ११)।

खित्त—वि० १. (सं० क्षिप्त > प्रा० खित्त) १. फेंका हुआ, २. प्रेरित (सं० रा० जस० २, २६, १३)। २. पुं० (सं० क्षेत्र) कृषि-भूमि, खेत, (संधि० २, ७, १; जंबू० १०, २०, ८)। —क्रम पुं० क्षेत्रक्रम (जंबू० ११, ११, १०)।

खित्तय—न० (दे०) १. अनर्थ, नुकसान, २. वि० दीप्त, प्रज्वलित; (दे० ना० मा० २, ७९)।

खित्तुब्भउ—पुं० (सं० क्षेत्रोद्भव) "खित्तुब्भव ताणउँ माणसिउ अवरुवि असुराईरिउ अन्नोन्नाइउ इय पंचविहु दुहु नारइयहँईरिउ," अर्थात्–क्षेत्रोद्भव दुःख, मानसिक दुःख और असुरों द्वारा प्रेरित दुःख परस्परकृत दुःख तथा नारकियों द्वारा प्रेरित दुःख इस प्रकार नारकियों के पाँच प्रकार के दुःख कहे गए हैं; (व० १०, २७, २९)।

खिन्न—वि० (सं० खिन्न > प्रा० खिण्ण) खिन्न, श्रांत; (जंबू० ५, ६, ११)।

खिन्नि—वि० (सं० खिन्न > प्रा० खिण्ण) अवसाद प्राप्त, खिन्न, कष्टग्रस्त, उदास, दुःखी, पीड़ित (सं० रा०)।

√खिर— अक० (सं० √ क्षर्) १. गिरना, गिर पड़ना, २. टपकना; —इ व० (जंबू० १, १३, ७)। खिरंत—व० कृ० (प० च० १०, ३२)।

खिलिहिलन्त—कृ० हिनहिनाते हुए (प० च० ४०, १६, ५)।

खिल्ल—अक० (सं० खेल्) खेलना, गु० खेलवुं; (प्रा० गु० ६, १८)। खिल्लंतय कृ० क्रीड़ा करते हुए; (सं० रा०)।

खिल्ल—स्त्री० (सं० कील) खूंटी; (सुदं० ६, १८, ६)। खिल्लिअ—वि०

(सं० कीलित) वंधा हुआ, वद्ध; (सुदं० ६, १८, ६)।

√खिव—(सं० क्षिप्>प्रा० खिव) १. फेंकना, २. डालना, ३. प्रेरना। —इ व० (सं० क्षिपति>प्रा० खिवइ, खिवेइ) (म०)।

खिसिय—क्रि०, भू० का० (दे० प्रा० खिस)खिस पड़ा, गिर पड़ा; (सं० रा०)।

खीण—वि० (सं० क्षीण>प्रा० खीण) क्षय प्राप्त, "घणु खीणु वि विहलिय पोषणेण" —धन यदि निर्धनों के पालन-पोषण में व्यय हो; (ण० ८, १३, ८; म० १, २३, २)। —कसाय पुं० (सं० क्षीणकषाय) गुण-स्थान; (व० १०, ३६, ६)।

खीना—वि० (सं० खिन्ना) उदास, अवसाद-प्राप्त; (प्रा० गु० २३, ६)।

खीनि—वि० (सं० क्षीण>प्रा० खीण) १. क्षय-प्राप्त, २. दुर्वल, कृश; (की० २, १४६)।

खीरंवुहि—पुं० (सं० क्षीराम्वुधि) क्षीर-सागर; (व० ६, १४, ७)।

खीर—न० (सं० क्षीर>प्रा० खीर) दूध; (सि० १, १५, प० च० २, ५८)। पुं० (छंदशास्त्र में) स्कंध छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ७५)। —कयंव पुं० वसु राजा के गुरु, खीरकयंव नामक ब्राह्मण; (प० च० ११, ६)। —कूवारि पुं० क्षीर-सागर; (व० ६, २०, ८)। —णीर पुं० (सं० क्षीर-नीर) दूध और जल; (व० २, १५, ५)। —धारा स्त्री० किंपुरिस की स्त्री; (प० च० १३, २६)। —महण्णव पुं० (सं० क्षीर+महार्णव) क्षीर-सागर; (जंवू० ८, १५, ६)। —समुद्द पुं० (सं० क्षीर+समुद्र) क्षीर सागर; (प० च० ३, १०७)।

खीरोदहि—पुं० (सं० क्षीर+उदधि) क्षीरसागर; (प० च० २, २५)।

खीरोयसायर—पुं० (सं० क्षीरोदक+सागर) क्षीरसागर; (प० च० ३, ६३)।

खीरोवरु—पुं० क्षीरवर नामक द्वीप, (व० १०, ६, ६)।

खीलय—पुं० (सं० कीलकः) १. कील, काँटा, मेख, २. खंवा, स्तंभ; "खीलय-कारणि देवउलु णउ जुत्तउ णासेवि"; एक खीले के लिए देवालय का नाश कर डालना उचित नहीं, (सुदं० ८, ६, १६)।

खीलिय—वि० (सं० कीलित) pinned down स्थिर कील से गड़ा हुआ; (प०-च० २५, १७, ८)।

खीव—वि० (सं० क्षीव) मदोन्मत्त, मत-वाला; (दे० ना० मा० ८, ६६)।

खीसण—पुं० (दे०) खींसना, झूरना; (सुदं० ८, २४, १०)।

खुंखणी—स्त्री० (दे०) रथ्या, मुहल्ला; (दे० ना० मा० २, ७६)

खुंखुणय—पुं० (दे०) नाक का छिद्र; (दे० ना० मा० २, ७६)।

खुंट—पुं० (दे०) खूंटा, "णारीखुंटइँ पसु पुरिसु···;" (जस० ४, १०, १२)।

खुंटण—पुं० (सं० त्रोटण) काटना, खण्डित करना "णिरहु वि अयसिर खुंटणं पडियउ" –निरीह (निस्पृह) होकर अज

(ब्रह्मा) का सिर काटने में प्रवृत्त हो सकता है; (ण० ६, ७, ५)।

खुंटु—पुं० (दे०) खूंट, ठूंठ (वह पेड़ जिसकी डालें, पत्तियां आदि न रह गई हों) "खुंटु वि तहों कम्में हुउ पलासु," उसके कर्म से वह ठूंठ भी मांस-भक्षी राक्षस बन गया, (सुदं० २, १४, ५)।

खुंडय—वि० (दे०) स्खलित; (दे० ना० मा० २, ७१)।

खुंद—पुं० (दे०) खुंदा, वाद्य-विशेष; (जंबू० ५, ६, १२)।

√खुंद—(सं०√क्षुद्) खोदना, खुदि; (प्रा० पैं० १, २०४)।

खुंपा—स्त्री० (दे०) वृष्टि को रोकने के लिए बनाया जाने वाला एक तृणमय उपकरण; (दे० ना० मा० २, ७५)।

खुज्ज—वि० कुब्ज, कूबड़ा, वामन; "जइ खुज्जें ससिहरु तोडिज्जइ," यदि कुब्ज मनुष्य चंद्रमा को तोड़ सकता हो; (म० १, १४, ६)। —य वि० (सं० कुब्ज+क) कूबड़ा; (प० च० २६, ४८; जस० २, ६, ६)।

खुज्जिया—वि० (सं० कुब्जिक) दासी; (जस० २, ३४, ७)।

खुज्जुल्लिय—वि० [सं० कुब्ज+उल्ल +क (स्वार्थे)] कूबड़ा; (जस० ३, २, २०)।

खुट्ट—वि० (सं० त्रुटित) टूटा हुआ। खुट्टी=बालकों की एक क्रिया जिससे वे परस्पर संबन्ध विच्छेद करते हैं, कुट्टी। (दे० ना० मा० २, ७४)। तुल० म० खुटलें।

√खुट्ट—सक० (सं० त्रुट्) तोड़ना, खण्डित करना। —इ; (जंबू० ३, ८, ६)। खुट्टंत–कृ०√त्रुट+शतृ (जंबू० ११, १५, ५)।

खुड—वि० विनाशक; (प० च० ४४, १३, ६)।

√खुड—(सं०√क्षुट्) खण्डित होना, चोट पहुंचाना। खुडिअ—भू० कृ० (सं० खुटित > खुड + अ) खण्डित होना; (प्रा० पैं० १, ११)। √खुड (सं०√तुड्>खण्डित करना; (जस० २, १०, ११, प्रा० खुट्ट, खुड) तोड़ना, —इ क्रि० व० (सं० त्रुट्यति>प्रा० खुडइ) (भ०)। खुडिउ–भू० का०; खण्डित कर दिया, काट डाला "खुडिउ सुकंठहों सीसु" –उसने सुकण्ठ के सिर को काट डाला; (ण० ७, १४, १३)। २. टूट गया, 'कालेण खुडिउ अइपक्कु पडिउ" –जो यथाकाल अपरिपक्व होकर टूट गया; (सुदं० ५, ७, १५)। तुल० म० खुडणें खुडन्त—व० कृ० (प० च० ४१, ७, ६)। खुडिउ—क्रि० भू० का० (सं० खण्डित १. काट लिया तोड़ लिया, खोंट लिया, "णं खुडिउ सरोवरसिरु खणेण," –मानो एक क्षण में ही सरोवर का सिर काट लिया गया हो, (क० १०, २, ८)। २. फोड़ दिया, 'इय भणि तहो सिरु चक्कें खुडिउ उच्छलंत-सोणिय जलु," –इस प्रकार कह कर उस (ह्यग्रीव) के सिर को चक्र से फोड़ दिया, जिससे शोणित (रक्त) रूपी जल उछल पड़ा, (व० ५, २३, २१)। खुडियउ—क्रि० (सं० तुड्>प्रा० खुट्ट) तोड़ा;

(प० च० १३, १०, १०)। खुडेंवि— पू० का० क्रि० (सं० तुड्>प्रा० खुट्ट) काट कर, खण्डित कर; (प० च० १७, ७, २)।

खुडक्क—अक० (दे०) १. शल्य की तरह चुभना, २. नीचे उतरना, ३. स्खलित होना; ४. क्रोध से मौन रहना। खुडुक्किउ—क्रि० भू० का०, खटकी; "खर-खरीहिँ णिरु णिठ्ठरु मुक्किउ, काणणहरिणहँ कण्णे खुडुक्किउ"— गधा-गधी की निष्ठुर रेंक वन के हरिणों के कानो में खटकी; (ण० ७, २०, १०)।

खुडिय—वि० (सं० खण्डित>प्रा० खुडिअ) त्रुटित, खण्डित, विच्छिन्न; (प० च० १७, १२, ५)।

खुड्डं—वि० (सं० क्षुद्र) लघु (दे० ना० मा० २, ७४)।

खुड्डय—वि० (सं० क्षुल्लक) लघु, छोटा; (जस० ४, १७, २४)।

खुणुक्खुडिआ—स्त्री० (दे०) नाक, नासिका; (दे० ना० मा० २, ७६)।

खुणखुणंति—क्रि० खुनखुनाने की ध्वनि होना; (ण० ८, ३, ८)।

खुण्ट—(सं०√तुड्) तोड़ना, खुण्टेंवि—पू० का० क्रि०; (प० च० ४०, ६, ११)।

खुण्ण—वि० १. (सं० क्षुण्ण>प्रा० खुण्ण) भग्न, (सुदं० ७, १७, १०)। २. क्षुण्ण, मर्दित; (जंबू० ४, २१, ८)। ३. परिवेष्टित; (दे० ना० मा० २, ७५)।

खुत्त—वि० (दे०, प्रा० खुत्त) निमग्न, डूबा हुआ; तुल० गु० खुँतवुँ; (प० च० १४, ७, ६)। २. आसक्त, क्षुण्ण; सुदं० ८, ६, ६)।

खुत्तउ—वि० (दे०) निमग्न, डूबा हुआ; "धरइ मोहु संसारि खुत्तउ;" तुल० गु० खुत्यो, (प्रा० गु० ६, १७)।

खुद्द—वि० (सं० क्षुद्र) तुच्छ, नीच, अधम; (ण० ४, ६, १२)। —अ वि० (सं० क्षुद्र+क) १. क्षुद्र जन २. (सं० क्षुद्राः) वेश्याजन; (जंबू० ६, १२, १६)। —जंतु पुं० (सं० क्षुद्रजंतु) लघु जंतु; (जंबू० ६, १०, १२)।

खुद्दु—वि० (सं० क्षुद्र) तुच्छ, नीच, दुष्ट, अधम; (जंबू० ३, ११, ६)।

खुप्पइ—क्रि० (प्रा० खुप्प) खपना, निमग्न होना, "चंचलु खुप्पइ कुच्छियरंगइँ" चंचल मन खोटी रंगरेलियों में खपता है; (ण० ७, ६, ८)। खुप्पन्त—वृ० कृ० (प० च० २३, ६, ७)। —उ व० कृ० निमग्न, डूबा हुआ; गलिय-घुसिण कद्दमें खुप्पन्तउ" अर्थात् गलित केशर की कीचड़ में निमग्न; (प० च० २०, १०, ५)। खुप्पन्ति—क्रि० व०, गड़ गए, रह खुप्पन्ति," अर्थात् 'रथ गड़ गए,' (प० च० १७, २, ६)।

खुप्पाविय—वि० मज्जित, निमग्न; "रुहिर-कुसुंभइँ सव्व वि राइय, रस-वस-नसकद्दमे खुप्पाविय," उनके पैर काट लिये जाने से (बाहर निकली हुई) आँतों के गुल्फ बन गए एवं विद्याधर सैनिक वसा एवं नसों के कद्दम में निमग्न कर दिए गए; (जंबू० ६, १४, १२)।

√खुब्भ—(सं० क्षुभ्>प्रा० खुभ) डरना,

घबड़ाना। —ए (सं० क्षुभ्यते) (भ०)।

खुब्भ—वि० (सं० क्षुब्ध) अशांत, भीत; (प० ३, १४, ६)। —य वि० (सं० क्षुब्ध+क) (क्षुब्धितार्य) (जस० ४, १६, १)।

खुब्भिय—वि० (सं० क्षुब्ध) क्षोभ-युक्त; (प० ४, २४, १)।

खुर—पुं० (सं० प्रा० खुर) घोड़े के खुर; (प्रा० पैं० १, २०४)।

खुरप्प—पुं० (सं० क्षुरप्र>प्रा०खुरप्प) १. खुरपा, घास काटने का लोहे का औजार, (महा० ११-१-६)। २. शस्त्र-विशेष, "तिक्खखुरुप्पि खणि खोहायिउ," उन्होंने अपने तीक्ष्ण खड्ग से क्षणमात्र में दो टुकड़े कर दिया; तुल० म० खुरपें; (जस० ३, ७, ११)।

खुरसाण—पुं० (सं० खुरशान) देश का नाम; (प्रा० पैं० १, १५१)।

खुरहखुडी—स्त्री० (दे०) प्रणय-कोप; (पढ)।

खुरुप्प—देखो खुरप्प; (प० च० १७, ६, ४)।

खुलुह—पुं० (दे०) पैर की गाँठ; (दे०-ना० मा० २, ७५)।

खुल्ल—वि० (सं० क्षुल्ल+क) छोटा लघु; (जस०)।—य वि० (सं० क्षुल्लक) क्षुद्र; (मि० १, २)। —त्त पुं० (सं० क्षुल्लकत्व) लघुता; (जस० ४, २८, २०)।

खुल्ल—न० (दे०) कुटी, कुटीर; (दे०-ना० मा० २, ७४)।

खुल्लण—वि० (सं० क्षुल्लक) क्षुद्र, दुष्ट, छोटा; तुल० राज० खोळ्ळो, (प्रा० पैं० १, ७)।

खुल्लिरी—स्त्री० (दे०) संकेत; (दे०-ना० मा० २, ७०)।

खुवइ—क्रि० दूर करती है; (सं० रा०)।

खुवय—पुं० (दे०) तृण-विशेष; (दे०-ना० मा० २, ७५)।

खुह—अक० (सं० क्षुभ्) क्षुब्ध होना, घबड़ाना; खुहिअ; (प्रा० पैं० १, १५१)।

खुहिउ—क्रि० भू० का० (सं० क्षुभ्>प्रा० खुभ, खुभइ) क्षुभित हुआ, क्षुब्ध हो गया; (प०च० १५, ४, ६; जंबू० ४, १०, ८)।

खुहिय—वि (सं० क्षुभित) क्षोभ-प्राप्त; (व० ४, ६, १२)।

खूभ—क्रि० (सं० क्षुभ्) क्षोभ पाना, क्षुभित होना। —इ व० (रा० ३२)।

खूट—क्रि० (दे० खुट्ट) खूटना, कम पड़ना। —उ; (रा० ३४)।

खूधी— भू० का० क्षुब्ध हुई, जहि आवंति रति आपणइ हिअइ अति खुठु खूधी—जिसके आते ही अपने हृदय में रति अत्यंत क्षुब्ध हुई, (रा० ४४, १४)।

खेअ—पुं० १. (सं० खेद>प्रा० खेअ) खेद, उद्वेग, शोक (सं० रा०; जंबू० १०, १६, ८)। २. पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १५)।

खेअरिंद—पुं० (सं० खेचरेन्द्र) खेचरों का राजा; (प० च० ६, ५२)।

खेआलु—वि० (दे०) १. मंद, आलसी; २. असहिष्णु, ईर्ष्यालु; (दे० ना० मा०-

२, ७७) ।

खेउ—पुं० १. (सं० खेद>प्रा० खेव) उद्वेग, खेद, क्लेश, खिन्नता; (प० च० १०, १०, ७; रि० २, ६) । २. पुं० [काल) क्षेपः] काल का व्यतीत होना; (प० च० ३१, १६, ७) । ३. क्षेम तुल० प्राचीन म० खेव; (भ०) ।

खेए—पुं० (सं० खेद>प्रा० खेअ) शोक; (व० २, २, ३) ।

खेड—न० (सं० खेटक>प्रा० खेडय) १. खेड़ा, गाँव; (सि० १, ३) । २. न० (सं० खेल) खेल, क्रीड़ा; (जंबू० ४, १६, १६) । —य न० क्रीड़ा, खेल; (हे० ४२२, ६) । —य न० (सं० खेटक> प्रा० खेडय) छोटा गाँव; तुल० म० खेडें; (ण० ३, १५, ११) । न० (सं० खेट+क=मूसल) आयुध-विशेष; (प० च० ७१, २१) ।

खेडामगाम—पुं० (सं० खेट+ग्राम) खेड़ें-गाँव; (ण० १, ६, ३) ।

खेडिअ—वि० (दे०) हल से विदारित; (दे० ना० मा० १, १३६) ।

खेड्ड—न० (सं० खेल>प्रा० खेड्ड, खेड्डय) क्रीड़ा, खेल; (प० च० ६, ७, १) । खेड्ड—न० खेल, क्रीड़ा; (सुद० ८, १८, ६) ।

खेड्ड, खेड्डय—न० (सं० खेल) खेल, क्रीड़ा; (भ०; प० च० ३१, १६, ७) ।

खेड्ड—अक० (सं० खेल>प्रा० खेड्ड, खेड्डय) क्रीड़ा करना । (भ०) । खेड्डिय —भू० का० क्रीड़ा करने लगा, "खेड्डिय अणडुह व्व जलधारहिं, ताम दसाणणु वरुण-कुमारेंहिं" अर्थात् तब तक दशानन वरुणकुमारों के साथ उसी प्रकार क्रीड़ा करने लगा जैसे बैल जलधाराओं से, (व० च० २०, ७, ६) ;

खेतं—पुं० न० (सं० क्षेत्र>प्रा० खेत्त) कृषि-भूमि, क्षेत्र; "खेतं हंसिएं व्रीहि लविंति कमारें" —क्षेत्रे दात्रेण व्रीहलो लूयन्ते कर्मकरेण इत्यत्र कर्मकरः; तुल० पं० खेत; (उ० व्य० प्र० १३–२२) ।

खेतल—पुं० (सं० क्षेत्रपाल) क्षेत्ररक्षक, खेत का रखवाला; (प्रा० गु० १२, ५८) ।

खेत्त—पुं० न० (सं० क्षेत्र>प्रा० खेत्त) खेत, कृषि-भूमि; (सि० २, १८, ण० १, १३, ६) । —कम पुं० (सं० क्षेत्रक्रम) क्षेत्रसंख्या; (जंबू० ११, ११, १०) । —वाल पुं० क्षेत्रपाल; (जस० ३, ३६, ६) ।

खेत्ती—स्त्री० (सं० क्षेत्रिय>खेत्तिय) कृषि, खेती, खेत में अनाज बोने का कार्य; (सा० ५५) ।

खेदि—पू० का० क्रि० पीछा करके; "एहु पाए दरमलिअ ओहु सच्चान खेदि खा," वे (खरगोश और चूहे सैनिकों के) पैरों से कुचले जा रहे थे और आकाश के पक्षियों को बाज झपट कर खा रहे थे; (की० ४, १३१) ।

खेमंकर—पुं० १. तृतीय कुलकर; (प० च० ३, ५२) । २. मुनि-विशेष-नाम; (प० च० २१, ८०) । ३. राजा-विशेष-नाम; देशभूषण व कुलभूषण के पिता; (प० च० ३९, ८६) ।

खेमंधर—पुं० चतुर्थ कुलकर; (प० च० ३, ५२) ।

खेम—न० (सं० क्षेम>प्रा० खेम) १. कुशल, कल्याण; (भ०)। २. प्राप्त वस्तु की देखभाल (लब्धस्य रक्षणम्); (जस० ३, ३६, ३)। ३. द्वीप-विशेष; (प० च० ६, ३३)। खेमु; (व० ३, ४, १३)। १. दाशरथी राम की प्रजा का अगुआ; (प० च० ६३, १७)।

खेमञ्जलि—स्त्री० (सं० क्षेमाञ्जलि) नगर-विशेष; (प० च० ३१, ४, १)।

खेमा—स्त्री० (सं० क्षेमा) क्षेमपुरी नामक नगरी-विशेष; (प० च० २०, १०)।

खेमापुरी—स्त्री० (सं० क्षेमापुरी) नगरी-विशेष; (व० ८, १, ३)।

खेयर—पुं० (सं० खेचर>प्रा० खेअर, खयर) विद्याधर, विद्याबल से आकाश में चलने वाला मनुष्य; (सि० २, २)। —त्त पुं० (सं० खेचरत्व) आकाश-गमन की सामर्थ्य; (जस० १, ७, ४)। —णंद पुं० वानरवंशीय राजा; (प० च० ६, ८४)।

खेयरा—पुं० विद्याधर "कीलमाण निरु णायरा णरा, णउ सरंति णिय-णिउल खेयरा," —जहाँ नागरजन बहुत क्रीडाएँ किया करते हैं तथा विद्याधर अपने घर (वापस लौटकर) नहीं जाना चाहते; (व० १, ८, ११)। टि०—अपभ्रंश में यद्यपि दीर्घ स्वरांत शब्द स्त्री लिंग में प्रयुक्त होते हैं, परन्तु लोक-व्यवहार में 'खेयरा' शब्द 'खेयर' के अर्थ में ही प्रयुक्त है। अपभ्रंश में आकारान्त शब्द पुं० भी हैं, यथा—अब्भा (बादल)।

खेर—पुं० (दे०) द्वेष, नाश; (व० ३, २४, ११)।

खेरि—स्त्री० (दे०) १. कलुषता, उद्वेग; (प० च० १३, १०, १०)। २. द्वेष, (ण० ८, १५, १३)। ३. क्षोभ, चिंता, बेचैनी; (प० च० ४०, १६, ३)। ४. वैर, (जस० ४, १, ५)।

√खेल—अक० (सं० खेल्>प्रा० खेल) खेलना; (उ० व्य० प्र० ५२–१७)। खेल्लइ; (की० २, ६३)। खेलंत—व० कृ० (प्रा० पैं० १, १५७)। खेलन्त —व० कृ० खेलते हुए; (प० च० ६, ४, १)। खेलन्ते—क्रि० भू० का० "सिकार खेलन्ते, तीर मेलन्ते," वे शिकार करते और तीर फेंकते चल रहे थे; (की० ४, १३६)।

खेलग्इ—पुं० स्त्री० (दे०) खिलाड़ी; (व० ५, १३, ४)।

खेला—पुं० १. खेला नामक पुरुष, पुरुष-नाम-विशेष; (जस० ४, ३०, १)। २. स्त्री० (सं० खेलन+क) खेल, क्रीड़ा तुल० गु० खेल; "सालिभद्द-मुणि-रासो जे खेला दिंती, तेंसि सासण-देवी जणउ सिव-संती," (प्रा० गु० १४, ४२)। खेलत्तणें; खेल के लिए, हँसी के बहाने; (की० १, १८)।

खेलाखेली—स्त्री० पुनः पुनः खेलना, "ताह होउ सवि-वार, खेलाखेलि खेम-कुशल;" (प्रा० गु० १२, ५७)।

√खेलाव—(सं० खेलयति खिलाना; "पुतली पे (खे) लाव" —पुत्रिकाभिः खेलयति; (उ० व्य० प्र० ५२–१७)।

√खेलिअ—(सं० खेल्यते) खेलना; (उ० व्य० प्र० २०-५)।

√खेल्ल—(स० खेल्>प्रा० खेल) क्रीड़ा

करना; (जस० २, ३२, ६)। —इ; व० खेलना; (की० २, ६३)। खेल्लन्ति (हे० ३८२)। खेल्लिवि—पू० का० क्रि०, खेलकर; (ण० ३, १२, १०)।

खेल्लण—न० (सं० खेलन+क>प्रा० खेलण) खिलौना; (संवि० ३, ६, २)। —उ न० खिलौना (जंबू० ६, ३, ६)।

खेल्लिअ—प्र० (दे०) हँसी, ठट्ठा; (दे० ना० मा० २, ७६)।

खेव—पुं० (सं० क्षिप्र) शीघ्र; "जाणावहि पइसारहि खेवें," खवर दो और शीघ्रता से हमारा प्रवेश कराओ; (म० १, २३, ६)। २- खेद; (क० २, १४, २)।

खेवइ—क्रि० (सं० क्षेपयति) फेंकना; (भ०)।

खेविय—वि० (सं० खेदित) खिन्न किया हुआ; (भ०)।

खेह—पुं० न० (दे०) रज, धूल; (प्रा० पैं० २, १११; प्रा० गु० १२, १८)।

खोट्टिया—स्त्री० (सं० खोटिः=चालाक और चतुर स्त्री) दासी; (जंबू० ४, २१, १२)।

खोट्टी—स्त्री० (दे०) दासी, चाकरानी; (दे० ना० मा० २, ७७)।

खोड—वि० (दे०) १. धार्मिक, २. लँगड़ा; (दे० ना० मा० २, ८०)। —उ वि० (दे०) लँगड़ा; तुल० राज० खोड्यो (प्रा० पैं० १, ११६)।

खोडि—स्त्री० (दे०) क्षति; "एह ज अम्हह खोडि जं घर-सूरत्तणु वहइ;" तुल० गु० खोड; (प्रा० गु० ३८, ५५)।

खोडी—स्त्री० (दे०) गर्दभी; "दिण्णवल्लिगल-खोडीसंगम संचारिय मंदुरहि तुरंगम," अर्थात् गले में वेलें डालकर बाँधी हुई गधियों के संगम के लिए घुड़सालों में घोड़ों का संचार कराया गया; (जंबू० ५, १०, २२)।

खोणि—स्त्री० (सं० क्षोणि>प्रा० खोणि) पृथ्वी; (की० ४, ३७; सुदं० ७, ६, २; प० च० ६, १०)। खोणी; (जंबू० १, १५, ३; भ०, जस० १, १८, ६)।

खोणिरय—स्त्री० (सं० क्षोणीरज>प्रा० खोणिरय) पृथ्वी की धूल; (व० ५, ७, १२)।

खोणियल—पुं० (सं० क्षोणीतल> प्रा० खोणियल) पृथ्वीतल; (जस० ४, ३, ११)।

खोणीरुह—पुं० (सं० क्षोणीरुह) वृक्ष; (जंबू० ४, १६, ३)।

खोदालम्ब, खोदालम्म—पुं० (फ़ा० खुदा+अ० आलम) संसार के अधिपति; (की० ३, ११)।

खोभ—पुं० (सं० क्षोभ) इस नाम का रावण का एक योद्धा; (प० च० ५६, ३२)।

खोभ—सक० (सं० क्षोभय्) १. विचलित करना; २- आश्चर्य उपजाना; ३. रंज पैदा करना। खोभंत—व० कृ० (प० च० ३, ६६)।

खोभण—न० (सं० क्षोभण) क्षोभ उपजाना, विचलित करना; (प० च० २, ८२)।

खोयण—न० (सं० खनन) खोदना; (जंबू० ६, ८, १६)।

खोर—न० (दे०) पात्र-विशेष, पिटारी; खोर, "पच्छएँ जं घणु लद्धु चउग्गुणु, नियसोहग्गखोरें निक्खई पुणु," —पीछे जो चौगुना धन, मिला, उसे अपनी शृंगार-पिटारी में डाल लिया; (जंबू० ६, १३, ६)।

खोल—पुं० (दे०) १. छोटा गधा; (दे० ना० मा० २, ८०)। २. वस्त्र का एक देश; (दे० ना० मा० २, ८०)।

खोलिर—वि० क्रीडनशील, खेलते हुए; (जस० ३, १, १७)।

खोल्ल—वि० (दे०) गम्भीर; तुल० म० खोल; (जस० ३, १, १७)।

खोसलय—वि० (दे०) लम्बे और बाहर निकले हुए; दांत वाला; (दे० ना० मा० २, ७७)।

खोसला—स्त्री० (दे०) दंतुल स्त्री, लम्बे और बाहर निकले हुए दांत वाली स्त्री; (सुदं० ४, १४, ८)।

खोह—पुं० (सं० क्षोभ>प्रा० खोभ, खोह) विचलता, संभ्रम; (ण० १, ६, ६)। खोहु; (सुअंध० १, ६, ४; जंबू० ६, ११, ४)।

√खोह—(सं० क्षोभय्>प्रा० खोभ) १. विचलित करना, २. धैर्य से च्युत करना, ३. आश्चर्य उपजाना, ४. दुःख पैदा करना। —इ सक० (सं० क्षोभयति) (भ०, क० १०, २६, ७)।

खोहण—वि० (सं० क्षोभणक>प्रा० खोभण, खोहण) क्षुभित करने वाला; (की० ४, ३१)।

खोहिय—वि० (सं० क्षोभित>प्रा० खोभिय, खोहिय) विचलित किया हुआ; (सुदं० ११, २, ६)।

ग

ग—पुं० (सं० प्रा० ग) व्यंजन-वर्ण-विशेष, इसका उच्चारण-स्थान कण्ठ है।

गंग—स्त्री० (सं० गङ्गा>प्रा० गंगा; गंग) गंगा नदी; (क० १, ३, ३)। —दत्त पुं० मुनि-विशेष-नाम; नवम वासुदेव का पूर्वजन्म-नाम; (प० च० २०, १७२)।

गंगा—स्त्री० (सं० गङ्गा>प्रा० गंगा) नदी-विशेष; (भ०; जंबू० ६, ११, ५, प्रा० पैं० १, ८२)। —वाडी स्त्री० गंग-राजाओं की राजधानी (आंध्र प्रदेश में)। —सअरु पुं० (सं० गङ्गा+सागर) प्रसिद्ध तीर्थ-विशेष, जहाँ गंगा समुद्र में मिलती है; (दो० को०)। —सरि स्त्री० (सं० गङ्गा+सरित्) गंगा नदी; (जस० २, ३०, ८)। —हर पुं० विद्याधर राजपुत्र; (प० च० ८, १६५)।

गंगोवहि (पुं० (सं० गङ्गा+उदधि) गंगासागर; (जंबू० ६, ११, १५)।

गंगेअ—पुं० (सं० गाङ्गेय>प्रा० गंगेअ) भीष्मपितामह; (ण० १, ४, ४)।

गंछ, गंछय—पुं० (दे०) वरुड, इस नाम की एक म्लेच्छ जाति; (दे० ना० मा० २, ८४)।

√गंज—हरा देना। गंजिअ भू० का० कृ० मारा, (प्रा० पैं० १, १२६)।

गंजिआ—भू० का०, मार दिया, (प्रा० पैं० २, १२८)।

गंज—पुं० (दे०)गाल; (दे० ना० मा०-२, ८१)।

गंजण—न० (दे०) विनाश; (सि० २, १)।

गंजा—स्त्री० (सं० गञ्जा) सुरा या मद्य की दुकान; (दे० ना० मा० २, ८५)।

गंजिअ—पुं० (सं० गाञ्जिक) कलाल, दारू बेचने वाला; (दे० ना० मा० २, ८५)।

गंजिउ—क्रि० भू० का० (सं० गञ्जन =पराजित करना) मर्दित, पराजित हुआ; "कण गंजिउ भुवणि महिलाहं"—भुवन में महिलाओं द्वारा कौन पराजित नहीं हुआ, (म० १, ७, १)।

गंजिल्ल—वि० (दे०) १. वियोग-प्राप्त, वियुक्त; २. भ्रांत-चित्त, पागल; (दे०-ना० मा० २, ८३)।

गंजोल—वि० (दे०) व्याकुल; (पड्)।

गंजोल्लिय—वि० (दे०) १. वश में करने वाला; "ता पणभइ वाणि गंजोल्लियमणु, णग्गउ रुद्दु धुलिधूसरतणु," अर्थात् इस पर वणिक बोला—अहो, मन को वश में करने वाला रुद्र भी तो नग्न और धूलि-धूसरित शरीर होता है, (जस० ३, ३६, ५)। २. रोमांचित; (दे० ना० मा० २, १००; भ०)। ३. न० गुदगुदी, गुदगुदा-हट, हँसाने के लिए किया जाने वाला अंग-स्पर्श; (दे० ना० मा० २, १००)।

गंठ—सक० (सं० ग्रथ्>प्रा० गंठ) १. गूँथना, २. बनाना, ३. गठना; (पड्)।

गंठि—पुं० स्त्री० (सं० ग्रन्थि>प्रा० गंठि) १. गाँठ, जोड़ २. बांस आदि की गिरह; (सं० रा०)। २. छल (जंबू० ५, ६, १६)।

गंठिअ—वि० (सं० ग्रथित) गठा हुआ, गूँथा हुआ; गंठिआ; (रा० २३)।

गंठिआ—स्त्री० (सं० ग्रन्थि+क>प्रा० गंठि+अ) गाँठ; (प्रा० पैं० २, ७७)।

गंड¹—पुं० न० (सं० गण्ड>प्रा० गंड) गंडस्थल, गाल, कपोल; (जस० १, ३, ६; सं० रा०, जंबू० ५, १३, १०)। —यल पुं० (सं० गण्ड+तल) गण्ड-स्थल; (जंबू० ४, २२, १६)।

गंड²—पुं० आदि गुरु चतुष्कल (ऽ।।); (प्रा० पैं० १, २७)।

गंड³—पुं० (दे०) १. वन, जंगल; कोतवाल, ३. छोटा हिरण; ४, नाई; (दे० ना० मा० २, ६६)।

गंडअ—न० (सं० गण्डुत्) तृण-विशेष; (दे० ना० मा० २, ७५)।

गंडआ—स्त्री० गंडका, छंद का नाम; (प्रा० पैं० २, १६८)।

गंडक—स्त्री० (सं० गण्डकी) नदी-विशेष, एक नदी जो गंगा में गिरती है और नैपाल में हिमालय से निकलती है, पैरि तुरंगम पार भइउ गंडक के पानी; (की० ४, १५६)।

गंडयत्माळण—पुं० (दे०) गण्डमाला (रोग); (जंबू० ८, ७, ८)।

गंडय—पुं० (सं० गण्डक>प्रा० गंडय) गेंडा, जानवर-विशेष, जलमहिष; तुल०

म० गेंडा; (ण० ६, २५, १०; सि० १, ६; जस० १, १०, ३)।

गंडयलुल्ल—पुं० न० (सं० गण्ड+तल+उल्ल (स्वार्थे) >प्रा० गंड+यल+उल्ल) कपोल-तल; (ण० ५, ६, ६)।

गंडीरी—स्त्री० (सं० गण्डिका>प्रा० गंडिया, गंडीरी) गंडेरी, ईख या गन्ने का छोटा टुकड़ा; (दे० ना० मा० २, ८२)।

गंडीव—न० (सं० गांडीव=अर्जुन का धनुष) धनुष (अर्थ विस्तार), मूल शब्द अर्जुन का धनुष; (दे० ना० मा० २, ८४)।

गंडो—पुं० काव्य छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ११३)।

गंथ—पुं० (सं० ग्रन्थ>प्रा० गंथ) पुस्तक; (जस० ४, १७, २२)।

गंथि, गंथि—स्त्री० (सं० ग्रन्थि+ग्रन्थि) ग्रन्थ-ग्रंथि, एक प्रकार का रोग रक्त विगड़ जाने के कारण होता है और जिसमें गोल गांठों की तरह सूजन हो जाती है, ये गांठें प्रायः पक जाती हैं; ग्रन्थ-गांठ, रोग-विशेष; 'काइं गंथि गंथि वि मरह' —तुम लोग ग्रन्थ-ग्रन्थि में क्यों मरते हो; (प्रा० पैं० १, १०७)।

गंथुद्धरिउ—वि० (सं० ग्रन्थ+उद्धृत) ग्रन्थों में उद्धृत; (जंबू० १, ५, ४)।

गंधीणी—स्त्री० (दे०) क्रीड़ा-विशेष, जिसमें आंख बंद करके खेलते हैं; (दे०-ना० मा० २, ८३)।

गंदुअ—पुं० (सं० कन्दुक>प्रा० गेंदुअ) गेंद; (पइ)।

गंध[1]—स्त्री० (सं० गन्ध>प्रा० गंध) वास, महक; (जस० १, २, १०; जंबू० ४, ६, १)। —लुद्ध वि० (सं० गन्ध+लुब्ध) गंध का लोभी; (जंबू० ६, ६, २)।

गंध[2]—पुं० १. लघुवर्ण (।) २. दैत्य का नाम; (प्रा० पैं० १, १०१)।

गंधक—स्त्री० (सं० गन्धक) एक खनिज पदार्थ जो वैद्यक में उपधातु माना जाता है; (सि० २, २१)।

गंधक्करसि—स्त्री० (सं० गन्धोत्कर्ष>प्रा० गंध+उक्कोस) गंध का प्रकर्ष या अतिशय; (सं० रा०)।

गंधगए—पुं० (सं० गन्धगज) गंधहस्ति, वह हाथी जिसके कुंभस्थल से मद निकलता है; (व० ४, १७, ६)।

गंधगिरि—पुं० (सं० गन्ध+गिरि) पर्वत-विशेष-नाम; (जस० ४, २३, १०)।

गंधजुत्त—वि० (सं० गन्धयुक्त) गंध से युक्त; (जस० ४, २३, १०)।

गंधपिसाय—पुं० (दे०) गान्धिक (१. गंधी, २. गंधद्रव्य, ३. गांधी नाम का कीड़ा); (दे० ना० ना० मा० २, ८७)।

गुंजरपव्वय—पुं० (सं० गुञ्ज+पर्वत) पर्वत-विशेष; (प० च० ८, ८८)।

गंधमोअ—पुं० (सं० गन्ध+आमोद>प्रा० गंध+आमोअ) गंध से प्राप्त हर्ष या खुशी; (सं० रा०)।

गंधलया—स्त्री० (दे०) नासिका, घ्राण; (दे० ना० मा० २, ८५)।

गंधवंतु—वि० (सं० गन्धवत्) गन्धवान्,

"तं छंधवंतु तं रूववंतु;" (जस० ४, १२, ४)।

गंधवहि—वि० गंध वहन करने वाला, सुगंधित, (सं० रा०)।

गंधव्व—न० (सं० गान्धर्व>प्रा० गंधव्व) गान-विद्या; (ण० ३, १, ३)। पुं० (सं० गन्धर्व) १. विद्याधर राजा; (प० च० ५१, १२)। २. कवि-नाम; (जस० १, २७, २३)। पुं० जनपद-विशेष; (प० च० १७, ८२)। —गीय-नयरा स्त्री० जनपद-विशेष; (प० च० ५५, ५२)। —लच्छी स्त्री० गन्धर्व-लक्ष्मी, (जस० ४, २४, ७)। —सिरी स्त्री० (सं० गन्धर्वश्री) स्त्री-विशेष-नाम; (जस० ४, २३, २०)। —सेन पुं० (सं० गन्धर्वसेन) नाम-विशेष; (जस० ४, २३, १८)। —ा स्त्री० जनपद-विशेष; (प० च० ७, ५०)।

गंधव्वा—स्त्री० विद्याधर राजकुमारी; (प० च० ५, २४३)।

गंधव्वाणुलग्ग—वि० (सं० गन्धर्व+अनुलग्न) गंधर्वों के समान; (जंबू० १, १०, २)।

गंधहरिण—पुं० (सं० गन्धहरिण>प्रा० गंधहरिण) कस्तूरिकामृग, कस्तुरिया-हरिण (जस० ४, २३, ११)।

गंधाणा—स्त्री० (सं० गन्धान>प्रा० गंधाण) मात्रिक छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, ६४)।

गंधारि—स्त्री० (सं० गान्धारी>प्रा० गंधारि) स्त्री-विशेष; (ण० ८, १२, ८)।

गंधारी—स्त्री० विद्याधर राजवधू; (प० च० ५, २४३)।

गंधिघिर—वि० गंध से आसक्त; (जंबू० ५, १०, ६)।

गंधि—स्त्री० (सं० गन्ध>प्रा० गंध पुं०) गंध; तुल० म० गंध; (प्रा० गु० ५, १५)।

गंधि—वि० (सं० गन्धिन्>प्रा० गंधि) गंध-युक्त; (भ०)। —अ वि० दुर्गंध-युक्त; (दे० ना० मा० २, ८३)।

गंधीय—पुं० (सं० गान्धिक>प्रा० गंधिअ) गंधी, अतर फुलेल बेचने वाला, गंध-द्रव्य-बेचने वाला; (संधि० १७, १, २)।

गंधु—पुं० (दे०) घ्राणेंद्रिय; (व० १०, ८, ५)।

गंधुत्तमा—स्त्री० (सं० गन्धोत्तमा) मदिरा, सुरा; (दे० ना० मा० २, ८६)।

गंधुद्धंत—वि० (सं० गन्ध+उद्धाव्+शतृ) गंध से आकृष्ट; (जंबू० ८, १२, ४)।

गंधेल्ली—स्त्री० (दे०) १. छाया; २. शहद की मक्खी; (दे० ना० मा० २, १००)।

गंधोल्ली—स्त्री० (दे०) १. इच्छा, अभि-लाषा; २. रजनी; (दे० ना० मा० २, ९९)।

गंधोवउ—न० (सं० गन्धोदक>प्रा० गंधोदग, गंधोदय) सुगंधित जल; (सि० १, ८, १८)।

गंपि—पू० का० क्रि० (सं० गमय्>प्रा० गम) जा कर; (भ०; ण० ३, १२, ६)। गम्पि, गत्वा (प० च० २, ७, ५)।

गम्मिणु—पू० का० क्रि० जा कर (प० च० १, १५, ६)।

गंभीर—वि० (सं० गम्भीर>प्रा० गंभीर) गहरा; (जस० १, १७, १८, की० २, १०४)। —त्तण पुं० (सं० गम्भीरत्व) गंभीरता; (भ०)।

गंभीरा—स्त्री० रसिका छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ८६)। २. नदी-विशेष; (प० च० ३२, ११, १६)।

गंभीमा रव—पुं० (सं० गम्भीर रव) गम्भीर स्वर; (व० २, १२, ४)।

गंभीरि—वि० (सं० गम्भीर>प्रा० गंभीर) गम्भीर; (व० १, २, ८)।

गअ¹—वि० (सं० गत>प्रा० गय) गया हुआ; (जस०)।

गअ²—पुं० (सं० गज>प्रा० गय) हाथी; (प्रा० पैं० १, १३२)। २. राक्षस-योद्धा; (प० च० ५६, २)। —जूह पुं० (सं० गजयूथ) हाथियों का समूह; (प्रा० पैं० १, ६२)।

गअणंग—पुं० गगनांग, एक मात्रिक छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, १५०)।

गअण—न० (सं० गगन>प्रा० गगण) १. आकाश; २. आदि लघु पंचकल (ISS)। (प्रा० पैं० १, ३४)। गअणु—पुं० गगन स्कंधक का भेद; (प्रा० पैं० १, ७५)।

गअणाराए—पुं० (सं० गणेशराय) गणेशराय नामक राजा; (की० ३, १७)।

गअणेस—पुं० (सं० गणेश्वर) लणेश्वर नामक राजा का नाम, (की० १, ५६)।

गअवाल—पुं० (सं० गयापाल) नगर-विशेष, "गअवाल तिथि आतिन्ह जुड"—गयापालस्तीर्थयात्रिकान् जुडति। जुड शुन गतौ; (उ० व्य० प्र० ५१-२८)।

गआ—वि० (सं० गत>प्रा० गअ, गय) गया हुआ, गुजरा हुआ, मरा हुआ; (की० ४, १९८)।

गइंद—पुं० (सं० गजेन्द्र>प्रा० गइंद) श्रेष्ठ हाथी; (ण० ३, १७, १४)।

गइंवर—पुं० (सं० गजवर) प्रधान हाथी; तुल० राज० गेमर; (प्रा० गु० ११, ११)।

गइ—स्त्री० (सं० गति>प्रा० गइ) १. लोकोत्तर में गमन या स्वर्ग प्राप्ति; (की० ३, ४२)। २. गति; (जस० १, २८, ४; ण० २, १, १७; पाहु० १६६)।

गई स्त्री० दशा, गति; (प्रा० पैं० २, १२०)।

गइठाण—पुं० (सं० गतिस्थान>प्रा० गइ+ठाण) गति व स्थिति; (जस० ४, १३, ७)।

गइय—क्रि०, भू० का० (स० गताः) चली; (प० च० १२, ६, ६)।

गइवेयउ—न० (सं० ग्रैवेयक) हार; (ण० १, १७, १३)।

गउ—क्रि०, भू० का० (सं० गत>प्रा० गय) गया; (परम० १, ६; जंबू० ३, १२, २१)। २. समाप्त हुआ, (ह०)। व० कृ० जा कर; (प० च० १२, २, ३)। गउँ—भू० का० गया; (की० २, १५)। गया—भू० का० गया; तुल० गु० गया; (भ०)।

गउड—पुं० (सं० गौड>प्रा० गउड) गौड़ देश; (ण० ४, ७, १३)।

गउडी—स्त्री० (सं० गौडी) गौड देशीय स्त्री; (संधि० ६, ५, १०)।
गउर—त्रि० (सं० गौर) गौर वर्ण वाला; (ण० १, १६, १०)।
गउरव—पुं०(सं० गौरव>प्रा० गारव, गउरव) १. बड़प्पन, महत्त्व, २. सम्मान; (भ०; जंबू० ६, १६, १३)।
गउरविय—वि० (सं० गौरवित) गौरव-युक्त किया हुआ; (ण० ५, ६, १२; जस० २, ६, १८)।
गउरि—स्त्री० (सं० गौरी>प्रा० गउरी) पार्वती, "णं गउरि महेसहो कामरूव," अर्थात् जो महेश की देवी गौरी के समान सुंदरी थी; (क० २, २, ७)। —अ स्त्री (सं० गौरी) पार्वती; (प्रा० पैं० २, ४८)।
गए—क्रि० भू० का० (सं० गताः) गए; (उ० व्य० प्र० २०–१७)। गओ—भू० का० गया; (पाहु०)।
गगनपय—पुं० (सं० गगन+पथ) आकाश-मार्ग; (कौ० ३, ६८)।
गग्गर—वि० (सं० गद्गद>प्रा० गग्गर) गद्गद आवाज वाला, "पुणु किय गरहण गग्गर-गिरेण" अर्थात गद्-गद स्वर में अपनी निंदा करने लगा; (प० च० १३, ८, ७, सणतु० ४५६)।
गग्गर-सर—पुं० (सं० गद्गद स्वर) गद्गद आवाज वाला स्वर; (रि० ४, ७)।
गग्गरी—स्त्री० (सं० गर्गरी>प्रा० गग्गरी) छोटा घड़ा, जलपान, गगरी; (दे० ना० मा० २, ८६)।
गग्गिर—स्त्री० (सं० गद्गद>प्रा० गग्गिर, गग्गर) १. हकलाने वाला, अव्यक्त एवं अस्पष्ट बात कहने वाला; (सं० रा०)। २. गद्गद आवाज वाला; (भ०)।
गग्गिरगिर—स्त्री० (सं० गद्गद+गिर् >प्रा० गग्गर+गिरा) गद्गद स्वर; "अम्माएविएँ गग्गिरगिरए, जं भासिउ दिट्ठपरंपरए," अर्थात् परम्परा को जानने वाली मेरी अम्मा देवी ने गद्गद स्वर में कुछ कहा; (जस० २, १६, ६)।
गङ्ग—स्त्री० (सं० गङ्गा>प्रा० गंगा) गंगा नदी; (प० च० २३, ६, ३)।
गङ्गाहिसेय—पुं० (सं० गङ्गाभिषेक) शङ्कर; (प० च० ४३, ६, ६)।
√गच्छ—(सं०√गम्>प्रा० गच्छ) जाना, गमन करना; (जस० २, १, १०)। —इ व० (जंबू० २, ८, १८)। —हु (विधि०) (जंबू० ६, ४, १२)।
गच्छि—विधि० (जंबू० १०, ८, ११)।
गच्छंत—व कृ० (सं० गच्छत्) जाते हुए; (जस० ४, १०, ८)। गच्छमाण—व० कृ० (सं० गच्छत्) (जस० ४, १२, ६)।
गच्छ—पुं० (सं० गच्छ) वृक्ष, पौधा, गाछ, छोटा पेड़; (प्रा० पैं० २, ६३)।
गजवट्ट—स्त्री० (सं० गज+पटि, पटी) गजपटी, गजचित्रयुक्त वस्त्र; (प्रा० गु० २४, ७)।
√गज्ज—(सं० गर्ज्>प्रा० गज्ज) गर्जना करना, गरजना, घड़घड़ाना; (प्रा० पैं० २, १८१; सं० रा०)। —इ कि०, व० गरजना, (जंबू० ५, १३,

२३)। —हि क्रि० व० गरजना; "कोत्तिउ गज्जहि सुहडब्भन्तरे," अर्थात् सुभटों के बीच में कितना गरज रहा है; (प० च० २०, ६, ४)। गज्जंत—व० कृ० (सं० गर्ज+शतृ); (जंबू० ५, ८, १४)। —माण व० कृ० (सं० गर्ज्+शानच्); (जंबू० ७, ४, १५)। गज्जु—व० चिल्लाना; (हे० ४१८)। गज्जें वि—पू० का० क्रि० गरज कर; (प० च० १०, ८)।

गज्ज—न० (सं० गर्जन>प्रा० गज्जण) गर्जन, भयानक ध्वनि; "पलअ घण गज्ज सुनि इअर रव लुक्किआ;" अर्थात् प्रलय-काल के मेघों का गर्जन सुनकर अन्य शब्द छिप गए; (की० ३, ७०)।

गज्जणा—स्त्री० (सं० गर्जन> प्रा० गज्जण, न०) गर्जना, भयानक ध्वनि; (प० च० १७, ११, १०)।

गज्जन्ता—क्रि० भू० का० गरज रहे थे, "हुङ्कारे वीरा गज्जन्ता;" अर्थात् हुंकार करते हुए वीर गरज रहे थे; (की० ४, १७४)।

गज्जर—पुं० (सं० गृञ्जन>प्रा० गज्जर) कन्द-विशेष; गाजर; (संधि० १८, ४, ५)।

गज्जिय—वि० (सं० गर्जित>प्रा० गज्जिअ) जिसने गर्जन किया हो वह, तुल० म० गाजणें; (भ०)।

गज्जिरव—पुं० (सं० गर्जि+रव) गर्जन; (जंबू० ४, २०, १२)।

गज्जु-विज्जु—स्त्री० (सं० गर्जित+विद्युत >प्रा० गज्जित्तु, गज्जिर+विज्जुआ) गर्जन करने वाली बिजली; तुल० गु० गाजवीज; (प्रा० गु० २३, ३५)।

गज्जिउ—क्रि० पीड़ित किया; तुल० मराठी गांजणे; (हे० ४१०)।

गञ्जोल्लिय—वि० पुलकित, रोमाञ्चित; (प० च० १७, ११, १०)।

गड्डुअ—न० (दे०) स्तनों के ऊपर की वस्त्र-ग्रंथि; (दे० ना० मा० २, ९३)।

गडयडइ—क्रि० (दे० प्रा० गडतड= गर्जन करना) गिड़गिड़ाना; (जंबू० ६, १४, ४)।

गडारउ—पुं० (सं० गर्त>प्रा० गड्ड) गड्ढा, गड़हा, खड्ड; तुल० गु० गडारो; (प्रा० गु० ७, ३२)।

गड्ड—न० (दे०) शय्या, बिछौना; (दे० ना० मा० २, ८१)।

गड्डरी—स्त्री० (दे०) छागी, अजा, बकरी; (दे० ना० मा० २, ८४)।

गड्डा—पुं० (सं० गर्त>प्रा० गड्ड) गड्ढा, गढ़ा; तुल० गु० खाडो; (संधि० १४, ३, ६)।

गड्डिवि—पू० का० क्रि० (दे०) गाड़ कर; (जंबू० ६, ८, १७)।

गड्डी—स्त्री० (सं० गन्त्री>प्रा० गंति, गंती, गड्डिआ) गाड़ी, यान, शकट; (दे० ना० मा० २, ८२)।

गड्डुय—स्त्री० (सं० गन्त्री>प्रा० गड्डिआ, गड्डी) शकट, गाड़ी; तुल० गु० गाडु; (संधि० ३–२, ६)।

√गढ—(सं० √घट>प्रा० घड, गढ) गढ़ना, बनाना; (प्रा० पैं० ३, १६७)। गढइ; (हे० प्रा० व्या० ४, ११२)।

गढ—पुं० (दे०) दुर्ग, किला; (दे० ना० मा० २, ८१)। गड्ड; (प्रा० चि०)।
गण्—क्रि० (सं० गणय्>प्रा० गण) गिनना, गिनती करना (रा०)। —इ व०; ए० (सं० गणयति) गिनना; (हे० ३५८, जंबू० ६७, १४)। —हि व०, म० पु०, ए०; (प० च० ६, १०, ४)। गणंति—क्रि०; व० गिनना; (पाहु०)। गणन्ता—व० कृ० सोचते हुए; (की० २, २२६)। गणन्तिए—व० कृ० (सं० गणन्त्या:) गिनते हुए; (हे० ३३३, १)। गणिज्जे—आज्ञार्थक, गिनी जाएँ; (प्रा० पैं० १, १०७)। गणिल्लो—क्रि० (सं० गणय्>प्रा० गण) वार-वार अनुभव करना; (की० ३, ५२)।
गण—पुं० (सं० प्रा० गण) समुदाय, समूह; (जस० २, १, ७; सि० १, ४०)। २. वार्णिक या मात्रिक गण (प्रा० पैं० १, १२)।
गणण—न० (सं० प्रा० गणण) गणना, गिनती; (जंबू० ८, ८, ४)।
गणसम—वि० (दे०) गोष्ठी-रत; (दे० ना० मा० २, ८६)।
गणहर—पुं० (सं० गणधर) एक प्रकार के जैनाचार्य जो तीर्थंकरों के शिष्य होते हैं, ये लोग तीर्थंकरों के उपदेशों का शिष्यों में प्रचार करते हैं; "गणहरयमुहसवण ठिय एक्कहिं," —एक कोठें में गणधर को प्रमुख करके सव श्रमण वैठे थे; (प्रा० गु० ५, ४२; जंबू० १, १६, ५)। गौतम; (व० १०, १, १)।
गणहु—न० (सं० ग्रहण>प्रा० गहण) पकड़ना "तासु वियट्टोहों अब्भिट्टाहों कवणु गहणु किर रावणु;" अर्थात् 'युद्ध में प्रवृत्त होने पर उसे रावण को पकड़ना कौन-सी वड़ी वात है,' (प० च० १२, ६, ६)।
गणणाइआ—स्त्री० (सं० गणनायिका) पार्वती, चण्डी; शिव-पत्नी; (दे० ना० मा० २, ८७)।
गणायमहु—पुं० (दे०) विवाह-गणक; (दे० ना० मा० २, ८६)।
गणाहिवइ—पुं० (सं० गणाधिपति) जिनदेव का प्रधान शिष्य; (प० च० २६, ४)।
गणि—स्त्री० (सं० प्रा० गण पुं०) समूह, समुदाय, यूथ; (वी० १, २)।
गणित्तिया—स्त्री० (दे०) अक्षमाला, रुद्राक्ष की माला; (प० च० ११, ३६)।
गणिय—न० (सं० गणित>प्रा० गणिय) १. गणित शास्त्र; (ण० ३, १, ३)। स्त्री० (सं० गणिका>प्रा० गणिया) वेश्या, (ण० ५, २, १०)। —उ स्त्री० गणिकाजना:, वेश्याएँ; "नउलुब्भउ ताउ किर गणियउ;" (जंबू० ६, १२, ७)।
गणियाणण—वि० (सं० गणित+ज्ञानिन्) गणितज्ञ; (व० १०, १, १४)।
गणियार—पुं० गणिकार, वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, ११)।
गणियारि—स्त्री० (दे०) करिणी, हस्तिनी, "णहाइ गइन्दु व सहुँ गणियारिहिँ;" —जैसे हाथी अपनी हथिनियों

के साथ नहा रहा हो;' (प० च० ५, १४, ७; २६, १३, ८)।

गणेसर—पुं० (सं० गणेश्वर>प्रा० गणेसर) छंद-विशेष; रोला छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ९३)।

गण्ठि—स्त्री० (सं० ग्रन्थि>प्रा० गंठि) गाँठ; (हे० ४२०, ३)।

गण्ठिवाल—वि० (सं० ग्रन्थिपाल) भाण्डागारपालक; (प० च० १४, २, ५)।

गण्ड—पुं० (सं० गण्डक>प्रा० गंडय) गैंडा, जानवर-विशेष; (प० च० ३, ५, ५)।

गण्डअ—वि० (सं० गण्डक>प्रा०गंडअ) चार की गिनती; (की० ३, ११२)।

गण्डवास—पुं० (सं० गण्डपार्श्व>प्रा० गंड+वास) गाल का पार्श्व-भाग, गण्डवास (surface of the cheeks); (प० च० १३, १२, ७)।

गण्ण—न० (सं० गणन>प्रा० गणण) गिनती, गणना; (प० च० २७, २, ६)। गण्णु गणना; (व० ३, १४, १०)।

गत्त¹—न० (दे०) १. चौपाई की लकड़ी-विशेष; २. पंक, कर्दम; (दे० ना० मा० २, ६६)। ३. वि० गया हुआ; (पड्)।

गत्त²—न० (सं० गात्र>प्रा० गत्त) शरीर; (प्रा० पैं० २, १२३, जस० १, १४, १; जंबू० ६, ७, ६)। गत्ता; (व० १, १४, १३)।

गत्तरक्खव—वि० (सं० गात्ररक्षक>प्रा० गत्त+रक्खअ) अंगरक्षक; (प० च० १६, १५, ४)।

गत्ताड़ी—स्त्री० (दे०) १. वनस्पति-विशेष; २- गाने वाली स्त्री; (दे० ना० मा० २, ८२)।

गद्दभ—पुं० (सं० गर्दभ>प्रा० गद्दभ) गधा; (जस० २, २७, १०)।

गद्दह—पुं० (सं० गर्दभ>प्रा० गद्दह) गधा, खर; (दे० ना० मा० २, ८०; की० ४, ११४)। न० (दे०) कुमुद, चंद्र-विकासी-कमल; (दे० ना० मा० २, ८३)।

गद्दिअ—वि० (दे०) गर्वित, गर्व-युक्त; (दे० ना० मा० २, ८३)।

गन्तय—कृ० (सं०√गै>प्रा० गा, गाअ; (सं० गायत्) गाते हुए; (प० च० २६, ११, ६)।

गन्दा—पुं०, ब० व०, कर्त्ताकारक, (फ़ा० गोयन्द:) गुप्तचर; (की० २, १६०)। पुं० (सं० कन्दुकः) गेंद; (की० २, १६१)।

गन्दुय—पुं० (सं० कन्दुक>प्रा० गेंदुअ, गंदुअ) गेंद; (प० च० १८, ३, ६)।

गन्धव—पुं० (सं० गन्धर्व>प्रा० गंधव्व) गन्धर्व, एक प्रकार की देव-जाति; (प० च० २५, १८, ८)।

गन्धार—पुं० (सं० गान्धार>प्रा० गंधार) स्वर-विशेष, रागिनी-विशेष; (प० च० १३, ६, ६)।

गन्धुक्कड—वि० (सं० गन्धोत्कट>प्रा० गंध+उक्कड) तीव्र या उत्कट गंध वाली; (प० च० १, १५, ३)।

गन्धोवय—न० (सं० गन्धोदक>प्रा० गंधोदग, गंधोदय) सुगंधित जल; (प० च० २२, १, २२)।

गन्न—न० (सं० गणन>प्रा० गणण)

गिनती; "सारासारपरिक्खणगन्नइं," (भ० २, २, ८)। पुं० (सं० गण्ड > प्रा० गंड) गाल, कपोल; (रा० १६)।
गब्भ—पुं० (सं० गर्भ > प्रा० गब्भ गर्भाशय, उत्पत्ति-स्थान; तुल० म० गाभा; (भ०; जस० २, २८, १)।
—ब्भंतर पुं० (सं० गर्भ + आभ्यान्तर) (जंवू० ४, ७, २)।
गब्भवई—स्त्री० (सं० गर्भवती) गर्भिणी स्त्री; (जंवू० ४, ७, ८)।
गब्भावयार—पुं० (सं० गर्भावतार) गर्भावतरण, "जसु गब्भावयारें संजायउ;" (व० २, १२, १)।
गब्भासय—पुं० (सं० गर्भाशय) स्त्रियों के उदर में वह स्थान जिसमें वच्चा रहता है, वच्चादानी; "गब्भासइ महु अवलोइयइँ अट्ठंगइँ कंपंतइँ," अर्थात् राजा ने गर्भाशय में मेरे आठों अंगों को कांपते (छटपटाते) हुए देखा; (जस० ३, ७, १३)।
गब्भिणा—वि० (सं० गर्भित > प्रा० गब्भिय) गर्भ-युक्त; (प० च० २५, २, ४)।
गब्भिणी—वि० (सं० गर्भिणी > प्रा० गब्भिण) गर्भवती, जिसे गर्भ हो; (क० ८, २, १)।
गब्भिय—वि० (सं० गर्भित > प्रा० गब्भिय) गर्भ-युक्त; (भ०)।
गब्भुब्भुअ— वि० (सं० गर्भ + उद्भूत) गर्भ से उत्पन्न; (जंवू० १, ५, ८)।
गब्भेसर—वि० (१) (सं० गर्भेश्वर) जन्म से विशिष्ट गुण वाला; (sovereign by birth) (२) गर्वीला, "तेण समाणु परम गब्भेसर, दिक्खइँ ठिय चउरासी णरवर" अर्थात् उनके साथ अत्यंत गर्वीले चौरासी राजाओं ने दीक्षा ली," (प० च० ३, १०, २)।
गब्भेसरि—वि० गर्भवती; (प० च० १६, ६, ५)।
गब्भोरुय—वि० (सं० गर्भ + उरु + ज) गर्भ से उत्पन्न; "रंभागब्भोरुयरइरामहों," (जंवू० ४, १३, १६)।
गभीरणाअ—पुं० राक्षस-योद्धा; (प० च० ५६, २८)।
गम—पुं० (सं० गमनम् > प्रा० गमण, गम) गमन; गति, चाल; (भ० ७, ३, ६, प० च० १, २६)।
√गम—(सं० गम् > प्रा० गम) जाना, चलना। गमिअ; 'गमिअ दिण पुणु ण मिलु'—गए दिन फिर नहीं मिलते; (प्रा० पैं० २, १६१)। गमिही—क्रि० (सं० गमिष्यति) बीत जायेगी; (हे० ३३०, २)। गम्पि—पू० का० क्रि० (सं० गत्वा) जाकर; (टि०—अपभ्रंश में गम् धातु से परे एप्पि प्रत्यय में एकार का विकल्प से लोप (हे० ४४२; हे० ४४२।१)। गम्प्पिणु—पू० का० क्रि० सं० गत्वा, जाकर; (टि—अपभ्रंश में √ गम से परे जो एप्पि और एप्पिणु प्रत्यय के एकार का विकल्प से लोप होता है, हे०, ४४२; हे० ४४२।१; (प० च० २७, १४, ६)।
गमण—न० (सं० गमन > प्रा० गमण) गमन, गति, चलना, "भोअण भक्खण छाड नहि गमणे न हो परिभूत," अर्थात् भोजन और भक्षण उन्हें किसी समय

छोड़ता न था, और न चलने से ही वे थकते थे; (कीо ४, १०३; पо चо १८, १०, ३)। —मणु विо (संо गमन+मनस्) जाने के लिए इच्छुक, (पо चо ६, ४, २)।

गमणि—विо स्त्रीо (संо√गम्>प्राо गम) गमनी, जाने वाली; (जंबूо १०, ८, १)।

गमय—विо (संо गमक>प्राо गमग) बोधक, निश्चायक; (पо चо ५, १५, २)।

गमागम—पुंо (संо गम+आगम) गमनागमन; (जंबूо ५, १३, २७)।

गमार—विо (संо ग्राम्य>प्राо गमार, गवार) असभ्य, गँवार, मूर्ख, "कां मन गाड, गोवोलि गमारन्हिछाड;" (प्राо गुо २३, १६)।

गमारि—विо गँवार; तुलо मगही गमार; (विनयचंद्रसूरि, नेमिनाथ, चतुष्पादिका)।

गमिअ—विо (संо गमित>प्राо गमिय) गत, गुजारा हुआ; (जसо)।

गमु—पुंо (संо गमन>प्राо गमण) गमन, "तं णिसुणेवि पवर-कइद्धएहि। गमु सज्जिउ किंकिन्धन्धएहिं," अर्थात् यह सुनकर किष्किन्ध और अन्धक दोनों प्रबल कपिध्वजियों ने जाने की तैयारी की; (पо चо ७, १, ६)।

गम्भीर—पुंо १. गम्भीर नामक राक्षस योद्धा; (पо चо ५६, ३)। २. विद्याधर राजा; "चन्दहो गम्भीरो, विराहिओ चेव दढसत्तो;" (पо चо ११४, १६)। ३. देश-विशेष; (पо चо ३०, २, १०)।

गम्भीरसत्तण—स्त्रीоसंоगम्भीरत्व) गम्भीरता, गहराई, "णव-जोयणाइं तुङ्गत्तणेण, वारह सप्पासङ्गत्तणेण। अट्ठोयर गम्भीररत्तणेण……।" अर्थात् ऊँचाई में नौ योजन, लम्बाई-चौड़ाई में बारह योजन, गम्भीरता में आठ;' (पо चо ४, ६, ८)।

गम्म—विо (संо गम्य>प्राо गम्म) जानने योग्य; (णо १, २, ८)।

√गम्म—(संо गम्>प्राо गम) जाना; —इ, (संо गम्यते); (पाहुо २१३)।

गम्वारिव—स्त्रीо (संо ग्राम+पाल+इमा) ग्रामीणता, ग्राम्यता; (राо ६)।

गयंद—पुंо (संо गजेन्द्र) श्रेष्ठ हाथी; (जंबूо ४, २१, १३)।

गय—विо (संо गत) १. गुजरा हुआ; (देо नाо माо १, ५६)। २, घूर्णित घुमाया गया; (देо नाо माо २, ६६)। ३. मृत, निर्जीव; (देо नाо माо २, ६६)। क्रिо भूо काо चले गए; (महाо ६६, १४, २)। गई; (विलाо)। स्त्रीо (संо गदा>प्राо गया) गदा, लोहे का मुग्दर या लाठी, लोहे का पाषाण का अस्त्र-विशेष; (पо चо ११, ८, ५)। विо-(संо गत>प्राо गय) प्राप्त "जय दसदिसिगयजसपसरधवल,"—जय हो आपकी, जिनकी कीर्ति के प्रसार से दसों दिशाएँ उज्ज्वल हो रही हैं; (णо १, ११, ७); गया हुआ, (पо चо १, ८, २); रहित 'गयरूवउ;' रूप-रहित, (महाо ६८, ८, १४)। नо (संо गद)

एक प्रकार का रोग, व्याधि (ण० ६, ६, ८)। न० (सं० गत>प्रा० गय) गति, गमन; (सं० रा०)। पुं० (सं० गज> प्रा० गय) हाथी; (प० च० ६, ६, ८, हे० ३३५, १)। —उल पुं० (सं० गज +कुल) (ण० ३, १७, ५)। —काल पुं० (गतकालः) बीता हुआ समय; (व० १०, ३६, ३)। —कुम्भइं न० (सं० गज+कुम्भ>प्रा० गय+कुंभ) हाथी का गण्ड-स्थल (हे० ३४५, १)। —पिओ वि०, प्रिया रहित (सणतु ४४६)। —पुर पुं० नगर-विशेष; (प० च० २०, १२४)। —वइ स्त्री० (सं० गज+गति>प्रा० गयगइ) हाथी का गमन; (प० १४, २, ८)। —सालउ स्त्री० (सं० गज+शाला>प्रा० गय+ साला) गजशाला; (भ० ४, १०, ४)।

गयउर—पुं० (सं० गजपुर>प्रा० गय-उर) नगर-विशेष, कुरु देश का प्रधान नगर, हस्तिनापुर; (भ०)।

गयखेव—पुं० (सं० गतक्षेप) गतकाल, बीता हुआ समय; (जंबू० ६, ३, ५)।

गयगंड—पुं० (सं० गज+गण्ड>प्रा० गज+ गंड) हाथी का गंडस्थल; (जंबू० ५, ७,८)।

गयघाय—पुं० (सं० गदाघात) गदा का प्रहार; "गय-घायं गज्जतें वलेण;" (व० ५, २०, १०)।

गयणंगण—पुं० (सं० गगन+आङ्गन) गगनांगन, "गयणंगणे जंतहो जणघणउं;" (जंबू० ५, ४, ७)।

गयण—न० (सं० गगन>प्रा० गयण) गगन, आकाश, अंबर; (हे० ३६५, ४; भ० १, ५, प० च० १२, ७, ६; सं० रा०)। गयणंगण—न० (सं० गगन+ अङ्गन) गगन रूपी आंगन, "किं कडित्तु णं णं गयणंगणु;" द्युतफलक क्या है मानो गगन रूपी आंगन है; (ण० ३, १२, ५)। —यल न० (सं० गगन तल) (सुदं० १, ८, १०)।

गयणगई—पुं० (सं० गगगगति) व्यक्ति नाम-विशेष, विद्याधर; "गयणगइसमाणु विमाणवंतु निविसेण जि केरलनयरि पत्तु;" अर्थात् गगनगति के साथ विमान में बैठकर निमिषमात्र में वह केरल नगरी को प्राप्त हुआ; (जंबू० ५, ११, ६)।

गयणचंद—पुं० मुनि-विशेष-नाम, वालि (सुग्रीव के ज्येष्ठ भाई) के दीक्षागुरु; (प० च० ६, ४६)।

गयणतडि—पुं० रावणमंत्री; (प० च० ८, १५)।

गयणयल—पुं० (सं० गगनतल>प्रा० गयण+यल) आकाश-मण्डल (व० २, १२, १)।

गयणयलवडिअ—वि० (सं० गगनतल-पतित) आकाश-मण्डल से गिरा हुआ; (जस० २, २३, १०)।

गयणविज्जु—पुं० विद्याधर राजा; (प० च० ८, १३२)।

गयणाभ—पुं० राक्षसयोद्धा; (प० च० ५६, ३८)।

गयणाणंद—पुं० वानरवंशीय राजा; (प० च० ६, ८४)।

गयणि—स्त्री० (सं० गगन>प्रा० गयण न०) आकाश, "जहिं जल-खाइयहि तरंग पंति, सोहइ पवणाहय गयणि जंति," अर्थात् जहां जल-खाति की तरंग-पंक्तियां पवन से आहत होकर आकाश में जाती हुइ-सी प्रतीत होती है; (व० १, ४, ५)।

गयणिंदु—पुं० विद्याधर राजा; (प० च० ५, ४५)।

गयणुज्जल—पु० राक्षसयोद्धा; (प० च० १२, ९२)।

गयदंत—पुं० (सं० गजदन्त>प्रा० गय+दंत) हाथी का दांत; (व० १०, १६, ६)।

गयदप्प—वि० (सं० गतदर्प>प्रा० गय-दप्प) मान से मुक्त, "दोसुज्झिउ गयद-प्पु असंकिउ;" अर्थात् दोषों से रहित, मान से मुक्त व निश्शंक था; (जस० ४, २४, २)।

गयपमाय—वि० (सं० गतप्रमाद>प्रा० गय+पमाय) प्रमाद-रहित; (व० १, ४, ६)।

गयपवर—पुं० (सं० गज+प्रवर>प्रा० गय+पवर) श्रेष्ठ हाथी; (क० ३, १८, १०)।

गयपुच्छ—वि० (सं० गत=रहित+पुच्छ) पुछ कटे हुए; (व० ४, ७, ५)।

गयमंदगमणि—वि० (सं० गज+मन्द+गामिन्>प्रा० गय+मंद+गामि) गज के समान मंदगामिनी; (जस० ४, १८, ६)।

गयमोल्ल—वि० (सं० गत+मूल्य) अमूल्य; "गयमोल्लइं जणणयणहं पियाइं, तहिं वणिणा ताहें समप्पियाइं;" (क० २, १७, ३)।

गयराउ—वि० (सं० गतराग) वैराग्य-युक्त, वीतराग; (व० १, १६, १४)। गतराय; (क० ५, ६, ६)।

गयवइ—स्त्री० (सं० गत+पति>प्रा० गय+पइ, वइ) विधवा, वह स्त्री जिसका पति मर चुका हो; (विला०)। —य स्त्री० (सं० गतपतिका) स्त्री-विशेष-नाम; (जंबू० ८, १५, ४)।

गयवण—वि० (सं० गज+वन>प्रा० गय+वण) गज-युक्त वन; (व० १, ३, ८)।

गयवर—पुं० (सं० गजवर>प्रा० गय+वर) श्रेष्ठ हाथी; (जस० १, ४, ३)।

गयवरघोष—पुं० किसी वानरयोद्धा का नाम; (प० च० ५४, २१)।

गयवरतास—पुं० वानरयोद्धा का नाम; (प० च० ५७, १०)।

गयवल्लभा—स्त्री० जनपद-विशेष; (प० च० ५५, ५२)।

गयवाहण—पुं० (सं० गजवाहन) गज-वाहन नामक राजा; (प० च० ९५, ६४)।

गयसाउल, गयसाउल्ल—वि० (दे०) विरक्त, वैरागी; (दे० ना० मा० २, ८७)।

गयसारि—स्त्री० (सं० गज+शारि=हाथी का पलान या झूल) युद्ध के लिए हाथी का प्रयाण; (जंबू० ७, ११, २)।

गयसुंड—पुं० (सं० गत्+शुण्डा>प्रा० गय+सुंडा) गजशुण्ड नामक सीधे खड़ा होकर किया जाने वाला आसन, "गयसुंडयगोदुह आसणेहिं," अर्थात् 'वे स्थित होते थे तो गजशुण्ड (सीधे खड़े) या गोदुह (उकड़ूं आसन) से;' (जस० ४, १६, २)।

गयसुंडय—पुं० (सं० गज+शुण्डा> प्रा० गय+सोंडा, सुंडा) हाथी की सूंड; (जस० ४, १६, १२)।

गया—स्त्री० (सं० गदा>प्रा० गया गदा, लोहे की मुग्दर, आयुध-विशेष; (प० च० ५२, ७)।

गयारि—पुं०राक्षस राजा, राजा-विशेष-नाम; (प० च० ५६, २८)।

गयास—वि० (सं० गत+आशा>प्रा० गय+आसा) आशाहीन, निराश; (क० ५, ६, ६)।

गरल—न० (सं० प्रा० गरल) विष, जहर; (प्रा० पैं० २, १३८; जस० ३, ३९, १२)। गरलु; (व० ३, ७, ३)।

गरलुल्ल—न० (सं० गरल+उल्ल (स्वार्थे प्र०) विष, जहर; (जस० ३, ९, १५)। टि०—उल्ल>उल का रूपांतर है; करम+उल जैसे प्रयोग से यह तथ्य पुष्ट होता है। इसका स्त्री० उल्ली है।

√गरह—(सं०√गर्ह्>प्रा० गरह) निंदा करना, घृणा करना; (जस० २, ७, ३)। गरहन्ति—व० निंदा कर रहे हैं; (प० च० २, १४, ५)।

गरहण—न० (सं० गर्हण>प्रा० गरहण) आत्म निंदा; (प० च० १३, ८, ७)। गरुहण (गर्हण); (जस० ३, ३९, २)।

गरहा—स्त्री० (सं० गर्हा>प्रा० गरहा) निंदा, घृणा; (की ४, ९६)।

गरहिय—वि० (सं० गर्हित>प्रा० गरहिअ) निंदित, घृणित; (प० च० ५, १, ६)।

गरास—पुं० (सं० ग्रास) निवाला, कौर; (प्रा० पैं० २, १३४)।

गरिट्ठ—वि० (सं० गरिष्ठ>प्रा० गरिट्ठ) अति गुरु, बड़ा भारी, श्रेष्ठ; (सं० रा०; जंबू० १०, २६, ६)। श्रेष्ठ; (की० १, ९०)।

गरिल—वि० (सं० गरिष्ठ>प्रा० गरिट्ठ) १. सबसे भारी; २. अत्यंत महत्त्वपूर्ण; (जंबू० ७. ११, १)।

गरुअ—वि० (सं० गुरु+क>प्रा० गरुअ) १. बड़ा, महान्, गुरु; (प० च० १६, ६, ४; की० १, ८१)। २. श्रेष्ठ; (की० १, ७६)। —ओ वि० श्रेष्ठ; (की० ४, ५)। गरुउ—वि० बड़ा, (क० २, १०, १)। गरुआरउ—वि० (सं० गुरुतर) विशुद्ध; (क० १०, ५, ३)। गरुएँ—वि० गौरवशाली, (व० ४, ४, ११)। गरुय—वि० गुरु, बड़ा, महान्, तुल० गु० गरवी, (सं० रा०)। गरुवय –वि० बड़ा; (प० च० ५५, १)।

गरुज्जे—क्रि० (सं० गुरुकाय्>प्रा० गरुअ, गरुआ) बड़ा बनाना, गुरु करना; "गव्व कए गरुज्जे दापे," अर्थात् गर्वोक्तियों द्वारा दर्प को और अधिक बढ़ा रहे थे; (की० ४, ६५)।

गुरुडंक— पुं० (सं० गरुडाङ्क) १. विष्णु, वासुदेव; २. इक्ष्वाकु वंश के

एक राजा का नाम; (प० च० ५, ७)।

गरुड—पुं० (सं० गरुड>प्रा० गरुल) १. गरुड़वाण; (व० ५, २२, ७)। २. विष्णु का वाहन, गरुड़ पक्षी, पक्षी-राज; (प्रा० पैं० २, ७५; जम० २, ३६, १०)। ३. छप्पय छंद का भेद, (प्रा० पैं० १, १२३)। —केउ पुं० गरुडकेतु (त्रिपृष्ठ), नाम-विशेष; (व० ५, २३, ४)। गरुड्ड—पुं० गरुड़; (व० ४, ७, ७)। —त्थ न० (सं० गरुडास्त्र) अस्त्र-विशेष; (प० च० १२, १३०)।

गरुडा—स्त्री० गरुडा, विद्या-विशेष; (प० च० ५६, ८४)। —हिव पुं० (सं० गरुडाधिपति) गरुड देवों का अधिपति; व राजा खेमंकर का पुनर्भव नाम; (प० च० ५, ७)।

गरुयचंदाभ—पुं० वानरयोद्धा का नाम; (प० च० ६६, ७)।

गरुयत्त—पुं० (सं० गुरुत्व) उत्कृष्टता (ण० १, ४, ८)। —ण पुं०, विशा-लता, "कडिय लगरुयत्तणु तं पहाणु"(ण० १, १७, ६)। —यार (गरुयार) वि० (सं० गुरुतर) भारी; "जसु पय-भारें गरुयारें'ण हउं किउ कुम्माकारउ," अर्थात् जिनके पदभार से मैं कछुए के आकार का बना दिया गया था; (प० च० १५, ६, १०)। —यारी (गरुयारी) वि० (सं० गुरुतर) जेठी; (ण० ३, ६, ३)।

गरुवत्तणय—पुं० गुरुत्व; (प० च० ३४, ४, ६)।

गरुयपवास—पुं० (सं० गुरुप्रवास) दीर्घ प्रवास; (जस०)।

गरुलिया—स्त्री० शस्त्रविद्याभ्यासस्थल; (प० च० ८८, २५)।

गरुलोवलथल—पुं० हरिन्मवर्णि पन्ना द्वारा निर्मित स्थल; (व० ३, २१, ५)।

गरुअंगउ—पुं० गौरवांग नामक पर्वत; (व० २, ७, ६)।

गरुवि—वि० (सं० गुर्वी) गरवी, बड़ी, श्रेष्ठ; (की० २, १८६)। —जाखरी स्त्री० राजनर्तकी; (की० २, १८६)।

√गल—(सं० गल्>प्रा० गल) गलना, गल जाना; (सं० रा०)। —इ व० (सं० गलति>प्रा० गलइ) गलना; (की० ३, ७३)। गलंत—व० कृ० (सं० गलत्), (क० ६, ४, ११)। गलन्तएँ—कृ० (सं० गल्>प्रा० गल=समाप्त होना) बीतने पर, "काले गलन्तएँ" अर्थात् समय के बीतने पर, (प० च० २, ७, ६)। गलन्ति—क्रि० (सं० प्रा० गल्) गलना (हे० ४०६)। गलेंवि—पू०का०क्रि०गलकर "कहें वि कसण रोमावलि दिट्ठी। काम-वेणि णं गलेंवि पइट्ठी" अर्थात् किसी की काली रोमावली दिखाई दी मानो कामवेणी ही गलकर वहाँ प्रवेश कर गई; (प० च० १४, ७, ७)।

गल—पुं० (सं० प्रा० गल) गला; ग्रीवा, कण्ठ; (प्रा० पैं० १, १११; सि० २, ६, जस० १, ६, ६)।

गलगंडरोय—पुं० (सं० गलगण्डरोग) गले का एक रोग, गलगंड, कंठमाला, एक रोग जिसमें गले में छोटी छोटी बहुत सी फुड़ियाँ लगातार माला की तरह एक

पंक्ति में निकलती हैं, (सुदं० १२, ७, ७)।

√गलगज्ज—(सं० गल+गर्ज् >प्रा० गल+गज्ज, गज्जई) गरजना; (गले की गर्जना का होना) (म० १, ७, ५)। —इ (प० च० १७, १०, ३)। गलगज्जेंवि-पू० का० क्रि० गरजता हुआ; (प० च० २०, ३, ६)। गलगज्जन्तएँ—गरजना करने लगा; "तहिं अइरावणें गलगज्जन्तएँ," (प० च० ३, ६, ६)।

गलगज्जि—स्त्री० (सं० गल+गर्जि > प्रा० गल+गज्जि) गलगर्जन; (व० ३, २६, १०)।

गलगज्जिय—न० (सं० गल+गर्जित> प्रा० गलगज्जिय) गल-गर्जन; (प० च० २०, ५, ७; सुदं० ११, ६, १६)।

गलघोस—पुं० (सं० गल+घोषः) गलगर्जना; (व० ६, ६, ८)।

गलच्छिअ—वि० (दे०) पीडित, प्रेरित; (जस० ३, १, ६)।

गलणालि—स्त्री० (सं० गल+नालि) गले की नाली; (जस० ३, ६, १)।

गलत्थइ—क्रि० (सं० गल+हस्त>गल-हत्थ>गलत्थ) फेंकना, गले में हाथ द्वारा डालना; (भ०)।

गलत्थण—न० (सं० प्रा० गलत्थइ) क्षेपण; (गलत्थिअ=क्षिप्त, दे० ना० मा० २, ८७)। (प० च० ४१, १, ५)।

गलत्थलिअ—वि० (दे०) फेंका हुआ; २. प्रेरित; (दे० ना० मा० २, ८७)।

गलत्थिय—वि० (सं० गल+स्थित> प्रा० गल+त्थिर, थिर) गले में स्थित; (सं० रा०)।

गलत्थियउ—क्रि०भू० का० १.प्रेरित हो गया, "हा कम्में केण गलत्थियउ;" अर्थात् हाय, मैं किस कर्म से प्रेरित हो गया; (क० ४, १५, ८)। गलत्थियउ—क्रि० २. सं० कर्दथित, विडम्बना में पड़े "सयलु वि कम्मेंग गलत्थियउ," सभी कर्मों की विडम्बना में पड़े; (ण० २. ४, ११)। ३. पीड़ित हुआ; (महा० ६६, १)।

गलय—पुं० (सं० गल+क) कण्ठ; (जस० १, १५, ८)।

गलरव—पुं० (सं० कलरव) शोर; (ण० ३, १७, ५)।

गलवेविय—वि० (सं० गल+वेपित> प्रा० गल+वेविअ) कण्ठ में काँपते हुए; कम्पित कण्ठ; (ण० ८ १५, ५)।

गलिअ—वि० (सं० गलित>प्रा० गलिअ) गला हुआ, (जस० २, ३, १)। वि० (दे०) याद किया हुआ, स्मृत; (दे० ना० मा० २, ८१)। गलिय—वि० नष्ट, नाश-प्राप्त, बीता हुआ; (ण० ६, २, ७)।

गलियगव्वु—वि० (सं० गलितगर्व) निर-हंकारी; (व० १, ६, ३)।

गलिय+छम्म—पुं० (सं० गलित+छद्म) नाश-प्राप्त या नष्ट हुआ कपट; (क० ७, १६, ६)।

गलियदेस—पुं० (सं० गलित+द्वेष) नष्ट हुआ द्वेष; (क० २, १२, ३)।

गलियसर—पुं० (सं० गलित+शर) स्खलित बाण; (क० ३, २१, ८)।

गलेलग्गी—क्रि० भू० का० गले लगी; (व० ४, ७, ४)।

गल्ल—पुं० (सं० गल्ल) १. गाल, कपोल; तुल० गु० गाल; (प्रा० गु० ३३, ५; दे० ना० मा० २, ८१)। २. हाथी का गण्ड-स्थल; (पइ)।

गल्लप्फोड—पुं० (दे०) डमरु, वाद्य-विशेष, चमड़े से मढ़ा जाने वाला एक छोटा बाजा जो बीच में पतला होता है और हिलाने पर उसमें लगी घुंड़ियों से बजता है, (दे० ना० मा० २, ८६)।

गवक्ख—पुं० (सं० गवाक्ष>प्रा० गव-क्ख) गवाक्ष, वातायन, झरोखा; (जंबू० ८, १५, ६)। —य; (प० च० १८, ६, ७)। तुल० गु० गोख।

गवण—न० (सं० गमन>प्रा० गमण) चाल; (की० ४, ५३)।

गवत्त—न० (दे०) घास, तृण; (दे० ना० मा० २, ८५)।

गवय—पुं० (सं० प्रा० गवय) नील गाय; (जंबू० ५, ८, १५)।

गवल—पुं० (सं० गवल) जंगली भैंसा, जंगली पशु-विशेष, (प० च० ८८, ६)।

गवा—स्त्री० (सं० गो) गाय; (प० च० ८०, १३)।

गवाख—पुं० (सं० गवाक्ष) झरोखा; (सि० १, ३४)।

गवायणी—स्त्री० (सं० गवादनी= १. गोचर भूमि, २. नांद जिसमें गौओं को सानी खिलायी जाती है) वनस्पति-विशेष; (दे० ना० मा० २, ८२)।

गविअ—वि० (दे०) निश्चित; (पइ)।

गविट्ठ—वि० (सं० गवेषित) खोजा हुआ; (भ०)।

√गवेस—सं० गवेषय्>प्रा० गवेस (सं० गवेषयति>प्रा० गवेसइ) गवेसइ—क्रि० गवेषण करना, खोज करना; (हे० ४४४, प० च० ११, १३, २, ण० ७, २, ५)। गविट्ठउ—क्रि०, भू०का०(सं० गवेषित> प्रा० गविट्ठउ) खोज कर ली; (प० च० ३, ११, १०)। गवेसन्त— व० कृ० (प० च० १६, १७, ६)। गवेसु—क्रि०, आ०, खोजो (पाहु०)। टि०— मूल शब्द, गवेषणा का अर्थ गाय खोजना है। 'अन्वेषण' में अर्थ-विस्तार हुआ।

गवेसय—वि० (सं० गवेषक>प्रा० गवे-सग, गवेसय) खोज करने वाला; (प० च० १४, १०, १)।

गब्भु—पुं० (सं० गर्भ>प्रा० गब्भ) गर्भ, पेट के अंदर का बच्चा, भ्रूण; "धारिउ तहो मज्जएँ गब्भु;" (व० २, २, ११)।

गव्व—पुं० (सं० गर्व>प्रा० गव्व) अहंकार, अभिमान; (की० ४, ६५)।

गव्वि—वि० (सं० गर्विन्) अभिमानी, गर्व-युक्त; (दे० ना० मा० ७, ६१)।

गव्विट्ठ—वि० (सं० गर्विष्ठ) विशेष अभिमानी; (दे० ना० मा० १, १२८)।

गव्वीआ—वि० (सं० गर्विताः) गर्वित; (प्रा० पैं० २, १५७)।

√गस—(सं० ग्रस्>प्रा० गस) खाना, निगलना, भक्षण करना। —इ व० (जंबू० १०, १२ १०)। गसेइ—क्रि०

व० (सं० ग्रसते>प्रा० गसइ) (भ०)।
गसंत—व० कृ० (सं० ग्रस्+शतृ) निगलते हुए, भक्षण करते हुए; (ण० ७, ५, २)।
गसिअ—वि० (सं० ग्रस्त>प्रा० गसिअ) भक्षित; (जंबू० १०, १३, १३)।
गसिर—वि० ग्रसनशील; (जस० २, १८, १०)।
गह—पुं० (सं० ग्रह>प्रा० गह) तल्लीनता, आसक्ति; (की० २, १७४)। २. सूर्य, चंद्र, तारे आदि ज्योतिष्क देव, "मयण-गह पीडणेण; (विला०)। ३. भूत आदि का आक्रमण, आवेश; "तं पेक्खेंवि सस तुम्हहँ केरि। कामगहेण हूअ विवरेरी"; अर्थात् उसे देख कर तुम्हारी बहन कामग्रह से पीड़ित हो उठी; (प० च० ५, ५, ३; ण० २, ६, १)। टि०—अर्थांतरण से पिशाच। अर्थ-संकोच से बुरा ग्रह। ४. ग्रहण, निरोध; (जस० १, २३, ५)।
गह—सक० (सं० ग्रह्>प्रा० गह) ग्रहण करना; (जस० १, ६, ५) गहिअ क्रि० भू० का० पकड़ लिया; (जस० १, २४, ३)। गहिउ—क्रि०, भू० का० ग्रहण कर लिया, वणु, जाइवि राएं तवु गहिउ," (महा० ६६, १०, १)।
गहिवि—पू० का० क्रि० (सं० गृहीत्वा) पकड़कर; (सं० रा०)।
गहकल्लोलु—पुं० (सं० ग्रह>प्रा० गह +दे० प्रा० कल्लोल=शत्रु) ग्रहवैरी राहु, ग्रह-विशेष; (प० च० ११, ४)। कल्लोल=वैरी (दे० ना० मा० २, २)।
गहखोम—पुं० राक्षसवंशीय राजा; (प० च० ५, २६६)।
√गहगह—अक० (दे०) हर्ष से भर जाना। —इ व० (भ० ३, १, १२)।
गहगहणुल्ल—पुं० (सं० ग्रह+ग्रहण+उल्ल) ग्रहों की गति; (स्वार्थे प्र०) (जस० ३, २८,१०)।
गहचक्का—स्त्री० ग्रहचक्रा, प्रासादभूमि-नाम-विशेष; (जस० २, ४, ८)।
गहव्वो—क्रि० (सं०√ग्रह्>प्रा० गह) पकड़ूँगा; "पर पुर मारि सत्रो गहव्वो," अर्थात् शत्रु को उसके नगर में मार कर मैं अकेला ही उसे पकड़ूँगा; (की०२, ४१) टि०—'गहव्वो' क्रि० भविष्यकाल में उ० प्र०, ए० में प्रयुक्त हुई है। 'व्वो' वाला रूप मैथिल भाषा के प्रभाव से हुआ है। मूल रूप 'गहओ' है।
गहण—न० (सं० ग्रहण>प्रा० गहण) १. आदान, स्वीकार, (ण० १, १३, ७)। ३. लेना; (जंबू० १०, १०, ८)। ४ भाग्य (प० च०)। ५. आमंत्रण, "जूएण पसिद्धी कित्ति जाहें, देवाविउ गहणउ तेण जाहें," अर्थात् उसने जिसको जूए में कीर्ति प्रसिद्ध थी, उसको ग्रहण (आमंत्रण) दिलाया; (क० ८, १५,६)।
गहण—वि० (सं० गहन>प्रा० गहण) गहन (वन), दुर्गम, दुर्भेद्य; (जस० १, १४, ३)। न० (दे०) जल-रहित प्रदेश; (दे० ना० मा० २, ८२)।
गहणी—स्त्री० (दे०) जबरदस्ती हरण की हुई स्त्री, दासी, बांदी; (दे० ना० मा० २, ८४)।
गहर—पुं० (दे०) गीध पक्षी, गिद्ध (गृध्रः) (दे० ना० मा० २, ८४)।
गहवइ—पुं० (दे०) १. चांद,

२. ग्रामीण; (दे० ना० मा० २, १००)। पुं० (सं० गृहपति) गृहस्थ, कुटुम्बिन्; (प० च० २५, १, २; जस० १, ३, १२)।

गहवरिओ—वि० (दे०) क्षुब्ध, व्याकुल; "देखि कुमरि मन गहवरिओ, मइ मेल्हिवि गउ नेमि-कुमारो;" तुल० गु० गभरावुं; (प्रा० गु० २४, ५)।

गहिअ—वि० (दे०) १. टेढ़ा किया हुआ, मोड़ा हुआ; (दे० ना० मा० २, ८५)। २. वि० (सं० गृहीत) ज्ञात, उपलब्ध, विदित; (षड्)।

गहिआ—स्त्री० (दे०) काम-भोग के लिए जिसकी प्रार्थना की जाती हो वह स्त्री; (दे० ना० मा० २, ८५)। २. ग्रहण करने योग्य स्त्री; (षड्)।

गहिय—वि० (सं० गृहीत) ग्रहण किया हुआ; (ण० ७, १३, ३)। क्रि०, भू० का० पकड़े; (विला०)। —ण्ण (सं० गृहीत+अन्य) अन्य ग्रहण किए "गहिय-ण्णरूवँजुयलो," अर्थात् अन्य युगल रूप निर्माण किए; (जंबू०, संधि० १, ६)।

गहियाहर—वि० (सं० गृहीत+अधर) काटे गए होठ," क वि पियगहियाहरु वहइ वयणु, छिज्जंतरोसु पसरंतमयणु;" कोई प्रिय से काटे हुए अधरयुक्त मुख को धारण कर रही है, जिसका रोग क्षय हो रहा है, और मदन बढ़ रहा है; (जंबू० ४, १७, १४)।

गहिरक्खर—पुं० (सं० गम्भीर+अक्षर) गम्भीर घोष; "जय-जय गहिर-क्खरभासणेण;" जय-जय का गम्भीर घोष करते हुए; (जंबू० १, १४, २)।

गहिरसर—पुं० (सं० गम्भीर+स्वर) गम्भीर स्वर "नियवि पुत्ताणएं गहिरसर वाइणा;" (जंबू० ३, ४, ४)।

गहिरिमा—स्त्री० (सं० गभीरिमन्>प्रा० गहीरिम) गाम्भीर्य, गम्भीरता; (क० १, १६, ६)।

गहिरु—वि० (सं० गम्भीर>प्रा० गंभीर) गहरा, तुल० म० गहिरा, मगही गहिर; (प० च० १, ५, ३)। गहीरु—वि०, गहरा; (ण० १, ३, १)।

गहिल—वि० (सं० ग्रहिल>प्रा० गहिल) भूतादि से आविष्ट; (सुदं० ४, ४, ६)।

गहिलत्तणं—पुं० (सं० ग्रहिलत्वं) पागलपन, व्यर्थ हठ; तुल० गु० घेँली; (प्रा० पं० १, ३)।

गहिलिय, गहिल्ल—वि० (दे०) आवेश-युक्त, पागल, भ्रांत। टि०—उपर्युक्त शब्द (सं० ग्रहिल (१. लेने वाला, स्वीकार करने वाला, २. अटल, कठोर) से व्युत्पन्न नहीं है।

गहिली—वि० स्त्री० (सं० ग्रहिल>प्रा० गहिल) उन्मत्त; तुल० गु० घेली; (प्रा० गु० २, ३, ३९)।

गहिल्ल—वि० (सं० ग्रहिल>प्रा० गहिल्ल) १. गृहीत; (म० १, १४, २)। २. आवेश-युक्त, पागल, भ्रांतचित्त; (भ०)।

गहिल्लिय—वि० (सं० ग्राहिल+क) १. उन्मत्त, पागल, २. मूर्ख, गँवार (सं० रा०)। ३. ग्रसित (ण० ६, ७, १०)।

गहीर—वि० (सं० गभीर>प्रा० गहिर, गहीर) गहरा, गम्भीर; (जस० १, १८, १३; दे० ना० मा० १, १०१)।

√गह्ण—सक० (सं० ग्रह्>प्रा० गह) १. ग्रहण करना, लेना; २. जानना —इ व० (षड्)।

गांउं—पुं० (सं० ग्रामम्>प्रा० गम्म) गाँव; (उ० व्य० प्र० ११–२१)।

गांग—स्त्री० (सं० गङ्गा) गंगा नदी। (उ० व्य० प्र० ५–२३); गांगहिं; (रा० २५)।

गा—सक० (सं० गै०>प्रा० गा) गाना, अलापना। —इ क्रि०, व०; (प्रा० पैं० २, १६२)। —इज्जइ कर्मवाच्य, गाइज्जइ मंगलु धवलसारु," अर्थात् धवल व श्रेष्ठ मंगल गाए जाने लगे; (जंबू० ४, १५, १)। गाइज्जंत–व० कृ० (जस०)। गाइज्जमाण—कृ० (क० ३, १, ६)। —उ क्रि० व०; (प्रा० पैं० २, १६२)। गायइ—व० (सं० √गै) गाना; (जस० १, ५, १७)। गायंत—व० कृ० (सं० गै+शतृ) गायत्; (जंबू० ५, १, १६)। गायंती–व० कृ० गाती हुई; (प० च० १४, १०, ८)। गाव–क्रि० व० गान करना, "मत्त पताका पिंगल गाव' पिंगल इस मात्रा पताका का गान करता है; (प्रा० पैं० १, ४८)। गाविज्जए–कर्मवाच्य गीत गाए जाते थे, "नीलनेसणतगोवीएँ गाविज्जए," नीले वस्त्रों वाली गोपी द्वारा गीत गाए जाते थे; (जंबू० ५, ६, ११)। गिज्जइ— कर्मवाच्य (सं० गीयते) गया जाता है, "गिज्जइ नच्चिज्जइ न पढिज्जइ;" अर्थात् (जंबूस्वामी का नाम लेकर) गाया, नाचा व पढ़ा नहीं जाता; (जंबू० ४, १०, २)। गिज्जंत—व० कृ० गीयमान; (ण० ६, २२, ६)। तुल० प्राचीन म० गीजे।

गा—क्रि० (सं० गतः) गया; (उ० व्य० प्र० १४–३०)।

गाअ—न० (सं० गात्र प्रा० गाअ) शरीर, देह; (प्रा० पैं० २, ८६)।

गाइ—स्त्री० (सं० गो>प्रा० गाई) गैया; गाय; (प्रा० पैं० २, ६३; ण० ६, ६, २)।

गाइअ—न० (सं० गीत>प्रा० गाइअ) गीत, गाना; (ण० ७, १२, १)।

गाइत्ति—स्त्री० (सं० गायत्री) स्त्रीविशेष; (ण० ८, १२, ६)।

गाइय—न० (सं० गीत>प्रा० गाइअ) गीत; गाइयाइं— न०, ब० (क० ३, ८, ५)।

गाई—स्त्री० (सं० गो) गाय, गैया; (दे० ना० मा० ४, १८)।

गाउं—पुं० (सं० ग्राम>प्रा० गाम) गाँव; (उ० व्य० प्र० १६–१४)।

गाएव्वउ—पुं० (सं० गीत>प्रा० गाइअ) गाना, "गाएव्वउ नच्चेव्वउ सचितु;" अर्थात् विविध प्रकार का गाना व नाचना सीखा; (जंबू० ४, १२, १३)।

गागेज्ज—वि० (दे०) मथित, आलोड़ित; (दे० ना० मा० २, ८८)।

गागेज्जा—स्त्री० (दे०) नवोढ़ा, दुलहिन; (दे० ना० मा० २, ८८)।

गाछ—पुं० (सं० गच्छ) वृक्ष; पेड़; (प्रा० पैं० २, १४४; की० ४, १६)।

√गाड—(दे०) गड़ जाती थी; "कां

मन गाड गोवोलि गमारन्हि छाड;" अर्थात् गंवार ग्वालों को छोड़कर नागरिकों के मन में गड़ जाती थी; (की० २, १५१)।

गडिअ—वि० (दे०) विधुर, वियुक्त; (दे० ना० मा० २, ८३)।

गाड्डू—पुं० (वै० सं० कद्रुक (ऋ० १०। १४।१६) >कद्दुअ>गड्डुअ>गाडुअ) गडुआ लोटा, बधना; (की० २, १८३)।

गाढ—वि० (सं० प्रा० गाढ) दृढ़; (जस० २, ८, १; जंबू० ६, ४, ६)। —त्तण पुं० (सं० गाढत्व) दृढ़ता; (जंबू० ८, ११, ६)। —य वि० (सं० प्रा० गाढ) १. गाढ़ा, जो पानी की तरह पतला न हो, २. विकट, ३. घनिष्ठ, गहरा; (सं० रा०)।

गाढिअ—वि० (सं० प्रा० गाढ) गाढ़, गाढ़ी, दृढ़; (जंबू० १०, १४, ३)।

गाढिम—वि० (प्रा० गाढ=दृढ़, मजबूत, अत्यंत, अतिशय) तेज, जोर से, "जोअण्णा धावहि, तुरय णचावहि वोलहि गाढिम बोला;" अर्थात् युवक सैनिक घोड़ों को दौड़ाते हुए नचा रहे थे और जोर की बोली में बोलकर उन्हें डपट रहे थे; (की० ४, ११०)।

गाण—वि० (सं० गायन) गवैया; (दे० ना० मा० २, १०८)।

गाणी—स्त्री० (दे०) वनस्पति-विशेष; (दे० ना० मा० २, ८२)।

गाध—वि० (सं० प्रा० गाध) उथला, जो गहरा न हो; (दे० ना० मा० ५, २४)।

गामंतर—पुं० (सं० ग्रामान्तर) दूसरा गाँव; (जस० ४, ११, ४; क० ५, १०, ४)।

गाम—पुं० (सं० ग्राम>प्रा० गाम) गाँव; तुल० म० गांव, गु० गांम; (ण० ३, १५, ८; जस० १, ३, १५)। —लग्ग वि० (सं० ग्राम+लग्न) ग्राम के निकट; (जंबू० २, १६, १०)।

गामो—पुं०, ए०, अधिकरण कारक; गाँव में; (की० २, ६३)।

गामउड, गामऊड—पुं० (दे०) ग्राम का मुखिया, (दे० ना० मा० २, ८६; प० च० ६६, ८)।

गामगोह—पुं० (दे०) गाँव का मुखिया; (दे० ना० मा० २, ८६)।

गामणह—न० (दे०) ग्राम-स्थान; ग्राम-प्रदेश; (षड्)।

गामणि, गामणी—पुं० (दे०) गाँव का मुखिया; (दे० ना० मा० २, ८६)।

गामणी—वि० (सं० ग्रामणी) १. श्रेष्ठ, प्रधान, नायक; (षड्) २. पुं० तृण-विशेष; (दे० ना० मा० २, ११२)।

गामरोड—पुं० (दे०) छल से अथवा ग्राम के लोगों में फूट उत्पन्न कर गाँव का मालिक या मुखिया बन बैठने वाला; (दे० ना० मा० २, ९०)।

गामहण—न० (दे०) ग्राम-स्थान, गाँव का प्रदेश; (दे० ना० मा० २, ९०)।

गामा—स्त्री० (सं० ग्राम>प्रा० गाम) गाँव; "मायंग घणासु कला भवणा गामा रंग णिरंतरे," (यह भारतवर्ष) मातंगों (हाथियों), धन-धान्यों, सुंदर कलापूर्ण

भवनों एवं रंग-विरंगे गांवों से निरंतर मंडित रहता है; (व० ६, १, २)।
गामार—वि० (दे०) ग्रामीण; (जंबू० ५, ६, १)।
गामि—वि० (सं० गामिन्) गामी, जाने वाला; (जंबू० ३, ५, २)। गामी—वि० जाने वाली; (जंबू० १, १८, ७)। ग्राम; (व० २, १७, १)।
गामिअ—वि० (सं० ग्रामिक) देहाती, गँवार; (दे० ना० मा० २, १००)।
गामिणि—वि० स्त्री० (सं० गामिनिका >प्रा० गामिणिआ) गमन करने वाली, "रे घणि मत्तमअंगगामिणि, खंजलोअणि चंदमुही;" (प्रा० पैं० १, १३२)।
गामिनी—वि स्त्री० (सं० गामिनिका> प्रा० गामिणिआ) गमन करने वाली स्त्री; (भ०)।
गामिय—वि० (सं० गामिन्>प्रा० गामि) जाने वाला; (भ०)।
गामिल्ल, गामिल्लुअ, गामीण—वि० (सं० ग्रामिक) ग्रामीण, गँवार; (प० च० ७७, १०८; दे० ना० मा० ८, ४७)।
गामीणजण—पुं० (सं० ग्रामीण जन> प्रा० गामीणजण) गांव के निवासी लोग; (जंबू० ३, १, १६)।
गामेणी—स्त्री० छागी, अजा, बकरी; (दे० ना० मा० २, ८४)।
गामेल्ल-भास—स्त्री० (सं० ग्रामीण+ भाषा>प्रा० गामिल्ल, गामिल्लुअ+ भासा) ग्रामीण भाषा; (प० च० १, ३, ११)।
गामेश—पुं० (सं० ग्रामेश) गांव का राजा; (दे० ना० मा० २, ३७)।
गाय—पुं० (सं० ग्राह>प्रा० गाह) मगर, घड़ियाल; (जस० १, १०, ७)]
गायअ—वि० (सं० गीत>प्रा० गाइअ) गाया हुआ; (ण० १, ३, १४)।
गायण—पुं० (सं० गायन>प्रा० गाअण) गाने वाला, गवैया; (प० च० ८, १, ७; सि० १, २६)। स्त्री० गाने वाली; (जस० १, २७, २)। गायणु—पुं० गायक; "वर गायणु कवि देपालू ए," (प्रा० गु० २६, ७)।
गायरी—स्त्री० (दे०) गर्गरी, कलशी, छोटा घड़ा; (दे० ना० मा० २, ८९)।
गार—वि० (सं० कार) कार्य करने वाला, कारक, कर्ता; (भ०)।
गारउ—पुं० (सं० गौरवम्>प्रा० गारव) १. महत्त्व, बड़प्पन; (भ०)। २. अभिमान; (प्रा० गु० ५, ३५; सुदं० १०, २, ४)। गारव; (म० २, १६, १०)।
गारह—वि० (सं० एकादश>ऐगारह (प्रा० पैं०), इगारह (प्रा० पैं०)> गारह) ग्यारह; (प्रा० पैं० १, १७७)।
गारि—वि० (सं० कारिन्) करने वाला; (भ०) स्त्री० गाली; (की० २, १८९)।
गारि—क्रि० (दे०) गारता है, गिराता है; (की० २, १८३)।
गारी—क्रि० (सं० गालय्>प्रा० गाल, गालयइ) गारना, छानना, गिराना, पीना; (की० २, १८३)।
गालिम—पुं० (अ० गिलमान) नौजवान छोकरे; (की० २, २१६)।
गालि-मसूरा—स्त्री० (दे०) सं० गण्डो-

पधान; तकिया, मसकद; "सोहइँ जासु कपोल-पालि जणु गालि-मसूरा;" तुल० गु० गालमसूरिउं; (प्रा० गु० २२, १४)।

गाली—स्त्री० (सं० प्रा० गालि) गाली, अपशब्द, असभ्य वचन; (सुदं० ६, २०, ६)।

गाव—वि० (दे०) गत, गया हुआ, गुजरा हुआ; (पह्)।

गाव—पुं० (सं० गर्व>प्रा० गव्व) अहंकार, घमण्ड; (भ०)।

गावि—वि० (सं० गर्वित>प्रा० गव्विय) गर्व-युक्त, जिसको अभिमान हो गया हो वह; (भ०)।

गावि—स्त्री० (सं० गो>प्रा० गावी) गैया, गौ; (उ० व्य० प्र० १३-२७)। —उ व० (सं० धेनवः) गाएँ; "गाविउ खीरु खिरंति अमोहउ," (जंबू० १, १३, ७)।

गास—पुं० (सं० ग्रास>प्रा० गास) कवल, ग्रास; (भ०; जस० २, ७, १३)।

गाह—पुं० (सं० गाथा>प्रा० गाहा= १. छंद-विशेष, आर्या, २. प्रतिष्ठा, ३. निश्चय) १. स्तुति, २. कथा, वृत्तांत; (सं० गा०)। पुं० (सं० ग्राह) आग्रह, पूर्वाग्रह, हठ; (म० १, १६, ५)। पुं० (सं० ग्रह) कुग्रह; (जंबू० ६, २, ७)।

गाहु—पुं० (दे०) स्नेह, "तव चरणहों उवरि णिवद्ध गाहु;" (जस० ४, २, ६)।

गाह—सक० (सं० ग्राह्य>प्रा० गाह) ग्रहण करना; (जंबू० १०, १४, ६)। (सं० गाह्>प्रा० गाह) गाहना, ढूंढना।

गाहंतउ—कृ० प्रविष्ट होने पर; (जस० ४, २६, ३)। गाहंते—कृ० प्रवेश करके, "दुग्गम गाहंते कर चाहंते वेरि सथ संहणइ जम;" अर्थात् दुर्गम स्थानों में प्रवेश करके कर वसूल करते हुए उसने वैरियों के समूह का यमराज के समान संहार किया; (की० ३, ८२)।

गाहा—स्त्री० (सं० गाथा>प्रा० गाहा) छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, ५७)।

गाहिणी—स्त्री० (सं० गाहिनी>प्रा० गाहिणी) गाथा का भेद; (प्रा० पैं० १, ५१)।

गाहुलि—पुं० स्त्री० (दे०) ग्राह, मगर, घड़ियाल; (दे० ना० मा० २, ८६)।

गाहू—स्त्री० (सं० प्रा० गाहु) छंद-विशेष, मात्रिक छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, ५१)।

गिंदू—स्त्री० (सं० कन्दुक>प्रा० गेंदुअ) गेंद; (प्रा० पैं० १, १५७)।

गिंभ—पुं० (सं० ग्रीष्म>प्रा० गिम्ह) गरमी का मौसम ग्रीष्म; (ण० ३, १४, १०; जस० ४, १६, ७; सुदं० ११, ४, १; सं० रा०)। —आगम (गिंभागम) पुं० (सं० ग्रीष्मागम) ग्रीष्म ऋतु का आना; (सुदं० ६, १७, ४)।

गिंभयाल—पुं० (सं० ग्रीष्म+काल) ग्रीष्मकाल; (क० १, ११, ४)।

गिंभारी—पुं० (सं० ग्रीष्म+अरि) ग्रीष्मकाल रूपी शत्रु; "गिंभारिहि रुट्ठउ सुरदु जिह;" (जस० २, ३२, ८)।

गिज्जं—पुं० (सं० गीत>प्रा० गीय) गेय, गीत, "कइया कि पुरउ गिज्जं व

गीउ- अप्पणु गायइ रहसि अभीउ;" अर्थात् कभी वह अपने सम्मुख होते हुए गीत को स्वयं अकेले में निर्भीक होकर गाता; (जस० १, ५, १७)।

गिज्झ—वि० (सं० ग्राह्य>प्रा० गिज्झ) ग्रहण करने योग्य; (जस० ४, ८, ८)।

√गिण्ह—(सं० ग्रह>प्रा० गह) ग्रहण करना; (जस० ४, १५, ११)। गिन्हइ —क्रि०, व० (सं० गृण्हाति>प्रा० गिण्हइ) ग्रहण करना; (भ०)।

गिद्ध—पुं० (सं० गृध्र>प्रा० गिद्ध) गीध, पक्षी-विशेष; (प० च० १७, १३, ८)।

गिद्धि—स्त्री० (सं० गृद्धि>प्रा० गिद्धि) आसक्ति, लम्पटता; (सि० १, ६)।

गिम्ह—पुं० (सं० ग्रीष्म>प्रा० गिम्ह) गरमी का मौसम; (सं० रा०; जस० २, २८, ११)। —याल पुं० (सं० ग्रीष्मकाल>प्रा० गिम्हकाल) गरमी का काल; (प० च० १३, १, ७)।

गिम्हि—स्त्री० (सं० ग्रीष्म>प्रा० गिम्ह) ग्रीष्म ऋतु; (सणतु० ४४७)।

गियउ—क्रि० भू० का० गया; 'एहु जम्मु नग्गहं गियउ' यह जन्म नागा (व्यर्थ) गया; (प्र० चि०)।

गिर—स्त्री० (सं० गिर्>प्रा० गिरा) वाणी, भाषा, वाक्; (सं० रा०; जंबू० ५, १३, १३)।

√गिर—(सं० गृ>प्रा० गिर=कहना) बोलना उच्चारण करना, कहना, निगलना; (षड्)। गिरि–पू० का० क्रि० कहकर; (की० ४, ६०)। "वेवि सहो अर राअ गिरि लहिअउ वेवि तुरङ्ग," अर्थात् दोनों भाइयों ने सुलतान से कहकर दो घोड़े प्राप्त किए; (की० ४, ६०)। —णयर पुं० (सं० गिरिनगर) नगर-विशेष (ण० १, १५, ६)। —सिहर पुं० (सं० गिरिशिखर) नगर-विशेष; (ण० ६, ८, ६)।

गिरा—स्त्री० (सं० गिर्>प्रा० गिरा) वाणी, भाषा, वाक्; (जस० ३, ३०, ६)।

गिरिंद—पुं० (सं० गिरि+इन्द्र) हिमालय; (जंबू० ४, १०, ५)।

गिरि—पुं० (दे०) बीज-कोश; (दे० ना० मा० ६, १४८)।

गिरि—पुं० (सं० प्रा० गिरि) गिरि, पर्वत; (जस० १, १७, ६; प्रा० पैं० १, ७४)। —कडणि स्त्री० (सं० गिरिकटनी) गिरिमेखला; (जंबू० ५, ८, १४)।

गिरिकंदर—पुं० (सं० गिरिकन्दरा) पर्वत की गुफा; (व० २, २, ७)।

गिरितणय—स्त्री० (सं० गिरितनया) पार्वती; (जंबू० ५, ६, १४)।

गिरितुल्ल—वि० (सं० गिरितुल्य) गिरि के समान; (जंबू० ६, ४, १०)।

गिरिदरि—स्त्री० (सं० गिरिविवर) पर्वत की दरार; (जंबू० ६, १०, १६)।

गिरिदारिणी—स्त्री० (सं० प्रा० गिरिदारिणी) विद्या-विशेष; (प० च० ७, १३६)।

गिरिनंद—पुं० वानरवंशीय राजा; (प० च० ६, ८४)।

गिरिनइ—स्त्री० (सं० गिरिनदी) गिरिनदी; (जंबू० ८, ७, ७)।

गिरिभूइ—पुं० विप्र-विशेष-नाम; (प० च० ५५, ३५)।

गिरिवइ—पुं० (सं० गिरिपति) पर्वत; "गिरिवइ-संठिउ अइ-उक्कंठिउ;" (व० २, २०, १५)।

गिरिवरि—पुं० (सं० गिरिवर) गिरिराज, पर्वत, (व० २, ७, ८)।

गिरिसिंग—न० (सं० गिरि+शृङ्ग > प्रा० गिरि+संग) पर्वत के ऊपर का भाग, शिखर; (जंबू० ७, ८, ७)।

गिरीस—पुं० (सं० गिरीश > प्रा० गिरीस) १. हिमालय, २. शिव; (प्रा० पैं० १, २०६)।

√गिल—(सं० गॄ > प्रा० गिल) गु० गळवुं। —इ निगलना; (प० च० १६, ३, २; जस० २, २०, ८)। गिलंत—व० कृ० गिलत् (जस० ३, ३०, १)। गिलंति—क्रि० निगलना; (सुदं० ६, ६, ८)। गिलती—क्रि० स्त्री० निगल रही थी; (क० ३, १७, १०)। गिलिउं—भू० का निगल लिया; (महा० ६८, १०, १२)। गिलिज्जइ—क्रि० भू० का० निगल गया; (सुदं० ५, ७, २१)। "णिसिरक्खिएं ताम गिलिज्जइ," निशा-राक्षसी ने उसका निगल लिया, (सुदं० ५, ७, २१)। गिलिज्जइ-कर्मवाच्य (स० गिल्यते) निगली जाती है; (हे० ३७०, २)। गीलेसि–व० निगलता है; (सरह, चर्यापद)।

गिलण—न० (सं० गरण) ग्रसन, निगलना; (जस० १, ६, १०)।

गिलिअ—वि० (सं० गिलित > प्रा० गिलिअ) निगला हुआ, ग्रसित, भक्षित; (जंबू० ६, ५, ८) गिलिय; (ण० ७, ३, २)।

गिल्ल—वि० गीला, आर्द्र; (ण० ८, १५, १; महा० २६-५-३)।

गिल्लगंडु—वि० गीले गंडस्थल वाला; "तहिं ण्हाउ णाउ णं गिल्लगंडु." उस (सरोवर) में उन्होंने स्नान किया, जैसे गीले गंडस्थल वाला हाथी हो; (रि० ६, ४)।

गिव—पुं०-(सं० ग्रीवा) गला; (प्रा० पैं० १, ६८)।

गिव्वाण—पुं० (सं० गीर्वाण > प्रा० गिव्वाण) सुर, देव; (जंबू० ७, ११, ३)। —पुरी स्त्री० (सं० गीर्वाणपुरी) स्वर्गपुरी; (व० ७, १०, ८)। —सेल पुं० (सं० गीर्वाणशैल) सुमेरुपर्वत; (व० ६, १३, ५)।

गिह—क्रि० (सं० गृह्णाति) ग्रहण करना; (उ० व्य० प्र० ७-२६)।

गिहथहि—स्त्री० (सं० गृहस्थम्) गृहस्थी, गृही; (उ० व्य० प्र० ४६-२०)।

गिहवइ—पुं० (सं० गृहपति) गृहपति रत्न (कोषागारामात्य), "कण्णा-सेणावइ-थवइ-मंति गिहवइ-तुरंगु-करि विहिय-सति," अर्थात् कन्यारत्न (रानी), सेनापति रत्न, स्थलपतिरत्न (शिल्पी) मन्त्री रत्न (पुरोहित), गृहपति रत्न (कोषागारमात्य), तुरंग रत्न और करि रत्न (मातंग—गज), (व० ८, ४, ४)।

गिहवार—न० (सं० गृह+द्वार) गृहद्वार; (ण० ६, २०, १६)।

गिहवास—पुं० (सं० गृहवास>प्रा० गिहवास) घर में निवास; (व० २, १६, १)।

गिहासम—पुं० (सं० गृहाश्रम>प्रा० गिहासम) गृहस्थ-आश्रम; (भ०; जंबू० २, ६, ३)।

गिह्वण—पुं० ग्रहण, "माऊर इंति गिह्वण-कंएण;" अर्थात् मयूरी उन्हें बार-बार पकड़ने के लिए आती है; (व० १, ४, १२)।

गींम—स्त्री० (सं० ग्रीवायाम्) कण्ठ; (उ० व्य० प्र० ६-२२)।

गीअ—न० (सं० गीत>प्रा० गीय) गीत; (जस० १, २७, २; की० २, ६१)।

गीअउ—पुं० (सं० गीता>प्रा० गीआ) छंद-विशेष; (प्रा० पैं० २, १९६)।

गीढु—क्रि० (सं० गृहीत>प्रा० गाहिअ) उठाए है, "जइ कुम्में धरियउ धरणिवीढु, तो कुम्मु पडन्तउ केण गीढु" अर्थात् यदि धरती की पीठ कछुए ने उठा रक्खी है तो तिरते हुए कछुए को कौन उठाए है," (प० च० १, १०, २)।

गीति—स्त्री० (सं० गीति>प्रा० गीइ) गीत, गान; "गंधव्व गीति दुन्दुहिअ वर परिमल परिचए जान को;" (की० ४, २१८)।

गीय—न० (सं० गीत>प्रा० गीय) गान, ताल और बाजे के अनुसार गाना; (ण० ६, १५, ५)। बि० जो गाया जा सके; (प० च० १६, ६, १; जस० १, ५, १७)। —सद्द पुं० गीतशब्द; (जस० ४, १७, १२)।

गीयपुरा—न० (सं० गीतपुर>प्रा० गीयपुर) जनपद-विशेष; (प० च० ५५, ५३)।

गीव—स्त्री० (सं० ग्रीवा>प्रा० गीवा) गरदन; (ण० १, १७, ३)।

गीवा—स्त्री० (सं० ग्रीवा>प्रा० गीवा) कण्ठ; (क० ३, १५, ६)।

गुंछ—पुं० (सं० प्रा० गुच्छ) गुच्छा, स्तवक; (जस० १, २३, १२)।

गुंछा—स्त्री० (दे०) १. बिंदु; २. दाढ़ी-मूंछ; ३. अधम, नीच; (दे० ना० मा० २, १०१)।

गुंजंकियं—क्रि०, भू० का० (सं० गुञ्ज-ङ्कृत) गूंज उत्पन्न कर दी; (जंबू० १०, १६, ४)।

√गुंज—(सं√गुञ्ज्>प्रा० गुंज) गुन-गुन करना। गुजंत–व० कृ० (सं० गुञ्ज्+शतृ); (जंबू० ४. २२, ४)।

गुंजरिया—क्रि० भू० का० (सं० गुञ्जारिता) गुंजारित हो रही थी; "कहिँ मि हयदंडवरघेहिँ गुंजारिया;" (जंबू० ५, ८, १५)। गुंजिय—क्रि०, भू० का० (सं० गुञ्जित) गुंजार करते थे, "मुहम-रुमिलंतगुंजियभमरु;" अर्थात् मुख की सुगंधित आश्वास से आकृष्ट होकर एकत्र हुए भौंरे गुंजार करते थे; (जंबू० १, १२, ५)।

गुंजरी माला—स्त्री० सं० गुञ्जा+माला>प्रा० गुंजा+माला) गुंजा माला; (हि का० च० २८)।

गुंजा—स्त्री० (सं० गुञ्जा>प्रा० गुंजा) १. गुंजा, फल-विशेष; (जस० १, ६, १०)। २. गुंजा वृक्ष-विशेष;

"सिरिसु सेवन्नि-सेहालिया-सिसमी सज्ज-गुंजा-सभी-" अर्थात् कहीं सिरीष, सेवाणि, शेफालिका, शीशम, सर्ज, गुंजा और शमी के वृक्ष थे; (जंबू० ५, ८, १०)।

गुंजाविहाणनयर—पुं० नगर-विशेष; (प० च० १०१, ५६)।

गुंभुज्जल—वि० (सं० गुञ्जा+उज्ज्वल) गुंजा के समान उज्ज्वल, दट्ठाहरु गुंजुज्जललोयणु;" ओठों को काटते हुए गुंजा के समान चमकीले लोचन; (जंबू० ५, १३, ११)।

गुंजेल्लिअं--स्त्री० (फ़ा० गुंजलक) १. गुंजलक, गेंडुली, २. कपड़े आदि की शिकन। टिप्पणी-दे० ना० मा० में इसका अर्थ 'पिण्डी कृतम' दिया है, अर्थात् सूत, रस्सी आदि का गोल लच्छा (दे० ना० मा० २, ६२)।

गुंजेल्लिअ—वि० (दे०) इकट्ठा किया हुआ; (दे० ना० मा० २. ६२)।

गुंठ—पुं० (दे०) अधम अश्व, दुष्ट घोड़ा; (दे० ना० मा० २, ९१)। वि० (दे०) कपटी, मयावी; (जंबू० ४' २१, ११)।

गुंठिअ—वि० (सं० गुण्ठित=घिरा हुआ, ढका हुआ) १. धूसरित, २. व्याप्त; ३. आच्छादित; (दे० ना० मा० १, ८५)।

गुंठी—स्त्री० (दे०) स्त्री० का वस्त्र-विशेष; (दे० ना० मा० २, ९०)।

गुंड—न० (दे०) मोथा (एक प्रकार की घास) से उत्पन्न होने वाला तृण-विशेष; (दे० ना० मा० २, ९१)।

गुंथइ—क्रि० (सं० ग्रथ्) गूँथना, गठना; (ण० ५, ८, १४)।

गुंदा, गुंपा—वि० (सं० गुण्डक=मलिन) १. दुर्वृ, पापी, कुमार्गी, बदमाश २. छैला; (दे० ना० मा० २, १०१)। ३. स्त्री० (दे०) विदु; (दे० ना० मा० २, १०१)।

गुंफ¹—पुं० (सं० गुम्फ्) १. रचना, २. गूँथना, ग्रन्थन; (दे० ना० मा० १, १५०)। २. गुप्ति, कारागार, जेल; (दे० ना० मा० २, ९०)।

गुंफ²—पुं० (सं० गुल्फ एड़ी के ऊपर की गाँठ, टखना, घुट्टी; "गूढ़ेहिं गुंफेहिं, णं मंतगुंफेहिं," इनके गुल्फ गूढ़ है मानों कोई गम्भीर मंत्रणा कर रहे हों; (जस० १, १७, १४)।

गुंफी—स्त्री० (दे०) क्षुद्र कीट-विशेष, करखजूरा; (दे० ना० मा० २, ९१)।

गुआल—पुं० (सं० गोपालक>प्रा० गोवल) ग्वाला, गौ पालने वाला; (उ० व्य० प्र० ५-१४)।

गुग्गुल—पुं० (सं० प्रा० गुग्गुल) सुगंधित द्रव्य-विशेष; (सुदं० ६, १०, ६)।

गुग्गुरावत—पुं० (सं० गुलगुलायित>प्रा० गुलगुलाइय) गम्भीर गर्जन करने का शब्द; गड़गड़ाहट, हाथी का हर्षित गर्जन; (कौ० २, १०४)।

गुर्जर—पुं० (सं० गूर्जर>प्रा० गुज्जर) १, गुर्जर देश का राजा, २. गुजरात के निवासी, ३. गुर्जर जाति, (प्रा० पैं० १, १५१)। ४. गुजरात प्रदेश; तुल० म० गुजर; (भ०)।

गुज्जरि—स्त्री० (सं० गुर्जरी) गूर्जर देश (गुजरात) की स्त्री; (सुदं० ४, ६, ७)।

गुज्जलिअ—वि० (दे०) संघटित; (षड्)।

गुज्झ—वि० (सं० गुह्य>प्रा० गुज्झ) गोपनीय, छिपाने योग्य; (प० च० १४, ७, ६; सुदं० ४, ११, ७; जस० ३, ३६, ३)।

गुज्झवत्त—पुं० (सं० गुह्यवार्ता>प्रा० गुज्झ+वत्त) गोपनीय बातचीत; (सि० १, २०)।

गुज्झहर—वि० (सं० गुह्यधर) रहस्य-भेदी; गुप्त बात को सबके सामने कह देने वाला; (दे० ना० मा० ३, ६३)।

गुड—पुं० (सं० प्रा० गुड) कवच-विशेष; (प० च० ४०, ६, १०)। २. गुड, शक्कर, "गुडसक्करलड्डु व लेवि खणे;" (क० २, ७, १)। —सारि कवच; (व० ५, ७, ११)।

गुड—सक० (सं० गुड्>प्रा० गुड्) हाथी को हौदा आदि लगा कर सजाना, 'हाथि गुड' —हस्तिनं गुडति। गुड रक्षायाम्। गुडंति–क्रि०, व० व, (जंबू० ५, ६, ४)।

गुडवालिय—वि० (दे०) इकट्ठा किया हुआ; (दे० ना० मा० २, ६२)।

गुडसोल्ल—पुं० (सं० गुड+सोल्ल= पक्क) गुड से तैयार की गई एक प्रकार की मिठाई; (प० च० ५०, ११, १२)।

गुडाई—स्त्री० (सं० गुड+आदि) दाख आदि, "जत्थ गुडाईण जहा महुरत्तं भिण्ण-भिण्णमुवलंभो;" गुड आदि से जहां-जहां भिन्न-भिन्न माधुर्य की उपलब्धि होती है; (जंबू० १०, १, ३)।

गुडिआ—स्त्री० (सं० गुटिका>प्रा० गुडिआ) गोली, गुलेल; (प्रा० पैं० १, ६७)।

गुडिउ—वि० (सं० गुडित) कवचयुक्त; "करि ढुक्कु सपहरणु सरिउ गुडिउ" अर्थात् वहाँ स्मरण करने से कवच एवं शस्त्रों से युक्त हाथी उपस्थित हुआ; (जंबू० ६, ११, ३)।

गुडोलढिआ—स्त्री० (दे०) चुंबन; (दे० ना० मा० २, ६१)।

गुड्डिया—स्त्री० (दे०) पताका; तुल० गु० गूडी; (प्रा० गु० १५, ६)।

गुड्डु—पुं० (दे०) गोड़, पावँ, पैर, चरण; तुल० गु० गूडो; (प्रा० गु० ३६, २६)। गोड्ड; (प्रा० गु० १२, ४१)।

गुड्ड—पुं० (सं० गौड>प्रा० गोड), गौडदेशवासी; ब्राह्मणों का एक वर्ग, मनुष्य-जाति-विशेष; (संधि० १०, २, ३)।

गुड्डर—पुं० (दे०) तंबू, डेरा; (जंबू० ५, १०, २३)।

गुड्डर—पुं० (दे०) गुहार (युद्ध में प्रयाण करने हेतु की गई ध्वनि) "गुड्डर उब्भिय, अरियण खुब्भिय," अर्थात् अरि-जनों को क्षुब्ध कर देने वाली गुहार ध्वनि कर दी गई; (व० ४, २४, १)।

√गुण—(सं० गुणय्>प्रा० गुण), गिनना। –इ व० (सं० गणयति) गिनना;

(प्रा० पैं० १, १०७)। गुंणि—पू० का० क्रि०; (प्रा० पैं० २, २१४)।

गुण—पुं० न० (सं० प्रा० गुण) १. धनुष की प्रत्यंचा; (जंबू० ५, १४, ११)। २. गुण अच्छाई; (जस० १, २, ७; प्रा० पैं० १, ६५)। —ग्राम वि० गुणों का आगार; (की १, ८५)। —जुत्त वि० गुण, स्वभाव, धर्मयुक्त; (जंबू० ४, ६, ११)। —टंकोर पुं० धनुष की टंकार; (व० ५, १०, ७)। —ठाण पुं० (सं० गुणस्थान); (क० ६, १६, ८)। —थाण वि० (सं० गुण-स्थान) गुणों के निधान; (जंबू० ४, ४, ५)। —थाम वि० (सं० गुणस्थान) गुणवान; "पिय गोत्तवइ तासु गुणथा-महो;" (जंबू० ४, २, ३)। —धर पुं० वणिक पुत्र का नाम; (प० च० १०३, ८)। —निलउ वि० (सं० गुण-निलय) गुण-निधान; (जंबू० ?, ५, ?)। —निहि पुं० गुणनिधि, मुनि-विशेष-नाम; (प० च० ८२, ६५)। —परिमिअ वि० (सं० गुणपरिमित) गुणों से वेष्टित; (जंबू० ३, ६, १)। —वंध पुं० मेख-लाबन्ध, रस्सी, डोरी; (जंबू० १०, १८, ११)। —भाय वि० (सं० गुण+भाग) गुणभाजन; (जंबू० ५, १३, ३०)। —मंत वि० गुणवान्; (प्रा० पैं० २, १४६)। —मन्ता वि० गुणवान् (की० २, १३४)। —मंदिर वि० (सं० गुणम-न्दिर) गुण-निधान; (जंबू० ३, २, १२)। —वंत वि० (सं० गुणवत् >प्रा० गुण-वंत) गुणी, गुण-युक्त; (प्रा० पैं० २, ४४)। —वंति वि० (सं० गुणवती) गुणवान; (प्रा० पैं० १, १७१)। —वई स्त्री० वानररानी; (प० च० ६, ६६)। —सीला वि० (सं० गुणशीला) गुणों से युक्त; (जंबू० २, ११, ७)। —हार पुं० हार की लड़ें; (जंबू० ८, १६, ६)।

गुणंति—क्रि० डोरी चढ़ाना; 'गुणंति धणु' धनुष पर डोरी चढाना; (महा० ६६, १३, ६)।

गुणक्खय—पुं० (सं० गुण+क्षय) गुणों का क्षय; (ण० ६, १४, ३)। —ठान (गुणठान—पुं० (सं० गुण+स्थान) आत्मा की उन्नति की चौदह अवस्थाएँ बतायी गई है, जिन्हें गुणस्थान कहा जाता है; (ण० १, १२, ११)। —धम्म (गुण-धम्म) पुं० (सं० गुण+धर्म) पुरुष-विशेष; (ण० १, २, ४)। —वइ स्त्री० (सं० गुणवती) स्त्री-विशेष (ण० ७, ४, ६)।

गुणगुणंति—क्रि० (सं० गुनगुनाय्) ध्व-न्यात्मक, गुनगुनाना; "चाउद्दिसु मसया गुणगुणंति," चारों दिशा में मशक (मच्छर) गुनगुनाए; (सुदं० ११, १५, ७)।

गुणग्गल—वि० (स० गुणार्गला) गुण-शालिनी, "मरिवि जसोहहों पत्ति गुण-ग्गल हुई चंदलच्छि चंदुज्जल," अर्थात् वह जीव मरकर यशोध राजा की गुण-शालिनी, चंद्र के समान उज्ज्वल चंद्र-लक्ष्मी नामक पत्नी हुई; (जस० ४, २७, ३)।

गुणाणिकेअ—वि० (सं० गुणानिकेत) गुणों का घर; (क० २, २, ८)।

गुणाणियर—वि० (सं० गुणनिकर) गुणों का समूह; (क० ५, १८, ४)।

गुणणिलअ—वि० (सं० गुणनिलय) गुणों का निधान; (क० ३, १६, ६)।

गुणणिहाणु—वि० (सं० गुणनिधान) गुणागार, गुणी; (व० १, १०, ११)।

गुणभरिय—वि० (सं० गुणभृत) गुणों से भरपूर; (क० १, १५, ११)।

गुणमइ—स्त्री० (सं० गुणमति) १. दाशरथी भरत की प्रणयनी; (प० च० ८०, ५)। २. वणिक पुत्री का नाम; (प० च० १०३, ६)।

गुणमाला—स्त्री० विद्याधर राजपुत्री; (प० च० ५४, ४२)।

गुणमेलअ—वि० (स० गुणमेलक) गुण-समूह; (जस० १, २३, ३)।

गुणमोयण—वि० (सं० गुणमोचन) गुणों का अपहरण करने वाले, "तं भोयणु गुणमोयणु पिसुणसमानउ दीसइ;" (जस० २, २३, १३)।

गुणरसाइ—पुं० (सं० गुण+रस+आदि) रसादि गुण; (जस० ४, १३, ४)।

गुणराइय—वि० (सं० गुण+राजित) गुणों से शोभायमान; (जस० ४, २४, २५)।

गुणलच्छि—स्त्री० (सं० गुणलक्ष्मी) गुणों रूपी लक्ष्मी; (व० २, ५, १५)।

गुणवंत—वि० (सं० गुणवत्>प्रा० गुणवंत) गुणी, गुण-युक्त, गुणवान् (भ०; महा० ६६, १३, १२)।

गुणवमाल—वि० गुणों से भरपूर; (क० १, १५, ४)।

गुणवय—न० (सं० गुणव्रत>प्रा० गुणव्वय) जैन गृहस्थ को पालने योग्य व्रत-विशेष; (भ०)।

गुणवल्ली—स्त्री० रानी-विशेष-नाम; (प० च० १३, २६)।

गुणविणीय—वि० (सं० गुणविनीत) गुणविनीत, विनम्र; (क० ५, १६, ७)।

गुणसम्मुद्दा—स्त्री० दाशरथी भरत की प्रणयिनी; (प० च० ८०, ५२)।

गुणसायर—वि० (सं० गुणसागर) गुणों का समुद्र, गुणों से भरा; (जस० ४, २७, १)। पुं० मुनि-विशेष-नाम; (प० च० २१, ७१)। —गुणसायरु वि० गुणों का सागर; (व० २, १, १०)।

गुणसिंधु—वि० (सं० गुणसिन्धु) गुणों का समुद्र; (जस० ४, २८, १)।

गुणसेढि—स्त्री० (सं० गुणश्रेणि) गुण की सीढ़ी "गुणसेढिठाणेण, जोइ व्व णाणेण," अर्थात् गुण की सीढ़ी पर चढ़ने से योगी का अज्ञान दूर हो जाता है; (जस० १, १७, ४)।

गुणहणणि—वि० (सं० गुणहननी) गुण-घातिक, (जस०)।

गुणाणुरत्त—वि० (सं० गुणानुरक्त) गुणों में अनुरक्त, "विहिय गुणाणुरत्त मेइणि-वहु," अर्थात् पृथ्वी रूपी वधु को गुणों से अनुरक्त कर लिया; (व० २, २, ४)।

गुणायर—वि० (सं० गुणाकर) गुणों की खान; (क० ३, ३, ११)।

गुणाल—वि० (सं० गुणवत्>प्रा० गुणि-

ल्ल) गुणी (पुरुष), गुण-युक्त; (ण० ३, ३, ६; क० १०, २७, १)।

गुणासिउ—वि० (सं० गुणाश्रित) गुणाश्रित; (व० ४, २२, १३)।

गुणिग्र—वि० (सं० गुणित > प्रा० गुणिअ) पठित, शिक्षित; (ण० २, १, ७)।

गुणिय—वि० (सं० गुणित) अभ्यस्त; (जस० १, २४, ६)।

गुणु—पुं० न० (सं० प्रा० गुण) उपकार, भलाई; (प० च० १२, ५, ११)।

गुण्डा—पुं० (फ़ा० गुंदः) खमीरी आटे का फूला हुआ गोला; (की० २, १७४)

गुत्त—पुं० न० (सं० गोत्र > प्रा० गोत्त, गुत्त) गोत, वंश, कुल, जाति; (जंबू० ८, १०, १२)। वि० (सं० गुप्त > प्रा० गुत्त) गुप्त, प्रच्छन्न; (जंबू० ८, १६, ६; ण० ९, २५, १६)।

गुत्तण्हाण—न० (दे०) पितृ-तर्पण; (दे० ना० मा० २, ९३)।

गुत्तायर—पुं० (सं० गोत्राचार) खानदान का आचरण; (जंबू० ८, १२, ६)।

गुत्ति—स्त्री० (सं० गुप्ति > प्रा० गुत्ति) कैदखाना; (ण० १, १२, ४)। स्त्री० (दे०) १. बंधन; २. सिर पर पहनी जाने वाली फूल की माला; (दे० ना० मा० २, १०१)।

गुत्तितउ—पुं० (सं० गुप्तित्रय) मन, वचन और शरीर को अशुभ प्रवृत्ति से रोकना; (जंबू० १०, २०, ७)।

गुत्ती—स्त्री० (सं० गात्री, गात्रिका) गाँती, वह चद्दर जिसे प्राचीन काल में लोग अपने सिर पर लपेटते थे और अब भी साधु लोग अपने गले में बाँधे रहते हैं। स्त्रियाँ बच्चों के गले में अब भी बाँधती हैं, (दे० ना० मा० २, १०१)।

गुत्थंड—पुं० (दे०) पक्षी-विशेष; (दे० ना० मा० २, ९२)।

गुत्थ—वि० (सं० ग्रथित > प्रा० गुत्थ) गूँथी हुई, गुम्फित; (विला०)।

गुद—पुं० स्त्री० (सं० गुद न०) गुदा, मलद्वार; (दे० ना० मा० ६, ४९)।

गुन—पुं० न० (सं० प्रा० गुण) गुण; (की० १, ७६)।

गुनिव—क्रि० (सं० गुणय् > प्रा० गुण) स्मरण करना, सोचना, चिंता करना; (की० ३, ५२)।

गुन्नइ—क्रि० (सं० गुणय् > प्रा० गुणइ > अप० गुण्णइ) आवृत्ति करना, याद करना; (की० २, १७)।

गुप्पंत—न० (दे०) १. शय्या २. वि० रक्षित; ३. संमूढ़, घबड़ाया हुआ, व्याकुल; (दे० ना० मा० २, १०२)।

गुप्पन्त—वि० (दे०) स्त्री० गुप्पन्ती; व्याकुल; (प० च० ४६, ४, ३)। —उ वि० ढका हुआ, "रसणा-हार-दाम-गुप्पन्तउ" अर्थात् 'करधनी, हार और मालाओं से ढका हुआ,' (प० च० २०, १०, ५)।

√गुप्प—(सं० गुप् > प्रा० गुप्प) व्या-

कुल होना; —इ व० (ण० ५, ६, ८)। गुप्पमाण—कृ० (सं० गुप्पमान); (ण० ८, १५, ८)।

गुप्पविअ—वि० (सं० गोप्य>प्रा० गुप्प) गोपित, छिपाने योग्य; (क० १०, १३, १)।

√गुप्प—(दे०) निकलना "अंताइँ गुप्पंति, रुहिरेण थिप्पंति," अर्थात् आँते निकल रही हैं, रुधिर से सन रही हैं; (क० ३, १५, ८)।

गुप्फाविय—क्रि०, भू० का० (सं० गुल्फायित) गुल्फ बन गए; "चलणलुलंत-अंतगुप्फाविय," अर्थात् उनके पैर काट लिये जाने से आँतों के गुल्फ बन गए; (जंबू० ६, १४, १२)।

गुफगुमिअ—वि० (दे०) सुगंध-युक्त; (दे० ना० मा० २, ९३)।

गुमगुम—क्रि० (सं० गुमगुमाय्>प्रा० गुम-गुम, गुमगुमाअ) गुमगुम आवाज करना, (ण० २, १४, १०)। (सुदं० ११, १२, ६; जस० २, २७, ५)। गुमगुमंत—व० कृ० गुनगुनाते हुए; (ह० १७, ३)। गुमगुमंति—गुन-गुन करना; (विला०)। गुमुगुमुगुमंत—व० कृ० गुन गुनाते हुए; (ण० २, १४, ३)। गुमुगुमुगुमन्त—व० कृ० (ध्वन्यात्मक) गुमगुम करते हुए (humming); (प० च० ४०, १६, ६)।

गुमगुमिय—वि० (सं० गुमगुमायित> प्रा० गुमगुमाइय) जिसने गुम-गुम आवाज किया हो वह; (सुदं० ९, ११, ४)।

गुम्भिल—वि० (दे०) १. मूढ़, मुग्ध, २. गहन, गहरा; ३. प्रस्खलित, ४. आपूर्ण, भरपूर; (दे० ना० मा० २, १०२)।

गुम्म—पुं० न० (सं० गुल्म) सेना-विशेष, जिसमें २७ हाथी, २७, रथ, ८१ घोड़ा और १३५ प्यादा से ऐसी सेना; (प० च० ५६, ५)।

गुम्मइअ—वि० (दे०) १. मूढ़, मूर्ख; (दे० ना० मा० २, १०३)। २. पूर्ण किया हुआ; ३. स्खलित, ४. मूल से हटा हुआ; ५. विघटित, वियुक्त; (दे० ना०-मा० २, १०३)।

गुम्मिअ—वि० (दे०) मूल से उखड़ा हुआ, उन्मूलित; (दे० ना० मा० २, ९२)।

गुम्मी—स्त्री० (दे०) इच्छा, अभिलाषा; (दे० ना० मा० २, ९०)।

गुम्मु—पुं० न० (सं० गुल्म>प्रा० गुम्म) लता, वल्ली, वनस्पति-विशेष; (व० ४, २२, ३)।

गुरु—वि० (सं० प्रा० गुरु) बड़ा, महान्; (सं० रा०)। २. शिक्षक (उ० व्य० प्र० ५०-२३)। ३. द्रोणाचार्य; "गुरु आसत्थाम-कलिंगचार," (भारत रणभूमि) गुरु (द्रोणाचार्य) अश्वत्थामा और कलिंग-राज के संचरण से युक्त थी; (जंबू० ५, ८, ३२) ४. बृहस्पति; (व० १०, २४, १७)। —लोए पुं० गुरुजन; (को० २, २३)। गुरव—देखो गुरु: 'जो गुरवे साहीणे धम्मं साहेइ पोढवुद्धिओ,' (प० च० ६, ११४)। — गुरुक; (प्रा० पैं० १, २१)। —अर वि० (सं० गुरुतर) तुलनात्मक रूप से अधिक भारा; (प०

च० ४, १०, ६)। —कमारूढ वि० (सं० गुरुक्रमारूढ) गुरु परंपरा-प्राप्त; (जस०)। —क्क वि० (सं० गुरु+क) महत्; (जस० १, १४, ४)। —क्कउ वि० [सं० गुरु+क (स्वार्थे)>प्रा० गुरुअ] महान्, बड़ा; (सुदं० ११, १३, १२)। —क्किय वि० (सं० गुरुकृत) महान्; (सुदं० ८, ७, ३)। —क्की वि० (सं० गुर्वी>प्रा० गरुई, गरुगी) बड़ी "जाय जिणहों ता सङ्क गुरुक्की," अर्थात् जिनको बड़ी शंका हुई; (प० च० २, १०, १)। —जुअल पुं० (सं० गुरुयुगल) (छंदशास्त्र में) द्विगुरु चतुष्कल (ऽऽ) का नाम; (प्रा० पैं०)। —ता स्त्री० गुरुता (प्रा० पैं० १, ४१) —दक्खिण्ण स्त्री० गुरुदक्षिणा; (रि० ४; ५)। —पंथ पुं० (सं० गुरुपथ) दीर्घयात्रा, लंबा पथ; (जंबू० १०, ८, १२)। —यण पुं० गुरुजन; (जस० २, १८, १०)। —यरु वि० (सं० गुरुतर) (व० १, १७, १६)। —व पुं० विवाह-भोज; तुल० गु० गोरव; (प्रा० गु० ११, १७)। २. वि० (सं० गुरुक) भारी, "गरुवपवाहपडिउ गउ सायरे;" (जंबू० ६, ५, ७)। —हर पुं० (सं० गुरु-भर) भारी वजन या बोझ; (प० च० ७, १०, ८)। —हार वि० (सं० गुरुभारा=किसी भी भार को धारण करने वाली स्त्री) गर्भवती, "गुरुहार हूअ एत्तहें वि सइ" अर्थात् 'यहां वह सती गर्भवती हो गई,' (प० च० १६, १, ६) टि०—मूल अर्थ में-परिवर्तन। २. वि० (सं० गुरुभार), अधिक भार; (जंबू० ४, ७, ३)।

गुल—न० (दे०) चुंबन; (दे० ना० मा० २, ६१)।

गुलखेड—पुं० ग्राम-विशेष; (जंबू० १, ४, १)।

√गुलगुल—(सं० गुलगुलाय्>प्रा० गुलगुल) हाथी का हर्ष से गरजना, गुलगुल आवाज करना। —इ अक० (भ०)। गुलगुलंति—क्रि० (सुदं० ११, १५, १०)। गुलगुलंत—व० कृ० (सं० गुलगुलाय+शतृ) कृ० (सुदं० ६, १६, २)। गुलगुलायंत— कृ० (स्व०) (प० च० १०७, २०)। गुलगुले वि- पू० का० क्रि०, गुलगुल आवाज करते हुए (प० च० १०, १०, ६)। तुल० म० गुलगुल।

गुलामा—पुं० गुलाम, सेवक, नौकर-चाकर; "गोहन नहि पावहि वथ्थु नचावहि भूलल भुलहि गुलामा;" अर्थात् अपने घरों या डेरों को पहचानने में भूले हुए गुलाम या सेवक इधर-उधर घूमते रह जाते थे; (कीं० ४, ११७)। गुलामो पुं०, व० कर्त्ताकारक (कीं० २, १६६)।

गुलिअ—वि० (दे०) मथित, विलोड़ित; (षड्; दे० ना० मा० २, १०३; सुदं० ६, १६, १२)।

गुलिआ—स्त्री० (दे०) १. गेंद, कंदुक; २. गुच्छा; (दे० ना० मा० २, १०३)। गुलिया स्त्री (दे०) कंदुक, पत्थर की गेंद; (क० ७, ५, ११)।

गुलियउ—पुं० (सं० गुलच्छ>गुलुच्छ) गुच्छा, स्तवक; "जहि दक्ख रसालउ। गुलियउ अमरेहि मि ईहि (य)

उ;" अर्थात् जहाँ मीठी द्राक्षा लताएँ है, जिनके गुच्छे देवों के द्वारा चाहे गए हैं'; (प० च० ६, ५, ६)।

गुलिया—वि० (सं० गुल पुं०=गुड) मधुर, "गुल नामिहिं पिययम लियइ, किं मुह गुलिया हुंति;" (प्रा० गु० ६, १६)। —रअ वि० मधुरतर; तुल० गु० गळ्युं=मिठाई; (प० च० ५०, ११, १४)।

गुलियाठाण—पुं० (सं० गुलिका+स्थान) गुटिका रखने का स्थान, "गुलियाधुणु विणोएँ कामें किउ, गुलियाठाणु नाहिमंडलु किउ;" अर्थात् उनका नाभिमंडल ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेव ने विनोदपूर्वक गुलिया-धनुष (गुलेल) बनाया हो, जिसमें उनका नाभिमंडल तो गुलिया था; (जंबू० ४, १३, १३)।

गुली-गुहाडा—पुं० (दे०) हल्ला; तुल० मगही गुल-गुहाड़ (शबरपा, चर्यापद)।

गुलुंछ—पुं० (सं० गुलुञ्छ>प्रा० गुलुंछ) गुच्छ, गुच्छा; (दे० ना० मा० २, ९२)।

गुलुगुंछिअ—वि० (दे०) वाड़ से अंतरित या ढका हुआ या पृथक् किया हुआ; (दे० ना० मा० २, ९३)।

√गुलुगुल—चिंघाड़ना; —न्ति व०, व० (प० च० ३२, ३, ७)।

गुलुच्छ—वि० (दे०) भ्रमित, घुमाया हुआ, फिराया हुआ; (दे० ना० मा० २, ९२)।

गुव्विणि—स्त्री० (सं० गुर्विणी) गर्भवती स्त्री; (प्रा० पैं० १, ६५)।

गुसुव—पुं० (सं० गो+सुत) बछड़ा; (सि० १, ६)।

√गुह—(सं० गुहू संवरणे, √गुहू>प्रा० गुह; सं० गूहति) छिपाना, गुप्त रखना; (उ० व्य० प्र० ४९-२८)।

गुह—पुं० (सं० प्रा० गुहा) गुफा, कंदरा; (प० च० १९, ६, ६; जस० ४, १६, ११)। —मुह पुं० (सं० गुफा-मुख) गुफा का प्रवेश-द्वार; (व० २, ८, ६)।

गुहिर—वि० (सं० गम्भीर>प्रा० गुहिर) गहरा, सघन, रहस्समय, कठिनता से समझने योग्य। (सं० रा०)।

गुहिल—वि० (दे०, प्रा० गुहिर) गहन, गहरा; (प० च० २७, १४, ६)।

गुहिलु—वि० व्याप्त, "पवलङ्कुरु इन्दणील-गुहिलु"; अर्थात् 'प्रवालों और इंद्रनील से व्याप्त है,' (प० च० ६, ५, ३)।

गूंफ—(सं० गुन्फ ग्रन्थे to string together) बांधना, गूंथना; (उ० व्य० प्र० ५१, २७)।

गूआ—पुं० (सं० गुवाक=the betel nut tree) एक प्रकार की सुपारी; (रा० २३)।

गूगुलिअ—स्त्री० ब्राह्मण-जाति-विशेष, तुल० गु० गूगळी; (प्रा० गु० ७, ५)।

गूजरुदेसु—पुं० (सं० गूर्जरदेश) गुजरात; (प्रा० गु० ७, १०)।

गूढ—वि० (सं० प्रा० गूढ) गुप्त, प्रच्छन्न; (भ०)। —त्तण पुं० (सं० गूढत्व) गहनता, जिससे कोई अर्थ छिपा हुआ हो; (ण० १, १७, ५)। —पुरिस पुं० (सं० गूढपुरुष) जासूस, भेदिया, गुप्तचर; (प० च० १६, १, १)। —मंदिर पुं० (सं० गूढमन्दिर) मंत्रणाकक्ष; (व० ४, ११, १२)।

गूणि—स्त्री० (सं० गाणिक>प्रा० गोण) गोन, एक प्रकार का बोरा; (म० १, १४, ७)।

गूतउ—वि० (दे०) व्याकुलीकृत; "ससि-वयणि-गूतउ, मेह-कलि खूतउ, रंगि निरखइ निखूतउ;" (प्रा० गु० २०,३)।

√गृण्ह—(सं० ग्रह उपादाने) प्राप्त करना। —इ सक० (सं० गृह्णाति) ग्रहण करना; (हे० ३३६, १)।

गेंठि—स्त्री० (सं० ग्रन्थि>प्रा० गेंठ्ठि) गाँठ; (की ३, ३३)।

गेंदुल्ल—न० (दे०) कञ्चुक, चोली; (दे० ना० मा० २, ९४)।

गेंदुई—स्त्री० (दे०) क्रीड़ा, खेल; (दे० ना० मा० २, ९४)।

गेअ—न० (सं० गेय>प्रा० गेअ) गीत; (जंबू० १०, ८, ९)। —रव पुं० (सं० गेय+रव) गीतरव; (जंबू० ९, २, ६)।

गेग्गदु—पुं० (ध्वन्यात्मक) ढोल के पीटने की आवाज; (प० च० ५६, १, ११)।

गेज्ज—न० (सं० गीत>प्रा० गीय) गीत, "मणोज्ज गेज्ज पन्तिणो," जैसे सुंदर गीत पंक्तियाँ हों, (प० च० १७, १६, ८)। वि० (दे०) मथित, विलोड़ित; (दे० ना० मा० २, ८८)।

गेज्ज—न० (सं० ग्रैवेयक) हार, कंठा; (प० च० २६, १३, ३)। —ल न० ग्रीवा का आभरण; (दे० ना० मा० २, ९४)।

गेज्झ—वि० (सं० ग्राह्य>प्रा० गेज्झ) ग्रहण-योग्य; (जस० ३, २२, ४)।

गेड्ड—न० (दे०) १. पंक, कीच; २. यव, अन्न-विशेष; (दे० ना० मा० २, १०४)।

गेणिहअ—न० (दे०) स्तनाच्छादक वस्त्र; (दे० ना० मा० २, ९४)।

√गेण्ह—(सं०√ग्रह्> प्रा० गह) —इ क्रि० व० (सं० गृह्णाति) गेण्हंत—व० कृ० (सं० गृह्णत्) ग्रहण कर; (ण० ५, ७, २)। गेण्हिवि—पू० का० क्रि०; लेकर; (ण० ३, ८, १५)। गेण्हेँवि पू० का० क्रि० (प० च० २, ११, ६)। गेण्हेविणु—पू० का० क्रि० (सं० ग्रह+एविणु (व० २, १६, १०)। गेण्हु—भू० कर्म कृ०; (प्रा० पैं० २, १९७)।

गेण्हण—न० (सं० ग्रहण>प्रा० गेण्हण) आदान, ग्रहण; (प० च० २५, १७, ३)।

गेद्धु—पुं० (सं० गृध्र>प्रा० गिद्ध) गिद्ध, पक्षी-विशेष; (व० ५, १२, १३)।

गेय—पुं० (सं० गेय>प्रा० गेअ न०) गान, गीत; "गोवालगेयरंजियमणेण;" अर्थात् वहाँ ग्वालों के गीतों से मनोमुग्ध होकर; (जस० १, ३, १४)।

गेयाइ—न० (सं० गेय>प्रा० गेअ) गान; (प० च० २, ४, ३)।

गेरुअ—वि० (सं० गैरिक>प्रा० गेरिअ)

गेरुआ, गेरु रंग का; (व० ५, १३, १०)।

गेल—भू० का० (सं०√गम>प्रा० गच्छ) गया, गए; तुल० मगही गेल (कुक्कुरीपा, चर्यापद; की० ३, ३६)। टि०—अवहट्ट भाषा में 'ल' प्रत्यय का प्रयोग भूतकाल में किया गया है। इसके दो रूप मिलते हैं, १. कहल, चलल आदि; २. गेल, भेल आदि।

गेवज्ज—न० (सं० ग्रैवेयक>प्रा० गेविज्ज, गेवेज्ज, गेवेज्जय) ग्रैवेयक देवों का विमान; (जंबू० ११, १२, ५) २. स्वर्ग; (व० १०, २०, १६)।

गेवेज्जिम—न० (सं० ग्रैवेयक>प्रा० गेविज्ज, गेवेज्ज, गेवेज्जय) ग्रैवेयक देवों का विमान; (जंबू० ११, १२, २)।

गेह—न० (सं० प्रा० गेह) घर, मकान; (प० च० १, १६, ५; प्रा० पैं० २, ६६; जस० १, २६, १७)। गेहु, (सा० १८४)।

गेहत्थ—पुं० (सं० गृहस्थ) ब्रह्मचर्य-पालन के पश्चात् विवाह करके दूसरे आश्रम में प्रवेश करने वाला, गृही। घर-बार वाला; (ण० ६, २०, १६)।

गेहालु—वि० (सं० गेहवत्) घरवाला, गृहस्थ, गृहस्थाश्रमी; (प० च० ३१, ८३)।

गेहिणि—स्त्री० (सं० गेहिनी>प्रा० गेहिणी) गृहिणी, स्त्री; (जस० ३, २७, १२)।

गोंछ—पुं० (सं० प्रा० गुच्छ) गुच्छा, स्तबक; (ण० १, ६, १२)।

गोंजी, गोंठी—स्त्री० (दे०) मंजरी, वीर; (दे० ना० मा० २, ६५)।

गोंड—न० (दे०) कानन गोंड देश का जंगल, तुल० ते० कोन्ड; (दे० ना० मा० २, ६४)।

गोंडी—स्त्री० (दे०) मंजरी, वीर; (दे० ना० मा० २, ६५)।

गोंदल—पुं० (सं० गुन्दल=मृदंग का शब्द; प्रा० गुंदल=खुशी की आवाज) आक्रंद, घोर संग्राम; "सुहडगोंदलुद्दाम-कलयलं" —घोर संग्राम में अच्छे-अच्छे योद्धाओं की पंक्तियाँ टूट गईं; (ण० ४, १०, ७)। गोन्दल—न० १. आनंद ध्वनि; (प० च० २४, २, २)। २. सुरत (संभोग) व्यापार संग्राम; (प० च० २६, ५, ८)। ३. अव्यवस्थित जनसमूह; (प० च० ४०, ७, ३)।

गोंदलिय—वि० (सं० गुन्दल>प्रा० गुंदल) खुशी में लीन, "जहिँ मणहरमर-गयहरियपिछ, मायंदगोंछि गोंदलिय रिंछ" और जहाँ मरकत मणि के समान मनोहर हरे पंखों से युक्त शुक आमों के गुच्छों पर आनंद-मग्न दिखाई पड़ते हैं; (ण० १, ६, १२)।

गो—स्त्री० (सं० प्रा० गो) १. धेनु; (जस० १, ३, ९)। २. जल; (जंबू० २, ५, ३)। ३. नेत्र; (प० च० २६, १०, १०)। पुं० (सं० गः) गुरु वर्ण (ऽ); (प्रा० पैं० २, १)। —इल्ल वि० (सं० गो+मत्) गो-युक्त, जिसके पास अनेक गाय हों वह; (दे० ना० मा० २, ६८)।

गोअंट—पुं० (दे०) गौ का चरण,

२. स्थल में होने वाला शृङ्गाट का वृक्ष; (दे० ना० मा० २, ६८)।
गोअग्गा—स्त्री० (दे०) रथ्या, मुहल्ला; (दे० ना० मा० २, ६६)।
गोअला—स्त्री० (सं० गोपालक>प्रा० गोवालअ) दूध बेचने वाली स्त्री ग्वालिन; (दे० ना० मा० २, ६८)।
गोआ—स्त्री० (दे०) गगंरी, कलशी, छोटा घड़ा; (दे० ना० मा० २, ८६);
गोआल—पुं० (सं० गोपाल) मध्यगुरु चतुष्कल (ISI); (प्रा० पैं० १, २५)।
गोआलिआ—स्त्री० (दे०) तीन चार अंगुल लंबा एक बरसाती कीड़ा जिसे घिनौरी या गिजाई भी कहा जाता है (प्रावृषि कीट-विशेषः) (दे० ना० मा०-२, ६८)।
गोआसण—स्त्री० गोशाला; (सं० रा०)।
गोइ—वि० गुप्त "राअ चरित्त रसाल एहु णाह न राखहि गोइ;" (की० १, ५८)।
गोउर—न० (सं० गोपुर>प्रा० गोउर) नगर का दरवाजा; (प० च० १, ७, ७; जंबू० १, ६, १)।
गोउल—न० (सं० गो+कुल>प्रा० गो+उल) गौओं का समूह; (ण० ८, १६, ६)।
गोचरिअ—क्रि० गोचर करना, साक्षात भेंट करना; (की० ३, ६)। —उँ भू०-का० भेंट की; (की० ३, १५२)।
गोच्चय—पुं० (दे०) कोड़ा, चाबुक, वह बटे हुए चमड़े की डोर जिससे जानवरों को चलाने के समय मारते हैं; प्राजन-दण्ड (कोड़ा, चाबुक, अंकुश); (दे० ना० मा० २, ६७)।
गोच्छ—पुं० (सं० प्रा० गुच्छ, प्रा० गुच्छय) गुच्छा, मंजरी; (प० च० ६, ६, ५)।
गोच्छा—स्त्री० (सं० प्रा० गुच्छ>प्रा० गुच्छय) मंजरी, बौर; (दे० ना० मा०-२, ६५)।
गोज्ज—पुं० (दे०) गवैया, गायक; (प० च० ८५, १६)।
गोट्टओ—पुं० (सं० गोष्ठी>प्रा० गोट्ठि >अव० गोट्ठ, गुट्ट) समूह; (की० २, २१२)।
गोट्ठ—पुं० (सं० गोष्ठ>प्रा० गोट्ठ) गायों के रहने का स्थान, गोथान, गोवाड़ा; (जंबू० ८, १५, ११)। गोट्ठंगण—पुं० (सं० गोष्ठ+आङ्गन) गोठ-प्रांगण; (जंबू० १, ७, ६)। "जिह गोट्ठङ्गणे मणि-रयण-वत्थु;" अर्थात् 'जिस प्रकार गोठ प्रांगण में मणि, रत्न और वस्त्र; (प० च० ४, १, २)।
गोट्ठि—स्त्री० (सं० गोष्ठी>प्रा० गोट्ठी(मण्डली, समान वय वालों की सभा; (सुदं० १०, ६, १)।
गोठिय—पुं० (सं० गोष्ठिक>प्रा० गोट्ठिल्लय) एक मण्डली के सदस्य, समान-वयस्क; "अम्हि धुरि गोठिय आवयुह आगे अछह निवाणु;" (प्रा० गु० ७, २३)।
गोडं—पुं० (दे०; प्रा० गोड) पाद, चरण, पैर; 'गोडं धरि कुकुरु भिति अभेड' —चरणं धृत्वा श्वानं भित्तावा-

म्रेडयति; (उ० व्य० प्र० ५०-१८)।

गोड—पुं० १. (सं० गौड>प्रा० गोड) देश-विशेष; (भ०)। २. गौड देश का राजा (प्रा० पैं० २, १३२)। —राअ गौड देश का राजा, (प्रा० पैं० २, १११)। —ाहिवइ पुं० (सं० गौडाधिपति) गौड देश का राजा; (प्रा० पैं० १, १२६)।

गोण—पुं० (दे०) साक्षी; (दे० ना० मा० २, १०४)।

गोणा—स्त्री० (दे०) गाय, गैया; (पड्)।

गोणिक्क—पुं० (दे०) गायों का समूह; (दे० ना० मा० २, ६७)।

गोती—वि० (सं० गोत्रिन्>प्रा० गोत्ति) समान गोत्र वाला, कुटुम्बी; "जे साजण ते खल थियइं गोती चूका गोताचारा; (प्रा० गु० ५, ३०)।

गोत्तंकली—स्त्री० (सं० गोत्र-कलह) वंश, कुल अथवा जाति की कलह; (सुदं० ३, १, ६)।

गोत्त—पुं० न० (सं० गोत्र>प्रा० गोत्त) गोत, वंश, कुल जाति; (जस० १, १, ३; जंबू० ८, ७, १६)। —बंधव वि० (सं० गोत्र-बान्धव) अपने गोत के लोग, सगोत्र बांधव, (प्रा० पैं० १, ३, ७)। —वइ स्त्री० (सं० गोत्रवती) गोत्रवती नामक स्त्री; (जंबू० ४, २, ३)।

गोत्तकम—पुं० (सं० गोत्र+क्रम) वंश, गोत का क्रम; (ण० ६, ८, ६)।

गोत्तमु—पुं० (सं० गौतम) व्यक्ति-नाम-विशेष, गौतम (द्विज); (व० २, १८, १०)।

गोदा—स्त्री० (सं० प्रा० गोदा) गोदावरी, दक्षिण भारत की एक नदी; (पड्)।

गोदाण—पुं० (सं० गोदान) गाय का दान; (जस० ३, ६, ३)।

गोदुह—पुं० [सं० गोदोह=गाय का दोहन (जो उकड़ू बैठकर किया जाता है)] उकड़ू आसन, "गयसुंडयगोदुहआसणेहिं, दिणपक्खमासकयपारणेहिं;" अर्थात् वे स्थित होते थे तो गजशुण्ड (सीधे खड़े) या गोदुह (उकड़ू आसन) से। वे आहार करते थे एक दिन या एक पक्ष या एक मास के अंतर से; (जस० ४, १६, १२)।

गोवण—पुं० (सं० गो+वन) गायों का समूह; (जंबू० १, ६, १२)।

गोधूम—पुं० (सं० गोधूम>प्रा० गोहूम) गेहूँ; (जंबू० ५, ८, २६)।

गोपय—न० (सं० गोप्पद) गौ का खुर; (प० च० ४६, २, ४)।

गोपुर—पुं० नगर का प्रधान द्वार; (की० २, ६७)।

गोप्पय—पुं० गोपद, गाय के खुर से जमीन में पड़ने वाला गड्ढा, "जं अन्तरु गोपयसायराहुं," 'जो अंतर गोपद और समुद्र में; (प० च० १८, ७, ५)।

गोभूइ—पुं० विप्र-विशेष-नाम; (प० च० ५५, ३५)।

गोमंडल—पुं० (सं० गो (पृथ्वी)+मण्डल) १. गायों का संघात या समूह, २. पृथ्वीमंडल; (जंबू० १, ११ १३)।

गोमठ—पुं० (फ़ा० गुम्बर, गुम्बज) गूमठ, गुम्बज, मकबरा; (की० २, २०८)।

गोमट्टा—स्त्री० (दे०) रथ्या (वह स्थान जहाँ कई एक सड़कें एक दूसरे को काटती हों, रथों के आने जाने का मार्ग या सड़क); मुहल्ला; (दे० ना० मा० २, ६६)।

गोमय—पुं० (सं० गोमय) गोबर, गौ का गू; (जंबू० २, ६, २)।

गोमाउ<पुं० (सं० गोमायु>प्रा० गोमाउ, गोमाअ) गीदड़; (प० च० ६६, १३)।

गोमिणि—स्त्री० (सं० गोमिनी) गोपी; (जस० ३, ३, ३)।

गोमुह—पुं० (सं० गो+मुख) गौ का मुँह; (सि० १, १७)।

गोमेय—पुं० (सं० गोमेध>प्रा० गोमेह) यज्ञ-विशेष, जिसमें गौ का वध किया जाता है; (सि० १, ३४)।

गोमेह—पुं० (सं० गोमेध) गोसव यज्ञ, यज्ञ-विशेष, जिसमें गौ का वध किया जाता था, अश्वमेध के प्रकार का एक यज्ञ। टि०—इस यज्ञ में गो से यज्ञ किया जाता था। इसका अनुष्ठान कलियुग में वर्जित है। मनु के अनुसार ब्रह्महत्या के प्रायश्चित के लिए गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार पुष्टिकामना से इस यज्ञ का अनुष्ठान होता है।

गोयंगण—स्त्री० (सं० गोपाङ्गना) गोप जाति की स्त्री। पुं० गौओं का समूह; (सं० रा०)।

गोयम—पुं० (सं० गौतम) गौतम, व्यक्ति-विशेष-नाम; (प्रा० गु० १०, ७)। २. महावीर के गणधर इंदभूइ; (प० च० २०, ६३)।

गोयर—वि० (सं० गोचर) भूमि में विचरने वाला, "मंसरत्तफेक्करंतरक्खसाण गोयरं," अर्थात् मांस के लोभ में विचरने वाले राक्षस फे-फे करते वहाँ फिर रहे थे; (क० १, १७, ६)।

गोरंगी—वि० स्त्री० (सं० गौर+अङ्गी) गौर अंग वाली; (जंबू० ३, ३, ६)।

गोरंफिडी—स्त्री० (दे०) गोधा, गोह, जंतु-विशेष; (दे० ना० मा० २, ६८)।

गोर—वि० (सं० गौर) श्वेत वर्ण वाला। गौरी; (रा० १५)।

गोरड—स्त्री० (सं० गौरी>प्रा० गोरी) शुक्ल-वर्णा-स्त्री; "अरे आगए तुह वलि जीतज्यो गोरड-करउ वालंभु। अरे इसइं वचनु निसुणेविणु आणयउ रलिय वसंतु;" तुल० गु० गोरडी; (प्रा० गु० २१, ४)।

गोरडित—वि० (दे०) ध्वस्त; (षड्)।

गोरविअ—वि० (सं० गौरवित) सम्मानित; (दे० ना० मा० ४, ५)।

गोरस—पुं० न० (सं० प्रा० गोरस) दुग्ध, दूध; (जंबू० ८-१२)। —वियार पुं० १. (सं० गोरस+विकार) दही, मट्ठा आदि २. गो (वाणी) +रस+विचार) वाणी का विचार; (जंबू० १, ३, ३)।

गोरा—स्त्री० (दे०) १. लाङ्गल (हल

के आकार का शहतीर या लट्ठा) रेखा; २. आँख, ३. ग्रीवा; (दे० ना० मा० २, १०४)।

गोरि¹—स्त्री० (सं० गौरी>प्रा० गोरि) १. गौर वर्णा स्त्री; (जंबू० ४, १८, १२)। २. पार्वती; तुल० राज० गु० गोरी; (प्रा० पैं० १, ३)। २, गाथा का भेद; (प्रा० पैं० १, ६०)। ३. स्त्री-विशेष-नाम; (ण० ८, १२, ८)।

गोरि²—स्त्री० (फा० गोर=कब्र, मृतक समाधि) कब्र; (की० २, २०८)।

गोरू—पुं० (सं० गोरूप) सींग वाला पशु। गाय, बैल, भैंस इत्यादि चौपाया; "गोरू उवेल गोरूपाण्युद्वेलयति;" (उ० व्य० प्र० ५२-१५ की० ४, ८५)।

गोल—पुं० (दे०) साक्षी; (दे० ना०-मा० २, ९५)।

गोलच्छ—वि० (दे०) पुंछकटा; (व० ४, ७, ५)।

गोला—स्त्री० १. गोदावरी नदी-विशेष; (पं० च० ३१, ३, २; दे० ना० मा० २, १०४)। २. स्त्री० (दे०) गौ, गैया; (दे० ना० मा० २, १०४)।

गोली—स्त्री० (दे०) मथनी, दही मथने की लकड़ी; (दे० ना० मा० २, ९५)।

गोल्ली—स्त्री० (सं० गौल्य>प्रा० गोल्ल पुं०) गौल्य देश की स्त्री; (सुदं० ४, ६, ९)।

गोल्हा—स्त्री० (दे०) बिंबी, वल्ली, विशेष; कुंदरुन का वृक्ष; (दे० ना०-मा० २, ९५)।

√गोव—(सं० गोपय्>प्रा० गोव) छिपाना। —इ सकं० (सं० गोपायति) छिपाना; (हे० ३३८)।

गोवड्ढण—पुं० (सं० गोवर्धन) व्यक्ति-नाम-विशेष, श्रेष्ठिनाम; (जस० ४, २३, २)।

गोवद्धण—पुं० (सं० गोवर्द्धन>प्रा० गोवद्धण) पर्वत-विशेष; (महापुराण; ण० ३, १७, १५)। २. नगर-विशेष; (प० च० २०, ११५)।

गोवयण—पुं० (सं० गोवदन) गोमुख; (जंबू० ६, १६, १२)।

गोवर—पुं० १. (सं० गोमल>प्रा० गोव्वर) गोबर, गाय, बैल आदि का मल (दे० ना० मा० २, ९६)। २. पुं० (सं० गोपुर), नगर का द्वार, शहर का फाटक; (सं० रा०)।

गोवाल—पुं० (सं० गोपाल) १. पृथ्वी पालक राजा; २. गायों का पालक, ग्वाला; (जंबू० ५, ९, ५)।

गोवि—स्त्री० (सं० (गोपी) ग्वालिनी; (जस० २, २, ६)। —उ स्त्री० (सं० गोपिका>प्रा० गोविआ) गोपांगना, अहीरिन; (ण० ८, १६, ६)। —हि स्त्री० गोपी; (उत्तरपुराण)।

गोविअ—वि० (दे०) नहीं बोलने वाला; (दे० ना० मा० २, ९७)।

गोविउ—वि० (सं० गोपित) गुप्त, छिपाया गया; (व० १०, ६, १२)।

गोविट्ठि—स्त्री० (सं० गो (भूमि)+पृष्ठ) भूमितल; "गोविट्ठ णिविट्ठ णरिंद सव्व," अर्थात् वे सभी नरेंद्र भूमितल पर बैठ गए; (जस० २, १३, ११)।

गोविल्ल—न० (दे०) कञ्चुक, चोली; (दे० ना० मा० २, ६४)।

गोवी—स्त्री० (सं० गोपी) गोपिका; (जंबू० ५, ६, ११)। २. (दे०) कन्या, कुमारी, लड़की; (दे० ना० मा० २, ६६)।

गोवोलि—पुं० (सं० गो+सं० गम् का धात्वादेश वोल=चलना, गमन करना, हेम० ४/१६२) गायों को हांकने वाले, गायों के साथ घूमने वाला; (की २, १५१)।

गोस—पुं० (दे०, प्रा० गोस) प्रभात, सुबह; (सं० रा०; संधि० २, २०, ६)। —किरण स्त्री० (प्रा० गोस+सं० प्रा० किरण) प्रभात किरण; (व० ४, ६, ५)।

गोसग्ग—पुं० न० (दे०) प्रातःकाल, प्रभात; (दे० ना० मा० २, ६६)।

गोसण्ण—वि० (दे०) मूर्ख, (दे० ना०-मा० २, ६७; पइ)।

गोसवि—वि० (सं० गो+स्वामिन्) गोस्वामी, इंद्रियविजयी, "गोसवि जणणीगमणु विचिंतिउ" —इंद्रियविजयी होकर भी जननी गमन की बात सोची; (ण० ६, ६, ६)।

गोसाउंनि—पुं० (सं० गो+स्वामी) स्वामियों को; (की० २, ११)।

गोसामि—पुं० (सं० गो+स्वामी) गोपालक, "वीएण वलद्दें दामिएण पडिभारिउ बोज्झु गोसामिएण;" अर्थात् दूसरे बश में किए हुए (अभ्यस्त) बैल पर गोस्वामी ने पुनः बोझ लादा; (जंबू० ५, ७, १५)।

गोसामिणि—स्त्री०, ब० (सं० गो+स्वामिनी) गोपियाँ; "घरें घरें जहिं नेउररवभामिणि, दावइ हंसहों गइ गोसामिणि;" अर्थात् जहां घर-घर में नूपुर ध्वनि करती हुई गोपियां हंसों को चलना सिखलाती है; (जंबू० १, १०, ३)।

गोसाला—स्त्री० जनपद-विशेष; (प० च० ६८, ६५)।

गोसिंग—न० (सं० गोशृंग) गौ का सिंग; (जस० ३, २१, ६)। लो०—गोसिंगइं कि दुद्धइं सवंति—गोशृंग से क्या दूध झरता है? (जस०)।

गोसीर—न० (सं० गोशिरस् अथवा गोशीर्ष गोसीस) चंदन-विशेष; (प० च० ३४, १२, ६)।

गोसुय—पुं० (सं० गोसुत) बैल; (जस० २, २६, १६)।

गोह—स्त्री० (सं० गोधा>प्रा० गोहा) गोह, एक जंगली जंतु जो आकार में नेवले से बड़ा होता है, प्राणि-विशेष; (जस० ४, १६, १)। पुं० (दे०) पुरुष; (जस० १, ५, ४)। पुं० (दे०) १. गाँव का मुखिया; २. भट, योद्धा; (दे० ना० मा० २, ८६; सुदं० ५, १, ७)। ३. जार, उपपति; (प० च० २६, ५, ८)। —डिय स्त्री० गोधा; (प्रा० गु० ४, १८)। —य स्त्री० गोधा; (जस० १, १०, ७)। —याह, पुं० (सं० गोधा+ग्राह) गोह की पकड़; (सुदं० ८, ८, ११)। —ा (गोहा) पुं० (दे०) ग्राम प्रमुख, योद्धा, पुरुष। (रा० ६)।

गोहण—पुं० (सं० गो+धन) १. गाय रूपी धन, पशु धन; (ण० १, ६, ७)।

२. पृथ्वी-धन; (जंबू० ण, ६, ५)।
—णाह पुं० (सं० गोधन+नाथ) ग्वाला; (क० ८, ३, ५)।

गोहत्तण—पुं० (दे०) पुरुषत्व, पौरुष; (जंबू० ५, ४, ४)।

गोहन—पुं० (दे०) संग, साथ; 'गोहन नहि पावहिं," पुकारना; अर्थात् वे साथ नहीं पकड़ पाते थे; (की० ४, ११७)।

√गोहराव—(सं० गो+ आह्वयति) आह्वान करना, बुलाना, पुकारना; (उ०-व्य० प्र० ७–६)

गोहा—स्त्री० (सं० प्रा० गोधा) गोह, छिपकली की जाति का एक जंगलीजंतु जो आकार में नेवले से कुछ बड़ा होता है। टि०– इसकी फुफकार में बहुत विष होता है। इसके काटने पर मांस गलने लगता है और फिर शरीर में विष फैलने के कारण मर जाता है; (दे० ना० मा० २, ७३)। थलचर जीव; (व० १०, ८, १५)।

गोहाणिय—पुं० (सं० गोधानिक) गोधानिक नामक वणिक्-विशेष; (प० च० ७७, १११)।

गोहारि—स्त्री० [सं० गो+आकालयति (=गायों की रक्षा के लिए बुलाना)> गो आआरयइ>गोहारअइ>गोहारइ) रक्षा के लिए पुकार; (की० ४, १५१)।

गोहु—क्रि० (सं० गुह्>प्रा० गुह) छिपाना, "तें वोल्लिउ कि महु अत्थि गोहु"; तब उसने कहा—मुझसे क्यों अपना मर्म छिपाती हो; (ण० ८, १३, २)।

गोहुर—न० (दे०) गोमय, गो-विष्टा; (दे० ना० मा० २, ९६)।

गोहूम—पुं० (सं० गोधूम>प्रा० गोहूम) गेहूँ, अन्न-विशेष; (व० ८, ५, १०)।

गोहेर—पुं० (सं० गौधेर, अमरकोश द्वितीय काण्डम् श्लोक ६) जंतु-विशेष, साँप की तरह का जानवर; (प० च० ४८, ६२)।

गौरव—न० (सं० गौरव>प्रा० गौरव) १. गुरुत्व, २. सम्मान; (की० २, १३४)। 'गौरवें मान'— गौरवितान् मानयति, मानति वा, (उ० व्य० प्र० ४२, २०)।

ग्घविय—स्त्री० (दे०) शोकसूचक ध्वनि; (जंबू० २, ५, १६)।

ग्रास—पुं० (सं० ग्रास>प्रा० गास) ग्रास, कवल, आहार; "न थिर वअग न थोर ग्रास"; अर्थात 'न तो बात का पक्कापन था, न आहार का संयम था; (की० ४, ९८)।

घ

घ—पुं० (सं० प्रा० घ) कण्ठ-स्थानीय व्यंजन वर्ण-विशेष।

घंघ—पुं० (दे०) गृह, मकान; (दे० ना० मा० २, १०५)।

घंघल—न० (दे०) झगड़ा, कलह; (दे० ना० मा० २, १०५; जस० २, ३१, ५)। २. दंगल; (व० ४, ३, १३)।
—साल पुं० (सं० शाल > प्रा० साला) अनाथालाय; (संधि० ५, २, ८)।

घंघल—वि० (दे०) मंथन करने वाले "परवल जलघंघल वलमंहत" –शत्रुवल रूपी जल को मंथन करने वाले महान् वलशाली थे; (ण० ४, १, १०)।

घंघोर—वि० (दे०) भ्रमणशील, भटकने वाला; (दे० ना० मा० २, १०६)।

घंट—पुं० स्त्री० (सं० घण्ट>प्रा० घंट) घण्टा, वाद्य-विशेष; तुल० राज० घंटो; (प० च० ३, ७३; जंवू० ५, ६, ६)।

घंटा—पुं० (सं० घण्ट>प्रा० घंट) घण्टा, कांस्य-निर्मित वाद्य-विशेष; (भ०)।

घअ—न० (सं० घृत>प्रा० घिअ) घी; (ण० ५, ८, ११)।

घअअंद—न० (दे०) दर्पण; (पइ)।

घइँ—अव्य० (दे०) १. शीघ्रतावाची, २. वर्तमान समय संवंधी; (प० च० २८, ८, ४)।

घग्घर—पुं० (सं० घर्घर) १. खोखला गला। २. न० (दे०) घघरा, लहँगा, स्त्रियों के पहनने का एक वस्त्र; तुल० राज० घाघरो; (दे० ना० मा० २, १०७)। ३. पुं० क्षुद्रघण्टिका; (प० च० ४६, १, ३)। ४. घग्घर की आवाज, शब्द-विशेष; (प० च० ६, ११, ५)। —ा स्त्री० (घग्घरा) किङ्किणी; (जस० ३, २, ७)।

घग्घरियगिर—स्त्री० (सं० घर्घरित+गिरा) खोखली वाणी; (जंवू० २, १८, १०)।

घग्घरोली—स्त्री० (सं० घग्घर+ओली) किङ्कणीपंक्ति; (जस० १, १६, ५)।

घघर—पुं० (सं० घर्घर>प्रा० घग्घर) शब्दानुकृति, घर्घर; (प्रा० पैं० १, २०४)।

घङ्घल—पुं० (दे०) उजड़ी हुई भूमि; (प० च० ४५, ७, ८)।

घञ्चर—पुं० (सं० घर्घर>प्रा० घग्घर) शब्द-विशेष, घर्घर (ध्वनि); (सुदं० ३, ७, ७)।

घट—पुं० (सं० घटा) घटा, मेघ, वादल "जसु जय-सिरि दाहिण-वाहु-दंडि, निव-सइ गय-घड-चूरण-पयंडि;" अर्थात् गज रूपी घटाओं को चूर करने में प्रचण्ड उस राजा के दाएँ वाहुदण्ड में जयश्री विराजमान रहती थी; (व० ३, २२,२)।

√घट—(दे०) घटना, कम होना। —इ क्रि०, व०. प्र०, पुं०ए०; (प्रा० पैं० १, ८८)।

√घट— सं० घट् > प्रा० घड (जस० १, २६, ११)। रचना करना। घडिउ—भू० का०।

घटना—स्त्री० (सं० घटन>प्रा० घडण) घड़ना, कृति, निर्माण; तुल० राज० घड़ण; (की० २, १०१)।

घटपिंड—पुं० (सं० घटपिण्ड) घर-पिण्ड; "रहिउ सतेल्ल दसीएण दीवउ किं न उणीवइ घड-पिंड-दीवउ;" अर्थात् घर-पिण्ड को प्रकाशित करने वाला दीपक स्नेह-तेल रहित होने पर भी क्या वत्ती के विना वुझ नहीं जाता ? (व० ४, १५, ५)।

घटित—वि० (सं०√घटय्>प्रा० घड =मिलाना, जोड़ना) जटित, जड़ाऊ; (की० २, २४२)।

घट्ट—अक० (सं०√भ्रंश का धात्वा-

देश) १. भ्रष्ट होना। —इ; (पइ) २. घटित होना। —इ; (प० च० १५, १३, ६)।

घट्ट—पुं० (दे०) १. कुसुम्भ रंग से रँगा हुआ वस्त्र; २. वेणु, वंश; (दे० ना० मा० २, १११)। ३. पुं० (सं० घट्ट) घाट; नदी, सरोवर या किसी जलाशय जहाँ लोग पानी भरते या नहाते धोते हैं; (दे० ना० मा० २, १११)।

घट्टण—न० (सं० घट्टन) १. संसर्ग २. स्पर्श करना। न० (सं० घर्षण>प्रा० घंसण) घिसन, रगड़; (सुदं० ८, २८, १०)।

घट्टियइँ—न० (सं० घट्टन>प्रा० घट्टण) घर्षण; "घण-घट्टियइँ विज्जु-विप्फुरियइँ," अर्थात् 'मेघों का घर्षण, विद्युत का स्फुरण;' (प० च० ५, १२, ७)।

घट्टियउ— क्रि०, भू० का० (सं० घाटयति√घट् संघाते>प्रा० घट्टइ) विघटित कर दिया; (ण० ४, ७, १५)।

घट्ठ—वि० (सं० घृष्ट>प्रा० घट्ठ) घिसा हुआ; (जस० २, ४, ५)।

घडंति—वि० (सं० घट>प्रा० घड= घड़ा) घड़ा होना; "जलु कड्ढंतहं कूवयहं अवसइं सिरउ घडंति" —'कुएँ से जल निकालने वालों के सिर पर अवश्य घड़ा होता है;" (सा० १६)।

घड'—वि० (दे०) बनाया हुआ; (पइ)।

घड'—सक० (सं० घटय्>प्रा० घड) १. मिलाना, जोड़ना, संयुक्त करना; २. बनाना, निर्माण करना, ३. संचालन करना। —इ सक० (सं० घटयति) गढ़ देना, गढ़ना; तुल० म० घडणें; (विला०; भ०)। —उ गढता हूँ, "आगम-जुत्ति का वि घडउ,' अर्थात् 'आगम-युक्ति को गढ़ता हूँ,' तुल० घटवुं, (प० च० १, ३, १०)। —दि (सं० घटयति) बनाता है; (हे० ४०४)। —न्ति व०, व० व, (प० च० ७, ५३)। **घडिअउ** क्रि० भू० का० (सं० घटित) बनाया, गढ़ा गया; (हे० ३३१)। **घडिउ**—भू० का० **घडिवि**—पू० का० क्रि०; (ण० १, ६, १३)। (जंबू० ४, १२, १५)।

घड'—पुं० (सं० घटा) घटा; "मिग-मन्द-भद्द-संकिण्ण-गएँहि। घड विरएँवि पञ्चहि चाव-सएँहि," अर्थात् मृग-मन्द-भद्र और संकीर्ण गजों और पांच सौ धनुधारियों से घटा की रचना कर, आगे-पीछे भद्र समूह बैठ गया', (प० च० १६, १५, १)। २. समूह; "वनकरिघडहें"; वनगजों के समूह; (जंबू० ५, १०, ४)।

घड'—पुं० (सं० घट>प्रा० घड) घड़ा, कुंभ; तुल० राज० घड़, घड़उ; (ण० १, ६, ७; सा० ८१)

घडइअ— वि० (दे०) संकुचित; (पइ)।

घडथावउ—क्रि०, भू० का०(सं० घट+√स्था, स्थापयति) घट स्थापन किया गया, "सुक्कझाणु घुडथावउ किज्जइ"—शुक्ल ध्यान रूप घट-स्थापन किया गया; (म० २, ७८, ६)।

घडहड—पुं० (ध्व०) घड़घड़, बादल

गरजने या गाड़ी चलने आदि का घड़घड़ाने का शब्द; (म० २, ६, ५)।

घडाघडी—स्त्री० (दे०) गोष्ठी, सभा, मंडली; (पड्)।

√घडावय—(सं० √घट, घटापय् > प्रा० घडाव) बनवाना।—इ क्रि०, व० (जंवू० ८, ६, ६)।

घडिअ—वि० (सं० घटित > प्रा० घडिअ) निर्मित, कृत; (जस० २, ५, २)। घडीय-वि० घटित; (छंद के कारण दीर्घीकरण) (क० ४, ६, ४)।

घडिअघडा—स्त्री० (दे०) मण्डली, गोष्ठी; (दे० ना० मा० २, १०५)।

घडिआ, घडी—स्त्री० (दे०) गोष्ठी, मण्डली; (पड्; दे० ना० मा० २, १०५)।

घडिय—वि० (सं० घटित > प्रा० घडिअ) निर्मित, बना हुआ; (सं० रा०)। घडीय—वि० घटित; (क० ४, ६, ४)।

घडी—स्त्री० (सं० घटी > प्रा० घटि, घडिआ) घटी-यन्त्र, घडी यन्त्र; (ण० ६, १७, ३०)। २. लघु घट; (संधि० १२, ६, १४)।

घण—पुं० (सं० घन > प्रा० घण) १. मेघ, बादल; (प्रा० पैं० १, १६६, ण० १, १३, ५; सं० रा०)। २. हथौड़ा; तुल० राज० घण; (दे० ना० मा० ६, ११)। वि० निविड; (जस० १, ११, ११)। सघने, घना; (महा० ६८, ३; जंवू० ४, १६, २)। —उ वि० घना, निविड, सांद्र तुल० गु० घणो, (प्रा० गु० २, ४. ७; जंवू० ७, १, २२)।

घणघण—वि० (सं० घन+घन) अति निविड़, अति अविरल; (ण० ५, ४, १४)।

घणणील—वि० (सं० घननील) अत्यंत काले, "भिंगालिसरिसघणणीलवाल;" अर्थात् तुम्हारे वाल भृंगावलि के समान अत्यंत काले हैं; (जंवू० १०, १, ११)।

घणणेह—पुं० (सं० घन+स्नेह > प्रा० घण+णेह) अत्यधिक प्रेम; (जंवू० ११, ५, ५)।

घणत्त—पुं० (सं० घनत्व) सघनता; (ण० ७, १५, १०)।

घणथण—पुं० (सं० घन+स्तन > प्रा० घण+थण) अत्यंत घने स्तन; (जंवू० १, ७, ६)। —तड पुं० (सं० घनस्तनतट) घने स्तन तट, "हुय निप्फंद चडवि घणथणयड;" (जंवू० ८, ११, ११)।

घणथणिया—वि० (सं० घन+स्तन > प्रा० घण+थण) सघन स्तनों वाली; (महा० ६६, १६, ५)।

घणपडल—पुं० (सं० घन+पटल > प्रा० घण+पडल) मेघपटल, अभ्रपटल; (जंवू० ६, ६, ८)।

घणयालि—स्त्री० (सं० घन+काल > प्रा० घण+याल पुं०) वर्षाकाल; (ण० ४, २, १४)।

घणलोम—पुं० (सं० घनरोभ) नभचर जीव; (व० १०, ८, १३)।

घणवाहि—पुं० (दे०) इंद्र, स्वर्ग-पति; (दे० ना० मा० २, १०७)।

घणसार—पुं० (सं० घनसार) कपूर; (सं० रा०; भ०)।

घणसूई—स्त्री० खड़ी सुई; (व० १०, ६, ७)।

घणाघण—पुं० (सं० घनाघन) (बरसने वाला) बादल; (प्रा० पैं० १, १८८)।

घणाघणि—स्त्री० घन युद्ध जिसमें हथौड़े का प्रयोग किया जाता है (a fighting using large hammers) (प० च० ५२, ६, ४)।

घणुकज्जलु—पुं० (सं० घन+कज्जल >प्रा० घण+कज्जल) घना काजल; (व० २, २२, १५)।

घणुच्चत्थणी—वि० स्त्री० (सं० घन+ उच्च+स्तनी) घने व ऊँचे स्तनों वाली; (जंबू० ४, ५, ६)।

घणोह—पुं० (सं० घन+ओघ) वारिद-समूह, बादलों का समूह; (जंबू० ६, ६, ६)।

घण्टउ—पुं० (सं० घण्ट>प्रा० घंट) घंटा; (प० च० २, १, ५)।

घण्ण—पुं० (दे०) १. उर, वक्षस्, छाती, २. वि० रक्त, रंगा हुआ; (दे० ना० मा० २, १०५)।

घत्त¹—पुं० (सं० प्रा० घत्ता) घत्ता नामक मात्रिक छंद; (प्रा० पैं० १, ९९)। —ह (घत्तायाः) संबंध कारक, ए०; (प्रा० पैं० १, १०२)।

घत्त²—पुं० (सं० घात>प्रा० घाय) चोट, प्रहार; (हे० ४१४, ३)।

√घत्त³—(प्रा०√ घत्त) फेंकना, डालना। —मि; (प० च० ८, १०, ८)। घत्तिउ—भू० कां०, फेंक दिया; (प० च० ६, ११, ४)।

घत्ता—स्त्री० (सं० प्रा० घत्ता) छंद-विशेष; (प्रा० पैं० १, १००)।

घत्ताणंद—न० (सं० घत्तानन्द>प्रा० घत्ताणंद) छंद-विशेष; (प्रा० पैं० १, १०३)।

घत्तिय—वि० क्षिप्त, फेंका हुआ, त्यागा हुआ; (जस० २, २०, ६; ण० २, १३, ५)। —हिं फेंके गए; "कोमलकरयलघत्तियहिं कुसुमहिं" अर्थात् कोमल हाथों से फेंके गए पुष्पों के द्वारा; (महा० ६८, ७)।

घत्थ—वि० (सं० ग्रस्त) भक्षित, निगला हुआ, कवलित (प० च० ७१, ५१; जंबू० २, ५, १२)। —य वि० (सं० ग्रस्त) प्रभाव पड़ा हुआ, आक्रांत; (प० च० ६, १३, ४)।

घन –वि० (सं० घन>प्रा० घण) अनेक; (की० ३, ३८)। घने—वि० अनेक; (की० २, १११)।

घम्म—पुं० (सं० घर्म>प्रा० घम्म) घाम, गरमी, संताप; (जंबू० ८, १३, १; दे० ना० मा० १, ८७)। घम्मु—पुं० धूप; (व० २, ३, १२)।

घम्मण—पुं० वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, ६)।

घम्मवारि—न० (सं० घर्म+वारि) स्वेदजल; (जस० ४, १६, २)।

घम्मा—स्त्री० (सं० घर्मा>प्रा० घम्मा) प्रथम नरक नाम; (जस० ४, १६, १३)।

घम्मोइ—स्त्री० (दे०) तृण-विशेष, घमोय (गण्डुत्सञ्ज्ञं तृणम्), टि०—एक छोटा पौधा जो गोभी की तरह का होता

है। इसके पत्तों के पीछे तथा कटाव की नोकों पर कांटे होते हैं। तुल० राज० घमोय; (दे० ना० मा० २, १०६)।

घम्मोडी—स्त्री० (दे०) १. मध्याह्न काल; २. मच्छर, क्षुद्र जन्तु-विशेष; ३. ग्रामणी नामक तृण; (दे० ना० मा० २, ११२)।

घय—न० (सं० घृत>प्रा० घिअ) घी; (व० १०, ७, ५; क० ३, ८, ८)। —मुहँ पुं० (सं० घृतमुख) द्वीप-विशेष; (व० १०, ६, ६)।

घर—पुं० न० (सं० गृह>प्रा० घर) घर, मकान, गृह, तुल० गु० घेर; (हे० ३४३, २; प्रा० पैं० १, ८४; जस० १, १, ३)। —कज्ज पुं० (सं० गृह+कार्य) घर का काम; (जंबू० ३, ६, ७)। —गोली स्त्री० (सं० गृह+गोली) छिपकली, जंतु-विशेष; (दे० ना० मा० २, १०५)। —गोहिआ स्त्री० (सं० गृहगोधिका) छिपकली, (दे० ना० मा० २, १६)। —णि स्त्री० (सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी) पत्नी, तुल० राज० घरणि; (प्रा० पैं० १, ३८)। —णिय स्त्री० (सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी) स्त्री, भार्या; (सं० रा०)। —त्थ पुं० (सं० गृहस्थ) ब्रह्मचर्य पालन के पश्चात् दूसरे आश्रम में प्रवेश करने वाला, गृही, घरवार वाला; (जस० ३, ४, ४)। —दार स्त्री० (सं० गृह+दार:) कलत्र, पत्नी; (जस०)। —दासि स्त्री० (सं० गृह+दासी) गृहिणी, भार्या, पत्नी; (जस०)। —पंगणु पुं० (सं० गृह+प्राङ्गण) घर का आंगन; (ण० ५, २, १)। —भार पुं० (सं० गृह+भार) गृहस्थी की जिम्मेदारी; (जस० ४, २८, २)। —लंजिया स्त्री० (सं० गृह+लञ्जिका =वेश्या, रंडी) गृहदासी; (जस०)। —वइ पुं० (सं० गृह+पति) घर का स्वामी; (जस० ३, ३१, ५)। —वय पुं० (सं० गृह+व्रत) गृहस्थों के अणुव्रत; (ण० १, १२, ३)। —वार पुं० (सं० गृह+द्वार) घरेलू संपत्ति, निज की सारी संपत्ति; तुल० गु० घरबार; (प० च० २४, १२, ८; सि० २, २६)। —वास पुं० (सं० गृहवास) गृहस्थाश्रम, गृहवास; तुल० राज० घरवास (जस० २, ७, ५)। —सिरि स्त्री० (सं० गृह+श्री) गृहलक्ष्मी; (ण० १, ३, १३)। घरि—स्त्री० घर; सुभाषित:—"घरि पलित्त मि खणि सकइ को कूवए," अर्थात् घर के प्रदीप्त होने जाने पर कौन कुआ खोद सकता है? (भावना संवि प्रकरण) घरु—पुं० घर; (महा० ६८, ५; उ० व्य० प्र० २२, २)।

घरघंट—पुं० (दे०) चटक, गौरैया पक्षी; (दे० ना० मा० २, १०७)।

घर-घरणी—स्त्री० (सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी) घरवाली, स्त्री, भार्या; (प्रा० गु० ५, २८)।

घरट्ट—पुं० (सं० प्रा० घरट्ट) सिल, चक्की, खरल, पेषणी (a grinding stone); "ता सव्वह वीरह उपरवट्टु मयण-घरट्टु आसं वदंतु। ता पूजहु पूजहु नेमिकुमारु निव्वइकंतु;" तुल० गु० घंटी; (प्रा० गु० २६, २२; क० ३, २२, ७)।

√घरट्ट—टकराना, "समूह वड णिविड गय-घड घरट्ट;" अर्थात् सामने पताकाएँ थीं और गजघटा टकरा रही थी; (प० च० १३, ११, ४)।

घरट्टी—स्त्री० (सं० घरट्टी) शतघ्नी, तोप; (दे० ना० मा० ३, १०)।

घरप्फरि—स्त्री० (दे०) धरपटक; (म० २, २२, ८)।

घरयंब—पुं० (दे०) दर्पण, शीशा; (दे०-ना० मा० २, १०७)।

घरवय—पुं० (सं० गृह+व्रत) गृहस्थ-व्रत, अणुव्रत, "घरवयइँ जईसरसंठि-याइँ;" अर्थात् एक गृहस्थव्रत और दूसरे मुनिव्रत (महाव्रत); (क० ६, २२, २)।

घरसंठिय—वि० (सं० गृह+संस्थित) घर में रहते हुए, "घरसठिओ वि घरक-ज्जचुओ"; (जंबू० ३, ६, ७)।

घरहरिअ—पुं० (ध्व०) घरघराहट; (जंबू० १, १५, ४)।

घरासउ—पुं० (सं० गृहाश्रमम्) गृहस्थ आश्रम; (प० च० २२, ११, ३)।

घरिणी—स्त्री० (सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी) घरवाली, स्त्री, भार्या; तुल० गु० घरुणी, राज० घरिणी, म० घरनी; (ण० २, १३, २; म० १, १३, ५)।

घरिय—वि० (सं० घारित) विह्वल; (जंबू० ७, ४, १४)।

घरिल्ली—स्त्री० (दे०) गृहिणी, पत्नी; (दे० ना० मा० २, १०६)।

घरोल—न० (दे०) गृह-भोजन-विशेष; (दे० ना० मा० २, १०६)।

घरोलिया, घरोली—स्त्री० (दे०) छिप-कली; तुल० गु० घरोली; (दे० ना० मा० २, १०५)।

घरोली—स्त्री० (सं० घटिका>प्रा० घडिआ) घरिया (गृह-गोलिका) घड़िया, पानी का मटका, मिट्टी का बरतन; (दे०-ना० मा० २, १०५)।

√घल—(सं० क्षिप् का धात्वादेश प्रा० घल्ल) फेंकना, स्थान बदलना, डालना, घालना; तुल० राज० घलणो, घलवो; (की० ४, १६०)।

घलहल—वि० (दे०) प्रभूत; (प्रा० गु० ५, ३२)।

घल्ल—वि० (दे०) अनुरक्त, प्रेमी; (दे० ना० मा० २, १०५)।

√घल्ल—(सं०√क्षिप् का धात्वादेश प्रा० घल्ल) घालना, फेंकना; तुल० म० घालणें i —इ; (सुदं० ५, १, ३)। घल्लंत–कृ०; (सुदं० ३, ७३)। घल्लंति —क्रि०, व० (हे० ४२२)। —सि व०, म० पु०, ए०, तुल० राज० घालवे— वो, गु० घालवुं (प्रा० पैं० १,-७; जस० ३, १८, ८)। घल्लहु क्रि०, आ० बाहर निकाल दो, फेंक दो; (ण० ६, १३, २१)। घल्लाविय—भू० का०, भगा दिया; (प० च० ११, ६, ८)। घल्लि-ज्जइ—छुड़वा देना; (सुदं० ८, ३३, १०)। घल्लिय—क्रि०, भू० का० (प्रा० घल्ल=फेंकना) निकाल दिया, "केउमइएँ घल्लिय कुलहरहों" अर्थात् केतुमती ने उसे कुलगृह से निकाल दिया, (प० च० १६, १२, ५)। —इ (घल्लियइ) डाल दिए; (रि० १, १३)। घल्लिवि पू० का० क्रि०; (जंबू० ६, ६, ६)।

घल्लिअ—वि० (दे०) फेंका हुआ, डाला हुआ; (जंबू० ६, १४, ७; ण० ५, ८, २)। घल्लिय—वि०, डाली हुई; (सं० रा०)।

घयवक्कउ—वि० (दे०) उद्दीप्त, "मइयर-गेहिँ वि परिहरिउ कयडहिँ धरिउ णं पुंसिहि देग्गघयवक्कउ;" अर्थात् जिस जिस प्रकार किसी धूर्त स्त्री का कपट-भरा उद्दीप्त प्रेम उसे भोग कर छोड़ दिया जाता है; (जंबू० ८, १३, १५)।

√घवघव—(सं० घवघवय् ध्वन्यात्मक) घव-घव का शब्द करना; (सुदं० ३, ७, ७)। घवघवंत—कृ० (सं० घवघवय्+शतृ) तुल० म० घमघमाट; (सुदं० ११, १२, ३)। घवघवघवन्ति—क्रि० नदी की धारा की गर्जन का शब्द होना, (प० च० २१, ३, ५)। घवघवन्ति—क्रि० घवघव का शब्द होना; "घवघवन्ति जे जल-पब्भारा," जो उसमें जल के प्रवाह का घवघव शब्द हो रहा है; (प० च० १४, ३, २)।

घवघव-घोसु—पुं०, घन-घन का शब्द, "घग्घरेँ हि मि घवघव-घोसु चत्तु," अर्थात् 'घण्टियों ने भी घन-घन शब्द छोड़ दिया; (प० च० १३, १, ७)।

घसिय—वि० (दे०) तृप्त; (जंबू० ६, ९, ९)।

√घस—(सं० घृष्) १. घिसना, रगड़ना; २. मार्जन करना, साफ करना। —इ सक० (पद्०)।

√घा—(दे०) अघाना, तृप्त करना; (जस० २, ३०, ९)।

घाअ—पुं० (सं० घात>प्रा० घाय) प्रहार, चोट, वार; तुल० म० घाव (ण० १, ४, ६; जस० १, ५, २)। घाएँहिँ—घात, हत्या (प० च० १२, ६, ६)। घाउ; (प्रा० पैं० २, १७३)।

घाइअ—वि० (सं० घातित>प्रा० घाइअ) विनाशित, प्रहारित, (ण० ३, १४, १२; जस० २, २०, ५)।

घाउ—पुं० (सं० घात>प्रा० घाय) घाव, प्रहार; (प० ५, ५, १०)।

घाए—पुं० (सं० घात>प्रा० घाय) घातियाकर्म; (व० ६, ५, ८)।

√घाय—(सं० घातय्>प्रा० घाय, सं० घात्यते) विनाश करवाना, मरवाना। घाइज्जइ-कर्मवाच्य; (भ०)। घाइज्जन्तु—कृ० (प्रा० घाय=मारना) पीटे जाते हुए; (प० च० ६, १०, ३)। घाइयउ—भू० का०, मारा गया; (प० च० ६, ११, १)।

घाघरिय—स्त्री० (सं० घर्घरिका=घुंघरू, एक प्रकार का बाजा) किङ्किणी; (प्रा० गु० ६, २२)।

घाट¹—पुं० (सं० घट्ट) नदी तीर पर बनी हुई सीढ़ियाँ और चबूतरे; (की० २, ६७)।

घाट²—पुं० (दे०) कौसुम्भ वस्त्र; "गोपीय उढाणि घाट ए, घर-आगलि चोलई भाट ए। सिरवरि झलकई छात्र ए, वर-आगलि नाचइँ पात्र ए।" तुल० गु० घाट; (प्रा० गु० २६, ५)।

घाठउ—वि० (दे०) वञ्चित; "तउ पंडितु कोपानलि चडियउ घाठउ हिंडइ सूनउ थियउ, तउ चेलुकौ पिरायौ पोसइ

नंदु हाणिदं सिरियउ राउ होसइ;" (प्रा० गु० १६, १२)।

√घाड—सं० भ्रंश; भ्रष्ट होना, च्युत होना।—इ अक० (पड्)।

घाण—पुं० न० (सं० घ्राण) दुर्गंध; तुल० म० घाण; (भ०)।

घाय—पुं० (सं० घात>प्रा० घाय) प्रहार, चोट, वार; (प० च० ५६, २५)।

√घाय—सं० हन्; मारना, मार डालना विनाश करना।—इ क्रि०, व० (ण० ३, १५, ६)। घाएंत—व० कृ०; (प० च० ६०, १७)।

√घाय—(सं० घातय्>प्रा० घाय) मरवाना, विनाश करवाना; घाइयव्व—कृ०; (प० च० ६६, ३४)।

घाय-चउक्क—पुं० (सं० घातक+चतुष्क) घातिया-चतुष्क घातक व्यक्तियों का चार का समूह; "तव तेएँ घाय-चउक्क हणि केवलणाणेण तिलोउ सुणि;" अर्थात् अपने तप-तेज से उसने घातिया-चतुष्क का हनन कर केवल ज्ञान द्वारा त्रिलोक को सुना; (व० ६, १०, ११)।

घायण—पुं० (दे०) गायक, गवैया; (दे० ना० मा० २; १०८)।

घारंत—पुं० (दे०) घृतपूर, वेवर, मिष्टान्न-विशेष; (दे० ना० मा० २, १०८)।

घार—पुं० (सं० गृध्र) १. गृध्रजातीय पक्षी-विशेष; चील; तुल० म० घार; (जस० २, २७; १२; ण० ४, १०, ७; जंबू० ७, १, १२)। घार—पुं० (दे०) किला, दुर्ग; (दे० ना० मा० २, १०८)।

घारिउं—वि० (दे०) जो विष के वेग से मूर्च्छित हुआ हो; तुल० गु० घारण; (प्रा० गु० २०, १३)।

घारिय—वि० (सं० घृत) घृतपूर्ण; (भ०)।

घारिया—स्त्री० (दे०) मिष्टान्न-विशेष; तुल० गु० घारी; (भ०)।

घारी[1]—स्त्री० (दे०) शकुनिका, पक्षी-विशेष; (दे० ना० मा० २, १०७)।

घारी[2]—स्त्री० (दे०) छंद-विशेष; (प्रा० पैं० २, २६)।

√घाल—(सं० क्षिप् का धात्वादेश प्रा० घल्ले। प्रा० घल्लिय, प्रा० अप० घल्ल) डालना, फेंकना। घालिउ; (रा० ३३)।

घास—पुं० (सं० प्रा० घास) तृण, पशुओं के खाने का तृण; (दे० ना० मा० २, ८५)।

√घास—(सं० ग्रस्>प्रा० घिस) ग्रसना, भक्षण करना। —ए (घासए) "पियेइ मयतण्हिया कुलिससूइ को घासए," कौन ऐसा है, जो मृगतृष्णिका को पीये वज्र की सूई को खावे; (सुदं० ८, ३७, १३)।

घिदिणि—स्त्री० रास-नृत्य-विशेष; (प्रा० गु० ३१, ३)।

घिअ—न० (सं० घृतम्>प्रा० घिअ) घी; (ण० ४, ६, १२, संधि० १६, ७, १०; उ० व्य० प्र० ४६-२६)। घिउ—न० घृत; (भ० २, ७, ८)। (दे०) वि० तिरस्कृत; (दे० ना० मा० २, १०८)।

घिट्ठ—वि० (दे०) कुब्ज, कुबड़ा; (दे० ना० मा० २, १०८)।

घिट्ठत्त—पुं० धृष्टता; घिट्ठत्तें—धृष्टता से; (महा० ६६, १)।

घिणावण—वि० (सं० घृणा+आनयन) घृणास्पद, घिनौना; (जंबू० १०७, ११)। —उ (परम० २, १५१)।

घिणि—स्त्री० (सं० घृणा>प्रा० घिणा) घिन, घृणा; तुल० राज० घिरणा; (ण० ६, १७, ४५)।

घिणिहिणन्त—कृ० गुंजार करते हुए, भनभनाते हुए; (humming); (प० च० ३६, ६, ६)।

घित्त—वि० १. (सं० क्षिप्त>प्रा० घित्त) फेंका हुआ, डाला हुआ; (प० च० १६, ७, २)। २. गृहीत (ण० ३, ६, ११)। —व्व वि० गृहीतव्य (जंबू० ६, १०, १)।

घित्ता—स्त्री० (सं० घृत) घी; (प्रा० पैं० १, १३०)।

घित्तिउ—भू० का० (सं० गृहीत) खींच लिया, "घित्तिउ सो भीमें भीम-सत्ति;" अर्थात् भीम शक्ति वाले भीम ने उसे खींच लिया; (व० ५, १८, ५)।

√घिप्प—१. (सं०√ग्रह्>प्रा० घत्त) ग्रहण करना। —इ सक० (सं० ग्राहयति) ग्रहण करना; "गुणणिहिपुरिसु परिक्खिवि घिप्पइ"—जो गुणों का भण्डार है ऐसे पुरुष को परीक्षा कर नियुक्त करना चाहिए; (ण० ३, ३, ५)। घिप्पए (आत्मने);(सुदं० ४, १०, ३०)। २. गलना। घिप्पंत कृ० (सं० विगलत्) गलते हुए; (प्रा० घिप्प=वि०+गल्, हे० ४, १७५); (प० च० ३७, ३ ४)। ३. फेंक देना। घिप्पंति—क्रि० फेंक देना; (पाहु० १५१)।

घिय—न० (सं० घृत>प्रा० घिअ) घी; तुल० राज० घिरत; (सि० २, ३१)। —ऊर पुं० (सं० घृतपूर) मिष्टान्न-विशेष; तुल० गु० घेवर; (प० च० ५०, ११, ६)।

घिरिहोल—स्त्री० (दे०) मक्खी, "घिरिहोलपमुह जइ पइसयंति," (सुदं० ६, ६, १०)।

घिव—(सं० क्षिप्) डालना, फेंकना। —इ क्रि० (सं० क्षिप्यति>प्रा० खिवइ) "जो घणलुद्धु घिवइ घणकज्जें हुयवहें घिवइ इंधणं" —जो राजा धन संबंधी कार्य में धन के लोभी पुरुष को नियुक्त करता है वह अग्नि में ईंधन डालता है; (ण० ३, ३, १; जस० २, १८, ३)।

घिवण—न० (सं० क्षेपण>प्रा० खिवण) फेंकना; (ण० ३, १७, ४)।

घिवहु—पुं० (दे०) वृक्ष; (सा० ४०)।

घुंघुरुड—पुं० (दे०) उत्कर, समूह; (दे० ना० मा० २, १०६)।

√घुग्घु—(सं० घुघुघुघाय्>प्रा० घुघुघुघुघ) 'घुघु' ध्वनि करना। —वंति अक० घू घू करने लगे, "चाउद्दिसु घूवड घुग्घुवंति," (सुदं० ११, १५, ८)।

घुग्घुइय—वि० (सं० घूघूयित) घू घू ध्वनि करते हुए; "कहिँ मि घुग्घुइयघूयडसया रोसिया वायसा वासिया;" अर्थात् कहीं घूग्घू-घूग्घू करते हुए सैंकड़ों घूयडों के स्वर से रुष्ट हुए वायस कांव-कांव कर रहे थे; (जंबू० ५, ८, १६)।

घुग्घुच्छण—न० (दे०) खेद, तकलीफ,

मेहनत; (दे० ना० मा० २, ११०)।

घुग्घुरि—पुं० (दे०) मण्डूक, मेढ़क; (दे० ना० मा० २, १०६)।

घुग्घुस—पुं० घू-घू की ध्वनि; (जस० २, २७, ४)।

घुग्घुस्सुअ—वि० (दे०) निःशंक होकर गया हुआ; (पड्)।

घुग्घुस्सुसय—न० (दे०) आशंका-युक्त वचन; (दे० ना० मा० २, १०६)।

घुघुघुघुघुघ—अक० (सं० √घुघुघुघाय्) 'घुघु' आवाज करना, घूक का बोलना; घुघुघुघुघुघंत—व० कृ० (प० च० १०५, ५६)।

घुट्टघुणिअ—न० (दे०) पहाड़ की बड़ी शिला; (दे० ना० मा० २, ११०)।

घुट्टिवि—पू० का० क्रि० घोंटकर, घूंट-घूंट पीकर; (सं० रा० १६२)।

घुट्ठ—वि० (सं० घुष्ट > प्रा० घुट्ठ) घोषित, ऊँची आवाज व्यक्त किया हुआ; (गा० ६, १३, ५; जस० ४, ३०, १०)।

घुडुक्क—अक० गरजना, गर्जारव करना, तुल० राज० घुड़कणो, घुड़कबो; (प्रा० गु० २४, २)।

घुण—पुं० (सं० प्रा० घुण) काष्ठ-भक्षक कीट; (सुदं० ८, ४०, ७)।

घुणहुलिआ, घुणाहुली—स्त्री० (दे०) कानाकानी, कर्णोपकर्णिका; (दे० ना० मा० २, ११०)।

घुण्णिअ—वि० (सं० घूर्णित) भ्रांत, भटका हुआ; (दे० ना० मा० ८, ४६)।

घुत्तिअ—वि० (दे०) गवेषित; (दे० ना० मा० २, १०६)।

√घुम—(सं० घूर्ण > प्रा० घुम्म) घूमना। —इ; (प्रा० पैं० १, १६०)।

घुमघुम—न० (ध्व०) घुम-घुम ध्वनि; (जंबू० १, १४, ६)।

√घुम्म— (सं० √घूर्ण > प्रा० घुम्म) घूमना। —इ अक० (सं० घूर्णते) तुल० म० घुमणें; राज० घुमणो; (पड्; जस० २, १६, ११)। —माण व० कृ० (सं० घूर्ण + शानच्) घूमता हुआ; (जंबू० ४, ११, ७; म० २, ३७, ६)। घुम्मिवि—पू० का० क्रि०; (ण० ५, ६, १३)।

घुम्मइय—वि० (सं० घूर्णित > प्रा० घुण्णिअ) घूमा हुआ, चक्र की तरह फिरा हुआ; (प० च० २१, ६, २)। घुमन्त—व० कृ० (ध्वन्यात्मक) घूं-घूं की आवाज करते हुए (प० च० २४, २, २)।

घुम्माविय—वि० (सं० घूर्णायित) घूमा हुआ; (जंबू० १, १४, ६)।

घुम्मिय—वि० (सं० घूर्णित > प्रा० घुम्मिय) घूमा हुआ; (जंबू० ८, ६, २)।

घुम्मिर—वि० (सं० घूर्णितृ > प्रा० घुम्मिर) १. घूमने वाला; (महा० संधि० ६८)। २. घूमते हुए, "मयघुम्मिरेहिं गइमंथरेहिं आरुहहिं सलक्खणगयवरेहिं," —वे मद से घूमते हुए मंथरगति, सुलक्षण गजवरों पर आरूढ़ होते हैं; (सुदं० ६, १३, ७)।

√घुरु—(सं० घुरुघुराय् > प्रा० घुरुघुर) घुरघुराना; "णर-मारण-सीलु, दारिय-पीलु घुरुहुरंत-मुहु जाम;" अर्थात् मनुष्यों को मारने के स्वभाव वाला तथा पीलु-

गजों को विदारने वाला वह पंचानन, जब अपने मुख से घुरघुरा रहा था; (व० ३, २६, ११)।
√घुरुघुर— (सं० घुरुघुराय्>प्रा० घुरुघुर) घुर-घुर आवाज करना (grunt); तुल० गु० घुरकवुं ।—न्ति अक०, व० (प० च० ३२, ३, ८)।
√घुरुघुर—(सं० घुरुघुराय्> प्रा० घुरुघुर, घुरहुर) 'घुर घुर' आवाज करना; घुरहुरइ–अक० घोर गर्जन करता है, घुरघुराता है; (सं० रा०)। घुरहुरंति–क्रि०, व० (सुदं० ११, १५, ६)। घुरुहुरंति–कृ० (सं० घुरुघुराय्+शतृ) (सुदं० ८, १६, १)। घुरुघुरुहुरन्ति–क्रि० निरंतर घुरघुर की ध्वनि होना; (प० च० ३१, ३, ७)।
घुरुघुरि—पुं० (दे०) मण्डूक, मेढक; (दे० ना० मा० २, १०६)।
घुरुहुरिय—वि० (ध्व०) (सं० घुरघुरायित) घुर-घुर की आवाज से युक्त; (जंबू० ५, ८, १६)।
√घुल—(सं०√घूर्ण, सं० घूर्णते) —इ अक० (सं० घूर्ण्>प्रा० घुम्म, घुल) घूमना, चक्राकार फिरना, "कावि वेरइसलिलें सिंचिय, वेवइ वलइ घुलइ रोमंचिय"—कोई वेश्या रति के जल से सिक्त हुई, कँपती, वलखाती, घूमती और रोमांचित होती; तुल० म० घोलणें; (ण० १, १८, ६)। घुलंत—कृ० (सं० घूर्णत्) डोल-डोल कर; "घुलंतइं तेण थणाहं मुहाइं सकज्जलवण्णइं ताइं कयाइं!" अर्थात् उसके हार ने भी डोल-डोल कर स्तनों के मुखों को काजल के समान काला कर डाला था; (क० १, ६, ४)। घुलंति—कृ० फहराती हुई; "करि धय पंतिहिं गयणे घुलंति हिं," अर्थात् गगन में फहराती हुई ध्वज-पताकाएँ; (व० ४, २०, १)। घुलेप्पिणु—पू० का० क्रि०; (प० च० ३८, १७, ७)।
घुलकि—स्त्री० (दे०) हाथी के चलने का शब्द; (प्रा पैं० १, २०४)।
घुलिय—वि० (सं० घूर्णित>प्रा० घुलिअ) चलित, घुलित (म० २, ७८, ५)। २. घूमती हुई; "अलिवलयघुलियअलयइं कहंति" घूमती हुई भ्रमरावली रूपी अलकों सहित (उनके गुंजार के रूप में) बोल रही थी, (सुदं० २, १२, १)। ३. वि० (सं० घुलित) चंचल; (जस० १, ३, १७)।
घुसण—न० (सं० घुसृण>प्रा० घुसिण) कुंकुम, केसर, सुगंधित द्रव्य-विशेष; (प्रा० गु० २६, १७)। घुसिण–न० केसर; (प्रा० गु० ३५, ८; जस० ३, १, ५)।
√घुसल—मथना, विलोड़न करना। —इ व० (प० च० ३७, १, ४)।
घुसिण—पुं० (सं० घुसृणम्>प्रा० घुसिण) कुंकुम, केसर, सुगंधित द्रव्य-विशेष (सं० रा०; सुदं० ५, ४, ७; ण० १, ६, १०)।
घुसिणिअ—वि० (दे०) गवेषित, ढूँढ़ा हुआ; (दे० ना० मा० २, १०६)।
घुसिम—न० (दे०) कुंकुम; (पड्)।
घूय—पुं० स्त्री० (सं० घूक>प्रा० घूअ) उलूक; (जस० १, १०, ६)।

घूयउ—पुं० (सं० घूक>प्रा० घूअ) उलूक, उल्लू, पक्षी-विशेष; (जंबू० ५, ८, १६)। —ऊ पुं० उल्लू (जि०)। घूवड-पुं०, उल्लू, (सुदं० ११, १५, ८)।

√घे—(सं० √ग्रह>प्रा० गह) ग्रहण कर लेना; घेइ; (षड्)। घेत्तुं, घेत्तूण–कृ० (प० च० ११८, २४; हे० प्रा० व्या० ४, २१०)।

√घे—(सं० ग्रह्>प्रा० गह) ग्रहण कर लेना; (जस० २, ३४, ७)। —प्पइ क्रि०, व० (सं० गृह्यते) ग्रहण करना; (हे० ३४१, १)। घँ–कृ० पकड़ कर; (की० २, १८४)।

घेउर—पुं० न० (सं० घृतपूर>प्रा० घेउर) घेवर; तुल० गु० घेवर (प्रा० गु० २४, ७)। —य पुं० घेवर; (संधि० ११, १, ६)।

घेठा—भू० का० कृ० घर्षित हुआ; "आनिकु वानु जो एथु घेठा" अर्थात् वांका वर्ग जो यहाँ घर्षित हुआ; (रा० ८, ७)।

घेतल—वि० (सं० गृहीत) पकड़ा हुआ। घुतले; (रा० २०)।

घेवर—पुं० न० (सं० घृतपूर) घेवर, मिष्टान्न-विशेष; मैदे, घी, चीनी के योग से बनी एक मिठाई; (दे० ना० मा० २, १०८)।

घोंटि—स्त्री० (सं० घोण्टी) वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, ६)।

घोट्ट—क्रि० (दे०, प्रा० घोट्ट) पीना, पान करना। —इ; (सुदं० ६, २, ५)। घोट्टंति—क्रि० घोटते थे, "पाडंति मोडंति, लोट्टंति घोट्टंति," वे परस्पर एक दूसरे को धराशायी करते, मोड़ते, लोट-पोट करते और घोटते थे; (ण० ५, ५, ५)। —मि व०, उ० पु०; (प० च० ३८, ६, ३)। घोट्टिउ—भू० का० पी लिया; "घोट्टिउ दुद्धु व कसणें सप्पें" अर्थात् दूध को काले सांप ने पी लिया, (महा० ६८, १०, १३)।

घोट्ट—पुं० (प्रा० घुण्ट हे० प्रा० व्या० ४, ४२३)। घूंट; तुल० गु० घूंट, घूंटडो; (प० च० ३८, ६, ३)। २. पीने वाला; (प० च० ४६, १०, ६)।

घोड, घोडग, घोडय—पुं० स्त्री० (सं० घोट+क>प्रा० घोडय) घोड़ा; (दे० ना० मा० २, १११)। घोडअ; (क० ७, २, ६)।

√घोण—(सं० √घूर्ण्) चक्कर देना; (प्रा० पैं० २, १८६)।

घोण-वङ्किय—पुं० (सं० वक्रितघोणा) नाक मुड़ा हुआ होना (with the nose turned away); (प० च० ४६, ५, ७)।

घोणस—पुं० (सं० घोनस) एक प्रकार का सांप; सरीसृप-विशेष; (प० च० ३६, १७; जस० १, ६, ६)।

घोरंधार—पुं० (सं० घोरान्धकार) घोर अंधकार; (व० ५, २२, ४)।

घोर—पुं० (सं० घोट>प्रा० घोड) घोड़ा; (की० २, २०५)। (२) वि० (सं० प्रा० घोर) भयंकर; (भ०; जस० २, १०, १५)।

√घोर—(सं० घुर्, सं० घुरति)

१. शब्द करना, कोलाहल करना; २. निद्रा में घुर-घुर आवाज करना; (उ० व्य० प्र० ५२-१०)।

घोरि—पुं० (दे०) शलभ-जंतु की एक जाति; (दे० ना० मा० २, १११)।

घोल—पुं० (सं० घोट>प्रा० अप० घोड) घोड़ा; (की० ३, ८५)। —ा (घोला) पुं० घोड़ा; (की० २, २४३)।

घोलें—पुं०, ब० घोड़े; (की० ४, ७६)।

√घोल—(सं० घूर्ण>प्रा० घुम्म, घोल) घूमना; —इ अक० (ण० ३, ८, १०)। घोलंत—कृ० (सं० घूर्ण+शतृ); (ण० ७, २, ७)।

घोलिर—वि० (सं० घूर्णितृ> प्रा० घोलिर) १. घूमने वाला; (ण० ४, १३, ११)। २. घोलनशील; (जस० १, १२, ६)।

घोस—पुं० (दे०) सं० गुच्छ, गुच्छा; तुल० म० घोस; (जस०)।

√घोष—(सं० घोषय्>प्रा० घोस) घोषणा करना; —इ सक० (प० च० १, १२, ७; ण० ५, १०, २१)। घोसे-प्पिणु—पू० का० क्रि० घोषणा कर; (प० च० १६, ४, १०)।

घोस—पुं० (सं० घोष>प्रा० घोस) ऊँची आवाज; तुल० राज० घोस; (जस० १, १६, ४)।

घोसण—न० (सं० घोषण>प्रा० घोसण) ऊँची आवाज; तुल० राज० घोसणा, (भ०)।

घोससेण—पुं० (सं० घोषसेन) सातवें वासुदेव का पूर्व जन्म का धर्मगुरु, एक जैन मुनि; (प० च० २०, १७६)।

घोसालई, घोसाली—स्त्री० (दे०) शरद् ऋतु में होने वाली लता-विशेष; (दे० ना० मा० २, १११)।

घोसिअ—वि० (सं० घोषित>प्रा० घोसिअ) व्यक्त किया हुआ; (जंबू० ७, ११, ४)।

च

च—पुं० (सं० प्रा० च) तालु-स्थानीय व्यंजन-वर्ण-विशेष। संयो० (सं० प्रा० च) और, तथा, (सं० रा०)।

चंग—वि० (सं० चङ्ग>प्रा० चग) चंगा, चारु, अच्छा, सुंदर; तुल० राज० चंगो, (दे० ना० मा० ३।१)। चंग—वि० १. चारु (ण० १, १५; ११)। २. अच्छा, (महा० ६, ४, १४)।

चंगउ—वि० सुंदर (जस० १, २१, १०)। तुल० पं० चंगा, म० चांगला, चांग। ३. स्वस्थ; (जंबू० १०, १७, १४)। —त्तण पुं० (सं० चङ्गत्व) सौंदर्य; (जंबू० १, १५, १)। —म वि० सुंदर, अच्छा; (जंबू० ११, ६, १)।

चंगएव—पुं० (सं० चङ्गदेव) नाम-विशेष, (म० १, २, १)।

चंगिम—पुं० स्त्री० (दे०) सुंदरता, सौंदर्य; (प्रा० गु० १०, ४)।

चंगेडा—स्त्री० (दे०) डलिया; तुल० राज० चंगेड़ी (मिठाई आदि रखने का पात्र); (कण्ह० चर्या० १०)।

चंचरीय—पुं० (सं० चञ्चरीक>प्रा० चंचरीअ) भौंरा, भ्रमर; तुल० राज० चंचरी; (जंबू० ४, २१, ५)। **चंचरी**—स्त्री० भ्रमरी; (व० १, ६, ७)।

चंचल—वि० (सं० चञ्चल>प्रा० चंचल) चपल, चंचल; तुल० राज० चंचळ; (जंबू० २, ६, ८)। पुं० राक्षस योद्धा; (५६, ३६)। —यर वि० (सं० चञ्चलतर) अधिक चंचल; (व० १, १३, १०)।

चंचला—स्त्री० (सं० चञ्चला) छंद-विशेष, वर्णिक छंद; तुल० राज० चंचळा (प्रथम गुरु फिर लघु इस क्रम में १६ वर्ण का एक वर्ण वृत्त) (प्रा० पैं० २, १७२)।

चंचु—स्त्री० (सं० चञ्चू>प्रा० चंचु) चोंच; तुल० राज० चंचु; (जस० १, १२, १)। —क्खय वि० (सं० चञ्चु+क्षत) चंचु से खंडित; (जंबू० ४, ७, ७)।

चंचुय—पुं० (सं० चञ्चुक) अनार्य देश-विशेष की मनुष्य-जाति-विशेष; (सवि० १०, २, ६)।

चंचूजीविअ—पुं० (सं० चञ्चूजीविक) पक्षी; (जस० ४, १६, १०)।

चंडंसु—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १२)।

चंड—वि० (सं० चण्ड>प्रा० चंड) १, प्रबल, उग्र, प्रखर; (जंबू० ६, ७, २; जस० १, ६, ५)। २, क्रूर स्वभाव का; (प्रा० पैं०. २, १६५)। पुं० १. विद्याधरवंशीय राजा; (प० च० ५, २६४)। २. वायु; (व० १०, २४, ५)।

चंडउत्त—पुं० चन्द्रगुप्त, पुरुष-विशेष; (ण० ६, १, ८)।

चंडकुंड—पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३३)।

चंडविकय—वि० (सं० चण्डिक्यित> प्रा० चंडिक्किअ) रोप-युक्त; (संवि० २, ११, ६)।

चंडपज्जोअ—पुं० (सं० चण्ड+प्रद्योत> प्रा० चंड+पज्जोअ) पुरुष-विशेष; (ण० ७, ५, २१)।

चंडभुअ—वि० (सं० चण्डभुज>प्रा० चंड+भुअ) प्रचण्ड भुजशाली; (ण० ६, ७, ६)।

चंडमारी—स्त्री० चण्डमारी कात्यायनी देवी; (जस० १, ६, २)।

चंडवालु—पुं० (सं० चण्डपाल) छंद-विशेष; (सुदं० ८, २६, ४)।

चंडा—स्त्री० (सं० चण्डा) क्रोधी स्त्री, मानवती; तुल० राज० चंडा; (प्रा० पैं० २, १०७)।

चंडाल—पुं० (सं० चण्डाल>प्रा० चंडाल) वर्णसंकर जाति-विशेष, शूद्र और ब्राह्मणी से उत्पन्न; तुल० राज० चंडाळ; (जस० २, ६, १)।

चंडिआ—स्त्री० (सं० चण्डिका>प्रा० चंडिया) पार्वती, गौरी, शिव-पत्नी; (प्रा० पैं० २, ६६)।

चंडियसमाण—वि० (सं० चण्डीसमान) देवी तुल्य; (जस० १, ७, ११)।

चंडुम्मि—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ७१, ३८)।

चंडेसरवर—पुं० (सं० चण्डेश्वरवर)

चंडेश्वर, व्यक्ति-विशेष-नाम; (प्रा० पैं० १, १०८)।

चंडेसो—पुं० (सं० चण्डीश) महादेव; तुल० राज० चंडीस; (प्रा० पैं० २, १२)।

चंदक—पुं० विद्याधरवंशीय राजा; (प० च० ५, ४३)।

चंद—पुं० (सं० चन्द्र>प्रा० चंद) चंद्रमा, चांद; (जस० २, ६, १; ण० ३, १, ६)। पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, २)। वानरयोद्धा; (प० च० ७१, ३८)। दाशरथी भरत का पूर्वभव नाम; (प० च० ८२, १२८)। लक्ष्मण-पुत्र; (प० च० ६१, २०)।

चंदकंता—स्त्री० दाशरथी भरत की प्रणयिनी; (प० च० ८०, ५२)।

चंदकंति—स्त्री० (सं० चन्द्रकान्ति) रत्न-विशेष; (जस० २, ४, ८)।

चंदकला—स्त्री० (सं० चन्द्रकला) चंद्रमा की ज्योति; (व० ६, ६, १२)।

चंदक्क—पुं० (सं० चन्द्+अर्क>प्रा० चंद+अक्क) चंद्र और सूर्य; (ण० १, १६, ५)। २. राक्षस योद्धा; (प० च० ६१, १०)।

चंदगइ—पुं० विद्याधर राजा; (प० च० २६, ८०)।

चंदचूड—पुं० विद्याधरवंशीय राजा; (प० च० ५, ४५)।

चंदजोइ—पुं० वानर राजा; (प० च० ५४, २०)।

चंदण—पुं० न० (सं० चन्दन>प्रा० चंदण) सुगंधित वृक्ष-विशेष, चंदन का पेड़, तुल० राज० चंदण; (जंबू० १, ११, १७)। —णखा स्त्री० रावण-भगिनी; (प० च० ७, १८)। —छप्पय पुं० छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, १२२)।—द्द पुं० (सं०चन्दन+आर्द्र)हरे चंदन वृक्ष(जंबू० ४,२१, २)। —पायव पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, ६)। —भ पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ६१, २७)। —लित्त वि० (सं० चन्दनलिप्त) चंदन से लिप्त; (जंबू० ८, १२, ५)। —साह स्त्री० (सं० चन्दनशाखा>प्रा० चंदण+साहा) चन्दन वृक्ष की शाखा; (जंबू० १, १०, ६)। —ह पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३१)।

चंदणलया—स्त्री० (सं० चन्दनलता) वनस्पति-विशेष; (प० च० ५३, ६७)।

चंदणह—पुं० चंदन वृक्ष; स्त्री० चंद्रनखा रावण की बहन; (जंबू० ५, ८, ३३)।

चंदणहि—स्त्री० (सं० चन्द्रनखी) शूर्पनखा; (महा०)।

चंदणोल—वि० (सं० चन्द्रनार्द्र) चंदन के समान शीतल; (व० ४, २, २)।

चंदन—स्त्री० चंदना नामक आर्यिका; (व० १०, ४०, ६)।

चंदनह—पुं० विद्याधर राजा; (प० च० ११४, १६)।

चंदपह—पुं० (सं० चन्द्रप्रभ) आठवें तीर्थंकर; (प० च० ९५, ३२)।

चंदप्पह—पुं० (दे० चन्द्रप्रभ>प्रा० चंदप्पभ, चंदप्पह) आठवें जिन-देव (तीर्थंकर) का नाम; (ण० ५, ११, ६;

जस० १, २, ४)। २. चंद्रमा की प्रभा; (व० १, १, ६)।

चंदफलअ—पुं० (सं० चन्द्रफलक) चंद्रमंडल; (जंवू० ८, ८, ११)।

चंदमंडल—पुं० (सं० चन्द्रमण्डल) चंद्रमंडल; (जंवू० १, १२, २)।

चंदमई—स्त्री० (सं० चन्द्रमती) यशोवरजननीनाम; (जस० १, २३, ९)।

चंदमई—स्त्री० चंद्रवती, स्त्री-विशेप का नाम; (ण० ६, १, ९)।

चंदमणि—स्त्री० (सं० चन्द्रमणि) चंद्रकांत मणि; (व० ५, १, ८)।

चंदमल—पुं० (सं० चन्द्रमाला) वार्णिक छंद का नाम; (प्रा० पैं० २, १९०)।

चंदमुहि—वि० (सं० चन्द्रमुखी) चंद्रमा के समान मुख वाली, (प्रा० पैं० १, १३२)। —य वि० चंद्रमा के समान मुख वाली; (जंवू० ७, १२, ७)।

चंदरासि—स्त्री० (सं० चन्द्रराशि) नामविशेप; (भ०)।

चंदलेह—स्त्री० (सं० चन्द्रलेखा >प्रा० चंदलेहा) १. स्त्री-विशेप, एक राज पत्नी; (जस० ४, २४, २; ण० ८, १२, ६)। २. छंद-विशेप; (सुदं० ५, ७, १९)।

चंदवयण—वि० (सं० चन्द्रवदन) चंद्रमुख, चंद्रमा की तरह सुंदर मुख वाला; (जंवू० ३, ३, ४)।

चंदवेज्झ—पुं० (सं० चन्द्रवेध्य) शस्त्रविद्या; (सुदं० ३, ९, ११)।

चंदसरिस—वि० (सं० चन्द्रसदृश) चंद्रमा के समान; (जस० ४, १७, १६)।

चंदसिरि—स्त्री० (सं० चन्द्रश्री) स्त्री-नाम; (जस० ४, २३, ४)।

चंदसूर—पुं० (सं० चन्द्रसूर्य) चंद्रमा और सूर्य; (जंवू० १, १८, १०)।

चंदहासु—पुं० (सं० चन्द्रहास) रावण की तलवार; (महा०)।

चंदाइच्च—पुं० (सं० चन्द्रादित्य) चंद्रमा और सूर्य; "चंदाइच्चहँ केम भाऊ आवइ आथवाणु। ता दाणव ता देव जा विहि जोइ सामुहउँ"। (प्रा० गु० ३८, ४१)।

चंदाणण—वि० (सं० चन्द्रानन) चंद्रानना, चंद्रमा के समान मुख वाली; (क० ८, १६, १०)।

चंदायणं—पुं० (सं० चान्द्रायण) व्रत-विशेप, चान्द्रायण व्रत, महीने भर का एक कठिन व्रत जिसमें चंद्रमा के घटने-वढ़ने के अनुसार भोजन घटाना वढ़ाना पड़ता है; (जंवू० ४- १४, १२; जस० २, ५८, १२)।

चंदारिसि—पुं० (सं० चन्द्र+ऋपि) गोत्र-विशेप; (क० १०, २८, १)।

चंदाहवत्त—वि० (सं० चन्द्राभावत्) पूर्णिमा के समान मुख चंद्र की आभा से युक्त; (जस० १, २, ४)।

चंदाहा—स्त्री० (सं० चन्द्र+आह्वा) चन्द्रा नामक कन्या; (ण० ७, ११, २)।

चंदि—स्त्री० (सं० चन्द्र) चंद्रमा; (प० सि० च० १, १०, ३३)।

चंदिण—स्त्री० (सं० चन्द्र) चांदनी, चंद्रिका; (जंवू० ८, १५, १५)।

चंदिणी—स्त्री० चन्द्रिणी नामक स्त्री; (ण० ८, १२, ६)।
चंदिम—स्त्री० (सं० चन्द्र) चंद्रिका; (प्रा० गु० १२, ४)।
चंदु—पुं० (सं० चन्द्र>प्रा० चंद) चंद्रमा; (महा० ६८, ५)। —ग्गम पुं० (सं० चन्द्रोद्गम) चंद्रमा का उद्गम; (व० ७, २, १२)।
चंदुज्जल—वि० (सं० चन्द्रोज्ज्वल) चंद्रमा के समान उज्ज्वल; (जस० ४. २७, ३)।
चंदो—पुं० चन्द्र, (छंदशास्त्र में) षट्-कल गण का नाम; (प्रा० पैं० १,१५)।
चंदोव—न० (सं० चन्द्रोपक>प्रा० चंदोवग=संन्यासी का एक उपकरण) चंदोवा; (सा० १६८)। —य न० चंदोवा; (जंबू० १, १५, ७)।
चंदोवडंबर—पुं० (सं० चन्द्रोपक+आडम्बर) चंदोवा युक्त; (सुदं० ११, १२, ८)।
चंद्रमा—पुं० (सं० चन्द्रमस्) चाँद; (प्रा० पैं० १, ३४)।
√चंप—(दे०) चाँपना, दबाना। —इ सक० (जस० १, १५, ८; जंबू० १, ६, ६)।
चंप—न० १. (सं० चम्पक>प्रा० चंपय) चम्पा का फूल; (प० च० ४२, ८)। २. चम्पा एक पर्वतीय शहर, चम्पा नगरी; (भ०; रि० २, ६)। —अ पुं० (सं० चम्पक>प्रा० चंपय) पुष्प-विशेष; (प्रा० पैं० २, १६३)। —एल पुं० (सं० चम्पक + तैल >प्रा० चंप+तेल) चम्पा का तेल; (सं० रा०)। —ग पुं० (सं० चम्पक >प्रा० चंपय) वृक्ष-विशेष, चंपा का पेड़; (प० च० ४६, ७४)। —य पुं० (सं० चम्पक>प्रा० चंपय) चंपा का पेड़, चम्पा का फूल; (प० च०; प्रा० गु० १८, १६)। तुल० गु० चंपो। —हुल्ल पुं० (सं० चम्पक+फुल्ल> प्रा० चंपय+फुल्ल) चम्पा का पुष्प; (ण० ३, ४, १५)।
चंपाणयरि—स्त्री० चंपानगरी (जंबू० ३, १०, ११)।
चंपापुर—पुं० (सं० चम्पापुर) नगर-विशेष; (जंबू० १०, २४, ११)।
चंपारण—पुं० (सं० चम्पराण्य) १. देश-विशेष, चंपारन, तिरहुत् कमिश्नरी (विहार) का एक जिला, २. चंपारन का निवासी; (प्रा० पैं० १, १४५)।
चंपाहिअ—पुं० (सं० चम्पाधिप) चंपाधिप, राजा-विशेप; (क० ३, १४, ६)।
चंपिय—वि० (दे०) आक्रान्त, चाँपा हुआ, दबाया हुआ; (सुदं० ६, २१, ५)।
चआ—स्त्री० (सं० त्वक्) त्वचा; (षड्)।
चइअ—देखो चविअ; (प० च० १०३, १२६)।
चइअ—देखो चेइअ; (षड्)।
चइतालय—पुं० (सं० चैत्य+आलय) चैत्यालय, देवालय; "सुखर-वन्दिएँ धवल-विसालएँ, गम्पिएगु सिद्ध कूडें चइतालएँ;" (प० च० २४, ६, १)।

चउ—वि० (सं० चतुर्>प्रा० चउ) चार, संख्या-विशेष; तुल० म० चौ; राज० चउ; (ण० ३, १७, १०; सं० रा०)। —अण्ण वि० (सं० चतुः पंचाशत्) चौवन; (प्रा० पैं० १, ५७)। —आलह वि० (सं० चतुश्चत्वारिंशत्> प्रा० चउआलीस) चवालीस; (प्रा० पैं० १, १४६)। —कसाय पुं० (सं० चतुष्कषाय) क्रोध, मान, माया और लोभ; (जस० ३, १७, ७)। —क्क वि० (सं० चतुष्क) चार; "कण्णचउक्कु जाउ लक्खणधरु," —लक्षण संपन्न चार कन्याएँ उत्पन्न हुई; (जंबू० ४, १४, १७)। न० चार वस्तुओं का समूह, चौकड़ी; (भ०)। पुं० (सं० चतुष्किका>प्रा० चउक्किआ) चौक; (ण० ६, २१, २; दे० ना० मा० ३, २)। —क्कन्ध पुं० चतुः स्कन्ध; (भ०)। —क्कय पुं० (सं० चतुष्क>प्रा० चउक्क) आँगन, एक प्रकार की सजावट; चौक, तुल० गु० चौक; (सं० रा०; प० च० २८, ६, ६)। —क्कलु पुं० (छंदशास्त्र में) चतुष्कल गण; (प्रा० पैं० १, २०८)। —गइ स्त्री०(सं० चतुर्गति) नरक, तिर्यंग् मनुष्य और देव की योनि; (ण० २, ६, १८)। —गइवयण पुं० (सं० चतुर्गति +वदन) चतुर्गति रूपी मुख, "इंदियफडालु चउगइवयणु," —इंद्रियों रूपी फणा, चतुर्गति रूपी मुख; (जंबू० ३, ७, १३)। —गुण, ग्गुण वि० (—गुण) चौगुना; (पड्; जंबू० ६, १३, ६)। —ग्गगी वि० (सं० चतुर्गुण>प्रा० चउग्गुण) चार बार और उतना ही; (सं० रा०)। —ग्गुणिय वि० (सं० चतुर्गुण) चौगुनी; (प० च० ८, ७, ६)। —चूड पुं० (—चूड) विद्याधर वंश के एक राजा का नाम; (प० च० ५, ४५)। —णउइ वि० (—नवति) चौरानवे। —णउय वि० (—नवत चौरानहवाँ; (प० च० ६४, १०६) —णिकाय पुं० (सं० —निकाय) चतु निकाय के देव; (व० ६, १२, ५) —तीसइम देखो तीसइम; (प० च ३४, ६१)। —ताली। वि० (—चत्वारिंश) चवालीसवाँ; (प० च० ४४ ६८)। —त्तीसइम वि०(—त्रिंश) चौंतीसवाँ। —त्थ वि० (सं० चतुर्थ) चौथा तुल० गु० चोथु; (प्रा० पैं० १, १३७ संधि० १८, ४, १०)। —त्थी स्त्री (सं० चतुर्थी) चौथ, किसी पक्ष की चौथी तिथि; (जस० २, ४, ३)। —थिय वि (सं० चतुर्थ) चौथा; (क० १०, १[illegible] ४)। —थो वि० (सं० चतुर्थः) चौथा तुल० राज० चौथा, (प्रा० पैं० २, ६६) —दस वि० (—दशन्) चौदह; (जस ४, ११, ४)। —दसि स्त्री० (—दशी चतुर्दशी, तिथि-विशेष; (जस० ३, ३[illegible] १५)। —दह वि० (सं० चतुर्दश चौदह; (ण० १, १, ६)। —दह-रय पुं० सं० (चतुर्दशन्+रत्न;) चौदह रत्न (व० २, १३, १)। —दार पुं० (सं चतुर्द्वार) चार दरवाजे वाला घ (जस० १, ४, ८)। —दिस स्त्री० (सं चतुर्दिशम्> प्रा० चउद्दिसि) चा दिशाओं में; तुल० गु० चोदश; (ण० [illegible] ६, ११)। चउदिसु; (प० च० २, १[illegible]

६)। —द्दसम वि० (—दश) चौदहवाँ; (प० च० १४, १५८)। —द्दसि स्त्री० (सं० चतुर्दशी>प्रा० चउदसी) तिथि-विशेष; (व० १०, ४०, १२)। —पइया स्त्री० चौपइया छंद, मात्रिक छंद; "चउ-पइया छंदा भणइ फणिंदा;" (प्रा० पैं० १, ६७)। —पाण पुं० (—प्राण) इंद्रियादि; (जस० ४, १८, १८)। —पास क्रि० वि० (—पार्श्व) चारों ओर; (ण० ४, १४, १४; जस० ३, १२, १३)। —पासिय वि० (—पार्श्वक) चारों ओर का; (भ०)। —प्पय वि० पुं० (सं० चतुष्पाद्—द) चौपाया; (भ०; जस० १, १०, ४)। —प्पह पुं० (सं० चतुष्पथः) चौराहा, वह स्थान जहाँ चार सड़कें मिलें; (जंबू० ४, ८, ३)। —प्फ-लिय वि० (सं० चतुष्फलिक) चार भागों वाला; (प० च० ३६, ८, ७)। —व्वीस वि० (सं० चतुर्विंशति) चौबीस; (प्रा० पैं० १, ६१)। —व्वोल पुं० चौबोला छंद, छंद-विशेष; (प्रा० पैं० १, १३१)। —भुअ वि० (सं० चतुर्भुज>चउब्भुअ) चार हाथ वाली; (प० च० १२, १०, २)। —भेय पुं० (सं० चतुर्भेद) चतु-र्विध, चार प्रकार; (जस० ४, ८, १५)। —माणथंम पुं० (सं० चतुर्मानस्तम्भ) चार मानस्तंभ, "चउमाणथंभ जिणकेय-णाइँ परिहा वल्ली वणउववणाइँ" चार मानस्तंभ, जिनकेतन, परिखावलय, वन, उपवन;' (सुदं० १, ६, ४)। —मासयं पुं० (सं० चातुर्मासिकम्) बर-सात के चार महीने, असाढ़, सावन, भादों और कुआर का चौमासा;' 'सप्प-विल सीह-गुफ कूय-निम्नासयं। गुरुहुँ वुत्तु मुणिहि तिथु कियउँ चउमासयं॥ तुल० गु० चोमासु; (प्रा० गु० १६, २८)। —यालीस, चोआलीसह (वि०) (सं० चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस; (प्रा० पैं०)। —रंग पुं० (सं० चतुरङ्गिणी) चार अंगों वाली सेना; (ण० ७, १०, १)। —रंग-बलं पुं० चतुरंगिणी सेना; (व० २, १४, ४)। —रंगाणीया स्त्री० (सं० चतुरङ्गिणी) चार अंगों वाली सेना; (रि० ७, ६)। —रङ्ग वि० (सं० चतुरङ्ग>प्रा० चउरंग) चार अंगों वाला; (प० च० १६, ५, ११)। पुं० शतरंज का खेल; (प० च० ३८, १, १०)। —रद्ध वि० (सं० अर्धचतुर) साढ़े चार; (प० च० २४, १४, ६)। —रय पुं० (सं० चकोर) चक्रवाक पक्षी; (जस० १, १०, ५)।
—रासम पुं० सं० चतुराश्रम चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, संन्यास) (ण० १, ८, ३)। —रासी वि० (सं० चतुरशीति) चौरासी, (जस० ४, ११, ६)। —रि स्त्री० (सं० चत्वरी) लग्न-मण्डप, चौकी; तुल० गु० चोरी; (जस० १, २७, ६)। —रिय स्त्री० (सं० चमरी) चौरी; "गुरुचउरिय हेमें णिम्म-विय;" स्वर्ण-निर्मित बड़ी-बड़ी चौरियाँ लटकायी गईं; (क० ७, ७, १०)। —रूण वि० (सं० चतुर+उन) चार से कम; (प० च० ११, ४, ८)। —वग्ग पुं० (सं० चतुर्वर्ग) धर्म, अर्थ काम, मोक्ष, (सुदं० १, १, ४)। —वण्ण पुं० (सं० चतुर्वर्ण) चार वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; (ण० १, ७, ८)। —वार पुं० (सं० चतुर्द्वार) चार दर-

बाजे वाला घर; (प० च० १६, ११, ७)। —वाह पुं० (सं० चतुः पार्श्वम्) चारों ओर; तुल० गु० चोपास; (प्रा० गु० २४, २)। —विह वि० (सं० चतुर्विध) चार रूपों वाला; (जस० १, १, १०; ण० १, १२, ५; म०)। —विहगइ स्त्री० (सं० चतुर्विधगति) चार प्रकार की गतियाँ; "ए जिणवर णिज्जिय-रइवर विणिवारिय-चउविहगइ;" अर्थात् उक्त समस्त जिनवर रतिवर-कामदेव को जीतने वाले हैं, चतुर्विध गतियों का निवारण करने वाले हैं; (व० १, १, १५)। टि०—हिंदू शास्त्रों के अनुसार जीव की तीन गतियाँ हैं—उर्ध्व गति (देव योनि), मध्यगति (मनुष्य योनि); अधोगति (तिर्यक् योनि)। जैनशास्त्रों के अनुसार पाँच प्रकार की गतियाँ कही गई हैं—१. नरकगति, २. तिर्यक् गति, ३. मनुष्य गति, ४. देवगति और ५. सिद्धगति। —वीस वि० (सं० चतुर्विंशति) चौवीस; तुल० म० चौवीस, चोवीस; (भ०; सुअंध० १, १)। —वेइ पुं० (सं० चतुर्वेदिन्) १. चतुर्वेदी, चौबे, ब्राह्मणों की एक जाति या शाखा, २. मथुरा का पंडा; (सं० रा०)। —व्विह वि० (सं० चतुर्विध) चार रूपों वाला, चौतरफा; (जंबू० १०, २६, १०)। —सट्ठि वि० (सं० चतुः षष्ठि>अर्ध मा०, जैन म० चउसट्ठि-चोसट्ठी-चउवट्ठि, पिशेल) चौंसठ; तुल० राज० चोसठ; (प्रा० पैं० १, ५१)। —सण्णा स्त्री० (सं० चतुः संज्ञा) आहारादि; (जस० ३, १७, ८)। —सत्थिय वि० (सं० चतुःशास्त्रीय) चार शास्त्रों का; (क० ८, १७, ८)। —सय वि० (सं० चतुर+शत) चार सौ; (व० ३, ५, ६)। —हत्तर, हत्तरि वि० (सं० चतुः सप्तति) चौहत्तर; (महा०)।

चऊ—वि० (सं० चतुर्>प्रा० चउ चार; (प्रा० पैं० २, १५८)।

चकमक—पुं० (तुर्की चक़माक=एक प्रकार का कड़ा पत्थर जिस पर चोट पड़ने से बहुत जल्दी आग निकलती है) चमक, जाज्वल्यमान होना; "धर चकमक कर बहु दिसि चमले," अर्थात् घोड़ों के चँवर बहुत सी दिशाओं में चकमक करते हैं; (प्रा० पैं० १, २०४)।

चक्कंक—पुं० व्यक्ति-विशेष-नाम; (प० च० १०, ३)।

चक्क—पुं० (सं० चक्र>प्रा० चक्क) कुम्हार का चाक; तुल० म० चाक; (भ०)। २. समूह, "इमो पक्खिरायस्स चक्कस्स चक्को;" अर्थात् यह (बालक) पक्षिराज (गरुड़) के समूह के लिए भी चक्र (सुदर्शन) के समान है; (जंबू० ५, ५, ६)। २. आभूषण-विशेष, (संधि० २, ३, ७)। ३. न० पहिया; (प्रा० पैं० १, ६, ६)। ४. न० गाड़ी का पहिया; (ण० ७, १, ७)। ५. आयुध-विशेष; (प० च० ७१, २१; जस० १, २, ११)। ६. सुदर्शन चक्र; (जंबू० ५, ५, ६)। —चिक्कार पुं० (सं० चक्र+चीत्कारः) चक्र का शब्द; (क०)। —धर पुं० (सं० चक्रधर) चक्रवर्ती, "नवनिहिरयणाहिउ चक्कधरु, छक्खंडवसुंधरि धरियकरु," अर्थात् (वह मंत्री) आदि तो

निधियों का रत्नाकर तथा षट्खंड वसुंधरा से कर लेने वाला चक्रवर्ती था; (जंबू० ३, ३, १२)।

चक्कणाह—पुं० (सं० चक्रनाथ) चक्रवर्ती; (जस० २, २५, १४)।

चक्कद्धअ—पुं० चक्रपुर (चक्कपुर) का राजा; (प० च० २६, ४)।

चक्कपअ—पुं० (सं० चक्रपद) (छंदशास्त्र में) वर्णिक छंद का नाम (प्रा० पैं० २, १५२)।

चक्कपाणि—पुं० (सं० चक्रपाणि>प्रा० चक्कपाणि) चक्रवर्ती राजा, सम्राट; (व० ४, १२, ५)।

चक्कय—पुं० (सं० चक्रवाक>प्रा० चक्कवाग, चक्कवाय) चक्रवाक पक्षी; (प० च० १८, ११, ४)।

चक्करे—स्त्री० (सं० चक्राकार) चक्राकार भौंरी; (की० ४, ३२)।

चक्कल—वि० (सं० चक्रक>प्रा० चक्कल) १. गोलाकार, वर्तुल; (प० च० २६, १०, ७)। २. चक्राकार, विशाल; (सुदं० ३, १०, १३; जंबू० १, १२, ५)। —य वि० गोलाकार; (प० च० २३, १, ६)।

चक्कलत्त—पुं० (सं० चक्रत्व) परिधि, "चक्कलत्तु जोयणाइं, पंचवीसदूणियाइं;", अर्थात् उस पर्वत की परिधि पचीस के दुगुने अर्थात् पचास योजन है; (क० ५, १, ६)।

चक्कलिय—वि० (सं० चक्रवत्) भ्रांत; (भ०)।

चक्कलु—पुं० (छंदशास्त्र में) चतुष्कल गण; (प्रा० पैं० १, ८५))।

चक्कवइ¹—पुं० (सं० चक्रवर्तिन्>प्रा० चक्कवइ) छह खण्ड भूमि का अधिपति राजा, सम्राट्; (ण० ४, ४, १३)। —विहूइ पुं० चक्रवर्ती विभूति; (जंबू० ३, ३, १६)।

चक्कवइ²—पुं० (सं० चक्रपति) मध्य गुरु चतुष्कल जगण (ISI); (प्रा० पैं० १, २५-६६)।

चक्कवट्टि—वि० (सं० चक्रवर्तिन्) चक्रवर्ती, आसमद्रान्त भूमि पर राज्य करने वाला; (जस० ३, २६, ६)। चक्कवट्टी —वि० चक्रवर्ती (जंबू० ३, ८, ७)।

चक्कवाय—पुं० (सं० चक्रवाक) चकवा; (जंबू० ५, ७, ३)।

चक्कवाल—पुं० (सं० चक्रवाल) चक्रवाल नामक नगर; (क० ५, २, १)।

चक्कह—पुं० (सं० चक्र>प्रा० अप० चक्क) समूह; (की ४, १४)।

चक्कहय—पुं० (सं० चक्रवाक) चक्रवाक चक्रवाक पक्षी; (प० च० २४, १, ३)।

चक्कहर—वि० (सं० चक्रधर) चक्रधारी; "वलएउ चक्कहरु सुरणाहु णहे खयरु;" अर्थात् बलदेव, चक्रधारी नारायण, सुरेंद्र, आकाशगामी खेचर; (क० ६, ७, ६)। चक्कहरा–वि० चक्रधारी "तह चक्कहराणय-वोमयरा; (व० २, १५, ३)।

चक्का—पुं० (सं० चक्र>प्रा० चक्क) व्यूह-रचना; (की० ४, १७४)।

चक्काई—स्त्री० (सं० चक्रवाकी>प्रा०

चक्कवाई) चक्रवाक पक्षी की मादा; (प० च० १६, ५१)।

चक्काउह—पुं० (सं० चक्रायुध) श्रीविष्णु; (व० १०, १६, ८)।

चक्काय—पुं० (सं० चक्रवाक>प्रा० चक्कवाग, चक्कवाय) चक्रवाक पक्षी; (प० च० ३४, ३२)।

चक्कार—पुं० विद्याधरवंशीय राजा; (प० च० ५, २६३)।

चक्कालंकियकर—पुं० (सं० चक्र+अलङ्कृत+कर) चक्र से अलंकृत हाथ; (व० २, १२, ११)।

चक्कावट्ट—पुं० (सं० चक्रावर्त) चक्र की तरह गोल आकार का; (सं० रा०)।

चक्कि—पुं० (सं० चक्री) त्रिपृष्ठ नामक नृप; "चक्किहें कमलंमलपुरा णविया;" (व० ६, ७, ११)।

चक्की—स्त्री० १. (सं० चक्रवाकी> प्रा० चक्कवाई) चक्रवाक पक्षी की मादा; (प० च० १६, ५४)। २. स्त्री० (सं० चक्री) गाथा छंद का भेद; (प्रा० पैं० १६१)। ३. पुं० (सं० चक्रिन्) चक्रवर्ती; (जंबू० ३, ४, ७)।

चक्केसर—पुं० (सं० चक्र+ईश्वर) चक्रेश्वर, चक्रवर्ती, चक्र या मंडल का राजा; (जंबू० ३, ७, १०)।

चक्कोरअच्छि—वि० (सं० चकोराक्षी) चकोर पक्षी के समान नेत्र वाली; (क० ७, ४, ८)।

√चक्ख—(दे०) आस्वादन करना, स्वाद लेना, चखना। —इ सक० (ण० ४, २, १६; महा० २, १६, १४)। चक्खंत—कृ०; (जंबू० ६, ५, १२)। चक्खिज्जइ— आ+स्वादय् (कर्मणि) (जंबू० १, ८, ६)। चक्खिवि—पू० का० क्रि०; (ण० ६, २, ११)। तुल० राज० चखणो, चखबो; चाखणो, चाखबो।

चक्खु—पुं० न० (सं० चक्षुष्>प्रा० चक्खु) नेत्र, आंख; तुल० राज० चख्खु; (प्रा० पैं० २, १५१)। —गम्म (सं० चक्षुर्गम्य) दृष्टिगोचर; (जस० ४, १७, १७)। —नाम पुं० आठवें कुलकर; (प० च० ३, ५३)।

चङ्गय—वि० (दे० चङ्ग>प्रा० चंग) चारु, सुंदर, मनोहर; (प० च० १४, ३, ५)।

चच्चंकिय—वि० (सं० चर्चा+अङ्कित) चर्चित; (जस० २, ११, ५)।

√चच्च—(सं० चर्च्) चर्चित करना; (स० रा०)।

चच्चर—न० (सं० चत्वर>प्रा० चच्चर) १. चौहट्टा, चौरास्ता; (महा० ६८, ३; जस० ४, २१, १४)। २. चौक; तुल० गु० चोक; (सुदं० २, १०, २७)। ३. रास-स्थान; (प० च० ५६, १४, ६)। चच्चरु—न० (सं० चत्वर) चबूतरा; (रि० १, ८) —वंत वि० (सं० चत्वरवत् अथवा चर्चरी+वत् sportive) चौराहों सहित; "भमेविणु पट्टणु चच्चखंतु" (क० ३, २०, ७)।

चच्चरि—स्त्री० (सं० चर्चरी>प्रा० चच्चरी) १ गीत-विशेष, एक प्रकार का गान; (सं० रा०)। २. एक प्रकार नृत्य; (सुदं० ७, ५, ६)। —यबंध पुं० (सं०

चर्वरी+वन्ध) चच्चरिया नामक छंद; (जंबू० १, ४, ५)।

चच्चरी—स्त्री० (सं० चर्चरी) चर्चरी नामक वर्णिक छंद का नाम; (प्रा० पैं० २, १८४)। २. (सं० चञ्चरीक) भ्रमरी; (व० २, ३, १४)।

चच्चिअ—वि० (सं० चर्चित) जिसकी चर्चा हो, विचारित; (क० ४, २, ४; जस० २, ११, ५)। चच्चिय—वि० चर्चित; (जस० १, १४, १; जंबू० ६, २, ५)।

चच्चिक्किअ—वि० (दे०; प्रा० चच्चिक्क) विलिप्त, चंदन आदि सुगंधित वस्तु का लेप किए हुए; "चच्चिक्को" (पड्; प० च० ४०, २, ७)। २. विभूषित मण्डित; (प० च० ३४, १०, ४)।

चच्चिक्क—पुं० न० (दे०; प्रा० चच्चिक्क) विलेपन, चंदनादि सुगंधित वस्तु का शरीर पर लेपन; (प० च० ५१, ४, ३)। २. वि० विभूषित, मंडित; (दे० ना० मा० ३, ४)।

चच्चिकिय—वि० (सं० चर्चा+कृत) चर्चित, चर्चा किया गया; विचार किया गया; (जस० १, ६, ५)।

चच्चिय—वि० (दे०) त्यक्त; (व० १, १२, १३)।

चञ्चलु—वि० (सं० चञ्चल>प्रा० चंचल) चपल, चंचल; (हे० ४१८, ३)।

चञ्चरिय—पुं० (सं० चञ्चरीक>प्रा० चंचरीअ) भ्रमर; (प० च० ४०, १६, ६)।

चट्ट—पुं० (दे०) शिष्य; तुल० गु० चेलो; (संधि० ३, ८, ६)।

चट्टण—वि० (दे०) नाशक, भक्षक; (जस० ४, २३, १४)।

चट्टणु—क्रि० भू० का० (दे०; प्रा० √चट्ट=चाटना) चाटना "दरणहघट्टणु अहरसुचट्टणु," धीरे-धीरे नख घट्टन करती, व अधर चाटती; (सुदं० ८, २८, १०)।

चट्टुय—पुं० न० (दे०) यष्टी, चटुला, लाठी, छड़ी, डंडा, गदा; "चालुय चट्टुयचूरियउ;" अर्थात् तब उसे झारी और चटुए से कुचला गया; (जस० ३,५,१४)।

चडक्क—पुं० न० (दे०) शस्त्र-विशेष; (प० च० ७, २६)। २. चक्र; (प० च० ७, २८)। ३. विद्युत; (प० च० ४३, १५, ६)।

√चड—(प्रा० चड) आरुढ़ होना चढ़ना; (सं० रा०)। —इ अक० (हे० ४२१; महा० २, १६, १; सं० रा०)। चडंति—क्रि०, व०,ब० चढ़ रही हैं; (ण० १, १८, ३)। —न्ति कृ० चढ़ती हुई; "दीसइ रोमावलि छुड्डु चडन्ति" अर्थात् 'धीरे-धीरे चढ़ती हुई रोमावलि ऐसी दिखाई देती है'; (प० च० १०, ३, ४)। चडन्तहों—कृ० चढ़ते हुए, (प० च० ३, २, ८)। चडाइयइ–(कर्मवाच्य) चढ़ाया जाता है; (सं० रा० ५२)। चडाविय—पू० का० क्रि०, सं० आ+√रुह्+क्त्वा; चढ़कर; (सुदं० १०, १०, १५)। चडिउ—भू० का० चढ़े; (सं० रा० १४४); चडाहुँ—भू० का० चढ़ेंगे; (हे० ४३९)। चडि—क्रि०, व०, चढ़ता है; (पाहु०)। तुल० म० चढ़णें। चडिउ—पू० का० क्रि०, चढ़कर; (जंबू० ७, ५, ७)। चडिग्गो—

क्रि० भू० का० चढ़ चढ़ा; "समसीस-दाणो विमाणं चडिण्णो;" (राजा द्वारा) आशीर्वाद देने के साथ ही विमान में चढ़ गया; (जंबू० ५, ५, १४)। चडियउ—क्रि०, भू० का० (प्रा० चड) १. आरूढ़ हुआ; "सो णवजोव्वणें चडियउ" —वह नव यौवन में आरूढ़ हुआ; (सुदं० ३, ६, २०)। २. प्राप्त हुआ; "पुरिससीहु णवजोव्वणे चडियउ"—वह पुरुषसिंह नव यौवन को प्राप्त हुआ, (ण०, ३, ४, २)। चडीणा—कृ० चढ़कर; (क० ३, ६२)। चडु—क्रि०, आ०, चढ़ो; "हय जोत्तें महारह-वीढें चडु"—अर्थात् घोड़े जोतो और महारथ की पीठ पर चढ़ो;' (प० च० १६, २, ५; ण० ३, ६, १४)। चडेइ—क्रि०, व०, चढ़ना; (परम० २, ४६)। चडेप्पिणु—पू० का० क्रि० आरूढ़ होकर, प० च० ३, १२, ६)। चडेंवि—पू० का० क्रि० चढ़ कर; (प० च० ११, ३, ६)।

√चडचडचड—(सं० चडचडाय्) 'चड-चड' आवाज करना। चडचडचडन्त—कृ० (प० च० २६, ५१)।

चडण—न० (दे०) आरोहण; तुल० गु० चडाण; राज० चडणो, चडबो; (संधि० १२, ५, २२)। चडणं—न० चढ़ना; (सु० ६–८)।

चडफडंत—कृ० (दे०) तड़फड़ाते हुए; (जंबू० १०, १४, १३; क० ८, २०, ५)।

चडयम्म—पुं० (सं० चण्डकर्मन्) राज-पुरुषनाम-विशेष; (जस० १, ११, ६)।

चडयर—पुं० (दे०) समूह; (प० च० २, ४८)।

√**चडाव**—(दे०) चढ़ाना; (उ० व्य० प्र० ६, २२)। तुल० राज० चढ़ाणो। —वि पू० का० क्रि०, चढ़ाकर; (प० च० १६, १); स्थापित कर; (प० च० १४, ६, २)। —हि क्रि०, आ०, चढ़ाइए, "तं तुहुँ मि चडावहि णियरकव्वि;" (ण० १, ४, १)। चडाविइ—क्रि०, व०, चढ़ाना; (महा० ३०, १२, ६)। चडावियउ—भू० का०, चढ़ाया हो; "इसउ कम्व करउ (व) णुहुं चडावि-यउ;' अर्थात् 'जैसे कामदेव ने कर में धनुष को चढ़ाया हो;' (रा० ३१)। चडावए—क्रि०, व० चढ़ाता है; (कौ० २, २०३)। चडाविउ—क्रि०, भू० का० चढ़ा लिया, "अङ्कें चडाविउ तिहुअण-णाहउ" —त्रिभुवननाथ को इंद्र ने गोद में ले लिया; (प० च० २, ३, १)। चडाविय—पू० का० क्रि० चढ़ाकर, "तो सिरसिहरि चडावियहत्यें;" अर्थात् अपने सिर पर हाथ चढ़ाकर; (जस० ३, २६, ६)। चडाविवि—पू० का० क्रि० चढ़ा-कर; (व० ४, १०, ६)।

चडावल्लि—वि० चंद्रावती, स्त्री-नाम; (प्रा० गु० ५, ४८)।

चडाविय—वि० (दे०) आरोहित, चढ़ाया हुआ, ऊपर स्थापित; (क० १, १२, ४)।

चडि—पू० का० क्रि० (सं० मृद् का धात्वादेश चड्ड=मर्दन करना, मसलना) मसल कर, मर्दन कर; (कौ० ४, १४६)।

चडिअ—वि० आरूढ़, चढ़ा हुआ; (क० ३, १, ३)।

चडिउत्तरिय—पुं० (दे०) आरोह+अवरोह; चढ़ाई (ऊपर की ओर बढ़ना) और उतार (ऊपर से नीचे की ओर आना); तुल० गु० चडऊतर; (प्रा०-गु० २३, १)।

चडिण्ण—वि० (दे०) आरूढ़, चढ़ा हुआ; (सुदं० ५, ५, ३)। —अ वि० आरूढ़; (क० ३, १, ३);

चडिय—वि० (दे०) आरूढ़, चढ़ा हुआ; (सुदं० ६, १०, ५)।

चडिर—वि० (दे०) आरोहणशील; (जस० १, ५, १३)।

चडुय—वि० (सं० चटुल>प्रा० चडुल) चंचल, चपल; (ण० २, ११, ११)। —म्म पुं० (सं० चाटुकर्म) खुशामद; (सुदं० ८, १६, ५)।

चडुलंग—वि० (दे०) अति चपल अंग वाले "पट्ठ तुरंगो अइ चडुलंगो;" (व० ४, २२, २)। चडुलङ्ग—वि० चंचल (घोड़ा); (प० च० ५, ३, ६)।

चड्डण—न० (दे०) मर्दन; (भ०; प० च० ५१, ६, ५)।

चड्डिय—वि० (दे०) आरूढ़; (प० च० २६, ११, ४)। २. पिष्ट, मृदित; (प० ३७, ६, ५)।

√चढ—(दे०; प्रा० चड) चढ़ना। —इ क्रि०, व० (दे० सा० दो०)।

चढिले—भू० का० चढ़ा; तुल० मगही चढल; (कंमरिया, चर्यापद)।

चणय—पुं० (सं० चणक>प्रा० चणअ) चना, अन्न-विशेष; (म० २, ५५, १०; भावना संधि-प्रकरण)।

चतारि—वि० (सं० चत्वारि>चत्तारि (प० च०) चतारि, चार; (म० क०)।

चत्त—वि० (सं० त्यक्त>प्रा० चत्त) छोड़ा हुआ, परित्यक्त; (प० च० १७, १३, १; ण० १, ४, ५; म० १, १, ४)।

चत्तयं—वि० (सं० त्यक्त+क) अपात्र; "कुसुइ कुसीलु कुतवसिहिं रत्तउ तं जाणसु कुवत्तयं," अर्थात् जो झूठे शास्त्रों, कुत्सित आचारों तथा कुत्सित तपस्वियों में अनुरक्त रहता है उसे कुपात्र जानो; (ण० ४, ३, २)।

चत्तारि—वि० (सं० चत्वारि) चार; (ण० १, ८, ३; जस० ३, ५, २)।

चत्थरि—स्त्री० (दे०) हास्य, विनोद; "रइविभल चत्थरि रयइ जाम णियइ-इएं दिट्ठिय दुट्ठ ताम;" अर्थात् जब वह काम-विह्वल होकर उस देवर से विनोद कर रही थी, तभी उस दुष्ट को उसके पति ने देख लिया; (जस० ४, २५, १८)।

चन्दकांत शिला—स्त्री० (सं० चन्द्रकान्त शिला) गृहोद्यान में बैठने या लेटने के लगाई जाने वाली शिला; (की० २, २४५)।

चन्दणहा—स्त्री० (सं० चन्द्रनखा) शूर्पणखा, स्त्री-विशेष का नाम, (प० च० ४०, १८, १)।

चन्दद्धु—पुं० (सं० अर्धचन्द्र) चंद्रमा जब आधे-आकार का दिखाई पड़ता है; (प० च० १४, ५, ३)।

चन्दमसु—पुं० (सं० चन्द्रमस् > प्रा० चंदम) चंद्रमा, चाँद; (प० च० १५, ११, ७)।

चन्दहासु—पुं० (सं० चन्द्रहास) चमचमाती तलवार, रावण की तलवार का नाम; (प० च० १०, १, १)।

चन्दिणय—न० (दे०, प्रा० चंदिण) चंद्रिका, चंद्रप्रभा; तुल० गु० चांदरणुं; (प० च० १०, १, ६)।

चन्दिय—स्त्री० (सं० चन्द्रिका > प्रा० चंदिआ) चंद्र की प्रभा, ज्योत्स्ना; (प० च० ६, ७, ४)।

चन्द्रचूड—पुं० (सं० चन्द्रचूड) शिव, शंकर; (की० १, ८६)।

√चप्प—(प्रा० चप्प) दबाना, कुचलना; (जस० २, १८, ७)। —मि क्रि० व०, ए० (प० च० २६, ४, ३)। —रि पू० का० क्रि० (सं०√आक्रम का धात्वादेश चप्प=आक्रमण करना, दबाना) १. दबाकर; (की० २, १२२)। २. आक्रमण करके; "चोर चप्परि घर लिज्झिअ," —अर्थात् चोरों ने आक्रमण करके घर ले लिए (अथवा उन पर अधिकार जमा लिया); (की० २, १०)। —वि पू० का० क्रि० आक्रमण करके; (ण० ३, १६, २)। —हि (विधि०) पदार्पण कीजिए; "जिह मणु तिह घर पंगणु चप्पहि" —जिस प्रकार आपने मेरे मन में प्रवेश किया है, उसी प्रकार घर के आँगन में पदार्पण कीजिए; (ण० ५, २, १)। चप्पिउ—भू० का० चाँप दिया; (ब० ५, ६, ६)। चप्पिलिऊ—भू० का० चांप लिया, दबा लिया; "महराअन्हि चप्पिलिऊ; (की० ४, २३६)। चप्पेवि—पू० का० क्रि०; (प० च० ४६, १०, १०)।

√चप्प—(दे०) चबाना; (म० २, १५, १)।

चप्प—पुं० (सं० चाप) धनुष, कमान; (क० ३, १८, ३)।

√चप्पड—पुं० (दे०) घी, तेल इत्यादि पदार्थ, जो चुपड़ा जा सके (तैलाभ्यङ्ग); (जस०)।

चप्पण—न० (दे०) आक्रमण; (जंबू० ७, ६, १०)। —य पुं० दबाना, कुचलना; (प० च० २१, १, १०)।

चप्परि—क्रि० वि० (सं० चपल) चपलता से, फुरती से, तेजी से; (जस० ४, २४, ८)। शीघ्रता से; "चारि दिसि चप्परि छुट्टइ;" —चारों दिशाओं को दबाते हुए शीघ्रतर चले; (की० ४, ६२)।

चप्पिय—वि० (दे०) सं० आक्रान्त, प्रा० चप्पिय; दबाया हुआ; तुल० म० चापणें, चोपणें; (प० च० ४, १३, ६; क० ८, २०, ८)।

चप्पिलिऊ—क्रि० (सं० आक्रम् का धात्वादेश प्रा० अप० चप्प) चाँप लिया, दबा लिया, आक्रांत कर लिया; (की० ४, २३६)।

चमक—स्त्री० (सं० चमत्कृत्) प्रकाश, ज्योति; (की० ४, ७१)।

चमक्क—पुं० (सं० चमत्+कृ) चमत्कृति, चमत्कार, तुल० म० चमक; (भ०; जस० १, ८, १)। —अ पुं० विस्मय, चमत्कार; (संधि० १७, ३, २)।

√चमक्क—(सं० चमत्+कृ>प्रा० चमक्क, चमक्कार) आश्चर्यान्वित करना। —इ सक० विस्मित करना; (ण० ३, १३, १; सुदं० ७, १२, १६)। —इ अक० चमकना, चौंकना; (क० ८, ६, ३)।

चमक्कय—वि० (सं० चमत्कृत>प्रा० चमक्किअ) विस्मित; (सं० रा०)।

चमक्करि—वि० (सं० चमत्कृत>प्रा० चमक्किअ) चमत्कृत कर देने वाली; (सं० रा०)।

चमक्किय—वि० (सं० चमत्कृत>प्रा० चमक्किअ) विस्मित, चमत्कृत; (ण० २, ६, ४)।

चमट्ठि—न०+न० स्त्री० (सं० चर्मन् +अस्थि>प्रा० चम्म+अट्ठि) चर्म और अस्थि; (ण० ४, ४, १०)। —सेस पुं० (सं० चर्मास्थिशेष) चर्म और अस्थि का बचा हुआ भाग; (जस० १, ६, ७)।

चमर—पुं० न० (सं० चामर>प्रा० चमर) चामर, चँवर; (जस० १, १२, ६; जंबू० १, १२, ५)। २. गुरु अक्षर; (प्रा० पैं० २, १३६)। ३. प्राणी-विशेष; (पं० च० ३, ८२)। ४. पूँछ, पुच्छ; (जस० २, ३, ६)।

चमराणिल—पुं० (सं० चामर+अनिल) चँवर की वायु; (जंबू० ३, ७, ७)।

चमल—पुं० न० (सं० चामर) चँवर, चामर; (प्रा० पैं० १, २०४)।

√चम्प—(प्रा० चप्प) कुचलना, दबाना; तुल० गु० चांपवुं, चम्पेंवि—पू० का० क्रि०; (प० च० ३०, ८, ४)।

चम्पय—न० (सं० चम्पक>प्रा० चंपय) चम्पक कुसुम, चम्पा का फूल; (हे० ४४४, ४)।

चम्पिज्जइ—क्रि० (कर्मवाच्य) चाँप ली जाए, ग्रहण कर ली जाए, (हे० ३९५, ६)।

चम्म—न० (सं० चर्मन्>प्रा० चम्म) चर्म, चमड़ा; खाल; तुल० म० चमड़ी; (प्रा० पैं० २, १०७; महा० ६८, १०, २)। —इँ न० चाम; (ण० ४, १५, ६)। —चक्खु पुं० न० (सं० चर्मन+चक्षुप्) चर्म चक्षु, "डज्झउ माणुसु जं चम्मचक्खु;" अर्थात् धिक्कार है इस चर्म-चक्षुओं से दिखने वाले मनुष्य को; (जस० ४, १, ७)। —जट्ठि स्त्री० (सं० चर्मन् +यष्टि) चाबुक, चर्मयष्टि; (जंबू० ४, २१, ७)। —पडलि स्त्री० (सं० चर्म पटल) चर्म के रूप में आवरण रूप वस्तु-(व० ६, १५, १)। —यर पुं० (सं० चर्मन्+कर>प्रा० चम्मयर) मोची, चमार; (दे० ना० मा० २, ३७)।

चम्मयाइँ—न० (सं० चर्मन्+क) चर्म "फाडियाइँ चम्माइयँ;" (क० ७, १०, ८)।

√चय—(सं०√त्यज्) छोड़ना, त्याग करना। —इ सक० (सं० त्यजति); (भ०)। चइवि—पू० का० क्रि० (सं० त्यज्>प्रा० चय, चइअ) त्याग कर, छोड़ कर; (सं० रा०)। चएप्पिणु—पू० का० क्रि० च्युत होकर; (ण० ६, १६, १३); "एवहिं सत्तमदियहें चएप्पिणु," अर्थात् अब यहाँ से सातवें दिन

च्युत होकर; (जंबू० ३, १०, ७)।
चएवि—पू० का० क्रि०, "वत्युसरूउ चएवि जहिच्छएँ;" अर्थात् वस्तु के स्वरूप को छोड़कर; (जंबू० ६, १, १४)।
चएसइ—भ० का०, "घरवासु चएसइ दिक्ख लएसइ," अर्थात् जो गृहवास छोड़कर दीक्षा लेगा; (जंबू० ४, ६, १५)।
चयंत-कृ० (सं० त्यज्+शतृ) (जंबू० २, ७, ११)।
√चय—(सं०√च्यु) मरना।—इ अक० (सं० च्यवते); (भ०)।
चयण—न० (सं० त्यजन) त्याग, परित्याग; (जंबू० १०, २१, ८)।
चयारि—वि० (सं० चत्वारि) चार; (ण० ६, १२, ६; क० ६, २३, ३; प०-च० २१, ४, ८)।
चर—पुं० (सं० प्रा० चर) दूत; 'एरिसु भणेवि चर-लोयणेहि,' (विला०)।
चर—(सं०√चर्>प्रा० चर) गमन करना, चलना, जाना; (जस० १, २१, २)।—इ सक० (सं० चरति>प्रा० चरइ) भक्षण करना; (प० च० १, १०, ८)। चरंत—कृ० (सं० चर्+शतृ); (जस० ३, १६, ६)। चरन्तहों-कृ० आचरण करते हुए; (प० च० ३, २, ८)। चरिज्जइ—(कर्मणि) पालन किया जाता है; (जंबू० २, २, ११)। चरिवि—पू० का० क्रि० (सं० चरित्वा) चर कर; (परम० २, १३६)। चारी—भू० का० परिभ्रमण करने लगे, चक्कर काटने लगे; (की० ४, १७०)। चारीआ-भू०-का० गमन करते थे, घूमते थे; (की० २, २१८)।
चरड—पुं० (सं० चरट>प्रा० चरड) चोर; (भ०)।
चरण—न० (सं० प्रा० चरण) भक्षण; (प० च० ३७, ४, ३)। २. पद, (जस० १, १, २)। ३. छंद का चरण, आदिगुरु चतुष्कल, भगण (ऽ॥); (प्रा० पैं० १०, २)। ४. व्रत आदि अनुष्ठान, (जस० १, १, १२)।—ग्ग पुं० (सं० चरण+अग्र) पैरों का आगे का भाग, (जंबू० १, १, १)।—जुयल पुं० (सं० चरण+युगल) पैरों का जोड़ा; (जस० १, १, २)। —सेव स्त्री० (सं० चरण+सेवा>प्रा० चरण+सेवा स्त्री०) चरणों की सेवा; (की० १, ८६)।
चरमतणु—पुं० (सं० चरम+तनुस्) चरमशरीरी, जंबूस्वामी; (जंबू० ७, १, २१)।
चरमसरीर—पुं० (सं० चरमशरीर) अंतिम शरीर; (जंबू० ४, ३, ८)।
चरखनाच— पुं० फ़ा० चर्ख=मुसलमानी दरवेशों में घूमघूम कर किया जाने वाला घिन्नीदार नृत्य; आकाशमण्डल (आकाश के चरखे के समान घूमने की कल्पना की गई थी, +नृत्य) नृत्य-विशेष चक्राकार घूम-घूमकर किया जाने वाला नृत्य; (की० २, १८७)।
चरिअ—न० (सं० चरित्र>प्रा० चरित्त) चरित्र, आचरण; (जंबू० १, १८, २२)।
चरिउ—न० (सं० चरित्र>प्रा० चरित) चरित; (व० १, १, २)।
चरित्त—न० (सं० चरित्र>प्रा० चरित्त) स्वभाव, प्रकृति; व्यवहार; (की०

१, ५८; प्रा० पैं० १, १४४)। २. आचरण; (जस० १, ३१)।

चरिम—वि० (सं० प्रा० चरम) अंतिम, अंत का; (भ०)।

चरिय—पुं० (सं० चरित्र>प्रा० चरित्त) चरित्र, आचरण; (जस० ३, १७, १६)। —करण पुं० चरित्र-रचना; (जंबू०)। —सय पुं० (सं० चरित्रशत) सैकड़ों चरित्र; (जंबू० ४, ४, ६)।

चरिया—स्त्री० (सं० चर्या>प्रा० चरिया) अनुष्ठान, "मज्झण्णहों चरियाएँ पईसइ;" —मध्याह्न में उन्होंने चर्या के लिए (नगर में) प्रवेश किया; (जंबू० ३, ६, ६)।

चरीय—स्त्री० (सं० चर्या>प्रा० चरिया) अनुष्ठान; (ण० ६, २, १, २४)।

चरु—पुं० (सं० चरु+क) नैवेद्य, देवता को समर्पित की जाने वाली भोज्य वस्तु; (जस० २, ७, ७३)। —अ; (जस० २, १५, १)। —व नैवेद्य; (व० ७, १३, ३)।

चरुवइ—न० (सं० चरु) चरुआ, चरुवा, मिट्टी के चौड़े मुँह का पात्र या बरतन; (व० ४, २१, १४)।

√चल—(√चल्) चलना। —इ अक० (सं० चलति) (प्रा० पैं० २, १६३)। —उ (विधि०) (जंबू० ५, १२, १२)। चलंति; (प्रा० पैं० २, १७१)। चलंत—कृ० (प्रा० पैं० २, १७१)। चलंता—कृ० (सं० चल्+शतृ) चलते-चलते; (व० ३, ११, १)। चलंति—कृ० (सं० चलित>प्रा० चलिअ, √सं० चल्>प्रा० चल, चलंत) चलती हुई; (सं० रा०)। चलंतु—कृ० (सं० चल्+शतृ; विधि०); (जंबू० ६, १४, १)। चलन्ता—कृ० चलने वाली; "ललन्ता चलन्ता पखालन्त पाआ;" अर्थात् विलासपूर्वक चलने वाली (अप्सराओं के) पैर रक्त में सन गए; (की० ४, १६५)।

चल—वि० (सं० प्रा० चल) अस्थिर, (जस० १, ३, १७)। २. चंचल; (की० ४, २२३)। पुं० १. वानर योद्धा; (प० च० ५७, ११)। २. राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३६)।

चलचलंति—क्रि० (ध्व०) चरचराती थी, चर-चर की ध्वनि होना "अंतइं णिग्गंतइं चलचलति," —आँतें और अँतड़ियाँ निकल-निकलकर चरचराती थीं, (ण० ४, १५, ५)।

चलझलक्क—स्त्री० (सं० चञ्चल+झल्लिका) चंचल झलक; (सुदं० ३, १२, २)।

चलण—पुं० (सं० प्रा० चरण) पाद, पाँव; (ण० १, ११, ५; सं० रा०)। —ग्ग पुं० (सं० चरणाग्र) पैर का अग्रभाग; (प० च० १, ५, ६)। —च्छवि स्त्री० (सं० चरण+छवि) पैरों की शोभा, (जंबू० ४, १४, ५)। —युग न० (सं० चरण+युगल> प्रा० चरण+जुलल) चरणों का जोड़ा; (जंबू० ४, ४, १३)।

चलयर—वि० (सं० चल+तर) अधिक चलायमान या अस्थिर, चंचलतर; (व० १, १४, ३)।

चलरमण—वि० स्त्री० (सं० चञ्चलर-

मणा) चंचल सुंदर तरुण स्त्री; (जंबू० ४, १६, ८)।

चललोयण—पुं० (सं० चल+लोचन) अस्थिर या चंचल नेत्र; (व० ५, २, १०)।

चलवल—वि० (सं० प्रा० चलाचल) अस्थिर, चंचल; (ण० ६, १८, ३)।

√चलवल—(ध्व०) चलवल होना, "कामिणिकरचामरचलवलंतु," अर्थात् कामिनियों के हस्तगत चामरों द्वारा चलवल हो रहा था; (जस० ४, ७, ५)। —इ कृ० चिलविलाता हुआ, "अहवइ चलवलइ भुअङ्ग-थट्टु" —चिलविलाता हुआ साँपों का समूह हो; (प० च० १३, ४, ७)। चलवलंत— कृ० चंचल; तुल० गु० चळवळतुं; (संधि० ४, ८, ४)।

√चल—(सं० चल्>प्रा० चल) चलना। चलल—भू० का० चला, (की० २, १७६)। चलिअ—भू० का० चला; (की० ३, ६५)। चलिय—क्रि० भू० का० (सं० चल्) चली; (सं० रा०)। —उ भू० का० चला; (जंबू० ७, १३, २)।

चलण—पुं० (सं० चरण>प्रा० चलण) चलना, गति; (क० २, ४, ५)।

चलवलय—वि० (सं० चलित) चंचल; तुल० गु० चळवळ; (प० च० ४०, १६, ५)।

चलवलिय—वि० (सं० चलित) चंचल; (जंबू० १, ६, ८; म० २, ५२, १५)।

चलवाल—पुं० (सं० चलित+वाल) चलायमान बाल या केश; (जस० २, ३१, ३)।

चलसिह—स्त्री०[(सं० चञ्चल+शिखा) चंचल शिखा या चोटी, "पालंवहिँ झंपिर चलसिहकंपिर वाणरु व्व कीलहिँ वडुय," अर्थात् अपनी (पूंछ के समान) चंचल शिखाओं को नचाते हुए वटुक वानरों के समान क्रीड़ा करते हैं; (जंबू० २, ४, १२)। टि०–चोटी और यज्ञोपवीत द्विजों के प्रधान चिह्न है।

चलालि—वि० (सं० चलित) चंचल; (रि० ८, ५)।

चलाव—क्रि० (सं० चालयति) चलाना-फिराना, हिलाना, डुलाना, चलनी में रख कर छानना; (उ० व्य० प्र० ४६–१)।

चलाविय—भू० का० (सं० चालित) चला रहा था; "लुलावियसुंडु चलावियकण्णु;" अर्थात् वह हाथी सूंड डुला रहा था और कान चला रहा था, (क० २, २०, ४)।

चलिअ—वि० (सं० चलित) चंचल; (जस०; जंबू० १, ११, ६)।

चलिय—वि० (सं० चलित) चंचल; (जस० १, ३, ६)।

√चल्ल—(सं० √चल्) चलना, गमन करना; तुल० राज० चलणौ; (जस० ३, २१, ३)। —इ व० (सं० चलति> प्रा० चल्लइ) चलना; (प० च० १६, १७, १०; ण० ३, १७, १४)। चल्लिउ क्रि०, भू० का० (सं० चलित>प्रा० चलिअ) चल पड़ा; (ण० १, ६, ६)। चल्लिय—भू० का० चल पड़े, "चल्लिय हय गय रह सुहड जेत्थु;" अर्थात् घोड़े,

हाथियों, रथों व सुभटों सहित चल पड़े; (जस० १, २६, ७)।

चल्ल—१. वि० (सं० प्रा० चल) चंचल; (सं० रा०)। २. पुं० (दे०) कटिवस्त्र; (सं० रा०)।

चवढण—पुं० (दे०) भयंकर आक्रमण, चपेट; (प० च० १३, ८, १)।

चवण—पुं० (सं० चर्वण) १. चबाना, खाना, २. चखना; (सं० रा०)।

चव—(सं० √वच् > प्रा० वच) कहना बोलना; तुल० राज० चवणौ, चववौ। —इ सक० (क० १०, ८, ३; रि० २, ४)। चवन्त व० कृ० (प० च० ११, १४, ८)। चविय—वि०, कहा हुआ (ण० ६, १, ६; प० च० ४, ५, ८)। चवप्पिणु—व० कृ० (प० च० ८, ११, ७)। चव्वंति—कृ० (सं० चर्व् + शतृ, स्त्रियाम्) कहती हुई; (जंबू० ७, १, ६)।

चवण—न० (सं० च्यवन > प्रा० चवण) च्युत होना, चुआव, टपकाव, गतिशीलता, गति, "अण्ण वि जे हवंति सुरसुंदर कंदहिं चवणसमएँ दुक्खाउर;" अर्थात् दूसरे भी जो सुंदर देव होते हैं, वे भी देवलोक से च्युत होते समय दुःखातुर होकर क्रंदन करते हैं; (जंबू० २, २, ६)।

चवल—वि० (सं० चपल > प्रा० चवल) चंचल, अस्थिर; (क० ६, १८, ३)। —गइ पुं० व्यक्ति-विशेष-नाम; (प० च० २८, २५)। —च्छी वि० चपल नेत्र वाली; (व० ४, ११, १५)। —य वि० (सं० चपल + क) चंचल; (जंबू० १, ८, ३)। —वेग पुं० व्यक्ति-विशेष-नाम; (प० च० २८, २६)।

चविअ—वि० उक्त, कथित, कहा हुआ; (जंबू० ५, १३, १३)।

चवेड—पुं० (सं० चपेट) चपेटा, तमाचा, चाँटा, (सुदं० ४, ५, २१)।

चवेडा—स्त्री० (सं० चपेडा > प्रा० चवेला, चविला, चविडा) थप्पड़; (संधि० ३, ११, ६)।

चव्विअ—वि० (सं० चर्वित) चबाया हुआ; (जंबू० ५, ११, ५)।

चसअ—पुं० (सं० चशक > प्रा० चसग, चसय) दारू पीने का प्याला; (जंबू० ४, १७, ५)।

चहरी—वि० (दे०) कुचली हुई, रौंदी हुई, मर्दित, "कीलिरसबरनियंविणिचहरी;" अर्थात् क्रीड़ा करती हुई शबर सुंदरियो से वह थोड़ी सी मर्दित हो रही थी; (जंबू० ५, १०, १०)।

चहु—वि० (सं० चतुर्) चार; (संधि० १३, १, १)।

√चहुट्ट—(दे०) निमग्न होना, चपेटा जाना, फँसा हुआ होना, "दुब्बलढोरिव पंकें चहुट्टइ;" (जंबू० ८, ११, १०)।

चहुट्ट—वि० (दे०) निमग्न, लीन; (सुदं० ८, ६, ५)।

चहोड—पुं० (दे०) १. पिशुन, चुगलखोर; २. एक मनुष्य जाति; तुल० म० चहाड; (भ०)।

चांग—वि० (दे०) रम्य, सुंदर, मनोहर। चांगउ, (रा० ४); चांगिम्व (रा० ६); चांगा, (रा० ६)।

चांगुरे—वि० (दे० प्रा० चंग) १. सुंदर २. वि० (दे० चक्कल) विशाल, विस्तीर्ण; "कटक चांगुरे चांगुरे;" अर्थात् अश्व सेना सुंदर और विस्तीर्ण थी; (की० ४, ४२)।

चांद—पुं० (सं० चन्द्र>प्रा० चंद) चंद्रमा। चांद; (रा० ३५)। चांदहि रा० २१); चांदा (रा० २५); चांदु (रा० ३३)।

चांदन—न० (सं० चन्दन>प्रा० चंदण) चदन की लकड़ी," चांदन क मूल इंधन विका;" (की० ३, ६८)।

चांद्रणउ—न० (सं० चन्द्रिका) चंद्रिका, चंद्र-प्रभा; तुल० गु० चांदरणु; राज० चांदणू, चांदणी; (प्रा० गु० १२, ३२)।

चाअ—पुं० (सं० त्याग) १. त्याग; (सुदं० १, १, १४)। २. औदार्य; (जस०)। ३. चाप; (जंबू० ४, १३, ५)।

चाइ—वि० (सं० त्यागिन्) १. त्याग करने वाला; (ण० ३, १२, ४)।—उ वि० त्यागी; (सुदं० ३, २, ४)। २. पुं० त्याग; (दे० सा० दो०)।

चाउंडरावण—पुं० विद्याधर वंशीय राजा; (प० च० ५, २६३)।

चाउ—पुं० (सं० चाप) धनुष; (व० ५, १०, १; प्रा० पैं० २, १६१)।

चाउत्थ—वि० (सं० चतुर्थ) चौथा; (ण० ६, २०, ३)।

चाउद्दिसु—पुं० (सं० चातुर्दिशम्) चार दिशाएँ; (प० च० २६, ८, ६)।

चाउरंग—पुं० (सं० चतुरङ्ग) चतुरंगिणी सेना; (क० ४, २, ५; जंबू० ५, ६, १५)।

चाउल—पुं० (दे०) तंडुल, चावल; तुल० गु० चावल; राज० चाउळ; (प० च० २४, १२, ६; दे० ना० मा० ३, ८)।

चावण्णहलइं—न० (सं० चातुर्वर्ण्यफलानि) चार वर्णों के फल; (रि० ४, ४)।

चाओ—पुं० पंचकल गण का नाम; (प्रा० पैं० १, १६)।

चाख—क्रि० (सं० चष् खाना; तुल० राज० चाखणो; (उ० व्य० प्र० ६-६)। —त सक० (सं० चषति) खाना, चबाना; (उ० व्य० प्र० ६-११)।

चाखु—पुं० (सं० चक्षुष्) आँख, नेत्र; (रा०)।

चाचरि—स्त्री० (सं० चर्चरी) चाँचर, फाग, हर्ष-क्रीड़ा; (प्रा० गु० १६, २६)।

चाट—क्रि० (दे० चट्ट) चाटना, मिटा देना; तुल० राज० चाटणो; (की० २, २०४)।

चाडुय—पुं० (सं० चट+क>प्रा० चाडुअ) प्रशंसा, खुशामद; (सुदं० १, ८, ५; भ०)।

चाणउरि—पुं० (सं० चाणूर) मल्ल विशेष, जिसको श्रीकृष्ण ने मारा था, "संख-चक्क-गय पहरण-धारा, कंस-नराहिव-कय-संहारा। जिणि चाणउरि-मल्लु वियारिउ, जरासिंधु वलवंतउ धाडिउ;" (प्रा० गु० ८, ४)।

चाणूर—पुं० (सं० चाणूर>प्रा०

चाँणूर) दैत्य का नाम, जिससे श्रीकृष्ण ने मारा था; (प्रा० पैं० १, २०७)।

चाण्डाल— पुं० (सं० चाण्डाल) १. अत्यंत नीच जाति, डोम; २. कुकर्मी, पतित मनुष्य; "ब्राह्मण क यज्ञोपवीत चाण्डाल हृदय लूर;" (की० २, ११०)।

√चाप—(सं० आक्रम का धात्वादेश प्रा० चप्प) आक्रमण करना; "फणिवइ लागु गोहारि चाप जमराए कोप कइ;" अर्थात् चाहे शेषनाग उसकी गोहार पर क्यों न आ जाए और चाहे यमराज भी क्रोध करके आक्रमण क्यों न कर दे; (की० ४, १५१)। चापन्ते—कृ० दबाते हुए,(की० ४, १६)।चापि—पू० का०—क्रि० (सं० आक्रम्>प्रा० अप० चप्प= आक्रमण करना, दबाना) दबा कर, आग्रह पूर्वक; (की० ३, १४७)। तुल० राज० चापड़णो, चापड़बो।

चाप—क्रि० (सं०√चप् सान्त्वने) सांत्वना देना, ढाढस देना; (उ० व्य० प्र० ६-२३)।

चांपि—क्रि० वि० आग्रहपूर्वक; "चापि कहओ सुरुतान के छाँटे करओ उपाए;" अर्थात् मैं आग्रहपूर्वक सुलतान से कहूँगा कि शीघ्र कोई उपाय करें; (की० ३, १४७)।

चामर—पुं० न० (सं० प्रा० चामर) चँवर; (जस० २, ७, ७)। चामरु-चामर; (व० १, १२, १०)। २. (छंद-शास्त्र में) प्रथम द्विकल गण (ऽ) का नाम; (प्रा० पैं० १, २१)।

चामरगाहिणी—वि० (सं० चामरग्राहिन् >प्रा० चामरगाहि) चामरग्राहिणी, चामर वीजने वाली स्त्री; (भ०)।

चामरोह—पुं० (सं० प्रा० चामर+ ओघ) चँवर अथवा चमरों के समूह, "सया चामरोहेण विज्जिज्जमाणो" — आप पर सदैव चमरों के समूह डुलते रहते हैं, (ण० २, ११, २)।

चामियर—न० (सं० चामीकर>प्रा० चामीअर) सोना, सुवर्ण; (प० च० २६, १६, ४)। चामीयर—न० सोना, स्वर्ण; "णं दीणहं चामीयरणिबंधु," अथवा मानो दीन-जनों के लिए स्वर्णदान का प्रबंध किया हो, (जस० १, ८६, २)।

चामुंडचंड—वि० (सं० चामुण्डचण्ड) भयंकर; (जस० १, १६, १०)।

चाय—पुं० (सं० त्याग) त्याग, "चाएण कण्णु जणदिण्णचाउ;" त्याग में वे कर्ण के समान लोक में दानशील हैं; (ण० १, ४, ६)।

चायय—पुं० (सं० चातक>प्रा० चायग) पक्षी-विशेष; (जस० ३, १, १६)।

चार—पुं० (दे०) १. इच्छा, अभिलाषा; (भ०)। २, आचरण, ३. प्रियाल वृक्ष; पियार का पेड़ जिसके फलों के बीज को चिरौंजी कहते हैं; (छंदू० ५, ८, ३३)।

चारग—पुं० (सं० चारक>प्रा० चारग) कारागार; (संधि० २, ११, ६; दे० ना० मा० ३, २१)।

चारण—पुं० (सं० प्रा० चारण) ऋद्धि-विशेष धारक; मनुष्य-जाति-विशेष; (जंबू० ३. २६, ६)। चारणाइ—चारण

+आदि; (जंबू० ३, ६, ४)। —रिद्धि स्त्री० चारणऋद्धि; (जंबू० ३, ५, २)।
चारत्त—पुं० (सं० चारुत्व) सुंदरता; (ण० १, १७, ४)।
चारभड—पुं० (सं० चारभट>प्रा० चारभड) शूर पुरुष, योद्धा, सैनिक; (भ०)।
चारहडी—स्त्री० (सं० चारभटी) शौर्य-वृत्ति, शौर्य; (संधि० २, १, ६; जंबू० ७, ७, ५; म० १, ३७, १०)।
चारि—वि० (सं० चत्वारि) चार; (प्रा० पैं० १, ४७; की० ४, २५५)। चारी; (प्रा० पैं० २, २७)।
चारिउ—पुं० खादापित, भोजन; (जस० ३, ६, १५)।
चारित्त—न० (सं० चारित्र>प्रा० चारित्त, चरित्र) १. आचरण, २. व्यव-हार, (जंबू० १, ३, ५)। चारित्तु; (महा० ६८, ८)।
चरित्तगुत्ति—स्त्री० चारित्रगुप्ति, स्त्री-विशेष; (ण० १२, ८)।
चारित्तण—पुं० (सं० चारिन्+त्व> प्रा० चारि+त्तण) विचरण; (ण० ३, ३, १२)।
चारिदहा—वि० (सं० चत्वारि+दशन्) चौदह; (प्रा० पैं० १, ३१)।
चारिम—वि० (सं० चतुर्थ) चौथा; (प्रा० पैं० १, १३३)।
चारिया—क्रि० भू० का० (सं० चारित) चराया (fed); (क० ८, २, २)।
चारु—वि० (सं० प्रा० चारु) सुंदर; (प्रा० पैं० २, १५३)। पुं० राक्षस सुंद का पुत्र; (प० च० ११२, १३)। —कला स्त्री० सुंदर कला; (की० ४, २२६)। —चक्खु पुं० न० सुंदर नेत्र; (व० ३, ३, २)।
चारुपयपंति—स्त्री० चारुपदपंक्ति छंद; (सुदं० ८, २५, १७)।
चारुसिरी—स्त्री० सुग्रीव की पुत्री का नाम; (प० च० ४७, ५४)।
चारुसेणि—रड्डा छंद का भेद (प्रा० पैं० १, १३६)।
√चाल—(सं० चालय्>प्रा० चाल) चलना, हिलाना; (भ०)। चालिअ—भू० का० चला दिया; (की० ४, ४)। २. क्रि० (सं० चल्) चलना, गमन करना; (रा० १४)।
चालण—न० (सं० चालन) चलना, हिलाना; (जस० २, १७, १५)।
चालिय—वि० (सं० चालित>प्रा० चालिय) चलाया हुआ, हिलाया हुआ; (प० च० १, ७, १; जस० २, २४, १)।
चालिस—वि० (सं० चत्वारिंशत्) चालीस, (प्रा० पैं० २, २१४); चालीस (प्रा० पैं० १, ११०)।
चालुय—पुं० (दे०) चलनी, झारी; "चालुयचट्ट दुयचूरियउ," अर्थात् तब उसे झारी और चटुए से कुचला गया; तुल० म० चाळणी; (जस० ३, ५, १४)।
चाव—पुं० (सं० चाप) धनुष, आयुध-विशेष; (प० च० ५३, १०६; प्रा० पैं० २, १६६; ण० ७, १२, ८)।

चावइ—स्त्री० (सं० चातकी) चातक पक्षी का स्त्री०; (सं० रा०)।

चास—स्त्री० (दे० चासा) चास, जोत, वाह (हलस्फाटित भूमि रेखा); (दे० ना० मा० ३१)।

चास—पुं० (सं० चाष>प्रा० चास) पक्षी-विशेष; (जस० ३, १, १०)।

√चाह—चाहता है, इच्छा करना; (उ० व्य० प्र० १२, २६)। —इ चाहना, वांछना; (सुदं० ७, १४, ४)। —इ (भ०)। तुल० म० चाहणें। —हि आ०, म०, ए०, तुल० राज० चाहवो—वो; (प्रा० पैं० १, ६)।

√चाह—(दे०) देखना; "हियडइ आंखि घरेविणु चाहइ;' (प्रा० गु० ५, ४)। —इ. सक०; (रा० १८)।

चाहणा—वि०, कर्त्तकारक, ए०, इच्छा करने वाला, चाहने वाला; तुल० राज० चाहणो; "गरुडवखाहणा बलिभुअणचाहणा," अर्थात् गरुड के श्रेष्ठ वाहन (पर बैठने) वाले, बलि नामक दैत्य के भुवन (राज्य) की इच्छा करने वाले; (प्रा० पैं० २, ७५)।

चाहन्ते—वि० चहेते, प्यारे; (की० २, २१६)।

चाहि—स्त्री० खबर; (कहा मानसर चहा सो पाई; पद्मावत ६५, १)। "फरमाण भेल- 'कओण चाहि;" अर्थात् बादशाह का आदेश हुआ-'क्या खबर है' ? (की० २, १८)।

चाहिउ—भू० का० कामना की, "सविसेसु मियंकें चाहिउ;" अर्थात् मृगांक ने विशेष रूप से (उसके लिए शुभ) कामना की; (जंबू० ६, ११, १०)।

चिचइय—वि० चर्चित, भूषित; (जस० ४, ७, १७)। मण्डित; (जंबू० १, ६, ८)।

√चित—(सं० चित्) चिंता करना; (प्रा० पैं० १, २०७)। —इ, व० (सं० चिन्तयति) चिन्ता करना; (भ०)। चिन्तइ—व० (की० १, २१)। चिन्तवइ—क्रि० चिन्तयति (भ०)। चिंति—विध्यर्थक चिंता, करो; (रि० ५, १३)। चिंतिवि—पू० का० क्रि०; (जंबू० ६, ५, १)। चिन्तेप्पिणु—पू० का० क्रि० चितन करके; (प० च० १३, ४, २)।

चिंता—स्त्री० (सं० चिन्ता) किसी दुःख की आशंका से उत्पन्न होने वाली सोच, फिक्र; (भ०)। रत्न, (व० १, १०, १४)। —मणि पुं० व्यक्ति-नाम (प० च० २०, १४२)। —वण्ण वि० चिंतापन्न; (प० च० २३, ३, १)। —सल्ल न० (सं० चिन्ता+शल्य) चिंता का कोई भी कारण जो हृदय दहलाने वाला या दुःखप्रद हो; (जंबू० ६, १५, ८)। —सायरु पुं० (सं० चिन्ता+सागर) चिंता का समुद्र; (व० ४, ४, ६)। —सिहि स्त्री० (सं० चिन्ता+शिखि) चिंता रूपी अग्नि; (व० २, २१, ५)।

चिंतिय—वि० (सं० चिन्तित>प्रा० चिंतिय) चिंतायुक्त, जिसे चिंता हो; (सं० रा०, पद्; जस० २, ८, ५)।

चिंघ—न० (सं० चिह्न>प्रा० चिंघ) ध्वजा, पताका, केतु; (ण० १, ७, ८;

जस० १, ३, १७) । २. वस्त्रखण्ड; तुल० म० चिंधी; राज० चिंधपट्ट (निशानयुक्त पट्टा); (जस० १, १६, ३) । —वंस पुं० (सं० चिह्न+वंश) ध्वजवंश, ध्वजा का बाँस; (व० ५, १६, ४) ।

चिंघइय—वि० (सं० चिह्नित>प्रा० चिंधिय) निशान लगा हुआ, संकेतित; (सुदं० ८, २६, १२) ।

चिंघण—न० (सं० चिह्न>प्रा० चिंध) चिह्न, निशानी; (सि० २, २२) ।

चिंघाल—वि० (सं० चिह्नवत्) चिह्न-युक्त; (प० च० १०६, ७) । वि० (दे०) १. रम्य, २. मुख्य (दे० ना० मा० ३, २२) ।

चिंधिय—न० (सं० चिह्न>प्रा० चिंध) वस्त्राखण्ड (पटच्चर); (क० १, १७, ८) ।

चिंक्कमइ—पू० का० क्रि० (सं० चङ्क्रम>प्रा० चंकम) चंक्रमण करता हुआ, इधर-उधर घूमता हुआ; (ण० १, १०, १३) ।

चिक्का—स्त्री० (दे०) १. थोड़ चीज; २. हलकी मेघ-वृष्टि; (दे० ना० मा० ३, २१) ।

चिक्क—वि० (दे०) १. थोड़ा, अल्प; २. न० छींक; (पड्) ।

चिक्कण—वि० (सं० प्रा० चिक्कण) स्निग्ध, चिकना; तुल० राज० चीकणो; (सं० रा०) ।

√चिक्कम—चलना, (walk move about) —इ व०, प्र० पु०, ए०, (प० च० ५६, १४, ४) । —न्ति प्र० पु०, व० (प० च० २६, ४, ८) ।

चिक्कार—पुं० (सं० चीत्कार>प्रा० चिक्कार) चिल्लाहट, हल्ला, शोर, गुल; (क० ३, १४, २) । चिक्कार का शब्द, "रहवर चलिय चक्कचिक्कारें" —रथ चक्रों की चिक्कार सहित चल रहे थे, (ण० ७, १, ७) ।

चिक्कारियं—स्त्री० (सं० चीत्कृतं) चीत्कार, अनुकरणमूलक शब्द; "तेण आसागरेहिं पडंतेहिं चिक्कारियं" इससे सागर पर्यंत गिरते हुए दिग्गजों ने चीत्कार छोड़ी; (सुदं० ११, १८, १६) ।

चिक्खअण—वि० (दे०) सहिष्णु; (पड्) ।

चिक्खल्ल—पुं०(दे०) कीच;(दे० ना०-मा० ३, ११) ।

चिक्खिल्ल—न०(दे०) कर्दम, पंक, कीच (जस० ३, १, १७) ।

चिच्च—वि० (दे०) चिपटी नाक वाला; (दे० ना० मा० ३, ६) । २. न० रमण, संभोग, रति; (दे० ना० मा० ३, १०) ।

चिच्चर—वि० (दे०) चिपटी नाक वाला; (दे० ना० मा० ३, ६) ।

चिच्चि—पुं० [सं० अर्चि=(आग की) ज्वाला] अग्नि; (जस० १, १३, ६) । —जाल पुं० (सं० अर्चि+जाल) अग्नि की ज्वाला; (क० १, १७, ७) ।

चिञ्चइय—वि० (दे०) अलकृत; (चिंचअ=मण्डय् हे० प्रा० व्या० ४, ११५) (प० च० ३२, ३, १३) ।

√चिट्ठ—(√तिष्ठ) ठहरना । चिट्-

ठन्ति; (प्रा० पैं० २, १५१)। २. बैठना; (हे० ३६०)।

चिड—पुं० (सं० चटक:) चिड़िया, पक्षी; तुल० राज० चिड़ौ (स्त्री० चिड़ी); (संधि० ११, ५, ६)।

√चिण—(सं० चिञ् चयने>प्रा० चिण) १. इकट्ठा करना, फूल आदि तोड़कर इकटठा करना, चुनना। —इ सक० (सं० चिनोति>प्रा० चिणइ); (ण० १, १०, ६)। चिणिऊण, चिणेऊण—संबंधक कृ०; (षड्)। —णेवि पू० का० क्रि०; (क० ४, १३, ५)। तुल० राज० चुणणौ, चुणबौ।

चिणिउ—क्रि०, भू० का०, चिनवाया, "पइं सुंदरु कीयउ महो मणिउ। जं लयणु णरेसर पइं चिणिउ;" अर्थात् तूने मेरे मन की सुंदर बात की, जो नरेश्वर, तूने लयण को चिनवाया; (क० ५, १३, २)।

चिण्ण—वि० (सं० चीर्ण=कृत, संपादित) १. पुष्ट; (जस० १, ११, ५)। २. अनुष्ठित, आचरित; (सुदं० ३, १२, ६)। चिन्न; (भ०)।

चिण्ह—न० (सं० चिह्न) आदि लघु त्रिकल गण का नाम (IS); (प्रा० पैं० १, १८)। —धउ न० (सं० चिह्न+ध्वज) निशानी वाला ध्वज; (क० ३, १६, ६)। चिन्हे—न० चिह्न; (की० ४, १०९)।

चित्तंग—पुं० (सं० चित्राङ्ग) नाम-विशेष; (भ०)। — (सं० चित्राङ्गद) नृप-नाम; (जस० ४, २७, ९)। —उ पुं० चित्रांगद नामक योद्धा; (व० ४, ५, ८)। —य चित्रांगद (विद्याधर); (व० ५, २०, ३)।

चित्त—वि० (सं० चित्त>प्रा० अप० चित्त) विविध, नाना प्रकार के, अनेक प्रकार का; (सं० रा०; की० २, २४०)। न० (सं० प्रा० चित्त) मन अन्त: करण (पाहु०)। न० छंद-विशेष (सुदं० ८, २४, ६)। न० (सं० चित्र>प्रा० चित्त) तस्वीर, आलेख्य; (ण० ३, १, ११)। —यार पुं० (सं० चित्रकार) चित्र बनाने वाला; (ण० ८, ५, १०)। —साल स्त्री० चित्रशाला (सि० १, २२)। चित्तु—न० चित्त (जस० २, १२)। —हरो वि० (सं० चित्त को हरने वाला; (प्रा० पैं० २, ९४)।

चित्तकूड—पुं० (सं० चित्रकूट) पर्वत-विशेष; (प० च० ३३, ४)।

चित्तगय—पुं० चित्रगत नामक राजा; (व० ३, २५, ८)।

चित्तदाउ—पुं० (दे०) मधु-पटल, शहद की मक्खियों का छत्ता; (दे० ना० मा० ३, १२)।

चित्तधया—वि० चित्त को हरण करने वाली "उत्तउ कोमलवाएँ छंदइं चित्तधयाएँ;" अर्थात् चित्त को हरण करने वाली कोमल वाणी से कहा; (क० ८, ३, ८)।

चित्तप्पभ—पुं० खरदूषण का मंत्री; (प० च० ४४, १२)।

चित्तभाणु—पुं० विद्याधर राजा; (प० च० १७, १०२)।

चित्तमास—पुं० (सं० चैत्रमास) चैत मास, फागुन के बाद और वैसाख से

पहले का महीना; (प्रा० गु० ३५, ६)।
चित्तय—पुं० व्याघ्रजाति-विशेष; तुल० म० चित्ता; (जस० १, १०, ४)।
चित्तयर—पुं० (सं० चित्रकार) चित्र बनाने वाला; (जस० १, २०, ७)।
चित्तरह—पुं० सीता-स्वयंवर में उपस्थितराजा-विशेष का नाम; (प० च० २८, १०१)।
चित्तल—वि० (दे०) १. विभूषित, २. रमणीय; (दे० ना० मा० ३, ४)। पुं० (दे०) अस्त्र-विशेष; (व० ४, ५, ८)।
चित्तलिय—वि० (सं० चित्रलिप्त) चित्रमय; चित्रित, "महुराउरि मणिचित्तलियहम्म," अर्थात् जहाँ के भवन मणियों से चित्रित हैं; (क० ६, ४, ८; १, ४, ६)।
चित्तलेहपद्धडिया—स्त्री० चित्रलेखापद्धडिया छंद; (सुदं० २, ६, १२)।
चित्तविग्रअ—वि० (दे०) परितोषित; (पड्)।
चित्तसेण—पुं० (सं० चित्रसेन) व्यक्तिनाम-विशेष; (जस० ४, २७, २५)।
चित्ता—स्त्री० चित्रा नाम की प्रथमा पृथिवी; (व० १०, २२, ७)।
चित्तारिक्ख— पुं० मुनि-विशेष-नाम; चौदहवें तीर्थंकर के पूर्वभव गुरु (प० च० २०, १९)।
चित्तावहारी—वि० (सं० चित्तापहारी) चित्त का आहरण करने वाला; (व० ३, २६, ३)।
चित्ताहार—पुं० (सं० चित्ताहार) मानसिक आहार, "चउविह देवहँ चित्ताहारो;" अर्थात् 'चतुर्निकाय' देवों का मानसिक आहार होता है; (व० १०, ३५, ३)। चित्ताहिलासु—पुं० (सं० चित्त+अभिलाषा) मन की अभिलाषा; "चित्ताहिलासु जसु णाय-हीणु;" –जिसके मन की अभिलाषाएँ न्याय-नीति विहीन हैं; (व० ५, ५, ३)।
चित्तुस्सवा—स्त्री० सीता-पूर्वभवनाम; (प० च० ३०, ७०)।
चित्तशाली—स्त्री० (सं० चित्रशालिका, चित्रशाला) वासभवन में भित्ति-चित्र बनाए जाते थे, इसी से वह स्थान चित्रशालिका कहलाता था; (की० २, २४५)।
चिद्दविअ—वि० (दे०) विनाशित; (दे० ना० मा० ३, १३)।
चिब्भड—न० (सं० चिर्भिट) खीरा, ककड़ी; तुल० गु० चीभडुं (दे० ना० मा० ६, १४८)।
चिमिण—वि० (दे०) रोमाञ्चित, पुलकित; (दे० ना० मा० ३, ११)।
चिय—पुं० (सं० चिता>प्रा० चियका, चियगा) मुर्दे को फूंकने के लिए चुनी हुई लकड़ियों का ढ़ेर; तुल० गु० चेह; (प्रा० गु० ५, १५)। चिया—स्त्री० चिता; (जस० १, १३, ६)।
चियारि—वि० (सं० चत्वारि) चार; (संधि० ११, १, १०)।
चिर—न० १. (सं० चिरम्>प्रा० चिर) दीर्घ काल तक; (जस० ४, ५, ६; की० १, ६१)। चिरु—न० चिरकाल; (व० २, १६, २)। २. (छंदशास्त्र

में) आदि लघु त्रिकल गण का नाम (IS) (प्रा० पैं० १, १८)। —कव्व न० (सं० चिरकाव्य) प्राचीन काव्य; (जंबू० ६, १, ३)। —गउ वि० (सं० चिरगत >प्रा० चिरगय) जिसे गए बहुत दिन हो गए हो; (सं० रा०)। —जम्म पुं० न० (सं० चिर+जन्मन्>प्रा० चिर+जम्मण) पूर्व जन्म; (जंबू० २, ५, १२)। —ज्जिउ पाउ पुं० (सं० चिरार्जित पाप) चिर संचित पाप; (व० १, ६, ६)। —जीविअ वि० (सं० चिरजीवित >प्रा० चिर+जीविअ) दीर्घकाल तक जीवित; (जस० १, ६, १३)।

चिरडी—स्त्री० (दे०) वर्ण-माला; (दे०-ना० मा० १, ६१)।

चिरया—स्त्री० (दे०) कुटी, झोपड़ी; (दे० ना० मा० ३, ११)।

चिरयाल—न० (सं० प्रा० चिरकाल) दीर्घ काल; (भ०)।

चिरहिल्ल—पुं० वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, ८)।

चिराउस—पुं० (सं० चिर+आयुस्) दीर्घकालीन जीवन की अवधि; (जस० ४, ३१, ११)।

चिराणअ—वि० (सं० चिरन्तन) चिरातन, पुरातन, पुराना; (क० ७, ३, ४)। चिराणउ—वि० पुराना, "भासइ णरवरु कहहि चिराणउ;" (जस० ३, ३२, ७)। चिराणय—वि० पुरातन, प्राचीन; (भ०)।

चिरालअ—पुं० चिरालय; आदि लघु त्रिकल गण का नाम, (IS) (प्रा० पैं० १, १८)।

√चिराव—(सं० √चिरय्) १. विलम्ब करना, २. आलस्य करना; (भ०)। —इ अक० (सं० चिरायति) देर करता है; (रि० ५, १)। चिरावेह; (काल)। "मा णे चिरावेहि; (प० च० ३, १२६)।

चिराविय—वि० (सं० चिरायित) जिससे विलम्ब किया हो वह; २. विलम्बित, रोका गया; ३. न० विलम्ब; (प० च० १०५. १०१)।

चिरिंचिरा—स्त्री० (दे०) जलधारा, वृष्टि; (दे० ना० मा० ३, १३)।

चिरिक्का—स्त्री० (दे०) १. मशक, २. अल्प वृष्टि; ३. प्रातःकाल; (दे०-ना० मा० ३, २१)।

चिरिचिरा—(दे०) देखो चिरिंचिरा; (दे० ना० मा० ३, १३)।

चिरिडिहिल्ल—न० (दे०) दही, दधि; (प० च० ३४, ११, ३)। चिरिड्डिहिल्ल; (प० च० ३७, १, ४)।

चिलाउ—पुं० किरात, किरात देश में रहने वाली म्लेच्छ जाति, भिल्ल; (ण० ५, १२, २)।

चिलाय—पुं० (प्रा० चिलाअ) किरात, मनुष्य-जाति-विशेष, (संधि० १०, २, ५, जस० २, २६, ७)।

चिलिच्चिल—वि० (दे०)। आर्द्र, गीला; (जंबू० ५. ७, ८)।

चिलिसावण—वि० (दे०) जुगुप्साकर, जुगुप्सनीय; "चिलिसावणु परयिउ थाणु तेहिं;" अर्थात् जुगुप्सनीय चिह्न मात्र शेष रह गए; तुल० म० चिळसवाणें; (जंबू० २, ५, १३)।

चिलिसिज्ज—क्रि० (दे०) घृणा करना। —इ सकं० (सुदं० ६, ४, ३)।

चल्ल—पुं० (दे०) १. बाल, बच्चा, लड़का; (दे० ना० मा० ३, १०)। २. पुं० वृक्ष-विशेष; (प० च० ६६, १६)। ३ पुं० (सं० प्रा० चिल्ल) पुष्प-विशेष; (प० च० ६६, १६)।

चिल्लणदेवि—स्त्री० चेलनादेवी, स्त्री-विशेष; (ण० १, ७, ६)।

चिल्लिरी—स्त्री० (दे०) मच्छर, चिल्लर, जूँ; "चिल्लरी मशकः" (दे० ना० मा० ३, ११)।

√चिव—(सं० चीवते) १. ढाँकना, पहनना, ओढना, २. लेना, ग्रहण करना, ३. पकड़ना; (उ० व्य० प्र० ४६—२३)।

चिविडा—स्त्री० (दे०) गंध-द्रव्य-विशेष, (दे० ना० मा० ३, ७१)।

चिव्विल—वि० (दे०) परित्याज्य; (जंबू० ६, १, १०)।

चिहुं—वि०(सं० चतुर्>प्रा० चउ)चार; "आसि पास-जिण भवण-पसिद्धउ। तासु सीसु चिहुं नाण-समिद्धउ;" (प्रा० गु० १, ३)।

चिहुर—पुं० (सं० चिकुर>प्रा०चिउर) बाल, केश; (ण० १, ११, ३)। चिहूर (सुदं० ४, ११, ११)। —भार पुं० (सं० चिकुरभार) जूड़ा; (जस० २, ७, ४)।

चीक्कि—स्त्री० (दे० चिक्का) हलकी वृष्टि, फुहार, सूक्ष्म छींटा; (की० ४, १८५)।

चीख—(दे०) आस्वादन करना; "जीभें चाख" –जिह्वया खादति। खाद्द भक्षणे, अथवा भक्ष अदने।" (उ० व्य० प्र० ६- ६)।

चीण—पुं० कोचीनपत्तन "सिरिपव्वयं गंगावाडीसमं पंडि-दविडंध्र-चीणं-सकाण्णाड-कंचीपुरं कुंतलं;" अर्थात् श्रीपर्वत, गंगवाडी, और उसके साथ पांड्य, द्रविड़, आंध्र देश एवं चीन (कोचीनपत्तन), कर्नाटक, कांचीपुर और कुंतल का भ्रमण किया; (जंबू० ६, १६, २)। चीण—पुं० २ देश का नाम;(प्रा० पैं० १, १६८)। चीण-पुं० मनुष्य-जाति-विशेष; (सचि० १०, २, ६)। चीण-चीर (सं० चीन-चीर) चीनाङ्शुक, चीनी रेशमी वस्त्र; (संवि० ४, ६, २)।

चीणय—वि० चीनदेशीय; (प० च० ४२, ६, ६)।

√चीन्त—(सं० चिति स्मृत्याम्; चिन्तयति) चिंता करना; (उ० व्य० प्र० ८, ३)।

चीन्तवंतः—वि० (सं० चिन्तावत्) चिंता-पर; चिन्तवंतहं; (रा० ७)।

चीयउ—न० (सं० चिता) मुर्दे को जलाने के लिए बनाया हुआ लकड़ी का ढ़ेर; (रि० ७, १२)।

चीया—स्त्री० (सं० चिता) शव को जलाने के लिए ऊपर-नीचे रखा गया लकड़ियों का ढ़ेर; (जंबू० १०, २६, ८)।

चीरंचल—पुं० (सं० चीराञ्चल) सेना में युद्ध सूचक झंडा; "गयणगइणा भमाडेइ चीरंचलं;" अर्थात् गगनपति ने सेना में युद्ध सूचक झंडा घुमाया, (जंबू० ७, ४, १४)।

चीर—न० (सं० प्रा० चीर) वस्त्र का टुकड़ा; (जस० २, ५, ८)। —खंड पुं० (सं० चीर+खण्ड) वस्त्र का टुकड़ा; (जस० ४, १५, १३)।

चीरि—क्रि०, आ० मारो-काटो "दौरि चीरि जिउ हरित;," अर्थात् दौड़ो, मारो-काटो, जीवित पकड़ो; (की० २, १८१)।

चीरिया—स्त्री० (सं० चीर+क) वस्त्र, "कडिवद्धचलचीरियाचिंधजालाइँ;" अर्थात् उनकी कमर पर वस्त्र के टुकड़ों की ध्वजाएँ बंधी हुई थीं; (जस० १, १६, ३)।

चीवर—न० (सं० प्रा० चीवर) वस्त्र, कपड़ा; (जस० २, १८, ५)।

चुंचु—स्त्री० (सं० चञ्चु>प्रा० चंचु) चोंच; (ण० २, ११, १२)।

चुंचुअ—पुं० (दे०) शेखर, मस्तक का आभूषण; (दे० ना० मा० ३, १६)।

चुंचुणिआ—स्त्री० (दे०) १. गोष्ठी की प्रतिध्वनि, २. रमण, रति, संभोग; ३. इमली का पेड़, ४. द्युत-विशेष; यूका, क्षुद्र कीट-विशेष; (दे० ना० मा० ३, २३)।

चुंचुमालि—वि० (दे०) आलसी, प्रत्येक कार्य को देर से करने वाला, देर लगाने वाला, टालने वाला; (दे० ना० मा० ३, २३)।

चुंचुलि—पुं० (दे०) १. चोंच, २. चुल्लू; एक हाथ का संपुटाकार; (दे० ना० मा० ३, २३)।

चुंचुलिअ—वि० (दे०) १. निश्चित, २. न० तृष्णा; सस्पृहता; (ईर्ष्या सहित) (दे० ना० मा० ३, २३)।

चुंचुलिपूर—पुं० (दे०) चुल्लू; (दे० ना० मा० ३, १८)।

चुंछु—वि० (दे०) परिशोषित, सुखाया हुआ; (दे० ना० मा० ३, १५)।

चुंधल—वि० (दे०) चुंधापन (अक्षि-रोग) युक्त "चुंधलणेत्तउ दीहरदंतउ" —चौंधे नेत्र, लंबे दाँत; (सुदं० ६, १५, ६)।

चुंपालय—पुं० (दे०) गवाक्ष, वातायन; (प० च० २६, ८०)।

√चुंब—सक० (सं० चुम्ब्>प्रा० चुंब)—इ व०(सं० चुम्बति)चुंबन लेना; (भ०)। —वि० पू० का० क्रि०;(जंबू० ७, १३, ७)। चुंबंत-कृ० (सं० चुम्बत); (जस० १, १२, ८)। चुंबिज्जन्त—कृ० (सं० चुम्ब्यमान) (भ०)। चुंबेंवि—पू० का० क्रि० चुंबन लेकर; (प० च० ६, १४, ६)।

चुंबअ—पुं० (सं० चुम्बक) चुंबक पत्थर (क० ६, १२, २)।

चुंबण—न० (सं० चुम्बन>प्रा० चुंबण) चुंबन, चूंबा; (जस० १, १२, १)। चुंबणु; (सं० रा०)।

चुंबिअ—वि० (सं० चुम्बित) १. चुंबा लिया हुआ; (जस० २, १३, १६)। २. न० चुम्बन; (दे० ना० मा० ६, ६८)।

चुंबियासु—वि० [सं० चुम्बित+आस्य (मुख)] मुख को चूमने वाला; (जंबू० ३, १२, २)।

चुंविर—वि० (सं० चुंम्बितृ) चुम्बन करने वाला; (भ०)।

चंभल—पुं० (दे०) शेखर, अवतंस शिरो-भूषण;(ण० ४,१०,७; दे० ना०—मा० ३, १६)। चुम्भल; (प० च० ४६, ४, ६)।

चुअ—वि० (सं० च्युत>प्रा० चुअ) क्षरित, "कवोलचुएण मएण झरंतु;" अर्थात् (वह) कपोलों से मद बहा रहा था; (क० ४, ६, ५)। २. गिरे हुए; (जस० १, २२, १०)।

चुअमाला—स्त्री० चूतमाल, (छंदशास्त्र में) आदि लघु त्रिकल का नाम (।S); (प्रा० पैं० १, १८)।

चुक्क—पुं० (दे०) मुट्ठी, मुष्टि; (दे०-ना० मा० ३, १४)।

√चुक्क—(सं० भ्रंश का धात्वादेश चुक्क) (संधि० ३, ११, ९)।—इ सं० भ्रश्यति; चूकना; (भ०)। तुल० गु० चूकवें, म० चुकणें; (महा० ४, ८, ५; क०, २, ८, ५)।—ओ चूकना, भ्रष्ट होना; (की० २, ४३)। चुक्किअ—भू०-का० साथ छोड़ा; (की० ३, ११६)। चुक्की—क्रि०, भू० का०, चूक गयी, "परवस तंतीवज्जउ चुक्की" —इस प्रकार परवश होकर वह तन्त्री-वाद्य में चूक गई; (ण० ५, ९, १०)।

चुक्क—वि० (दे०) १. च्युत; (म० २, ३७, ११)। २. त्यक्त, दूर, परे; "अविहि चुक्क;" अन्याय से दूर या परे; (व० १, १, ७)। ३. भ्रष्ट (जंबू० २, ९३; सुदं० ११, ८, ८)। चुक्किय—वि० भ्रष्ट; (सुदं० २, ७, ११)।

चुक्का—वि० स्त्री० भ्रष्टा, (जंबू० २, १९, ३)।

चुक्किह—वि० (सं० भ्रंश् का धात्वादेश चुक्क, चुक्कइ=चूकना, भ्रष्ट होना। भ्रष्ट हुआ, चूका हुआ; "कालहि चुक्किह कज्ज;" अर्थात् समय पर चूका हुआ काम; (की० ३, ४९)।

चुक्कु—वि० (प्रा० चुक्क) भ्रष्ट, चूका हुआ, भूला हुआ; (प० च० १०, ९, १)।

चुक्कुड—पुं० (दे०) बकरा, अज; (दे०-ना० मा० ३, १६)।

√चुचुकार—(ध्व०) सं० चुटचुटकार-यति; अव्यक्तानुकरणम्। चुट-चुट का शब्द होना; (उ० व्य० प्र० ७-८)।

चुडुआ—पुं० (दे० चुडुप्प) खाल; (की० २, २०३)।

चुडुप्प—न० (दे०) खाल उतारना;(दे०-ना० मा० ३, ३)।

चुडुल्ल—पुं० (दे०) चूडाबंध, चोटी या शिखा का बंधन, चोटी के बाल बाँधने का फीता; (सुदं० ८, १७, १)।

चुडुल्ली—स्त्री० (दे०) उल्का (रात में आकाश से टूटकर गिरने वाला प्रकाश-मय पिंड या तारा), अलात (अंगार, लुकाठी); उल्मुक (मशाल, लुक); (दे०-ना० मा० ३, १५)।

√चुण—(दे०) पक्षियों का खाना, चुगना, चिड़ियों का चोंच से दाना उठा-कर खाना; (जस० १, ३, १२)।

चुणंत—कृ० (सं० चिन्वत्) चुनते हुए,

"चुणंतइँ कीरइँ अंसुवमाल;" (क० ८, १४, १)।

चुणअ--पुं० (दे०) १. चांडाल, २. वाल, बच्चा, ३. छंद, इच्छा; ४. अरुचि, ५. व्यतिकर, संबंध; ६. वि० अल्प; ७. मुक्त, त्यक्त; ८. सूँघा हुआ; (दे० ना० मा० ३, २२)।

चुणिन्न—पुं० न० (सं० चूर्ण>प्रा० चुण्ण) चूना; (ण० ८, २, ६)।

चुण्ण—पुं० न० (सं० चूर्ण>प्रा० चुण्ण) चूर, बुकनी, चूर्ण; (प० च० १९, ११, ८; ण० ४, १०, ११)। २. धूली, रज, रेणु; (दे० ना० मा० ३, १७)। ३. पुं० चूर्णा; (छंदशास्त्र में) गाथा का भेद; (प्रा० पैं० १, ६०)।

चुण्णइअ—वि० (दे०) जिस पर चूर्ण फेंका गया हो वह; (दे० ना० मा० ३, १७)।

चुण्णाआ—स्त्री० (दे०) कला, विज्ञान; (दे० ना० मा० ३, १६)।

चुण्णासी—स्त्री० (दे०) दासी, नौकरानी; (दे० ना० मा० ३, १६)।

चेरिणअ—वि० (सं० चूर्णित) धूली से व्याप्त; (दे० ना० मा० ३, १७)।

चुण्णु चुण्णु—क्रि० भू० का० (सं० चूर्णय्>प्रा० चुण्ण) टुकड़े-टुकड़े कर दिया, चूर-चूर कर दिया, "किउ स-रहु स-सारहि चुण्णु-चुण्णु;" अर्थात् रथ तथा सारथि के साथ चूर्ण-चूर्ण कर दिया; (प० च० १०, १०, ४)।

चुप—वि० [सं० √चुप् (चोपन)] तुल० आवाक् मौन; "खण यक चुप भै रहइ;" राज० चुप; (की० २, १८३)।

चुप्प—वि० (दे०) स्निग्ध; (दे० ना० मा० ३, १५)।

चुप्पल—पुं० (दे०) शेखर, अवतंस, आभूपण-विशेष; (दे० ना० मा० ३, १६)।

चुप्पलिअ—न० (दे०) नया रंगा हुआ कपड़ा, (दे० ना० मा० ३, १७)।

चुप्पालय—पुं० (दे०) कवाक्ष, वातायन; (दे० ना० मा० ३, १७)।

√चुमचुम—(ध्व०; कीर शब्दानुकरणे) चुन-चुन कर धान्य खाना; "जहिँ चुमचुमंसि केयारकीर;" जहाँ खेतों में शुक चुन-चुन कर धान्य खाते हैं; (जस० १, २१, १)।

चुमुचुमुचुमंत—कृ० भनभनाते हुए (humming), "सिरें गुमुगुमुगुमन्त, चुमुचुमुचुमन्त, चञ्चरिया;" (प० च० ४०, १६, ६)।

चुय—वि० (सं० च्युत) झरता हुआ, "तप्पइ विणयरकंताणलेहिँ, णीवइ ससहरमणिचुयजलेहिँ;" वह नगर सूर्यकांत मणियों से तप्त होता और चन्द्रकांत मणियों से झरते जल के द्वारा आर्द्र होता है; (ण० १, १४, १)।

चुलसी—वि० (सं० चतुरशीति) चौरासी, अस्सी और चार; (प्रा० गु० १३, २५)। —इ; (प० च० २०, १०२)।

चुलिअला—स्त्री० मात्रिक छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, १६७)।

चुव—वि० (सं० च्युत) स्रवित; (व० ५, १३, ६)। —संग पुं० (सं० च्युत+सङ्ग) साथ छोड़ना; (व० २, १०, १४)।

√चूंव—(सं० चुम्ब्) चूंवन करना, चूमना; (उ० व्य० प्र० ६-१६)।

चूअ—पुं० (सं० चूत>प्रा० चूअ) आम का पेड़; (प्रा० पैं० २, १४४; की० २, ८१)। चूउ—पुं० आम; (व० ८, १७, २)।

चूड—पुं० (दे०) हाथों या पैरों में पहना जाने वाला वलय, चूडा; तुल० म० चूड़ा; (रा०, भ०)।

चूडा—स्त्री० (सं० चूडा) चोटी, शिखा "संडासीं चूडा उनाड" —संदंशेन संदिशकया या चूडकमुन्नडति. उन्नयति वा; तुल० राज० चूड़ (सिर के वाल); (उ० व्य० प्र० ४९-५)।

चूडामणि—पुं० (सं० चूडामणि) सीसफूल या सीस में धारण करने के लिए मणि जटित आभूपण-विशेप; तुल० राज० चूड़ामणि, (प० च० ४६, ३५)। स्त्री० रानी-विशेप-नाम; (प० च० २१, ४३)। पुं० रत्न (व० १, ११, ६)।

चूडारयण—न० (सं० चूडारत्न) सीस में धारण करने के लिए मणि जटित आभूपण-विशेष; (जस० २, १२, ५)।

चूडुल्ल—पुं० (दे०) चूड़ा कलाई ही आभूपण, "दंतिमु चूडुल्ल चुण्णु चुण्णु;" (जंवू० ४, ११, २)। —उ पुं० (दे०) कंगन; (हे० ३९५, २, दे० ना० मा० ३, १८)।

चूतड—पुं० [सं० चूत (=भग, योनि) +तल) चूतड़ नितंव, कमर के नीचे और जांघ के ऊपर गुदा के वगल का मांसल भाग; (उ० व्य० प्र० ६-२३)।

चूय—पुं० (सं० चूत>प्रा० चूअ) वृक्ष-विशेप, आम का वृक्ष; (प० च० ५३, ७६; क० १, १४, ६)।

चूर—वि० (सं० चूर्णित>प्रा० चूरिअ) क्षुब्ध, चूर्णित; "वेश्यान्हि करो पयोधर जती के हृदय चूर;' अर्थात् वेश्या के पयोधर से टकराकर यती का हृदय चूर हो जाता था; (की० २, ११०)।

√चूर—(सं० चूरय्, चूर्णय्>प्रा० चूर) चूर-चूर होना; "......पर चक्कह चूरइ;" शत्रु का चक्रव्यूह चूर-चूर हो रहा था; (कौ० ४, १६९)।

√चूर—(सं० चूरय्) खण्डन करना, तोड़ना टुकड़े-टुकड़े करना। "घने सञ्चर घोल हाथि वहुत वापुर चूरि जाथि;" अर्थात अनेक हाथी-घोड़ों के चलने मे वहुत से वेचारे कुचल जाते थे; (की० २, १११)। —इ सक० (ण० ३, १५, १०)। चूरन्त—कृ० चूर्ण करते हुए, धक्का देते हुए; "अवरोप्परु चुरन्त;' अर्थात् एक दूसरे को धक्का देते हुए; (प० च० ३, ७, २)। चूरियउ—भू० का० (सं० चुर्य्) चूरित करता था; "छुडु किमिउलु चचुइँ चूरियउ;" अर्थात् कृमिकुल को चोंच से चूरित करता था, (जस० २, २८, ७)। चूरिवि—पू० का० क्रि० चूर-चूर करके; (ण० ४, १५, २)। चूरीआ—भू० का० "पअ भरे पत्थर चूरीआ," अर्थात् पैरों के वोझ से पत्थर चूर-चूर हुए जा रहे थे; (की० २, २१७)। चूरेओ—भू० का०, चूर किया; (की० १, ६३)। टि०—'कीलिता' में भू० का० के कृदंत रूपों में 'इआ' रूप में व्य-

क्त करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

चूरेवि—पू० का० क्रि० (सं० चूरय्+ क्त्वा); (सुदं० ६, १२, ७)।

चूरण—पुं० न० (सं० चूर्ण>प्रा० चुण्ण) चूर्ण, बुकनी, चूर; (व० ३, २२, २)।

चूरिय—वि० (सं० चूर्णित>प्रा० चूरिअ) चूर-चूर किया हुआ, टुकड़े टुकड़ा किया हुआ; तुल० म० चुरलें; (ण० ४, १०, ११)।

चूल—पुं० (सं० चूडा>प्रा० चूला) चोटी, शिखा; (व० ६, ५, ६)।

चूला—स्त्री० (सं० चूडा>प्रा० चूला) चोटी, शिखा; (व० २, १६, २)।

चूलावइ—स्त्री० चूलावती नामक दिक-कुमारी; (व० ६, ५, ७)।

चूलि—स्त्री० (दे०) कुक्कुटी, मुर्गी; भणइ महीमंत परमेसर कित्तिमचूलिमा-रणं;" (जन० ४, २२, १)।

चूलिय—पुं० (सं० चूड+क) चोटी; (व० १०, ३०, ७)।

चूव—पुं० (सं० चूत>प्रा० चूअ) आम, आम का वृक्ष; (म०)। —द्दुमु पुं० (सं० चूत+द्रुम) आम्र-वृक्ष; (व० १, ६, ३)। —मंजरी स्त्री० (सं० चूत +मञ्जरि, मञ्जरी) आम्र-मंजरी; (व० २, ३, १३)। साह पुं० (सं० चूत+ शाखा) आम्र वृक्ष की शाखा; (व० ३, ६, ३)।

√चूह—फेंकना, डालना; —इ सक० (पड्)।

चह—पुं० (दे०) चूआ, सोता, झरना; "चह उप्पर हारिआ;" अर्थात् झरने ऊपर गिर रहे थे; (की० २, ८०)।

चेअइ—क्रि०, व० (सं० चित् चेतयते) सचेत होना; चेतता है, (हे० ३६६)।

चेइ—पुं० (सं० चेदि) देश-विशेष; तुल० राज० चेइ। वै पुं० (सं० चेदि+पति >प्रा० चेइवइ) चेदि देश का राजा; रि० ६, १७)।

√चेइ—(सं० चित्, चेतयते=सचेत होना) जागना; "एक्कु चेइ अचेक्क वि सोअइ;" (जस० ३, २५, १०)।

चेअ—पुं० न० (सं० चैत्य>प्रा० चेइ, चेइअ) यज्ञ-स्थान, मनुष्यों का विश्राम-स्थल; (पड्)। —घर न० (सं० चैत्य-गृह) जिन मंदिर; (प० च० २, १२)।

चेइहर—पुं० (सं० चैत्यगृह>प्रा० चेइअ, चेइ+हर) जैन मंदिर; (जंबू० २, १३, ११)। चेईहर; (जस० ४, २७, २३)। चेईहरी—स्त्री० चैत्यगृह; (व० ३, २०, ५)।

चेउ—न० (सं० चेतस्>प्रा० चेअ) चित्त; तुल० राज० चेतो; (प्रा० पैं० १, ७)।

चेचल्ल—पुं० देश-विशेष; (जंबू० ६, १६, ४)।

√चेट्ठ—(सं० चेष्ट्) प्रयत्न करना चेष्टा करना, आचरण करना; —इ अक० (क० ८, ३, ६)।

चेट्ठ देखो चिट्ठ—स्था; (दे० ना० मा० १, १३४)।

चेट्ठा—स्त्री० (सं० चेष्टा> प्रा० चेट्ठा) प्रयत्न; (ण० ६, १७, १६)।

चेड—पुं॰ (दे॰) बाल, कुमार, शिशु; (दे॰ ना॰ मा॰ ३, १०)।

चेडअ—पुं॰ (सं॰ चेट+क>प्रा॰ चेडग, चेडय) दास, नौकर; (जंबू॰ १०, १४, १)।

चेडिअ—स्त्री॰ (सं॰ चेटिका>प्रा॰ चेडिआ) दासी; (क॰ २, १५, ७)।

चेडिय—स्त्री॰ दासी, "वव्वरिया-चेडिय-संगयाए;" तुल॰ राज॰ चेटिका, चेटी; (विला॰)।

चेण—स्त्री॰ (सं॰ चेतना>प्रा॰ चेयणा) ज्ञान, चेत, चैतन्य; (भ॰)।

चेतना—स्त्री॰ (सं॰ चेतना>प्रा॰ चेयणा) होश; (की॰ २, ८४)।

√चेय—(सं॰ चित्) जानना, अनुभव करना। —इ सक॰ (प॰ च॰ २६, ८, ८)।

चेय—न॰ (सं॰ चेतस्>प्रा॰ चेअ) चेतना, ज्ञान, चैतन्य; तुल॰ म॰ चेव; (भ॰)।

चेयण—पुं॰ (सं॰ चेतन>प्रा॰ चेयण) आत्मा, जीव, प्राणी; (जस॰ ३, २६, ३)। न॰ (सं॰ चैतन्य>प्रा॰ चेयण्ण) ज्ञान, सुध, ख्याल; (विला॰)।

चेयणाल—पुं॰ (सं॰ चेतना+आलय) चेतना का घर, "पुग्गलु सावयासु परिणामिउ अवरु वि चेयणालओ;" अर्थात् पुद्गल द्रव्य का स्वभाव अवकाश को रोकने का है। वह परिणामी है और चेतना का गृह भी है; (जस॰ ४, १३, १)।

चेयारि—वि॰ (सं॰ चत्वारि) चार; (प॰ च॰ ५१, ९, ८)।

चेर—पुं॰ चेर नामक राजा; (क॰ ४, १, ५)।

चेल—न॰ (सं॰ प्रा॰ चेल) वस्त्र; (जस॰ ३, ७, ३)। चेलुक्खेव—पुं॰ (सं॰ चेलोत्क्षेप) वस्त्र उठाना या उछालना, या ऊपर फेंकना; (संधि॰ २, १५, ४)।

चेलउं—पुं॰ (सं॰ चोल) चोली; (उत्तर पुराण)।

चेलिका—स्त्री॰ (दे॰) संतान, "चेलिका पोस—अपत्यानि पोषयति;" (उ॰ व्य॰ प्र॰ ५१-१३)।

चेलिय—न॰ (सं॰ प्रा॰ चेल, प्रा॰ चेलय) वस्त्र, कपड़ा; (प॰ च॰ ६, १३, ११)। "सा लइय णिबंधिवि चेलियहिं;" अर्थात् उसने उसे कपड़े में बाँध लिया; (जस॰ २, २८, ९)।

चेली—स्त्री॰ (सं॰ चीरि=आँख ढाँपने का घूंघट-विशेष) वस्त्र, "णउ तहिं लज्जण णिवसणचेली;" अर्थात् वहाँ न तो लज्जा है और न वस्त्रों का आच्छादन;' (जस॰ ३, ७, ३)।

चेलुंप—न॰ (दे॰) मूषल; (दे॰ ना॰-मा॰ ३, ११)।

चेलुका—स्त्री॰ (दे॰) शिशु; "तउ चेलुकां पिरायां पोसइ;" तुल॰ गु॰ चेलका, (प्रा॰ गु॰ १६, १२)।

चेल्ल, चेल्लअ—देखो चिल्ल; (दे॰), (प॰ च॰ ९७, १३)।

चेल्लु—पुं॰ (सं॰ चेटक>प्रा॰ चेडअ) चेला, शिष्य; तुल॰ राज॰ चेलो; मगही चेला; (सरह दोहाकोश) —ग पुं॰

शिशु, (चिल्ल दे० ना० मा० ३, १०)। (संधि० ५, ११, ६)।

चेव—अव्य० (सं० च+एव, चैव) अवधारण सूचक अव्यय, निश्चय दर्शक शब्द, ही; "अहवा एक्को तुमं चेव," अथवा अकेला तू ही है; (जंबू० ७, ४, ८)। २. पाद-पूरक अव्यय; (प० च० ८, ८८)।

चेवंतु—कृ० (दे०) (सं० चित्>प्रा० चेअ=सावधान होना) जागते हुए, (सुदं० २, ७, २)।

चो—वि० (सं० चतुर्>प्रा० चउ) चार; (प्रा० पैं० २, १४५)।

√चोअ—(सं० चोदय्>प्रा० चोअ=प्रेरणा करना) चोएँवि—पू० का० क्रि० ले जाकर; "आसण्णें चोएँवि विगय-मउ;" अर्थात् 'विगत-मद अपने हाथी को निकट ले जाकर,' (प० च० १५, ५, ८)।

चोआलीस—वि० (सं० चतुश्चत्वारिं-शत्) चवालीस; (प्रा० पैं० २, १८६)।

चोइउ—वि० (सं० चोदित>प्रा० चोइअ) प्रेरित; (व० २, ५, २१)। चोइय; (ण० ५, ४, २१, भ०)।

चोक्ख—वि० (सं० चोक्ष) चोखा, मनो-हर; "चोक्खु स-रागउ सिङ्गार-हार दरिसावणु;" (प० च० २६, १५, ६)।

चोज्ज—न० (सं० चोद्य>प्रा० चोज्ज) कौतुहल, कौतुक, आश्चर्य; तुल० म० चोज; (ण० २, २, १; प० च० २३, ८, ५; महा० ८–७–२३)। चोज्जु (सि० २, ३)। २. चिंता; (क० ६, ६, २)।

—क्कोयण वि० (सं० चोद्य+उत्कोपन) आश्चर्य उत्पन्न करने वाला; (ण० ४, १२, १६)।

चोट—स्त्री० (सं० चुट=काटना) आघात, प्रहार, मार; (की० ४, १७३)।

चोट्टी—स्त्री० (सं० चूडा) चोटी, शिखा, चुंदी; (दे० ना० मा० ३, १)।

चोड—पुं० चौड़ नामक देश; (क० २, १०, ५)। २. पुं० (दे०) चूड़ा, चोटी; (जंबू० ६, १३, ५)। —देस पुं० चोल देश; (जंबू० ६, १६, १)। टि०—इसका विस्तार कोयंबतूर, त्रिचनापल्ली और तंजोर आदि से मैसूर के आधे दक्षिणी भाग तक था। रामायण और महाभारत में चोल देश का उल्लेख आया है।

चोडी—स्त्री० चोली, चोलदेशीय स्त्री; (संधि० ६, ५, १०)।

चोढ—(दे०) विल्व, बेल का पेड़; (दे०-ना० मा० ३, १६)।

चोत्त, चोत्तअ—पुं० न० (दे०) प्रतोद (लंबा चाबुक, चुभोने वाला उपकरण, अंकुश); (दे० ना० मा० ३, १६)।

चोत्थी—स्त्री० (सं० चतुर्थी) चौथ तिथि; (ण० ६, २०, ४)।

चोदह—वि० (सं० चतुर्दश>प्रा० चउ-द्दह) चौदह; (प्रा० पैं० २, १०२)।

चोप्पड—न० (दे०) स्निग्ध द्रव्य; घी, तेल आदि स्निग्ध वस्तु; (संधि० ३, ८, ६)।

√चोप्पड—(दे०) स्निग्ध करना, घी-

तेल आदि लगाना। चोप्पडि—क्रि०, आ० चुपडो; (परम० २, १४८)।

चोप्फुञ्च—वि० (दे०) प्रेम-युक्त; (दे० ना० मा० ३, १५)।

चोविह—वि० (सं० चतुर्विंशति)। चौवीस; (प्रा० पैं० २, २१०)।

चोयमान—कृ० (सं० चोदयन्) प्रेरित करता हुआ; (ण० ४, १२, ११)।

चोर—पुं० (सं० प्रा० चोर) दूसरे का धन चुराने वाला; (भ०)। —उल पुं० (सं० चोरकुल) चोरों का समुदाय; (जस० १, १३, ४)। —त्तण पुं० (सं० चोरत्व) चुरानेका भाव; चौर्यत्व; (जंबू० ६, १४, ४)।

चोरइ—क्रि०, व० (सं० चोरयति) चुराना; (भ०)। —मि; तुल० राज० चोरणो, चोरवौं; (जंबू० ६, १५, ५)।

चोरण—न० (सं० प्रा० चोरण) चोरी, चुराना; (भ०)।

चोरली—स्त्री० (दे०) श्रावणमास की कृष्णचतुर्दशी, (दे० ना० मा० ३, १६)।

चोरिअ—न० (सं० चौर्य>प्रा० चोरिअ) चोरी, अपहरण; (क० ६, २२, ६)।

चोरिक्क—न० (सं० चौरिक्य>प्रा० चोरिक्क) चोरी, अपहरण; तुल० राज० चोरिक्क; (संधि० ३, ५, ८)।

चोरी पेम—पुं० (सं० चौर्य+प्रेमन्) चोरी से किया गया प्रेम, छिपा हुआ प्रेम; (की० २, १२०)।

चोरिय—न० (सं० चौर्य>प्रा० चोरिअ) चौर्य, चोरी, (जंबू० ३, १४, १७)।

चोरियअ—वि० (सं० चोरित>प्रा० चोरिअ) चुराया हुआ; (जंबू० १०, ८, १०)।

चोरु—पुं० (सं० प्रा० चोर) चोर, चोरी करके वाला; (उ० व्य० प्र० ४६-२३)।

चोरेवइ—पू० का० क्रि० (सं० चोरय्+तुमुन्) चोरी करने के लिए, "विज्जुच्चर चोरेवइ पुरें परिभमइ;" अर्थात् विद्युच्चर नामक चोर चोरी करने के लिए नगरी में परिभ्रमण कर रहा है; (जंबू० ६, ११, १७)।

चोल—वि० (दे०) वामन, कुब्ज; (दे० ना० मा० ३, १८)। पुं० देश-विशेष; "तेलंगा वंगा चोल कलिगा राआ पुत्ते मण्डीआ;" (की० २, २२७)। —वइ पुं० (सं० चोलपति) चोल देश का राजा; (प्रा० पैं० २, १५१)।

चोल्ल—पुं० (दे०) अंगवस्त्र, तुल० म० चोळी (केवल स्त्रियों की); (भ०)।

चोल्लय—पुं० चोलक, चंदोवा; (सुदं० ३, ८, ८)।

चौदिस—स्त्री० (सं० चतुर्+दिश्) चारों दिशा; (की० ४, ११८)।

चौपट—पुं० [सं० चतुष्पट=चौपड़ के खेल का चार भुजाओं वाला कपड़ा)>प्रा० चउपड) चारों खानों चित्त, मुहा० चौपट गिरना=इस प्रकार गिरना कि चारों खाने नीचे की ओर या पट हो जाना। (की० ४, १७२)।

चौसा—स्त्री० (सं० चतुर्>प्रा० चउ +सं० अस्र>प्रा० अस्स=चउस्स>

चौसा) चार खूँट या चार दिशा; (की० ३, ८१)।

चौहट्ट—पुं० (सं० चतुर्हट्ट) चौराहा, चौहट्टा; (की० २, ८८)।

च्चरण—न० (सं० अर्चन) अर्चना, पूजा; (जंबू० ८, ४, १)।

च्चिय—अव्य० (सं० चैव>प्रा० च्चिअ, चिअ) अवधारण सूचक अव्यय, निश्चय प्रकट करने वाला शब्द; (ण० ६, १५, १; जंबू० ४, १८, ७)।

च्छइ—क्रि०, व० (सं० अस्ति) है; (प० च० ४१, ५, ६)। च्छउ—क्रि०, आ० (सं० अस्तु) रहें, "तावच्छउ," तब तक रहें; (जंबू० ६, २, ६)।

च्छरा—स्त्री० (सं० अप्सरा) १. परी, २. स्वर्ग की वेश्या; (जंबू० ६, २, ६)।

च्छि—स्त्री० (सं० अक्षि) नेत्र; (जंबू० ३, १, २)।

च्छोड़—क्रि० व० (स०√छर्दय्>प्रा० छड्ड) छोड़ना; तुल० म० सोडणे, गु० छोडवुं, (भ०)।

च्यारि—त्रि० (सं० चत्वारि) चार; तुल० राज० गु० च्यार; (प्रा० गु० २५, १३; प्र० चिं०)।

छ

छ—पुं० (सं० प्रा० छ) व्यंजन वर्ण-विशेष, तालु-स्थानीय। वि० (सं० षट्, षष्>प्रा० छ, अप० छउ (प्रा० पैं०; भ०), छअ (प्रा० पैं०), छह (प० च०, पा० दो०) छह; तुल० राज० छ, छइ, गु० छ, (प्रा० पैं० १, १५; ण० १, १२, ५; संधि ३, ५, ३; जस०)।

छंकार—पुं० (दे०) जलकण; (जंबू० १, १, २)।

छंकुई—स्त्री० (दे०) केवांच, वृक्ष-विशेष; (दे० ना० मा० ३, २४)।

छंगुलअ—पुं० (सं० षड्+अङ्गुल) छह अंगुल; (जस०)।

छंगुलमिअ—पुं० (सं० षडङ्गुलिमित) छह अंगुल प्रमाण; (जस० ४, १६, १४)।

छंट—पुं० (दे०) जल का छींटा; २. वि० शीघ्रतापूर्वक कार्य करने वाला; (दे० ना० मा० ३, २३)।

√छंट—(सं० सिच्), छिड़कना; तुल० गु० छांटवुं; (संधि० १, ५, ८)।

√छंड—(प्रा० छड्ड) छोड़ना, —इ सक० (क० ३, ५, ३; महा० १, १४, ३)। तुल० राज० छंडणौ, छंडवौ; गु० छांडवूं; म० सांडणें। छंडि—पू० का०-क्रि० छोड़ कर; (पाहु०)। छंडिवि—पू० का० क्रि० छोड़कर; (सुदं० ८, ३५, ६; यो० ३२)। छंडेविणु—पू० का० क्रि० (परम० १, ७४; पाहु० १५१)।

छंडिअ—वि०(सं० छर्दित>प्रा० छड्डिअ) मुक्त, परित्यक्त, छोड़ा हुआ, (सुदं० ८, २३, २)। छडिआ; (ण० ४, ८, २)।

छंद—पुं० न० (सं० छंदस्>प्रा० छंद) १. छंद; तुल० राज० छंद, (प्रा० पैं० १, १०)। २. अंतलघु त्रिकल का नाम (ऽ।); (प्रा० पैं० १, १६)। ३. स्वच्छं-दता, अभिप्राय-विशेष, "छंदें विरज्जइउ

करइ कम्मु," —इस प्रकार वह स्वच्छंदता से मनम ने काम करता था; (जस० १, ५, १९) । २. (सं० छन्दः) छंद शास्त्र, "छंदलंकारइँ जोइसाइ;" छंद, अलंकार और ज्योतिष; (जस० १, २४, ५) । ३. वि० आच्छादित; "तिणयणतरुव्वं दारुवणछंद;" अर्थात् विन्ध्याटवी दारु-वनों से आच्छादित थी; (जंबू० ५, ८, ३६) । ४. वि० उन्मुक्त; "रूव-छंद-लायण्णहिं सोहइ;" वह अपने रूप और उन्मुक्त सौंदर्य से शोभित थी; (सि० १, ४६) । —अ पुं० न० छंद; (प्रा० पैं० २, १३५) ।

छंदाइत्त—वि० (सं छन्दवत्) स्वैरी; मनमाना आचरण करने वाला; (भ०) ।

छअ—वि० (सं० षष्>प्रा० छ) छह; (प्रा० पैं० २, ४३) ।

छइअ—वि० (सं० छादित) आच्छादित; (ण० ५, २, १६) ।

छइमत्थ—वि० (सं० छद्मस्थ>प्रा० छउमत्थ) संपूर्ण ज्ञान से वञ्चित; (ण० ८, ८, १०) ।

छइय—वि० (सं० आच्छादित) ढका हुआ; (पइ) । २. छादित; (जंबू० ५, १२, १६) । ३. शोभित; (जस० २, ३, २) ।

छइल—वि०(दे०)विदग्ध, चतुर; (दे०—ना० मा० ३, २४) ।

छइल्ल—वि० (सं० छविमत्>प्रा० छविल्ल, छयल्ल) निपुण, चतुर, छैल, विदग्ध (दे० ना० मा० ३, २४; सुदं० ७, ११, ७; हे० ४१२, १) । २. काव्य-रसिक, नागर; (की० १, ३१) । ३. रसिक, छैला; (प्रा० पैं० १, १०५) ।

छउ—वि० (सं० षट्>प्रा० छ) छह; (प्रा० पैं० २, ४३) ।

छउअ—वि० (दे०) कृश, दुबला; (दे०-ना० मा० ३, २५) ।

छउत्तरसय—वि० (सं० षष्+उत्तरशततम) एक सौ और छठवाँ; (प० च० १०६, ४६) ।

छउम—पुं० न० (सं० छद्मन्) छल, बहाना; तुल० राज० छउम; (पइ) ।

छक्क—वि० (सं० षट्+क>प्रा० छक्क) छह का समूह; (भ०) । —म्मु पुं० (सं० षट्+कर्म) छह कर्म, "जो संयभु छक्कम्म-छइल्लउ;' जो (ऋषभ-देव) षट्-कर्मों के निरूपण में निपुण एवं स्वयंभू थे, (व० २, १२, ६) । टि०—छह प्रकार के कर्म —१. शम, २. दम ३. विषय से विराग या विरति, ४. सहिष्णुता या क्षमा, ५; श्रद्धा और ६. चित्त की शांति के लिए मन को ब्रह्म में लगाना ।

छक्का—वि० (सं० षट्+क) छह; तुल० राज० छकौ (छह की संख्या का अंक); (प्रा० पैं० २, ४७) ।

छक्कारय—पुं० (सं० षट्कारक) छह कारक; (प० च० १, ३, ५) ।

छक्खंड—पुं० (सं० षड्खण्ड) छह खण्ड, (व० ८, २, ३) । छक्खण्ड; (प० च० १, ११, ८) । — वाणि स्त्री० (सं० षट् खण्ड+अवनि) षट् खण्ड भूमि; "छक्खंडावणि मंडल-सामिउ;" अर्थात् पृथ्वी के

समस्त छह खण्डों का स्वामी; (व० २, १२, १०)।

छखंड—पुं० (सं० षट्+खण्ड) छह खंड; (क० १, ३, ४)। —वसुंधर (सं० षट्खण्डवसुन्धरा) छह खंडों वाली पृथिवी; (जंबू० ३, ३, १२)।

छगल—पुं० स्त्री० (स० छागी) बकरी; तुल० राज० छगळ, छगल, छगल्ल; सुभाषित "छगलगहणट्ठ मेरावणं विक्कए;" बकरी को लेने के लिए ऐरावत को बेचता है,(भावना संधि प्रकरण)तुल० अवधी छगडी।

छच्चरण—पुं०(सं० षट्+चरण)भौंरा, भ्रमर; (व० ६, ६, ५)।

√छज्ज—(सं० सस्ज्>प्रा० छज्ज) शोभित होना, शोभना, शोभायमान होना। —इ अक० (प० च० ३, ७, १०; भ०; महा० १,१४, ३; सुदं० १, ३, ६)। छज्जेइ; (म० १, ६, ४)। तुल० म० साजणें।

छज्जमाण—वि० शोभायमान; "उच्छलंतु पक्खलंतु छज्जमाणु," (क० ७, ६, ६)।

छज्जीवणिकाय—पुं० (सं० षड्जीवनिकाय, जीवनिकाय; पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकाया) छह "थिरु छज्जीवणिकायदयावरु," इन छह जीवनिकाय जीवनिकायों पर स्थिर रूप से दयावान थे;(जस० ३, १७, ११)।

छटा—स्त्री० (सं० छटा) शोभा; (की० २, १५१)।

छट्ठ—वि० (सं० षष्ठ) छठा, छठवां (प्रा० पैं० १, ५६; जस० २, ४, ५, जंबू० ६, १४, १८; भ०)। —उ वि० (सं० षष्ठ+क) छठा; (सि० २, १२)।

छड—वि० (सं० षष्) (भ०)।

छट्ठट्ठम—वि० (सं० षष्ठ+अष्ठम) छट्ठा और आठवां, "एक्कंतरि छट्ठट्ठमएँ दिणे;" (जंबू० ३, ६, १२)।

छट्ठि—स्त्री० (सं० षष्ठी) छट्ठी तिथि; (व० ६, ७, १४)।

छट्ठु—पुं० (सं० षष्ठोपवास) छह दिन का उपवास; (व० ६, २०, ५)।

√छड—(दे०) सं० आ+रुह् आरूढ़ होना, चढ़ना। —इ अक० (षड्)।

छड—स्त्री० (सं० छटा>प्रा० छडा) शोभा, छटा "कुंकुमछडएं णं रइहि रंगु" कुंकुम की छटाओं से जान पड़ता था जैसे वह रति की रंगभूमि हो; (ण० १, ७, ६)।

छडउ—पुं० (दे०) १. छिड़काव "अमरराउ मज्जणउ भरावउ। अण्णु वि घणेंहिं छडउ देवावउ"; अमरराज ने नहाने का पानी भराए और मेघों से छिड़काव कराए। (प० च० १७, १८, ८)। २. छटा; (जंबू० ७, १२, २)।

छडउ—वि० (दे०) एकाकी, अकेला "छडउ पयाणउ;" एकाकी प्रयाणम्; तुल० गु० छडे परियाणें; (प्रा० गु० ५, १४)।

छडक्खर—पुं० (दे०) स्कन्द, कार्त्तिकेय; (दे० ना० मा० ३, २६)।

छडप्पडु—क्रि० वि० (दे०) शीघ्र; (प्रा० गु० २७, ३, ६)। छुडुपुडु; (प्रा० गु० ६, २०)।

छडय—१. स्त्री० (सं० छटा) शोभा; (क० १, ४, ७)। २. पुं० समूह; (प०

च० ४०, १६, ७)। ३. पुं० (दे०) उपलेप; "णवकुंकुमरसछडयारुणाइ" नए; केसर-रस के लेप से लाल, तुल० म० सडा; (जस० १, ४, १०)।

छडया—स्त्री० (सं० छटा) शोभा; (जस०)।

छडा—स्त्री० १. (दे०) विद्युत; (दे० ना० मा० ३, २४)। २. (सं० सटा) जटा; (व० ५, ५, १)।

छडाल—वि० (सं० छटावत्) छटा वाला; (प० च० ३५, १८)।

छडिय—वि० (दे०) सिंचित; तुल० गु० छांटेल; (संधि० ४, ६, ६)।

√छड्ड—(सं० छर्दय्>प्रा० छड्ड) छोड़ना; (जस० ३, ३७, २; सं० रा०; संधि० १, १३, ६)। तुल० गु० छोडवुं —इ व० (की० ४, २३४)। —हि व० छोड़ना; (हे० ३८३)। छड्डंत—कृ० सं० मुञ्चन्; (ण० ६, १२, २)। छड्डंतु—कृ० 'एत्तिउ छलु छड्डंतु ण लज्जमि;' (म० २, २८, ३)। छड्डाविअ —भू० का० छुड़वा दिया; (जंबू० ६, ७, १०)। छड्डि—पू० का० क्रि०, छोड़कर; (की० ३, ७८)। छड्डिअ—भू० का० छोड़ा; (की० २, ५४)। —ऊण पू० का० क्रि० छोड़ कर; (सुबंध २, ३, १)। छड्डिवि—पू० का० क्रि०, (जंबू० ६, ५, २)। छण्डहो—आ० छोड़ो, त्याग करो; (प० च० २, १३, १४)। छण्डेंवि —पू० का० क्रि० (प० च० ११, १, ७)। छाड—व० त्यागना; (उ० व्य० प्र० ६, २)। भू० का०, छोड़ता था; "भोअण भाखण छार नहि गमणे न हो परिभूत;" (की० ४, १०३)। —त पू० का० क्रि० के रूप में प्रयुक्त छोड़ते हुए, "बहुल छाडल पाटि पाँतरे। वसने पाअेल आंतरे;" (की० २, ६१, ६२)। छाडि—पू० का० क्रि० (सं० मुच् का धात्वादेश छड्ड) छोड़ कर; (की० ४, २०६, उ० व्य० प्र० ६, ३१)। छाडु—आ०, छोड़ो; "पराई वथु डीव छाडु," अर्थात् 'परकीये वस्तुनि त्रि (तृ) ष्णां छिन्धि'। (उ० व्य० प्र० ६-३१)।

छड्डवय—वि० (सं० छर्दक) त्याग करने वाला, त्याजक; (दे० ना० मा० २, ६२)।

छड्डि—स्त्री० (सं० छर्दि) वमन का रोग; (षड्)।

छड्डिय—वि० (सं० छर्दित) त्यक्त, मुक्त; (प० च० १५, ११, ३)।

छड्डिय, छड्डियल्लिय—वि० (सं० छर्दित) १. वमन किया हुआ; २. मुक्त; (दे० ना० मा० १, ४६)।

छण—पुं० (सं० क्षण) १. क्षण; सि० १, १६; सं० रा०)। २. वि०, पूर्ण "छणइंदबिंबसण्णिहमुहेण," पूर्ण चंद्र-बिम्ब सदृश उज्ज्वल मुख," तुल० राज० छण; (ण० १, ३, १)।

छणइंद—पुं० (सं० क्षण+इन्दु) पूर्ण चंद्र; (जंबू० १०, १, ८)।

छण-चन्द—पुं० (सं० क्षण+चन्द्र> प्रा० छणचंद) शरद ऋतु की पूर्णिमा का चंद्रमा; (प० च० १, ३, १४)।

छणछणसद्द—पुं० (ध्व०) किसी वस्तु के पकाने से उत्पन्न हुआ शब्द; (प० च० ११, ६, ६)।

छणदिण—पुं० (सं० क्षणदिन) उत्सव-दिवस; (जंबू० ६, ८, १२)।

छणयंद—पुं० (सं० छण+चन्द्र) पूर्णिमाचंद्र; (जस० १, १७, २२)।

छणवासर—पुं० (सं० क्षण (पूर्णिमा) +वासर) पूर्ण, "छणवासरससहरआण-णीय, पावेसइ पुणु इह कामणीय," अर्थात् तभी आप अपनी पूर्ण चंद्रमुखी कामिनी को प्राप्त करेंगे, (क० ५, १६, ५)।

छणवासरु—पुं० (सं० क्षणवासर) उत्सव का दिन, "मेहल-तोरणाहँ छण-वासरु"; मेखलाओं और तोरणों से उत्सव का दिन है; (प० च० १४, १२, ४)।

छणससहर—पुं० (सं० क्षण शशधर) पूर्णिमा का चाँद; (महा० २०, ६, १-७)।

छणससि—पुं० (सं० क्षण+शशि) पूर्ण-चंद्र; (जंबू १०, १, ८)।

छणिंदु—पुं० (सं० क्षण+इन्दु) पूर्ण-मासी का चंद्रमा; (व० ३, २२, ३)।

छण्ण—वि० (सं० छन्न>प्रा० छण्ण) आच्छादित, छादित; (जंबू० २, १२, ६)। २. गुप्त, प्रच्छन्न; छिपाया हुआ, (भ०)। —उ वि० आच्छन्न; (प० च० १४, १, १)।

छण्णवइ—वि० (सं० षट्नवति) छिया-नवे; (जस० ४, २०, १२; जंबू० ३, ३, १४)।

छण्णवेआ—वि० (सं० षट्नवति) (पण्ण-वति) छियानवे; (प्रा० पैं० २, १२२)।

छत्त—न० (सं० छत्र>प्रा० छत्त) छाता, छत्र; तुल० म० राज० छत; (जस० १, ४, १; की० ३, २२; ण० १, १६, ६; सि० २, १८, प्रा० पैं० १, १८२)।

छत्तच्छय—पुं० (सं० सप्तच्छद) वृक्ष-विशेष, सतौना, छतिवन; (सण०)।

छत्तछाय—पुं० महापुर के राजा का नाम; (प० च० १०३, ३६)। स्त्री० (सं० छत्र+छाया) छत्र की छाया; (जस० २, २५, ५)।

छत्तरिय—वि० (दे०) विस्तारित, अंत-रित; (प० च० ५६, २, ४)।

छत्ताइँ—न० (सं० छत्र>प्रा० छत्त) छत्र; (रि० ७, ६)।

छत्ताइमाण—वि० (सं० छत्रायमान) छत्र के समान शोभायमान; "छत्तायमाणु तहों सहइ सप्पु;" अर्थात् सर्प उस पर छत्र के समान शोभायमान था; (क० ४, ६, २)।

छत्तायार—वि० (सं० छत्र+आकार) छाते के आकार का; (जंबू० ११, १२, १०)।

छत्तीस—वि० (सं० षष्+त्रिंशत्) छत्तीस; (सि० १, १७)। —उ वि० छतीस सि० १, २२)। —इम वि० (सं० षष्+त्रिंशत्तम) छतीसवाँ; (प० च० ३६, ४३)।

छद्दंसण—पुं० (सं० षड्दर्शन) छह दर्शन; (जस० ४, २७, २०)।

छद्दव्वाई—स्त्री० (सं० षड्द्रव्यादि) छह प्रकार के द्रव्य। जैन छह द्रव्य मानते हैं

जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश और काल; (व० १०, ३, ७)।

छद्दी—स्त्री० (दे०) बिछौना, शय्या; (दे० ना० मा० ३, २४)।

छन्नउ—वि० (सं० प्रच्छन्न>प्रा० पच्छण्ण) ढका हुआ; (सं० रा०)।

छन्नवइ—वि० (सं० षण्णवति) छियानवे; तुल० गु० छन्नु; (प्रा० गु० १२, २१; व० ८, ५, ४)।

छप्पंति—स्त्री० (दे०) नियम-विशेष, जिसमें पद्य लिखा जाता है; (दे० ना० मा० ३, २५)।

छप्पए—पुं० (सं० षट्+पद) भौंरा; (व० ३, ५, ८)।

छप्पण, छप्पणास—वि० (सं० षट्पञ्चाशत्) छप्पन; पचास से छः अधिक; तुल० राज० छप्पन; (प्रा० पैं० २, १३३)।

छप्पण्णय—वि० (दे०) विदग्ध, (प० च० ३०, ४, ५; दे० ना० मा० ३, २४)।

छप्पन्न—वि० (सं० षष्+पञ्चाश) छप्पनवाँ; (प० च० ५६, ४८)।

छप्पअ—न० (सं० षट्पद) छप्पय, छंद-विशेष; (प्रा० पैं० १, १२५)।

छप्पय—पुं० (सं० षट्पद>प्रा० छप्पय) भ्रमर मधुकर, भौंरा; तुल० राज० छप्पय; (जस० १, १२, ३; ण० ८, १, ६; प० च० २, १, ७)।

छप्पयार—पुं० (सं० षट्+प्रकार) छह प्रकार; (जंबू० १०, २२, ११)।

छप्पयालि—पुं० (सं० षट्पद+अलि) भ्रमरों षट्पदों; "चलकण्णझडप्पियछप्पयालि;" अर्थात् कानों के झपाटे से षट्पदों को झड़पता हुआ; (जंबू० ४, २०, १०)।

छब्बीसा—वि० (सं० षट्विंशति) छब्बीस, तुल० राज० छब्बीस; (प्रा० पैं० १, १५०)।

√छमछम—(ध्व०)सं० छमच्छमाय् छमछम करना। —छमेइ, "काहि वि हरियंदणरसु रमेइ, लग्गंतु अंगें छमछमछमेइ," अर्थात् किसी ने लाल चंदन का लेप लगाया जो उसके शरीर में लगते ही (विरह ताप के कारण) छमछम करके चटक गया; (जंबू० ४, ११, ३)।

छमलय—पुं० (दे०) सप्तच्छद, वृक्ष-विशेष; (दे० ना० मा० ३, २५)।

छमासीवेयण—स्त्री० (सं० षड्+मासि+वेदना) छह मास तक व्याधि की वेदना; (जस० ३, २६, ३)।

छमाहर—पुं० (सं० क्षमा+धर) पर्वत; (पड्)।

छमुंडधारी—पुं० (सं० षण्मुण्डधारी) स्वामी कार्तिकेय; (प्रा० पैं० २, १२०)।

छम्म—पुं० न० (सं० छद्मन्>प्रा० छउम) पाखंड, कपट, शठता, छल; (क० ७, १६, ६; म० १, १६, १२)।

छम्मयल—पुं० (सं० क्षमा+तल> प्रा० छमा+तल) पृथ्वीतल; (सं० रा०)।

छम्मास—पुं० (सं० षण्मास) छह मास; (जंबू० २, ४, १)। —अवहि षण्मासावधि; (जंबू० ८, ५, ३)। — ाउ पुं० (सं० षट्+मास+आयु) छह मास की

आयु; (व० ६, ५, १)।

छम्मिय—वि० (सं० छद्मित) छलित; (सुदं० ११, २, १०)।

छय—पुं० (सं० क्षत>प्रा० छय) व्रण, घाव; (सं० रा०)।

छयासी—वि० (सं० पडशीति) छियासी; (महा०)।

छरहरिय—वि० छरहरित, थर्राकर; "छरहरियमएण कंपंततणु," मन में थर्राकर शरीर से कँपते हुए; (सुदं० २, ११, १०)।

छल—न० (सं० प्रा० छल) कपट, माया; तुल० राज० छळ; (प० च० १२, ६, ७; प्रा० पैं० २, २०७)। २. बहाना; (जस० २, १०, ११)। छलु; (व० ३, १८, ३)।

√छल—(सं० छलय्>प्रा० छन) ठगना। —इ सक० (सं० छनयति) (भ०)।

छलय—पुं० (सं० छलिन्) जुआड़ी; (जंबू० ४. २, १०)।

छलि—वि० छलने वाले; (प्रा० पैं० २, २१५)।

छलिअ—वि० (दे०) विदग्ध, चालाक, चतुर; तुल० राज० छळियौ; (दे० ना० मा० ३, २४)।

छल्लि—स्त्री० (दे०) त्वचा; (ण० ३, ८, १०)।

छल्ली—स्त्री० (सं० प्रा० छल्लि) त्वचा, छाल, छिलका; (दे० ना० मा० ३, २४)।

छवडी—स्त्री० (दे०) चर्म, चाम, चमड़ा; (दे० ना० मा० ३, २५)।

छवि—स्त्री० (सं० प्रा० छवि) कांति, तेज; (भ०)।

छव्वग्ग—पुं० (सं० पड्+वर्ग) छह वर्ग, "अरिछव्वग्गहु जो हुउ कयंतु"— उसने अपने षड्वर्ग रूपी रिपुओं का विनाश किया था; (ण० १, ८, ५)।

छव्वासय—पुं० (सं० पडावश्यक) षड् आवश्यक जैन गृहस्थी के लिए छह बातें आवश्यक हैं—देव पूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान; "छव्वासय किल णिम्मूलियखलु" खलों का निर्मूलन करने वाले पडावश्यक है। (म० १, २१, ८; क० ६, २०, २०)। छावासइ; (व० ८, १९, १२)।

छव्विहु—पुं० (सं० पट्+विध) छह प्रकार; (व० ८, १४, १०)।

छह—वि० (सं० पट्>प्रा० छ) छह; तुल० राज० छह; (जस० ४, १३, ७; व० १, १२, १३; प्रा० पैं० १, ११८)।

छहत्तर—वि० (सं० पट्सप्तति) ७६ वाँ छिहत्तरवाँ, तुल० राज० छहत्तर, छहत्तरि; (प० च० ११३, ५४)।

छहत्तरि, छेहत्तरि—वि० (सं० पट्सप्तति) छिहत्तर; (प्रा० पैं०)।

छहि—वि० (सं० पट्) छह; (सि० १, ३७)।

√छांड—(दे० छंड) छोड़ना; छाड़ी, (रा० १०)। तुल० राज० छांडणौ, छाडवौ। छांडि—पूं० का० क्रि०, छोड़ कर; (की० २, १०५)। छाड—पू० का० क्रि० छोड़कर, "कौं मन गाड, गोवोलिगमारन्हि छाड;' अर्थात् जो

गँवार ग्वालों को छोड़ कर नागरिकों (रसिकों) के मन में गड़ जाती थी; (कौ० २, १५१)।

छाँटे—अव्य० (दे० छन्टो) शीघ्र; (कौ० ३, १४७)। —हें अव्य० शीघ्र, जल्दी से; 'छांटहें काहें विद्या आवड' — सत्वरं कथा विद्या आपद्यते; (उ० व्य० प्र० २२-११)।

छाअ—स्त्री० (सं० प्रा० छाया) दीप्ति, प्रभा, कांति; (जंबू० २, १३, २)।

छाअण—न० (सं० छादनं>प्रा० छायण) आच्छादन, छाजन; (प्रा० पैं० १, १७४)।

छाआ—स्त्री० छाया, (छंदशास्त्र में) गाथा के सत्ताईस भेदों में से एक; (प्रा० पैं० १, ६०)। टि०- गाथा के २७ भेद निम्नलिखित हैं—लक्ष्मी, ऋद्धि, वृद्धि, लज्जा, विद्या, क्षमा, देवी, गौरी, धात्री, चूर्णा, छाया, कांति, महामाया, कीर्त्ति, सिद्धि, मानिनी, रामा, गाहिनी, विश्वा, वासिता, शोभा, हरिणी, चक्री, सारसी, कुररी, सिंही, हंसिका।

छाइअ—वि० (सं० छादित>प्रा० छाइअ) आच्छादित, ढका हुआ; (प० च० ११३, ५४)। छाइय-वि० आच्छादित; (ण० ८, ४, ४; सुदं० ७, १६, ६, वी० १, २)।

छाइल्ल—वि० (सं० छायावत्) कांतियुक्त, छाया वाला; (षड्)। पुं० (दे०) प्रदीप, दीपक; (दे० ना० मा० ३, ३५)। वि० १. सदृश, समान, २. अधूरा; (दे० ना० मा० ३, ३५)। ४. रूपवान्, सुडौल; (दे० ना० मा० ३, ३५)।

छाई—स्त्री० (दे०) माता, देवी, देवता; (दे० ना० मा० ३, २६)।

छाज—अक० (सं० सज्ज>प्रा० छज्ज =शोभना, चमकना) शोभना, सुशोभित होना; "ताहिं प्रासादन्हि करो वज्रमणि घटित काञ्चन कलश छाज,' अर्थात् उन महलों के ऊपर हीरों से जटित कंचन-कलश सुशोभित थे; (कौ० २, २४२)।

छाटसि—क्रि०, व०, म० पु०, त्यागना, छोड़ना; "सत्त मग्गु जणि छाटसि" — सन्तं मार्गं मा त्यजः," (उ० व्य० प्र० १०-११)।

छाटेंहि—अव्य० (सं० झटिति) तुरंत, फौरन, जल्दी से; (उ० व्य० प्र० ५१-१६)।

छाण—न० (दे०) १. धान्य आदि का मलना; (दे० ना० मा० ३, ३४)। २. गोमय, गोबर; (दे० ना० मा० ३, ३४)। ३. वस्त्र, कपड़ा; (दे० ना० मा० ३, ३४)। ४. विष्ठा, "भोयणु मुऍवि छाणु असिउ;" (प० च० ४४, ११, ६)।

छाणवइ—वि० (सं० षण्णवति) छियानवे; (प्रा० पैं० १, ११७)।

छाणी—स्त्री० (दे०) १. धान्य आदि का कुचलना या पीसना; २.वस्त्र, कपड़ा; (दे० ना० मा० ३, ३४)। ३. गोमय, गोबर; (दे० ना० मा० ३, ३४)।

छात्तु—पुं० (सं० छात्रः) १. शिष्य, २.विद्यार्थी;"छात्तु गाउं या—छात्रो ग्रामं गच्छति; (उ० व्य० प्र० १६-१२)।

छानिअ—पू० का० क्रि०, छान कर

"पीवए परो कापडे छानिअ;" पीने के समय उसे कपड़े में छान कर पीते थे; (की० ३, ६६)।

√छाय—(सं० छादय्>प्रा० छाय) आच्छादन करना, ढकना। छाइज्जइ—अक० छाया होना, 'छाइज्जइ छत्तहँ पब्भारें" जहाँ ऊपर तने हुए छत्रों की छाया हो रही थी; (ण० ३, १२, ६)।

छायंत—व० कृ० (प० च० ७, १, ४)।

छायंती—कृ० ढकती हुई; (सं० रा०)।

छायउ—सक०, भू० का०, ढँका; (सं० रा०)।

छाय—वि० (दे०) १. बुभुक्षित, भूखा; २. दुर्बल; (दे० ना० मा० ३, ३३)। स्त्री० (सं० प्रा० छाया) १. प्रकाश के अवरोध से उत्पन्न अंधेरा, छाया, तुल० राज० छाय; (रा० ४३; क० १, ७, ६)। २. कांति, प्रभा, दीप्ति; (प० च० ३, ४, ७)।

छाया—स्त्री० (सं० प्रा० छाया) प्रकाश के मार्ग में किसी व्यवधान के कारण उसके आगे होने वाले प्रकाश का अभाव या इसके कारण उत्पन्न होने वाला कुछ हलका अंधेरा; (जंबू० ६, १४, ६)।

छाया-पेक्खणय—न० (सं० छाया-प्रेक्षणक>प्रा० छाया-पेक्खणग, पेक्खणय) छायानाटक; (प० च० ५२, ८, १०)।

छायाभंगु—पुं० (सं० छाया+भङ्ग) कांति-भंग, सौंदर्य या आभा के नष्ट होने का भाव; "आयहो छाया-भंगुण किज्जइ," अर्थात् इनकी कांति-भंग न की जाए; (रि० ३, १२)।

छार¹—पुं० (सं० क्षार>प्रा० छार) राख, भस्म, कोयला; तुल० मगही गु० राज० छार; (प्र० चिं०; प्रा० पैं० १, १६५; जस० १, २८, २, परम० २, ६०; सं० रा०)। —ड पुं० भस्म; (प्रा० गु० ३६, २१)।

छार²—पुं० (दे०) भालू, रीछ; (दे० ना० मा० ३, २६)।

छारय—न० (दे०) १. मुकुल, कली; २. ऊख की छाल; (दे० ना० मा० ३, ३४)।

छारय—पुं० (सं० ऋक्ष) ऋक्ष, रीछ; "कहिं जि दिट्ठ छारया, लवन्त मत्त-मोरया। कहिं जि दिट्ठ सीह-गण्डया, धुणन्त-पुच्छ-दण्डया"; (प० च० ३२, ३, ५)।

छारहडि—स्त्री० (सं० क्षारघटी) छार का पात्र; (प० च० ६, १०, ७)।

छाला—स्त्री० (दे० छल्ली) चर्म, "वग्घछाला," अर्थात् व्याघ्रचर्म; (प्रा० पैं० २, ७७)।

छाली—स्त्री० (सं० छागी) अजा, बकरी, तुल० राज० छाळी; (जस० ३, ६, ६)।

छाव—पुं० (सं० शाव>प्रा० छाव) वत्स; तुल० राज० छावउ (शावक, युवक); (जस० ३, ७, ११)।

छावड—पुं० (सं० चपेट>प्रा० चपेटा) चपेटा, थप्पड़; (सं० रा०)।

छावत्तरि—वि० (सं० षट्सप्तति>प्रा० छावत्तरि) सत्तर और छह; (प० च० १०२, ८६)।

छासट्ठ—वि० (सं० षष्+षष्टि, षट्ष-

ष्टि) छियासठवाँ; (प० च० ६६, ३७)।

छासी—स्त्री० (सं० छच्छिका) मट्ठा, छाछ, सारहीन तक्र, मथा हुआ दही; तुल० राज० छासि; (दे० ना० मा० ३, २६)।

छासीइ—वि० (सं० षडशीति) छियासी, —म वि० (सं० षडशीतितम) छियासीवाँ; (प० च० ८६, ७४)।

छाह—स्त्री० (सं० छाया>प्रा० छाहा) छाँह, छाँव; तुल० राज० छाह; (भ०)।

छाहर—वि० [सं० छाया(=कांति, शोभा) >प्रा० छाया, छाहा>अप० छाह+ड, छाहर) सुंदर; (की० २, २१६)।

छाहा—स्त्री० (सं० छाया>प्रा० छाहा) छाँह, आतप का अभाव; (जस० ४, १२, १५)।

छाहि—स्त्री० (सं० छाया>प्रा० छाहा, छाहिया, छाही) छाँह, छाया; (सुदं० १, ६, १०; प० च० २६, १३, ७; जस० ३, २१, ६)।

छाही—स्त्री० (दे०) गगन, आकाश। —मणि पुं० सूर्य; (दे० ना० मा० ३, २६)।

छाहु—पुं० (सं० उत्साह>प्रा० उच्छाह) उत्साह; (णे०)।

छिक—स्त्री० [सं० क्षुत्(क्षु=छींकना, क्षौति=छींकता है)>प्रा० छिक्क) छींक, (महा० २६, ४, २; म० २, ४२, २)।

छछइ—स्त्री० (दे०) असती, कुलटा; (सुदं० ४, १४, ४)।

छिछय—पुं० (दे०) १. देह, शरीर; २. जार, उपपति; ३. न० फल-विशेष; (दे० ना० मा० ३, ३६)।

छिछोली—स्त्री० (दे०) छोटा जल-प्रवाह; (दे० ना० मा० ३, २७)।

छिड—न० (दे०, १. चूडा, चोटी; २. छाता, छत्र, ३. धूप-यंत्र; (दे० ना० मा० ३, ३५)।

√छिद—(सं० छिद्>प्रा० छिद) छेदना, विच्छेद करना; (जस० १, १५, ७)। छिन्दइ—सक० (सं० छिनत्ति) विच्छेद करना; (भ०)। छिन्दन्ति—व० प्र० पु०, ब० छेदना; तुल० गु० छींदवुँ, (प० च० ७, १४, ४)।

छिदण—न० (सं० छेदनं) खंडन, छेद, कर्तन; (जस० १, २, १२; क० ४, १०, ३)।

छिअ—स्त्री० न० (सं० क्षुत>प्रा० छीअ) छींक; (दे० ना० मा० ८, ७२)।

छिक्क—स्त्री० (सं० छीत्कृत>प्रा० छिक्क) छींक; (सुदं० ८, १५, १; दे० ना० मा० ३, ३६)।

छिक्कोअण—वि० (दे०) असहिष्णु; (दे० ना० मा० ३, २६)।

छिक्कोट्टती—स्त्री० १. पैर की आवाज, २. पाँव से धान्य को कुचलना; (दे० ना० मा० ३, ३७)।

छिक्कोलिअ—वि० (दे०) पतला, कृश; (दे० ना० मा० ३, २५)।

छिछी—अव्य० छी-छी, धिक् धिक्, अनेक धिक्कार; (पड्)।

√छिज्ज—(सं० क्षीयते) छीजना। —इ व० (प्रा० पैं० १. ३७)। —इ व० [सं० छिद् (कर्मणि) सं० छिद्यते) नष्ट होना; (सुदं० ८, २, ३, हे० ४३४, १; ण० ७, २, १२)। छिज्जंत—कृ० (सं० छिद्+शतृ) (जंबू० ४, १७, १४)। छिज्जति—छिद्धातो: कर्मणि, "छिज्जंति सीसाइँ णिवडंति भीसाइँ," वहाँ पशुओं के सिर कट-कट कर भीषण रूप से गिर रहे थे; (जस० १, १६, ६)। छिज्जंतु—भू० का० (सं० छिद्यमान्) कट गया; (ण० ८, १५, ११)।

छिड्ड—नं० (सं० छिद्र) १. छिद्र, विवर; (प० च० २०, १६२)। २. दोष; (संधि० १०, १, १८)।

छिण्णगुलि—स्त्री० (स० छिन्याङ्गुलि) कटी हुई अँगुली; (जस० २, ६, १८)।

√छिण्ण—(सं०√छिद्) छिन्न-भिन्न कर देता है।—इ व० (रि० ३, १४)। —हुँ आ०, काटो; (क० ८, ७, ८)।

छिण्ण—पुं० (दे०) जार, उपपति; (दे० ना० मा० ३, २७)। वि० (सं० छिन्न) १. पृथक्; (ण० ३, १५, ६; जस० २, २६, ८)। २. कटा हुआ; "चक्केण छिण्णु;" अर्थात् चक्र द्वारा कटा हुआ; (व० ५, १२, ७)।

छिण्णच्छोडण—न० (दे०) शीघ्र, तुरंत, जल्दी; (दे० ना० मा० ३, २९)।

छिण्णा—स्त्री० (दे०) असती, कुलटा; (दे० ना० मा० ३, २७)।

छिण्णाल—पुं० (दे०) जार, उपपति; (दे० ना० मा० ३, २७)।

छिण्णालिआ—स्त्री० (सं० छिन्ना+नारी>प्रा० छिण्णा+णरी> अप० छिण्णलिआ, छिण्णाली) छिनाल, व्यभिचारिणी स्त्री; (दे० ना० मा० ३, २७)।

छिण्णिअ—वि० (सं० छिन्न) खंडित, छेद-युक्त; (क० ३, १६, ६)।

छिण्णोब्भवा—स्त्री० (दे०) दूर्वा, दाभ; (दे० ना० मा० ३, २९)।

छित्त—वि० (सं० क्षिप्त) १. फेंका हुआ, बिखेरा हुआ, डाला हुआ, २, त्यागा हुआ; (सं० रा०; जस० १, १२, ३)। ३. वि० (दे०) स्पृष्ट, छुत; छुआ हुआ; (ण० ३, ७, ६; सा० १३१)। पुं० (सं० क्षेत्र>प्रा० खेत्त, खित्त, छित्त) कृषि-भूमि; क्षेत्र, (भ०)।

छिद्द—पुं० (दे०) १. छोटी मछली; (दे० ना० मा० ३, २६)। २. पुं० (सं० छिद्र) छेद; (सं० रा० भ०; जस० ३, २७, २०)।

छिद्द्द—देखो छिड्ड (प० च० ६४, ६)।

छिन्दाछिन्दि—स्त्री० (सं० छेदन) हथियारों से परस्पर काटते हुए संघर्ष या लड़ाई (a fight involving on both sides piercing with weapons); (प० च० ५२, ६, ५)।

छिन्न—वि० (सं० प्रा० छिन्न, प्रा० छिण्ण) खंडित, त्रुटित; (भ०; जंबू० ८, २, ४)।

छिन्नुच्छाह— वि० (सं० छिन्न+छाया) कांतिहीन; "छिन्नच्छाद्द पईवउ

छिज्जइ;' अर्थात् प्रदीपों की शोभा मंद कर दी गई; (जंबू० ८, १६, ४)।

छिप्पंती—स्त्री० (दे०) १. व्रत-विशेष, २. उत्सव-विशेष; (दे० ना० मा० ३, ३७)।

छिप्पंडूर—न० (दे०) १. गोबर-खंड, २. वि० विषम, कठिन; (दे० ना० मा० ३, ३८)।

छिप्प—न० (दे०) १. भीख, २. पुच्छ, लाङ्गून; (दे० ना० मा० ३, ३६)।

√छिप्प—(दे०; प्रा० छिव) स्पर्श करना; (जस० ३, २२, ६)। —इ सक० (ण० १, ७, ५; महा० ६६, १७, ३)।

छिप्पाल—पुं० (दे०) खाने में लगा हुआ बैल; (दे० ना० मा० ३, २८)।

छिप्पालुअ—न० (दे०) पूँछ, लाङ्गूल; (दे० ना० मा० ३, २६)।

छिप्पिंडी—स्त्री० (दे०) १. व्रत-विशेष; २. उत्सव-विशेष; ३. पिष्ट, पिसान; (दे० ना० मा० ३, ३७)।

छिप्पीर—न० (दे०) १. तृण, २. पुआल, भूसी; (दे० ना० मा० ३, २८)।

छिमिछिमिछिम—अक० (सं० छिमछिमाय्) छिम-छिम आवाज करना। छिमिछिमिछिमंत; (प० च० २६, ४८)।

छिरि—पुं० (दे०) भालूक की आवाज; (प० च० ६४, ४५)।

छिल्ल—न० (दे०) १. छिद्र, विवर; २. कुटी, छोटा घर; ३. वाड़ का छिद्र; (दे० ना० मा० ३, ३५)।

छिल्लर—न० (दे०) छोटा तालाव, जोहड़; (दे० ना० मा० ३, २८)।

छिल्लर—न० तालाव, "तउ तउ रहिरहों छिल्लर भरइ;" (प० च० १६, ६, ५)।

√छिव—स्पर्श करना, छूना। —इ सक० सं० स्पृशति; (सुदं० ७, १६, ८; महा० ४, ५, १३)। छिवंति; (सुदं० १०, १०, १२)।

छिविअ—वि० सं० स्पृष्ट; छूआ हुआ; (दे० ना० मा० ३, २७)। न० ईख का टुकड़ा; (दे० ना० मा० ३, २७)।

छिव्व—वि० (दे०) कृत्रिम, बनावटी; (दे० ना० मा० ३, २७)।

छिव्वर—वि० (दे०) चपटी, "अइतणुएण पईपरगत्तें। छिव्वर-णासें पविरल-दन्तें" अत्यंत दुबला, लम्बा शरीर, चिपटी नाक और दूर-दूर दांत, (प० च० १, २, ११)।

छिव्वोल्ल—न० (दे०) अरुचिप्रकाशक मुख-विकार-विशेष; निंदार्थक तिरछी चितवन या कटाक्ष वाला मुख; (दे० ना० मा० ३, २८)।

छिहंडअ—पुं० (दे०) दही का बना हुआ मिष्टान्न; तुल० गु० सिखंड; (दे० ना० मा० ३, २६)।

√छिह—सं० स्पृश्; स्पर्श करना, छूना। छिहंतु—कृ० छूते हुए, स्पर्श करते हुए; (सं० रा०)।

छिहिंडिनिल्ल—न० (दे०) दधि, दही; (दे० ना० मा० ३, ३०)।

छींडी—स्त्री० (दे०) छिपाव के लिए छिद्र; "अइ-भयेण कि-वि खाल के-वि छींडी जोयाविय;" (प्रा० गु० १२, ४१)।

छीदु—पुं० (सं० छिद्र>प्रा० छिद्द) छेद; (सि० १, ४१)।

छुंछुई—स्त्री० (दे०) कपिकच्छु, केवाँच का पेड़; (दे० ना० मा० ३, ३४)।

छुंद—वि० (दे०) बहुत, प्रभूत; (दे०-ना० मा० ३, ३०)।

√छुअ—(सं० छुप स्पर्शे) स्पृश करना; (उ० व्य० प्र० ६, १६)। —ए (सं० छुपति) स्पर्श करना; "रख एक छुअरु न पाइअ," अर्थात् एक तृण का स्पर्श भी कोई नहीं कर सकता था; (की० ३, ६०)।

छुई—स्त्री० (दे०) बक-पंक्ति; (दे०-ना० मा० ३, ३०)।

छुट्ट—वि० (सं० छुटित>प्रा० छुट्ट) मुक्त, बंधन-मुक्त; (सुदं० ८, १५, २, जंबू० १०, १७, १८)।

√छुट्ट—अक० (सं०√छुट् च्छेदेन> प्रा० छुट्ट) छूटना, बंधन-मुक्त होना। —इ (सं० छुटति) छूटती है; (रि० ५, ११; सुदं० ६, १७, ६)। —ए; (म० २, १३, ८)। तुल० गु० छुटवूं, म० सुटणें, राज० छुटणो, छुटबो। छुडवि—पू० का० क्रि०, छूट कर, (सं० रा० २६)।

छुट्टकेस—पुं० (सं० छुटित+केश> प्रा० छुट्ट+केस) खुले हुए बाल; सुदं० २, १०, ८)।

छुट्टहीरा—पुं० मणिजटित हीरा; (सुदं० ७, ७,५)।

छुट्टिय—वि० मुक्त; (क० ३, २०, १०)।

छुट्ठ—वि० (दे०) क्षिप्त, फेंका हुआ; (भ०)।

छुडु—अव्य० (दे०) १. यदि "छुडु चीरत्तणु होइ मणूसहो" —यदि मनुष्य में थोड़ा धैर्य हो; (प० च० ८, ३, ७)। २. क्षिप्र, शीघ्र, "छुडु उयरहों हुंतउ णीसरिउ;" (क० ३, १६, १; जस० २, २८, ४)। ३. तुरंत; तुल० राज० छुड्डु (तुरंत); (म० १, २४, ५)। छुडु छुडु—अव्य० १. क्रमेण; (प० च० २४, ८, ५)। २. शीघ्र-शीघ्र; ३. पुनः पुनः (जबू० ४, २०, २)।

छुड्हीर—पुं० (दे०) १. शिशु, २. चद्रमा; (दे० ना० मा० ३, ३८)।

छुद्ध—वि० (सं० क्षुब्ध>प्रा० खुद्ध, छुद्ध) क्षोभ-प्राप्त; (सं० रा०)। २. वि० (दे०) क्षिप्त, प्रेरित; (सुदं० ११, ८, ६; ण० ४, ७, १५) । छुद्धु; (भ०)। ३. क्षिप्त, निमग्न; (म० २, ३४, ३; जंबू० १०, ६, ७)।

छुद्धउ—भू० का० (दे०) सं० क्षिप्त; डाल दिया; (जंबू० ५, १३, १५)।

छुद्धु—डाल दिया; (रि० ५, ४)।

√छुब्भ—(सं० क्षुभ्>प्रा० छुब्भ) क्षुब्ध होना, विचलित होना। —हिं अक०; (सुदं० ८, १४, ४)।

छुब्भत्थ—(दे०) देखो छोब्भत्थ; (दे०-ना० मा० ३, ३३)।

छुर—सक० (सं०√छुर्) १. लेप करना, लीपना; २. छेदन करना, छेदना; ३. व्याप्त करना; (प० च० २८, २८)।

छुरमड्डि—पुं० (दे०) नापित, नाई,

हज्जाम; तुल० राज० छुरमुंडि; (दे० ना० मा० ३, ३१)।

छुरहत्थ—पुं० (दे०) नापित, नाई; (दे० ना० मा० ३, ३१)।

छुरिअ—स्त्री० (सं० क्षुरिका) छुरी, चाकू; (क० ३, १३, ७)।

छुरिआ—स्त्री० (दे०) मिटटी; (दे० ना० मा० ३, ३१)।

छुरिय—वि० (सं० छुरित) १. व्याप्त, २. लेप किया हुआ, पुता हुआ; (प० च० २८, २८)।

छुरिय—स्त्री० (सं० क्षुरिका) छुरी; तुल० राज० छुरि, छुरिआ, छुरिका, छुरिगा, छुरिया, छुरी; (जस० २, ६, ८)।

छुरिया—स्त्री० (सं० क्षुरिका > प्रा० छुरिगा, छुरिआ) छुरी, आयुध-विशेष; (प० च० ७१, २५)।

छुरी—स्त्री० (सं० क्षुरी > प्रा० छुरी) छुरी, चाकू; (दे० ना० मा० २, ४)।

छुल्लुच्छुलय—वि० (दे०) अधीर; "पईं विरहिउ छुलुच्छुलउ;" (प० च० ४५, १०, १०)।

छुह—स्त्री० १. (सं० सुधा > प्रा० छुहा) अमृत, पीयूष, तुल० राज० छुहा; (क० ५, ४, ८)। २. (सं० क्षुधा) भूख; (जंबू० १, ७, ७)। ३. चूना, सुधा, (चूर्ण); (जस० १, १८, ३१)। —चुण्ण पुं० न० (सं० सुधा + चूर्ण) चूना; (प० १, ५, ६)। —तण्ह स्त्री० (सं० क्षुधा + तृष्णा) क्षुधा की अभिलाषा; (क० ५, १०, ४)।

√छुह—सं० √क्षिप् डालना, फेंकना। (म० २, ५५, ५)। —इ सं० क्षिपति; (भ०)। उ डाल रखो, "पंजरहिँ तणु छुहउ;" —पिंजड़े में शरीर को डाल रखो; (क० ६, ७, ५)। —हिवि पू० का० क्रि० "तें राएँ छुहिवि मंजूसियाहें" —तब राजा ने पुत्री को पेटी में बंदकर; (क० १०, १२, ६)। छुहेवि—पू० का० क्रि० ले जाकर; (ण० ६, २१, २)।

√छुह—सं० स्पृश्, स्पर्श करना, छूना। —इ सक० (सं० छुप् > प्रा० छुव) स्पर्श करा, छूना; "किं जारहों णाहिँ सुवण्णु घरें। जें कडउ घडावें वि छुहइ करें" —अर्थात् 'क्या यार के घर में सोना नहीं है, जो कड़े गढ़वाकर हाथ में पहन सकता है,' (प० च० १६, २, २)। छुहन्तु—व० कृ० (सं० छुप् > प्रा० छुव) स्पर्श करता हुआ, छूता हुआ; "करयलु छुहन्तु मुहें पण्णयहुँ," कभी साँपों के मुखों को करतल से छूता हुआ; (प० च० ६, ३, ६)।

छुहा—स्त्री० १. (सं० क्षुधा) बुभुक्षा, भूख; राज० छुहा; (दे० ना० मा० २, ४२)। २. (सं० सुधा > प्रा० छुहा) चूना; (ण० ६, १५, १०; प० च० ६, १४, ५)। —रस पुं० (सं० सुधारस) चूने का रस; (व० ७, १३, ७)। छुहु—चूना (प० च० ११, १, ६)।

छुहिअ—वि० (सं० सुधित) लिप्त, पोता हुआ; (दे० ना० मा० ३, ३०)।

छुहिय—वि० (सं० क्षुधित) भूखा; (प्रा० गु० २३, २४)।

√छूट—(सं० छुट् > प्रा० छुट्ट) छूटना,

बंधन-मुक्त होना, "अन्धार कूट, दिगवि-जय छूट;" अर्थात् राशीभूत अंधकार के समान थे और दिग्विजय के लिए उसी समय बंधन से मुक्त किए गए थे; (की० ४, १६)। छूटेसि—अक०, व०, म० पु० मुक्त हो, "कैसे तौ तो छूटेसि," कथं तस्या मुक्तोऽसि; (उ० व्य० प्र० २३-१८)।

छूढ—वि० (दे०) क्षिप्त, प्रेरित; (प० च० ३२, १२, ६; भ०)।

छूडु—वि० (सं० क्षिप्त) पड़ा हुआ; "भयकूवि छूडु णउ णिद्दमुक्खु पावेइ मूडु" —वह मूर्ख भय के कूप में पड़ कर न नींद पाता है और न भूख, (सुदं० २, १०, २५)।

छेंडा—स्त्री० (दे०) १. शिखा, चोटी, २. लता-विशेष; (दे० ना० मा० ३, ३६)।

छेंडी—स्त्री० (दे०) छोटी गली, छोटा रास्ता; (दे० ना० मा० ३, ३१)।

√छेअ—(सं० छेदय्>प्रा० छेअ) छिन्न करना। छेवइ—सक० (सं० छेद-यति) काटता है; तुल० मगही छेवइ; (कण्हपा, चर्यापद)। छेवि—पू० का०-क्रि० (सं० छिद्+त्वा) (जस० १, ६, ७)।

छेअ—वि० (सं० छेक>प्रा० छेअ) विदग्ध, रासिक; (प्रा० पैं० १, ११६)।

छेइल्ल—वि० (दे०, प्रा० छइल, छइल्ल) विदग्ध, चतुर, (सुदं० ७, १०, ७)।

छेउ—पु० (दे० प्रा० अछे) अंत, से "सेत्तुजि सिद्धा के-वि मुणि ताहँ कु जाणइ छेउ;" तुल० गु० छेडो; (रि० २, ५; प्रा० गु० १६, २२)।

छेग—वि० (सं० छेक) निपुण, चतुर; (दे० ना० मा० ३, ४७)।

छेज्जइँ—न० (सं० छेद्य) काटना-छाँटना; "पत्तपुप्फाणफलछेज्जइँ;" (ण० ३, १८)।

छेञ्छइ—स्त्री० (दे०) वेश्या, रंडी; "जो जो को वि जुवाणु, तासु तासु कुल-उत्ती। मेइणि छेञ्छइ जेम, कवणें णरें ण ण भुत्ती;" (प० च० ५, १३, ६)।

छेत्त—पु० न० (सं० क्षेत्र>प्रा० छेत्त) खेत; (क० १, ३, ३; जंबू० ५, ६, ६)। —माला स्त्री० क्षेत्रमाला; (जंबू० ६, ६, १०)।

छेद—पु०(सं० छेद)वलि; "कतहु मिसि-मिल कतहु छेद;" कहीं (मुसलमानों में) बिसमिल्ला कहकर पशुओं को मारा जाता था; (की० २, १६५)।

छेघ—पु० (दे०) १. चंदनादि सुगंधित वस्तु का विलेपन; २. चोर, चोरी करने वाला; (दे० ना० मा० ३, ३६)।

छेमय—पु० (दे०) चंदन आदि का विलेपन; शरीर पर सुगंधित लेप करना; (दे० ना० मा० ३, ३२)।

छेय—पु० (दे०, प्रा० छेअ) पर्यंत, प्रांत; "दीहर-छेयइँ अत्याणाइँ व;' (प० च० २६, १७, ३)। २. छेद; (भ०)।

छेय—पु० (सं० छेद>प्रा० छेअ) काटना, चुकाना, "अवसर अज्जु सामिरि-णछेयहोँ;" अर्थात् स्वामी के ऋण को काटने (चुकाने) का आज ही अवसर है; (जंबू० ६, ३, ५)। २. नाश, विनाश;

(प० च० १, ६, ५) । ३. क्षय; "छेयकाले दीवय-सिह णावइ," क्षयकाल की दीपशिखा की भांति कन्या स्वभाव से मलिन होती है; (प० च० ६, ३, ६) ।

छेयउ—वि० (सं० छेदक>प्रा० छेदअ) कष्टकर; (हे० ३६०, १) ।

छेयण—न० (सं० छेदन>प्रा० छेअण) कर्तन काटने का काम; "चलणछेउ किज्जइ सिरछेयणु; '—पैर काटे जाएँ और फिर सिर का छेदन किया जाए; (जस० ४, २७, ३२) ।

√छेर—(दे०) चिल्लाना । —इ अक० (सुदं० ६, २, १२) ।

छेरअ—पुं० (सं० आश्चर्य>प्रा० अच्छ-रिअ) विस्मय; (जंबू० १, १०, ४, ६) ।

छेल—पुं० स्त्री० (दे०) अज, छाग, बकरा; तुय० राज० छेल (छेली स्त्री०); (दे० ना० मा० ३, ३२; जस० १, १०, १) ।

छेल—वि० (सं० छेक>प्रा० छेग, छेअ) चतुर, निपुण; "समीहए छेलहए वणि-दओ;" 'वह वणीन्द्र चतुरों के बीच मनो-वांछित क्रीड़ा करता'; (सुदं० ७, १, १२) ।

छेलि—स्त्री० (दे०) बकरी तुल० राज० छेली; (उ० व्य० प्र० ५०—३) ।

छेली—स्त्री० (दे०) थोड़े फूल वाली माला; (दे० ना० मा० ३, ३१) ।

छेहि—स्त्री० (दे०) अंत; "छेहि जई आपणि सही होसिउं तुल्ला बेउ;' (प्रा० गु० १०, ४४) ।

छोइअ—पुं० (दे०) दास, नौकर; (दे०-ना० मा० ३, ३३) ।

छोक्करण—पुं० (सं० छूत्कार) छुछ-कारने की ध्वनि; (जस० १, ३, १३) ।

छोक्कार—पुं० (दे०) छोक्कार शब्द; (जंबू० ५, ६, ६) ।

छोटा—वि० (सं० क्षुद्र) तुच्छ, ओछा; "बडि साति छोटाहु काज," अर्थात् छोटे से काम के लिए बड़ी शक्ति का प्रयोग; (की० ३, ६१) ।

छोट्टिअ—वि० (सं० क्षुद्र) छोटी; (सुदं० ६, १५, ६) ।

छोटी—वि० (सं० क्षुद्र) लंबाई, विस्तार में कम, "पुहवी भए जा छोटी," अर्थात् धरती छोटी हुई जा रही थी; (की० ४, ११५) ।

छोटेओ—वि० (सं० क्षुद्र) लंबाई, विस्तार या डील-डोल में कम, छोटा; "छोटेओ तुरुका भभकी मार;" अर्थात् छोटा भी तुर्क क्रोधित होकर ताड़न करता है; (की० २, २११) ।

√छोड—(सं० छोटय्>प्रा० छोड) छोड़ना, बंधन से मुक्त करना । —इ सक० (सुदं० ४, १०, ६) । छड्डए—भू० का० छोड दिया; (प्रा० पैं० २, १७३) । छोडो—भा०, छोड़ दो; तुल० राज० छोडणो, छोडबो; (प्रा० पैं० २, १५७) । २. (सं० छुर्) बंधन मुक्त करना । छोडि—पू० का० क्रि० (रा० ४०) । छोड्ड—भू० का०, उन्मुक्त किया; "धरणि धूलि अन्धार छोड्ड;" अर्थात् पृथिवी ने धूल के द्वारा अंधेरे को

उन्मुक्त किया; (की० ४, १२४); छोड्डिअ—पू० का० क्रि० छोड़कर; (की० २, ५७)। छोड्डिओ—पू० का० क्रि० छोड़कर; (की० २, ५७)। छोलिले—भू० का० छुड़ा लेते थे; (की० ४, ५६)।

छोडण—पुं० (सं० छोटय् >प्रा० छोड) छोड़ना; (सुदं० ६, १०, ७)।

छोडाविय—वि० (सं० छोटित >प्रा० छोडाविय) छुड़ाया हुआ, बंधन-मुक्त; तुल० गु० छोडाव्यो; (प० च० ११, ६, ६)।

छोडि—वि० (सं० क्षुद्रा) छोटी; (प्रा० पैं० १, ६)।

छोडिअ—वि० (सं० छोटित >प्रा० छोडिअ) त्यक्त-मुक्त, बंधन-मुक्त किया हुआ; (सुदं० ५, १०, ६)।

छोत्ति—स्त्री० (दे०) छूत, अस्पृश्य का संसर्ग, छूने का भाव; "...... महु पहें छोत्ति हुआ," मेरे मार्ग में छूत हो गई, (सुदं० ८, २२, ७)।

छोब्भ—पुं० (दे०) पिशुन, खल, दुर्जन; तुल० राज० छोब्भ; (दे० ना० मा० ३, ३३)।

छोब्भत्थ—वि० (दे०) अप्रिय, अनिष्ट; (दे० ना० मा० ३, ३३)।

छोब्भाइत्ती—स्त्री० (दे०) १. छूने के अयोग्या, २. अप्रीतिकर स्त्री; (दे० ना० मा० ३, ३६)।

छोभ—(दे०) देखो छोब्भ; तुल० राज० छोभ; (दे० ना० मा० ३, ३३)।

√छोल्ल—(दे०) छीलना, छाल उतारना। —ई सक० (जंबू० ५, २, ८)।

छोलिज्ज—सं० √ तक्ष् (कर्मणि) छीलना। —इ सक० (जंबू० १, १०, ५)। छोल्लिज्जन्तु—छीला जाता; (हे० ३९५/१)।

छोल्लिय—स्त्री० (दे०) छोटी सी लकड़ी; (सुदं० ५, ५, १२)।

छोह—पुं० (दे०) १. समूह, यूथ; २. विक्षेप; (दे० ना० मा० ३, ३६)।

छोह—पुं० (सं० क्षोभ >प्रा० खोभ) क्रोध, गुस्सा; तुल० राज० छोह; (प्रा० गु० २६, १४)। छोहु—क्षोभ; (सि० १, २१)।

√छोह—(सं० क्षिप्) डालना। —इ सक० "आसीविसमुहि को करु छोहइ"—कौन अपना हाथ सर्प के मुख में डालता है, (म० २, ५५, ५)।

छोहार—पुं० छोहार द्वीप; द्वीप-विशेष; (जंबू० ६, ११, ६; क० ८, १०, ३)।

छोहिय—वि० (सं० क्षोभित) क्षोभ-प्राप्त; (जस० २, २७, ३)।

ज

ज—पुं० (सं० प्रा० ज) व्यंजन वर्ण-विशेष। अल्पप्राण, सघोष, यह निरनुनासिक स्पर्श संघर्षी तालु स्थानीय व्यंजन है। प्राकृत काल में शब्द के प्रारंभ में य का ज उच्चारण होता रहा है। अपभ्रंश में मूल ज और य परिणत ज उपलब्ध हैं। सर्व० (सं० यः) जो, (प्रा० पैं० १, १)। लो०—'ज जसु मणिट्ठु तं तासु

लग्गु,' अर्थात् जो जाही को भावना सो ताही के पास; (प० सि० च०)। २. अव्य० (सं० यदि) यदि; तुल० प्राचीन म० जइं; (उ० व्य० प्र० ६, १४; पाहु १७७, सं० रा०, हे० ३४३; प० च० १, १०, २)।

जं—वि० १. (सं० यः>प्रा० जं) जिस प्रकार; (महा० ६६, १६, १)। जिस; (की० ३, ७३)। २. जो (महा० ६६, २, ६; जंबू० २, १३, ७; हे० ३६५, २)। ३. सर्व० जो कोई; (की० २, १२४)। ४. अव्य० जैसे; (प० च० १२, ६, १)। (सं० यत्) जब तक, जो, यदि; वाक्यांतर का संबंध सूचक अव्यय (सं० रा०); जितना; (प० च० १२, २, १(; (सं० यावत) जब, (प० च० १५, १०, १)। —दिवसु, जिस दिन से (प० च० १६, ५, २)।

जंकयसुकअ—वि० (दे०) थोड़े उपकार से अधीन होने वाला; (दे० ना० मा०- ३, ४५)।

जंगम—वि० (सं० जङ्गम>प्रा० जंगम) चलने वाला, जिसे एक से दूसरी जगह ले जा सकें, जीवित; (व० १, ४, ६; जस० २, ३७, ७)। जंगमु; (वी० १, २)। २. छप्पय छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, १२२)।

जंगल—न० (सं० जङ्गल>प्रा० जंगल) मांस; (ण० ६, ६, ५)। जंगलु; "जंगलु असंतु वणु रक्खसु मारिउ णरए पत्तु," मांस का भोजन करने वाला वन राक्षस मारा गया और नरक को प्राप्त हुआ, (सुदं० २, १०, ११)। टि०- मूल सं० शब्द जङ्गल का अर्थ 'एकांत निर्जन स्थान' है, परन्तु वन में शिकार से प्राप्त मांस को भी जंगल कहा गया। यहाँ अर्थ संकोच द्रष्टव्य है।

जंगा—स्त्री० (दे०) पशुओं के चरने की जगह; (दे० ना० मा० ३, ४०)।

जंगुलिय—पुं० (सं० जाङ्गुलिक) गारुड़िक, विष-मंत्र का जानकार; (प० च० १०५, ५७)।

जंघ—स्त्री० (सं० जङ्घा>प्रा० जंघा) जंघा, जाँघ, जानु के नीचे का भाग; (प्रा० पैं० १, २६; जंबू० १०, १५, ७)।

जंघतराल—पुं० (सं० जङ्घा+अन्तराल) जंघाओं का मध्यवर्ती स्थान; (जंबू० ४, ११, १२)।

जंघयामु—पुं० (सं० जङ्घा+स्थामन् =शक्ति) दौड़ने व युद्ध करने की शक्ति; (जंबू० ५, ८, २८)।

जंघा—स्त्री० (सं० जङ्घा>प्रा० जंघा) जाँघ; (जस० १, १७, १५)। —बलु पुं० (सं० जङ्घा+बल) जंघाबल; (जस० २, २१, १)।

जंघाच्छेअ—पुं० (दे०) चत्वर, चौक; (दे० ना० मा० ३, ४३)।

जंघामय, जंघालुअ—वि० (दे०) द्रुतगामी, वेग से जाने वाला; (दे० ना०- मा० ३, ४२; पड्)।

जंजं—अव्य० जहाँ-जहाँ; (की० ४, १३२)।

जंचि—स्त्री० (दे०) स्त्री; (सं० रा०)।

जंजि—अव्य० जब; (प० च० २, ७, ८)।

जंत—न० (सं० यन्त्र>प्रा० जंत) १. यंत्र मशीन, वह उपकरण जो कोई विशेष कार्य करने अथवा कोई वस्तु बनाने के लिए हो; (ण० १, ६, ११; सि० १, ११५; व० ६, १२, ५)। २. यान; (क० १, ३, १०)।

जंत—कृ० सं०√या+शतृ, यान्त, यन्त) चलते-चलते; हउँ थंभमि रविहि विमाणु जंतु," —मैं चाहूं तो सूर्य के विमान को चलते-चलते थाम दूँ; (जस० १, ६, १४)। जाते हुए; (ण० १, ६, ११, व० १, १७, ५; जंबू० ३, ६, १३)। —अ कृ० (सं० गम्+शतृ) (जंबू० ११, ८, ३)।

जंतउवलि—स्त्री० भ्रमणावलि; 'सा सीह हियत्तें णिसुणि पयत्तें मणु थिरु करि जंतउ वलि;" अर्थात् हे सिंह, धैर्य-पूर्वक सावधान होकर तथा मन को स्थिर करके उस भ्रमणावलि को सुन; (व० २, ६, २०)।

जंता—न० (सं० यन्त्र>प्रा० जंत) कल, युक्तिपूर्वक शिल्प आदि कर्म करने के लिए मशीन विशेष; (व० ३, १, ५)।

जंति—कृ० (सं० गम्+शतृ स्त्रियाम्) (जंबू० ६, २५)।

जंतीय—कृ० (सं० गम्+शतृ) स्त्री०, व०।

जंतु—पुं० (सं० जन्तु>प्रा० जंतु) जीव, प्राणी; (जंबू० ८, १४, ४)।

√जंप—(सं०√जल्प्> प्रा० जंप) बोलना, कहना। —इ सक० (क० २, १६, ७)। जंपंत—वर्तमान कालिक क्रिया के लिए व० कृ० का प्रयोग (सं० जल्प्+शतृ) 'जिगल अं जंपंत मणे;' ऐसा पिंगल शास्त्र के वेत्ता मन में कहते हैं; (प्रा० पैं० १, १७८)। जंपहि—बात कीजिए; "मह्नु सहु जंपहि तुहुं एक्कल्लउं" (म० १, १७, ६)। जंपिअइँ—जल्पना करना, जप करना, (दे० सा० दो०)। जंपिउं—भू० का०, कहा; (विला०)। जंपिज्जइ—जल्प (कर्मणि); (सुदं० ८, ८, ३)। जंपियइं—व० कहना; (सा० १०४)। जंपेविणु—पू० का० क्रि० (सं० जल्प्+एविणु) कहकर; (व० २, ७, १)। जम्पइ—व० बोलना, कहना; (की० २, २२६; प० च० ५, १६, ४)। जम्पउ—क्रि०, व० कहता हूं, "तैं तैसन जम्पउ अवहट्ठा;" (की० १, ३६)। जम्मिअ—भू० का० (सं० जल्पित> प्रा० जप्पिअ) कहा, निवेदन किया; (की० ३, ६)।

जंपण—नं० (दे०) १. मुख २. अपयश; (दे० ना० मा० ३, ५१)। जम्पण न०-(दे०) मुख; (प० च० २५, १६, १)।

जंपणिया—वि० (सं० जल्पिका) बातूनी, बक्की; (ण० ६, ६, ६)।

जंपाण—न० (सं० जम्पान>प्रा० जंपाण) वाहन-विशेष; झांपी, पालकी; "वर तुरय जंपाण धय चमर छत्त मयमत्त मयगल," उत्तम घोड़ों, पालकियों, ध्वजा, चामर छत्र तथा मदोन्मत्त हाथियों का उपभोग करें; (म० १, २६, ३)। —अ न० पालकी; (जंबू० ११, १, ६)।

जम्पाण न० मृतक-यान, शव-यान; (प०-च० १०, ११, ३)।

जंपाय—न० (सं० जम्पान > प्रा० जंपाण) वाहन-विशेष; (सि० १, १५)।

जपिच्छय—वि० (दे०) जिसको देखे उसी को चाहने वाला; (दे० ना० मा० ३, ४४)।

जंपिय—वि० (सं० जल्पित > प्रा० जंपिय) उक्त, कथित; (ण० २, ५, १)।

जंपिर—वि० जल्पितृ > प्रा० जंपिर) बोलने वाला, भाषक; (सुदं० ८, ८, ३)। २. वाचाल, बातूनी; (दे० ना० मा० २, ६७)।

जंपेक्खिरमग्गिर, जपेच्छिरमग्गिर—वि० (दे०) जिसको देखे उसी की याचना करने वाला; (दे० ना० मा० ३, ४४)।

जंवाल—न० (दे०) १. सैंवाल, शेवाल, मोथे की भाँति हरे रंग का पदार्थ जो पानी के ऊपर उग आता है, काई, २. एक प्रकार का पौधा; (दे० ना० मा० ३, ४२)।

जम्बीर—न० (सं० जम्बीर) नींबू का वृक्ष; (जंबू० ४, १६, ४)।

जंबु—पुं० (सं० जम्बु > प्रा० जंबु) सियार, प्राणी-विशेष (प० च० १०५, ५६)। न० वृक्ष-विशेष, जामुन; (जंबू० ४, २१, २)। —अ पुं० (दे०) १. वेतस वृक्ष २. पश्चिम दिशा के रक्षक; (प० च० १०५, ६४)। —इ न० बेंत का वृक्ष; (जंबू० ५, ८, १३)। —उ पुं० (सं० जम्बूक) शृगाल; (जंबू० ६, ११, ८)। जम्बु—पुं० शृगाल; (व० ५, ५, २)।

जंबुदीअ—पुं० (सं० जम्बूद्वीप > प्रा० जंबूदीव) द्वीप-विशेष; (ण० १, ६, १)। जंबूदीउ; (जंबू० ६, १, १३)। जंबु-दीव; (क० १, ३, १)।

जंबुमालि—पुं० रावण का पुत्र; (प०-च० ५६, २०)।

जंबुल—पुं० (दे०) १. वानीर (बेंत या सरकंडा) का वृक्ष; २. सुरा-पात्र; (दे०-ना० मा० ३, ४१)।

जंबुसामि—पुं० जम्बूस्वामी; (जंबू० ४, १०, २)।

जंबुहल—न० (सं० जम्बूफल) जंबू वृक्ष का फल; (जंबू० ४, ८, २७)।

जंबू—न० (सं० जम्बू > प्रा० जंबू) वृक्ष-विशेष, जामुन का वृक्ष; (प० च० २०, ३, ६)। पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३०)। —दीव पुं० जम्बूद्वीप, एक विशाल जैन और पौराणिक क्षेत्र। हिंदू पुराणों के अनुसार भारतवर्ष; जंबू० ३, २, ३)।

जंबूअ—पुं० (सं० जम्बूक > प्रा० जंबूअ) शृगाल; (जंबू० १०, १०, ८)।

जंबूणय—न० (सं० जाम्बूनद) १. सुवर्ण, सोना; (प० च० ५, १२६; जस० २, ४, ६)। २. राजा-विशेष-नाम; (प० च० ४८. ६८)।

जंबूमालि—पुं० (सं० जम्बूमालिन्) रावण का एक पुत्र, रावण का एक सुभट; (प० च० ५६, २२)।

जंभ—पुं० (दे०) तुष, धान्य आदि का छिलका; (दे० ना० मा० ३, ४०)।

जंभणंभरण, जंभणभरण, जंभरणय—वि० (दे०) स्वच्छंद-भाषी, जो इच्छा में आवे वह बोलने वाला; (दे० ना० मा० ३, ४४)।

जंभणी—स्त्री० (सं० जृम्भणी) तंत्र-प्रसिद्ध विद्या-विशेष; (प० च० ७, १४४)।

जंभल—पुं० (दे०) जड़, सुस्त, मंद; (दे० ना० मा० ३, ४१)।

जंभा, जंभाअ—अक० (सं० जृम्भ्) जँभाई लेना; (षड्)। जिम्भइ—व० (सं० जृम्भते); (प० च० १७, १५, ३)।

जंभाइय—न० (सं० जृम्भित>प्रा० जंभिय) जँभाई, जृम्भा; (सुदं० ४, ११, ४)।

जंमायउ—पुं० (सं० जामातृ) जामाता, दामाद; (सि० १, ३)।

जअ—न० (सं० जगत्>प्रा० जग) संसार; "दो तिण्णि जए पुरिसा," अर्थात् ऐसे लोग जगत् दो ही तीन हैं; (जंबू० ७, ४, ८)। पुं० (सं० प्रा० जय) जीत, शत्रु का पराभाव; (प्रा० पैं० १, ३७)।

√जअ—(सं० जि) जीतना, जय होना। —इ व० (सं० जयति) (प्रा० पैं० १, १)।

जअल—वि० (दे०) आच्छादित; (षड्)।

जइ—अव्य० (सं० यदि>प्रा० जइ) अगर, यदि; तुल० मगही जे; (क० १, २, ४; प्रा० पैं० १, ६; जंबू० २, १८, ४)। २. यदि, चाहे; (की० १, २६)। ३. (सं० यत्र) जहाँ, जिस स्थान में; (षड्)। पुं० (सं० यति) संन्यासी, जति; जितेंद्रिय; (संधि० २, ६, ६; जस० ४, १६, १५)। —वर पुं० (सं० यतिवर) श्रेष्ठ संन्यासी; (क० ६, २, ८; ण० २, ७, १०)।

जइउ—अव्य० (सं० यदा>प्रा० जइ) जब, जिस समय; (प० च० ४०, ४, ७)।

जइच्छ—वि० (सं० यथा+इच्छा) स्वेच्छाचारी; "जो किर होइ जहिच्छहों दूसहु;" अर्थात् स्वेच्छारी के लिए जो दुःसह होता है; (जंबू० १०, २२, ६)।

जइणि—स्त्री० जयनी, विश्वभूति की पत्नी; (व० ३, ३, ७)।

जइयकालि—अव्य० (सं० यदा+काल) जिस काल से, जिस समय से; (सं० रा०)।

जइयहुं—अव्य० (सं० यदा) जब; (ण० ३, १५, ७) २. ज्यों ही; (क० २, ८, १०)। जइयहुँ—अव्य० जब; (प० च० १६, ४, ३; जंबू० २, २, १)। जइयहु—अव्य० जब; (जस० २, ३३, ६)।

जइवि—अव्य० (सं० यद्यपि>प्रा० जइवि) जो भी; (जंबू० ५, ४, १; प० च० २, १४, १)।

जइविहु—अव्य० (सं० यथा+विध> प्रा० जह+विह) जिस प्रकार; (सु० ८, ४)।

जइसउ—वि० (सं० यादृश>प्रा० जरिस) जैसा; (की० १, १७)।

जइसा—अव्य० (सं० यादृश>प्रा० जइस) जैसा, जिस तरह का; (भुसुकुपा, चर्यापद)।

जइहि—अव्य० (सं० यथा+विव>प्रा० जह+विह) जिस प्रकार; (महा० ६६, १४, ६)।

जई—पुं० (सं० यति>प्रा० जइ) संन्यासी; (क० ५, ६, १)।

जईसर—पुं० (सं० यतीश्वर) मुनिव्रत, "विहिं भेयहिं ताइँ समासियाइँ, घरवइ जईसरसंठियाइँ," अर्थात् ये व्रत संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। एक गृहस्थव्रत (अणुव्रत) और दूसरे मुनिव्रत (महाव्रत); (क० ६, २०, २)।

जउ—अव्य० (सं० यत्र>प्रा० जइ) जहाँ; (प० च० ६, १०, ८)। सर्व० (सं० यः) जो; (की० १, १३)। पुं० (सं० जव) वेग, शीघ्रता, तेज, फुर्ति; (जंबू० ६, १०, ६)। पुं० विजय; "विणएं इंदियजउ संपज्जइ;" विनय से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है, (ण० ३, २, ८)। अव्य० (सं० यावत्) जब; (क० २, २१, ३)। पुं० (सं० जेतः) जीतना; "न पवत्तइ केम वि० पुत्तु तउ वहुवोल्ल-महल्ल नए-ण-जउ," अर्थात् तुम्हारा पुत्र किसी भी तरह संसार में प्रवृत्त नहीं होगा, यह वधुओं के बड़े-बड़े बोलों के न्याय से जीता नहीं जा सकता; (जंबू० ६, १६, ४)। जउ जउ—अव्य० (सं० यत्र यत्र) जहाँ-जहाँ; (प० च० २५, ६, १०)।

जउणंदण—पुं० (सं० यदुनन्दन>प्रा० जउणंदण) श्रीकृष्ण; (रि० ६, ६)।

जउण—स्त्री० (सं० यमुना> प्रा० जउणा) यमुना नदी; (रा०; म०; जंबू० ६, १६, ५; प० च० १२, ४, ३)।

जउणा—स्त्री० यमुना नदी; (क० १२, १२, ६)।

जउणदत्त—पुं० (सं० यमुनादत्त) मथुरा के राजकुमार का नाम; (प० च० ८८, १६)।

जउणदेव—पुं० (सं० यमुनदेव) व्यक्ति-विशेष-नाम; (प० च० ८८, ४)।

जउणा—स्त्री० यमुना, वणिक स्त्री का नाम; (प० च० ३३, ६५)।

जउलगि—अव्य० (सं० यावत्+लग्नम्) जब तक, जब लग, (क० ८, २, ६);

जओ—अव्य० ज्यों, समान; "नलिनि पत्त जओ महि चलइ;" कमलिनी के पत्ते के समान धरती डोलने लगी; (की० ३, ६४)।

जक्ख—पुं० (सं० यक्ष>प्रा० जक्ख) देवयोनि विशेष, प्राचीन म० जक्ख; (क० १, ३, ७; (जंबू० ४, १, ६; जस० १, २१, ७)। २. मध्यलघु पंचकल गण, रगण (ऽ।ऽ); (प्रा० पैं० १, २६)। ३. पुं० एक विद्याधर राजा, जो रावण का मौसेरा भाई था; (प० च० ८, १०२)। —कद्दम पुं० (सं० यक्ष+कर्दम) केसर, अगर, चंदण, कपूर और कस्तूरी का समभाग मिश्रण; (भ०)। —ाहिवइ पुं० (सं० यक्षाधिपति) १. एक विद्याधर राजा; २. कुबेर, यक्ष-राज; (प० च० ८, ११६)।

जक्खकद्दम—पुं० (सं० यक्ष+कर्दम > प्रा० जक्खकद्दम) सुगंधित लेप; केसर, अगर, चंदन, कपूर और कस्तूरी का समभाग मिश्रण; (प० च० १, १४, ८; ण० ६, १८, १३)।

जक्खण—अव्य० (सं० यत्+क्षण > प्रा० ज+खण) जिस क्षण; (प्रा० नै० १, १६०)।

जक्खथाण—पुं० (सं० यक्ष+स्थान > प्रा० जक्ख+ठाण, थाण) नगर-विशेष; प० च० ३३, १, १)।

जक्खदत्त—पुं० यक्षदत्त, कुंचपुर का राजकुमार; (प० च० ४८, ११)।

जक्खसेण—पुं० (सं० यक्षसेन) यक्षदत्त के पिता; (प० च० ४८, १४)।

जक्खामर—पुं० (सं० यक्ष+अमर) यक्षदेव; (जंबू०)।

जक्खाहिव—पुं० (सं० यक्षाधिप) यक्षों के राजा, यक्षों के स्वामी, कुबेर; (व० ८, ३, ८)।

जक्खिंद—पुं० (सं० यक्षेन्द्र > प्रा० जक्खिंद) यक्षों का स्वामी; (जस० ४, १७, १२)।

जक्खिणी—स्त्री० (सं० यक्षिणी > प्रा० जक्खिणी) यक्ष की स्त्री; (ण० १, १३, ८)।

जक्खिलदेव—पुं० यक्षदेव; (रि० १०, २)।

जक्खी—स्त्री० (सं० यक्षी) यक्षिणी; (जस० १, १२, १३)।

जक्खेसर—पुं० (सं० यक्ष+ईश्वर) यक्षेश्वर. (जंबू० १, १७, ३; सि० १, १७)।

जग—न० (सं० जगत् > प्रा० जग) विश्व, संसार; (जंबू० २, १४, १०)। —रवि वि० (सं० जगत्+रवि) संसार के सूर्य अर्थात् ज्ञान को प्रकाशित करने वाले; (जस० ३, ३६, ६)।

जगकण्टउ—वि० (सं० जगत्+कण्टिक > प्रा० जग+कंटिय) जगत् के लिए कण्टक स्वरूप, जगत्-पीडक; (प० च० ६, ३, ४)। टि०—मूल संस्कृत शब्द 'जगत्कण्टक,' गौणी लक्षणा और अलंकार का परिणाम अर्थांतर के रूप में द्रष्टव्य है।

जगजग—अक० (सं०√चकास्) चमकना, उज्ज्वल होना, दीपना। जगजगंत, जगजगेंत—व० कृ०, (प० च० ७७, २३)।

जगजत्त—पुं० (सं० जगत्+यात्रा > प्रा० जग+जत्ता) संसार की यात्रा; (ण० ६, ६, ११)।

जगज्जुइ— पुं० व्यक्ति-विशेष-नाम; (प० च० ८२, ६५)।

√जगड—(दे०, प्रा० जगड) झगड़ना, कलह करना। —इ सक० (प० च० १०, ७, ५)। जगडंत—व० कृ० (सं० युध्यन्) झगड़ा करते हुए; तुल० म० झगगडणें; (ण० ३, १५, १२)। जगडन्त—व० कृ०, (प० च० १०, ८, ५)। जगडिज्जंत—व० कृ० (प० च० ८२, ६)।

जगडण—न० (दे०) कदर्थन, पीडन; (जंबू० १, १०, ११)।

जगडिअ—वि० (दे०) १. विद्रावित (पराभूत किया हुआ, भगाया हुआ, तितर-वितर किया हुआ, पिघलाया

हुआ), तिरस्कृत; (दे० ना० मा० ३, ४४)। २. पीड़ित; (संधि० १०, ३, १०)।

जगण—पुं० (छंदशास्त्र में) मध्य गुरु वर्णिकगण (।ऽ।); (प्रा० पैं० १, ३६)।

जगकुमुद—वि० (सं० जगत्+कुमुद) जगत् में फैले हुए कुमुद के समान; (की० ३, १६२)।

जगतिलउ—पुं० (सं० जगत्+तिलक) जगतिलक नामक देव; (क० ४, १५, १०)।

जगत्तएँ—पुं० (सं० जगत्+त्रय) तीन जगत्, "ण अत्थि जयत्तएँ तेत्तिय वाणि;" (क० ५, ६, ३)।

जगद्दण—पुं० (सं० जनार्दन) विष्णु, परमेश्वर; (संधि० २, १३, १)।

जगन्तकर—वि० (सं० जगत्+अन्तकरण >प्रा० जग+अंत+करण) संसार का विनाशक; (प० च० १७, ६, १०)।

जगपरमेसर—पुं० (सं० जगत्परमेश्वर) जगत्स्रष्टा; (जस०)।

जगप्पगास—वि० (सं० जगत्+प्रकाश) जगत् का प्रकाश करने वाला; (प० च० २२, ४७)।

जगर—पुं० (सं० जगर) कवच, वर्म; (दे० ना० मा० ३, ४१)।

जगल—न० (दे०) १. ईख की मदिरा का नीचला अंश, २. मदिरा का नीचला भाग; (दे० ना० मा० ३, ४१)।

जगहर—पुं० (सं० जगत्+गृह>प्रा० जग+घर, हर) जगत् रूपी घर; "ससि उग्गउ सुट्ठु सुसोहियउ। णं जग-हरें दीवउ वोहियउ" —'अत्यंत सुशोभित चंद्रमा उग आया मानो, जग रूपी घर में दीपक जल उठा हो; (प० च० १५, ६, ४)।

√जगाव—(सं० जागरयति) जगाना, "गोहारि घालि सूत जगाव;" धूत्कारं कृत्वा सुप्तं जागयति; (उ० व्य० प्र० ५०, २०)।

जगि—पुं० (सं० जगत्>प्रा० जग) संसार, "जगि धम्ममूलु वेउ जि क हिउ;" तुल० राज० जगि, जगी; (महा० ६६, १६, ३)।

जगीस—पुं० (सं० जगत्+ईर्षा>प्रा० जग+ईसा) जग से ईर्ष्या; (व० ४, ४, ३)।

जगु—पुं० (सं० जगत्>प्रा० जग) संसार; तुल० राज० जगु, जगू; (हे० ३४३, १)। —त्तम वि० (सं० जगदुत्तम) संसार में उत्तम; (जस० ४, २८, ३०)।

√जग्ग—(सं०√जागृ) जागना। —इ व०; (जंबू० १०, २२, १)। जग्गंत—कृ० (सं० जागृ+शतृ) जागते हुए; (जंबू० ३, १४, १३)। जग्गंती—व० कृ० (प्रा० पैं० १, ७२)।

जग्ग—पुं० (सं० यज्ञ>प्रा० जण्ण) याग, यज्ञ; (प० च० १६, ८, ९)।

जग्गिअ—वि० (सं० जागृत>प्रा० जग्गिअ) जगा हुआ; (सुदं० १, १, ८)।

जच्चंजण—न० (दे०) १. अगरु, सुगंधयुक्त द्रव्य-विशेष; २. कुंकुम, केसर; (दे० ना० मा० ३, ५२)।

जच्चंध—वि० (सं० जात्यन्ध) जन्मांध,

जन्म के अंधे; "जच्चंधहँ अंधहँ भुक्खियाहँ;" जो जन्म से अथवा रोग से अन्धे हो गए थे, भूखे थे; (जस० २, २६, १८)। जच्चन्ध—वि जन्मांध; (प० च० २७, १२, ४)।

जच्च—वि० (सं० जात्य>प्रा० जच्च) उत्तम जातवाला, कुलीन, (प० च० १४, १०, ४)। पुं० (दे०) पुरुष, आदमी; (दे० ना० मा० ३, ४०)।

जच्चास—पुं० (सं० जात्यश्व, जात्याश्व) उत्तम जाति का अश्व; (प० च० ५४, २९)।

जच्छंद—वि० (दे०) स्वच्छंद; (दे० ना० मा० ३, ४३; षड्)।

√जज्जर—(सं० जर्जरय्) जीर्ण करना, खोखला करना। जज्जरिआउ भू० का० (सं० जर्जरिता) जर्जरित हो गई; (हे० ३३३, १)। जज्जरिउ—भू० का; (प० च० १५, ४, ५)।

जज्जर—वि० (सं० जर्जर>प्रा० जज्जर) जीर्ण; (जस० ३, २७, २०)।

जज्जराइं—वि० जर्जर; (रि० ३, ६)।

जज्जरिउ—वि० (सं० जर्जरित>प्रा० जज्जरिय) जीर्ण किया हुआ; (जंबू० ४, १९, २१)।

जज्जरिय—वि० (सं० जर्जरित>प्रा० जज्जरिय) जीर्ण किया हुआ, छिद्रित, खोखला किया हुआ; (सं० रा०;जस० १, १२, १)।

जज्जल्ल—पुं० हम्मीर के मंत्री का नाम; (प्रा० पैं० १, १०६)।

जज्जाहि—क्रि०, आ० (सं० या>प्रा० जा) जाओ; "जज्जाहि वप्प देदेहि माहि, ससुरहों रिउ मारिवि लच्छि सहि,"—अतः हे भद्र तुम जाओ और शत्रु को मारकर श्वसुर की भूमि व राज्य-लक्ष्मी इन्हें दिला दो, (ण० ६, १२, ११)।

जञे—क्रि० वि० (सं० यः+इव) ज्यों, समान, जैसे; "तरुण तुरुक असवार वाँस जञे चाबुक फुट्टइ;" अर्थात् तुरुण तुर्क उन घोड़ों पर सवार थे और उनके चाबुक बाँस के समान फूटते या आवाज करते थे; (की० ४, ६३)।

जञो—अव्य० (सं० यतः>प्रा० जओ) क्योंकि, जिस कारण से, जब; (की० २, १९०)।

जञोन—सर्व० (सं० यः) जो एक संबंध वाचक सर्वनाम जिसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनाम के वर्णन में कुछ और वर्णन की योजना की जाती है; (की० २, ७९)।

जट्ट—पुं० (सं० जर्त>प्रा० जट्ट) देश-विशेष; (भ०)।

जट्ठि—स्त्री० (सं० यष्टि>प्रा० जट्ठि) आयुध-विशेष, लकड़ी; (प० च० ५९, १५)।

जड—स्त्री० (सं० जटा>प्रा० जडा, जड) १. जटाएँ, उलझे और परस्पर चिपके हुए बाल; २. जड़, मूल; पुं० जडत्व; (जस० ३, २१, १६)। —धारि पुं० (सं० जटाधारिन्) जटाधारी संन्यासी; (ह० च० ३९, ७५)।

जडमइ—वि० (सं० जडमति) जड़मति, विवेकहीन बुद्धिवाला; (जंबू० १, ६, ११)।

जडयण—पुं० (सं० जडजन>प्रा० जडयण) मूर्ख व्यक्ति; (त्र० २, १५, १४)।

जडा—स्त्री० (सं० जटा>प्रा० जडा) उलझे और आपस में चिपके हुए बाल; (जस० ४, १६, १३)।

जडाइ—(सं० जटायु>प्रा० जडाउ) गृध्र पक्षी-विशेष; (प० च० ४१, ७५)।

जडाउ—पुं० (सं० जटायु>प्रा० जडाउ) गृध्र पक्षी-विशेष; (प० च० ४४, ४०)। —ण पुं० ग्रध्र पक्षी-विशेष; (प० च० ४४, ५५)।

जडागि—पुं० (सं० जटाकिन्) गृध्र पक्षी-विशेष; (प० च० ४१, ६५)।

जडिअ—वि० (दे०) (सं० जटित>प्रा० जाडअ) जड़ा हुआ। —इल्ल (स्वार्थे); (जंबू० ५, ७, ७)।

जडिउ—क्रि०, भू० का० (सं० जटित> प्रा० जाडअ) जड़ गए, (ण० १, १३, १०)।

जडिय—वि० (सं० जटित>प्रा० जाडअ) जडित, युक्त; (जस० १, २६, ११)।

जडिल—वि० (सं० जटिल>प्रा० जडिल) खचित, जड़ दी गई हो; (जंबू० ६, ६, १२)। "दीहरोमावलिजडिल-गलु;" अर्थात् उनका गला लंबे बालों से जटिल था; (जस० २, ३१, ३)।

जडिल्ल—वि० (सं० जटिन्) जटाधारी; (जंबू० ५, ७, ७)।

जडीअ—वि० (सं० जटित>प्रा० जाडअ) जड़ा हुआ; (क० ४, ६, ४)।

जड्ड—स्त्री० (सं० जाड्य) जाड़ा; (प्रा० पैं० २, १६५)।

जढर—पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० १२, ६२)।

जढराणल—न० (सं० जठर+अनल) जठरज्वाल, जठराग्नि; (जस० २, ३६, ८)।

√जण—(सं० जनय्>प्रा० जण, जणेइ) उत्पन्न करना, पैदा करना। —इ व० (सं० जनयति>प्रा० जणेइ) (प० च० ७, १२, ३; भ०)। जणंत—कृ० (सं० जनय्+शतृ) (जंबू० ४, २२, १३)। —वि पू० का० क्रि०; (जंबू० २, १७, १)। —हि (विधि०) (जंबू० ८, १०, १७)। √जणिज्ज—(सं० जनय् (कर्मणि) —इ व०; (जंबू० ११, ५, ४)। जणेसइ—भू० का० (सं० जनिष्यति) उत्पन्न करेगा; (ण० ७, ३, ६)।

जण—पुं० (सं० जन>प्रा० जण) मनुष्य, व्यक्ति; तुल० राज० जणूँ; (भ०; सं० रा०; प्रा० पैं० १, ४७)। पुं० न० (सं० यान>प्रा० जाण) वाहन; (क० २, २, ४)।

जणअ, जणय—पुं० (सं० जनक) सीता के पिता, मिथिला के हरिवंशीय राजा; (प० च०)।

जणअ—वि० (सं० जनक>प्रा० जणय) उत्पन्न करने वाला, "नीसल्लु अवरु हियवउ जणउ;" अर्थात् हृदय को और निःशल्य उत्पन्न करने वाले मेरे इस प्रति-

रूप को देखिए; (जंबू० २, १८, १४)।

जणउत्त—पुं० (दे०) १. गाँव का मुखिया या प्रधान पुरुष; २. विट, भाण्ड; (दे० ना० मा० ३, ५२)।

जणकम्मण—पुं० (सं० जन+कर्मन्) लोगों का वशीकरण या वश में करना; "जणकम्मण-थंमण-मो णयं;" अर्थात् लोगों का वशीकरण, स्तंभन व मोहन करने वाले; (जंबू० ९, १६, ८)।

जणकिण्ण—वि० (सं० जन+आकीर्ण) जन-विस्तीर्ण; "भणइ जिणंदु भरहें जणकिण्णी चंपानयरि अत्थि वित्थिण्णी;" अर्थात् भारतदेश में जनसंकुल और विस्तीर्ण चंपा नामक नगरी थी; (जंबू० ३, १०, ११)।

जणजाणिय—वि० (सं० जन+ज्ञात) लोक-प्रसिद्ध; (जंबू० ८, ४, ४)।

जणण—वि० (सं० जनन>प्रा० जणण) जनक, उत्पादक; (जंबू० १०, २४, १०; प० च० ५, ६, २)। —उल्लउ (जण; णुल्लउ) वि० पिता; (जस० ३, ३९, १४)।

जणणायर—पुं० (सं० जननागर) नागरिक जन; (जंबू० १०, १९, १२)।

जणणि—स्त्री० (सं० जननी>प्रा० जणणि, जणणी) माता; (प० च० ९, ६, ६; जंबू० ४, २२, २६)। जणणी; (जस० १, २३, ११)।

जणणिका—स्त्री० (स० जननि, नी> प्रा० जणणि) जननी; (उत्तरपुराण)।

जणत्ति—स्त्री० (सं० जन+आर्ति) लोक-व्याधि; (ण० ६, ८, २)। —हरु वि० (सं० जनार्तिहर) लोगों की आपत्ति का हरण करने वाला, (जस० ३, ३५, १४)।

जणदाण—पुं० (सं० जनदान) सुपात्र दान; (जंबू० ३, २, ९)।

जणद्दणा—पुं०, कर्त्ताकारक, ए० (सं० जनार्दन>प्रा० जणदण) विष्णु; (प्रा० पैं० २, ७५)।

जणणंदणी—वि० (सं० जननन्दिनी) लोगों को आनंद देने वाले (जंबू० १०, १९, १३)।

√जणम—(सं० √जम्>प्रा० जम्म; सं० जन्म) जन्म लेना। —उ भू० का०-कृ० रूप, जन्म लिया; (प्रा० पैं० २, १४९)।

जणमण—पुं० (सं० जनमनस्) लोगों का मन; (जंबू० ४, १५, ५)।

जणमेजअ—पुं० जनमेजय, चंपापुरी का राजा; (प० च० ८, १५६)।

जणयंगया—स्त्री० (सं० जनकाङ्गजा) जानकी, राजा रामचंद्र की पत्नी; (प० च० ४१, ७८)।

जणय—पुं० (सं० जनक) राजा जनक, सिता के पिता, (प० च० २१, ३३)। —दुहिया, धूआ स्त्री० (सं० जनक+दुहितृ) जानकी, सीता; (प० च० २३, ११)। —णंदिणी-स्त्री० (सं० जनक +नन्दिनी) जानकी; (प० च० ९४, ४६)। —निवतणया स्त्री० (सं० जनक +नृपतनया) सीता; (प० च० ४८, ६०)। —सुअ (सं० जनक+सुत) जनक राजा का पुत्र, भामण्डल, (प० च० ६५, २८)।

जणयाणुराउ—पुं० (सं० जनकानुराग) प्रजा-जनों के प्रति अनुराग; (व० १, १५, १२)।
जणवइ—पुं० (सं० जनपद > प्रा० जणवय) जनपद; "आणाविउ जणवइ ताउ देव," तब, हे देव, मुझे जनपद में लाया गया; (क० ६, १६, ८)।
जणवउ—पुं० (सं० जनपद) साधारण लोग, "जइ जणवउ णीरसु मलिण-चित्तु;" अर्थात् जनपद (साधारण लोग नीरस और मलिन) चित्त हैं; (क० १, २, ४)।
जणवय—पुं० १. (जानपद > प्रा० जणवय) पौरजन, देश का निवासी; (जंबू० २, ६, १३)। २. (सं० जनव्रज) मनुष्य-समूह; ३. पुं० (सं० जनपद) बसा हुआ स्थान, जन-स्थान, राष्ट्र; (ण० १, ११, ३)।
जणवर—पुं० (सं० जन्तुवर) जानवर; (क० ८, ७, ६)।
जणवल्लह—पुं० दाशरथी भरत के साथ दीक्षित राजा, जो राज्य का परित्याग कर श्रमण हुआ; (प० च० ८०, ४)।
जणविंद—पुं० (सं० जनवृन्द) जन-समूह; (जंबू० ४, २२, २४)।
जणाणंद—पुं० (सं० जन+आनन्द) लोगों का आनंद; (जंबू० ४, ८, ११)।
जणाविअ—वि० (सं० ज्ञापित) जताया हुआ, सूचित; (क० २, ६, ६)।
जणि—अव्य० प्रतिषेध बोधक या वर्जनात्मक अव्यय, नहीं, मत; (उ० व्य० प्र० १०-८)।
जणिय—वि० (सं० जनित > प्रा० जणिअ) उत्पादित, उत्पन्न किया हुआ; (प० च० ३, १, १३; ण० १, १५, १०)।
जणिहार—कृ० सं० गमिष्यत् गमिष्यन्ती गमिष्यद् वा; जाते हुए; "जणिहार दीस;" (उ० व्य० प्र० १२-११)।
जणी—स्त्री० (सं० जनी) स्त्री, नारी; (प० च० १५, ७३)।
जणु—अव्य० (प्रा० जणु) इव, तरह, माफिक, जैसा; (प० च० ६, १६, ६)। मानो; (रा०, सं० रा०)। पुं० (सं० जन > प्रा० जण) मनुष्य; (हे० ३३६, १)।
जणे—अव्य० नहीं, मत; (उ० व्य० प्र० १०-६)।
जणेर—वि० (सं० जनयितृ) जनक, उत्पादक (प० च० २२, ६, ८; संधि० ५, ११, ७)। पुं० पिता; (भ०)।
जणेरि—स्त्री० (सं० जनयित्री) माता, माँ, (भ०)। जणेरी—स्त्री० जननी, (ण० ५, ८, १५)। जणेरीणंदणु—पुं० (सं० जनयित्री+नन्दन) जननी का पुत्र; (रि० ३, ११)।
जणोव—पुं० (सं० यज्ञोपवीत > प्रा० जण्णोवईय) जनेऊ; (को० २, २०४)।
जणोह—पुं० (सं० जन+ओघ) जन-समूह; (विला०)।
जण्ण—पुं० (सं० यक्ष > प्रा० जण्ण) यज्ञ, (ण० ६, ६, ७; सि० १, १५)। —विहाण पुं० (सं० यज्ञविधान) यज्ञ अनुष्ठान; (व० ७, २२, ८) जण्णोइय-

पुं० यक्षादिक; (व० २, १६, ७)।

जण्णहर—पुं० (दे०) नर-राक्षस, दुष्ट मनुष्य; (पड्)।

जण्णोह्रण—पुं० (दे०) राक्षस, पिशाच; (दे० ना० मा० ३, ४३)।

जण्ह—न० (दे०) छोटी स्थाली (मिट्टी का घड़ा या हांडी, रांधने का वर्तन, कड़ाही; २. वि० काले रंग का; (दे०-ना० मा० ३, ५१)।

जण्हली—स्त्री० (दे०) नीवी, नारा, इजारवंद; (दे० ना० मा० ३, ४०)।

जण्हविपुत्त—पुं० (सं० जाह्नवीपुत्र) व्यक्ति-विशेष-नाम; (प० च० ५, २०१)।

जण्हवी—स्त्री० (सं० जाण्हवी) १. सगर चक्रवर्ती की एक पत्नी, भगीरथ की जननी; (प० च० ४१, ५१)। २. गंगा, नदी-विशेष; (प० च० १०२, १०७)।

जण्हुय—पुं० [सं० जानु+क (न०)> प्रा० जण्हुआ (स्त्री०)] जानु, घुटना; (ण० १, १७, ७)। जण्हुव—पुं० जानु; (प० च० ३८, ११, ७)।

जत—अव्य० (सं० यावत्) जितना; (प्रा० पैं० १, ४१)।

जती—पुं० (सं० यति) संन्यासी; (की० २, ११०)।

जत्त[1]—पुं० (सं० यत्न>प्रा० जत्त) उद्योग, उद्यम, चेष्टा; (प० च० ६, १०, ८)।

जत्त[2]—स्त्री० (सं० यात्रा>प्रा० जत्ता) देशांतर-गमन, देशाटन; (प० च० १६, १०, ७)। जत्ता; (भं०)। —कज्ज पुं० (सं० यात्रा+कार्य) यात्रा का कार्य; (जंबू० ३, १२, ११)।

जत्ता—स्त्री० (सं० यात्रा>प्रा० जत्ता) यात्रा; (जस०)। —ए (ण० २, २, १५)।

जत्तु, जेत्थ—अव्य० (सं० यत्र>प्रा० जत्थ) जहाँ; (हे० ४०४, १)।

जत्तुच्छव—पुं० (सं० यात्रा+ उत्सव> प्रा० जत्ता+उत्सव) यात्रा का उत्सव; (जंबू० ३, १३, २)।

जत्ते—वि० (सं० यावत्) जितने; (प्रा० पैं० १, १२४)।

जत्थ—अव्य० (सं० यत्र>प्रा० जत्थ) जहाँ; (प्रा० पैं० १, ४१; जंबू० १, ६, १)।

जदो—अव्य० (सं० यतः>प्रा० जत्तो, जओ) क्योंकि, कारण कि; (की० १, ५६)।

जन—पुं० (सं० जन>प्रा० जण) लोग; "देसिल वयणा सब जन मिट्ठा;" (की० १, ३५)।

जनधण—पुं० (सं० जनधन) सार्वजनिक धन; (जंबू० ५, ४, ७)।

जननि—स्त्री० (सं० जननि>प्रा० जणणि) माता; (की० २, ५६)।

जनि—अव्य० इव, मानो, जैसे; "जनि दोसरी अमरावती का अवतार भा;" (की० २, ६६)।

जनु— अव्य० मानो; (की० २, १४५)।

जन्त—न० (सं० यन्त्र>प्रा० जंत) कल, युक्तिपूर्वक शिल्प आदि कर्म करने के

लिए पदार्थ-विशेष; (प० च० १५, १०, ६)।

जंत्तिय—वि० (सं० यान्त्रिक>प्रा० जंतिअ) कल चलाने वाला, यन्त्र पर कर्म करने वाला, (प० च० १४, ६, ५)।

जन्नत्तह—पुं० (सं० जन्या-यात्रा) जनेत, बारात; "सोम सरूव धूव परिणाविय जायवि तहि जन्नत्तह आविय;" तुल० गु० जान; (प्रा० गु० ८, १२)।

जन्नवक्क—पुं० धनदत्त का मित्र, विप्र-विशेष-नाम, (प० च० १०३, ८)।

जन्य—पुं० (सं० यज्ञ>प्रा० जण्ण) यज्ञ; (प्रा० गु० १०, ६)।

जन्हि—सर्व० येषां>प्रा० येसानं) जिनके; "जन्हि के निर्माणे विश्वकर्मंहु भेल बड प्रआस;" अर्थात् जिनके निर्माण में विश्वकर्मा को भी बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा; (की० २, १२८)।

जन्हिसाहि—पुं० जोनाशाह; (की० ३, १८)।

जपिर—वि० (सं० जपितृ) जाप करने वाला; (पड्)।

√जप्प—(सं०√जल्प्>प्रा० जंप) बोलना, कहना। —इ सक० (की० १, ३६)।

जप्प—वि० (सं० याप्य) गमन कराने योग्य। —जाण न० (सं० याप्य+यान) वाहन-विशेष; (दे० ना० मा० ६, १२२)।

जबवंत, जंबव, जंबुवंत— पुं० वानर सुग्रीव का मंत्री; (प० च०)।

जबूणयपुत्त—पुं० जंबवंत का पुत्र; (प० च० ५६, ३३)।

जब्ब—अव्य० (सं० यावत्>प्रा० याव, जाव) जभी, जब ही; (सरह, दोहा-कोश)।

जम—पुं० (सं० यम>प्रा० जम) १. अहिंसादि पाँच महाव्रत, साधु का व्रत, २. देव-विशेष, ३. मृत्यु-मौत ४. आत्म-नियंत्रण, संयमन, नियंत्रण (सं० रा०; ण० १, ११, ८)। टि०—यमों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखकों ने अलग-अलग दी है, यथा—ब्रह्मचर्यं, दया क्षान्ति-र्दानं सत्यमकल्कता, अहिंसाऽस्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः—याज्ञ० ३, ३१३)। यम पाँच भी बताए गए हैं—अहिंसा, सत्यवचनं. ब्रह्मचर्यमकल्कता, अस्तेयमिति। (जस० १, १२, १८)। ५. मृत्युदेव; (जस० १, ५, २)। ३. विद्याधर राजकुमार, (प० च० १, ५३)। ४. किष्किन्धा नगरी का एक राजा; (प० च० ७, ४६)। —करण पुं० (सं० यमकरण) मरण या रोग; (महा०)। —लय न० (सं० यमालय) यमराज का घर, मृत्यु-स्थान; (प० च० ४५, १०)। —उरी स्त्री० यमपुरी; (जंबू० १०, १४, ८)। —णिह वि० (सं० यम+निभ) यम सदृश टि०–'जम-करण' में अर्थांतरण द्रष्टव्य है। मूल शब्द 'यमकरण' का अर्थ 'मृत्यु के देवता की क्रिया है।

जमअ—पुं० (सं० यमक>प्रा० जमग, जमय) यमक नामक छंद, छंद-विशेष; (प्रा० पैं० २, ३९)।

जमकरण—पुं० (सं० यम+करण>

प्रा० जम+करण) १. यम का विधान अथवा क्रिया; (प० च० ८, ४, १)। २. मरण; (प० च० ३६, ३, ५)।
जमक्क—पुं० (सं० यमक>प्रा० जमग) यमक, तुक; वृत्त; (प्रा० पैं० १, १२७)।
जमण—पुं० (सं० यवन>प्रा० जवण) यूनान देश का निवासी, मुसलमान; (कीं० २, १८०)।
जमदंड—पुं० रावण का मंत्री; (प० च० ६६, ३२)।
जमदग्गि—पुं० जमदग्नि; परशुराम के पिता; (प० च० २०, १४०)।
जमदूय—पुं० (सं० यमदूत) यमराज का दूत; (जंबू० ११, २, १)।
जमपुर—पुं० (सं० यमपुर) जम का नगर, मौत का स्थान; (जस० २, ३१, ६)।
जममहिस—पुं० (सं० यममहिष) यमराज का भैंसा; (जंबू० ५, ५, १)।
जमराय—पुं० (सं० यमराज) यमों का स्वामी; (व० ४, ७, ८)। —**दूउ** पुं० (सं० यमराज-दूत) यमराज का दूत; (व० ३, १०, ३)।
जमल—न० (सं० युगल>प्रा० जमल) युगल, जोड़ा; (जंबू० १०, १६, २; प्रा० पैं० १, १८०)।
जमलगिरि—पुं० पर्वत-विशेष; (प० च० ३, २८)।
जमलज्जुण—पुं० (सं० यमलार्जुन) अर्जुन के दो पेड़, नलकूवर;(प्रा० पैं० १, २०७)। —**रुक्ख** पुं० न० (सं० यमलार्जुन वृक्ष) वृक्ष-विशेष; (रि० ६, १३)।
जमसासण—पुं० (सं० यमशासन) यमराज का शासन; (जस० ३, ३६, ३)।
जमहर—पुं० (सं० यमगृह>प्रा० जम+घर, हर) यमगृह; (प० च० १५, ८, ६)।
जमाइट्ठ—वि० (सं० यम+आदिष्ट) यम के द्वारा आदिष्ट, "जमाइट्ठदूयाणुरूवा पयंडा;" अर्थात् यम से आदिष्ट दूतों के समान प्रचंड; (जंबू० १०, ६, २)।
जम्पण्य—न० (सं० जल्पन>प्रा० जंपण) जनप्रवाद, गपशप (public gossip); (प० च० ४६, ३, १०)।
जम्मंतर—पुं० (सं० जन्मान्तर) अन्य जन्म, दूसरा जन्म; (जंबू० २, ८, २)। जम्मंतरु-जन्मान्तर; (सि० २, २७)।
जम्मंबुहि—स्त्री० (सं० जन्मावुधि) जन्म-मरण रूपी समुद्र; (व० १, १४, ६)।
जम्म—पुं न० (सं० जम्मन्>प्रा० जम्मण) जन्म, उत्पत्ति; (प्रा० पैं० २, १०, १; व० १, १६८)। —**ण** पुं० न० (सं० जम्मन्) जन्म; (व० २, १२, २)।
जम्मु—१. पुं० न० जन्म; (वं० १, ३, ७)। २. वि० जन्म देने वाला; "जलयर-जीव-जम्मु;" —जलचर जीवों को जन्म देने वाला; (रि० ८, ५)। —**उच्छव** (जम्मुच्छव) पुं० (सं० जन्मोत्सव) किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव; (व० ६, १२, २)।
√**जम्म**—१. (सं० जम्>प्रा० जम्म)

उत्पन्न होना। —इ अक०, व०; (जंबू० ११, ३, ७)। जम्मिअ—भू० का०, उत्पन्न हुआ; "जज्जाम्मिअ उत्पन्न मति कामेसर सण राए;" अर्थात् जिसमें कामेश्वर नामक व्युत्पन्नमति राजा ने जन्म लिया; (कौ० १, ६६)। जम्मिअइ— जन्म लिया गया है; (कौ० १, ३६)। २. (सं०√जम्) खाना, भक्षण करना। —इ सक०; (पइ)।

जम्मडा—पुं० न० (सं० जन्मन्>प्रा० जम्म) जन्म; (परमा०)।

जम्मण—न० (सं० जन्मन्>प्रा० जम्मण) जन्म, उत्पत्ति; (संवि० १४, ४, १६; जंबू० ११, ६, १)।

जम्मदिवस—पुं० न० (सं० जन्म-दिवस) जन्मदिन; (जंबू० ३, ४, ३)।

जम्मावयार—पुं० (सं० जन्मावतार) व्रत-विशेष "तह पंचमि दिणि जम्मावयारु; अर्थात् तत्पश्चात् पंचमी के दिन सारभूत जन्मावतार व्रत किया; (क० १०, २६, ११)।

जम्मावहि—स्त्री० (सं० जन्मावधि) आजन्म; (जंबू०)।

जम्माहिसेउ—पुं० (सं० जन्माभिषेक) जन्म के समय ऊपर से जल छोड़कर स्नान; (जंबू० १, १, २)।

जम्मि—अव्य० (सं० यस्मिन्) जहाँ; (क० ५, ११, ६)।

जयंत—पुं० विद्याधर इंद्र का पुत्र, (प० च० १२, १००)।

जयंती—स्त्री० जयन्ती नामक पुरी, नगर-विशेष; (क० ६, १०, ३)। २. स्त्री-विशेष- नाम; (प० च० ८६, ३४)।

जय—पुं० (सं० प्रा० जय) १. सीतास्वयंवर में उपस्थित राजा; (प० च० २८, १०१)। २. वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १४)। ३. मेघेश्वर, नाम-विशेष; "नाहेय बाहुबलि-भरह-जया अरहंत-सिद्धि-चक्क-वइ सया;" अर्थात् वहाँ नाभेय जिन, बाहुबलि तथा भरत और मेघेश्वर ये अरहंत सिद्ध एवं चक्रवर्ती सदैव विद्यमान रहते हैं; (जंबू० ३, १, ११)। ४. पर्वत-विशेष (प० च० ३२, २, १)। ५. नृप-विशेष, (प० च० ३०, २, ६)। ६. जीत; (व० १, १, ३)। ७. जयकार का शब्द; (जस० १, २, १)। न० (सं० जगत्>प्रा० जग, जय) संसार; (भ०)। —लच्छि स्त्री० जयलक्ष्मी, स्त्री-विशेष-नाम; (ण० ८, १२, ७)। —णंद वि० (सं० जगतानन्द) जगत् को आनंद देने वाला; (प० च० ११७, ६)।

√जय—(सं० यज्>प्रा० जय=पूजा करना, याग करना) जाप करना; "पुण झाइय सोलह-अक्खरिय। जय (?) कोडि सहास दुहुत्तरिय" —फिर उन्होंने सोलह अक्षरों वाली विद्या का ध्यान किया, उसका दस हजार करोड़ दस बार जाप किया; (प० च० ६, ७, ८)।

√जय—(सं० जि> प्रा० जय) जीतना। —इ सक०, व० (सं० जयति >प्रा० जयइ) जीतना; (प० च० १, ६, २)। —उ (विधि०) (जंबू० १, १, ३)।

जयएव—पुं० जयदेव, पुरुष-विशेष-नाम;

(क० १, २, ६)।

जयकंखिर—वि० (सं० जय+कांक्ष्+इर) विजय की आकांक्षा करने वाला; (जंबू० १, १०, ८)।

जयकंत—पुं० राजकुमार, रावण का आगामी जन्म-नाम; (प० च० ११८, ६६)।

√जयकार—(सं० जय+कारय्) जयकार करना। जयकारिइ—व० (सं० जय करोति) जयकारे करना; (भ०)। जयकारिउ—भू० का० जयकार किया; (प० च० १६, ६, ६)।—रिवि पू० का० क्रि०, जय-जयकार करके; (जंबू० ५, २, ७)। जयकारें वि-पू० का० क्रि० जय बोलकर; (प० च० १७, ६, १)। जयकारेप्पिणु-पू० का० क्रि०,—जयकार करके (प० च० २,१३, ८)।

जयकारिअ—वि० (सं० जयकारित) जयकार किया हुआ; (जस० १, ६, १४)।

जयकारिओ—वि० (सं० जयकारित) जयजयकार करने वाले; (जंबू० ३, ४, ८)।

जयकारु—पुं० जयकार; (प० च० १२, ६, १)।

जयघंट—पुं० स्त्री० (सं० जय+घण्ट>जय+विजयघण्टा); विजय का सूचक वाद्य-विशेष; (जंबू० ५, ६, ६)।

जयचंदा—स्त्री० विद्याधर राजकुमारी; (प० च० ८, १८७)।

जयण—न० (दे०) घोड़े का बख्तर; (दे० ना० मा० ३, ४०)।

जयथोत्त—न० (सं० जय+स्तोत्र>प्रा० जय+थोत्त) विजय-स्तव या स्तुति; (जंबू० १०, १, १३)।

जयणंदण—पुं० जयनन्दन नाम-विशेष; (भ०)।

जयप्पह—पुं० राजकुमार-विशेष का नाम; (प० च० ११८, ६६)।

जयभद्द—स्त्री० जयभद्रा, श्रेष्ठि पत्नी, (जंबू० ३, १०, १३)।

जयमंत—पुं० सप्तर्षि मुनि; (प० च० ८६, २)।

जयमंदिरु—न० (सं० जगत्+मन्दिर>प्रा० जयमंदिर) जगमंदिर, लोक रूपी मंदिर; (जंबू० १, १७, ६)।

जयमित्त—पुं० १. सप्त ऋषि मुनि (प० च० ८६, २)। २. वानरयोद्धा; (प० च० ५७, ३)।

जयलच्छि—स्त्री० (सं० जयलक्ष्मी) स्त्री-विशेष-नाम; (जस० २, १६, २)।

जयवत्त—पुं० (सं० जयवार्ता>प्रा० जयवत्ता, वत्त) विजय-वृतान्त; (म० १, १, ५)।

जयवल्लह—वि० (सं० जगत्+वल्लभ>प्रा० जग, जय+वल्लह) सर्वलोक-प्रिय या स्नेह-पात्र; (जंबू० ४, ७, ११)।

जयविजइ—वि० (सं० जगत्+विजयिन्>प्रा० जग, जय+जयिण, जइण) जगद्विजयी, (ण० ६, १७, १)।

जय-वेरि—वि० (सं० जित वैरि) शत्रुओं को जीतने वाला; (व० १, १५, १३)।

जयसिरि—स्त्री० (सं० जयश्री) विजय-लक्ष्मी; विजय की अधिष्ठातृ देवी; (जस० १, ७, १३; जंबू० १०, १, १४)। २. विजयश्री; (व० १, ९, १)। —ह स्त्री० (सं० जयश्री+ईश) विजयलक्ष्मी; (ण० ४, १, ११)।

जयसेण—पुं० १. वानरयोद्धा; (प० च० ६७, १२)। २. ग्यारहवें चक्रवर्ती राजा; (प० च० ५, १५३)।

जया—स्त्री० १. स्त्री-विशेश-नाम; (प० च० ५, ११७)। २. विद्या-विशेष; (प० च० ७, १४१)।

जयाणंद—पुं० वानर सुग्रीव का पुत्र; (प० च० १०, १०)।

जयादेवी—स्त्री० वीर कवि की चौथी पत्नी; (जंबू०)।

जयावइ—स्त्री० (सं० जयावती) जयावती नामक रानी; (व० ३, २२, ६)।

जयावई—स्त्री० (सं० जयावती) एक भृत्य की माता; (प० च० ५, १०९)।

जयास—स्त्री० (सं० जय+आशा) विजय की आशा; (जंबू० ४, १४, २२)।

जयासय—पुं० (सं० जय+आशय) विजयाभिप्राय, विजय प्राप्ति का आशय; (जंबू० ६, १३, ६)।

जरंड—वि० (दे०) वृद्ध, बूढा; (दे० ना० मा० ३, ४०)।

जर—पुं० (सं० ज्वर>प्रा० जर) रोग-विशेष, बुखार; (प० च० ११, २, ३; क० ३, ४, ११; ण० ३, १६, ५)। पुं० (सं० प्रा० जरा) बुढ़ापा, वृद्धत्व; (व० १, १०, १; जस० १, ६, ९)। वि० (सं० जरत्>प्रा० जर) १. जीर्ण, पुराना; (भ०; दे० ना० मा० ३, ५९)। २. वृद्ध; (जंबू० ९, ७, ६)। पुं० रावण का एक सुभट; (प० च० ५९, ३, ९)। —ग्गु पुं० (दे०) १. बूढ़ा बैल, २. स्त्री० बूढ़ी गाय (प० च० ३३, १६)। —गुण्ण वि० बुढ़ापे के कारण दुर्बल; (जंबू० १०, १४, ३)।

जरड—वि० (दे०) वृद्ध; (दे० ना० मा० ३, ४०)।

जरढ—वि० (सं० प्रा० जरठ) जीर्ण, वृद्ध, "जरढ-मियङ्कु व थिउ विद्दाणउ;" (प० च० २४, ७, २)। टि०—छिपते हुए चंद्रमा को वृद्ध (aged) कहा गया है।

जरणु—पुं० (सं० जरण) नाश; (रि० ७, १)।

जरदासी—स्त्री० जरा रूपी दासी; (जस० १, २७, २७)।

जरलद्धिअ, जरलविअ— वि० (दे०) ग्रामीण, ग्राम्य; (दे० ना० मा० ३, ४४)।

जरहरि—स्त्री० (सं० जलहर=मेघ की तरह एक दूसरे पर पानी उछाल कर क्रीड़ा करना) जल-क्रीड़ा; (की० ४, २११)।

जरा—स्त्री० (सं० प्रा० जरा) बुढ़ापा, वृद्धत्व; (भ०)।

जराउज—पुं० (सं० जरायुज) गर्भ-स्थान; (व० १०, १२, ७)।

जरासंघु—पुं० नवम प्रतिवासुदेव; (प० च० २०, २०४)।

जरासिंधु—पुं० (सं० जरासन्ध>प्रा०

जरासंध) महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा। वह बृहद्रथ का पुत्र और कंस का श्वसुर था, "जिणि रणि जरासिंधु विद्दारिउ अहि दाणवु बलवंतउ मारिउ। कंस केसि चाणूरु वहि —···," (प्रा० गु० ५, ३६)।

जरि—वि० (सं० जरिन्) बूढ़ा, वयोवृद्ध; (दे० ना० मा० ३, ५७)।

जरुल्ल—पुं० (सं० ज्वर+उल्ल (स्वार्थे) ज्वर; "णारिहें पेम्मजरुल्लउ लाइउ" नारियों को प्रेम का ज्वर चढ़ आया; (ण० ५, ८, ६)।

जलंजली—स्त्री० (सं० जल+अञ्जलि) १. पानी भरी अँजुली, २. तिलाञ्जलि; मुहा०—जलांजलि देना=त्याग देना, कोई संबंध न रखना। "विहवेण रायनियडत्तणेण कलहेण जत्थ कव्वगुणो। कव्वस्स तत्थ कइणा वीरेण जलंजली दिण्णा;" अर्थात् जहाँ ऐश्वर्य से राजा के (निरंतर) नैकट्य से अथवा कलह से काव्यगुण उत्पन्न होता है, वहाँ उस काव्य के लिए वीर कवि ने जलांजलि दे दी है; (जंबू० १०, १, २; की० ३, २४)।

जलंत—वि० (सं० ज्वलन्त) जलता हुआ, प्रकाशमान्, देदीप्यमान्; "देवदिन्नु जसु चक्कु जलंतउ;" अर्थात् तब देवों ने उसे ज्वलंत चक्र प्रदान किए; (व० ३, २०, ७)।

जलंतिय—वि० प्रज्ज्वलित (सं० रा० २, १०७)।

जलंती—स्त्री० (सं० ज्वलन्ती) जलन्ती नामक अटवी; अटवीनाम (ण० ७, १, १०)।

जल—न० (सं० प्रा० जल) १. पानी, उदक; २. विदु; (जंबू० ४, १८, ७)। ३. पुं० कायिक जीव, "·· मरु-महि-जल तेयहँ;" अर्थात् वायु कायिक, पृथ्वी कायिक, जलकायिक और तेजोकायिक जीव; (व० १०, ४, ३)।

√जल—(सं० √ज्वल्>प्रा० जल) १. जलना, दग्ध होना, २. चमकना; (सं० रा०)। —इ व० (सं० ज्वलित> प्रा० जलइ); (प्रा० पैं० १, १६०; भ०; हे० ३६५)। जलंत—कृ० (सं० √ज्वल् +शतृ) (प्रा० पैं० २, १७७; जंबू० ४, ६, २)।

जलअ समुद्द—पुं० द्वीप-विशेष, (प० च० ६, ३१)।

जलकंत—पुं० (सं० जलकान्त>प्रा० जलकंत) १. वरुण, इंद्र का पश्चिम दिशा का विद्याधर लोकपाल; (प० च० ७, ४४)। २. स्वर्ग-विमान; (जंबू० ८, २, २५)।

जलकांत—पुं० (सं० जलकान्त>प्रा० जलकंत) एक स्वर्ग विमान; (जंबू० ६, २, १३)।

जलकील—स्त्री० (सं० जलक्रीडा>प्रा० जलकीला) जल-केलि, पानी में की जाने वाली क्रीड़ा; (जंबू० ४, १६, ३; व० २, २०, १३)।

जलजंत—पुं० (सं० जलयन्त्र) नौका; (भ०)।

√जलजल—(सं० ज्वल्>प्रा० जल) तेजी से जलना (burn furiously)।

जलजलंति—अक० (सुदं० ११, १५,

१३)। —जलन्ति (जलजंलजलन्ति) अक० (प० च० २७, ५, ७)।

जलजलजलजलजल— स्त्री० (ध्व०) जलती हुई वस्तु से निकली हुई ध्वनि; (प० च० २८, २, ५)।

जलण—पुं० (सं० ज्वलन>प्रा० जलण) अग्नि; म० जळणें; (ण० १, ११, ५; जस० १, ६, ४)। २. जलना; (सि० १, २४)। ३. ज्वलन नामक नागदेव, "करइ जत्त नायहों जगु जलणहों;" अर्थात् ज्वलन नामक नागदेव की यात्रा के लिए लोग चले; (जंबू० ३, १२, १६)।

जलणजडि—पुं० (सं० ज्वलन+जटिन >प्रा० जलणजडि) ज्वलनजटी, विद्याधर वंशीय राजा; (प० च० ५, ८६)। जलणजडी; (व० ३, २६, १४)।

जहणरोह—पुं० (दे०) उरु, जंघा, जाँघ; (दे० ना० मा० ३, ४४)।

जलणसिह—पुं० १. पुरोहित (प० च० ५, ३१)। २. विद्याधर राजा; (प० च० १०, २)।

जलणिहि—पुं० (सं० जलनिधि) समुद्र; (जस० ४, १६, ८)। जलनिहि; (जंबू० ६, ५, ८)। जलनिही; (सणतु० ४४६)। लो०—"जलणिहि-सलिलु ण परताविज्जइ तिणहउ;" अर्थात् समुद्र का क्या फूस की अग्नि से उष्ण किया जा सकता है? (व० ४, १४, १२)।

जलणुव—वि० (सं० ज्वलन+वत्) अग्निशिखावत् अग्नि शिखा के समान; (व० २, १६, ६)।

जलथंभिणी—स्त्री० (सं० जलस्तम्भिनी) विद्या-विशेष; (प० च० ७, १३, ६)।

जलदेवय—पुं० जलदेवता; (भ०)।

जलदो—पुं० (सं० जलद) मेघ; (कौ० १, ४७)।

जलद्द—वि० (सं० जल+आर्द्र) जल से भीगा हुआ; (ण० ३, ६, ११; प० च० १५, ११, ७)।

जलन—पुं० (सं० ज्वलन>प्रा० जलण) अग्नि; 'अरितेयजलणजालासंजलिया धरणि काणणे सयले;" अर्थात् अरि के तेज रूपी ज्वलन की ज्वाला समस्त धरणी रूपी कानन में संज्वलित थी; (क० २ १४, ७)।

जल-निज्झर—वि० (सं० जल-निर्झर) जलस्रावी, "वियलिय मयजल-निज्झर-वारण, पडिवारण-मण-दप्प-णिवारण;" अर्थात् प्रतिपक्षी-हाथियों के मन के दर्प का निवारण करने में समर्थ मद-जल-स्रावी हाथी पीलवानों के वशीभूत होकर ही निकले; (व० ४, २०, ८)।

जलपाणु—पुं० (सं० जलपात्र) जल पीने का बर्तन; "भरइ जलपाणु पहियाण;" अर्थात् पथिकों के जलपात्रों को भरती थी; (जंबू० ५, ६, १०)।

जलबुब्बुय—पुं० (सं० जल+बुद्बुद) पानी का बुलबुला; (जंबू० २, १८, ११)।

जलमउ—वि० १. जलमय, २. जडमति; (सुदं० २, ४, १)।

जलय—न० (सं० जलज) कमल; (प० च० १२, ३७)। पुं० (सं० जलद) मेघ; (रा०)। —माल स्त्री० (सं० जलद+माला) मेघमाला; (सणतु० ४५५)। जलयंतरगय—(सं० जलादा-

न्तर्गत) मेघों के मध्य में; (व० १, ४, ३)।

जलयर—पुं० (सं० जलचर) पानी में रहने वाला जंतु; (रि० ८, ५; जंबू० ११, ४, ५)। —वल पुं० (सं० जलचर+वल) जलचर समूह; (जंबू० ७, ५, ११)।

जलयवाहरण—पुं० वानरयोद्धा; (प०-च० ५७, १६)।

जलरिट्ठ—पुं० जलकाक, जलकौआ नामक पक्षी; (महा० १२-७)।

जललोल—पुं० (सं० जल+लोल) जल में ऊँची उठती हुई लहर; (जंबू० ६, २, ४)।

जलवइ—पुं० (सं० जलपति) मकर; (जस० ३, ३, १)। टि:—मूल संस्कृत शब्द 'जलपति' का अर्थ, १. समुद्र, २. वरुण का विशेषण' है, परंतु अर्थ-संकोच की प्रक्रिया में इसका अर्थ 'मकर' हो गया।

जलवम्म—पुं० (सं० जलवर्त्म) नौका; (भ०)।

जलवास—पुं० पुष्पांजलि, "पुप्फइं अक्खयाउ वलि दीवा, धूव-वास जल-वास पडीवा;" (प० च० २, १७, ३)। टि०—संसर्ग के कारण अर्थांतरण द्रष्टव्य है। 'जलवास' का अर्थ 'जल में वसना' है; परंतु यहां साहचर्य के कारण अर्थ में परिवर्तन हुआ।

जलवाह—पुं० (सं० प्रा० जलवाह) जंतु-विशेष; (प० च० ८८, ६)।

जलवाहिणी—स्त्री० (सं० जल+वाहनी) जलवाहिनी, नदी, नहर; "सीया जलवाहिणी-उत्तरयले;" अर्थात् जलवाहिनी सीतानदी के उत्तर तट पर; (व० २, १०, ३)। २. पनिहारिन, जल ढोने वाली; (जंबू० १, ६, २०)।

जलवीइ—पुं० पर्वत-विशेष; (प० च० १६, १४)।

जलहत्थि—पुं० (सं० जलहस्तिन्) जल-हस्ती; पानी का एक जंतु; (प० च० ३४, ३३)।

जलहर—पुं० (सं० जलधर) १. बादल; (प्रा० पैं० १, १८८)। २. एक विद्याधर सुभट; (प० च० १२, ६५; सि० १, २४)।

जलहरण—न० (सं० प्रा० जलहरण) मात्रिक छंद का नाम; (प्रा० पैं० १, २०२)।

जलहि—पुं० (सं० जलधि) समुद्र; (जंबू० ६, १४, २; क० १, २, ५)।

जलिअ—वि० (सं० ज्वलित>प्रा० जलिअ) जला हुआ, प्रदीप्त; (क० ३, ८, ८)। जलिय—वि० जला हुआ; तुल० गु० जळवुं (जंबू० ५, ८, २, ३; महा० ६८, ४)।

जलियक्ख—पुं० विद्याधर योद्धा; (प०-च० ५६, ३७)।

जलूग—पुं० (सं० जलौकस्) जंतु-विशेष, जोंक, जल का कीड़ा; (प० च० १, २४)।

जलूगा, जलूया—स्त्री० (सं० जलौकस्) जंतु-विशेष, जोंक; (प० च० १, २४)।

जलोयर—न० (सं० जलोदर>प्रा०

जलोयर) रोग-विशेष; जलंधर; (जंबू० ३, ११, ३)।

जलोल्ल—वि० (सं० जलार्द्र) जल से भीगा हुआ; (ण० ३, ८, ६)।

जलोल्लिय—वि० (सं० जल+आर्द्र) जल से भीगा हुआ; (क० ६, १, २)।

जलोह—पुं० (सं० जल+ओघ) जल-समूह (ण० २, ८, ६)। —र पुं० जल-समूह, जल की धारा; "ण्हाइ व ससि-कंत-जलोहरेहिं," चंद्रकांत मणि की जल धाराओं से ऐसा लगता है, जैसे नहा रहा हो; (प० च० १, ५, ५)।

जल्ल—पुं० (दे०) पसीना, "जल्लमल-विलित्तसरीरएहिं;" अर्थात् उनके शरीर पसीने के मल से विलिप्त थे; (जस० ४, १६, १४)।

जल्लोसहि—स्त्री० (सं० जल्लोषधि) एक प्रकार की ऋद्धि या आध्यात्मिक शक्ति, जिसके प्रभाव से शरीर के मैल से रोग का नाश होता है; (जस० ३, ३७, ३)।

√जव—(सं० जप्>प्रा० जव) जाप करना, बार-बार मन ही मन देवता का स्मरण करना। जविउ—सक, भू० का० जाप किया, "···मंतु तेण जविउ" (ण० ६, २, ४)। जवेइ—जाप किया, "जवेइ मंतु;" (जस० ४, २६, ५)।

जव—अव्य० (सं० यदा) जब; (प्रा० पैं० १, २०४; रा० ३६)। जवे—अव्य० जब; "हिण्डए जवे आवथि;" घूमने के लिए जब आते थे; (की० २, ११३)। पुं० (सं० प्रा० जव) १. वेग, शीघ्र गति; (जंबू० ५, ५, १५)। २. जौ, अनाज-विशेष, (व० ८, ५, १०)। —खेत्त; (ण० ३, १४, ५)। —णाली स्त्री० जौ की नाली; "जवणाली-सन्निह," जौ की नाली के सदृश (श्रव-णेन्द्रिय का आकार); (व० १, ११, ८)।

जवण—न० (दे०) हल की चोटी; (दे० ना० मा० ३, ४१)। न० (सं० जपन) जाप, पुन; पुनः मंत्र का उच्चारण; (प० च० ८६, ६०)। पुं० (सं० यवन) १. म्लेच्छ, देश-विशेष; (प० च० ६८, ६४)। २. मनुष्य-जाति-विशेष; (संधि० १०, २, ३)।

जवणालत्त—पुं० (सं० यवनाल+त्व) जौ (अन्न-विशेष) के दाने, (ण० ६, ७, १)।

जवणिआ—स्त्री० (सं० यवनिका>प्रा० जवणिआ) परदा; (दे० ना० मा० ४, १)।

जवणी—स्त्री० (सं० यवनी>प्रा० जवणी) परदा, आच्छादक पट; (दे० ना० मा० २, २५)।

जवय, जवरय—पुं० (दे०) यव का अंकुर; (दे० ना० मा० ३, ४२)।

जवल—वि० (दे०) सदृश; "अरे कम-लहिं कुमुदिहिं सोहिया मानस-जवलि तलाय;" (प्रा० गु० २१, ६)।

जवालउ—पुं० (सं० जव (वेग)+आलअ (मत्वर्थीय) गति; (जस० ३, ३५, २)।

जविय—वि० (सं० जपित) जाप किया हुआ; (क० ७, १२, ८)।

जव्वेल—अव्य० (दे०) जब, (at the time when, when (प० च० ३७, १३, ३) ।

जषणे—क्रि० वि० जिस समय; "जषणे चलिअ सुरताम;" अर्थात् जिस समय सुलतान ने कूच किया; (की० ४, १२२) ।

जस—वि० (सं० यादृश) जैसा, समान; (की० १, ७५) ।

जस—पुं० (सं० यशस्>प्रा० जस) कीर्ति; (व० १, ५, ६; प्रा० पैं० १, ८७; ण० १, २, १०) । —उज्जल वि० (सं० यश+उज्जवल) धवल यशस्वी; (जंबू० ७, १२, १६) । —कित्ति स्त्री० (सं० यशः+कीर्ति) यश-प्रसिद्धि; (ण० ६, २, १०) । —लंपड वि० (सं० यशलम्पट) यश का लोभी; (जंबू० ६, ७, १०) । —लुद्ध वि० (सं० यशोलुब्ध) यश के लोभी; (क० ८, १८, १०) ।

जसइ—पुं० जसई; वीर कवि का तीसरा अनुज; (जंबू०) ।

जसघंट—पुं० (सं० यश;+घण्टा) यश का घण्टा, "चाइचाय-वज्जियजसघंटहे" दानियों के त्याग के यश का घंटा बजाया जा रहा था; (ण० ३, १२, ४) ।

जसणिउरंव—पुं० (सं० यश+निकुरम्ब, निकुरम्ब) यश का पुंज; (ण० ५, ११, ६) ।

जसपटह—पुं० (सं० यश+पटह>प्रा० जस०+पडह) यश का डंका; (जंबू० १, ५, ३) ।

जसवंधुर—पुं० यशोबंधुर, राजा-नाम-विशेष; (जस० १, २३, १) ।

जसभायण—पुं० (सं० यश+भाजन >प्रा० जस+भायण) यश का पात्र; (ण० ७, ८, ७) ।

जसमइ—स्त्री० यशमती, श्रेष्ठि पत्नी; (जंबू० ३, १०, १३) ।

जसमई—स्त्री० चक्रवर्ती जयसेन की माता; (प० च० २०, १५३) ।

जसरह—पुं० इक्ष्वाकुवंशीय राजा; (प०- च० २२, ९६) ।

जसरासि—स्त्री० (सं० यशस्+राशि> प्रा० जस+राशि) यश का पूंज; (ण० ७, ६, ८) ।

जसवंत—वि० (सं० यशस्विन्) यशस्वी; (ण० ६, २, १०) ।

जसवइ—स्त्री० यशोमती, स्त्री-विशेष-नाम; (प० सि० च० १, १३) ।

जसवई—स्त्री० चक्रवर्ती सगर की माता, (प० च० २०, १०६) ।

जसहद्द—पुं० (सं० यशोभद्र) मुनि; (क० २, ७, ५) ।

जसहर—पुं० (सं० यशधर) १. राजा-विशेष-नाम (प० च० ५, ११७) । २. सगर के पूर्व जन्म गुरु, मुनि-विशेष-नाम; (प० च० २०, १०८) । ३. यशोधर मुनि, मुनि-विशेष; (क० ५, ८, १०) ।

जसालउ—वि० (सं० यशः+आलय) यशस्वी; (ण० २, ८, १३) ।

जसु—सर्व (सं० यस्य>प्रा० जस्स) जिसके, जो का वह विकारी रूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है; (महा० ६६, १५, २; सं० रा० २, ७०) । वि० जिस, जो का वह रूप जो

उत्ते विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ आने से प्राप्त होता है; (णे० ३, २)।
जसोयर—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १६)।
जसोह—पुं० (सं० यशोर्ह, यशोघं, यश-ओघ, यशोधर के पिता का नाम; (जस० १, २३, २)।
जसोहणा—स्त्री० यशोधना, रानी का नाम, (जस० ३, ३, २)।
जसोहर—पुं० मुनि-विशेष-नाम (प०-च० ३१, ११)।
जस्स—सर्व०, वि० (सं० यस्य>प्रा० जस्स) जिसका; (की० १, ४८)।
जह—अव्य० (सं० यथा>प्रा० जह) जैसे; (प्रा० पैं० १, ३४; क० ३, १, १२)।
√जह—(सं० जहाति, √हा) छोड़ना त्यागना, परिहार करना; (उ० व्य० प्र० ७-२६)।
जहण्णसव, जहण्णसुअ—न० (दे०) स्त्री को पहनने का वस्त्र-विशेष; (दे० ना०-मा० ३, ४५)।
जहन्न—वि० (सं० जघन्य>प्रा० जह-ण्ण, जहन्न) निकृष्ट, अधम, (व० १०, १६, ११)।
जहां—अव्य० (सं० यत्र>प्रा० जत्थ) जहाँ; (उ० व्य० प्र० १५-३)।
जहा—अव्य० (सं० यथा>प्रा० जहा, जह) जैसे, जिस तरह से; (जस० १०, १, ३; की० ४, २०६)।
जहाजाय—वि० (सं० यथाजात) दिगं-बर, नग्न; (ण० २, ३, ८)।
जहि—अव्य० (सं० यत्र>प्रा० जह) जहि, जहिँ) जहाँ; (हे० ३४६; महा० ६८, ७; ण० १, १३, ६)। जहिं; (प० च० १३, ६, ४; हे० ३८६, १; प० च० २, ७, ३)। —तहिं अव्य० (सं० यत्र-तत्र) जहाँ-तहाँ; (सरहपा, दोहाकोश)।
जहिच्छं—वि० (सं० यथेच्छम्) इच्छा या कामना के अनुसार; (प्रा० पैं० १, ६६)।
जहिच्छा—अव्य० (सं० यथा+इच्छा) इच्छा या मन के अनुकूल; (जंबू० ६, १, १४)।
जहिच्छिय—वि० (सं० यथेच्छित) यथे-प्सित, इच्छानुसार; (भ०)।
जहो—अव्य० (सं० यथा>प्रा० जहा, जह) जहाँ; (प्रा० पैं० २, १२६)।
जां लगि—अव्य० (सं० यावत्); जब तक; तुल० गु० ज्यां लगि; (संधि० २०, २, ४)।
√जा—(सं० जन्>प्रा० जा) उत्पन्न होना, पैदा होना। —इ अक०। जाआ (जाता) —भूत कर्म० कृदंत हुई, पैदा हुई; (प्रा० पैं० १, ६२)। जाइअ-भू०-का० उत्पन्न किया; (की० २, ६३)। जाउ—भू० का० (सं० जात) उत्पन्न हुआ; (व० २, ३, ३)।
√जा—(सं० या>प्रा० जा) जाना, गमन करना, (सं० रा०)। —इ अक०, व० (सं० यापय्>प्रा० जाव) गमन करना, गुजारना; (क० १, १२, ६; की० २, १८२)। २. (सं० याति√या प्रा० जाइ) जाना; (ण० १, १०, १; उ० व्य० प्र० ५, २४)। —इज्जइ कर्मवाच्य

(सं० यायते) चला जाए; (हे० ४१६, २)। —इआ कर्मवाच्य (सं० यायते) (उ० व्य० प्र० १६, १४)। जन्ति—जाना; (हे० ३६५)। —इवि पू० का०-क्रि० (क० २, २, ६)। —उ लोट लकार (सं० यातु) जाए; (हे० ४२०)। —एँ व० जावे; (ण० ४, ५, ८)। —ए पू० का० क्रि०, जाते हुए, "णं सग्गा मग्गा जाए आगा लुद्धा उद्धा हेरंता;" अर्थात् स्वर्ग की इच्छा से ऊपर जाते हुए ऊपर (मेनकादि को) ढूंढ रहे हैं; (प्रा०-पैं० २, १७५)। —एसइ भू० का०; (प०च० १८, १०, ६)। —एसमि भ०-का०, (जंबू० १०, ११, ५)। जन्तें व०-कृ०, जाते हुए; (प० च० ५, १, ८)। जन्तिएँ—व० कृ०, स्त्री के लिए प्रयुक्त; (प० च० १४, ३, १)। जाधि—व०, अन्य पु०, ब० जाते है; (की० २, १११)। जायतु जाय—(सं० यात > प्रा० जाय=गत) जाय तो जाए; (वैराग्य-सार)। —यवि पू० का० क्रि० (जंबू० १, १५, ४)। —हि विध्यर्थक, म० पु०, ए०; (जंबू० २, १५, ६)। —हु आ०, ब०; (प० ३, ४, १०)।

जा—अव्य० (सं० यावत् > प्रा० जाव, जा) जब; (प० च० १२, ३, २; क० १, १२, १)।

जा—वि० (सं० यत्) जो, (रा० ५; की० २, ४१)।

जाअ—वि० (सं० जात > प्रा० जाय) जनमा हुआ, उत्पन्न; (ण० ४, ५, ८; जंबू० ५, १, ४; जस० १, ८, १)।

जाआ—स्त्री० (सं० जाया) पत्नी, (प्रा० पैं० १, ११६)।

जाआ—स्त्री० छंद-विशेष; उपजाति छंद का भेद; (प्रा० पैं० २, १२१)।

जाइँ जाइँ—सर्व० (सं० यान्, यत् (जो) की द्वि० वि०, ब०) जो-जो; (जंबू० ४, १२, १४)।

जाइ—स्त्री० (दे०) सुरा, मदिरा, दारू; (दे० ना० मा० ३, ४५)।

जाइ—स्त्री० (सं० जाति > प्रा० जाइ) १. जन्म, उत्पत्ति (की० ४, ८४; क० ६, ८, ४)। २. जाति; (ण० ३, ६, ४)। ३. पुष्प-विशेष (ण० १, १०, १)।

जाइअ—वि० (सं० याचित > प्रा० जाइअ) माँगा हुआ; (भ०)।

जाइआ—वि० (सं० याचक > प्रा० जायग) जायअ, जाइअ, माँगने वाला; "साअर गिरि अन्तर दीप दिगन्तर जासु निमित्तें जाइआ;" अर्थात् समुद्र, पर्वत, द्वीप और देशांतर से जिसके कारण सब लोग याचक बनकर एकत्र हुए थे; (की० २, २२४)।

जाईसर—पुं० सं० > जाति + स्मर पूर्व के अस्तित्वको स्मरण करना, पूर्व-भव-स्मरण; (प०च० ३५, २. १; प्रा० गु० १४, ३२)।

जाईहल—पुं० (सं० जातिफल > प्रा० जाइफल) जायफर, जातिफल, वृक्ष-विशेष, फल-विशेष; एक गर्म मसाला; (सं० रा०)।

जाउं—वि० (सं० यावत्) जितने भी; (रा० २८)। जाउँ—अव्य० (सं०

यावत्) जब तक; (हे० ४०६, २)।

जाउर—पुं० (दे०) कपित्थ वृक्ष; (दे० ना० मा० ३, ४५)।

जाउहाण—पुं० (सं० यातुधान) राक्षस; (सुदं० ६, १६, ५)।

जाख—पुं० (सं० यक्ष>प्रा० जक्ख) यक्ष; (प्रा० गु० ७, ५१)।

√जाग—(सं० √जागृ>प्रा० जग्ग, जागर्ति) जागना, जागते रहना; (उ० व्य० प्र० ५०-२१)। जागंतिय—कृ० जागती हुई; (सं० रा०)। —देवि पू० का० क्रि०; (क० १०, १७, ६)। जागु—भू० का०, जागा, जाग उठा; "पितृवैरिकेसरि जागु;" अर्थात् पितृ वैरी के लिए सिंह जाग उठा; (कौ० २, २६)।

जागरेल्ल—पुं० (सं० जागरितृ+इल्ल प्र०) पहरेदार; (जंबू० ५, ७, २३)।

जाचंध—वि० (सं० जात्यन्ध, जाति+अन्ध) जन्म से अंधा; (प्रा० गु० ४०, ४)।

जाचक—वि० (सं० याचक>प्रा० जायग) माँगने वाला; (कौ० १, ७२)।

जाडी—स्त्री० (दे०) झुरमुट, वृक्षों का झुंड; (दे० ना० मा० ३, ४५)।

जाडें—पुं० (सं० जाड्येन) १. आलस्य से २. बेवकूफी से, निष्क्रियता से, "जाडें सलुह" जाड्येन संलुठति, (उ० व्य० प्र० ५२-२१)।

जाण[1]—पुं० (सं० यान>प्रा० जाण) रथादि वाहन, सवारी; (ण० १, १५, ६; जस० १, २६, ६)।

जाण[2]—पुं० (सं० यज्ञ>प्रा० जण्ण) यज्ञ; (सि० १, १५)।

जाण[3]—वि० (सं० ज्ञानिन्>प्रा० अप० जाणि>अव० जाण) जानने वाला; तुल० गु० जाण; (कौ० ३, १३०; व० १, १, १८)। वि० ज्ञात (न०)।

√जाण[4]—(सं० √ज्ञा, सं० जानाति> प्रा० जाणइ) जानना ज्ञान प्राप्त करना; (सं० रा०)। —इ, व० (हे० ४०१, ४)। —उं, भू० का० समझूं; (हे० ३६१)। —उ, जाना, ज्ञानी बन गया (पाहु० ४४, प० ३, ४, ६)। —मि, व०, क्रि०, ए० जानना; (प० च० ११, ५, ५)। —विउ भू० का० जताया; (व० २, ४, ५)। —सि व०, म० पु० (उ० व्य० प्र० १६-३०)। —मु, जानो (ण० ४, ३, १)। —हि, व०; ए० (ण० ३, १३, ८)। —हु, व० क्रि०, व० (प० च० २, १३, ६)। —हु, व० क्रि०, आ० (प० च० ४, ५, २)। —न्तहों व० कृ०, जानते हुए; (प० च० ३, २, ७)। जाणेवि—पू० का० क्रि०, जान कर (प० च० ५, ५, ७)। पुं० (सं० ज्ञान) ज्ञान, बोध (सं० रा०)।

जाणेहु—आज्ञा, (प्रा० पैं० १, ८)। तुल० राज० जाणवो, गु० जाणवुं।

जाणई—स्त्री० (सं० जानकी) सीता, राम-पत्नी; (प० च० १०३, १८)।

जाणएँण—वि० (सं० ज्ञातृ>प्रा० जाणग, जाणय) जानकार, ज्ञानी, जानने वाला; (प० च० ६, ३, २)।

जाणकी—स्त्री० जानकी, जनक की पुत्री

सीता; (प० च० ११७, १८) ।

जाणय—वि० (सं० ज्ञातृ) बुद्धिमान् पुरुष, (भ०) ।

जाणवत्तु—पुं० (सं० यानपात्र) जहाज; "हा हा जाणवत्तु किज्जउ थिरु;" अर्थात् अरे अरे जहाज को रोकिए ! (जंबू० १०, ११, ७) ।

जाणायरु—पुं० (सं० ज्ञान+आकर) ज्ञान की खान; (जस० ३, १७, १२) ।

जाणावण—न० (सं० ज्ञापन>प्रा० ज़ाणावण) ज्ञापन, बोधन; (प० च० ११, ८८) ।

जाणाविय—वि० (सं० ज्ञापित>प्रा० जाणाविय) विज्ञापित, जनाया, निवेदित; (प० च० ५, १२, ४) ।

जाणिअ—वि० (सं० ज्ञात>प्रा० जाणिअ) जाना हुआ, विदित; (क० १, ८, २; म० १, ४, २) । जाणिय; (ण० २, ६, १) ।

जाणिय—वि० (सं० ज्ञात) १. प्रसिद्ध, (जस० १, १२, १३) । २. विदित; (जंबू० ४, १७, २) ।

जाणु—न० (सं० जानु) जानु, घोंटू, घुटना; (भ०) । —य न० (सं० जानु+क) घुटना; (जस० ४, २२, १६) ।

जात—(सं० यात्रा>प्रा० जत्ता) देशांतर-गमन, देशाटन; (प्रा० गु० ७, ४५) ।

जादर—पुं० (दे०) बाहुमूल्य वस्त्र-प्रकार; "पहिरणि जाकर-चीरु;" (प्रा०-गु० ११, ७) ।

जान—पुं० (सं० ज्ञान>प्रा० जाण) ज्ञान, जानना;" एवाप अभ्यन्तर करी वार्ता के जान;" अर्थात् 'महल के भीतर की बात कौन जान सकता है; (की० २, २४७) ।

√जान—(सं०√ज्ञा>प्रा० जाण) —इ व, सक० जानना; "दान खग्गको मम्म न जानइ" अर्थात् खड्ग दान के रहस्य को नहीं जानता; (की० २, ३८) ।

जानन्ता—भू० का०, परिचय रखते थे; (की० २, २२२) । जानल—भू० का०, जानो, (की० १, ७२) । जानलि—भू०-का०, जाना; (की० २, २४१) ।

जान—पुं० (सं० जन्ययात्रा>प्रा० जण्ण-जत्ता, जन्नत्ता) जनेत, बरात, वर-यात्रा; "हरख धरंता जानइँ चलिया वाजइँ ढोल-नीसाण;" (प्रा० गु० ११, ११) । —उत्ति स्त्री०बरात; "सोल सहस गोपी मिली ए जानउत्ति चालइ मन-रुली;" (प्रा० गु० २६, ४) ।

जान्त—पुं० न० (सं० यान्>प्रा० जाण) वाहन, यान; 'जान्त आछ' —यानास्ते, स्त्री तु यान्ती, कुलं यात्; (उ० व्य० प्र० ७-१७) ।

जाम—क्रि०वि०(सं०यावत्>प्रा० जाव, जाम) जब तक; (ण० १, ३, १२; सं० रा०; जस० ३, १३, ११) । —हिँ जब; (हे० ४०६, ३) । —हि जब; (जंबू० ६, ५, ६) । अव्य० जैसे ही, "उब्भिय चउ *माणवथम्भ जाम,"* —जैसे ही चार मान स्तंभ बन कर तैयार हुए; (प० च० १, ७, ८) । पुं० (सं० याम>प्रा० जाम) प्रहर; (जंबू० ४, ५, १५) । न० (सं० जन्मन्>प्रा० जन्म) जन्म; (हिं० का०, च० ४०) ।

√जाम—(सं० जम् > प्रा० जम्म; सं० जायते) उत्पन्न होना; (उ० व्यं० प्र० १५-२०)।
जामाइय, जामाउय—पुं० (सं० जामातृ + क > प्रा० जामाउय, जामाउ) जामाता, लड़की का पति; (भ०)। जामाएँ; (प० च० ११, ११, ६)। जामाय, (ण० ५, ८, ११)। जामाय—पुं० (सं० जामातृ) जामाता; (ण० ५, ८, ११; क० ७, ८, ५)।
जामिणि—स्त्री० (सं० यामिनी > प्रा० जामिणी) रात, रात्रि; (सं० रा०; जंबू० ३, ४, १०)। जामिणी—स्त्री० रात्रि; (व० २, ३, १५; क० १, ८, ५)।
√जाय—(सं० √या > प्रा० जा) उत्पन्न होना। —इ व०; (जंबू० ११, १, १३)। —हि (विधि०) (जंबू० ४, १४, १४)।
जाय—वि० (सं० जात) जन्मा हुआ, उत्पन्न; (ण० ६, ३, १; क० १, १७, १०; जस० ३, १०, ६)।
जायअ—वि० (स० याचक > प्रा० जायग) माँगने वाला; (जस०)।
जायण—न० (सं० याचना > प्रा० जायणा, जायण) माँगना; (जंबू० ६, १३, १४)।
जायमित्त—पुं० जातमित्र, इंद्रमित्र, (व० ८, १७, ६)।
जायर—पुं० (सं० जागर) १. जागरण, २. जागृत अवस्था की मन सृष्टि; (जंबू० ६, १६, ६)।
जायव—पुं० स्त्री० (सं० यादव > प्रा० जायव) यदुवंश में उत्पन्न; (ण० ६, २२, ५)।
जायवेअ—पुं० (सं० जातवेदस्) अग्नि; (ण० १, १६, ७)। जायवेउ—पुं० अग्नि; (व० १, ५, ३)।
जायसकुल—पुं० जैसवाल कुल, आश्रयदाता नेमिचंद्र का; (व० १, २, ३)।
जाया—स्त्री० (सं० प्रा० जाया) पत्नी; (जंबू० १०, ६, ४)।
जार—पुं० (सं० प्रा० जार) १. व्यभिचारी; (जंबू० १०, १०, ५)। २. उपपति; (जस० २, ८, १)। ३. विट; (सि० १, ४५)। —सत्त (जारासत्त) वि० (सं० जार + आसक्त) जार पर आसक्त हुए (नेत्रों के तारे); (जस० ३, १०, ६)।
जारिस—वि० (सं० यादृश > प्रा० जारिस) जैसा, जिस तरह का (जंबू० ६, १६, ७)।
जालंधर—पुं० (सं० जालन्धर > प्रा० जालंधर) उड़ीसा में नगर-विशेष, "महा-उड्डियाणं च जालंधरं;" (जंबू० ६; १६, १५)।
जालंधरि—स्त्री० कदली, केला; (सं० रा०)।
जाल—पुं० (सं० ज्वाल > प्रा० जाल) ज्वाला; अग्नि शिखा; तुल० म० जाळ; (उ० व्यं० प्र० १५, २३; जस० १, ६, ४)। २. न० (सं० प्रा० जाल) समूह; (जंबू० ७, ६, १०)। ३. जाली; "जाल जालओष;" अर्थात् जाली के झरोखे; (की० २, ८५)। —ओष न० जाल-गवाक्ष; (की० २, ८५)।
√जाल—(सं० √ज्वालय्) जलाना,

दग्ध करना। —इ व० (जंबू० ११, १३, ६; जस० ३, १२, १३)। जालेवि—पू० का० क्रि०, जलाकर, दाह संस्कार कर; (व० १०, ४७६; प० सि० च० २, ८१, ४६)।

जालउर—पुं० जावालिपुर, तुल० राज० जालोर; (प्रा० गु० १२, ४८)।

जालगवक्ख—न० (सं० जालगवाक्ष) गवाक्ष-विशेष, कारीगरी वाले छिद्रों से युक्त छोटी खिड़की; (जस० ३, २६, १६)।

जालघडिआ—स्त्री० (दे०) चंद्रशाला, अट्टालिका; (दे० ना० मा० ३, ४६)।

जाला—स्त्री० (सं० ज्वाला>प्रा० जाला) अग्नि की शिखा; (ण० ७, १३, ६; व० ५, २२, ६; सि० १, १७)।

जालाकलाव—पुं० (सं० ज्वाला+कलाप) ज्वालावलि, "लग्गग्गिजालाकलावेण," अर्थात् उस अग्नि ज्वालावलि के लगने से; (जस० ३, १३, १०)।

जालामुख— पुं० (सं० ज्वालामुख) अग्निमुख, वैताल; (जंबू० ७, ६, ८)।

जालावलि—वि० स्त्री० (सं० ज्वाला+आवलि) ज्वालामुखी, "धूमाविल-जालावलि-हुआसु;" अर्थात् धूम से व्याप्त ज्वालामुखी अग्नि से युक्त; (व० ५, २२, १०)।

जालिय—वि० (सं० ज्वालित>प्रा० जालिय) जलाया हुआ, प्रकाशित; तुल० म० जाळला; (जंबू० ८, १५, ४)।

जालोलि—स्त्री० (सं० ज्वाला+आवलि, आवली) ज्वाला, अग्नि की शिखा; (प० च० ८, २, ६)।

जाव—अव्य० (सं० यावत्) जितना, जब; (क० १, १३, १; प्रा० पैं० २, १६६; जंबू० २, १, १२)। —हिँ अव्य० जैसे ही; (प० च० ३, ४, ८)। —हि अव्य० (सं० यावत्+हि, यावद्धि) । जब तक; (म० १, ३१, १०)।

जावय—पुं० जपा-कुसुम; (व० ७, १४, १०)।

जाखरी—स्त्री० (सं० यक्ष>प्रा० जक्ख >अव० जाख+डी प्र०, जाखडी, जाखरी) नट्टिनी, नाचने वाली, नर्तकी; (की० २, १८६)।

जास—सर्व० (सं० यस्य) जिसका; (व० १, १६, ६) जासु—सर्व० जिसकी; (की० १, ४३)।

जासवण—पुं० (सं० जपासुमनस्>प्रा० जासुमण, जासुयण) जासौन या गुडफल नामक पुष्प; "मणि जासवणहेउ कि दिज्जइ," अर्थात् क्या कोई जासवन (जासौन या गुड़फल) के पुष्प के लिए मणि देता है; (जस० ३, २५, १३)।

जासि—सर्व० (सं० यस्या) जिसका; (व० १, ६, ८)।

जासु—सर्व० (सं० यस्य>प्रा० जस्स) जिसके; (हे० ४२०, ३)।

जाहाँ—अव्य० (सं० यत्र) जहाँ; (उ० व्य० प्र० १५-२)।

जाहे—सर्व० (सं० यस्मै) जिसके लिए; (उ० व्य० प्र० १५-१)।

जिव—अव्य० (सं० यथा) जिस प्रकार; तुल० म० जेविं०; (भ०; विला०)।

जि— अव्य० (पादपूरणार्थमव्ययम्)

१. एव, निश्चय ही, खलु, चैव, एक निश्चयार्थक शब्द, ही, २. भी; तुल० म० चि, च; गु० ज; हे० ४, ४२०; सं० रा०; जंबू० १, १४, ५; ण० १, ५, २)।

जिअ—वि० (सं० जित) जीता हुआ, पराभूत; (रा० ४८; जंबू० ७, ८, १४)।

√जिअ—(√जि) जीतना। जिणइ—व० (प्रा० १, १५७)।

जिअ—पुं० (सं० जीव>प्रा० जिअ) प्राणी, आत्मा; (प्रा० पैं० २, ६१)।

जिइंदिय, जिएंदिय—वि० (सं० जितेन्द्रिय) इंद्रियों को वश में रखने वाला; (प० च० १४, ३६)।

जिउ—पुं० (सं० जीव>प्रा० जिअ) जानवर, (जंबू० ६, १, १७; की० २, १८१)।

जिके—सर्व० (सं० यत्) ये "केवलि-भासिय- रीति जिके नवकारु अराहहिं," तुल० राज० जिके, (प्रा० गु० ४०, २)।

जिगीषु—वि० (सं० जिगीषु) विजयेच्छु, विजयार्थी; (की० ३, ६०)।

जिगीसए—स्त्री० (सं० जिगीषा) जीतने की इच्छा; (व० ६, १, ४)।

जिग्घिअ—वि० (दे०) सूँघा हुआ; (दे० ना० मा० ३, ४६)।

जिट्ठ—पुं० (सं० ज्येष्ठ>प्रा० जिट्ठ) ज्येष्ठ मास; (जंबू० ४, ३, २)।

जिणंद—पुं० (सं० जिनेन्द्र) जिनेंद्र, एक बुद्ध, एक जैन संत; (व० २, ६, १)।

जिण—पुं० (सं० जिन>प्रा० जिण) बुद्ध देव, बुद्ध भगवान्; जिन, जिनेंद्र; (व० १, २, २; जंबू० ३, ३, ५; दे० ना० मा० १, ५)। —दत्त पुं० (सं० जिनदत्त) जैनाचार्य-विशेष; (प० च० २०, ११६)। —वर पुं० (सं० जिनवर) अर्हन्, देव, (प० च० ११, ४)।

√जिण— (सं० जि०, प्रा० जिण) जीतना; वश में करना; (सं० रा०)। —इ सक०, व० (सं० जयति,>प्रा० जिणए, जिणइ); (जंबू० ५, ६, १४; क० ८, १३, ४)। —मि व०, उ० पु०, ए०, (प० च० १६, १२, ६)। —णंति व०, ब० (ण० १, ४, २)।—णिवि पू० का० क्रि०; (जंबू० ६, १४, १)। जिणेप्पि—पू० का० क्रि०, जीतकर; (हे० ४४२)। जिणेवि—पू० का० क्रि०;(प० च० ८, १०, १)।

जिणकित्तण—पुं० (सं०जिन+कीर्त्तन) जिन भगवान का कीर्तन; (जंबू० ८, ८, ६)।

जिणण—वि० जीतने वाला; (सं० रा०)।

जिणणाह—पुं० (सं० जिननाथ>प्रा० जिणनाह) जिन-देव, अर्हन् देव; (व० २, ४, १०; जंबू० ३, १३, १३)।

जिणण्हवण—न० (सं० जिन+स्नपन >प्रा० जिण<ण्हवण) जिन भगवान् का स्नान; (जंबू० ३, ३, १७)।

जिणतअ—पुं० (सं० जिन+तपस्) तपस्या; (ण० ६, ५, १)।

जिणदंसण—पुं० (सं० जिनदर्शन) जिन-धर्म; (जंबू० २, १८, २)।

जिणदत्त—पुं० श्रावक, गृहपति (प० च० २०, ११६)।

जिणदिक्ख—स्त्री० (सं० जिन+दीक्षा >प्रा० जिण+दिक्खा) जिन-देव के द्वारा दीक्षण, प्रव्रज्या देना; (व० १, १५, ३; जस० १, १३, १२)।

जिणदिट्ठ—वि० (सं० जिन+उपदिष्ट) जिन द्वारा उपदिष्ट; (जंबू० ३, ६, १६)।

जिणधम्म—पुं० (सं० जैनधर्म) जैनधर्म (व० २, ५, ३)। २. जिन धर्म; (जस० ४, ६, ५)।

जिणनाम—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १६)।

जिणनाह—पुं० (सं० जिननाथ>प्रा० जिणणाह) जिन-देव, अर्हन् देव; (व० १, ७, ३)।

जिणपउमरुइ—पुं० श्रेष्ठिपुत्र; (प० च० १०३, ३८)।

जिणपडिम—स्त्री० (सं० जिन+प्रतिमा) अर्हन् देव की मूर्ति; (जंबू० ५, १०, १५)।

जिणपय—पुं० (सं० जिनपद) भगवान् जिन के चरण; (जंबू० १, ४, ६)।

जिणपुंगम—पुं० (सं० जिनपुङ्गव) जिनश्रेष्ठ; (जंबू० ४, १, ५)।

जिणपेम्म—पुं० वानर योद्धा; (प० च० ५७, १६)।

जिणभत्ति—स्त्री० (सं० जिनभक्ति) जिन भगवान् की भक्ति; (व० २, ५, २०)।

जिणभवन—पुं० (सं० जिनभवन) जिन भगवान् का मंदिर; (जंबू० ५, ३, ८)।

जिणमंदिर—पुं० (सं० जिनमन्दिर) जिन या अर्हन् देव का मंदिर; (जस० ३, ३१, २)।

जिणमइ—स्त्री० (सं० जिनमती) स्त्री-नाम-विशेष; (जंबू० ४, ७, २)।

जिणमई—स्त्री० वानर सुग्रीव की पुत्री; (प० च० ४७, ५४)।

जिणमग्ग—पुं० (सं० जिनमार्ग) जैन धर्म का मार्ग; (जस० १, २६, ३)।

जिणमय—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १६)।

जिणयत्त—पुं० (सं० जिनदत्त) पुरुष-नाम; (जस० ४, २६, २)।

जिणयास—पुं० जिनदास, पुरुष-नाम-विशेष; (जंबू० ४, २, ५)।

जिणवंदण—न० (सं० जिन+वन्दन> प्रा० जिणवंदण) जिन-वन्दना या स्तुति; (जंबू० १, १४, ११)।

जिणवइ—स्त्री० जिनवती स्त्री-विशेष-नाम; (जंबू० ४, २२, ८)। —**णाह** पुं० (सं० जिनमतीनाथ) वीरकवि; (जंबू० १, ६, १)।

जिणवइरसेण—पुं० पुंडरीगिनी का राजा; (प० च० २०, १०७)।

जिणवयण—पुं० न० (सं० जिनवचन) जिन की उक्ति या कथन; (जस० २, १५, ७)।

जिणवयधर—वि० (सं० जिन+वद+धर>प्रा० जिण+वय+धर) जिन-वचन को धारण करने वाले; (जंबू० ४, ३, १३)।

जिणवर—पुं० (सं० जिनवर) अर्हन् देव; (जंबू० ३, ७, १५; जस० ३, ३०, ४)।

जिणवरिंद—पुं० (सं० जिनवरेन्द्र > प्रा० जिणवरिंद) अर्हन् देव; (जंबू० ४, १, १३)।

जिणसुत्त—पुं० (सं० जिनसूक्त) जिन-सूत्र, जिनभाषित, (जस० १, १५, १४)।

जिणसेन—पुं० (सं० जिनसेन) पुरुष-विशेष-नाम; (जंबू० १०, २१, ३)।

जिणहर—न० (सं० जिन+गृह > प्रा० जिणघर) जिन-मंदिर; जैन-मंदिर; (ण० २, ७, ६; जंबू० ८, ३, २४; प्रा० गु० ६, ३५; व० १, १२, ७)।

जिणाल—पुं० (सं० जिनालय) जिन-देव का घर; (प० च० ६, २, ५)।

जिणाहीस—पुं० जिनाधीश; (व० ८, १०, ८)।

जिणिंद—पुं० (सं० जिनेन्द्र) जिन भग-वान् (जस० ३, २६, ११)। —चंद पुं० (—चन्द) जिन-देव; (प० च० ९५, ३९)।

जिणि—सर्व० जिसने; (प्रा० पैं० १, २०७)।

जिणिय—वि० (सं० जित) पराभूत, वशीकृत; (क० ८, १३, ५)।

जिणुत्त—वि० (सं० जिनोक्त) जिन द्वारा कहा गया; (जस० ४, १७, २२)।

जिणुद्दिट्ठ—वि० (सं० जिन+उप-दिष्ट) जिन द्वारा उपदेश दिया हुआ; (जंबू० ४, ५, ५)।

जिणेसर—पुं० (सं० जिनेश्वर) जिन देव; (प० च० २, २३; जंबू० ४, ४, ३; व० १, ११, ४)। जिणेसुर—पुं० जिनेश्वर; (जंबू० ४, ४, ३)।

जिण्ण—वि० (सं० जीर्ण > प्रा० जिण्ण) पुराना, जर्जर; तुल० गु० राज० जूनूं; (प्रा० पैं० १, २; ण० ३, ११, १)।

जिण्णोब्भवा—स्त्री० (दे०) दूर्वा, दूभ; (दे० ना० मा० ३, ४६)।

जित्त—वि० (सं० जित > प्रा० जिअ) जीता हुआ, विजित; (क० २, ११, २; जंबू० २, ३, १५; ण० ३, ६, १)।

जित्तउ—क्रि०, भू० का० (सं० √जि) जीत लिया; (महा० ६६, ४, ८)।

जित्ति—पू० का० क्रि०, जीत कर; (कीo ४, २१३)।

जित्तवेरि—वि० (सं० जित+वैरिन्) वैरियों को जीतने वाले; (ण० १, ६, ४)।

जित्तसिरि—स्त्री० (सं० जितश्री) श्रेष्ठि-कन्या; (जंबू० ८, १०, ११)।

जित्तिउ—वि० (सं० यावत्) जितना बड़ा, जहाँ तक व्यापक हो; (परम० २, ३८)।

जित्थ—अव्य० (सं० यत्र) जहाँ; (व० १, ३, ७)। जित्थु; (जंबू० २, ११, ६; म० १, ३७, १०)।

√जिप्प—(सं० √जि कर्मणि) जीतना, (जस० १, २१, ८; व० १, १४, ११)। —इ व० (सं० जयति, प्रा० जिणइ)

जीतना; (जस० २, १२)। —प्पंति (जिप्पंति) व०, ब० "मंतें अंतरंग ब्रहिरंग वि, रिउ जिप्पंति विड्णणकुसंग वि" —मंत्र द्वारा कुसंगति से उत्पन्न अंतरंग और बहिरंग शत्रु जीते जाते है; (ण० ३, २, ५)।

√जिम—(प्रा०√ जिम्) खाना, जीमना, भोजन करना। —इ सक०; तुल० म० जेवणें, गु० जमवुं; (जस० १, २१, ८; जंबू० ३, ६, १४)। जेमन्त—कृ० खाते हुए; (प० च० ४८, १०, ६)। जेम्मइ—(सं० जेम्यते) कर्मवाच्य; (प० च० २१, २, २)।

जिम—अव्य० (सं० यथा>प्रा० अप० जिध) १. जैसे, ज्यों; (सं० रा०; पाहु० १७७)। २. जिस प्रकार, जिस तरह से; (पाहु० १७६; प्रा० पैं० १, ८६)।

जिमि—वि० जैसे; (प्रा० पैं० १, २०७)।

जिमिअ—वि० (सं० जिमित) १. जिसने भोजन किया हो वह; (जस० ३, १३, ८; प० च० २०, १२७)। २. भक्षित; (दे० ना० मा० ३, ४६)। जिमिय; (जस०)।

√जिम्म—(सं० जिमु अदने, प्रा० जिम) खाना; (जस० १, २१, ८)।

जिय—वि० (सं० जित>प्रा० जिअ) जीता हुआ, पराजित; (ण० २, ५, १४; जंबू० ८, ५, ६; क० २, ११, २)।

√जिय—(सं०√जीव्) जीना, प्राण धारण करना; (जस० १, ११, १)। —इ व० (सं० जीवति>प्रा० जीवइ); (ण० ३, ७, ६)। √जियंत—व० कृ० (सं√जीव्+शतृ) (जंबू० ७, १, १५)। जिय—भू० का०, जीता; (चं० २, १०)।

जियकुसुमाउहु—पुं० (सं० जितकुसुमायुध) कामविजेता; (व० २, ८, ११)।

जियपउमा—स्त्री० लक्ष्मण की स्त्री, राजा शत्रुदमन (सत्तुदमण) की पुत्री; (प० च० १, ७२)।

जियमाणु—पुं० विद्याधरवंशीय राजा; (प० च० ५, २५६)।

जियसत्तु—पुं० जितशत्रु; (जस० ४, २४, ३)।

जिवँ, जिह—अव्य० (सं० यथा>प्रा० जिध) जैसे, जिस तरह से; (हे० ३३६, षड्)।

√जिव—जीना। जिवउ—भू० का०, जीवित रहें; (की० १, ६१)। जिविज्जइ—कर्मवाच्य, व०, प्र० पु०, ए० (प्रा० पैं० १, ५५)।

जिह—अव्य० (सं० यथा>प्रा० जिध, जिह) जैसे, जिस प्रकार; (महा० ६६, ३, १३; प० च० २, ११, ८; हे० ३३६; ण० १, १०, ७)।

जिह—सर्व० जिसको, जिसमें, जो; (हे० ४, ३३७; सं० रा०)।

जी—पुं० (सं० जीव>प्रा० अप० जीअ>अव० जी) प्राण; (की० ४, १५३)।

जीअ—पुं० न० (सं० प्रा० जीव) प्राणी; (क० २, १५, ४; जस० २, १५, ६)।

जीआ—स्त्री० (सं० ज्या) १. पृथिवी; २. माता; (षड्)।

जीउ—पुं० न० (सं० प्रा० जीव) प्राणी; (व० १, १५, १; जंबू० १०, २, १०; हे० ४३६, २)।

जीउगुण—पुं० (जीवगुण) जीव का धर्म; "अण्णु जि निरवहिजीउगुणु कवणु ममत्तिभाउ तुणकारणें-" अर्थात् जीव का निरवधि ज्ञान गुण भी इन सब बाह्य वस्तुओं से अन्य ही है। अत: इस शरीर के लिए ममत्व ही क्या? (जंबू० ११, ५, १०)।

जीभ—स्त्री० (सं० जिह्वा>प्रा० जिब्भा) जबान, रसना, जिह्वा। जीभे; (उ० व्य० प्र० ६, ६)।

जीमणवार—पुं० भोज, ज्योनार; तुल० गु० जमणवार; (प्रा० गु० २८, ६)।

जीमुत्तनायक—पुं० राक्षसयोद्धा; (प०-च० ६१, १०)।

जीअ[1]—पुं० (सं० प्रा० जीव) आत्मा, जीव, प्राण, चेतना, प्राणी; (सं० रा०; प० च० ७, ८, ६)।

जीय[2]—वि० (सं० जीवित>प्रा० जीविअ) जो जिंदा हो; (प० च० ७, १२, ७; भ)।

जीया—स्त्री० (सं० प्रा० जीवा) धनुष की डोरी, प्रत्यंचा; (ण० २, ६, ८)।

जीयासा—स्त्री० (सं० जीव+आशा> प्रा० जीव+आसा) जीवन की आशा; (ण० ३, ६, १३)।

जीर—न० (सं० जीरक>प्रा० जीरय) जीरा, मसाला-विशेष; तुल० म० जिरें; (जस० ३, ५, १५)।

√जीव—(सं० जीव्>प्रा० जीव) जीना, प्राण धारण करना। —इ व० (जंबू० ३, १, १२)। जीवंत—कृ० (जस० ३, २०, ६)। जीवउ—भू० का० (सं० अजीवत्) (उ० व्य० प्र०, ६, २७)। जीविज्जइ (कर्मणि) (जंबू० ११, २, ७)। जीवेसइ—भू० का० (प० च० ८, ४, ६)। जीवेसमि—भ० का० (जंबू० ६, ११, ६)। जीवंत—व० कृ० (सं० जीव+शतृ); (जंबू० ७, ६, ३५)।

जीव—पुं० (सं० प्रा० जीव) प्राणी; (व० २, ११, १)। —उल पुं० (सं० जीवकुल) प्राणी-वंश; (जस० २, ३७, ७)। —तत्त पुं० जीवतत्त्व; (जंबू० २, १, २)। जीवाइ—जीवादि; "जीवाइत्तु तं कहइ मुणि;" अर्थात् उसे अपनी दिव्य वाणी से जीवादि तत्त्वों को मुनि बतलाते थे; (जंबू० २, ६, ७)।

जीवगाह—पुं० (सं० जीवद्ग्राह) जीवित रहते हुए को पकड़ना (capture while alive); (प० च० २५, १८, १)।

जीवण—न० (सं० जीवन>प्रा० जीवण) जिंदगी; (जंबू० २, ६, ६; भ०)। जीवणु; (विला०)।

जीवदय—स्त्री० (सं० प्रा० जीवदया) जीवदया; (जस० २, १८, १५)।

जीवधके—वि० प्राण हरने वाले को, प्राणनतक; (की० ४, १५३)।

जीवन—पुं० (सं० जीवन) जीना, "माणिनि जीवन मान सउं वीर पुरिस अवतार;" अर्थात् हे मानिनी! मान सहित जीना और वीर पुरुष का जन्म लेना, यही सार है; (की० १, ३८)।

जीवभाउ—पुं॰ (सं॰ जीवभाव) जीव-स्वरूप; (जंबू॰ १०, २४, ४)।
जीवमित्ती—स्त्री॰ (सं॰ जीवमैत्री) प्राणियों में परस्पर मैत्री; (जस॰ ४, ६, ४)।
जीवसरणु—वि॰ (सं॰ जीवशरण) जीवों के लिए शरणाभूत; (जंबू॰ १, १, ५)।
जीवसहाउ—पुं॰ (सं॰ जीवस्वभाव) जीवों का स्वभाव; (जस॰ ३, २८, ३)।
जीवहिंस—न॰ (सं॰ जीवहिंसा) जीवों की हिंसा; (जस॰ २, १४, १०)।
जीवावहारी—वि॰ (सं॰ जीवापहारिन्) जीव संहार करने में प्रवृत्त; (जस॰ ४, १७, ३)।
जीवासउ—पुं॰ (सं॰ जीव+आश्रय) जीव के आश्रय; (जंबू॰ ११, ७, २)।
जीवासा—स्त्री॰ (सं॰ जीव (जीवन)+आशा) जीवन की आशा; (जंबू॰ २, ५, १४)।
जीवाहार—पुं॰ (सं॰ जीवाहार) मांसाहार; (जस॰ २, ३०, १)।
जीविउ—वि॰ (सं॰ जीवित) जीवित; (व॰ १, १४, २; जंबू॰ ८, ७, ७)। २. जिलाने वाला; (जंबू॰ ७, ११, ६)।
जीविय—वि॰ (सं॰ जीवित>प्रा॰ जीविअ) जो जिंदा हो; (भ॰)।
जीवियव्वु—पुं॰ (सं॰ जीवितव्य) जीवन, "महु जीवियव्वु धुउ अम्मि जइ;" भले ही मेरा जीवन समाप्त हो जाए; (जस॰ २, १६, ३)।
जीवियास—पुं॰ (सं॰ जीवित+आशा) जीने की आशा; (जंबू॰ ६, ११, १२)।
जीह—स्त्री॰ (सं॰ जिह्वा>प्रा॰ जीहा) जीभ, रसना तुल॰ म॰ जीभ, (सं॰ रा॰; क॰ १, १७, ६; ण॰ १, १३, २; सि॰ २, २३)। —हा जिह्वा; (जंबू॰ ८, ७, ७)।
जीहा—स्त्री॰ (सं॰ जिह्वा) जीभ; (जस॰ १, ६, ५; प्रा॰ पैं॰ १, ८)।
जीहादल—पुं॰ (सं॰ जिह्वादल) बड़ी-बड़ी जिह्वाएँ; (जस॰ १, १६, १२)।
जीहालंपडु—वि॰ (सं॰ जिह्वा+लम्पट>प्रा॰ जीहा+लंपड) जिह्वा का लोलुप या लोभी; (ण॰ ६, ८, ७)।
जीहाल—वि॰ (सं॰ जिह्वा+वत्) लंबी जीभ वाला; (प॰ च॰ ७, १२०)।
√जुंज—(सं॰ युज्>प्रा॰ जुञ्ज) जोड़ना, युक्त करना। —इ व॰ (क॰ ६, २०, २१)। जुंजेइ; (सुदं॰ २, ११, १६)। जुंजहि; (सुदं॰ ११, २, १४)।
जुंजिअ—वि॰ (सं॰ योजित) जोड़ा हुआ; (क॰ ६, २, ६)।
जुंभुरुड—वि॰ (दे॰) परिग्रह-रहित; (दे॰ ना॰ मा॰ ३, ४७)।
जु—अव्य॰ (सं॰ यत्) जो; (हे॰ ४१७, २)।
जुअ—वि॰ (सं॰ युत>प्रा॰ जुअ) युक्त, संलग्न, सहित; (दे॰ ना॰ मा॰ १, ८१; क॰ ३, १६, ४)। जोड़ा, दो; (प्रा॰ पैं॰ १, १७)।

जुअय—न० (सं० युतक) जुदा, पृथक्; (दे० ना० मा० ७, ७३)।

जुअराय—पुं० (सं० युवराज) युवराज; (भ०)।

जुअल—पुं० (दे०) तरुण, जवान; (दे० ना० मा० ३, ४७)। न० (सं० युगल >प्रा० जुअल) दो, जोड़ा; (प्रा० पैं० १, ३६; जंवू० १, ११, १५)। जुअलु; (प० च० १३, १०, १०)।

जुआँ—पुं० (सं० द्यूत>प० जूत>प्रा० जूअ) जुआ, किसी घटना की संभावना पर हार-जीत का खेल; (की० २, १४६)।

जुइ—पुं० मुनि-विशेष-नाम; (प० च० ३२, ५७)। स्त्री० (सं० द्युति>प्रा० जुइ) कांति, तेज, प्रकाश; (व० २, २२, १०)। २. ज्योतिरङ्ग नामक कल्पवृक्ष; (व० १०, १८, १२)। —जुत्तिय वि० (सं० द्युतियुक्त) (जस० १, १६, १३)।

जुइपह—स्त्री० (सं० द्युतिप्रभा) स्त्री-नाम-विशेष; (व० ६, ४, २)।

√जुउच्छ—(सं० जुगुप्स्) घृणा करना, निन्दा करना। —इ सक० (षड्)।

जुगंधर—पुं० (सं० युगन्धर) एक जैन मुनि आठवें तीर्थंकर के पूर्वजन्म गुरु; (प० च० २०, १८)।

√जुज्ज—(सं०√युज्>प्रा० जुज्ज) जोड़ना, युक्त करना; किसी कार्य में लगाना। —इ सक० (सं० योजति> प्रा० जुंज्जइ, जुज्जइ); (ण० ३, २, १३; जस० १, १२, १८)।

√जुज्झ—(सं०√युध्>प्रा० जुज्झ) लड़ना, जूझना। युद्ध करना।—इ व०युद्ध करना; (की० १, ६२; जंवू० ६, ४, ३)। जुज्झंति; (सं० युध्यते); (व० १, ४, १६)। जुज्झंतिय—कृ० (सं० युध्+ शतृ) (जंवू० ७, ३, ६)। जुज्झंतु—क्रि०, भू० का०, लड़े; (प्रा० पैं० २, १३२)। जुज्झंत—कृ० (सं० युध्+ शतृ); (प० च० ३, १३, ८)। जुज्झन्ता —भू० का०, युद्ध कर रहे थे; (की० ४, १८०)। जुज्झमाण—कृ० (सं० युध्+ शानच्); (जंवू० ७, ४, ११)। जुज्झिवि पू० का० क्रि० (ण० ३, १७, १३)। जुज्झु—क्रि०, आ० (प० च० ७, १२, ५)।

जुज्झ—न० (सं० युद्ध>प्रा० जुज्झ) लड़ाई, संग्राम; (प० च० ४, ५, ६; क० २, ६, ६; प्रा० पैं० १, ३७)। जुज्झु— न० युद्ध; (महा० ६६, २, ११)।

जुज्झण—न० (सं० योधन) युद्ध, लड़ाई; (म० २, ५५, २)।

जुज्झणमणहों—वि० (सं० योधन+ मनस्) युद्ध की इच्छा रखने वाला; (प० च० ४, ५, ६)।

जुज्झवंत—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १८)।

जुज्झिअ—वि० लड़ा हुआ; (जंवू० ६, ५, ५)।

जुज्झवा—वि० (सं० युद्धवत्>प्रा० जुज्झवय) युद्धवाला या युद्ध संबंधी; (की० ४, १०१)।

जुट्ठ—पुं० (सं० जुष्ट>प्रा० झुट्ठ) असत्य; तुल० गु० जूठ; (संधि० ११, ८, १५)।

जुड—पुं० (सं० जूट) कुंतल, केश-कलाप; (दे० ना० मा० २, २४)।

√जुड—(सं० जुड बन्धने; सं० जुडति) बांधना; (उ० व्य० प्र० ५१-२८)।

जुण्ण—वि० (सं० जीर्ण>प्रा० जुण्ण) पुराना, जीर्ण; (जस० ३, ३८, ३; प०-च० ४, ८, ३)। २. घिसा हुआ; फटा हुआ; (प० च० १४, ७, ४)। वि० (दे०) विदग्ध, निपुण, दक्ष; (दे० ना०-मा० ३, ४७)। पुं० (दे० सं० यून> प्रा० जुण्ण) जूना; (क० १, १०२; सुदं० ८, १, १६)।

जुण्ण-जोत्त—पुं० (सं० जीर्ण-योक्त्र) पुरानी या जीर्ण जोत (रथ की) "लुअ-जुण्ण-जोत्त खण्डिय-धुराइँ"—'जीर्ण जोतें (रथों की) कट गईं, धुरे टुकड़े-टुकड़े हो गए;' (प० च० ४, ८, ३)।

जुत—वि० (सं० युक्त>प्रा० जुत्त) युक्त, संगत, उचित, योग्य; (सं० रा०)।

जुत्त—वि० (क० १, १२, ५); जुत्तउ—वि० (प्रा० पैं० १, १६६); जुत्तु—वि० (प० च० ११, १३, ५; व० २, ३, ११); जुत्तो—वि० (विला०)। —उ (जुत्तउ) वि० उपर्युक्त, "जुत्तउ अवेक्खि संसग्गु;" अर्थात् उपर्युक्त संसर्ग को देख-कर; (व० ५, ३, १४)।

जुत्ताजुत्त—वि० (सं० युक्तायुक्त) संगत एवं असंगत, अच्छे-बुरे; "रज्जमएण पम-त्तउ ण सुणइ जुत्ताजुत्तउं;" अर्थात् राज-मद में पागल होकर व्यक्ति अच्छे-बुरे का विचार नहीं करता; (महा० ६६, ६, १४)।

जुत्तायारउ—वि० (सं० युक्त+आचार) उचित कार्यशील, उचित आचरण करने वाला; "अवसणु सच्छु अरूसणु सूरउ, पवरवलालउ जुत्तायारउ," व्यसनहीन स्वच्छ, क्रोध-रहित, शूरवीर, महाबल-शाली, उचित कार्यशील, (ण० ३, ४, ४)।

जुत्ति—स्त्री० (सं० युक्ति>प्रा० जुत्ति) उपाय, कौशल; तुल० म० जुगत; (ण० १, १५, ३)।

जुत्थे—पुं० (सं० यूत्थ> प्रा० जुत्थ) सेना; (कौ० ४, १६६)।

जुनु—पुं० पुत्र। (उ० व्य० प्र० १०-७)।

जुन्न—वि० (सं० जीर्ण>प्रा० जुण्ण) पुराना; (सं० रा०)।

जुन्ह—स्त्री० (सं० ज्योत्सना>प्रा० जुण्हा) चांदनी, चंद्रिका, चंद्र का प्रकाश; (सं० रा०; प्रा० गु० १३, ४४)।

√जुप्प—(सं० √युज्) जोड़ना, युक्त करना। जुप्पंति— व० (जंबू० ५, ६, ४)।

जुम्मु—न० (सं० युग्म>प्रा० जुग्ग) युगल; (प० च० १३, ८, ३)।

जुय—वि० (सं० युत) मिला हुआ, युक्त; (जस० २, १, २७; क० २, ६, २)।

जुय—पुं० (सं० युग>प्रा० जुग) १. काल-विशेष—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग, २. पाँच वर्ष का काल; (सं० रा०; ण० ३, १०, १०; जस० १, ६, ६)।

जुवराअ—पुं० (सं० युवराज) युवराज; (ण० ५, ६, १२)।

जुयल—न० (सं० युगल > प्रा० जुगल) जोड़ा, युग्म, उभय; (जंबू० १, १, १२; ण० १, २, १०; सं० रा०)। —य न० (सं० युगल + क) युग्म; (भ०)।

जुयलुल्ल—न० [सं० युगल + > प्रा० जुअल + उल्ल (स्वार्थे) युग्म, जोड़ा; (ण० ३, ६, ३; जंबू० ४, १३, १७)।

√जुर—(सं० क्रुध्) क्रोध करना। —इ अक० (पड्)। २. सं० √खिद्; खेद करना, अफसोस करना; (पड्)।

जुरुमिल्ल—वि० (दे०) गहन, निविड़; (दे० ना० मा० ३, ४७)।

जुरुम्मिलय—वि० (दे०) गहन, निविड़, (दे० ना० मा० ३, ४७)।

जुलिअ—(सं √जुड) जुड़ गए, युक्त हो गए; (प्रा० पैं० १, १३५)।

जुव—पुं० (सं० युवन् > प्रा० जुव) युवा, जवान, तरुण; (सि० २, १२)।

जुवइ—स्त्री० (सं० युवति > प्रा० जुवइ) तरुणी, जवान स्त्री; (ण० ३, ११, ४)। —ण युवतीजन; (सि० १, ३२)। —यण युवतीजन; (जंबू० १, १६, ६; क० ७, ७, ४)।

जुवई—स्त्री० (सं० युवति > प्रा० जुवइ) तरुण स्त्री; (जस० १, ४, ४)। —यणु स्त्री० (सं० युवतीजन > प्रा० जुवइ, जुअइ + जण) जवान स्त्रियाँ; (प० च० १४, ४, ६)।

जुवईस—पुं० (सं० युवति + ईश > प्रा० जुवइ + ईस) युवती का स्वामी; (ण० ५, ११, १३)।

जुवराय—पुं० (सं० युवराज) राजा का वह राजकुमार जो राजसिंहासन के लिए मनोनीत कर लिया गया हो; (व० १, १०, ६)। —पट्ट पुं० (सं० युवराज-पट्ट) युवराज का मुकुट अथवा पगड़ी या सब कपड़ों के ऊपर पहिनने का वस्त्र; "महु जुयरायपट्टु वज्झेसइ;" अर्थात् मुझे युवराजपट्ट बांधा जायेगा; (जस० ३, ३४, ११)।

जुवल—न० (सं० युगल) युग्म, जोड़ा, उभय; (जस० ३, ३४, ७; क० ७, १५, ६; प० च० ३२, ७, १०)। —य (सं० युगल + क) तुल० म० जुळें।

जुवाण—वि० (पुं० स्त्री०) (सं० युवन् > युवान > प्रा० जुवाण) जवान, तरुण; तुल० म० जवान; (ण० ४, ६, १५; सि० २, ३५; प० च० ५, १३, ६; सं०-रा०)। टि०—मूल संस्कृत युवा, युवान पुरुषवाची है, किंतु अपभ्रंश में 'जुवाण' पुं० और स्त्री० का भेद नहीं रखता।

जुवाणी—स्त्री० (सं० युवति > प्रा० जुवइ) तरुणी, जवान स्त्री; (प० च० ८, १८४)।

जुवार—पुं० (सं० द्यूतकार) जुआरी; (जंबू० ४, २, ८)।

जुवि—स्त्री० (सं० द्युति) शरीर की सहज कांति, आभा, छवि; (व० ४, १८, १२)।

जुव्वण—न० (सं० यौवन > प्रा० जोव्वण, जुव्वण) तारुण्य, जवानी; (ण० ७, १५, ६; प्रा० पैं० १, १३२)।

√जुहार— (सं० जयकार > प्रा० जेक्कार > अप० जोक्कार > जोआर > जोहार) जुहारना, नमस्कार करना;

तुल० गु० जुहारवुं; (प्रा० गु० २५, १०)।

जुहिट्ठिर—पुं० (सं० युधिष्ठिर) पाण्डुराज का ज्येष्ठ पुत्र; (प्रा० पैं० २, १०१)। जुहिट्ठिल; (जस० १, ६, १२; सुदं० २, १०, ६)।

जूअ—न० (सं० द्यूत>प्रा० जूअ) जूआ, द्यूत; तुल० म० जुआ (वा); (ण० ३, १३, ८)। पुं० (सं० द्यूतकार) जुवाड़ी; (व० २, २२, ४)।

जूअअ—पुं० (दे०) चातक पक्षी; (दे० ना० मा० ३, ४७)।

जूआर—वि० (सं० द्यूतकार) जूआरी; तुल० गु० जुआरी, म० जुगार, जुवार; (प० च० ४२, १०, ५)।

जूझ—न० (सं० युद्ध>प्रा० जुज्झ) लड़ाई; (रा० ३८)।

जूठ—पुं० (सं० जुष्ट>प्रा० जुट्ठ) उच्छिष्ट, जूठा, वह जिसका सेवन कर लिया गया हो, जिसमें से कुछ ले कर खा लिया गया हो; "सव्व को जूठ सव्वे खा;" (कीं० २, १८८)।

जूड—पुं० (सं० जूट) कुंतल, केश-कलाप; (दे० ना० मा० ४, २४; भ०)।

जूतउ—वि० (सं० युक्त>प्रा० जुत्त) संगत, उचित, योग्य; तुल० गु० जूत्यो; (प्रा० गु० २०, ३)।

जून—वि० (सं० जीर्ण>प्रा० जुण्ण) बुड्ढा, पुराना। —उ वि० वृद्ध; (रा० ३०)।

जूयारत्तण—पुं० (सं० द्यूत+आरक्तत्व) द्यूतानुराग; (ण० ३, ३, १६)।

√जूर—(सं० √जूर्>प्रा० जूर) जलना, क्रोध करना। —इ व० (सं० जूर्यते) (ण० ३, ६, १२)। "दुज्जणु जो जूरइ सो जूरउ," अर्थात् जो दुर्जन जले सो जले, (ण० ३, ६, १२)। झूरना; (सुदं० ८, ८, ८)। जूरंत—कृ० (सं० जूर+शतृ)। जूरंतिय— (स्त्रियाम्); (जंबू० ६, १३, ३)।

जूरण—न० (सं० प्रा० जूरण=सूखना, झुरना) व्याकुल हो उठना; "वइरिमाणिणीहिययजूरणं;" अर्थात् शत्रुओं की मानिनी स्त्रियों के हृदय व्याकुल हो उठे; (ण० ४, १०, १४)।

जूरवणी—वि० खेदयित्री; "लच्छि व तिय-रूवें जूरवणी;" (प० च० ४१, ४, ४)।

जूरावण—पुं० (सं० जूरण>प्रा० जूरावण=शोषण) सताने वाले; "एत्यन्तरें जमं-जूरावणेंणं" —इसके अनंतर, यम को सताने वाले;' (प० च० १२, ५, १)।

जूरिअ—(दे०) खेद-प्राप्त, खेदित; (जस० १, २२, ६)।

जूरिय—वि० (सं० ज्वरित) ज्वरयुक्त, जिसे ज्वर चढ़ा हो; (क० १, १७, ६)।

जूव—न० (सं० द्यूत>प्रा० जूव, जूअ) जूआ, द्यूत; (क० ८, १३, ४)। —फल पुं० (सं० द्यूतफल) द्यूत का परिणाम; (जंबू० ४, ३, ८)।

जूवार—वि०(सं० द्युतकार>प्रा० जूअकार) जूआरी, जूए का खिलाड़ी; (ण०

३, १३, ४; जंबू० ८, ३, १३; क० ८, १५, २)।

जूसअ—वि० (दे०) फेंका हुआ; (षड्)।

जूह—न० (सं० यूथ>प्रा० जूह) १. समूह, जत्था; (भ०)। २. झुंड; (प्रा० पैं० २, ११३; जंबू० ८, १०, ४)।—वई पुं० (सं० यूथपति) किसी टोली या दल का नायक, अगुआ; (जंबू० ६, ७, १)।

जूहाहिअ—पुं० (सं० यूथाधिप) किसी टोली या दल का नायक, अगुआ; (जस० ३, ८, ४)।

जूहिंद—पुं० (सं० यूथेन्द्र) यूथनायक, किसी टोली या दल का नायक; (जस० ३, ४०, ६)।

जूहिय—स्त्री० (सं० यूथिका>प्रा० जूहिया) जूही का पेड़; तुल० म० जुई; (ण० ८, १, १४)।

जूहिया—स्त्री० (सं० यूथिका) लता-विशेष, जूही का पेड़; (प० च० ५३, ७६)।

जूहेस—पुं० (सं० यूथेश) झुंड का नायक; (जस० ३, ६, १३)।

जें—सर्व० (१) जिसने, (प० च० १, १०, ६)। २. जो; (ण० १, १६, १)।

जेंइं—सर्व० (सं० येन) जिससे, जिसके द्वारा, जिस लिए; (उ० व्य० प्र० १५—७)।

√जेंम—(सं०√जिम्>प्रा० जिम) जीमना, भोजन करना; (उ० व्य० प्र० १५, १६)।

√जेंव—(सं०√जिम्> प्रा० जिम, जिम्म) जीमना, भोजन करना।—इ व० (सं० जिम्वति); (महा० १८, ७, ११)। जेंवि जेंवि—पू० का० क्रि० (सं० जिमित्वा) (उ० व्य० प्र० २०, २०)।

जेंवण—न० (सं० जेमन>प्रा० जेमण) जीमन, भोजन; (उ० व्य० प्र० ११-२४)।

जे—वि० (सं० यः) जो; तुल० राज० ज्यों, (प्रा० पैं० १, ६; रा० ६; हे० ३७६, २; उ० व्य० प्र० १०, १०)। २. जिन्होंने; (की० १, ७७)। ३. जब; (की० २, ४)।

जेइं—सर्व० (सं० येन) जिससे, जिसके द्वारा, जिस लिए, जिस कारण से; (उ०-व्य० प्र० १५-४)।

जेट्ठ—वि० (सं० ज्येष्ठ>प्रा० जेट्ठ) महान्, बड़ा; तुल० गु० जेठो; म० जेठा; (भ०)। २. जेठी, बड़ी; (व० ३, ३, ७)। ३. ज्येष्ठ मास; (व० १०, ४१, ६; की० २, ४२)।—उत्त पुं० (सं० ज्येष्ठ+पुत्र) बड़ा पुत्र; (क० ८, ४, ८)।

जेण—अव्य० (सं० येन>प्रा० जेण) १. जिससे; (विला०; परमा०)। २. जिन्होंने; (महा० संधि० ६८)।

जेता—वि० (सं० यावत्>प्रा० जेत्तिअ) जितना, तुल० गु० जेटलुं; (प्रा० गु० ३६, २६)।

जेत्तह—अव्य० (सं० यत्र) जहाँ; (जंबू० ३, ४, ११)। जेत्तहि—अव्य० जहाँ;

(जस० ३, १२, ६)। जेतहे—अव्य० जहाँ; (ण० ५, २, २)।

जेत्तिउ—वि० (सं० यावत् > प्रा० जेत्तिअ) जितना; (प० च० १६, १५, ६)।

जेत्तिय—वि० (सं० यावत् > प्रा० जेत्तिअ) जितना; तुल० म० जितकें; (भ०)।

जेत्थ—अव्य० (सं० यत्र) जहाँ; (जंबू० १, ३, २)। जेत्थु—अव्य० (व० ३, १, ११; जस० १, ५, १०; महा० ६८, ५)।

जेथु—सर्व० (सं० यस्मै) जिसके लिए; (उ० व्य० प्र० १४, ३०)।

जेन्ने—सर्व० (सं० येन) जिससे; (की० १, ६२)।

जेन्ह—सर्व० जिन्होंने; (की० ३, १४६)।

जेमाई—स्त्री० (सं० जृम्भिका) जँभाई; (व० ६, ६, ५)।

जेम—अव्य० जैसे, यथा, जिस प्रकार; तुल० गु० जेम; (व० १, १४, ६; जस० १, ३, १, महा० ६८, ११, ३)।

जेमण—न० (सं० जेमन) जीमन, भोजन; (संधि० ४, २, ६)।

जेमणय—न० (दे०) दक्षिण अंग; तुल० गु० जमणु; (दे० ना० मा० ३, ४८)।

जेमणय—न० (दे०) दक्षिण अंग, दक्षिण (—कर); तुल० गु० जमणो, जमणु; (प० च० ५१, २, १०)।

जेमिय—वि० (सं० जेमित > प्रा० जेमिय) जीमा हुआ, जिसने भोजन किया वह; (सुदं० ५, ७, ३)।

जेवँ—अव्य० (सं० यथा) जैसे, जिस तरह से; (प० च० ३५, ६, ४)।

जेवड—वि० (सं० यावत् > प्रा० जेत्तिल) जितना। जेवडु; (हे० ४०७)।

जेवणवेलइ—स्त्री० (सं० जेमन (भोजन) + वेला > प्रा० जेमणवेला) भोजन या जीमन की वेला, "जेवणवेलइ महमहइ सह;" (जस० २, २३, ११)।

जेवा—वि० (प्रा० जेव) समान; तुल० गु० जेवा; (प० च० २५, ७, १)।

जेह—वि० (सं० यादृश > प्रा० जे.) सदृश, जैसा; (भ०; जंबू० १०, ५, ८)। —अ वि० जैसा; (ण० ३, ११, १२)। —य वि० जैसा; (प० च० ५, ६, ४)।

जेहउ—वि० (सं० यादृश) १ जिस प्रकार; (सुद० ८, १२, १२; यो० ५०; परमा०)। २. जैसा, (जस० ४, २३, १६)।

जेहे—वि० (सं० यस्य) जिस (विभक्ति-युक्त विशेष्य के साथ 'जो' का रूप); (की० २, ६३)।

जो—सर्व० (सं० यः) १. जो; 'जो एथु बूझइ' सो एथु वीरा; तुल० मगही जे; (कुक्कुरीपाः चर्यापद; उ० व्य० प्र० १०, ८; ण० १, ४, ११)। २. जिस; (प० च० १२, ६, ४)।

√जोअ—(सं० दृश् का धात्वा० प्रा० जो, जोअ) देखना; (सुदं० ६, २०, ५; जस० ४, ४, १५)। —इ व० देखता है; (की० २, ३६)।

जोअ—पुं० (दे०) १. चंद्र, चंद्रमा;

(दे० ना० मा० ३, ४८)। पुं० (सं० योग) जोग, ध्यान, मन का संकेंद्रीकरण; (जंबू० ११, ४, ८)।

जोअण—न० (दे०) लोचन, नेत्र, चक्षु; (दे० ना० मा० ३, ५०)। पुं० (सं० योजन) योजन; (हे०, ३३१)।

जोअण्णा—वि० (सं० यौवनवत्) जवान; (की० ४, ११०)।

जोआ—स्त्री० (सं० द्यो) स्वर्ग, आकाश; (पड्)।

जोइंगण—पुं० (सं० ज्योतिस्+इङ्गण >प्रा० जोइंगण) १. जुगनू, कीट-विशेष; (जंबू० ८, १४, २१)। २. इंद्रगोप (वीर वहूटी); (दे० ना० मा० ३, ५०)। ३. तारा; (सं० रा०)। जोइङ्गण—पुं० खद्योत; (प० च० १८, ७, ५)। टि०—मूल शब्द ज्योतिस्+इङ्ण का अर्थ 'जुगनू' है। अर्थांतरण से 'जोइंगण' शब्द का अर्थ है 'तारा' हुआ।

जोइ—वि० (सं० योगिन्>प्रा० जोगि, जोइ) १. चित्त निरोध करने वाला; २. पुं० मुनि, यति; (ण० १, ४, ६)। ३. रामचंद्र का स्वनाम ख्यात एक सुभट; (प० च० ६७, १०)। ४. स्त्री० (सं० युवति>प्रा० जुवइ) तरुणी; (उ० व्य० प्र० २१-२८)। —उ पुं० (सं० योगिन् >प्रा० जोगि) योगी; (परमा०)।

√जोइ—(प्रा०√जो) देखना; (परम० १, ८६; हे० ३६४)। —उं भू० का० देखा; (महा० ६६, १६, १)। —ज्जइ व० पता लगाना; "दूवें पढम सत्ति जोइज्जइ" दूत के द्वारा पहले (शत्रु की) शक्ति का पता लगा लेना चाहिए; (म० १, १६, १)। —ज्जउँ ढूँढ़ा जाना; (हे० ३५६, १)।

जोइअ—वि० दृष्ट, देखा हुआ, अवलोकित; (भ०; क० १, ७, ५)। जोइय—वि० दृष्ट; (ण० १, १४, ११)।

जोइक्ख—पुं० (सं० ज्योतिष्क>प्रा० जोइक्ख) प्रदीप, दीपक, तारा; (सं० रा०)।

जोइणिपुज्ज—स्त्री० (सं० योगिनीपूजा) योगिनी की पूजा (जस० २, १५, ३)।

जोइणिपुर—पुं० (सं० योगिनीपुर) नगर-नाम; (जस० ४, ३०, १०)।

जोइणी—स्त्री० (सं० योगिनी) संन्यासिनी; (जस० १, १६, ११)।

जोइप्पह—स्त्री० (सं० द्युति प्रभा) स्त्री-विशेष-नाम; (व० ६, ८; १३)।

जोइप्पिअ—पुं० वानर योद्धा; (प० च० ५७, ४)।

जोइमई—स्त्री० रानी-विशेष- नाम; (प० च० १२, ३२)।

जोइय—वि० दृष्ट; (जस० २, ३१, १०; जंबू० ४, ६, २)।

जोइर—वि० (दे०) स्खलित; (दे० ना० मा० ३, ४६)।

जोइस—पुं० (सं० ज्यौतिष>प्रा० जोइस) १. सूर्य, चंद्र आदि देवों की एक जाति, "जोइस—भवणन्तरें जि अहिट्ठिय। भीसण-सीहणिणाय समुट्ठिय" 'ज्योतिष देवों के भवनों में भीषण सिंहनाद होने लगा, (प० च० २, १, ४)। २. शास्त्र-विशेष, ज्योतिषशास्त्र; (ण० ३, १, ५)। पुं० (सं० ज्यौतिष) ज्यौ-

तिप शास्त्र; (जस० १, २४, ५)। न० (दे०) नक्षत्र; (दे० ना० मा० ३, ४९)। पुं० ज्योतिष् (देव) ज्योतिष नामक देव; (व० १०, १, ३; जंबू० १, १६, ८)। —गण पुं० (सं० ज्योतिष्+गण) सूर्य, चंद्र, ग्रह आदि; (जंबू०)। जोइसू—पुं० ज्योतिष; (वि०)।

जोइसिय-चक्क—पुं० (सं० ज्योतिश्चक्र) सूर्य, चंद्र आदि का चक्र या मार्ग; (प०-च० २६, १४, ८)।

जोई—स्त्री० (दे०) विद्युत्, बिजली; (दे० ना० मा० ३, ४९; पड्)। पुं० (सं० योगिन्>प्रा० जोइ) योगी, यति, साधु; (प्रा० पैं० १, १०४)।

जोईस—पुं० (सं० योगीश>प्रा० जोईस) योगीश्वर, बहुत बड़ा योगी; (जस० १, ८, ५)।

जोईसर—पुं० (सं० योगीश्वर) योगींद्र, बहुत बड़ा योगी; (जस० १, ६, २१)।

जोए—स्त्री० (सं० युवति>प्रा० जुवई, जुउइ, जोइ>जोय) स्त्री; (की० २, १९१)। टि०—कीर्तिलता में 'ए' स्वर से अंत होने वाले प्रातिपदिक शब्द पुं० तथा स्त्रीलिंग दोनों में मिलते हैं, यथा—पलए (प्रलय) ए०, पुं०। राए ए०, पुं०। माए ए०, स्त्री० आदि।

जोएसर—पुं० (सं० योगेश्वर) योगींद्र, योगीश; (भ०)।

जोक्कार—पुं० (सं० जयकार>प्रा० जेक्कार) 'जय-जय' की आवाज, स्तुति; (जंबू० ५, १, २१)।

जोक्कारिउ—क्रि०, भू० का०, जयकार किया; (प० च० ५, ५, ८)। जोक्कारिय—भू० का० जयजयकार किया, (hailed); (प० च० २४, १०, १)।

जोक्ख—वि० (दे०) मलिन, अपवित्र; (दे० ना० मा० ३, ४८)।

जोक्खइ—सक० (√प्रा० जो, जोअ) तोलना; (महा० ४-५-५)। जोक्खन्तय—व० कृ० देखता हुआ; (प० च० १०, १, ९)।

जोग—वि० (सं० योग्य) काबिल, किसी कार्य को करने के लिए उपयुक्त; (जंबू० ११, १४, ९)। २. पुं० (सं० योग) जोग; तुल० म० गु० जोग; (भ०)। —वट्ट पुं० (सं० योगपट्ट) योगी का वस्त्र; "गलि जोगवट्टु सज्जिउ विचित्तु;" (जस० १, ६, ६)।

जोगेसर—पुं० (सं० योगीश्वर>प्रा० जोगीसर, जोईसर) योगिराज; (प० च० ५, १५, २)। जोगेसरु—पुं० योगीश्वर; (प० च० १३, ६, ५)।

जोगेसी—स्त्री० (सं० योगेशी) विद्या-विशेष; (प० च० ७, १४२)।

जोग्ग—वि० (सं० योग्य>प्रा० जोग्ग) योग्य; (प० च० २, २, ९; पा० १, १५, ११; प्रा० पैं० २, १५१; जस० १, १४, ९)। जोग्गु—योग्य; (महा० ६९, १८, ६)। पुं० (सं० योग) चित्त-निरोध, "तिहँ जोग्गकम्मपरमाणुबंधु, परिवड्ढियअहमिय-बुद्धिबंधु;" (जंबू० २, १, १०)।

जोग्गा—स्त्री० (दे०) खुशामद, चाटु; (दे० ना० मा० ३, ४८)।

√जोड—(सं० योजय्) जोड़ना, संयुक्त

करना। —वि० पू० का० क्रि०, (जंबू० १, २, ६)। —डिवि पू० का० क्रि०; (क० २, १, १२)। —हि (विध्यर्थक) जोड़ दो; (म० १, १६, ३)। जोडिऊण कृ० जोड़कर; (व० ८, १०, १)।

जोड—पुं० न० (दे०) नक्षत्र; (दे०-ना० मा० ३, ४९)।

जोडणय—वि० (सं० योजनक) जोड़ने वाला; (जंबू० ६, १६, १०)।

जोडि—स्त्री० (√युज्) जोड़ी, युग्म; "कुसुमेहिँ जोडि;" अर्थात् कुसुमों की जोड़ी; (व० १, ९, ६)।

जोडिअ—पुं० (दे०) व्याध, बहेलिया; (दे० ना० मा० ३, ४९)। वि० (सं० योजित) जोड़ा हुआ, संयुक्त किया हुआ; (जंबू० ४, २, १७)। जोडिय—वि० योजित; तुल० गु० जोडयुं; (संधि० ३, १०, २)।

जोडिया—वि० (सं० योजित>प्रा० जोडिअ) जोड़े हुए; (दे० सा० दो०)।

जोणापुर—पुं० जौनपुर, नगर-विशेष-नाम; (की० २, ७७)।

जोणि—स्त्री० (सं० योनि) प्राणियों की जातियाँ जिनकी कुल संख्या ८४ लाख कही गई है; "तियस-जोणि-संपुडहों-मणो-रम;" अर्थात् देवयोनि-सम्पुट अत्यंत अनुपम एवं मनोरम है; (व० १०, ३२, ८; जंबू० २, २, ३)।

जोणी—स्त्री० (सं० योनि>प्रा० जोणि) उत्पत्ति-स्थान; (जस० १, १८, ९)।

जोण्णलिआ—स्त्री० (सं० यवनाल) जोन्हरी, ज्वार, धान्य-विशेष; (दे० ना० मा० ३, ५०)।

जोण्ह—स्त्री० (सं० ज्योत्स्ना>प्रा० जोण्हा) चंद्र-प्रकाश; (व० २, ३, १६; प्रा० पैं० २, २०१; जस० १, ६, १४)। —ा (जोण्हा) स्त्री० ज्योत्स्ना; (जंबू० ४, १०, ३)। जोण्हा—रङ्खोलिर चाँदनी का विस्तार; "जोण्हा-रङ्खो-लिर-हार-भार;" (प० च० १३, १२, ८)।

जोत्त—न० (सं० योक्त्र>प्रा० जोत्त) जोत, रस्सी या चमड़े का तस्मा; (प०-च० ४, ८, ३)।

जोत्तार—पुं० (सं० योक्तृ) योक्ता, रथवान, "संदण उज्जोत्तिय जोत्तारहिँ;" अर्थात् रथवानों ने रथों के जोत उतार दिए; (जंबू० ५, १०, २०)।

जोत्तिउण—कृ० (सं० योजयित्वा) जोत-कर; (ण० ६, १३, ११)।

जोत्तिय—न० (सं० योक्त्र>प्रा० जोत्तय) जोत, रस्सी या चमड़े का तस्मा जिससे बैल या घोड़ा, हल या गाड़ी में जोता जाता है; (व० ४, २०, १२)।

जोन्ह—स्त्री० (सं० ज्योत्स्ना>प्रा० जोण्हा) चंद्रमा का प्रकाश; "नहि निम्मल जोन्हाणिए विणु मंडलेँण को विप्पइ;" अर्थात् किंतु आकाश में निर्मल ज्योत्स्ना को देखकर क्या कोई उस पर मल-मूत्र फेंकता है; (व० ५, ३, १५)। —हिं; (रा० २७)।

जोयंगण—पुं (सं० ज्योतिस्+इङ्गण>प्रा० जोइंगण) जुगनू; (भ०)।

√जोय—(सं० दृश्, प्रा० जो, जोअ) देखना। —इ व० (जंबू० ९, ५, ९)। —ह (विधि०)।

√जोय—(सं० योजय्>प्रा० जोअ) जोड़ना, युक्त करना। जोइवि—पू०-का० क्रि०, (सं० योजयित्वा) जोड़ कर; (भ०)। जोएइ—सक० (सुदं० ६, २०, ५)। जोलि—पू० का० क्रि०, जोड़ कर (की० ४, ६४)।

जोय—पुं० (सं० योग>प्रा० जोग) व्यापार, मन, वचन और शरीर की चेष्टा; (जंबू० ११, ३, २)। —उ पुं० योग, चित्त-निरोध; (ण० ६, ४, ८)।

जोयण—न० (सं० योजन>प्रा० जोअण) १. परिमाण-विशेष, चार कोस (क० १, ३, २; सं० रा०)। —सय न० (सं० योजनशत) सौ योजन; (जंबू० ५, ४, १३)।

जोयण—न० (जोअण=लोचन; दे०-ना० मा० ३, ५०) दृष्टि; (प० च०-६, ११, ६)।

जोयणगंधा—स्त्री० गंधार के राजा भूरिण की रानी; (प० च० ३१, २३)।

जोयलीण—वि० योगलीन; (जंबू० १०, २६, ६)।

जोले—पू० का० क्रि०, चढ़ाकर, "वेलक काटि कमानहि जोले;' अर्थात् धनुष चढ़ाकर वेलक नाम के दुफंकी तीर से निशाना काटते थे; (की० ४, ७८)।

जोव—पुं० (दे०) १. बिंदु; २. स्तोक, थोड़ा; (दे० ना० मा० ३, ५२)।

√जोव—(प्रा० जो, जोअ) देखना। —इ व० (पाहु०; प० च० ७, १०, ६)। —हि आ० देखिए; "जोवहि धरणिवइ पियघरिणि जंति घरु जारहो," अर्थात् हे पृथ्वीपति, अपनी इस प्रिय गृहिणी को शृंगार की सामग्री ले कर जार के घर जाती हुई देखिए, (ण० ३, ८, १८)। जोयहों—क्रि० आ०, देखो; (प० च० २, ३९)। जोएँवि—पू० का० क्रि०, (प० च० ६, २, १)।

जोवण—न० (सं० यौवन>प्रा० जोव्वण) तारुण्य, जवानी; (जंबू० २, १५, ३)। जोव्वण—न० यौवन; (जंबू० २, १४, ६)।

जोवणइत्तिअ—स्त्री० (सं० यौवनवती) जवान स्त्री; (सुदं० ११, २, ८)।

जोवारि—स्त्री० (सं० यवनाल>प्रा० जोवारि) ज्वार, धान्य-विशेष; (दे०-ना० मा० ३, ५०)।

जोविअ—वि० दृष्ट; (सुदं० २, १३, ७)।

जोव्वणइत्ती—वि० (सं० यौवनवती) यौवन वाली; (प० च० ४, ९, ९)।

जोव्वणणोर, जोव्वणवेअ—न० (दे०) बूढ़ापा; (दे० ना० मा० ३, ५१)।

जोव्वणोवय—न० (दे०) बूढ़ापा; (दे०-ना० मा० ३, ५१)।

जोसिआ—स्त्री० (सं० योषित्) स्त्री, महिला; (पइ)।

जोह—पुं० (सं० योध>प्रा० जोह) सुभट, योद्धा; तुल० म० जोधा; (ण० ७, ५, ५; प० च० ८, ६, ४)।

√जोह—(सं०√युध्) लड़ना। —इ अ० (भ०)।

जोहिय—भू० का०, जूझ गए, "के वि जोह जोहियाइँ;" अर्थात् कितने ही योधा जूझ गए, (क० ३, १७, ७)।

जोहणय—वि० (सं० योधिन्) लड़ाने वाला; (जंबू० ६, १६, ८)।

जोहणार—पुं० योधनद्वीप; (जंबू० ६, १६, १६)।

जोहल—पुं० (छंदशास्त्र में) रगण (ऽऽ); (प्रा० पैं० १, १५६)।

जोहार—पुं० (सं० ज्योक् आकारयति >प्रा० जोक्कारइ>जोहारइ) नमस्कार, अभिवादन; तुल०गु० जुहारवुं; (प्रा०-गु० १६, २१)।

जोहेयअ—पुं० (सं० यौधेय+क) जनपद नाम-विशेष; (जस० १, ३, ४)।

जौ—अव्य० (सं० यदि) यदि, जो; (की० २, १८५)।

ज्ञातु—वि० रसज्ञ; (की० १, १३)।

ज्जें—वि० एव, "दीसइ सो ज्जें णाइँ ऍंहु वम्भगु;" तुल० गु० ज; (प० च० २५, १६, ६)।

ज्झहुराविअ—वि० (दे०) निर्वास-प्राप्त; (षड्)।

झ

झ—पुं० (सं० प्रा० झ) व्यंजन वर्ण-विशेष। तालव्य, नाद, घोष, महाप्राण, निरनुनासिक, स्पर्श संघर्षी ध्वनि।

झंकार—स्त्री० (सं० झङ्कार>प्रा० झंकार) झनझन की ध्वनि, नूपुर आदि की आवाज; तुल० राज० झंकार; (ण० ७, १, ८; जंबू० ५, १, २२; जस० २, ३, १०)। झङ्कार; (प० च० १४, ३, २)। झङ्कारिएसु—ध्वनि, "भमर झङ्-कारिएसु;" (प० च० ७, २, ३)।

√झंकार—(सं० झङ्कृ) झनझन का शब्द उत्पन्न होना। —इ व० तुल० राज० झंकारणौ, झंकारवौ; (जंबू० ४, १३, ८)।

झंकारिअ—न० (दे०) अवचयन, फूल आदि का आदान; (दे० ना० मा० ३, ५६)।

झंकोलिय—वि० झकझोरित, झकझोरा हुआ; (सुदं० ११, १८, २०)।

झंकोलिर—पुं० झोंका; वेग से चलने वाली किसी वस्तु के स्पर्श का आघात; "झंकोलिरपरिहणपडिविहाउ;" अर्थात् हवा के झोंकों से परिधान के उड़ने से; (जंबू० ४, १५, १३)।

झंख—वि० (दे०) संतुष्ट, प्रसन्न; परि-तृप्त, परितुष्ट; (दे० ना० मा० ३, ५३)।

√झंख—झखना, परेशान होना, संतप्त होना, संताप करना; (जंबू० ८, ११, १४)। √झङ्ख— १. सं० प्र०+लप्; बड़बड़ करना, बकवाद करना (prattle); झङ्खहि; (प० च० ५२, २, ३)। २. कहना; झङ्खहि; (हे० अप० व्या०, ३७९)। ३. रोना; झंखणे; (की० ३, ७४)।

झंखड—पुं० (दे०) आँधी; (सं०-रा०)।

झंखर—पुं० (दे०) शुष्क तरु; (दे०-ना० मा० ३, ५४; सं० रा०)।

झंखरिअ—न० (दे०) पुष्पादिकाचयन, तोड़कर इकट्ठा करना; (दे० ना० मा०-३, ५६)।

झंझं—पुं० (झन् झन् से अनु०) ध्वनि; (जंबू० ५, ६, १०)।

√झंझण—(सं० √झंझणाय्) झन-झन करना। झिंझित—कृ० झनझनाते हुए; (सुदं० ७, ६, १०)।

√झंझणक्क—(सं० झञ्झन) झण-झण का शब्द करना —इ सक०; (प्रा०-पैं० २, १८५)।

झंटलिआ—स्त्री० कुटिल गमन, इधर-उधर घूमना; (दे० ना० मा० ३, ५५)।

झंटी—स्त्री० (दे०) छोटा किंतु ऊँचा किया हुआ केश-कलाप; छोटे और उठे हुए बाल; "लघूर्ध्व केशा;' (दे० ना०-मा० ३, ५३)।

√झंप— (सं० झम्पः=उछल, कूद छलांग) १. गोता लगाना; (सुदं० २, १४, ४)। २. कूदना; (जंबू० २, ४, १२; की० ३, १४९)। तुल० म० झांप, झेंप राज०, झापणों; (leap) छलांग भरना, कूदना। २. —इ सक० (सं० आच्छादय् का धात्वादेश>प्रा० झंप) झांपना, आच्छादन करना, ढकना; (सं० रा०, सुदं० ४, ११, १२) झंपिअ—झांपना, ढांकना; (प्रा० पैं० १, ९२)। झंपंत—अक०, भू० का०; (सं० तुट्+शतृ) टूट रहे थे, "झंपंत फारक्कफारं;" बड़े-बड़े शस्त्र टूट रहे थे; (जंबू० ६, ७, ३)। झंपउ—भू० का० आंखे बंद की (महा० ११, १२, ५)। झंपऊण—कृ० ढँक कर; (सुअंध० २, ६, १)। झंपिआ —क्रि० (सं० आच्छादय् का धात्वादेश झंप) झाँपना, ढकना; (की० ३, ६८)। झंपिय—भू० का० ढ़के हुए; (परम० २, १६, ९)। झंपिवि—पू० का० क्रि० आच्छादित कर; तुल० म० झापणें, (भ०)।

झंपड—वि० (दे०) विकराल, विशाल; (सुदं० ८, ४४, ५)।

झंपडिय—भू० का०, झाड़ा-झटका; "मुक्कट्टहासाइं झंपडियकेसाइं;' वे अट्टहास कर रहे थे और अपने केशों को झाड़-झटक रहे थे; (जस० १, १६, ६)।

झंपण—पुं० (दे०) आक्रमण; (संधि० १२, १, १९)।

झंपणी—स्त्री० (दे०) आँख के बाल, बरौनी; (दे० ना० मा० ३, ५४)।

झंपाण—पुं० आच्छादन, झाँपना; (जंबू० ४, १७, ९)।

झंपिअ—वि० (दे०) १. त्रुटित; २. आहत; (दे० ना० मा० ३, ६१)।

√झंख—(सं० विलप् का धात्वादेश> प्रा० अप० झंख) विलाप करना, रोना-धोना या संतप्त होना; (की० ३, ५६)।

झंसी—पुं० वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, ७)।

√झकोल—(दे०) वस्तु को पानी में डूबोकर गंदा करना; तुल० गु० झकोळवुं; (प्रा० गु० २४, ९)।

झक्किअ—न० (दे०) लोक-निंदा; (दे०-ना० मा० ३, ५)।

√झख—(सं० वि+लप् प्रलापे; व्यर्थ बोलना, वकवाद करना; (प्रा० गु० २३, ३६)।

झगमग—वि० जो जगमगाता हो, प्रकाशित, चमकीला; "झगमग-झगमग-झगमगए कानिहिँ वर-कुंडल;' तुल० गु० झगमगवुं, राज० झगमग, जगमग; (प्रा० गु० २२, ११)।

झज्झरी—स्त्री० (दे०) दूसरे के स्पर्श को रोकने के लिए चांडाल लोग जो लकड़ी अपने पास रखते हैं वह; (दे० ना० मा०-३, ५४)।

झड—पुं० (प्रा०√झडप्प= झपट मारना, गिराना) आघात, "कक्खड झडणिसुढिय-फड-कडप्पु' —क़र्कश आघात से नष्ट हो गया है फन-समूह जिसका, (प० च० १३, ८, ४; जस० ३, ८, ४)। क्रि० वि० (दे०) झट, शीघ्र; (म० २, १३, ५)। स्त्री० (दे०) निरंतर वृष्टि, झड़ी, तुल० गु० झडी; (प्रा० गु० ३, २२; प० च० १३, ८, ४)।

झडक्क—पुं० अचानक झपटना (sudden rushing); "को वि जुज्झविउ मेस-झडक्कएँ;" (प० च० २५, १५, ७)।

झडझडझडझड—पुं० झड़-झड़ की ध्वनि होना; (प० च० २८, २, ७)।

झडत्ति—अव्य० (सं० झटिति) शीघ्र, जल्दी; म० झट; (जस० १, ६, १७; जंबू० ७, ८, ७)।

√झडप्प—१. पकड़ना, —इ क्रि०, व०; झडपिप्य (caught with in); (प० च० ३२, १२, ६)। —इ; २. झपटना, झपट मारना, छीनना; तुल० म० झडपणें, गु० झडपवुं; (महा० ३०-४-६)। झडप्पंत—कृ० (आ०+छिद्+शतृ) झपटते हुए; (जंबू० ६, ७, ३)।

झडप्पण—पुं० (दे०) दो जीवों की परस्पर मुठभेड़; तुल० म० झडप; (जस० २, ३३, ५)।

झडप्पसाल—वि० झपटने वाला; (जंबू० ७, २, १४)।

झडप्पिम—पुं० (दे०) झड़प, झपट; (सुदं० १, ७, १२)।

झडप्पिय—वि० (दे०) छीना हुआ; (जंबू० ४, २०, १०)।

झडा—स्त्री० (दे०) झड़प, झपट; (सुदं० २, १३, १; जंबू० ६, ६, ५)।

झडि—स्त्री० (दे०, प्रा० झडी) निरंतर वृष्टि; (सं० रा०)।

झडिअ=वि० (दे०) झड़ा हुआ, गिरा हुआ; (प० च० ८६, १५)।

झडी—स्त्री० (सं० क्षर>झर>झड>प्रा० झडी) निरंतर वृष्टि; तुल० गु० झडी; (दे० ना० मा० ३, ५३)।

झडुअ—पुं० (दे०) गेंद, (दे० ना० मा०-३, ५६)।

√झण—(दे०) घृणा करना। —इ व० (षड्)।

√झणझण—(सं० झणझणाय्>प्रा० झणझण) झन-झन आवाज करना; (ण० १, १३, ५)। झणझणंत—कृ० (सं० झणझणाय्+शतृ); (जंबू० १, १४, ७)।

झणझणिय—वि० झणझणित; (सुदं० ३, ७, १२)।
झत्ति—क्रि० वि० (सं० झटिति>प्रा० झडत्ति) झटपट, शीघ्र, जल्दी, तुरंत; (क० १३, ४, ३; प्रा० पैं० २, १११; जस० २, १३, ५; व० ३, ७, २)।
झत्थ—वि० (दे०) १. गत, गया हुआ; २. नष्ट; (दे० ना० मा० ३, ६१)।
झपिअ—वि० (दे०) पर्यस्त (१. इधर-उधर फेंका गया, बखेरा गया; २. घेरा हुआ; ३. उलटाया हुआ, ४. पदच्युत, एक ओर रखा हुआ; ५. प्रहार किया हुआ; उत्क्षिप्त (ऊपर को १. फेंका हुआ, उछाला हुआ; २. पकड़ा हुआ, सहारा दिया हुआ, ३. आहत, ग्रस्त, ४. गिराया हुआ); (पड्)।
√झवक्क—(प्रकाशस्पन्दे) झव-झव करना, ज्योति सी उठना; तुल० गु० झवकवुं; (प्रा० गु० २२, ६)।
झमाल—न० (दे०) इंद्रजाल, माया-जाल; (दे० ना० मा० ३, ५३)।
झम्प—पुं० (दे०) कूदना; तुल० गु० झंपलाववुं (कूदना, झपटना) (प०-च० १७, १७, ४)।
झय—पुं० स्त्री० (सं० ध्वज>प्रा० झय) ध्वजा, पताका; (सणतु० ४५४)।
झरंक, झरंत—पुं० (दे०) तृण का बनाया हुआ पुरुष, चञ्चा (पुआल का बना हुआ पुतला, गुड्डा, गुड़िया); (दे०-ना० मा० ३, ५५)।
√झर—(सं० क्षर्>प्रा० झर) झरना, टपकना, चूना, गिरना; (सं० रा०)।
झरंत— व० कृ० (सं० क्षरत्), (ण० ६, १५, ५; क० ३, १, ३)। झरन्ति व० (जंवू० ७, १, १०)।
झरय—पुं० (दे०) सुवर्णकार; (दे०-ना० मा० ३, ५४)।
झरि—(दे०) झाड़ी; (जंवू० ५, ८, २४)।
झरिह—वि० क्षरणशील, झरती हुई; (जंवू० ६, ६, १०)।
झरुअ—पुं० (दे०) मच्छर; (दे० ना०-मा० ३, ५४)।
झल—स्त्री० (दे०) १. उष्मा; तुल० म० झल; (जस० ३, ५, ११)। २. ज्वाला; (प्रा० गु० २४, १३)। ३. (प्रा० झला मृगतृष्णा; (सं० रा०)।
√झल—(सं० जाज्वल्>प्रा० झल-झल) झलकना, चमकना, दीपना; (सं०-रा०)।
झलकंत—वि० झालर वाला (छत्र) "सत्ति अमोह छत्तु झलकंतउ," अर्थात् अमोघ शक्ति, झालरवाला छत्र; (व० ३, २०, ७)।
√झलक्क—(सं० जाज्ज्वल्) झलकना, आभा देना; (सं० रा०; जंवू० ४, १६, ७)।
झलक्क—स्त्री० बौछार, छींटा, धारा; (splash); "पमुक्त झलक्क सहोयरासु। ण वेल समुद्दें महिहरासु —"भाई पर जल धारा छोड़ी, मानो समुद्र की वेला महीधर पर छोड़ी गई हो; तुल० गु० झालक, छालक; (प० च० ४, १०, ४)।
झलक्किर—वि० (दे०) दीप्त, जलता

हुआ, चमकता हुआ; तुल० झळकतु; (संधि० ५, १, ५)।

झलक्किय—वि० झयझलायित; झुलसते हुए, "उट्ठंति झलक्किय जलहिमंद;" अर्थात् मंद (शांत) जलधि झुलसते हुए ऊपर उठने लगे; (जंवू० ७, ८, ११)।

√झलज्झल—(सं० जाज्वल्>प्रा० झलझल) झलझलाना; (जंवू० ७, ५, १२)।

√झलझल—(सं० जाज्वल्>प्रा० झलझल) झलकना, चमकना; (ण० ७, ५, १६)। —इ व० (महा०)। झलझलंत —व० कृ० दीप्यमान; म० झळकणें, झळाळणें; (भ०)। झलझलिउ—भू०-का०, झलझलाया; "मयरहरु झलझलिउ;" अर्थात् सागर झलझलाया; (क० ३, १८, ८)।

झलझलिय—वि० (सं० जाज्वलित) जगमगाया हुआ; (सुदं० ६, १२, ७)।

झलझलिया—स्त्री० (सं० झौलिक> प्रा० झोल्लिऊ) कोथली, झोली; (दे०-ना० मा० ३, ५६)।

झलमल—(सं० जाज्वल्) चमचमाना, जगमगाना; —इ व० (सुदं० ११, १७, १३)। झलझलंति; (सुदं० ११, १५, १२)।

√झलवज्जिअ—भू० का० कृ० (कर्मवाच्य) झल् प्रत्याहार से रहित, "झलवज्जिअ तह वहिर अंध लंकारह रहिअउ;" अर्थात् झल् प्रत्याहार (अर्थात् झ, भ, ध, ढ, घ आदि वर्णों, से रहित छप्पय वहरा, है तथा अलंकार से रहित अंधा है; (प्रा० पैं० १, ११६)।

√झलहल—(सं० जाज्वल्) देदीप्यमान होना; तुल० गु० झळहळवुं; राज० झळहळणौ; (संधि० १२, ६, २७)।

झला—स्त्री० १. (सं० ज्वाला>प्रा० झला) चमक, चमचमाहट; (की० ४, २३०)। २. (दे०) मृगतृष्णा, मृगमरीचिका, व्यर्थ तृष्णा; (दे० ना० मा० ३, ५३)।

झलाझल—(ध्व०) झलाझल का स्वर; (क० ४, ६, ५)।

झलुंकिअ, झलुसिअ—वि० दग्ध, जला हुआ; (दे० ना० मा० ३, ५६)।

√झल्ल—जड़ देना; —उ क्रि०, व० उत्तम पुरुष, ए०, "खग्ग रिउसीसहि झल्लउ;" अर्थात् शत्रु के सिर पर तलवार जड दूँ; (प्रा० पैं० १, १०६)।

झल्लरि—स्त्री० (सं० प्रा० झल्लरी) वलयाकार वाद्य-विशेष, झालर, झाँझ, मजीरा; तुल० गु० झालर; (प० च० १, ११, ४; व० ६, १४, ११; ण० ७, १, ५)। झल्लरी—स्त्री० वाद्य-विशेष; (जंवू० १०, १६, ३)।

झल्लिर—पुं० (दे०) धारा, "विसहियपाउसजलझल्लिरेहिं;" अर्थात् वर्षा ऋतु की जलधारा या वृष्टि को झेला था; (जस० ४, १६, ७)।

झल्लोझल्लिउ—वि० क्षुब्ध; (भ०)।

झस—पुं० १. (सं० झष>प्रा० झस) मत्स्य, मछली; (प० च० १, १५, ४; व० १०, ८, १२; जस० १, १०, ७)। २. पुं० (दे०) आयुध-विशेष, शस्त्र-विशेष; "असिवर-झस-मुसण्ढि-णाराएँ हिं," (प० च० ११, ८, ५)। कटारी;

(ण० ५, ४, ३)। ३. पुं० (दे०) १. अयश; २. तट। ४. वि० तटस्थ, मध्यस्थ; दीर्घ और गहरा; टांकी (छेनी. कुल्हाड़ी) से छिन्न; (दे० ना० मा० ३, ६०)।

झसय—पुं० (सं० झषक) छोटा मत्स्य; (दे० ना० मा० २, ५७)।

झसर—पुं० न० (दे०, प्रा० झसर) शस्त्र-विशेप, आयुध-विशेप, "झसर-तिसत्तिपरसु इसु-पासहुँ" —'झसर-त्रिश-क्ति,-फरसु और इपुपालों से;' (प० च० १७, ६, ६)।

झसिअ—वि० (दे०) १. पर्यस्त, उत्क्षिप्त, गलित; (दे० ना० मा० ३, ६२; जंबू० २, ५, १८)। २. जिस पर आक्रोश किया गया हो वह; (दे० ना० मा० ३, ६२)।

झसुर—न० (दे०, प्रा० झसुर) १. पान, ताम्बूल, नागवल्ली; (सं० रा०)। २. अर्थ, (दे० ना० मा० ३, ६१)।

√झंख—(प्रा० झंख) संतप्त होना, निःश्वास लेना। —इ व०, अक० (रा० १०)।

√झा—(सं०√ध्यै>प्रा० झा) चिंता करना, ध्यान करना। झाइय—भू०-का०, ध्यान किया; "पुणु झाइय सोलह-अक्खरिय। जय (?) कोडि—सहास दहु-त्तरिय" फिर उन्होंने सोलह अक्षरों वाली विद्या का ध्यान किया, उसका दस हजार करोड़ दस जाप किया, (प० च० ६, ७, ८)। झाइउँ—क्रि० भू० ध्यान किया; (ण० १, १०, १०)। —एवि पू० का० क्रि० (क० ७, १२, १०; जस० ३, १६, ७)। —एविणु—पू० का० क्रि० (सं० ध्यात्वा) ध्यान करके; (हे० ४४०, १)।

झायइ— व० (सं० ध्यायति) ध्यान करना; (प० च० १, ७, ६)।

झायउ—भू० का० ध्यान किया; (म० २, ६८, ५)। ध्यान करने लगे; "परिपु-ज्जिउ झायउ आयरेहिं;" (क० ५, ५, ८)। झायन्त—व० कृ०; (प० च० १६, १४, ७)। झायमाण—कृ० ध्यान करते हुए; (जंबू० १, १८, १३)।

झाड—न० (सं० झाट:=वृक्षों का झुर-मुट) १. निकुंज, झाड़ी, झाड़; (दे०-ना० मा० ३, ५७)। २. वृक्ष; (दे०-ना० मा० १, ६१)।

झाडल—न० (दे०) कपास का वृक्ष, कर्पास-फल; (दे० ना० मा० ३, ५७)।

झाण—पुं० न० (सं० ध्यान>प्रा० झाण) किसी के स्वरूप का चिंतन ध्यान, विचार, उत्कण्ठापूर्वक स्मरण, (ण० ६, ५, ५)। २. चिंता; (प० च० २६, १, ११)। —ग्गि स्त्री० (सं० ध्यान+अग्नि>प्रा० झाण+अग्गि) ध्यान रूपी अग्नि; (ण० ६, २०, १०)। —जुयल पुं० (सं० ध्यान+युगल) धर्म व शुक्ल; "जंतुपीडविरहिउ वयविद्धिहि, कारणु झाणजुयलनयसिद्धिहि;" अर्थात् जंतु पीड़ा से रहित होने से यह तप व्रतों एवं ध्यान-युगल रूपी पर्वत की सिद्धि (आरो-हण) का कारण है; (जंबू० १०, २२, ७)।

झाणजोइ—पुं० (सं० ध्यान+योगिन् >प्रा० झाण+जोइ) ध्यानलीन योगी; (क० ६, १३, ८)।

झाणट्ठिय—वि० (सं० ध्यान+स्थित) ध्यान में स्थित; (क० ३, २, १)।
झाणागम—पुं० (सं० ध्यान+आगम) ध्यान व ज्ञान; (जंबू० १०, २१, ६)।
झाणाणल—पुं० (सं० ध्यान+अनल) ध्यान रूपी अग्नि, "झाणाणलें नालिवि कम्मरुक्खु;" अर्थात् कर्म रूपी वृक्ष को ध्यानाग्नि में ऐसा जला दिया; (क० १०, २७, ५; जंबू० १, १, ६)।
झाणारूढ—वि० (सं० ध्यानारूढ) ध्यान में लगा हुआ; (जस० ३, १७, ४)।
झाणग्गि—स्त्री० (सं० ध्यान+अग्नि) ध्यान रूपी अग्नि; (जंबू० १०, २३, ७)।
झामर—वि० (दे०) वृद्ध, बूढ़ा; (दे० ना० मा० ३, ५७)।
झामल—वि० (दे०) निष्प्रभ; (प्रा० गु० ३६, २६)।
झामिअ—वि० (दे०) दग्ध, प्रज्वलित; (दे० ना० मा० ३, ५६)। झामिय—वि० दग्ध; (संवि० २, १८, ६)।
झारुआ—स्त्री० (दे०) चीरी, क्षुद्र जंतु-विशेष; (दे० ना० मा० ३, ५७)।
झाल—स्त्री० (सं० ज्वाला) अग्निशिखा, लपट; तुल० गु० झाळ; (सं० रा०; प्रा० गु० १, ६४)।
झालियउ—भू० का०, गृहीत, ग्रहण किया; "रवतह गांगह तीरि, दडउ जेव उच्छालियउ। घाउ म होउ सरीरि, पड-तउ दयकरि झालियउ;" (प्रा० गु० ४, १५)।
झिखिअ—न० (दे०) लोकपवाद, लोक-निंदा; (दे० ना० मा० ३, ५५)।
झिक्किरि—स्त्री० (दे०) वाद्य; (सुदं० ७, ६, १०)।
√झिज्ज—(सं० क्षि, क्षये) —६ व० (सं० क्षयति) छीजना, क्षय को प्राप्त होना; (सुदं० १०, ६, १५; क० ६, ८, ७)। झिज्जिवि—पू० का० क्रि० (सं० क्षि+क्त्वा) (सुदं० ४, ५, १६)।
√झिज्झ—(दे०) क्षीण होना; (सं० रा०)।
झिन्दुअ—न० कंदुक; (प० च० २३, ४, ८)।
झिमिझिमिय—वि० झिमझिमित (ध्व-न्यात्मक) झमकता हुआ; (सुदं० ७, ६, १३)।
झिरिड—न० (दे०) जीर्ण या पुराना कूप; (दे० ना० मा० ३, ५७)।
झिल्लिरि—स्त्री० (सं० झिल्लिका) झींगुर, प्राणी-विशेष; (जस० २, २७, ५)।
झिल्लिरिआ—स्त्री० (दे०) १. चीही नामक तृण; २. मच्छर; (दे० ना० मा० ३, ६२)।
झीण—न० (दे०) १. अंग, शरीर; २. कीट; (दे० ना० मा० ३, ६२)। वि० (सं० क्षीण>प्रा० झीण) १. दुर्बल, कृश; (सं० रा०)। २. झीना; (सं० रा० १७१; ण० ४, ७, ८; क० २, ६, ६)।
झीणपह—पुं० क्षीणप्रभ; पर्वत-विशेष; (प० च० २७, २, २)।
झीणी—वि० स्त्री० (सं० क्षीणा>प्रा० झीण) दुर्बल, कृश; (सुदं० ७, ४, ११)।

झीरा—स्त्री० (दे०) लज्जा, शरम; (दे०-ना० मा० ३, ५७)।

झुंझुंमसय—न० (दे०) मन का दुःख (दे० ना० मा० ३, ५८)।

झुंपडउं—पुं० (दे० प्रा० झुंपडा स्त्री०) कुटी, झोंपड़ा, तुल० गु० झूंपडूं; (प्रा० गु० ३८, १७)।

झुंबुक—न० (दे०) झूमका; (जंबू० ४, ८, ८)।

झुट्ठ—वि० (दे०) झूठ, असत्य; (दे०-ना० मा० ३, ५८; ण० ६, १३, १५)।

झुट्ठी—वि० स्त्री० (दे०, प्रा० झुट्ठ) झूठी, असत्य; तुल० गु० जूठी; (प्रा०-गु० ५, १०)।

झुण—पुं० (सं० ध्वनि > प्रा० झुणि) शब्द, आवाज; (व० १, ८, १)।

√झुण—(सं० ध्वन्) ध्वनि करना; (सं० रा०; जस० २, १३, ४)। —इ व०; (जंबू० १०, ८, ६)। झुणन्ति—व०; (जंबू० ४, १५, ३)। झुणिज्जइ—कर्मवाच्य, (सं० ध्वन्यते) (प० च० २४, १३, ८)।

झुणि—स्त्री० (सं० ध्वनि > प्रा० झुणि) ध्वनि, शब्द, आवाज; (सं० रा०; प०-च० ३, ११, १; हे० ४३२, १; रा०; ण० २, ७, १)।

झुणिय—वि० (सं० ध्वनित) शब्दाय-मान; (व० ६, १५, ६)।

झुत्ती—स्त्री० (दे०) छेद, विच्छेद; (दे० ना० मा० ३, ५८)।

झुम्मुक्क—न० (दे०) झूमका; (सुदं० ११, १२, ८)।

झुम्बुक्क—न० (सं० स्तवक) समूह; "वर-पवाल-माला-पलम्बिरं मोत्तिएक्क-झुम्बुक्क-झुम्बिरं;" (प० च० ५५, ५, ८)।

झुलुक्क—पुं० वायुलहरी; तुल० म० झुलुकू; "मुत्ताहलमाल झुलुक्कइहि;" (भ० ४, १०, ११)।

झुलुक्किय—वि० (सं० ज्वलित) झुल-साया गया, जलाया गया; तुल० म० झल लागणें; (प० च० ४६, ५, ७)। "विर-हदवग्गिझुलुक्कियकायउ" (भ० ३, २०, ८)।

झुलुक्कियंग—वि० (सं० ज्वलित + अङ्ग) झुलसते हुए अंगों वाला; (जंबू० १०, १३, ११)।

झुलुक्की—(दे०) झुलस गई; (जंबू० १०, १५, ४)।

√झुल्ल—(सं० आन्दोल का प्राकृत धात्वादेश झुल्ल) झूलना; (सं० रा०)। —इ अक० झूलना, (महा० १४, ५, १२)।

झुल्लणा—स्त्री० (छंदशास्त्र में) झूलना नामक छंद; (प्रा० पैं० १, १५६)।

झुल्लुरी—स्त्री० (दे०) गुल्म, लता, वृक्ष; (दे० ना० मा० ६, ५८)।

झूझ—न० (सं० युद्ध > प्रा० जुज्झ) लड़ाई; (प्रा० गु० २६, ११)।

झूठ—स्त्री० (सं० जुष्ठ > प्रा० झुट्ठ) १. जूठन; (उ० व्य० प्र० ५२-३)। २. वि०, असत्य (ण० ६, १३, १५)।

झूर—वि० (दे०) कुटिल, टेढ़ा; (दे०-ना० मा० ३, ५६)।

√झूर—(सं० क्षि > प्रा० झूर) झूरना,

सूखना, क्षीण होना, विसूरना, क्लेश पाना; (स० रा०)। —इ अक० सं० स्मरति; स्मरण करना; (भ०)। —वइ झूरना, क्षीण होना (ण० ५, ८, १०)। तुल० म० झुरणें। झूरिज्ज—कर्मवाच्य; —इ, 'केत्तिउ वार वार झूरिज्जइ' कितना वार-वार झूरा जाय; (सुदं० ८, १०, १)।

झूरिय—वि० (दे०) स्मृत, चिंतित; (जंवू० ७, ६, ३०)।

झूल—पुं० (सं० आन्दोल का धात्वादेश झुल्ल) शोर; (की० २, १०४)।

√झुल्लंत—झूलना, लटक कर वार-वार इधर-उधर हटते वढ़ते रहना; "झुल्लंत तरुसाहागयाइं;" अर्थात् वृक्षों की शाखाओं पर चढ़कर झूलते हैं; (जस० २, २७, ७)।

झूसरिअ—वि० (दे०) १. अत्यंत २. स्वच्छ, निर्मल; (दे० ना० मा० ३, ६२)।

झेन्दुअ—न० कंदुक, गेंद; (जंवू० १, ६, ६)।

झेन्दुलिय—स्त्री० (दे०) सं० पुंश्चली; रंडी, वेश्या; "सव्वङ्ग-समुट्ठिय-रोम-रइ, तहेँ पुत्तु वि भत्तारु वि मरइ। कडि-लञ्छण भउँहावलि-मिलिय, सा देव णिरुत्तउ झेन्दुलिय;" (प० च० ३६, १५,५)।

झोंडलिआ—स्त्री० (दे०) रासक के समान एक प्रकार की क्रीड़ा; (दे० ना०-मा० ३, ६०)।

झोंप्प—पुं० (दे०) १. अन्न-विशेष; २. सूखे चने का शाक; (दे० ना० मा०-३, ५६)।

झोडिअ—पुं० (दे०) शिकारी, वहेलिया; (दे० ना० मा० ३, ६०)।

ञ

ञ—पुं० व्यंजन-वर्ण-विशेष। संस्कृत और प्राकृत में शब्द के आदि में ञ का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता है। पालि में ञकार का प्रयोग मिलता है। अपभ्रंश में भी ञ का अभाव है। 'कीर्तिलता' में ञकार का प्रयोग मिलता है। 'कीर्तिलता' की नैपाली प्रति में ञ का बाहुल्य है। देवनागरी वर्णमाला का यह दसवाँ व्यंजन है। च वर्ण का पाँचवाँ वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान तालु और नासिका है।

ञेञोन—अव्य० (रीतिवाचक क्रि० वि०) सं० एवम्; और भी ऐसी वात है। ञो= सं० एवं; (की० २, २३६)।

ञेहाँ—अव्य० यहाँ; (की० ३, १६)।

ञुण—अव्य० पुनः; (नैपाली प्रति, की० २, ४३)।

ट

ट—पुं० (सं० प्रा० ट) व्यंजन वर्ण-विशेष। मूर्धन्य, अघोष, अल्पप्राण, निरनुनासिक स्पर्श ध्वनि है। इसके उच्चारण में तालू से जीभ लगानी पड़ती है।

टंक—पुं० (दे०) १. तलवार; २. खात, खुदा हुआ जलाशय; ३. जाँघ; ४. भित्ति, भींत; ५. तट; ६. खनित्र, कुदाल; (दे०-ना० मा० ४, ४)। ७. वि० छिन्न, छेदा हुआ, काटा हुआ; (दे० ना० मा०-४, ४)।

टंकार—पुं० (सं० टङ्कार>प्रा० टंकार) धनुष का शब्द; (ण० ७, १, ८)। टङ्कार; (कौ० ४, १६८)। टङ्कारव, टंकार का शब्द (tinkling sound); (प० च० २४, २, ५)।

√टंकार— (सं० टङ्कारय्) टंकार करना; —इ व० "धणुगुणु मयरचिधु टंकारइ;" अर्थात् मानो मकरध्वज धनुष की टंकार कर रहा हो; (जंबू० ४, १३, ८)।

टंकारित—वि० (सं० टङ्कारित) धनुष की डोर खींचकर शब्द किया हुआ; (जंबू० ८, ७, ८)।

टंकिअ—वि० (सं० टङ्कित) टाँकी से काटा हुआ; (दे० ना० मा० ४, ५०)।

टंकु—पुं० (सं० टङ्क) परिमाण-विशेष, आधा छटाँक; टका भर; तुल० राज० टका भर (वजन); (प्रा० पैं० १, १३०)।

टंटं—पुं० ध्वनि-विशेष; (जंबू० १०, १९, २)।

टंवक्क—न० तंवक्क, वाद्य-विशेष; (प्रा० गु० ३६, ९)।

टंवरय—वि० (दे०) भारवाला, भारी; (दे० ना० मा० ४, २)।

टका—पुं० (सं० टक्क) चाँदी का एक पुराना सिक्का; (कौ० ३, ९७)।

टक्क—पुं० (सं० टक्क) १. पंजाव (झेलम और सिंधु नदियों के बीच का) देश-विशेष; (भ०; प० च० ३०, २, ११; जंबू० ९, १९, १०)। २. जाति-विशेष; (क० ८, १६, १)।

टक्कर—पुं० (दे०, प्रा० टक्कर) अंग से अंग का आघात, ठोकर; (ण० ६, १४, ३; महा० ३१/१६/४)।

टक्कारी—स्त्री० (दे०) अरणि-वृक्ष का फल; (दे० ना० मा० ४, २)।

टगण—पुं० (सं० टगण) (छंदशास्त्र में) षट्कल गण। मात्रिक गणों में से एक। यह छह मात्राओं का होता है। जैसे SSS, IISS, इत्यादि। (प्रा० पैं० १, १३)।

टटटगिदि—स्त्री० (दे०) शब्दानुकृति; (प्रा० पैं० १, २०४)।

टट्टइआ—स्त्री० (दे०) जवनिका; (दे० ना० मा० ४, १)।

टट्टरी—स्त्री० वाद्य-विशेष, " काहलं टट्टरी-झल्लरी मद्दलुल्लोल-वज्जन्त;" (प० च० ४०, १७, ४)।

टणक्किय—भू० का० (सं० टङ्कारित) टंकार की; "टणक्किदोर;" उन्होंने डोरी की टंकार की; (जंबू० ६, १३, ४)।

√टणटण—(सं० टणटणाय्; अनुध्व०) टणटण की आवाज करना; टणटणटणंत—कृ० टनटनाते हुए; (ण० ६, १५, १०)।

टणटणन्त—कृ० (प० च० ४६, १, २)। टण्टन्त—कृ० टणटन्त की ध्वनि करते हुए वाद्य-विशेष को पीटना (beating tabor); "टिविल-टण्टन्त-घुम्मन्त-वरमन्दलं;" (प० च० २४, २, २)।

टपु—पुं० (सं० स्थापन, थाप) घोड़े की टाप, घोड़े के पैरों के जमीन पर पड़ने का शब्द; (प्रा० पैं० १, २०४)। टप्पु; (प्रा० पैं० २, १११)।

√टरइ—व० (सं० टल्) हटना; "गिरि टरइ महि पडइ नाग मन कंपिआ;" अर्थात् (सेना के धक्के से) पर्वत अपने

स्थान से हटने लगे, धरती एक ओर गिरने लगी, शेषनाग का मन काँप गया; (की० ३, ६७)।

√**टरटर**—टरटराना, टर-टर करना; —रंति सक० (सुदं० ८, १६, १)।

√**टरपर**—तड़कना, फटकना; टरपरिअ —भूत, कर्म, कृदंत; (प्रा० पैं० १, ६२)।

टरि—भू० का० गिर गए; "टरि टोप्परि टूट्टि सरीर रहे;' अर्थात् उनेक टोप गिर गए और शरीर टूट गए; (की० ४, २३१)।

√**टल**—(सं० टल=विचलित होना) अपने स्थान से अलग होना, हटना, मिटना, न रह जाना। —इ व० "टलइ नहु पुव्व कयदेवगुरु-सुमरणं;" तुल० गु० टळवुं; (प्रा० गु० २, २, २४)।

टलटल—कम्पने (अनु०) कंपित होना। "टलटलिया कुल-सेल सव्वि सायर झल-झलिया;" तुल० गु० टळटळहुं; (प्रा०-गु० १२, १६)।

टलटलइ—क्रि०, व० (सं० टलटलाय्> प्रा० टलटल) टलटल आवाज करना; (ण० ७, ५, १५)।

टलटलिउ—भू० का० (ध्व०) टलट-लाया; "भुवणयलु खलभलिउ गिरिपवरु टलटलिउ;" अर्थात् भुवनतल खलभ-लाया। प्रवर गिरि टलटलाया; (क० ३, १८, ७)। टलटलियउ-टयटलायित; (सुदं० १, १, ६)।

टसर—न० (दे०) मोड़ना; (दे० ना०-मा० ४, १)।

टसरोट्ट—न० (दे०) शेखर, अवतंस; (दे० ना० मा० ४, २)।

टहकउ—भू० का० (सं० कूजितम्) कूजन किया, "कोयल टहकउ;" तुल० गु० टहुको; (प्रा० गु० १०, ५६)।

टाङ्गार—पुं० (सं० टङ्कार) टंकार, टंग-टंग का शब्द; (की० २, १०१)।

टाणअ—क्रि, आ० (सं० ताक=फैलाव, खिचाव) खींच, खींचो; (हि० का०, च० ३८)।

टाप—पुं० (सं० स्थाप्य>प्रा० ठप्प= स्थापनीय, स्थापना के योग्य) घोड़े का पैर; (की० २, २४३)। टापे—पुं० टाप; "विमुद्ध दापे मार टापे चूरि जा वसुन्धरा; (की० ४, ३५)।

टापू—पुं० (दे०) १. द्वीप, टापू; स्थल का वह भाग जिसके चारों ओर जल हो; २. टप्पा, टापा; (सि० १, ४५)।

टार—पुं० (दे०) अधम अश्व, हठी घोड़ा; (दे० ना० मा० ४, २)।

टारिआ—भू० का० (सं० स्वरयति) टाल दिया; (शिवप्रसाद सिंह, कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा, २, ८०)।

टालइ—सक० (सं०√टल) अपने स्थान से अलग करना, हटाना, चलायमान करना; तुल० गु० टाळवुं; (प० च० १२, २, २)। टालउं—(सं० टाल-यामि) टरना, टालना; "हउं पर्व्वत उ टालउं" —अहं पर्वतमपि टालयामि, (उ० व्य० प्र० ६-३०)। टालिउ—भू० का०; मिटा दिया, न रहने दिया; "के महि-मण्डलु वाहहिँ टालिउ;" (प० च० २३, ७, ७)।

टिट—स्त्री० (दे०) द्यूत-स्थान, जूआ-खाना; (टेण्टा, दे० ना० मा० ४, ३; प्रा० गु० ३५, ३; ण० ३, १२, ४)।
टिटाउत्त—पुं० टेण्टापुत्र; (भ०)।
टिटा—वि० (दे०) निःसत्त्व, दुर्बल, सत्त्व-रहित; 'भट्टा टिटा पडियत प्राण;" (प्रा० गु० २६, १२)।
टिंयर—पुं० न० (दे०) वृक्ष-विशेष; तेंदू का पेड़; (जंबू० ५, ८, ६)। टिंवरु, टिंवरुअ; (दे० ना० मा० ४, ३)।
टिक्क—न० (दे०) १. टीका, तिलक; २. सिर का स्तवक, मस्तक पर रखा जाने वाला गुच्छा; (दे० ना० मा० ४, ३)।
टिग्घर—वि० (दे०) वृद्ध, बूढ़ा; (दे० ना० मा० ४, ३)।
टिप्पी—स्त्री० (दे०) तिलक, टीका; (दे० ना० मा० ४, ३)।
टिविल—न० वाद्य-विशेष; (sort of tabor) (जस० २, २०, ३; सुदं० ३, ४, ३; प० च० २४, २, २)।
टीली—स्त्री० (सं० तिलक) बिंदी, लघु तिलक; तुल० राज० टीली; (प्रा० गु० ११, १५)।
टीह—पुं० (सं० दिवस>प्रा० दीह) दिन, टीहा; (रा० १५)।
टुंट—वि० (सं० त्रुटि) टुंडा, जिसका हाथ कटा हुआ हो वह; (दे० ना० मा० ४, ३)।
√टुट्ट—(सं०√त्रुट्>प्रा० टुट्ट) टूटना।—इ क्रि०, व० (सं० त्रुटति) (प्रा० पैं० १, ७६; कीं० ४, १६२; टुट्टन्ता—भू० का० ···· तोड़ रहे थे। (कीं० ४, १७५)। टुट्टि—भू० का०, टूट गए ;(कीं० ४, २३१)।
टुटन्न—वि० खण्डित होते हुए; "धरा घूरि लोट्टन्त टुट्टन्न काआ;" अर्थात् खण्डित होते हुए शरीर पृथ्वी की धूल में लोट रहे थे; (कीं० ४, १६८)।
टेंट—पुं० (दे०) टेंटा, द्यूतग्रह; (जंबू० ४, २, १०)। टेण्ट; (प० च० ५६, १४, ७)।
टेंटा—स्त्री० (दे०) जूआ खेलने का अड्डा; (दे० ना० मा० ४, ३)।
टेक्कर—न० (दे०) स्थल, प्रदेश; (दे० ना० मा० ४, ३)।
टेल्ल—पुं० त्रिलिंग-निवासी, तिलंगा। टेल्ल; (रा० १८); टेल्लि; (रा० १५)।
टेवंत—कृ० पैनी बनाते हुए; "टेवंती कत्ती णिवंकरणे", अपने हाथ से कटारी को रेतते हुए; (क० १०, १६, ८)।
टोक्कण, टोक्कणखंड—न० (दे०) दारु नापने का बरतन; (दे० ना० मा० ४, ४)।
टोप—पुं० (सं० स्तूपम्) पावन अवशेषों को रखने के लिए एक प्रकार का स्तंभ-सदृश स्मृति-चिह्न; (उ० व्य० प्र० ४६-२५)।
टोप्परि—स्त्री० (देशज टोप्पर, प्राकृत पैंगलम् में प्रयुक्त) शिरस्त्राण, टोपा; (कीं० ४, २३१)।
टोप्पर—पुं० न० (दे०) टोप, शिर-स्त्राण-विशेष; (प्रा० पैं० २, २०६)।
टोप्पी—स्त्री० प्रा० टोपिआ (दे०) टोपी, पुष्पदन्त के 'आदिपुराण' में प्रयुक्त, जस-हरचरिउ में प्रयुक्त 'टोप्पी,' 'सुपानह

चरिउ' में प्रयुक्त 'टोपिला;' शब्दमणि दर्पण (रचना-काल १२६० ई०) में 'टोप्पिगे' का प्रयोग; प्रबन्ध कोश (रचना-काल १३०८ ई०) में 'टोप्पर' (शिर-स्त्राणवाची) प्रयुक्त। टोपी, सिर पर रखने का सिया हुआ वस्त्र; तुल० म०, राज० टोपी; (जस० १, ६, ४)।

टोलंब—पुं० (दे०) मधूक, महुआ का पेड़; (दे० ना० मा० ४, ४)।

टोल—पुं० (दे०) १. शलभ, जंतु-विशेष; २. पिशाच; (दे० ना० मा० ४, ४)।

ठ्ठग—पुं० (सं० स्थग > प्रा० ठग) ठग, गुंडा, बेईमान (सि० १, २४)।

ट्ठरह-लक्ख—वि० अट्ठारह लाख (सि० २, २०, १)।

ट्ठाउ—पुं० (सं० स्थान > पा० ठान, प्रा० ठाण) ठाँव, स्थान, ठौर; तुल० अवधी ठाँउ; (सि० १, १५)।

ट्ठाणा—पुं० (सं० स्थान > प्रा० ठान > प्रा० ठाण) स्थान; (सि० २, ११)।

ट्ठिय—वि० (सं० स्थित > प्रा० ठिय) अवस्थित; (वं० ५, १०, १५)।

ठ

ठ—पुं० (सं० प्रा० ठ) मूर्ध-स्थानीय व्यंजन वर्ण-विशेष। मूर्धन्य, श्वास, अघोष, महाप्राण, निरनुनासिक, स्पर्श ध्वनि। टवर्ग का दूसरा वर्ण। इसका उच्चारण-स्थान मूर्धा है। इसका उच्चारण करते समय जीभ का मध्य भाग तालू में लगाना पड़ता है। √ठ (सं० स्था > प्रा० ठा) बैठना, स्थिर होना, गति का रुकाव करना; (सुदं० ६, ७, १३)।

ठइअ—वि० (दे०) १. ऊपर फेंका हुआ; २. पुं० अवकाश; (दे० ना० मा० ४, ५)।

ठक—पुं० (सं० ठक) धूर्त, वंचक; (की० २, १०)।

ठक्कुर—पुं० (सं० प्रा० ठक्कुर) वंश-नाम; (जस० ४, ३०, ४)। २. ठाकुर, योद्धा; (जंबू० ७, ६, १६)।

ठग—पुं० (सं० ठक) ठग, धूर्त, वंचक; (दे० ना० मा० २, ५८; सुदं० ८, ३६, ४२)।

ठगण—पुं० (सं० ठगण) (छंदशास्त्र में) पञ्चकलगण; मात्रिक छंदों के गणों में से एक। यह पाँच मात्राओं का होता है और इसके ८ उपभेद हैं; (प्रा० पैं० १, १३)।

ठट्ठ—पुं० (दे० थट्ट) झुण्ड; (की० २, ६४)। ठट्ठा-समूह, 'भट्टा ठट्ठा पेप्खीआ,' अर्थात् भाटों के समूह दिखाई पड़ते थे; (की० २, २२६)।

ठरिअ—वि० (दे०) ऊर्ध्व-स्थित; (दे० ना० मा० ४, ६)।

ठल्ल—वि० (दे०) निर्धन, निठल्ला; (दे० ना० मा० ४, ५)।

√ठव—(सं० स्थापय् > प्रा० ठव) स्थापन करना। —वंति (सुदं० १२, १, १०)। —इ, क्रि०, रखना (हे० ३५७)। ठइज्जइ—कर्मवा० स्थापि—(रि० ६, १५)। —त्ते, स्थापना की, (की० २, ६५)। ठविउ—क्रि० भू०, स्थापित कर

दिया; (प० च० २, ३, ८)। ठवेप्पिणु—पू० का० क्रि०, स्थापित करके (ण० ७, १५,२)। ठवेवि—पू० का० क्रि०, खड़ा करके, (ण० ६, २१, २)। तुल० म० ठेवणें to put। ठाइऊण—कृ० (सं०√ठा+ऊण्) खड़े होकर; (व० ३, ११, ८)। ठिअउ—स्थित है; (हे० ४१५, १)। ठियाइं—स्थित है; (पाहु०)।

ठवलु—पुं० (दे०) दाव; (जुए में पासा फेंकने का दाव); (ण० ३, १२, ६)।

ठविअ—वि० (सं० स्थापित>प्रा० ठविअ) रखा हुआ, संस्थापित; तुल० मं० ठिव, ठेव; (पड्)। ठविय; (ण० १, १८, २)।

ठविआ—स्त्री० (दे०) प्रतिमा, मूर्ति, प्रतिकृति; (दे० ना० मा० ४, ५)।

ठविया—वि० (सं० स्थापिता) संस्थापित, रखा हुआ; (सुदं० ८, ११, १)।

√ठा—(सं०√स्था>प्रा० ठा) स्थिर रहना, बैठना, ठहरना, गति का रुकाव होना; (क० ६, २०, ५; सं० रा०)। —इ अक० (ण० ८, २, ११)। —उ आ० ठहरे; (प० च० १६, १३, ३)। हु— (विधि०) ठहरिए; (जंबू० ३, ६, ६)। तुल० म० ठाकतो।

ठाअ—पुं० (सं० स्थान>प्रा० ठाण) ठाव, स्थान; (क० ३, २, २)। ठाव, स्थान; (जस० ३. १०६)।

ठाइं—(सं० स्थान>प्रा० ठाण) जगह; (प्रा० पैं० १, १३३)। ठाइ; (सं० रा०)।

ठाइस—वि० (सं० अष्टाविंशत्) अट्ठाईस; (प्रा० पैं० १, १६१)।

ठाउ—पुं० (सं० स्थान>प्रा० ठाण) जगह; तुल० म० ठाम; (हे० ३३२, १; प्रा० गु० १०, ५५; प्रा० पैं० १, २०८)।

ठाकुर—पुं० (सं० ठक्कुर) ठाकुर लोग, पूज्य व्यक्ति, नायक; (की० २, १०)।

ठाण—पुं० न० (सं० स्थान>प्रा० ठाण) स्थान; (प० च० ५, १०, ६; ण० १, १२, ११; सि० २, २६)। पुं० (दे०) अभिमान, गर्व; (दे० ना० मा० ४, ५)।

ठाणा—पुं० (सं० स्थान>प्रा० ठाण) वाण चलाने की विशेष मुद्रा में खड़े होकर युद्ध करना, स्थान; (की० ४, १८०)। टि०—धनुर्युद्ध में पाँच स्थान कहे गए हैं —वैशाख, मण्डल, समपद, आलीढ, प्रत्यालीढ। (देखिए रघुवंश ३, ५२ पर मल्लिनाथ की टीका)।

ठाणिज्ज—वि० (दे०) गौरवपुर्वत, सम्मानित; (दे० ना० मा० ४, ५)। २. न० गौरव; (पड्)।

ठाम—पुं० (सं० स्थान>प्रा० ठाय, ठाण, ठाम) जगह; (की० २, १५५; प्रा० पैं० १, १३३)। २. बल; "इअर वपुरा की करओ वीरत्तण निज ठाम," अर्थात् दूसरा वेचारा अपने वीरत्व और

वल को लेकर क्या करेगा; (की० ३, ३१)। —ा (ठामा) पुं० स्थान; (की० ४, ११६)।

ठाय—पुं० (सं० स्थान>प्रा० ठाण) १. स्थिति, अवस्थान २. पद, ३. आश्रय, आधार; (सण०)।

√ठाव—(सं०√ स्थापय्) स्थापना करना, ठहराना; ठवइ (प्रा० पैं० २, १९१)।

ठाव—पुं०(वै० सं० स्थाम) स्थान; तुल० गु० ठाम, ठेकाणु; (संधि० ३, ८, ९)।

ठिअ—वि० (सं० स्थित>प्रा० ठिय) स्थित, अवस्थित; (जंवू० १, ११, १९)।

ठिय—वि० स्थित; "दाणेमहो घरि ठिय रिसिपंति व" —दानशील व्यक्तियों को वर में स्थित मुनियों की पंक्ति; तुल० प्रा० म० ठी; (ण० ९, २, ७)।

ठिअअ—न० (दे०) ऊर्ध्व, ऊँचा; (दे० ना० मा० ४, ६)।

ठिउ—वि० (सं० स्थित>प्रा० ठिय) अवस्थित; (व० १, १६, १२)।

ठिक्क—न० (दे०) पुरुष की जननेंद्रिय शिश्नम्); (दे० ना० मा० ४, ५)।

ठिविअ—न० (दे०) १. हिक्का, हिचकी; २. वि० ऊँचा, ३. निकट; (दे० ना० मा० ४, ६)।

√ठेल्ल—(दे०) ठेलना। ठेल्लि—पू० का० क्रि०, वलपूर्वक खदेड़ कर; (की० ४, १४७)। ठेल्लि पेल्लि—पू० का० क्रि०, ठेल-पेल कर; (प्रा० पैं० १, १०६)।

ठोक्कर—पुं० (सं० ठक्कुर) ठाकुर; (सि० २, २४)।

ड

ड—पुं० (सं० प्रा० ड) मूर्ध स्थानीय व्यंजन वर्ण-विशेष। मूर्धन्य, नाद, घोष, अल्पप्राण, निरनुनासिक, स्पर्श वर्ण। टवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण आभ्यंतर प्रयत्न द्वारा तथा जिह्वामध्य को मूर्द्धा में लगाने से किया जाता है।

√डंक—(सं० दंश्>प्रा० डंस) डसना, डंक मारना, काटना। —इ (सं०दशति) तुल० म० डांक; (भ०; सुदं० ८, २८, ३)। डङ्कइ; (प० च० २०, २, ६)।

डंगुरउ—पुं० (सं० वादनदण्ड:, वाजा वजाने का डंडा; "अभउ देउ डंगुरउ वजाविउ...;" गु० डंगोरो; (प्रा० गु० ६, ११)।

डंडंत—कृ० (अनुध्व०) डमडमायमान; (सुदं० ७, ६, ८)।

डंड—न० (दे०) वस्त्र के सीए हुए टुकड़े; (दे० ना० मा० ४, ७)।

डंडय—पुं० (दे०) पगडंडी (रथ्या), मुहल्ला, (दे० ना० मा० ४, ८)।

डंवर—पुं० न० (दे०) प्रस्वेद, गरमी, घर्म; (दे० ना० मा० ४, ८)। पुं० न० (सं० आडम्वर>प्रा० आडंवर) ऊपरी दिखाव, दिखावट; "अक्खर डंवर सरिस छंद इय सुद्ध भणिज्जइ;" अर्थात् यह छंद

अक्षराडंबर सदृश होने पर शुद्ध कहलाता है; (प्रा० पैं० १, १०७)। डम्वरई— न०, व० सं० आडम्बराणि) आडम्बर; (हे० ४७०, १)।

डंभ—पुं० (सं० दम्भ>प्रा० डंभ) शठता, माया, कपट; तुल० म० डंभ; (जस० ३, २०, १२)। २. दाह, तुल०- गु० दाह; (संधि० १४. ३, १६)।

डम्भ—पुं० दम्भ; (म० १, ६, ३)। —सील वि० (सं० दम्भशील) कपटी; (सुदं० ३, ६, ५)।

डंभणिया—स्त्री० (सं० दम्भनिका) विद्यानाम; (ण० ६, ६, १८)।

डंभधारि—वि० (सं० दम्भधारिन्) दम्भी, कपटी; (जस० १, ६, ३)।

डंभिअ—पुं० (दे०) जूए का खिलाड़ी; (दे० ना० मा० ४, ८)।

डंभिया—वि० (सं० दम्भिता) कपटी, छलिता, मायावी; (सुदं० ७, १०, २)।

√डंस—(सं०√दंश्) डसना, काटना। —इ, ए; व० (पड्)।

डउँडउँ—पुं० (दे०) वाद्य-विशेष 'डमरु' के वजाने से उत्पन्न आवाज; (प० च० ५६, १, ८)।

डक्क—न० (दे०) डक्का, वाद्य-विशेष; (सुदं० ३, ४, ३; जंबू० ४, २, ७)। २. युद्ध का शोर (battle cry) "उहय- -वलइँ रहिरोल्लिय-गत्तइँ, हक्क-डक्क- लल्लक्क मुअन्तइँ;" (प० च० २५, ६, ८)। वि० (दे०) दंत-गृहीत; (दे० ना०- मा० ४, ६)।

डक्क—(सं०√दंश) डसना। —इ व० (सं० दशति); तुल० गु० डंखवुं; (प०- च० २१, ६, ६)।

डक्करइ—क्रि०, व०, शोर करना, डकारना; (की० ४, २१२)। डक्करन्तो— कृदंत का वर्तमान में क्रिया की तरह प्रयोग; डकराती है; (की० ४, २०१)। टि०—कृदंत का वर्तमान में प्रयोग वाले रूप धातु में 'अन्त' (शतृप्रत्ययान्त) लगाने से बनते हैं।

डक्कार—पुं० (अनुध्व०) डक-डक शब्द; (की० ४. २१२)।

डगण—पुं० (सं० डगण) चतुष्कल गुण, पिंगल में चार मात्राओं का एक गण; (प्रा० पैं० १, १३)।

डगमग— वि० (ध्वन्यनुकरणात्मक) हिलता डुलता; "अरेरे वाहहि कान्ह णाव, छोडि डगमग कुगति ण देहि;" (प्रा० पैं० १, ९)।

डगल—पुं० (दे०) घर के ऊपर का भूमि-तल; (दे० ना० मा० ४, ८)।

√डज्झ—(सं० दह्>प्रा० डह) दग्ध करना, दहना, जलाना; (व० ३, ८, २; सं० रा०; जस० २, १, ६)। —ई व० (सं० दहति>प्रा० डहइ) तुल० मगही डहइ; (डोम्बिपा, चर्यापद)। डज्झन्तु— कृ० जलाये जाने पर; (प० च० १०, ७, ६)। डज्झमाण—कृ० दह्यमान (दह् +शानच्) (क० १, १७, १०; जंबू० ४, १४. ८)।

डज्झ—वि० (सं० दग्ध>प्रा० डड्ढ) जला हुआ; (ण० २, ४, २)।

डड्ड—वि० (सं० दग्ध) प्रज्वलित, जला हुआ; (जस० २, २४, ३)।

डड्ढाडी—स्त्री० (दे०) आग का मार्ग; (दे० ना० मा० ४, ८)।

डड्ढिअ—वि० (सं० दग्ध>प्रा० अप० डड्ढ) जलाए हुए, दग्ध; (कौ० ३, ११४)।

डप्फ—न० (दे०) कुंत, आयुध-विशेष; (दे० ना० मा० ४, ७)।

(√डबोल—(अनु० डुब डुब) सं० निमज्जने, डुबोना; तुल० गु० डबोळवुं; (प्रा० गु० ३८, ५७)।

डब्भ—पुं० (सं० दर्भ) डाभ, कुश, तृण-विशेष।

डमडंक—पुं० डमरु ध्वनि; (जंबू० ५, ६, ६)।

(√डमडम—(सं० डमडमाय्) 'डम-डम' आवाज करना। डमडक्किय—भू० का०, डमडमक्क-डमडमक्क आवाज की; "डक्क-डमडक्कियं;" अर्थात् डक्का डमडक्क-डमडक्क करके बजने लगा; (जंबू० १०, १६, ३)।

डमडमिय—वि० (सं० डमडमायित) जिसने डम-डम आवाज की हो वह; डम-डमायित ध्वनि; (सुदं० ७, ६, ८)।

डमर—पुं० न० (सं० प्रा० डमर) राष्ट्र का आंतरिक अथवा बाह्य विप्लव; (प० च० १३, १०, ६)। २ वि० भयंकर; (जंबू० ४, २२, ४)। ३ पुं० न० कलह, लड़ाई; (दे० ना० मा० ८, ३२)।

डमरकर—वि० भयंकर; (प० च० ६, ३, ४)।

डमरु—पुं० न० (सं० प्रा० डमरु) वाद्य-विशेष; एक प्रकार का बाजा; (व० ६, १०, २०)। —अ, ग पुं० न० (सं० डमरु+क) वाद्य-विशेष, कापालिक योगियों के बजाने का बाजा; (दे० ना० मा० २, ८६; प० च० ५७, २३)। —य पुं० न० (सं० डमरु+क) डमरु; (प० च० ५७, २३)।

डर—पुं० (सं० दर>प्रा० डर) त्रास, डर, भय, भीति; तुल० गु० डर; (क० ७, ५, ४; सुदं० २, ११, ६; प० च० १५, २, ३)। २ वृषभ-विशेष; (प० च० २७, २, ३; २६, १, १०)।

√डर—(सं० √त्रस्) भय होना, डरना, भयभीत होना। "काणणि विसदंसहँ हउँ डरमि;" (जस० २, २८, ६)। डराविय-पू० का० क्रि०, "डरावियवइरि हणंति पयंड;" अर्थात् वैरियों को डराकर प्रचंड मार करने लगे; (जंबू० ६, १३, ५)।

डरिय—वि० [सं० दीर्ण=(फटा हुआ, चिरा हुआ, भयभीत), प्रा० डरिअ] १ पतित, पड़े हुए; "जय चउगइडरिय-जणेक्कसरण," अर्थात् जो चारों गतियों में पड़े हुए प्राणियों के लिए शरणमात्र हैं; (क० १, १, ६)। २ भयभीत, डरा हुआ; तुल० गु० डर्युं; (प० च० ६, १८, ६)। ३ त्रस्त; (सुदं० ६, १२, ४)।

डल—न० (सं० डलक>प्रा० डल्ल) डाली, डलिया; बांस का बना हुआ फल-फूल रखने का पात्र; पिटिका; (दे० ना० मा० ४, ७)। पुं० (दे०) लोष्ट, ढेला, डला; (दे० ना० मा० ४, ७)।

√डव— आरंभ करना। —इ; (षड्०)।

डव्व—पुं० (दे०) बायाँ हाथ; तुल० गु० डावो; (दे० ना० मा० ४, ६)।

√डस—(सं०√ दंश्>प्रा० डंस) डसना, काटना; तुल० गु० डसवु।

डसंत—कृ० (√डस+शतृ); (व० ४, ५, १०)। डसिउ—भू० का० डस लिया; (क० ७, ४, ६)। डसिया—भू० का० चबाए. "डसियाहरु;" अर्थात् (उन्होंने अपने) होंठ चबाए; (क० ३, १३, १०)। डसेवि—पू० का० क्रि०, (जस० ३, ३५, ८)।

डसन—पुं० (सं० दशन>प्रा० डसण) दाँत; (सं० रा०; जस० २, ३१, ६)।

डसिय—वि० (सं० दष्ट>प्रा० डसिअ) डसा हुआ, काटा हुआ; (ण० ८, ३, १४)। डसियाहर—पुं० (सं० दष्ट+अधर>प्रा० डसिअ+अहर) दाँतों से ओठ चबाना; (ण० २, १०, ११)।

√डह—(सं०√ दह्>प्रा० डह) जलाना, दग्ध करना। —इ—व० (सं० दहति>प्रा० डहइ) तुल० म० डाह; (जस० २, २४, ३; प० च० २१, ६, ९)। डहंत—(सं० दह्+शतृ; दहत्) (जंबू० ७, ९, ६)। डहन्त व० कृ० (प० च० ३, २, ३)। डहहि—जलाइए (ण० ४, ८, २)। डहंति—व०, क्रि०, ब० (ण० ८, १, १०)। डहेवि—पू० का० क्रि०; दग्ध करके; (परमा०)।

डहण—न० (सं० दहन>प्रा० डहण) दहन, अग्नि; (सुदं० ६, ४, ९)।

डहर—१. पुं० (दे०) शिशु; (दे० ना० मा० ४, ८)। २. वि० (दे०) लघु, छोटा, क्षुद्र। —उ; (रा० ११)।

डहरी—स्त्री० (दे०) मिट्टी का घड़ा; (दे० ना० मा० ४, ७)।

डहाला— पुं० डाहल, स्थान-विशेष; जबलपुर; (जंबू० ६, १६, १५)।

डहु—वि० (दे०) लघु, छोटा; "एवहिं डहु मोरउ लहु तेण तीइ करु लायमि," और अब छोटा सा मोर होकर मैंने उसके ऊपर हाथ चलाया; (जस० २, ३३, १०)।

डाँडिअ—क्रि० (सं० दण्ड>प्रा० डंड) दण्ड देना, डाँड़ना; "सरवस डाँडिअ सत्तु;" सब प्रकार से शत्रुओं को दंड दिया; (की० ३, ८५)।

डाअल—न० (दे०) आँख, नेत्र; (दे० ना० मा० ४, ९)।

डाइणि—स्त्री० (सं० डाकिनी> प्रा० डाइणी) डायन, डाकिनी; चुड़ैल, प्रेतिनी, प्रेतपिशाचादि स्त्री-विशेष; (ण० ४, १५, ८; जस० १, १६, १)।

डाउ—पुं० (दे०) १. फलिहंसक वृक्ष, वृक्ष-विशेष; २. गणपति की एक प्रकार की मूर्ति; (दे० ना० मा० ४, १२)।

डाकिनि—स्त्री० (सं० डाकिनी>प्रा० डाइणि) डायन, चुड़ैल, प्रेतिनी; (प्रा० पैं० १, २०९)।

डामर—१. वि० (सं० प्रा० डामर) भयंकर; (प० च० १७, १७, १०)। २. पुं० स्वनाम-ख्यात एक जैन मुनि; (प० च० २०, २१)।

डामरिय—वि० (सं० डामरिक) विग्रह-

कारक (revolter); (प० च० ३३, ६, ६)।

डाल—स्त्री० (दे०; प्रा० डाल) शाखा, टहनी; तुल० गु० डाळ, म० डाळी, ढाळी; (ण० १, ८, ११; क० १, ६, ५)। —इं न० शाखा; (हे० ४४५, ३)। डालु—पुं० (दे०) लता, शाखा, (व० ३, २, ४)।

डाव—पुं० (दे०) वाया हाथ; तुल०-गु० डावो; (दे० ना० मा० ४, ६)।

डाह—पुं० (सं० दाह>प्रा० डाह) १. ताप, जलन; (ण० ८, ८, २)। डाहु—पुं० ईर्ष्या; (प० च० ७, १२, ४)। जलन; (सुदं० ८, ३१, ५)।

√डाह—(सं० दह्यते) जलाना, "जालें डाह," ज्वालेन वा ज्वालया दह्यते, (उ०-व्य० प्र० १५, २४)।

डाहररज्जा—पुं० (दे०) डाहरराज्य, देश-विशेष का राज्य; (प्रा० पैं० १, १२८)।

डाहुत्तार—वि० (सं० दाह+उत्ताप) अग्नि में तपाया हुआ; "डाहुत्तारु चारु चामीयरु," अर्थात् ताप से तपाया हुआ श्रेष्ठ सोना; (जंबू० ८, १२, ६)।

डिंड—पुं० (दे०) फेन, झाग "चलवलियअंतडिंडहँ भरिय," चलवलाती हुइ आँतों रूपी डिंड से भरी, (सुदं० ६, ६, ४)।

डिंडव—वि० (दे०) जल में पतित; (पड्)।

डिंडिम—न० (सं० डिण्डिम) वाद्य-विशेष; (क० २, २, ६; जस० १, २०, ५)।

डिंडिल्लिअ—न० (दे०) १. तैल-किट्ट से व्याप्त कपड़ा; २. स्खलित हस्त; (दे० ना० मा० ४, १०)।

डिंफिअ—वि० (दे०) जल में गिरा हुआ; (दे० ना० मा० ४, ६)।

डिंव[१]—पुं० १. विद्याधर राजा; (त०-च० १०, २०)। २. समूह, "दलिअतिमिरडिंवो; ' जिसने अंधकार के समूह का नाश कर दिया है; (प्रा० पैं० २, ७३)।

डिंव[२]—पुं० न० (सं० डिम्ब>प्रा० डिंव) विप्लव, "डिंव-डमर-उड्डमर-मारि वित्थरिय अंधारय;" (प्रा० गु० १२, ६)।

डिंभ—पुं० (सं० डिम्भ>प्रा० डिंभ) शिशु, बालक; (जस० १, १७, १०)। डिम्भ; (प० च० ४, १२, ५)। —अ पुं० लड़का; (प्रा० पैं० २, ४६)। —य पुं० (सं० डिम्भकाः, ब०) बालक; (सुदं० ६, २१, ८)।

डिअली—स्त्री० (दे०) स्थूणा, खूँटी; (दे० ना० मा० ४, ६)।

√डिक्क—(प्रा० ढिक्क) साँड का गरजना। —इ अक०; (पड्)।

डिठि—स्त्री० (सं० दृष्टि) दृष्टि; (की०)।

डिड्डर—पुं० (दे०) मेढ़क; (दे० ना०-मा० ४, ६)।

डिण्डीर—पुं० न० (सं० डिण्डीर>प्रा० डिंडीर) समुद्र का फेन; (प० च० १४, ३, ७)।

√डिप्प—(सं०√दीप्) दीपना, चमकना —इ, —ए; (पड्)। २. (सं० वि+

गल्) १. गल जाना, सड़ जाना; २. गिर पड़ना; (पड्) ।

डिव्भासण—पुं० (सं० दिव्यासन) एक आसन; (व० १०, ३३, ८) ।

डिविडिक्किय—वि० (दे०, प्रा० टिविडिक्किय) अलंकृत, "चंदन-अगरु-गन्ध-डिविडिक्किय, इन्दगोव-कुङ्कुम-चच्चिक्किय;" (प० च० ३४, १०, ५) ।

डीठि—स्त्री० (सं० दृष्टि>प्रा० डिट्ठी) दृष्टि; (की० २, १७७) ।

डीण—वि० (दे०) अवतीर्ण (१. नीचे आया हुआ; २. पार गया हुआ, पार किया हुआ; (दे० ना० मा० ४, १०) ।

डीणोवय—न० (दे०) ऊपर; (दे० ना०-मा० ४, १०) ।

डीव—पुं० (दे०) तृष्णा, "पराई वयु डीव छाडु;' (उ० व्य० प्र० ६-३१) ।

डुंगर—पुं० (सं० तुङ्ग=पहाड़) शैल, पर्वत, गिरि; तुल० गु० डुंगर; (प्रा०-गु० १६, ८; दे० ना० मा० ४, ११) ।

डुंघ—पुं० (दे०) नारियल का बना हुआ पात्र-विशेष जो जल निकालने के काम में आता है; (दे० ना० मा० ४, ११) ।

डुंडुअ—पुं० (दे०) पुराना घंटा; (दे०-ना० मा० ४, ११) ।

√डुंडुल्ल—(दे०) घूमना, फिरना, चक्कर लगाना । —इ; व० (पड्) ।

डुंव—पुं० (सं० डोम) चाण्डाल; अत्यंत नीच जाति का पुरुप; डोंव (दे० ना०-मा० ४, ११; संधि० १२, ५, २४) ।

डुंविय—पुं० (दे०) एक प्रकार का सांप; (संधि० १२, ५, ३४) ।

डुंव—पुं० (सं० डोम) डोंव, अस्पृश्य नीच जाति; (प्रा० गु० ५, ३५) ।

डुड्ड—पुं० (दे०) मनुष्य-जाति-विशेष; (संधि० १०, २, ३) ।

डुब्बिउ—क्रि०, (अनु० डुब डुब) डूबना; (प्र० चि०) ।

डुम्भिय—वि० (दे०) विदोलित, आंदोलित; "कारण्ड-डिम्भ-डुम्भिय-सरोह, वर कमल करम्बिय-जलपओह;" (प० च०-२३, १३, ५) ।

√डुल—(सं० √दोलय्> प्रा० डुल, डोल) डोलना, हिलना, कांपना । —इ व०, प्र० पु०, ए० (सं० दोलायते) "हिअअ डुलइ;" हृदय डोल रहा है; (प्रा० पैं० २, १६३) ।

डुललिय—वि० (दे०) दोलायित, क्षुभित; (सुदं० ६, ६, ३) ।

डुहडुहडुह—अक० (सं० डुहडुहाय्) 'डुह-डुह' आवाज करना, नदी के वेग का खलखलाना । डुहडुहन्ति; (प० च० ३१, ३, ३) । डुहुडुहुडुहंत—व० कृ०; (प०-च० ६४, ४३) ।

डेकुण—पुं० (दे०) खटमल, क्षुद्र कीट-विशेष; (पड्) ।

डेड—पुं० (दे०) ढेड, कौवे के समान दुष्ट पुरुप; (सुदं० ३, १, ७) ।

डेड्डुर—पुं० (सं दर्दुर) मेंढ़क; तुल० राज० डेडरो; (पड्) ।

डेरउ—वि० (दे०) डेरा, टेढी, आंख वाला; "डेरउ हट्ठक्खरहिं होइ काणा गुण सव्वहिं रहिअ;" अर्थात् हठाक्षरों (जबर-

दस्ती जोड़े गए) अक्षरों के द्वारा डेरा (टेढ़ी आँखों वाला) होता है तथा सर्व-गुण रहित छप्पय काणा होता है; (प्रा०-पैं० १, ११६)।

√डेव—(दे०) सं० उत्+लङ्घ्; उल्लंघन करना, कूद जाना। डेवन्ति—क्रि०, व०, व० (प० च० २५, ६, ५)।

डेविय—वि० (दे०) प्रीणित, तृप्त, रु'डपिंडडेवियभेरु'डई;" अर्थात् रु'डों के पिंडों से भेरुण्ड तृप्त हो रहे थे; (ण० ७, ७, ५)।

डोंगिली—स्त्री० (दे०) १. तांबूल रखने का भाजन-विशेष, २. पान बेचने वाले की स्त्री; (दे० ना० मा० ४, १२)।

डोंगी—स्त्री० (दे०) पान रखने का भाजन-विशेष; (दे० ना० मा० ४, १३)।

डोंब'—पुं० (दे०) चांडाल जाति-विशेष; (जस० २, १७, ७)।

डोअ—पुं० (दे०) दाल, शाक, आदि परोसने का काष्ठ का पात्र-विशेष; तुल०-गु० डोयो; (दे० ना० मा० ४, ११)।

डोअण—न० (दे०) लोचन, आंख; (दे० ना० मा० ४, ६)।

डोकरि—स्त्री० वृद्धा; तुल० राज० डोकरी (वृद्ध स्त्री) (प्रा० गु० ६, २८)।

डोंडु—स्त्री० (दे०) दुष्टा ब्राह्मणी; (सुदं० ८, ३३, २)।

डोम—पुं० (सं० डम) डोम, एक नीच जाति; (पाहु०)। डोमु; (सि० २, ३)।

डोंमणिय—स्त्री० डोमिनी, डोम जाति की स्त्री; (सि० २, ३)।

डोय—पुं० (दे०) डोई, कलछुल, काष्ठ का बना हुआ बड़ा चमच (wooden ladle); (प० च० ४६, १०, ७)।

डोयहों—क्रि०, भू० का० डोल उठे, "धरणिन्दहों सहासफड-डोयहों" —धरणेन्द्र के हजारों फन डोल उठे; (प० च० ५, ११, १)।

डोर—स्त्री० (दे०, प्रा० डोर) सूत, रस्सी; गुण; तुल० म० दोर; (प० च० १६, ६, ८; जस० २, २६, ५)।

√डोल—(सं०√ दोलय्) डोलना, हिलना; झूलना। तुल० गु० डोलवुं (सवि० १३, १०, २)। —इ अक० १. डोलना; (क० ४, १५, ५)। २. काँपना; (महा० ४, १८, २)। डोलिज्जइ—कर्मवा० (सुदं० ७, ५, १२)। (कीर्तिपताका)। —वे क्रि०, व० डोल रहे हैं; डोल्लिय—भू० का० (सं० दोलित) डोलने लगी; (सुदं० ११, १४, ३; जंबू० १०, १५, ५)।

डोलहरि—स्त्री० (दे०) डोला, "डोल्लहरि व लग्गी कंठहँ;" अर्थात् डोले के समान लटकर कंठ से लगी हुई; (जंबू० ४, १६, ११)।

डोला—स्त्री० (दे०) शिबिका, डोली, पालकी; (दे० ना० मा० ४, ११)।

डोलिअ—पुं० (दे०) काला हिरन; (दे०-ना० मा० ४, १२)।

डोला—स्त्री० (सं० दोला > प्रा० डोला) हिंडोला, झूला; (प० च० १४, २, १)।

—ल्डी वि० —हिंडोले पर बैठी हुई; (प० च० १७, १५, ८)।

डोलाविय—वि० (सं० दोलित) कंपित, हिलाया हुआ; (प० च० ३१, १२४)।

डोलिया—वि० (सं० दोलिता) कंपित, हिलाई हुई; (सुदं० ११, १८, १७)।

√डोल्ल—(सं० दोलय्>प्रा० डोल) डोलना। —इ अक० (जंबू० ८, ७, ६)।

डोल्लंत—कृ० (सं√दोल्+शतृ) दोलायमान; (जंबू० ६, १८, ६)। डोल्लन्ति —क्रि०, व०, व०, हिलते हैं, झूलते है; (प० च० ६, ७, ३)।

डोल्लिय—स्त्री० डोली, शिविका, पालकी; (सुदं० १, ६, १२)।

डोव—पुं० (सं० डम) डोम, एक नीच जाति; (जंबू० ५, ११, ४)।

डोसिणी—स्त्री० (दे०) ज्योत्स्ना, चंद्रप्रकाश (पड्)।

डोहंत—वि० (सं० गम्भीर+अन्त) गहरा (पानी) 'तहिं डोहंतु जलु;" (क० १, १३, १०)।

√डोह—(दे०) १. काम को विगाड़ देना, चौपट कर देना, गड़बड़ करना, खराब कर देना, गड़बड़ाना, विना क्रम से मिलाना, गड्ड-मड्ड कर देना। डोहेंवि —पू० का० क्रि०, "जो अरि-करिहिं ण डोहेंवि सक्किउ;" (प० च० २६, ११, ३)। २. मलिनीकरणे, किसी द्रव्य में किसी वस्तु को मिलाकर गंदा कर देना; तुल० गु० डहोळवुं, (प्रा० गु० २६, ७)। डोहिऊण—पू० का० क्रि०, घुसकर, "कहिं पि डोहिऊण दीहदीहिय;" अर्थात् कहीं बड़ी दीर्घिकाओं में घुसकर; (जंबू० ४, २१, ४)। डोहिय—पू० का० क्रि०, अवगाहन कर 'डोहिय-जलवाहिणीजलतरिल्लु;" अर्थात् (उस सेना ने) एक जलवाहिनी का अवगाहन करके उसके जल को पार किया; (जंबू० ५, ७, १२)।

डोहलअ—पुं० (सं० दोहद) गर्भिणी स्त्री की प्रबल रुचि; (संवि० ४, ३, ४)।

डोहहों—क्रि०, आ०, पीओ; "फलइं म तोडहों जलु मा डोहहों," अर्थात् फल मत तोड़ो, पानी मत पिओ; (प० च० २, १३, ४)।

डोहिय—वि० (दे०) गहरा, गंभीर; (भ०)।

डोहियाइ—वि० (दे०) प्रकंपित; "मत्त-हत्थि-डोहियाइ;" अर्थात् मतवाले हाथियों से प्रकंपित; (रि० २, २)।

ढ

ढ—पुं० (सं० प्रा० ढ) व्यंजन वर्ण-विशेष, इसका उच्चारण मूर्धा से होता है। मूर्धन्य, नाद, घोष, महाप्राण, निर-नुनासिक, स्पर्श वर्ण। टवर्ग का चौथा वर्ण।

ढंक—पुं० (दे०) कौआ, वायस (दे०-ना० मा० ४, १३; संवि० १४, ५, ६)।

√ढंक—(प्रा० ढक, ढक्कइ=आच्छादन करना) ढाँकता है, ढकना। —इ व० (सुदं० ७, १३, ३; महा० १, १३,

१०) । ढंकिज्जइ—क्रि० ढक जाना (ण० ६, ५, १) । ढंकिवि—पू० का० क्रि०, ढँक कर, (ण० ४, १३, १) । ढङ्केंवि —पू० का० क्रि० (प० च० २३, ११, ६) ।

ढंकण—न०(दे०) छादन, ढकना; (सुदं० ८, ६, १८) ।

ढंकणी—स्त्री० (दे०) ढकनी, ढकने का पात्र-विशेष; वह वस्तु जिसे ऊपर डाल देने या बैठा देने से नीचे की वस्तु छिप जाए; (दे० ना० मा० ४, १४) ।

ढंकणु—पुं० (दे०) खटमल; (दे० ना० मा० ४, १४) ।

ढंकिउ—क्रि०, भू० का० ढक लिया; (महा० ६८, ११, १) ।

ढंकिय—वि० (प्रा० ढक्किअ) आच्छादित, बंद किया हुआ; (ण० ५, १०, १६; जस० २, ५, ८) । ढङ्कियय—आच्छादित; (प० च० ३३, ६, ४) ।

ढंख—पुं० (दे०) शुष्क वृक्ष; "ढंखरुक्ख-सुक्खेहिँ णिप्फलं," (जस० १, १३, ३) ।

ढंखर—पुं० (दे०, प्रा० ढंखर) फल-पत्र से रहित वृक्ष; (सं० रा०) ।

ढंखरी—स्त्री० (दे०) वीणा-विशेष; (दे० ना० मा० ४, १४) ।

ढंढंत—कृ० (अनु०) ढमढमाता हुआ; (सुदं० ७, ६, ५) ।

ढंढ—पुं० (दे०) पंक, कीच, (दे० ना० मा० ४, १६) २. वि० निरर्थक, निकम्मा; (दे० ना० मा० ४, १६; भ०) ।

ढंढणी—स्त्री० (दे०) केवाँच, वृक्ष-विशेष; (दे० ना० मा० ४, १३) ।

ढंढर—पुं० (दे०) १. पिशाच; (ण० ६, ७, १०; दे० ना० मा० ४, १६) । २. ईर्ष्या; (दे० ना० मा० ४, १६) ।

ढंढरिअ—पुं० (दे०) कर्दम, पंक, कीचड़; (दे० ना० मा० ४, १५) ।

ढंढसिअ—पुं० (दे०) १. ग्राम का यक्ष, २. गाँव का वृक्ष; (दे० ना० मा० ४, १५) ।

√ढंढोल—(सं० ढुण्ढ्) खोजना, तलाश करना; (दे० ना० मा० ४, १५) ।

ढंसइ—क्रि०, व० (दे०) चक्कर खाना, इधर-उधर लुढ़कना, पीछे लुढ़कना (विवर्त्तते); (दे० ना० मा० ४, १४) ।

ढंसय—न० (दे०) अयश, अपकीर्ति; (दे० ना० मा० ४, १४) ।

ढउह—पुं० (दे०) ढौह वृक्ष, (जंबू० ५, ८, १२) ।

ढक्क—१. पुं० (सं० आषाढक= पलाश) ढाक का पेड़; (सं० रा०) । २. पुं० (सं० प्रा० ढक्का) वाद्य-विशेष, (ण० ८, ६, १३) । ३. पुं० (सं० प्रा० ढक्क) देश-विशेष । देश-विशेष में रहने वाली एक जाति; (भ०) ।

√ढक्क—(प्रा० ढक्क) सं० छादय् । ढकना, आच्छादन करना, ढांकरा; तुल० म० ढांकण । —इ व० (दे० ना० मा० ४, १४; भ० १, १०, २) ।

ढक्कय—न० (दे०) तिलक; (दे० ना० मा० ४, १४) ।

ढक्करिवन्तय—वि० (दे०; प्रा० ढक्करि =अद्भुत, आश्चर्यजनक) चमत्कारवादी, "जगें लोएँहिँ ढक्करिवन्तएहिँ । उप्पाइ

भंतिउ मन्तएहिँ" —दुनियाँ में चमत्कारवादी और भ्रांत लोगों ने भ्रांति उत्पन्न कर रखी है, (प० च० १, १०, १)।

ढक्कसार—पुं० (दे०) वाद्य-विशेष; (जंबू० १, ४, १८)।

ढक्का—स्त्री० (सं० ढक्का=बड़ा ढोल वाद्य- विशेष; (जस० ४, ३, ५)।

ढगण—पुं० (सं० ठगण) त्रिकलगण; पिंगल में एक मात्रिकगण जो तीन मात्राओं का होता है; (प्रा० पैं० १, १३)।

ढड्ढ—पुं० (दे०) भेरी, वाद्य-विशेष; (दे० ना० मा० ४, १३)।

ढढ्ढर—पुं० (दे०) राक्षस, पिशाच, प्रेत आदि (सुदं० ९, १३, १५)।

ढड्ढस—पुं० (दे०) धैर्य; तुल० गु० ढाढस; (पं० च० ४९, १७, ३)। ढड्ढसु—पुं० ढाडस, साहस; (सुदं० ११, २, १२)।

ढणहुण—पुं० (अनुध्व०) रोने की आवाज; "ढणहुण तउ रोएई;" (प्रा०-गु० १४, ३७)।

ढण्ढर—पुं० १. पक्षी-विशेष २. राक्षस, (दे० ना० मा० ४, १६=पिशाच) (प०-च० ५१, ३, ६)।

ढमर—न० (दे०) १. स्थाली, बटलोई २. गरम पानी; (दे० ना० मा० ४, १७)।

ढयर—पुं० (दे०) १. पिशाच; २. ईर्ष्या, द्वेष; (दे० ना० मा० ४, १६)।

ढलइ—क्रि०, व० (दे०) १. गिरना, नीचे पड़ना, टपकना; (महा० ८, ९, १२)। २. ढलना; (to wane); (ण० २, ४, १०)। ढलक्किय—भू० का०, ढुलक गए; (जंबू० ७, ८, १०)। ढलिअ—भू० का० ढुलक गए; (जंबू० १०, १४, १५)।

ढलवाइक—वि० (सं० ढालवाहक) ढाल लिए सैनिक; (की० ४, ६९)।

ढलिय—वि० (दे०) ढीला; (महा० ८, ९, १२)।

ढारिआ—भू० का० गिर रहे थे, ढर रहे थे; "चूह उप्पर ढारिआ;" अर्थात् झरने ऊपर गिर रहे थे; (की० २, ८०)। टि०—कीर्तिलता में भूतकाल के कृदंत रूपों में 'इअ' को 'इआ' रूप में व्यक्त करने की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है।

√ढाल—(दे०) १. ढालना, जैसे जल से भरे घड़े का ढालना, (सुदं० ६, १४, ६)। २. नीचे गिराना। पांसा ढालना (to throw the dice)। —हिं; (ण० ३, १३, १०)। ढालेसहि—भ० का० ढालेगा; (क० २, १९, १०)। तुल० गु० ढाळवुं। ढालिज्जइ—कर्मवा० ढाला जाता है; (जंबू० १०, १४, ११)।

ढाल[२]—पुं० (दे०) गति; तुल० गु० ढाळ; (संधि० १२, ४, ४)।

ढिढय—वि० (दे०) जल में पतित; (दे० ना० मा० ४, १५)।

√ढिक्क—(दे०) सांड का गरजना। —इ अक० (दे० ना० मा० ४, १५)।

ढिक्कय—अव्य० (दे०) सदा, हमेशा, सदैव; (दे० ना० मा० ४, १५)।

ढिड्ढिस—न० सं० पिष्ट; आटा, बेसन

(धान्यादीनां पिष्टमिति) "ढिड्ढिसु गिलंति पलु संभरिवि," (जस० २, २०, ८)।

ढिल्ल—वि० (सं० शिथिल) ढीला, (पाहु०)। ढिल्ली—वि० शिथिल; (महा० ३२, ३, ५)।

ढिल्लइँ—वि० (सं० शिथिल > प्रा० ढिल्ल) ढीला, शिथिल; (प० च० १८, ६, ६)। ढिल्लु; (सु० ६, २१)।

ढिल्लि—पुं० दिल्ली; नगर-विशेष, जो आजकल भारतवर्ष की राजधानी है; (प्रा० पैं० १, १४७)।

ढीलीहोंतय—वि० (सं० शिथिल+भवत् (वि०)=होने वाला) ढीले-पोले; (प० च० ८, ५, ११)।

ढुंढल्लइ—क्रि०, व० (सं० ढुण्ढ्) ढूँढना, खोजना, पता लगाना; (दे० ना० मा० ४, १७)।

ढुक—वि० (सं० ढौकित) पास लाया हुआ, उपस्थित किया हुआ; (क० ४, ५, ४)।

ढुक्क—वि० (सं० ढौकित) १. प्राप्त, आगत; (म० २, ६६, २)। अव्य० पास; (प० च० १२, ८, ७)।

√ढुक्क—(सं० ढौक्) मिलना, पिल पड़ना; तुल० राज० ढोक। ढुक्कंतउ—क्रि०, भू० का०; भिड़े; (प्रा० पैं० १, १५५)। —इ व० १. भेंट करना, अर्पण करना; (ण० २, ४, ६)। २. प्रविष्ट होना; (जंबू० १०, २५, १)। ३. (सं० ढौकते √ढौक्ऋ गतौ > प्रा० ढुक्क) पहुँचना "फिर सहुँ सहियहिं ढुक्कइ सरवरु," वह सहेलियों के साथ सरोवर पर पहुँचती है, (प० च० ५, ४, ८; ण० २, ४, ६)।

ढुक्कमाण—कृ० (प० च० १०, ११, ५)। ढुक्कंत—कृ० (ण० ३, ८, ११)।

ढुक्कय—भू० का० पहुँचा, ढुका; (सं० रा०)। ढुक्कु—भू० का० पहुँचा, (रि० २, ५)। ढूकउ—भू० का०, समीप पहुँचा, तुल० गु० ढूक्यो; (प्रा० गु० २६, १८)।

ढुक्काढुक्कि—स्त्री० (ढुक्क=पहुँचना) निकट से लड़ना (fight at close quarters); तुल० गु० ढूकवुं; (प० च० ५२, ६, २)।

ढुमइ, ढुसइ— क्रि०, व० घूमना (भ्रमति); (दे० ना० मा० ४, १५)।

ढुरढुल्लिय—क्रि०, ढुलढुलाना; (पाहु०)।

ढेंका—स्त्री० (प्रा० ढेंका) १. हर्ष; २. सिचाई के लिए कूएँ से पानी निकालने का एक यंत्र, ढेंकली, ढेंकुली; (दे० ना० मा० ४, १७)।

ढेंकी—स्त्री० (दे०) बगुली (बलाका), बक-पंक्ति; (दे० ना० मा० ४, १५)।

ढेंकुण—पुं० (दे०) मत्कुण, खटमल; (दे० ना० मा० ४, १४)।

ढेंच—वि० (दे०) अपाहिज। —उ; (रा० ३०)।

ढेंडिअ—वि० (दे०) धूपित, धूप दिया हुआ; (दे० ना० मा० ४, १६)।

ढेक्कार—पुं० (दे०) वृषभशब्दानुकार शब्द, डकार का शब्द, "जहिं वसह मुक्कढेक्कारधीर जीहाविलिहियणंदिणिसरीर," अर्थात् वहाँ बैल डकार छोड़ते हुए तथा अपनी जीभ से गायों के शरीर को चाटते

हुए दिखाई देते हैं; तुल० म० ढेकर; (जस० १, २१, ३)।
ढेल्ल—वि० (दे०) निर्धन, दरिद्र; (दे०-ना० मा० ४, १६)।
ढंघर—वि० (दे०) भ्रमणशील, घूमने वाला; (दे० ना० मा० ४, १५)।
√ढोअ—(सं० ढौकय्) वहन करना, ढोना। ढोइवि—पू० का० क्रि०, "सो वयणइं सुद्धइं णं पयदुद्धइं सप्पहों ढोइवि णासइ," अर्थात् वह अ.ने शुद्ध वचनों को मानों सर्प को घृत और दूध देकर स्वयं नाश को प्राप्त होता है; (जस० १, १६, १०)। ढोवइ—क्रि०, व० लाना; (ण० १, १४, ६)।
ढोइअ—वि० (सं० ढंकित) अर्पित; (सुदं० ११, १, ५)।
ढोइउ—भू० का० (सं० ढौकित) उपस्थित हुआ; (रि० ३, १४)।
ढोइट—वि० (सं० ढौकित) १. भेंट किया हुआ, २. उपस्थित किया हुआ; (जस० ८, १२, ६)।
ढोइय—भू० का०, (सं० ढौकित) निकट लाया; (प० च० ३१, ६, २)। —इ (सं० ढंकितानि) उपस्थित की गयीं; (रि० २, ७)।
√ढोय—(सं०√ढौक्) ढोना। —इ व० ढोकर लाना, १. "जाव न अप्पउ तावह ढोयइ;" (प्रा० गु० १३, ४२)। २. "को वि अमुल्लाहरणइं ढोयइ;" कोई अमूल्य आवरण ढोकर लाता है; (प० च० २, १६, ५)। ढोउ—ले जाना, "जहिं सुअ-सारियहुं विणाहिं ढोउ"—जहां शुक और सरिका को भी नहीं ले जा सकते, (प० च० १६, ५, २)। ढोयन्ति—व०, व० (प० च० ६, ३,३) (२)(सं० ढौक्>प्रा० ढुक्क) अर्पण करना, भेंट चढ़ाना;(ण० ३, ८, ६)। ढोइवि—पू०-का० क्रि, (ण० ४, ६, १)। ढोएप्पिणु—पू० का० क्रि० (ण० १, १७, १)। ढोएवि—पू० का० क्रि०, ढोकर; (व० ४, ७, ५)। ढोयंतु—कृ० (सं० ढौकय् +शतृ) (जंबू० १, ३, ८)।
ढोयण—पुं० (सं० ढौकन>प्रा० ढोवण, ढोवणय) उपहार, भेंट; "पाहुड-पडिपाहुड-ढोयणेण" उपहार-प्रत्युपहार रखने में; (प० च० १६, २, ५)।
ढोयणीआ—स्त्री० (सं० ढौकन>प्रा० ढोवण) उपहार, भेंट; (संधि० ४, ७, ४)।
ढोर—पुं० (सं० धवल=अत्युत्तम वैल) >धोल>धोर) ढोर, पशु; "दुब्बल ढोर इव पंके पडिय ण उट्ठिवि सक्कइ," तुल० गु० ढोर; (रि० १, ७; सुदं० ५, ५, ६; प० च० ३३, ११, ७)। ढोरि; (व० ७, ३, ८)।
ढोल्ला—पुं० (दे०) वाद्य-विशेष; ढोल, दमामा, (प्रा० पैं० १, १४७)।
ढोल्ला—पु० (सं० दुर्लभ>पा० दल्लभ >प्रा० दुल्ह) दुल्हा, दूल्हा, वर, नौशा; तुल० बु० दूया; (हे० ३३०, १)।

ण

ण—पुं० (सं० पा० न>प्रा० ण) ट वर्ग का पंचम वर्ण। इसका उच्चारण

स्थान मूर्द्धा है। मूर्धन्य, नाद, घोप, महाप्राण, सानुनासिक, स्पर्श वर्ण। प्राकृत के प्रारंभ से अपभ्रंश भाषा की उन्नति तक (दूसरी शताब्दी ई० पू० से १० वीं शताब्दी तक 'न' को 'ण' को उच्चारण करने की प्रवृत्ति सर्वत्र प्रधान रही। १० वीं शताब्दी के बाद जी णत्व की प्रमुखता रही। गु०, राज० और पं० में यह प्रवृत्ति सुरक्षित रही। संस्कृत भाषा में 'ण' से प्रारंभ होने वाले शब्दों का अभाव है, किंतु धातु पाठ में कुछ धातु ऐसी हैं जिनका प्रथम अक्षर ण है। वस्तुतः धातु को ण से लिखे जाने से यह सूचित होता है कि 'न' कुछ उपसर्गों के पूर्व आने से 'ण' के रूप में भी परिवर्तित होता हैं। अव्य०— निपेधार्थक अव्य०, नहीं, मत; (ण० १, ४२; प० च० १, १०, ८)।

णं—अव्य०, १. न, २. इव, मानो (उत्प्रेक्षार्थक) (सं० रा०; महा० ६८, ३; प० च० १, ८, १३)। २. ननु—एक अव्यय जिसका व्यवहार कोई बात पूछने, संदेह प्रकट करने में या वाक्य के आरंभ में किया जाता हो; (ण० १, ७, ६; जंवू० १, १०, १)।

णंगल—पुं० न० (दे० चञ्चू, चोंच; (प० च० ४४, ४०)।

णंचु—न० (सं० नृत्य>णच्च) नृत्य; (सि० २, २)।

णंण—न० (सं० ज्ञान>प्रा० णाण) ज्ञान; (सि० १, २)।

णंतेउर—पुं० (सं० अन्तःपुर) जनान खाना, जनाना या भीतरी महल, रनिवास; (व० ३, २०, ६)।

√णंद—(सं०√नन्द्>प्रा० णंद) आनंदित होना, खुश होना; (जस० १, २०, ११)। णंदंत—कृ० (सं० नन्दत्) (जस०)।

णंद—पुं० (सं० नन्द) आनंद, हर्ष; (जस० १, ८, ८)।

णंदउ—पुं० (सं० नन्द) (छंदशास्त्र में) स्कंधक का एक भेद; (प्रा० पैं० १, ७५)। टि०—स्कंधक के सत्ताइस भेद होते हैं—नंद, भद्र, रोष, सारंग, शिव, ब्रह्मा, वारण, वरुण, नील, मदनताटंक, शेखर, शर, गगन, शरभ, विमति, क्षीर, नगर, नर, स्निग्ध, स्नेह, मद्कल, भूपाल, शुद्ध, सरित, कुंभ, कलस, ससि।

णंदण—पुं० १. (सं० नन्दन) पुत्र; लड़का; (जस० १, २३, २)। २. राजा; (व० १, ७, ४)। ३. (दे०) भृत्य, नौकर; (दे० ना० मा० ४, १८)। वि० आनंददायक; (व० १, १, ४)।

णंदणवण—न० (सं० नन्दनवन>प्रा० णंदणवण) उद्यान-विशेष; (जस० १, ११, ११)। णंदणवणु; (पाहु०)।

णंदा¹—स्त्री० नंदा, रड्डा छंद एक भेद; (प्रा० पैं० १, १३६)। टि०—रड्डा छंद के सात वस्तु भेद हैं—करभी, नंदा, मोहिनी, चारुसेना, भद्रा, राजसेना, तार्टकिनी।

णंदा²—स्त्री० (दे०) गो, गैया; (दे० ना० मा० ४, १८)।

णंदिक्ख—पुं० (दे०) सिंह, मृगेंद्र; (दे० ना० मा० ४, १९)।

णंदिणि—स्त्री० (सं० नन्दिनी) गो, धेनु;

(जस० १, २१, ३; दे० ना० मा० ४, १८)।

णंदिय—वि० (सं० नन्दित) आनंदप्रद; (जस० १, २, २)।

णंदिवद्धणु—पुं० (सं० नन्दिवर्धन) राजा-विशेष-नाम; (व० १, ५, १)।

णंदिसरु—पुं० नन्दीश्वर, द्वीप-विशेष-नाम; (व० १०, ९, ६)।

णंदी—स्त्री० (दे०) गौ, गैया; (दे०-ना० मा० ४, १८)।

णंदीयइ—क्रि०, व० निद्रा आती है; (सं० रा०)।

णंदु—पुं० (सं० नन्द) राजा नंद का पुत्र; (व० २, ३, ३)।

णअ—वि० (सं० नव>प्रा० णव) नया, नूतन; (प्रा० पैं० २, १४४; क० ४, १३, ९)। वि० (सं० नत>प्रा० णय) प्रणत, जिसने नमन किया हो वह; (क०)।

णअण—न० (सं० नयन>प्रा० णयण) नेत्र, आँख; (प्रा० पैं० १, ९९)।

णअणाइँ—न०, ब०; (प्रा० पैं० १, ९९)।

णअर—पुं० (सं० नगर) कस्वे से बड़ी और समृद्ध बस्ती, पुर, शहर, (प्रा० पैं० १, ५५; की० २, ९)।

णअरु—पुं० (छंदशास्त्र में) स्कंधक का एक भेद; स्कंधक के सत्ताइस भेदों में से एक भेद 'नगर'; (प्रा० पैं० १, ७५)।

णइँ—अव्य० निश्चयसूचक अव्यय, "थियइं रयण (इँ) णइँ वेण्णि वि जणइँ रज्जु स इं भुञ्जन्तइँ" —दोनों ही दिन-रात राज्य का स्वयं उपभोग करते हुए रहने लगे, (प० च० १२, १२, १०)।

णइ—स्त्री० (सं० नदी>प्रा० णई) का नदी; (क० १, ३, ३; जस० २, ९, ६)। —वाह पुं०(सं० नदी प्रवाह) नदी प्रवाह या बहाव; (जस० ३, ४, १४)।

णइमासय—न० जल में उत्पन्न कोई फल (जलोद्भवः फलभेदः); (दे० ना०-मा० ४, २३)।

णईस—पुं० (सं० नदीश) समुद्र; (व० १, ११, ११)।

णईसरा—पुं० (सं० नदीश्वर) महास-मुद्र; (व० १, ६, १)।

णउ—अव्य० (सं० न तु) नहीं; (प०-च० १, ३, ९; ण० १, ४, २)।

णउ—(सं० नृप) राजा; (सि० २, ७, २९)।

णउइ[1]—वि० (सं० नवति) नब्बे।

णउल—पुं० (सं० नकुल) न्यौला; (जस०)।

णउरहिउ—वि० (सं० नयरहित) नय विहीन, नीतिनिहीन; (व० २, ९, १४)।

णउसालि—स्त्री० (सं० नाट्यशाला) नाटकगृह; (व० ९, २३, २)।

णए—पुं० (सं० नय>प्रा० णय) नीति; (व० १, १३, १)।

णक्क—पुं० (दे०, प्रा० णक्क) नाक, नासिका; तुल० म० नाक; (ण० ९, ९, १, दे० ना० मा० ४, ४६; सं० रा०)।

णक्क—पुं० रावण का एक स्वनाम ख्यात सुभट; (प० च० ५६, २८)।

णक्कुड—पुं० नकुंट, छंद-विशेष; (प०-च० २३, १, ७)।

णक्ख—पुं० (सं० नख>प्रा० णक्ख) नख, नाखून; तुल० गु० नख; (प० च० १४, ५, ७; जस० १, १७, १३)।

णक्खत—पुं०(सं० नक्षत्र>प्रा० णक्खत्त पुं० न०) कृत्तिका, अश्विनी, भरणी आदि ज्योतिष्क विशेष; (प० च० १३। १२। ६; जस० २, २३, १०)। णक्खत्तु; (व० ६, ६, १२)।

णक्खत्तणेमि—पुं० (सं० नक्षत्रनेमि) विष्णु; (दे० ना० मा० ४, २२)।

णक्खत्तराइ—पुं० (सं० नक्षत्रराज) चंद्रमा; (व० १, ३, ४)।

णग—पुं० (सं० नग>प्रा० णग, णय) पर्वत, (प० च० १८, ७, ७)।

णगण—पुं० नगण, (सर्वलघु वर्णिक (।।।); (प्रा० पैं० १, ३५)।

णगणिआ—स्त्री० नगणिका, छंद का नाम; (प्रा० पैं० २, ३१)।

णग्ग—वि० (सं० नग्न>प्रा० णग्ग) नंगा, वस्त्र-रहित (जस० २, १८, ८)।

णग्गी—वि० स्त्री० नग्ना, नग्न स्त्री; (जस० १, ६, ६)।

णग्गुड—वि० (सं० नग्न>प्रा० णग्ग) नगोड़ा; "धणु दितउ भंडहँ णग्गुडाहँ;" अर्थात् भाँड़ों और नगोड़ों को धन बाँटता हुआ; (क० ८, १५, ५)।

णग्गुडि—पुं० वंदी जन, भाट; (जस० १, २७, १)।

णग्गोग्ग—वि० (सं० नग्न+उग्र) नग्न और तीव्र, "णग्गोग्गखग्ग" नग्न और तीव्र तलवार; (ण० १, ६, ७)।

णग्गोह—पुं० (सं० न्यग्रोध>प्रा० णग्गोह) वृक्ष-विशेष, वड़ का पेड़; (ण० १, १३, ७; जस० १, १२, १४)।

√णच्च—(सं०√नृत्>प्रा० णच्च) नाचना; (सं० रा०)। —इ व० (सं० नृत्यति>प्रा० णच्चइ); (प्रा० पैं० १, १६६; ण० १, ७, १)। णच्चंत—कृ० (सं०√नृत्+शतृ); (व० ४, ३, १४)। णच्चावइ-प्रेरणार्थक क्रि०, (सं० नर्तय्) नचाना; (जस० १ ५, १८)।

णच्चण—न० (सं० नर्तन>प्रा० णच्चण) नाच, नृत्य; (जस० २, १०, ६)।

णच्चवियय—वि० (सं० नर्तित>प्रा० णच्चाविअ) नचाया हुआ; (ण० २, ६, ६; प० च० ११, ७, ६)।

णच्चिअ—वि० (सं० नर्तित>प्रा० णच्चाविअ) नचाया हुआ; (ण० ५, १२, १२)। णच्चिय; (जस० १, १४, १०)।

णच्चिर<वि० (सं० नृत्+इर) रमणशील; (क० १, १७, ६; दे० ना० मा० ४, १८)।

णच्छिउ—क्रि०, आ० (सं० नश्यतु) नाश करे; (भ० १०, ४, ७)।

√णज्ज—(सं०√ज्ञा>प्रा० णज्ज) —इ (सं० जानाति) १. जानना, सीखना; (सुदं० २, २, १०)। २. ऐसा मालूम होता है; (सं० रा०)।

णज्जर—वि० (दे०) मलिन, मैला; (दे० ना० मा० ४, १८)।

णज्झर—वि० (दे०) निर्मल, विमल; (दे० ना० मा० ४, १६)।

णट्ट—न० (सं० नाट्य>प्रा० णट्ट न०) १. नृत्य, गीत और वाद्य, नटों का काम; (ण० ६, ६, ६)। २. नाट्य; (जस० १, १६, २)। ३. कूटद्यूत; (प०-च० ४५, १२, ८)।
णट्टमालि—पुं० णट्टमालि नामक देव-विशेष; (व० ७, १३, ६)।
णट्टारम्भ—पुं० (सं० नाट्यारम्भ) नाटक का आरम्भ; तुल० गु० नाटारम्भ; (प० च० २, ६, ६)।
णट्टावय—वि० (सं० नर्तक>प्रा० णट्टावअ) नचाने वाला; (प० च० ११, ७, ६)।
णट्टावयघर—पुं० (सं० नाट्यगृह> प्रा० णट्टघर) नृत्यशाला; (प० च० १४, १२, ८)।
णट्ठ—वि० (सं० नष्ट>प्रा० णट्ठ) नाश-प्राप्त, नष्ट, अपगत; (ण० ३, १४, ४; सं रा०)। —मअ वि० नाशित; (ण० ६, ७, १०)।
णट्ठासणिल्लु—वि० [सं० नष्ट+आसन +इल्ल (मत्वर्थे)] जो सिंहासन से च्युत हो गया हो; (ण० ४, १३, ५)।
√णड - (सं०√नृत्) नाचना, अभिनय करना।—इ व० (सुदं० ११, १२, ६)।
णडेइ—व० (सुदं० २, १०, १३)।
णडंति—कृ० स्त्री० में (सं० नट्+शतृ) (सुदं० २, १२, ४)। णडमाण—कृ० (सं० नृत्+शानच्) नृत्य करती हुई; (व० २, १४, ३)।
णड—पुं० (सं० नट>प्रा० णट्ट) नट; नर्तकों की एक जाति; (सं० रा०; महा० ६६, १६, ११)।

णडिअ—वि० (दे०) वंचित, विप्रतारित, खेदित; (सुदं० २, ११, ४)।
णडिय—वि० (दे०) वञ्चित) (ण० २, १२, ११)। णडिओ—वि० वंचित (दे० ना० मा० ४, १८)। वि० (प्रा० √णड=व्याकुल होना) व्याकुलीकृत; (प० च० ३३, ११, ३)।
णडुअ—वि० (दे०) छलित, वंचित; (व० २, ६, ४)।
णडुली—स्त्री० (दे०) कच्छुआ, कच्छप; (दे० ना० मा० ४, २०)।
णड्डरी—स्त्री० (दे०) भेक (१. मेढक, २. डरपोक मनुष्य) ३. बादल; (दे०-ना० मा० ४, २०)।
णड्डुली—देखो णडुली (दे० ना० मा० ४, २०)।
णगणिदि—स्त्री० शब्दानुकृति; (प्रा०-पैं० १, २०४)।
णण्डिक्क—पुं० व्याध; (प० च० ३०, २, ३)।
णण्ण—वि० (सं० न+अन्य>प्रा० ण +अण्ण, अण) अन्य कोई नहीं, कोई दूसरा नहीं; (जस०)। णण्णु; (ण० ८, ५, ६)। पुं० नग्न, पुरुष-विशेष-नाम; (जस० १, १, ४)।
णण्ह—वि० (दे०) सूक्ष्म; "णण्हरोमावली-कण्णसंसग्गओ;" अर्थात् उसकी रोमावली सूक्ष्म थी और कानों का परस्पर संसर्ग हो जाता था; (क० ८, २, ६)।
णतिसिर—स्त्री० नतशिरा, दिक्कुमारी, स्त्री-विशेष-नाम; (व० ६, ५, ७)।
णत्ताहं—न० (सं० नक्त+अहन्>प्रा०

णत न० + अह न०) दिन-रात; (ण० ५, १०, १६)।

णत्ति—स्त्री० (सं० नप्त्री > प्रा० णत्ती) नाती, पोता; (जस० ३, ८, ३)। वि० (सं० न + अन्य) अन्य कोई नहीं; (जस०)।

णत्थ—स्त्री० (सं० नस्त = नाक का छेद) नासारज्जु; तुल० ओ० नथ, पं० नत्थ, गु० नथ (nose-ring), (प० च० ४७, १, ११)।

णत्थदंड—पुं० (सं० अनर्थदण्ड) त्रुटि-पूर्णदण्ड; (प्रा० गु० १८, १०)।

णत्थि—अव्य० (सं० नास्ति > प्रा० णत्थि) अभावसूचक अव्यय, तुल० गु० नथी, (प० च० १६, १२, ३; ण० १, १३, ६; सं० रा०)।

णदि—स्त्री० (सं० नदी > प्रा० णई) नदी; (प्रा० पैं० १, ६)।

णद्द—पुं० (सं० नाद) शब्द, ध्वनि, आवाज; (क० ६, २, २; की० ४, ३७; ण० ७, १२, २)।

णद्दिअ—वि० (दे०) दुःखित; (दे० ना० मा० ४, २०)।

णन्दण—पुं० (सं० नन्दन > प्रा० णंदण) पुत्र, लड़का; (प० च० ३, १३, ३)। स्त्री०-णन्दणी (प० च० १०, १, ५)।

णन्दणवणिय—वि० (सं० नन्दनवनिक) उद्यानपाल, वनपाल; (प० च० ३३, ३, ७)।

णन्दावत्त—पुं० नन्दावर्त, नगर-विशेष-नाम; (प० च० ३०, १, ३०)।

णन्दुखारी—पुं० नगर-विशेष-नाम; (प० च० ४५, ४, ६)।

णमग्ग—न० (सं० नभः + अग्र > प्रा० णभ + अग्ग = आकाश का ऊपर का भाग) आकाश, "भोयसएहिँ णमग्गे, कंतहेँ णेहइँ लग्गो;" अर्थात् वह आकाश में उड़ता और अपनी कांता के स्नेह में लगकर; (क० ८, ३, २)।

√णम—(√सं० नम् > प्रा० णम, णव) नमना, नवँना। —इ व० (सं० नमति) राज० नम्वो, नवँवो, नमवो-नम्वो; (प्रा० पैं० १, ६)। णमन्त—व० कृ०; (प० च० १, ८, १२)। णमेइ—व० झुक जाना; (रि० १०३, १५)। णवयारिवि—पू० का० क्रि०, नमस्कृत्य; (जस० १, २७, १०)। णविवि—पू० का० क्रि०, नमन करके; (ण० १, ८, १२; महा० ६८, ६, १०)। णवेप्पिणु—पू० का क्रि०, नमस्कार करके; (सुअंव १, १)। णाविऊण—पू० का० क्रि०, झुकाकर; (व० ८, १० ११)।

णमसिअ—न० (दे०) मनौती; (दे० ना० मा० ४, २२)।

णमि—पुं० नमि, नृप-विशेष; (व० २, १३, १०)। २. नमिनाथ नामक तीर्थंकर (व० १, १, १३)। —राय पुं० नमि राजा; (व० ४, ७, ८)।

णमिय—वि० (सं० नमित > प्रा० नमिअ) नमाया हुआ; (प० च० २, ६, ६; क० ३, २०, ८)।

णमोक्कार—पुं० (सं० नमस्कार > प्रा० णमोक्कार) नमन, प्रणाम; (प० च० ६, १०, १)।

णम्मय—स्त्री० (सं० नर्मदा > प्रा०

णम्मया) नर्मदा, नदी-विशेष-नाम; (प०-च० २७, १, १) । —ा (णम्मया) स्त्री। नर्मदा नदी; (प० च० ४८, ६, ४) ।

णय—पुं० (सं० नय>प्रा० णय) न्याय, नीति; (प० च० १, ६, १) । २. (सं० नद) नदी; (व० ३, ८, १३) । ३. नीतिशास्त्र; (जस० २, ५, ६) । ४. पुं० राजपुत्रनाम-विशेष; (जस० ४, ८, १) । वि० (सं० नत>प्रा० णय) प्रणत, नमा हुआ; (ण० १, ११, ३; जस० १, १, २) । —मग्ग पुं० (सं०-नय+मग्ग) नीतिमार्ग; (की० ३, १४१) ।

णयणंजण—पुं० (सं० नयनाञ्जन) नेत्रों में लगाया जाने वाला अंजन; (जस० ४, २, १६) ।

णयणंसु—पुं० (सं० नयन+अश्रु) नेत्रों के आंसू, (जस० ४, १, २) ।

णयण—पुं० नयन>प्रा० णयण) नेत्र; नयन, आंख; (जस० १, ६, १०; व० १, १, १३) । —उल्ल (स्वार्थे प्र०) (जस० २, ६, ५) । णयणु; (व० १० ८, ५) ।

णयणकडक्ख—पुं० (सं० नयन+कटाक्ष) तिरछी नजर, (look at with a side glarce) । —इ व० (प० च० ३८, १३, ६) । णयणकडक्खें वि—पू०-का० क्रि०, (प० च० ३७, ७, ७) ।

णयणकडक्खिय—वि० तिरछी चितवन से देखा हुआ; (प० च० २३, १३, ६) ।

णयणाणंदण—वि० (सं० नयन+नन्दन) नयनों को आनंदित करने वाला; (व० १, ७, १२) ।

णयणाणंदयरु—वि० (सं० नयनानन्दकर) नेत्रों को आनंद देने वाला; (रि० २, १) ।

णयणामेलय—पुं० (सं० नयन+मेलक) दृष्टि मिलन; (प० च० ३१, १२, १०) ।

णयणिट्ठ—वि० (सं० नयन+इष्ट) नेत्रों के लिए प्रिय; (जस० २, १, १८) ।

णयमग्गु—पुं० (सं० नय+मार्ग) नीति-मार्ग; (व० १, १७, ४) ।

णयर—पुं० (सं० नगर>प्रा० णगर) शहर, पुर; (सं० रा०; जस० १, ३, १५; ण० ४, ६, ५) । णयरु; (प० च० १२, ३, ८) ।

णयरि—स्त्री० (सं० नगरी>प्रा० णयरी) नगरी, शहर, पुरी; (सुअंध० २, १, १३; व० १, ४, १) ।

णयरोह—पुं० (सं० नय+रोध) दुर्नय; (जस०) ।

णयाणय—पुं० (सं० नय+अनय) नीति और अनीति, न्याय और अन्याय; (जस० ४, ६, ६) ।

णरंग—पुं० (सं० नर+अङ्ग) शरीर; "पइँ जिण णिंदिउ विट्टलु णरंगु" आपने इस दूषित शरीर की निंदा की है; (ण० ८, १०, ४) ।

णर—पुं० (सं० नर>प्रा० णर) मनुष्य; (प० च० १६, १५, ७; ण० १, ६, ११) । —नाह, पुं० (सं० नरनाथ) राजा; (भ०) । —मय मनुष्य रूपी मृग

(व० १, ५, ६)। —वइ पुं० (सं०- नरपति>प्रा० णरवइ) राजा (प० च० ४, १, ६; व० १, ४, १७; ण० ६, २, ६)। छंदशास्त्र में जगण (।ऽ।); (प्रा०- पैं० १, ८७)। —वर पुं० (सं० नर- वर) राजा; (भ०)। —वरिंद, पुं० (सं० नरवरेन्द्र) राजा; (भ०)। —हिय पुं० (सं० नराधिप) नरेश; (भ०)।

णरअ—पुं० (सं० नरक>प्रा० णरय) नारक जीवों का स्थान; (जस० २, ४, १०)। णरउ; (सुदं० ८, ५)।

णरकंत—पुं० णरकन्ता नामक नदी; (व० १०, १६, ३)।

णरकेसरि—पुं० (सं० नरकेसरिन्) विष्णु का चौथा अवतार; (भ०)।

णरजम्म—पुं० (सं० नरजन्मन्) मनुष्य का जन्म; (जस० ४, १६, ३)।

णरणट्ठिय—स्त्री० (सं० नरास्थि) मनुष्य की हड्डियां; (व० ३, २६, ३)।

णरणाह—पुं० (सं० नरनाथ) ऋषभदेव; (व० १, १३, ६)। णरणाहु—पुं० राजा; (जस० १, १६, १६)।

णररत्थिय—स्त्री० (सं० नर+अर्थ) पुरुष की कामना, "सुपसत्थिँ णरत्थिँ अगुज्ज- यहोँ, गय दुट्ठ पासि सा खुज्जयहोँ;" अर्थात् तुमसे अधिक प्रशस्त पुरुष की कामना से वह दुष्टा एक टेढ़े-मेढ़े कुबड़े के पास गई; (जस० २, ६, ६)।

णरयंध-कूव—पुं० (सं० नरकान्ध-कूप) नरक का अंधकूप; (व० १, १६, १०)।

णरय—पुं० (सं० नरक>प्रा० णरग, णरय) वह स्थान जहां बुरे कर्म करने वाले की आत्मा पाप का फल भोगने के लिए भेजी जाती है, दोजख; (जस० २, १६, २७)।

णरयबिल—न० (सं० नरकबिल) छिद्र; (जस० ३, ४१, १२)।

णरयाल—पुं० (सं० नरकालय) नरक का घर या स्थान; (क० ६, ८, २)।

णरवरिंदु—पुं० (सं० नरवरेन्द्र) राजा; (जस० १, ६, २०)।

णराअ—पुं० न० (सं० नाराच>प्रा० णराच, णराअ) छंद-विशेष, वर्णिक छंद का नाम; (प्रा० पैं० २, ६८)। [टि०- नाराच छंद में एक-एक लघु के पश्चात् एक-एक गुरु होता है तथा प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं।

णराअण—पुं० (सं० नारायण>प्रा० णरायण) विष्णु; (प्रा० पैं० १, २०७)।

णराहिव—पुं० (सं० नराधिप>प्रा० णराहिव) राजा, (क० २, १६, ३)।

णरिंद—पुं० (सं० नरेन्द्र>प्रा० णरेंद) राजा, नर-पति; (क० १, २, ३)।

णरि—स्त्री० (सं० नारी) स्त्री; (सि० १, ३६)।

णरु—पुं० छप्पय छंद का भेद; (प्रा०- पैं० १, १२३)।

णरेस—पुं० (सं० नरेश>प्रा० णरीस) राजा; (भ०)।

णरेसर—पुं० (सं० नरेश्वर>प्रा० णरीसर) राजा; (क० १, १०, ७)। णरेसरु; (महा० ६६, १४, १३)।

णरोहु—पुं० (सं० नर+ओघ>प्रा०

णर+ओघ, ओह) नर समूह; (ण० ८, १६, ३)।

णल—पुं० (सं० नल) राजा-विशेष-नाम; "णल णहुस वेणु मंधाय जे वि;" (जस० १, ६, १०)।

णल—न० (सं० नड) तृण-विशेष, खस का तृण; (दे० ना० मा० ४, १६)।

णलिण—न० (सं० नलिन>प्रा० णलिण) रक्त कमल; (जस० १, २३, ६)।

णलिणी—स्त्री० (सं० नलिनी>प्रा० णलिणि) कमलिनी; (सु० ८, ४)। —वइ पुं० (सं० नलिनीपति) सूर्य; (व० ७, १४, ५)।

णलियं—पुं० (दे०) गृह, घर, मकान; (दे० ना० मा० ४, २०)।

णलो—पुं० (सं० नलः) (छंदशास्त्र में) स्कंधक का भेद; (प्रा० पैं० १, ७४)।

णव—(सं० नव>प्रा० णव) नवीन, नया, नूतन; (प्रा० पैं० १, १३५)। —रंग पुं० छप्पय छंद का भेद; (प्रा०-पैं० १, १२३)।

णव—(सं०√नम्>प्रा० णम, णव) नमन करना; (जस० १, ८, ६) —इ व० (सं० नमति>प्रा० णवइ) (क० ३, २, ६)। णवन्त—कृ० (प० च० ७, ६, ६)। —वेवि पू० का० क्रि०; (क० ३, ६, ५)। णाविज्जइ—कर्मवा०; (ण० ८, १०, ७)।

णवइ, णवदि—वि० (सं० नवति) नव्वे; (महा०)।

णवकार—पुं० (सं० नमस्कार>प्रा० णमोक्कार, णवकार) नमोकार मंत्र "णवकारइँ मुणिणा दिण्णएण;" (क० ५, १८, ८)।

णवजुव्वणी—स्त्री० नवयौवना; (सं०-रा०)।

णवणवोत्तर—पुं० (सं० नव-नवोत्तर) नौ अनुदिश स्वर्ग; (व० १०, ३०, १७)।

णवणिय—पुं० न० (सं० नवनीत>प्रा० णवणीअ) मक्खन (जस० ६, २१, ४)। णवणीय; (व० १०, ३, ८)।

णवतरु—पुं० (सं० नव तरु) नवीन वृक्ष; (व० २, ११, १०)।

णवदह, णवरह(¹)—वि० (सं० नवदश) उन्नीस।

णव-पलिउ—पुं० (सं० नव पलित) सफेद या शुभ्रकेश, (व० ८, ७, १२)।

णवमालिय—स्त्री० नवमालिका, दिक्कुमारी, स्त्री-विशेष-नाम; (व० ६, ५, ७)।

णवमासु—पुं० (सं० नव+मास) असाढ़ मास, वर्ष का चौथा महीना; (व० ६, ८, ६)।

णवमि—स्त्री० (सं० नवमी>प्रा० णवमी) नवमी, तिथि-विशेष; "णवमिहिँ दिणि भइ दह-गुणि तुरंत" नवमी के दिन वह पूजा दस गुनी हो गई; (सि० १, १७)।

णवमेह—पुं० (सं० नव+मेघ>प्रा० णवमेह) नए मेघ (ण० ६, २२, ७)।

णवर—अव्य० (दे०) १. केवल, (प०-च० ११, ५, ४)। २. तथापि; 'तउ

करहुं णवर दइवें खलिव,' (मैं वहाँ) तप करूंगा, तथापि दैव ने इसमें भी बाधा डाली, (जस० २, २१, ५)। ३. अनंतर, बाद में; (ण० ४, १२, १)।

णवराउ—पुं० नवराग; (सि० १, १३)।

णवरि—अव्य० (दे०) अनंतर, बाद में; (दे० ना० मा० ४, २०)।

णवरिअ—न० (दे०) सहसा, जल्दी, तुरंत; (दे० ना० मा० ४, २२)।

णवल—वि० [सं० नव>प्रा० णव+ल्ल (स्वार्थे प्र०)] नूतन, नया; तुल० म० नवळ; (क० २, १७, १०)। णवल्ल—वि० (जस० ३, १३, १८)।

णवलया—स्त्री० (दे०) वह व्रत, जिसमें पति का नाम पूछने पर उसे नहीं बताने वाली स्त्री पलाश की लता से ताड़ित की जाती है; (दे० ना० मा० ४, २१)।

णवसियं—न० (दे०) सं० उपयाचितकम्। मनौती; (दे० ना० मा० ४, २२)। टि०—णवसियं को सं नमस्या (पूजा, अर्चना, श्रद्धा, भक्ति) से व्युत्पन्न नहीं माना जा सकता।

णवि—अव्य० (सं० नापि>प्रा० णवि) वैपरीत्य सूचक अव्यय, निपेधार्थक अव्यय; (दे० ना० मा० ४, १८)।

णविय—वि० (सं० नमित>प्रा० णमिअ, णविअ) प्रणत, जिसने नमन किया हो वह; (ण० १, १६, ७)।

णवोद्धरण—न० (दे०) उच्छिष्ट, जूठा; (दे० ना० मा० ४, २३)।

णव्वाउत्त—पुं० (दे०) १. ईश्वर, धनाढ्य, भोगी; २. नियोगी का पुत्र; (दे० ना० मा० ४, २२)।

√णस—(सं० नश्यते) नष्ट होना; (प्रा० पैं० १, ३७)।

णहंत—न० (सं० नभस्+अन्त) आकाश का अखीर; (जस० १, १६, १४)।

णह—पुं० (सं० नभस्>प्रा० णह) आकाश, गगन; (प्रा० पैं० १, १०६; की० ४, १८६)। पुं० (सं० नख>प्रा० णक्ख) नख, नाखून; (सं० रा०; जंबू० ८, १३; ण० १, ११, ३)।

णहग्गु—पुं० (सं० नभस्+अग्र) आकाश का अग्र भाग; (व० १, ४, ८)।

णहणिय—स्त्री० (दे०) नटिनी, नर्तकी; (सं० रा०)।

णहयल—पुं० (सं० नभस्तल) आकाश का निचला भाग; (जस० ४, १२, ६)।

णहमणि—स्त्री० १. (सं० नभस्+मणि) सूर्य; (प० च० २, ६, ८) २. (सं० नख+मणि) नख रूपी मणि; (व० १, ६, ५)।

णहमुह—पुं० (दे०) उल्लू; (दे० ना० मा० ४, २०)।

णहयर—वि० (सं० नभश्चर) आकाशगामी; (ण० १, १७, ३; जस० १, ७, ६)।

णहयल—पुं० (सं० नख+तल>प्रा० णक्ख+तल, यल) नाखून का अधोभाग; (ण० १, १७, ३)। पुं० (सं० नभ-

स्तल) आकाश का निचला भाग; (जंस० १, ३, १७; क० २, २१, ८)।
—गामिणिउ वि० (—गामिनी) आकाश तलगामिनी; (रि० १०, २)।

णहर—पुं० (सं० नखर>प्रा० णहर) नाखून; (व० १०, ३२, ४)। —न्ध्र पुं० (सं० नखरन्ध्र) नाखून का छेद; (व० ३, २६, ४)।

णहरी—स्त्री० (देशी शब्द प्रा० णहरी) क्षुरिका, छुरी (दे० ना० मा० ४, १८)।

णहवण—पुं० (सं० नख+व्रण>प्रा० णह+वण पुं० न०) नाखून का घाव; (ण० ३, ११, ४)।

णहवल्लिय—स्त्री० (सं० नभवल्ली> प्रा० णहवल्ली) विद्युत्, बिजली; (सं०-रा०)।

णहसिरि—स्त्री० (सं० नभः+श्री) आकाश की प्रभा; "णं णहसिरि उग्गय-कुंभएण मानो कुम्भ राशि के उदय से आकाश चमक उठा हो, (ण० १, १०, ५)।

ण्हाण—न० (सं० स्नान>प्रा० ण्हाण) नहाना; (प्रा० पैं० २, १८६)। —इउ वि० नहाए हुए; (प० च० १३, ६, ७)।

णहि—अव्य० (सं० नहि>प्रा० णहि) निषेधार्थक अव्य० नहीं, (प्रा० पैं० १, ३७)।

णहु—अव्य० (सं० न खलु) निषेधार्थक अव्यय, नहीं; (कौ० ३, १०८; सं०-रा०)।

णहुस—पुं० (सं० नहुष) अयोध्या के एक प्राचीन इक्ष्वाकुवंशीय राजा का नाम जो अंबरीष का पुत्र और ययाति का पिता था; (जस० १, ६, १०)।

√णा—(सं० ज्ञा>प्रा० णा) जानना, समझना; (जस० १, १५, १)। —यउं भू० का०, ज्ञान प्राप्त किया; (रि० १, २)।

णा—अव्य० (सं० न>प्रा० णा) निषेध-सूचक अव्यय, नहीं; (प्रा० पैं० २, ८६)।

णाअ—पुं० (सं० न्याय) नीति, औचित्य; (जस० ३, २५, १४)।

णाअ—पुं० (सं० नाग>प्रा० णाग) सर्प; (प्रा० पैं० १, ६१)।

णाअक्क—पुं० (सं० नायक>प्रा० णायग) नेता, मुखिया, अगुआ; (प्रा०-पैं० १, ३८)।

णाअर—वि० (सं० नागर) नगरवासी, विदग्ध, प्रवीण, रसिक; (कौ० १, २६)। २. सभ्य व्यक्ति; (प्रा० पैं० २, १८५)।

णाअरि—स्त्री० (सं० नागरी) नगरवासी स्त्री; (प्रा० पैं० २, १०५)।

णाइं—अव्य० १. इव, मानो; (महा० ६६, १२, १४)। २. नाईं, समान; (क० १, ६, ६)।

णाइ—अव्य० (दे०) १. समान, उपमा-वाचक शब्द; तुल० राज० नाईं; (प्रा०-पैं० २, १३६)। २. मानो, इव, (ण०-३, १२, ६)।

णाइणि—स्त्री० (सं० नागिनी>प्रा० णाइणी) नागिन, सर्पिणी; (क० १०, १२, १)।

णाइय—वि० (सं० ज्ञात>प्रा० णाय) जाना हुआ, विदित, ज्ञात, "जा जल-कील तेण उप्पाइय, सा अमरेहि मि रमें वि ण णाइय" उसने जो जल-क्रीड़ा की है, वैसी क्रीड़ा देवताओं को भी ज्ञात नहीं; (प० च० १४, ११, ४; रि० १, १२)।

णाउ—पुं० (सं० नामन्) नाम, शब्द जिससे किसी व्यक्ति, वस्तु या समूह का ज्ञान प्राप्त हो; (प० च० २, १७, ८; ण० ४, १३, ६)। पुं० (सं० नाग>प्रा० णाग, णाय) सर्प; (रि० ४)।

णाउल्ल—वि० (दे०) जिसके पास अनेक गाय हों; (दे० ना० मा० ४, २३)।

णाओ—वि० (दे०) अत्यधिक अहंकारी (गर्विष्ठः); (दे० ना० मा० ४, २३)।

णाग—पुं० (सं० नाग>प्रा० णाग) सर्प; (व० ८, १६, २)।

णागदत्त—पुं० नागदत्त, व्यक्ति-विशेष-नाम; (जस० ४, २८, २)।

णागपास—पुं० (सं० नागपाश) ऐंद्र-जालिक फंदा, जो युद्धकाल में शत्रु को फँसाने के लिए व्यवहृत किया जाता था; (प० च० २०, ५, २)।

णागय—वि० (सं० न+आगत) नहीं आया हुआ, (जस० २, ७, २)।

णाडउ—न० (सं० नाटक>प्रा० णाडग, णाडय) नाटक, अभिनय; (सि० १, १७)।

णाडय—न० (सं० नाटक>प्रा० णाडग, णाडय) अभिनय, नाट्य-क्रिया; (ण० २, ६, ५)। २. नर्तन; (प० च० २७, १२, ८)।

णाडि—स्त्री० (सं० नाडि>प्रा० णाडि) नाड़ी, नस, सिरा; (सि० २, ६)।

णाडिज्जन्ति—क्रि०, व० अभिनय करना, "वम्मह-णड णाडिज्जन्ति (?) के वि"—वामन और नट की तरह कोई अपना अभिनय कर रहे थे; (प० च० ७, २, ५)।

णाणंकुसिउ—न० (सं० ज्ञान+अंकुशित>प्रा० णाण न०+अंकुसइय न०) ज्ञान का अंकुश; "मणवारणु तें णाणंकुसिउ," उसे ज्ञान के अंकुश से रोका, (ण० ६, ५, ३)।

णाण—न० (सं० ज्ञान>प्रा० णाण) ज्ञान, बोध; (प० च० ७, १०, ६; म० २, ७, ७; ण० १, १२, १०)। —तेअ पुं० (सं० ज्ञान+तेजस्>प्रा० णाण+तेउ) ज्ञान का प्रकाश; (ण० १, ६, ३)। णाणु; (सि० १, १७)।

णाणत्तए—पुं० (सं० ज्ञानत्रय) मति, श्रुति और अवधि रूप तीन प्रकार का ज्ञान; (व० ६, ८, ७)।

णाणमअ—वि० (सं० ज्ञानमय) ज्ञान से युक्त; (जस० ३, २८, ११)।

णाणा—वि० (सं० नाना>प्रा० णाणा) अनेक, अनेक प्रकार के, विविध; (जस० ४, ७, ४)। —विह वि० (—विध) विविध, अनेक प्रकार का; (जस० १, १०, १०)। —हिणाण पुं० (सं० नाना+अभिज्ञान प्रा० णाणा+अहिणाण) अनेक ज्ञान रूप; "महापंचकल्लाणणाणा-हिणाणो," आपके पाँच महाकल्याणक रूप हुए हैं। आप ज्ञान रूप हैं,' (ण० २, ११, २)।

णाणि—वि० (सं० ज्ञानिन् > प्रा० णाणि) ज्ञानी, जानकार; (जस० २, १२, २०)। णाणी; (ण० २, ३, १३)।

णातियउ—पुं० (सं० नप्त्री > प्रा० णत्ती) नाती, लड़की या लड़के का लड़का; (सि० २, ३)।

णाभि—पुं० (सं० नाभि > प्रा० णाभि) नाभि, पेट का मध्यभाग; (सि० १, १)।

णाम—न० (सं० नामन् > प्रा० णाम) नाम, आख्या, अभिधान; (जस० १, २, १३)। णामाइँ—न०, ब०; (प्रा० पैं० १, ८६)।

णामोक्किसियं—न० (दे०) कार्य, काम; (दे० ना० मा० ४, २५)।

णाय—पुं० (सं० नाग > प्रा० णाग, णाय) १. नाग, सर्प, सांप; (ण० ३, ५, ३; सं० रा०)। २. हाथी; (प० च० १६, ४, ६, १२, ३, ७)। ३. (सं० न्याय > प्रा० णाय) न्याय, नीति; (ण० ६, २, ६)। ४. (सं० नाद > प्रा० णाय) शब्द, आवाज; (ण० ६, १८, ४)। —पास पुं० (सं० नागपाश) शत्रु को बांधने के लिए एक प्रकार का बंधन का फंदा; (व० ४, ७, १२)।

णायअ—वि० (सं० ज्ञायक) जानकार; (ण० ४, २, ११)।

णायकण्ण—स्त्री० (सं० नागकन्या) नाग जाति की कन्या; (जस० १, २५, १०)।

णायकु—पुं० (सं० नायक > प्रा० णायग) नेता, मुखिया, अगुआ; (परमा०)।

णायकुमार—पुं० नागकुमार नाम का देव; (क० १०, ३, १)।

णायदत्त—स्त्री० नागदत्ता नामक स्त्री; "सो णायदत्तघरिणिएँ सणाहु; अर्थात् वही नागदत्ता गृहिणी का पति हुआ; (क० १०, १०, ६)।

णायभंगु—पुं० (सं० न्याय भंग) न्याय का उल्लंघन; (महा० २२-३)।

णायर—वि० (सं० नागर > प्रा० णागर, णायर) १. नागरिक, नगर का निवासी २. नगर संबंधी; (सं० रा०; ण० १, ६, ११)। —णरा पुं० (सं० नागर-नर > प्रा० णायरणर) नागरजन; (व० १, ८, ११)।

णायवंत—पुं० नागवन्त, नागों का निवास; "अहवा पायालु व णायवंतु;" अतएव वह उस पाताल के समान था, जहाँ नागों का निवास है; (सुदं० २, ३, ७)।

णायवासु—पुं० (सं० नागपाश) शत्रु को बांधने के लिए एक प्रकार का बंधन या फंदा; (रि० ३, ८)।

णायवेल्लि—स्त्री० (सं० नागवल्ली) नागवेल, पान की बेल, तांबूल-लता; (व० १, ३, १०)।

णायसंडु—पुं० नागरखण्ड नामक वन, "वणु णायसंड णामेण एवि;" (व० ६, २०, १)।

णारइय—वि० (सं० नारकीय) नरक संबंधी; (जस० २, २८, ३)।

णारओ—पुं० (सं० नारक > प्रा० णारग, णारय) नरक के जीव, प्रेतात्मा; (को० २, १६०)।

णारय—वि० (सं० नारक >प्रा० णारग, णारय) नरक में उत्पन्न; (ण० १, १२, १०)। पुं० नरक-लोक; (क० ६, ८, २)।

णाराय—पुं० न० (स० नाराच>प्रा० णराच, णराअ) लोहमय वाण; (व० ५, १६, ८)। —राइ स्त्री० (सं० नाराच-राजि) वाण पंक्ति; (व० ५, ५, १२)।

णारायण—पुं० (सं० नारायण>प्रा० णारायण) राजा-विशेष; (ण० ७, ८, ७)। णारायणु—पुं० श्रीकृष्ण; (रि० १, ३)।

णारि—स्त्री० (सं० नारी>प्रा० णारी) स्त्री, औरत, महिला; (व० २, १०, २)।

णारियर—पुं० (सं० नालिकेर>प्रा० णारिएर) नारियल; (सि० १, २)।

णारी—स्त्री० (सं० नारी>प्रा० णारी) (।) स्त्री; २. सर्वलघु त्रिकल गण (।।।) का नाम णरीअं (नारीणं); (प्रा० पैं० १, २०)। ३. नारी नामक नदी; (व० १०, १६, ३)।

णारोट्ट—पुं० (दे०) विल, विवर, सांप आदि के रहने का स्थान; (दे० ना० मा० ४, २३)।

णालंद—पुं० (सं० नालन्दा) नगर-विशेष; (क० १०, १०, ६)।

णालंपिअ—न० (दे०) आक्रंदित, आक्रंद-ध्वनि; (दे० ना० मा० ४, २४)।

णालंवि—पुं० (दे०) कुंतल, केश-कलाप; (दे० ना० मा० ४, २४)।

णालिच—पुं० (दे०) नालिच, एक प्रकार की हरी साग; (प्रा० पैं० २, ६३)।

णाव—स्त्री० (सं० नौ>प्रा० णावा) नौका, तुल० गु० राज० नाव; (प० च० १३, १२, ५; परम० २, १०५)।

णावइ—अव्य० १. मानो, इव (उत्प्रेक्षा-र्थक); (सुदं० २, ११, १७; ण० १, ७, ६; प० च० २, २, ६)। २. निश्चय (हे० ३३१)। क्रि० (सं० न+आयाति); (ण० २, ५, १४)।

√णास—(सं०√नाशय्>प्रा० णास) नाश होना; (जस० १, १०, १०)। —इ व० (सं० नश्यति>प्रा० णस्सइ) नष्ट होना; (प० च० २, ६, ४)। णासन्त—कृ० (प० च० ३, २, १०)। णासाहों—आ०, व० (प० च० ८, ११, १)। णासिज्जइ—कर्मवा० (ण० ३, ३, १०)।

णास—पुं० (सं० नाश>प्रा० णास) नाश, ध्वंस; (जस० २, १७, १६; क० २, २६, ५)। पुं० (सं० न्यास>प्रा० णास) स्थापन; (म० २, ४, १३)। स्त्री० (सं० नासा>प्रा० णासा) नाक, घ्राणेंद्रिय; (प० च० १४, १३, ७)। "णिवेसिय लोयण णासपएसि;" अर्थात् उनके लोचन नासिका-प्रदेश पर निवेशित थे; (क० २, ३, ६)। —उडि स्त्रीं० नासापुटी; (जस० ३, ६, ११)।

णासिय—वि० (सं० नाशित>प्रा० णासिय) नष्ट किया हुआ; (क० २, २१, ३)।

णासिया—स्त्री० (सं० नासिका>प्रा०

णासिगा) नाक, घ्राणेंद्रिय; (ण० ७, १३, ३)।

णाह—पुं० (सं० नाथ>प्रा० णाह) स्वामी, मालिक; (सं० रा०; म० १, १६, ५; ण० १, १२, १)। णाहु; (महा० ६८, ५)।

णाहल—पुं०(सं० लाहल)अरण्य चांडाल, एक जाति; (जस० ३; २७, ६)।

णाहिं—अव्य० (सं० नहि) नहीं, नाहीं; तुल० गु० नाहिं, म० नहिं (प० च० १, ३, १)। णाहि—अव्य० नहीं; (सरहपा, दोहाकोश)।

णाहि—स्त्री० (सं० नाभि>प्रा० णाभि, णाहि) सूंडी, तुंदी, पेट के मध्य में वह चिह्न या गड्ढा जहाँ गर्भावस्था में जरायुनाल जुड़ा रहता है; (क० १, १६, ६)। पुं० १. गाड़ी का एक अवयव, २. मुख्य, प्रधान; ३. स्वनाम ख्यात एक कुलकर पुरुष, भगवान् ऋषभ का पिता; (सं० रा०)।

णाहिदामं—न० (दे०) वितान के बीच की रस्सी (उल्लोचमध्यदाम); (दे० ना०-मा० ४, २४)।

णाहिविच्छेअ—पुं० जघन, कटी के नीचे का भाग; (दे० ना० मा० ४, २४)।

णिंद—स्त्री० (सं० निद्रा>प्रा० णिद्दा) निद्रा, नींद; (जस० ३, २०, ६)।

√णिंद—(सं०√निन्द्>प्रा० णिंद) निंदा करना; (जस० २, ६, १०)।

णिंदण—पुं० (सं० निन्दन) निंदा करने का काम; (जस० ३, ३६, २)।

णिंदमग्ग—पुं० (सं० निन्द्य+मार्ग) निंदनीय रास्ता; (जस० १, ६, ६)।

णिंदायर—वि० (सं० निन्दाकर) निंदक, "कइणिंदायरि;" कवियों के निंदक; (जस० ४, ३१, ७)।

णिंसियर—पुं० (सं० निशाचर) राक्षस; (महा० ६६, २, ६)।

णिअंसण—न० (दे०) वस्त्र; (दे० ना०-मा० ४, ३८)।

√णिअ—सं० दृश्। देखना। —इ व० (दे० ना० मा० ४, ३८)। णिइवि—पू० का० क्रि०, देखकर; (भ०)। —एइ सक० "वणरिद्धिहें कारणु सो णिएइ' (वनपाल) वन की ऋद्धि के कारण की खोज लगाने लगा; (क० १, १५, ३)।

णिक्खियउ—भू० का०, प्रकट हुआ; "णंरत्तव कदंउ णिक्खियउ;" अर्थात् जैसे कहीं बोया हुआ लाल अंकुर के रूप में प्रकट हुआ हो; (जस० २, २, ३)।

णियन्ति—क्रि०, व० (प्रा० णिअ, णिअइ) देखना, "ता सयल वि सुहड जा समर-ज्झड णउ णिएन्ति दहवयणहों"—वे सारे योद्धा, रक्त कमल के समान नेत्र वाले रावण की युद्ध की चपेट नहीं देख सकते, (प० च० १२, २, ६)। णियन्त—कृ० (प० च० १०, २, ५)।

णिअ—वि० (सं० निज>प्रा० णिअ) आत्मीय, स्वकीय; (प्रा० पैं० २, १४७)। —कुल पुं० निजकुल; (प्रा० पैं० १, २०७)।

णिअ—(सं० नृप) राजा; (क० ३, १२, ५)।

णिअक्कल—वि० गोल, कुंडलाकार, मंडलाकार, वर्तुल; (दे० ना० मा० ४, ३६)।

णिअत्तय—वि० (सं० निवृत्त>प्रा० णिअट्ट, णिअत्त) १. पीछे हटा हुआ, लौटा हुआ, वापिस आया हुआ, २. इस संसार से विरक्त, ३. समस्त; (सं०-रा०)।

णिअपिअ—पुं० (सं० निज प्रिय) छंद-शास्त्र में द्विलघुद्विकल (॥) का नाम; (प्रा पैं० १, २२)।

णिअम—पुं० (सं० नियम) विधि या निश्चय के अनुकूल प्रतिबंध; (प्रा० पैं १, १२६)।

णिअल—क्रि०, वि० (सं० निकट) समीप; (प्रा० पैं० १, १६३)।

णिउंज—(सं० नि+युज्) जोड़ना, संयुक्त करना, किसी कार्य में लगाना; (जस० ३, १६, ८)। णिउंजिवि—पू०-का० क्रि०, बाँधकर; (ण० ६, १, १)।

णिउंजिय—वि० (सं० नियुक्त) नियोजित, लगाया हुआ; (जस० ३, १०, १४)।

णिउक्क—वि० (दे०) तुष्णीक, मौन रहने वाला; (दे० ना० मा० ४, २७)।

णिउड्ड—(सं० नि+ब्रुड्)डुबकी लगाना, गोता लगाना, स्नान करना।—इ अक० (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णिउण—वि० (सं० निपुण>प्रा० णिउण) दक्ष, चतुर; (महा० ६६, १६, १०; जस० २, ३१, ११)।—यर वि० (सं० निपुणतर) अधिक कुशल; (जस० ३, ३४, १०)।

णिउणमइ—वि० (सं० निपुणमति>प्रा० णिउणमइ) निपुण बुद्धि वाला; (ण० ६, १, ११)।

णिउत्त—वि० (सं० नियुक्त>प्रा० णिउत्त) कार्य में लगाया हुआ; (जस० ३, ६, ११)। णिउत्त; (ण० ६, १५, १०)।

णिउत्त—वि० (सं० निर्+वृत्त= पूर्णता को प्राप्त) निष्पन्न, सिद्ध, दक्ष, चतुर; "सयल-कला-विण्णाणणिउत्तहुँ;' अर्थात् जो समस्त कलाओं और विज्ञान में निपुण थे; (प० च० ५, १०, ४)। टि०–निर उपसर्ग धातु से पहले लग कर उपर्युक्त अर्थ प्रकाशित करता है।

णिउब्भ—वि० (सं० णिर्+उद्भूत) लुब्ध; (ण० ३, १४, ६)।

णिउरुम्ब—न० (सं० निकुरुम्ब>प्रा० णिउरुंब) समूह, जत्था; (प० च० ४, १०, ६)।

णिऊण—वि० (सं० निपुणम्>प्रा० णिउण) चतुर, कुशल; (ण० ६, १७, ७)।

णिओअ—पुं० (सं० नियोग> प्रा० णिओग, णिओअ) १. आवश्यक कर्त्तव्य, २. तप, संयम, त्याग, "पाण जन्ति जइ एण णिओएं" 'यदि इस तप में प्राण जाते हैं,' (प० च० २, १२, ७)।

णिओइय—वि० (सं० नियोजित>प्रा० णिओजिय, णिओइअ) नियुक्त किया हुआ, किसी कार्य में लगा हुआ; (सं० रा०)।

णिक—वि० (फ़ा० नीकह्) नीका, तुल०

राज० नीको; (प्रा० पैं० २, १६१)।

णिकाय—पुं० (सं० निकाय>प्रा० णिकाय) संगठन, श्रेणी, समूह, "चउ-दिसु चउ देव-णिकाय।" (प० च० २, १०, ६)।

णिकिट्ठ—वि० (सं० निकृष्ट) बुरा, अधम, नीच; (क० ६, ६, ८)।

णिकेअ—पुं० (सं० निकेय>प्र० णिकेय) गृह, निवास-स्थान, आश्रय; (ण० १, २, ६; क० ३, ३, ३)।

णिक्कउ—वि० (दे०, प्रा० णिक्क) सुनिर्मल, सर्वथा मल-रहित; (प० च० १७, १८, ४)।

णिक्कज्ज—वि० (दे०) अस्थिर, परिव-तित, असंयत, अनियंत्रित; (दे० ना० मा० ४, ३३)।

णिक्कड—वि०(दे०) कठिन, (दे० ना०-मा० ४, २६)।

√णिक्कम—(सं० निस्+क्रम्) बाहर जाना, निकलना। णिक्कंता—निकालना; (प्रा० पैं० २, ६७)। णिक्करन्तो—कृ० बाहर खींचकर, निकालकर; (की० ४, १६८)।

णिक्कमय—वि० (सं० निष्कर्मन्) जो कार्य में लिप्त न हो; "णिक्कसाय-णिवि-साय णिक्कमय;" (व० १०, ३८, ६)।

णिक्कम्पिरउ—वि० अविचल; (प० च० ६, ६, २)।

णिक्कल—वि० (सं० निष्कल) निःशरीर, जिसका कोई अंग या भाग नष्ट हो गया हो; (जस० ३, २४, ११)।

णिक्कलुण—वि० (सं० निष्करुण) करुणा रहित, निर्दय; (जस० ३, २४, १०)।

णिक्कसाओ—वि० (सं० निर्+कषाय) कषायरहित; सांसारिक पदार्थों में आस-क्ति रहित होना; (वी० १, १)।

णिक्काम—वि० (सं० निष्काम) वह कार्य जो बिना कामना के किया जाए; (जस० २, १७, ५)।

णिक्कारण—वि० (सं० निष्कारण> प्रा० णिक्कारण) कारण-रहित, हेतु-शून्य; (प० च० १६, १५, ७)।

णिक्किउ—वि० (सं० निष्कृपः) कृपा-विहीन; (प० च० ३०, १)।

णिक्किट्ठ—वि० (सं० निकृष्ट) नीच; (जस० २, १६, १८)।

णिक्किवासु—वि० [सं० निः+√कृप् (=कल्पना करना, रचना करना) + असु] प्राणियों के प्रति क्रूर; (व० ३, २७, १)।

णिक्खज्ज—वि० (सं० निष्खाद्य) अखाद्य; (जस० २, ३६, ४)।

√णिक्खण—(सं० निष्+खन्)खोदना। —णिवि पू० का० क्रि०, खोदकर; (क० ५, ८, ८)। णिक्खणेवि—पू० का०-क्रि०, (प० च० ५६, १५, २)।

णिक्खन्त—वि० (सं० निष्क्रान्त>प्रा० णिक्कंत, णिक्खंत) निर्गत, बाहर निकला हुआ; (प० च० १५, ८, ३)।

णिक्खय—वि० १. (सं० निक्षत>प्रा० णिक्खय) प्रहार किया हुआ, निहत, मारा हुआ; "तो भणइ सुकेसु, संसउ णाह जिए-वाहों। सिरें णिक्खएँ खग्गें, अवसरु कवणु रुएवाहों"—तब सुकेश कहता है, "हे स्वामी, जब जीने में संदेह हो और

सिर पर तलवार लटक रही हो, तब रोने का यह कौन-सा अवसर है; (प० च० ७, ८, ८; दे० ना० मा० ४, ३२)। २. (सं० निखात) गड़ा कर रखे हुए, गाड़ा हुआ; (जस० ३, २४, २)।

णिक्खवण—न० १. (सं० निष्क्रमण > प्रा० णिक्खमण, णिक्खवण) निर्गमन, आगे या बाहर जाना; (प० च० २, ११, ४)। णिक्खवणु; (व० १, १६, १२)। २. (सं० निक्षेपन) स्थापन, डालना; (क० १०, २६, १४)। —वेलल स्त्री० (सं० निष्क्रमण + वेला > प्रा० णिक्खवण + वेला) निर्गमन का समय; (व० ६, १६, १)।

णिक्खसरिअ—वि० (दे०) ठगा हुआ, जो लूट लिया गया हो; (दे० ना० मा० ४, ४१)।

णिक्खुड—वि० (दे०) स्थिर; (दे० ना०-मा० ४, २८)।

णिक्खुत्त—वि० (दे०) निश्चित; (प०-च० १८, ३८)।

णिक्खुरिअ—वि० जो दृढ़ न हो, अस्थिर; (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णिगद—पुं० (दे०) घर्म, घाम, गरमी; (दे० ना० मा० ४, २७)।

णिगूढपुरिस—पुं० (सं० निगूढ + पुरुष) गुप्तचर, भेदिया; (प० च० १६, ३, २)।

णिगोय—पुं० (सं० निगोद) नित्य निगोद नामक जीवों का एक प्रकार; (व० १०, ४, ३)। टि०–सिद्ध और संसारी के भेद से जीव दो प्रकार के होते हैं। अपने कर्मों के भार को ढोने वाले जीव संसारी कहलाते हैं। नित्य निगोद, इतर निगोद, वायुकायिक, पृथ्वीकायिक जलकायिक और तेजोकायिक जीव।

णिग्गंथ—वि० (सं० निर्ग्रन्थ > प्रा० णिअंठ) निर्ग्रन्थ, जैन मुनि, संयत; "जायउ णिग्गंथु महत्थु मुणि," वह परामर्थ हेतु निर्ग्रन्थ मुनि बन गया; (ण० ६, १५, ३)। —पह पुं० (सं० निर्ग्रन्थपथ) जिन भगवान् के द्वारा प्रदर्शित मार्ग; (म० १, १७, १)। —वित्ति स्त्री० (सं० निर्ग्रन्थवृत्ति) जिन भगवान् का तौर-तरीका या आचरण; (जस० ४, २२, ५)।

√णिग्गच्छ—(सं० निर् + गम्) बाहर निकलना। —इ व० (ण० ६, १४, ४)। णिग्गंत—कृ० (निर्गच्छत्); (क० ४, १४, ५)। णिग्गन्त—कृ० (प० च० ७, ७, ४)। णिग्गउ—भू० का० (सं०-निर्गत:) निकल गया; (व० १, १, ७, १२)। णिग्गमेइ—"पढमउ भुंभुक्कइ णिग्गयेइ;' अर्थात् पहले भुक-भुक करती हुई निकली; (क० ४, १४, ५)। णिग्गय भू० का० (सं० निर्गत:) निकल पड़ी, "ता णिग्गय तक्खणि सलिलधार;" (क० ३, १४, ६)। निकल आए; (महा० ६६, १२, १४)।

णिग्गम—पुं० (सं० निर्गम > प्रा० णिग्गम) १. उत्पत्ति, जन्म, २. बाहर निकलना, ३. द्वार, ४. बाहर जाने का रास्ता, ५. प्रस्थान, ६. निकास; (जस० ३, ७, ७; सं० रा०)।

णिग्गमण—न० (सं० निर्गमन > प्रा०

णिग्गमण) निःसरण, बाहर निकलना; (जस० २, ६, ६)।

णिग्गय—वि० १. (सं० निर्गत>प्रा० णिग्गय) निःसृत निकला हुआ, बाहर निकला हुआ; (सं० रा०; ण० १, १२, २)। २. (सं० निर्गज) हाथी रहित; (प० च० २६, १९, ८; भ०)।

णिग्गह—पुं० (सं० निग्रह>प्रा० णिग्गह) नियमन, नियंत्रण, दमन; (क० ९, २१, ३)। णिग्गहु; (ण० ३, ३, ९)।

णिग्गहण—न० (सं० निग्रहण) निग्रह, दमन, नियमन; (सि० २, ४)।

णिग्गा—स्त्री० (दे०) हरिद्रा, हलदी; (दे०ना० मा० ४, २५)।

णिग्गुण—वि० (सं० निर्गुण>प्रा० णिग्गुण) गुण-हीन; (जस० ४, २५, ३)।

णिग्घंट—पुं० निघण्टु निघंटु, वैदिक शब्दों का संग्रह; (ण० ३, १, ५)। णिग्घंटु; (सि० १, ७; ण० ३, १, ५)।

णिग्घट्ठ—वि० (दे०) कुशल; (दे० ना०-मा० ४, ३४)

णिग्घण—वि० (सं० निर्घन) मेघ रहित; "णिग्घण-गयणयलु;" (प० च० १३, १०, २)।

णिग्घिण—वि० (सं० निर्घृण>प्रा० णिग्घिण) निर्दय, करुणा-रहित; (जस० ३, ६, ७)।

णिग्घोसइं—न० (सं० निर्घोष>प्रा० णिग्घोस) महान अव्यक्त शब्द, "दस-दिसिवह-णिग्गय-णिग्घोसइं," (प० च० २, १, ३)।

णिचिट्ठ—वि० (सं० निश्चेष्ट) चेष्टा-रहित; (क० ८, ८, २)।

णिच्च—वि० १. (सं० नित्य>प्रा० णिच्च) अनश्वर, शाश्वत। निरंतर, सर्वदा; (सं० रा०; ण० १, १०, २)। २. (सं० नीच>प्रा० णिच्च, णीय) निकृष्ट, अधम; (क० २, १४, २)।

णिच्चइ—अव्य० निश्चयपूर्वक; (की० १, २६)।

णिच्चल—वि० (सं० निश्चल>प्रा० णिच्चल) स्थिर, दृढ़, अचल; (ण० ९, ६, १०; जस० १, २०, ६)। —मइ वि० (सं० निश्चलमति) स्थिर बुद्धि वाला; (जस० २, १३, २१)।

णिच्चा—वि० (सं० नित्य>प्रा० णिच्च) शाश्वत, सर्वदा; (प्रा० पैं० १ ३५)।

णिच्चालोक—पुं० नित्यालोक नामक नगर; (प० च० १३, १)।

णिच्चिंतउ—वि० (सं० निश्चिन्त>प्रा० णिच्चित) चिंता-रहित; (व० १, १२, २)। णिच्चिन्तउ; (प० च० १७, ९, ७)।

णिच्चूयय—वि० (सं० निः+चूचुक) चूचुक-रहित, (चूअ=स्तनशिखा, दे० ना० मा० ३, १८); (प० च० ४७, ४, २)।

णिच्चेयण—वि० (सं० निश्चेतन>प्रा० णिच्चेयण) चेतना-रहित; (प० च० १७, ७, ५)।

णिच्चेलत्तण—पुं० (सं० निश्चलत्व) स्थिरता; (ण० ९, २५, १)।

णिच्चोरमारि—स्त्री० (सं० निस्+चोर +मारी) चोरी या मारी; "णिच्चोर-मारि णिल्लुत्तदुक्ख" अर्थात् वहाँ चोरी या मारी महामारी का भय नहीं था; (जस० १, २२, ८)।

णिच्छअ—पुं० (सं० निश्चय) ऐसी धारणा जिसमें कोई संदेह न हो; (क० १, १०, १०)। णिच्छव; (व० ५, ८, १३)।

णिच्छेदिय— वि० (सं० निश्छिद्र) सुंदर, "णिच्छेदिय सुंदर जा घडीय;" अर्थात् सुंदर रूप से गढ़ी गई थी; (क० १०, १३, २)।

णिच्छवि—स्त्री० (सं० निश्छवि) निस्तेज, छवि-रहित; (जस० २, ६, ३)।

णिज्जंतु—वि० (सं० निर्जुन्तुक) जंतु-रहित (स्थान); (व० ८, १४, ८)।

णिज्जण—वि० (सं० निर्जन>प्रा० णिज्जण) जन-रहित; (जस० ३, २०, ८)।

णिज्जन्तिय—वि० (सं० नियन्त्रित) नियंत्रित, नियमित, अंकुशित; (प० च० ३५, १३, ५)।

णिज्जर—पुं० निर्जरा; संचित कर्म का तप द्वारा क्षय करना, कर्म-क्षय, कर्म-विनाश; "अविवाय सों णिज्जर जणु वहेइ;" वह मनुष्य अविपाक निर्जरा करता है, (क० ६, १४, १)।

णिज्जरा—स्त्री० (सं० निर्जरा) जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द ; संचित कर्म का तप द्वारा निर्जरण या क्षय करना। (Eradication of the karmic energies); (ण० १, १२, ६)।

णिज्जरु—पुं० निर्जर, देव-विशेष-नाम; (व० २, ११, ३)।

णिज्जलहरउ—वि० (सं० निर्जलघर) मेघ रहित, "णं ससहरु णिज्जलहरउ" मानो मेघ रहित चंद्रमा ही हो, (प० च० ३, ३, १)।

णिज्जाय—पुं० (दे०) उपकार, (दे०-ना० मा० ४, ३४)।

णिज्जिण— (सं० निर्+√जि) जीतना, पराभव करना। —इ व० (सं० निर्+जि, निर्जयति) जीतना, पराभव करना; (भ०)।

णिज्जिय—वि० (सं० निर्जित) जीता हुआ; (जस० १, १५, ३)। —मइय वि० (सं० निर्जितमति) जीत का विचार रखने वाला; (जस० ४, १५, १५)।

णिज्जियारि—वि० जीतने वाला; (महा० ६८, ६, १)।

णिज्जीव—वि० (सं० निर्जीव>प्रा० णिज्जीव) जीव-रहित, बेजान; (जस० ३, २६, ४)।

√णिज्जुंज—(सं० नि+√युज्> प्रा० णिउंज) जोड़ना, संयुक्त करना। —जिवि पू० का० क्रि०, "णिज्जुंजिवि अप्पउ परमाणाणि, "अर्थात् परम ज्ञान में अपने को योजित करके; (क० १०, २७, ८)।

णिज्जूह—पुं० (सं० निर्यूहः=१. कंगूरा मीनार, बुर्ज या कलश जो स्तंभ या दरवाजों पर बनाया जाता है) छत का किनारा, गृहाच्छादन;(दे० ना०-मा० ४, २८)।

णिज्जोअ—पुं० प्रकर (ढेर, समूह, गुल-

दस्ता, सहायता, मैत्री, चलन, प्रथा, अगर की लकड़ी) "णिज्जोओ प्रकरः। पुष्पावकर इत्यन्ये," (दे० ना० मा० ४, ३३)।

णिज्जोमी—स्त्री० (दे०) डोरी, रस्सी, रज्जु; (दे० ना० मा० ४, ३१)।

णिज्झर—पुं० (सं० निर्झर) झरना; तुल० म० निझरणें; (प० च० ११, ३, ६)। —ण निर्झर; (प० च० २१, २, ३)।

√णिज्झर—क्षीण होना, नष्ट होना; —ट अक० (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णिज्झरंत—व० कृ० (प्रा० णिज्झर = क्षीण होना) क्षीण होते हुए, (प० च० ८, ७, १)।

णिज्झर—वि० (दे०) जीर्ण, पुराना; (दे० ना० मा० ४, २६)।

णिज्झाइय—भू० का० (सं० नि+ध्यात) ध्यान से देखा, ध्यान लगाया, "णिज्झाइय देवउ थिरमणिण;" (उसने) स्थिर मन से देवता में मन लगाया; (क० ७, १२, १०)। ध्यान करता था; (व० १, ५, २)।

णिज्झुण—वि० (सं० निर्ध्वनि) बिना आवाज के; (भ०)।

णिज्झूर—वि० (दे०) जीर्ण, पुराना; (दे० ना० मा० ४, २६)।

णिट्ठ—वि० (सं० निष्ठित > प्रा० णिट्ठिय) समाप्त किया हुआ, पूर्ण किया हुआ; (ण० ५, ६, ७)।

णिट्ठवण—न० (सं० निष्ठापन > प्रा० णिट्ठवण) समाप्ति, अंत करना; (क० ३, २२, ६)।

√णिट्ठव—(नि+√स्थापय्) समाप्त करना। णिट्ठइ—विस्थापित किया जाता है; (रि० ६, ६)। णिट्ठहों—क्रि०, आ० (सं० नि+स्थापय् > प्रा० णिट्ठव = समाप्त करना) नष्ट करो; (प० च० ६, २, ८)। णिट्ठविवि—पू० का० क्रि०, नाशकर; (महा० ६८, १)।

णिट्ठवणायर—वि० (सं० निष्ठापन (विनाश) + कर) समाप्त करने वाला; (जस० ३, १७, १२)।

णिट्ठविउ—वि० (सं० निष्ठापित > प्रा० णिट्ठविअ) समाप्त किया हुआ, विनाशित; (प० च० १७, १४, २)।

णिट्ठविय—वि० (सं० निष्ठापित) मृत; (जस० २, २६, १)।

णिट्टहइ—क्रि०, व० घुलना, पिघलना; "णिट्टहइ विगलति;" (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णिट्ठहिअ—न० (दे०) खखार, थूक की ध्वनि, जो थूकने की क्रिया करते समय होती है; (दे० ना० मा० ४, ४१)।

णिट्ठा—स्त्री० (सं० निष्ठा > प्रा० णिट्ठा) विश्वास, श्रद्धा-भक्ति; (जस०) —वस वि० (सं० निष्ठावश) पूज्य बुद्धि या श्रद्धा-भाव के साथ; (जस० ४, २७, २२)।

णिट्ठिय—वि० (सं० निष्ठित > प्रा० णिट्ठिय) समाप्त किया हुआ, (जस० ३, १, १६; ण० १, ५, १०)।

णिट्ठुर—वि० (सं० निष्ठुर > प्रा० णिट्ठुर, णिट्ठुल) निष्ठुर, परुष, कठिन;

(जस० ३, १, १६; णं० ३, १४, २)।
णिट्ठुह—वि० (दे०) स्तब्ध, निश्चेष्ट; (दे० ना० मा० ४, ३३)।
णिड—पुं० (दे०) पिशाच; (दे० ना०-मा० ४, २५)।
णिडाल—न० (सं० ललाट) भाल, ललाट; (प० च० १०, ३, ८)।
णिड्डरिय—वि० (दे०) भयोत्पादक; (प० च० २५, २, ६)।
√णिड्डह—(सं० निर्+दह् > प्रा० णिडुह) दग्ध करना। —इ व० (सुदं० ३, २, ७)। —इवि पू० का० क्रि०, जलाकर; (व० ६, २२, १)।
णिड्डहण—न० (सं० निर्दहन) जला। देना; (ण० ८, १०, १२)।
णिड्डार—(दे०) आँखें फाड़ना। —रेवि पू० का० क्रि०, (सुदं० ६, १६, १)।
णिड्वओ—पुं० (दे०) अविभिन्न गृह; (दे० ना० मा० ४, ३८)।
णिड्वमण—पुं० (दे०) घर के जल का प्रवाह, (दे० ना० मा० ४, ३६)।
णिड्वमाओ—पुं० (दे०) अविभिन्नगृह; (दे० ना० मा० ४, ३९)।
णिड्वमो—पुं० (दे०) अविभिन्नगृह; (दे० ना० मा० ४, ३८)।
णिणद्द—पुं० (सं० निनाद > प्रा० णिणाय) ध्वनि, शब्द, आवाज; (जस० १, २६, २७; प० च० ३२, १२, ३)।
णिणाअ—पुं० (सं० निनाद > प्रा० णिणाय) शब्द, आवाज; (जस० १, ४, १३)।
णिणाइय—वि० (सं० निनादित) शब्दित, ध्वनित; (जस० १, १३, ५)।
णिणाय—पुं० (सं० निनाद > प्रा० णिणाय) शब्द, आवाज; (ण० ६, ३, ३)।
णिणाला—स्त्री० (दे०) चोंच; (दे०-ना० मा० ४, ३६)।
णिण्णट्ठ—वि० (सं० निर्नष्ट > प्रा० णिण्णट्ठ) नाश-प्राप्त; (ण० ६, ६, ८)।
णिण्णाण—पुं० (सं० निर्ज्ञान) अज्ञान; (जस० ४, १८, १५)।
णिण्णाम—वि० (सं० निर्नाम) बिना नाम का, अज्ञातनामा; (जस० २, १७, ५)।
√णिण्णास— (सं० निर्+नाशय् > णिण्णास) विनाश करना। णिण्णासगु —भू० का० (सं० निर्+नाशनम्) विनाश किया था। "चउसण्णाविसेस णिण्णासगु," अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन चारों संज्ञाओं का उन्होंने विशेष रूप से विनाश किया था; (जस० ३, १७, ८)। णिण्णासन्तहों—व० कृ० विनाश करते हुए; (प० च० ३, २, ५)।
णिण्णासिय—भू० का०; नष्ट कर डाला; "णिण्णासिय-दुट्ठ-जरा-पउत्ति;" अर्थात् दुष्ट वृद्धावस्था ने उसकी प्रवृत्ति को नष्ट कर डाला; (व० ३, ४, ८)।
णिण्णासयर—वि० (सं० निर्नाशकर) नाश करने वाले; (क० ५, ६, ९)।
णिण्णासिय—वि० (सं० निर्णशित) विनाशित; (भ०)।
णिण्णेह—वि० (सं० निःस्नेह > प्रा०

णिण्णेह) स्नेह-रहित; (जस० १, १६, ६)।
णित्त—वि० (सं० नीत) प्राप्त; (जस० २, २५, १)।
णित्त—पुं० (सं० नेत्र>प्रा० णेत्त, णित्त) नयन, चक्षु; (सं० रा०)।
णित्ता—(सं० नित्य) सर्वदा, शाश्वत; (प्रा० पैं० १, १३०)।
णित्ति—स्त्री० (सं० नीति>प्रा० णीइ) न्याय, उचित व्यवहार; (प० च० ७, १२, १; क० २, १८, १०)।
णित्तिरडिअ—वि० (दे०) त्रुटित, टूटा हुआ; (दे० ना० मा० ४, ४१)।
णित्तिरडी—क्रि०, वि० (दे०) निरंतर; (दे० ना० मा० ४, ४०)।
णित्तु—वि० (सं० नित्य>प्रा० णिच्च) १. शाश्वत, २. हमेशा, निरंतर; (सं०-रा०)।
णितुलउ—वि० (सं० निस्तुल्य) अनुपम; (व० २, ६, १७)। २. निश्चित; (प०-च० १८, ६, ३)।
णित्तुलिय—वि० (सं० निस्तुलित) अनुपम; (क० ६, ११, ११)। क्रि० वि० निश्चय से, निश्चयपूर्वक; (सुदं० ८, २, ८)।
णितुल्ल—वि० (सं० निस्तुल्य>प्रा० णित्तुल) असाधारण, अनुपम, निरूपम; (सुदं० ३, २, १४)।
णित्तेय—वि० (सं० निस्तेजस्) तेजहीन; (जस० २, १७, ६)।
णित्थाम—वि० (सं० निःस्थामन्>प्रा० णित्थाम) कांतिहीन; (जस० २, १७, ५)।
णित्थार—पुं० (सं० निस्तार>प्रा० णित्थार) छुटकारा, उद्धार; (सुदं० २, ७, ५)।
√णि+दंस—(सं० नि +√दर्शय्) दिखाना, दृष्टांत दिखाना। णिदंसेइ—व० (सं० नि+दर्शयति) (प्रा० पैं० १, ५३)।
णिद—स्त्री० (सं० निद्रा>प्रा० णिद्दा) नींद; (सं० रा०)।—वस वि० निद्रावश; (व० ८, १, १०)।
णिद्दंदु—वि० (सं० निर्द्वन्द्व) द्वंद्व-रहित; (व० ३, १, १४)।
णिद्द—स्त्री० (सं० निद्रा>प्रा० णिद्दा) नींद; (जस० २, ६, ४; ण० १, ११, १०)।
णिद्दय—वि० (सं० निर्दय>प्रा० णिद्दय) दयाहीन, करुणारहित; (सं० रा०; प्रा०-पैं० २, १३४)।
णिद्दयर—वि० (सं० निर्दयतर) तुलनात्मक दृष्टि से अधिक निर्दय; (सं०-रा०)।
णिद्दरमलिउ—भू० का०, परिमृदित, पैरों तले रौंदा; "णिद्दरमलिउ जेण सो रावणु;" (प० च० ५०, ६, ३)।
णिद्दरिसु—न० (सं० निदर्शन>प्रा० णिदंसण) उदाहरण, दृष्टांत; (प० च० १३, १)।
णिद्दलिय—वि० (सं० निर्दलित) मर्दित, विदारित; (जस० ३, ६, ३; ण० ७, ७, ६)।
णिद्दलेवि—पू० का० क्रि०, (सं० निर्+दलय्) नष्ट करना, उखाड़ना, "सक्कमि गिरि-मंदरणिद्दलेवि"; मंदराचल को

उखाड़ सकता हूँ, (पं० चं० १८, २, ६)।

णिद्दह—(सं० निर्+√दह्> प्रा० णिद्दह) जला देना, भस्म करना। —इ व० (महा० ६६, ६, ६)। णिड्डहइ—क्रि०, व० (सं० निर्दह् >प्रा० णिड्डह) जलाना; "णिड्डहइ अङ्गुवङ्गइँ अणङ्गु" अनंग उसके अंग-प्रत्यंग को जलाता है; (प० च० १८, ५, ६)।

णिद्दायइ—क्रि०, व० (सं० नि+द्रा> प्रा० णिद्दा, णिद्दाइ) निद्रा लेना; (प०-च० १७, १५, ३)।

णिद्दाखिण्णउ—वि० (सं० निर्दाक्षिण्य) अनुदार; "अम्हहुँ कि पहु णिद्दाखिण्णउ," —हे स्वामी हमारे प्रति अनुदार क्यों है; (प० च० २, १४, २)।

णिद्दिट्ठ—वि० (सं० निर्दिष्ट>प्रा० णिद्दिट्ठ) कथित, प्रतिपादित; (जस० ४, ६, १०)।

णिद्दुरिय—भू० का०, (सं० निर+दुलित) आँखों से ओझल हो गया; "अदं-सणे हूयएँ करिवरइँ णिद्दुरियणयणु सो तक्खणिण," अर्थात् कवि के अदृष्ट हो जाने पर वह राजा तत्क्षण आँखों से ओझल हो गया; (क० ५, १४, ६)।

णिद्दोस—वि० (सं० निर्दोष>प्रा० णिद्दोस) दोष-रहित, निष्कलंक; (सं०-रा०)।

णिद्ध—न० (सं० स्निग्ध>प्रा० णिद्ध) स्नेह, रस-विशेष, (प० च० ११, ४, ४)। २. छंदशास्त्र में स्कंधक का भेद; (प्रा० पैं० १, ७५)। वि० स्नेह-युक्त, चिकना; (क० ४, १०, १०; ण० १, १८, ६)।

णिद्धण—वि० १. (सं० निर्वन>प्रा० णिद्धण) वन-रहित; (क० ६, ५, ३; जस० १, १६, ५)। २. भार्या-रहित; (प० च० ३६, ११, ८)।

णिद्धम्म—वि० (सं० निर्धर्मन्>प्रा० णिद्धम्म) अधर्मी; (जस० ४, १, ८; ण० ३, १२, १३)।

णिद्धाड—वि० (दे०) निष्कासित; (जस० ३, ४, ६)।

√णिद्धाड—(सं० निः+√सृ) बाहर निकालना। —डिवि पू० का० क्रि०, निकालकर; (क० ५, २, ४)।

णिद्धाडिअ—वि० निष्कासित; (क० १०, १, ६)।

णिद्धाम—वि० (सं० निर्धामिन्) गृहहीन; (जस० २, १७, ५)।

णिद्धुय—वि० (सं० निर्धूत>प्रा० णिद्धुय) नष्ट किया हुआ, विनाशित, "थिउ जिणु णिद्धुय-कम्म-रउ;" जिन्होंने कर्म रूपी रज को धो दिया है, (प० च० ३, ३, १)।

णिद्धुयगायइँ—न० (सं० निर्धूत+गात्रम्) परित्यक्त शरीर, "तामरसाइँ व णिद्धुयगायइँ" 'और हैं निर्धूत शरीर कमलों के समान,' (प० च०)।

णिन्नसण—पुं० नाशक; (सं० रा०)।

णिप्पइअ—वि० [सं० निस्+प्राप्त) रहित; (जस० ४, १८, ११)।

णिप्पट्ठ—वि० (दे०) अधिक; (दे० ना०-मा० ४, ३१)।

णिप्पसर—वि० (सं० निष्प्रसर>प्रा०

णिप्पसर) प्रसर-रहित, जिसका फैलाव न हो; (प० च० १२, ३, ८)।

णिप्पह—पुं० निष्प्रभ नामक पर्वत-विशेष, (प० च० २७, २, २)।

णिप्पह—वि० (सं० निष्प्रभ) निस्तेज, फीका; (ण० ६, १४, ११)।

णिप्पहु—वि० (सं० निस्पृह) लालच या कामना आदि से रहित; (व० ६, १७, ६)।

णिप्पहरण—वि० (सं० निष्प्रहरण) अस्त्र-शस्त्र हीन; "जो जीवदयावरु णिप्पहरणकरु वंभयारि हयजरमरणु;" (जस० ४, ३०, १६)।

णिप्पाण—वि० (सं० निष्प्राण) प्राण-हीन; (जस० २, १७, ६)।

√णिप्पील—(सं √निष्पीड) निचोड़ना, दबाना। —लंति व०, प्र० पु०, व०, (सुदं० ६, ४, २)।

णिप्फंद—वि० (सं० निष्पन्न) जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो; (प्रा० पैं० १, १३६)। २. (सं० निस्पन्द) स्पंदन-रहित; (ण० ३, १७, १४)।

णिप्फल—वि० (सं० निष्फल) निरर्थक, फल-रहित; (जस० १, १३, ३)।

णिप्फेस—पुं० (दे०) आवाज या शब्द निकलना; (दे० ना० मा० ४, २६)।

णिबंध—पुं० न० (सं० निबन्ध > प्रा० णिबंध) निबंधन, बंधन, मर्यादा, व्यवस्था, "जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबंध," अर्थात् जय हो मुनिसुव्रत की जिन्होंने उत्तम व्रतों की मर्यादा बांधी है; (जस० १, २, १०)।

√णिबंध—सं० नि + बन्ध् बन्धने बांधना, "सा लइय णिबंधवि चेलयहिं, हउं पुणु घल्लिउ उच्चोलियहिं;" उसने उसे कपड़े में बांध लिया और फिर उसने मुझे भी पिटारी में डाल दिया! (जस० २, २८, ६)।

णिबद्ध—वि० (सं० निबद्ध > प्रा० णिबद्ध) १. बांधा हुआ, कसा हुआ, २. संबद्ध, ३. निर्मित, ४. जड़ा हुआ, खचित; (जस० १, २१, ७)। —य; (सं० रा०)।

णिबद्धी—वि० (सं० निबद्धा) विरचित, प्रणीत, "कह धम्मणिबद्धी का वि कहमि;" अर्थात् अब मैं धर्म संबंधी विरचित कथा कहूं; (जस० १, १, ६)।

णिबिभिण्ण—वि० (सं० निर्विभिन्न) जो भिन्न-भिन्न न हो; (भ० ३, २३, १)।

णिब्बाण—पुं० (सं० निर्वाण) शांति, मुक्ति, मोक्ष; (स० दो० को०)।

√णिब्बुड—(दे०) (सं० नि + मस्ज्, प्रा० णिब्बुड) निम्मजन करना, डूबना; (जस०)।

णिब्भंत—वि० (सं० निर्भ्रान्त > प्रा० णिब्भंत) संशय-रहित; (व० २, १०, ७)। —उ; (प्रा० पैं० १, १०५)।

णिब्भअ—वि० (सं० निर्भय > प्रा० णिब्भय) निडर; (प्रा० पैं० १, ३७)।

णिब्भग्ग—न० (दे०) उद्यान, बगीचा; (दे० ना० मा० ४, ३४)।

√णिब्भच्छ—(सं० निर् + भर्त्स्) तिरस्कार करना; (म० २, ११, १)।

णिब्भच्छिअ—वि० (सं० निर्भर्त्सित> प्रा० णिब्भच्छिअ) अपमानित, तिरस्कृत, (क० ४, १, ८)। णिब्भच्छिय; (प० च० ४, १०, ५; जस० ४, ३, ४)।

णिब्भय—वि० (सं० निर्भय>प्रा० णिब्भय) निडर, निरापद; (सं० रा०; ण० ६, ४, ५)।

णिब्भरु—वि० (सं० निर्भर> प्रा० णिब्भर) पूर्ण, "करि धरणहुँ णिब्भरु कियउ चित्तु;" अर्थात् हाथी को रोकने में पूर्ण रूप से अपने चित्त को लगाया; (क० ५, १४, ५)।

णिब्भासण—वि० (सं० निर्+भाषण) भाषा-रहित, गूँगा; (व० १०, १७, १४)।

णिब्भिच्च—वि० (सं० निर्भीक>प्रा० णिब्भीअ) भय-रहित; (प० च० १७, १७, ६)।

णिब्भिट्ट—वि० (दे०) आक्रांत; (भ०)।

णिब्भिण्ण—वि० (सं० निर्भिन्न) विदारित, "दंतग्गणिब्भिण्णहरिणरवरंगेहिं;" वे (हाथी) अपने दांतों के अग्रभागों से घोड़ों और मनुष्यों के अंगों को फाड़ रहे थे; (जस० १, १२, १०; ण० ७, १३, ४)।

णिब्भुग्ग—वि० (दे०) भग्न, टूटा-फूटा, (दे० ना० मा० ४, ३२)।

णिब्भूसण—वि० (सं० निर्भूषण) भूषण-विहीन; "तणएँ जणाणि दिट्ठ णिब्भूसण;" (ण० ३, ११, ११)।

णिब्भोइल्ल—वि० (सं० निर्+भोग+इल्ल प्र०) भोग न करने वाले; "णिब्भोइल्ले संचियदविणं;" अर्थात् भोग न करने वाले मनुष्य का संचित द्रव्य; (जस० १, १६, ६)।

निर्भंति—वि० (सं० निर्भ्रान्त) भ्रमहीन; (सं० रा०)।

णिभंतु— कृ० निर्भ्रान्त होकर; (परमा०)।

√णिम—सं० नि+√अस्, स्थापना करना। णिमइ—व० डालना, फेंकना, लिटाना, नीचे रखना; (दे० ना० मा० ४, ३८)।

णिमण्ण—वि० (सं० निमग्न>प्रा० णिमग्ग) डूबा हुआ; (प० च० १०, ३, ८)।

निमंतणउ—न० (सं० निमन्त्रण>प्रा० णिमंतण) न्योता, निमन्त्रण; (प० च० १६, १३, ६)।

णिमत्तिय—वि० (सं० नैमित्तिक>प्रा० णिमत्तिअ, णेमित्तिअ) कारणिक, निमित्त से होने वाला; (सि० २, १०)।

णिमिय—वि० (सं० न्यस्त) स्थापित, निहित; (प० च० ३३, १०, ६)।

णिमिस—पुं० (सं० निमिष>प्रा० णिमिस) अक्षि-संकोच, पलक, अक्षि-मीलन; (सं० रा०)। २. क्षण, "णीसरिय वीर णिमिसन्तरेंण;" (प० च० १२, ७, ८; क० ६, १५, ५)।—द्ध पुं० (सं० निमेष+अर्ध) आधा क्षण; (ण० ६, १६, ८)। णिमिसद्धु—पुं० (सं० निमिष+अर्ध>प्रा० णिमिस+अद्ध) आधा निमेष; (सं० रा०)।

णिमीलियच्छि—स्त्री० (सं० निमीलित

+अक्षिन्) पलक बंद की हुई आंख; (ण० ३, ५, ११)।

णिमेण—न० (दे०) स्थान, जगह; (दे० ना० मा० ४, ३७)।

णिमेल—न० (दे०) दांत का मांस; (दे० ना० मा० ४, ३०)।

णिमेस—पुं० (सं० निमेष>प्रा० णिमेस) पलक मारने भर का समय, पलक के स्वभावतः उठने और गिरने के बीच का काल; "णयण निमेसो विरह किलेसो;" अर्थात् नेत्रों के निमेष-मात्र काल का विरह कष्टदायी हो जाता था; (जस० २, १, ७)।

णिम्मंस—वि० (सं० निर्मांस>प्रा० णिम्मंस) मांस-रहित; (जस० १, ६, ७)।

णिम्मंसा—स्त्री० (दे०) दुर्गा देवी का एक भयानक रूप, चामुंडा; (दे० ना० मा० ४, ३५)।

णिम्मंसू—वि० (सं० निःश्मश्रु) तरुण, जवान; (दे० ना० मा० ४, ३२)।

णिम्म—पुं० (सं० नियम) विधि या निश्चय के अनुकूल प्रतिबंध; (प्रा० पैं० १, १८६)।

√णिम्म— (सं० निर्+मा> प्रा० णिम्म) बनाना, निर्माण करना। णिम्मवीउ—भू० का० (सं० निर्मापित) बनवाया; "थंभाण सहासहिँ णिम्मवीउ;" अर्थात् उसका निर्माण सहस्रों स्तंभों सहित किया गया; (क० ५, ३, २)।

णिम्मिउ—भू० का० (सं० निर्मित) निर्मित किया; (क० ७, २, ६)।

णिम्मिवि—पू० का० क्रि०, (व० १, १३, १)।

णिम्मन्तिय—वि० (सं० निमन्त्रित> प्रा० निमंतिय) जिसको न्यौता दिया गया हो; (प० च० १६, १३, ५)।

णिम्मय—वि० गया हुआ, बीता हुआ, गुजरा हुआ, मृत। (दे० ना० मा० ४, ३४)।

णिम्मल—वि० (सं० निर्मल>प्रा० णिम्मल) स्वच्छ, शुद्ध, पवित्र, जिसमें मल न हो; (सं० रा०; ण० १, ३, ११; क० २, ११, ७)। —यरु वि० (सं० निर्मलतर) अधिक विमल; (व० २, १३, ६)।

णिम्मविय—वि० (सं० निर्मित>प्रा० णिम्माणिअ) रचित, रचा हुआ, बनाया हुआ; (सं० रा०)।

णिम्माविउ—वि० (सं० निर्मापित>प्रा० णिम्माविय) बनवाया हुआ; (प० च० ३, ४, १)।

√णिम्मह—(सं०√गम्) जाना, गमन करना। —इ व०; (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णिम्महण—न० (सं० निर्मथन>प्रा० णिम्महण) विनाश; (प० च० १, ६, ४; जस० १, १४, ८)।

णिम्महिउ—भू० का० (सं० निर्+मथित) उन्मूलन कर दिया; (व० १, १७, ५)।

णिम्महिय—वि० (सं० निर्+मथित) विनाशित; (ण० ४, ४, ७)।

णिम्मित्ति—पुं० (सं० नैमित्तिकः) ज्योतिषी; (प० च० १६, ३, ६)।

णिम्मिय—वि० (सं० निर्मित) रचित,

बनाया हुआ; (जस० ४, १७, ६; व० २, २१, ८)।

णिम्मुक्क—वि० (सं० निर्मुक्त) जो मुक्त हो गया हो; (जस० १, २०, ६)।

णिम्मुक्कत्ताण—वि० (सं० निर्मुक्तत्राण) शरण से जो मुक्त न हो; (जस० ३, १३, ३)।

णिम्मोह—वि० (सं० निर्मोह > प्रा० णिम्मोह) मोह-रहित; (जस० ४, २१, ११)।

णियंब—न० (सं० नितम्ब > प्रा० णिअंब) कटि का पिछला उभरा हुआ भाग, चूतड़; (क० १, १६, ४; ण० १, ८, १३)।

णियंबिणी—वि० स्त्री० (सं० नितम्बिनी) सुंदर नितंबवाली; (सि० १, १७)।

णियंसण—पुं० शिरोवस्त्र; (सं० रा०)। निवसन; (ण० ३, ११, ११)।

णिय—वि० (सं० निज > प्रा० णिअ) आत्मीय, अपना, स्वकीय; (क० २, १, ४; ण० १, ८, १)। —कुल (सं० निज+कुल) अपना कुल; (व० १, १७, २)। —णिणय वि० (सं० निज+निज+क) पराया नहीं; (ण० ३, १३, १)। —त्तण पुं० (सं० निजत्व) स्वामित्व; (ण० ७, ६, ७)।

णिय—वि० (सं० नीत > प्रा० णिअ) ले जाया गया; (जस० १, १५, २०; क० २, ११, १)।

√णिय—सं० दृश्; प्रा० णिअ। देखना —इ व०; (क० ८, १२, ३)। —एइ, —यंति व० (ण० २, १, ६)।

णियइ—स्त्री० (सं० नियति > प्रा० णिअइ) भवितव्यता; (ण० ७, ३, ४)।

√णियच्छ—(सं० निर्+ईक्ष) देखना। —इ व० (दे० ना० मा० ४, ४०)। —च्छिवि पू० का० क्रि०, (सुदं० ४, ३, १४)। —च्छेवि पू० का० क्रि०, (सुदं० ८, २०, १)। णियंत—कृ० देखता हुआ; (व० २, २१, ४)। —विणु पू० का० क्रि० देखकर; (म० १, ८, १)।

णियच्छिअ—वि० (सं० नि+√यम् का धात्वादेश णिअच्छ = नियमन करना) नियमित; (ण० ५, ७, ५)।

णियच्छिय—वि० (सं० निरीक्षित > प्रा० णिअच्छिअ) देखा हुआ, जाँच किया हुआ; (जस० १, १३, १२)।

णियड—क्रि०, वि० (सं० निकट > प्रा० णिअड) निकट, समीप; (सि० २, १९)। —उ (सं० निकट+क) निकट; (जस० ३, ३२, ५)।

णियडि—स्त्री० (सं० निकृति) दंभ, कपट; (प० च० १४, २६)। णियडी—स्त्री० दंभ; (दे० ना० मा० ४, २६)।

णियड्ढ—(सं० नि+√कृष्) खींचना, उखाड़ना। —ए (सुदं० ५, ९, ३)। णियड्ढियउ—भू० का० (सं० निकर्षित) उखाड़ लिया; "वारणखंभु णिवड्ढियउ;" अर्थात् एक हाथी बाँधने का खंभा उखाड़ लिया; (ण० ४, ९, १४)।

णियइढिय—वि० खींचो हुई; (र ३, २१, २)।

णियत्त—वि० (सं० निवृत्त>प्रा० णिअट्ट, णिअत्त) पूरा किया हुआ, जो पूरा हो गया है, जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो; (ण० ९, १६, १२)।

णियत्थु—वि० (दे०, प्रा० णिअत्थ) पहना हुआ (प० च० ११, ६, १)।

णियपुण—पुं० (सं० नैपुण्य) निपुणता, (म० १, २, ३)।

णियम—पुं० (सं० नियम>प्रा० णिअम) चलता हुआ विधान, कायदा, विधि के अनुकूल प्रतिबंध; (जस० ३, १५, १२)। —ोवास पुं० (णियमोवास) नियम+उपवास; (ण० ९, १६, १०)।

णियय¹—वि० (सं० निज+क>प्रा० णिअअ) आत्मीय, स्वकीय; (प० च० १२, १२, ७)।

णियय²—वि० (सं० नियत) १. दमन किया हुआ, नियंत्रित, २. संयमी, ३. स्थायी, ४. निश्चित, ५. विचारणीय विषय; (सं० रा०)।

णियर—पुं० (सं० निकर>प्रा० णिअर) समूह; (जस० १, २, ११; ण० १, ९, ११)।

णियरुइ—स्त्री० निजरुचि; (सि० १, ३१)।

णियल¹—न० (दे०) नूपुर; (दे० ना० मा० ४, २८)।

णियल²—पुं० (सं० निगड>प्रा० णिअल) शृंखला, बेड़ी, साँकल; (प० च० १, ५, ६)।

णियाण—न० (सं० निदान>प्रा० णिआण) कारण, हेतु; (जस० ४, २५, २३)। णियाणु; (भ०)।

णियार—न० (दे०) शत्रु का घर; (दे० ना० मा० ४, २९)।

णियासण—पुं० (सं० नृपासन) नृपासन; (प० च० ६, १४, ४)।

णियासम—न० (सं० निज+आश्रम) अपना आश्रम; जैसे गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ आदि; (ण० ९, २१, १७)।

णिरंकुस—वि० (सं० निरङ्कुश>प्रा० णिरंकुस) अंकुश-रहित, स्वच्छंदी; (भ०)।

णिरंगी—स्त्री० (दे०) सिर का पर्दा या अवगुंठन, घूँघट; (दे० ना० मा० ४, ३१)।

णिरंजण—वि० (सं० निरञ्जन) निर्लेप, लेप-रहित; (जस० ४, ३०, १७)।

निरंतर—वि० (सं० निरन्तर>प्रा० णिरंतर) १. व्यवधान-रहित; (भ०)। २. सदैव; (प्रा० पैं० १, १८९)।

णिरंतरिय—वि० (सं० निरन्तर>प्रा० णिरंतर) लगातार होने वाला, जिसके बीच में कोई व्यवधान न हो; (सं० रा०)।

णिरंस—वि० (सं० निरंश) अखण्ड, संपूर्ण; (जस० ३, २६, ८)।

णिरअ—वि० (सं० निरत) किसी काम में लगा हुआ, तत्पर; (जस० ३, २८, १२)।

√णिरक्ख—(सं० निर्+√ईक्ष्>प्रा० णिरिक्ख, णिरक्ख) निरीक्षण करना, देखना। णिरक्खियउ—भू० का० निरी-

क्षण किया, देखा; (प० च० १५, ५, ५)। णिरिक्खयउ—भू० का०, देख लिया; (प० च० ८, ८, ६)।

णिरक्खर—वि० (सं० निरक्षर>प्रा० णिरक्खर) अपढ़, गँवार, मूर्ख; (सं० रा०)।

णिरग्गल—वि० (सं० निरर्गल) रुकावट से रहित, "आहारिय पुग्गल णिहिल णिरग्गल परिणवहिं;" अर्थात् इस प्रकार समस्त पुद्गलों का आहार कर वे निरर्गल परिणमन किया करते हैं; (व० १०, २५, १३)।

णिरञ्जण—वि० (सं० निरञ्जन) पापरहित; (प० च० २७, १३, २)।

णिरति—स्त्री० (सं० निरति) दृढ़ आसक्ति, अनुरक्ति; (सि० १, १७)।

णिरत्थ—वि० १. (सं० निरर्थ>प्रा० णिरत्थ) निरर्थक, निष्प्रयोजन; "हुउ वाणु णिरत्थउ सो हु जाव;" अर्थात् ज्योंही वह बाण निरर्थक हुआ, (क० ३, १६, ५)। २. (स० निर्+अर्थ) व्यर्थ; (महा० ६६, २, १; ण० २, १०, ५)। ३. (सं० निर्+अस्त्र) जिसके पास हथियार न हो, निश्शस्त्र, "मुणिवरतवसामत्थें णिरत्था, सयल वि थिय ओणावियमत्था;" अर्थात् मुनीश्वर के तप के प्रभाव से वे सभी निश्शस्त्र होकर सिर झुकाकर खड़े हो गए; (जस० ३, ३५, ११)।

णिरत्थीकिय—वि० (सं० निरर्थीकृत) निष्फलीकृत; (प० च० २०, ४, ७)।

णिरलंकार—वि० (सं० निरलंकार) अलंकार शून्य, सादा; (जस० ३, ६, ६)।

णिरलङ्कारिय—वि० (निरलंकृत) जो अलंकृत न हो; (प० च० १६, ५, ५)।

णिरवज्ज—वि० (सं० निरवद्य) निर्दोष, निरपराध; (ण० ८, ६, १३)।

णिरवसेस—वि० (सं० निरवसेस>प्रा० णिरवसेस) सब, सकल; (प० च० २०, १०, ४; जस० ३, ७, ६)।

णिरस—वि० (सं० नीरस) रसहीन, शुष्क; (जस० १, १५, १६)।

णिरसिय—वि० (सं० निरस्, निरसित) परित्यक्त; (जस० १, ६, ६)।

णिरह—वि० (सं० निर्+अघ) घातिया कर्मों से रहित; (ण० ४, १, १४; व० १, १, १३)।

णिरहरिउ—भू० का० (सं० निर्हृत) (ऋण) चुका दिया, "तिहिँ फलहिँ मज्झें एक्कहो फलासु, णिरहरियउ रिणु मइँ मइवरासु;" अर्थात् उन तीन फलों में से एक फल का ऋण मैंने मतिवर मंत्री का चुका दिया; (क० २, १८, २)।

णिराउल—वि० (सं० निराकुल) जो क्षुब्ध या डाँवाडोल न हो, अनुद्विग्न, "वसइ विणीया णयरि णिराउल;" (व० २, ११, ५)।

णिराउह—वि० (सं० निरायुध) निरस्त्र, निहत्था; (व० १०, ३८, ६)।

णिराद—वि० (दे०) नष्ट, विनाशप्राप्त; (दे० ना० मा० ४, ३०)।

णिरामइ—वि० (सं० निरामय) नीरोग, (पाहु०)।

णिरायउ—वि० (सं० नितराम्) अत्यंत; (रि० ५, २)।

णिरारिउ—अव्य० (सं० नितराम्) १. निरंतर, सदा, लगातार, २. सर्वथा, ३. निश्चय ही; "जहिँ रमइँ णिरारिउ चिरु खयरि;" अर्थात् जहाँ दीर्घकाल से नित्य ही खेचरियाँ रमण करती है; तुल० म० निरुतें (certainly); (क० १०, ६, २)। २. निश्चित, (प० च० ४८, १३)। ३. नितांत; (व० २, २, ७)।

णिरिंक—वि० (दे०) नम्रीभूत, झुका हुआ, प्रणाम करता हुआ; (दे० ना०-मा० ४, ३०)।

णिरिक्क—पुं० (दे०) १. चोर; (जस० ३, १८, ६)। २. समूह; (प० च० १४, १, ७)।

णिरिक्खिय—वि० (सं० निरीक्षित); आलोकित। —उ भू० का० आलोकित किया, वर्णन किया; (ण० २, ६, १)।

णिरिक्खण—न० (सं० निरीक्षण) अवलोकन; (व० २, ७, ७)।

√णिरिग्ध—छिपना (निलीयते)। —इ व० (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णिरिण—वि० (सं० निरृ॑ण) ऋण-मुक्त; (प० च० २२, १२, ३)।

√णिरिणज्ज—पीसना। —इ व० (दे०-ना० मा० ४, ४१)।

√णिरुंभ—(सं० नि+रुध्) निरोध करना, रोकना। —भेइ व० (सुदं० ११, १४, ५)। णिरुम्भेँवि—पू० का० क्रि०, (प० च० २८, ४, ४)।

णिरु—वि० (दे०, प्रा० णिरुत्त) १. निरंतर; (सुदं० १, ११, १६)। २. निश्चित, चोक्कस; (प० च० १४, १०, ६)। ३. नितांत; (सं० रा०)। णिरुत्तउ—क्रि० वि० १. निश्चय ही, निश्चित रूप से, "एँउ तं सयरागमणु णिरुत्तउ;" निश्चय ही यह उसी राजा सगर का आगमन है, (प० च० ५, ५, ५)। २. पूर्ण रूप से पूरी तरह से; (ण० १, १, ८)। तुल० म० निर्हां।

√णिरुज्झ— (सं० नि+√रुध्) निरोध करना, रोकना। —इ व० (कर्मणि) (ण० १, १३, ६)।

णिरुतउ—वि० (सं० निश्चितम्) निश्चितं; (दे० ना० मा० ४, ३०; ण० २, १३, ११)।

णिरुत्तर—वि० (सं० निरुत्तर) जिसका कुछ उत्तर न हो; (जस० ३, १८, ७)।

णिरुद्ध—पुं० निरुद्ध नामक मंत्री; (व० ३, १२, ६)।

णिरुद्धउ—भू० का० (सं० नि+रुध्) रोक लिया, "दूरहो जि णिरुद्धउ वइरि-वलु। णं जम्वूदीवें उवहि-जलु" —उसने दूर से ही शत्रुबल को उस प्रकार रोक लिया, जिस प्रकार जंबूद्वीप समुद्रजल को रोके हुए है, (प० च० १५, ३, ८)।

णिरुल्ली—पुं० स्त्री० मगर की आकृति वाला एक जंतु; (मकराकृति ग्रहिः) (दे०-ना० मा० ४, २७)।

णिरुवक्कय—वि० (दे०) नहीं किया हुआ; (दे० ना० मा० ४, ४१)।

णिरुवद्धउ—वि० (सं० निरुपद्रव) विना किसी उपद्रव के; (व० ३, २, १२)।

णिरुवम—वि० (सं० निरुपम) उपमा-रहित, बेजोड़; (जस० ३, ४१, ३)।
णिरुवमु—वि० जिसकी उपमा न हो, अनुपम; (महा० ६६, १६, १०)।
√णिरुवार—ग्रहण करना।—इ व० (दे० ना० मा० ४, ४१)।
णिरुत्तिय—क्रि० वि० (दे०) निश्चित रूप से; (सुदं० ७, ८, १५)।
णिरूव—वि० (सं० निरूप) रूप-हीन, (क० २, ३, ८)।
णिरूविय—वि० (सं० निरूपित) निरूपण किया हुआ, जिसकी विस्तृत विवेचना हो चुकी हो; (जस० ३, १५, ११)।
णिरोह—पुं० (सं० निरोध) रुकावट, रोकना; (ण० ६, २४, १४)।
णिरोहिअ—वि० (सं० निरुद्ध) विशेष रूप से रुका हुआ; (जस० १, २७, ४)। णिरोहिय; (ण० ६, ५, ४)।
णिलउ—पुं० (सं० निलय>प्रा०, णिलय) घर, स्थान, आश्रय; (व० १ ८, ११)। णिलय; (भ०)।
णिलज्ज—वि० (सं० निर्लज्ज>प्रा० णिल्लज्ज) लज्जा-रहित; तुल० मगही निलज्ज; (सरहपा, द हा कोश)।
णिलाड—न० (सं० ललाट) भाल, कपाल; (जस० २, २, १०)।
णिलीण—वि० (सं० निलीन) बंद, छिपा हुआ, घिरा हुआ; "जाहि वि पुणु हउँ गब्भि णिलीणउं;" अर्थात् जिसके गर्भ में मैं पुनः निलीन था; (जस० ३, ७, ७)।
√णिल्लंछ—हरकत करना, जाना, धोखा देना।—इ व० (दे० ना० मा० ४, ४०)।
√णिल्लस—(सं० उत्√लस्) प्रसन्न होना; —इ अक०, व० (दे० ना० मा० ४, ४०)।
√णिलुक्क—(दे०) सं० √तुड। तोड़ना। "णिल्लुक्ककेसु" अर्थात् (वह अपने) केशों का लुञ्चन करता है; (ण० ४, ४, १०)।
णिल्लुण्ण—न० (दे०) छेदन; "तं जण-भयजणणं सिरणिल्लुणणं णाऊणं;" अर्थात् 'उस लोकभयकारी सिर-छेदन की बात जानकर;' (जस० १, १५, १)।
णिल्लुत्त—वि० (सं० (निलु'प्त) विनाशित; (जस० १, २२, ८)।
णिल्लुद्ध—वि० (सं० निर्+लुब्ध) निर्लोभ, जिसे लोभ न हो; (ण० ४, ३, १२)।
√णिल्लूर—सं० छिद्। विनष्ट करना। विभक्त करना; (दे० ना० मा० ४, ४०)। —रिवि पू० का० क्रि०, विनष्ट कर; "खग्गें वइरिवग्गु णिल्लूरिवि;" अपने खड्ग से शत्रु-समूह को विनष्ट कर; (ण० ६, २४, ३)।
णिल्लूरिय—वि० (प्रा० णिल्लूरिय) छिन्न, काटा हुआ, "...... णिल्लूरिय वाणे हि," (प० च० ११, ८, ७)।
णिल्लोह—वि० (सं० निर्लोभ>प्रा० णिल्लोभ, णिल्लोह) लोभ-रहित; (भ०)।
णिव—पुं० (सं० नृप>प्रा० णिव) राजा; (ण० १, ६, १; जस० १, ३, १)। —चिवह पुं० (सं० नृप-चिह्न) (व० २, ६, ६)। —वयणु पुं० नृप-वचन; (व० २, ५, ५)। —सिरि स्त्री०

(सं० नृपश्री) राजा का गौरव, राजसी संपत्ति; (व० २, २, १०)।

णिव—वि० (सं० निज>प्रा० णिअ) स्वकीय, अपना; (क० १०, १६, ८)।

णिवइ—पुं० (सं० नृपति>प्रा० णिवइ) राजा; (क० ३, २, ६; ण० १, १२, २)।

णिवच्छण—न० (दे०) अवतारण, उतारना; (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णिवजस—पुं० (सं० नृप+यशस्>प्रा० णिव+जस) राज की सुख्याति या कीर्त्ति, (ण० ७, ६, ५)।

णिवज्ज—पुं० (सं० नैवेद्य) वह भोजन की सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय, देवबलि: (क० ६, २०, १७)।

√णिवज्झ—(सं० नि+बंध्> प्रा० णिवंध) बंधना। —इ "सोएण णिवज्झइ गुरुउ कम्मु;" अर्थात् शोक से बड़ा कर्म बंधता है; (क० ६, ४, २)।

णिवड—वि० (सं० निविड>प्रा० णिविड) गहरा, घना, कठिन; (सं० रा०)।

√णिवड—(सं० नि+√पत्>प्रा० णिवड) नीचे पड़ना, नीचे गिरना। —डंति व०, प्र० पु०, व०; (ण० ६, १६, १८, १८)। णिवडन्ति—क्रि०, व० (सं० निपतन्ति) नीचे गिरना, नीचे पड़ना; (प० च० १५, ४, ४)। णिवडन्तय—व० कृ० (प० च० १, ५, २)। निवडिआ—क्रि०, भू० का०, पड़ गई, (प्रा० पैं० २, १५१)। णिवडिय—भू०-का० (सं० निपतित) नीचे गिरा; "धरणीयलें णिवडिय तणु धुणेवि; अर्थात् शरीर को धुनकर धरणी तल पर गिर पड़ी; (क० ३, ६, ४)।

णिवडण—न० (सं० निपतन) अधः पतन; (ण० ३, ६, ३)।

णिवडब्भर—वि० निपट उभरे हुए; (सं० रा०)।

णिवडिय—वि० (सं० निपतित>प्रा० णिवडिअ) नीचे गिरा हुआ; (प० च० २, ७, ८)।

णिवत्थाण—न० (सं० नृप+आस्थान राजा का सभाभवन या दरबार; (ण० ६, १३, ३)।

णिवंधुण—न० (सं० निबन्धन>प्रा० णिवंधण) शर्त; (प० च० १७, १८, ३)।

√णिव्वल—(सं० निर्+√पद्>प्रा० णिव्वल) निष्पन्न होना। णिविलिअ—भू० का०, निबट गया, चुक गया, "सम्बर णिवलिअ किरिस तनु अम्बर भेल पुरान," अर्थात् साथ की सामग्री समाप्त हो गई, शरीर कृश हो गया, वस्त्र भी पुराने हो गए; (की० ३, १०६)।

√णिवस—(सं० नि+√वस्) निवास करना, रहना। —इ व० (प्रा० पैं० १, १११; महा० ६६, ११, १०)। णिवसंत —कृ० (सं० निवसत्); (ण० १, २, २)। —सेविणु पू० का० क्रि०, (सं० नि +वस्+एविणु) निवास कर; (व० २, २२, ३)। —हि व०, म० पु०, ए०।

णिवसण—न० (सं० निवसन) वस्त्र, कपड़ा; (जस० १, १६, २)।

णिवसियय—वि० (सं० निवसित>प्रा० णिवसिय) जिसने निवास किया हो वह, प्रवसित; (सं० रा०)।

णिवसुत—पुं० (सं० नृपसुत) राजा का पुत्र; (सि० १, १०)।

णिवसुया—स्त्री० (सं० नृपसुता) राजा की पुत्री; (जस० ४, २५, १२)।

णिवह—पुं० (दे०) समृद्धि, वैभव; (दे० ना० मा० ४, २६)।

णिवहु—पुं० न० (सं० निवह>प्रा० णिवह) समूह, राशि; (प० च० १२, ११, ३)।

णिवा—स्त्री० (सं० निपः) जल का घड़ा, कुंभ, घट; (ण०, ७, १०, १)।

णिवाण—पुं० (सं० निर्वाण) विश्राम; (ण० ७, १०, १०)।

णिवाय—पुं० (दे०) स्वेद, पसीना; (दे० ना० मा० ४, ३४)। निपात; (ण० ४, ६, १३)।

√णिवार—(सं० नि+वारय्>प्रा० णिवार) निवारण करना, निषेध करना। —इ क्रि०, व० (सं० नि+वारय्>प्रा० णिवार, णिवारेइ) मना करना; (प० च० २, १२,६)। णिवारउ—क्रि०, भू० का० निवारण हुआ; (प० च० १७, २, ४)। णिवारि—क्रि० आ०, ए० (प० च० १०, ७, ८); व० णिवारहों; (प० च० १०, ८, १)।

णिवारण—न० (सं० निवारण>प्रा० णिवारण) १. रोकने की क्रिया, २. हटाने या दूर करने की क्रिया, "उण्हणिवारणु" अर्थात् उष्णता का निवारण करने वाला; (जस० ४, १२, १५)।

णिवारणिअ—वि० (सं० निवारणीय) निवारण करने योग्य; (जस० ४, ६, १४)।

णिवारिय—वि० (सं० निवारित>प्रा० णिवारिय) निषिद्ध; (प० च० ४, ६, ३)।

णिवाल—पुं० (सं० नृपाल) राजा; (जस० १, ५, १८; प्रा० पैं० १, १६८)।

णिवास—पुं० (सं० निवास>प्रा० णिवास) वास-स्थान; (जस० १, २, ३)।

णिविट्ठ—वि० निविष्ट>प्रा० णिविट्ठ) स्थित, बैठा हुआ; (जस० ३, १७, ५)। णिविट्ठु; (प० च० १, ८, ७)। "तहँ मज्झि णिविट्ठउ सो सहेइ;" अर्थात् उनके बीच बैठा हुआ वह ऐसा शोभता था; (क० ८, १५, ३)।

णिविड—वि० (सं० निविड>प्रा० णिविड, णिविड) घना, गाढ़ (जस १, १७, १६)। —त्थवंत वि० (सं० निबिड +अर्थवत) सघन अर्थयुक्त काव्य; (जसं० २, १३, ११)।

णिविण्ण—वि० (सं० निर्विण्ण) पतित; (जस० ४, ११, १०)।

णिवित्ति—स्त्री० (सं० निवृत्ति) संतृप्ति; "महो अत्थि णिवित्ति परिग्गहासु;" अर्थात् परिग्रहों से मेरी निवृत्ति है, (अर्थात् मैं इनका त्याग कर दूंगा); (क० ४, १, ११)।

णिविसाय—वि० (सं० निर्विषाद) विषाद-रहित; (व० १०, ३८, ६)।
णिविसु—पुं० (सं० निमेष=क्षण) पल, क्षण; (प० च० ७, ११, ६)। **णिवसिद्ध**—पुं० (सं० निमेषार्धम्) आधा निमिष; (प० च० ४, ३, ४)। **णिविसन्तर**—न० (सं० निमेषान्तरम्) एक क्षण का अंतर; (प० च० ६, ८, ६)।
णि+√वुत्त—(नि+वृत्) निपटना। **णिवुत्तउ**—कहा, (प्रा० पैं० १, १०७)। तुल० राज० निमटवो-नमटवो। **णिव्वुत्तम्**—(सं० निर्वृत्तम्, रेफ का सावर्ण्य, ऋ का 'उ' में परिवर्तन) "तरुणिकडक्खम्मि णिव्वुत्तम;" (प्रा० पैं० १, ४)।
णिवेइय—वि० (सं० निवेदित>प्रा० णिवेइय) सम्मानपूर्वक ज्ञापित; (जस० ३, १०, १०)।
णिवेएँ—न० (सं० नैवेद्य>प्रा० णेविज्ज, णेवेज्ज) देवता के आगे धरा हुआ अन्न आदि; (प० च० १४, ६, ४)। **णिवेज्ज**; (क० ७, १२, ७)। **णिवेय**; (सि० १, १६)।
णिवेसिउ—भू० का० (सं० निवेसित) प्रतिष्ठित कर दिया; "लियणें णिवेसिउ तें णिवेंण परिपुज्जिवि अच्चिवि चंदणिण;' अर्थात् राजा ने जिन भगवान् को लयण में प्रतिष्ठित कर दिया और फिर उनकी पूजा करके व चंदन से अर्चना करके; (क० ४, ११, ६)।
णिवेहिय—वि० (सं० निविष्ट>प्रा० णिविट्ठ) १. स्थित, ऊपर बैठा हुआ, २. स्थिर, ३. संकेन्द्रित, नियंत्रित, ४. व्यवस्थित; (सं० रा०)।
णिव्वट्टिय—वि० (सं० निष्पादित, बनाया हुआ; (ण० ५, २, ३)।
णिव्वट्टिय—भू० का०, कट गई; "णिव्वट्टिय-भुअ-पाडिय-सिराइँ" —भुजाएँ कट गईं, सिर गिरने लगे; (प० च० ४, ८, ४)। **णिव्वटेंवि**—पू० का० क्रि०, कट कर, "करि-सिरु णिव्वेट्टेंवि" हाथी का सिर कट कर; (प० च० १०, १०, ३)।
√णिव्वड—(सं० निर्+पद्>प्रा० णिव्वड, णिव्वल) निष्पन्न होना, सिद्ध होना, प्रकट होना। —इ व० "कज्जन्तें णवर णिव्वडइ छेउ;" अर्थात् कार्य के समाप्त होने पर ही इसका रहस्य प्रकट होगा; (प० च० १६, ५, ६)।
√णिव्वड—(दे०) पृथक् या स्पष्ट होना; (दे० ना० मा० ४, ४०)।
णिव्वढ—वि० नग्न, नंगा; (दे० ना० मा० ४, २८)।
णिव्वण—वि० (सं० नि+व्रण) घाव या व्रण-रहित; "णिव्वाणि मच्छियउ ण भिणिहिणंति;" अर्थात् जहाँ व्रण (घाव) नहीं होता, मक्खियाँ नहीं भिनभिनातीं; (जस० ४, २१, ११)।
णिव्वमिअ—वि० (दे०) लाया हुआ, प्रयोग में लाया हुआ; (दे० ना० मा० ४, ३६)।
√णिव्वह—(सं० निर्+वह्>प्रा० णिव्वह) निभना, निर्वाह करना। —इ व० (सं० निर्वहति) (प० च० १६, ३, १०; सुदं० ८, ४, ६)। **णिव्वहंत**—कृ०

(सं० निर्+वहत्) (पं० ६, १३, १६)।

णिव्वहण—न० (दे०) विवाह; (दे० ना० मा० ४, ३६)।

णिव्वाइउ—पू० का० क्रि०, पसार कर, "बहुजीरमरियलवंगहों जलेण णिव्वाइउ मुहु पूरियउ;" अर्थात् बहुत से जीरे, मिरच और लवंग के जल से मेरा मुख पसार कर भर दिया गया; (जस० ३, ५, १५)।

√णिव्वाड—(दे०) चुनना; तुल० म० णिवडणें। णिव्वाडेप्पिणु—पू० का० क्रि०, चुनकर; "णिव्वाडेप्पिणु वम्मु जिह, जं भावइ तं गेण्हहि मित्ता," धर्म की तरह, इनमें से एक चुनकर, हे मित्र, जो अच्छा लगे वह लेलो; (प० च० ६, ४, ६)। णिव्वाडेवि—पू० का० क्रि०; (प० च० २१, १३, ४)।

णिव्वाणं—न० निर्वाण, छंदशास्त्र में अंतलघु त्रिकल का नाम (ऽ।); (प्रा० पैं० १, १६)।

णिव्वाण—न० (सं० निर्वाण>प्रा० णिव्वाण) मुक्ति, मोक्ष, निवृत्ति; (जस० ३, १६, ६)। —इं न०, ब० निर्वाण-स्थान, "दरिसइ दहमुह णिव्वाणाइं;" दसमुख निर्वाण-स्थानों को दिखाने लगा; (प० च० १५, ६, ८)। —ठाण न० (सं० निर्वाण+स्थान) मुक्ति का स्थान; (ब० १, ६, १०)।

√णिव्वाह—(सं० निर्+वह्>प्रा० णिव्वह) निर्वाह करना, निभाना; (जस० ४, २५, ३३)। —इ व०; (सुदं० ११, ४, ७)।

णिव्वाहण—वि० (सं० निर्+वाहन, निर्वाहन) वाहन-रहित; (प० च० २३, ६, ८)। न० (सं० निर्वहणम्, निर्वाहणम्) निर्वाह; "समणे समिच्छिय-सुंदर-वाहण, चडिवि झत्ति रण-भर-णिव्वाहण" अपने मन में इच्छित सुंदर वाहन पर चढ़कर वह त्रिपृष्ठ भी शीघ्र ही रण के भार का निर्वहन करने हेतु चला; (व० ४, २०, १३)।

णिव्विण्ण—वि० (सं० निर्विण्ण) (भोगों में) निर्विण्ण, निर्वेद-युक्त, खिन्न; (क० १०, २५, १)।

णिव्विज्ञ—सोकर उठा हुआ या खड़ा हुआ; (दे० ना० मा० ४, ३२)।

णिव्वियड—वि० (सं० निर्विकट) निर्विकार; (जस० ३, ३०, १६)।

णिव्वियडि—स्त्री० (सं० निर्विकृति) निर्विकार; (सुदं० ६, ७, ४)।

णिव्वियप्प—वि० (सं० निर्विकल्प>प्रा० णिव्विकप्प, णिव्विगप्प) जो विकल्प, परिवर्तन या प्रभेदों आदि से रहित हो; (जस० १, ७, ५)।

णिव्वुइ—स्त्री० (सं० निर्वृति) निर्वाण, मोक्ष; (प० ६, ५, ११)।

√णिव्वुड—(सं० नि+√ब्रुड्>प्रा० णिब्बुड्ड, णिव्वुड) डूबना, निमज्जन करना; (जस० २, २, १६)।

णिव्वुत्त—वि० (सं० निर्वृत्त>प्रा० णिव्वत्त) निष्पन्न, रचित, निर्मित; (प्रा० पैं० १, ४)।

णिव्वूढ—वि० (सं० निर्व्यूढ>प्रा० णिव्वूढ) १. त्यक्त; (जस० २, ६, ११)। २. जिसने निर्वाह किया हो वह;

(प० च० २२, १२, ७)। वि० (दे०) स्तब्ध; (दे० ना० मा० ४, ३३)। न० (दे०) घर का पश्चिम आँगन; (दे०-ना० मा० ४, २६)।
णिव्वेअ—पुं० (सं० निर्वेद>प्रा० णिव्वेअ) विरक्ति; (म० १, १७, ८)।
णिव्वेय—वि० (सं० निर्वेग) वेग-रहित; (ण० ६, २४, १)।
णिसंक—वि० (सं० निःशंक) शंका-रहित; (प्रा० पैं० १, ४४)।
णिसंग—वि० (सं० निःसंग) संगति-रहित; (जस० ४, २५, १५)।
णिस—स्त्री० (सं० निशा>प्रा० णिसा) रात्रि; (जस०)।
णिसग्गउ—वि० (सं० नैसर्गिक>प्रा० णिसग्गिय) स्वाभाविक; (व० ४, २, २)।
निसढ—पुं० (सं० निषध) पर्वत-विशेष-नाम; (व० १०, १५, १०)।
णिसण्ण—वि० (सं० निषण्ण>प्रा० णिसण्ण) बैठे हुए, विराजमान; (व० ३, १, १२; जस० १, ३, ६)।
णिसत्त—वि० (दे०) संतुष्ट; (दे० ना०-मा० ४, ३०)।
णिसा—स्त्री० (सं० निशा>प्रा० णिसा) रात्रि; (जस० २, १३, १५; प्रा० पैं० २, १७७)।
णिसाण—न० (फ़ा० निशानः) चिह्न, लक्षण जिससे कोई चीज पहचानी जाए; (सि० २, १२)।
णिसाय—वि० (दे०) प्रगाढ़ निद्रित, सोया हुआ; (दे० ना० मा० ४, ३५)।
णिसायर—पुं० (सं० निशाचर>प्रा० णिसाअर) राक्षस; (सं० रा०; रि० १, १२; क० ६, २१, १०)।
णिसायरि—स्त्री० (सं० निशाचरी) राक्षसी, कुलटा; (जस० ३, ४१, ६)।
णिसास—पुं० (सं० निश्वास) नाक या मुँह से बाहर निकलने वाला श्वास; (प्रा० पैं० २, १३४)।
णिसि—स्त्री० (सं० निशि>प्रा० णिसि) (प० च० १३। १२। ६; भ०)।
—भोयण न० (सं० निशि+भोजन> प्रा० णिसि+भोअण) रात्रि में किया जाने वाला भोजन, (क० ५, १५, २)।
—वअ पुं० (निशि+व्रत); रात्रि का व्रत; (क० १०, १२, २)।
णिसिचारु—पुं० (सं० निशिचार) रात्रि में किए जाने वाला आचरण, "णिसि-चारु जेण उवलक्खियउ;" (जस० २, ६, १४)।
णिसिद्ध—वि० (सं० निषिद्ध>प्रा० णिसिद्ध) जिसका निषेध किया गया हो, (जस० ३, १७, १४)। —अत्थु पुं० (सं० निषिद्ध+अर्थ>प्रा० णिसिद्ध+अत्थ, अठ्ठ) निषिद्ध अर्थ; (प० च० १६, १०, २)।
णिसि-पहरणु—न० (सं० निशा-प्रहरण) निशास्त्र; (रि० १०, १६)।
णिसिपालआ—स्त्री० निशिपाल छंद; (प्रा० पैं० २, १६०)।
णिसियर—पुं० (सं० निशाचर>प्रा० णिसा, णिसि+अर) राक्षस; (प० च० ८, २०, ४)। २. भूतप्रेतपिशाच आदि; (जस० १, ६, ११; क० २, १३, ६)।

णिसियरु—पुं० (सं० निशिकर), चंद्रमा; (व०२, ३, ५)।
णिसीसु—पुं० (सं० निशीश) चंद्रमा; (व० २, ३, ५)।
णिसीह—पुं० (सं० नृ+सिंह) श्रेष्ठ मनुष्य; (ण० ३, ३, १३)।
√णिसुंभ—(सं० नि+शुम्भ्) मार डालना; (जस० २, १५, ७)। —इ सक० (सुदं० ११, ४, ५)। —इवि पू०-का० क्रि०, (ण० ५, २, १४)।
णिसुंभ—पुं० (सं० निशुंभ) दैत्य का नाम; (प्रा० पैं० २, ६६)। वि० (सं० निशुम्भनः) विनष्ट करने वाले; "भयम-यणिसुंभाइँ;" भय और मद को विनष्ट करने वाले; (जस० १, १७, ६)।
णिसुंभण—वि० (सं० निशुम्भन>प्रा० णिसुंभण) नाश करने वाला, मार डालने वाला; (सुदं० ३, ३, १०)। णिसुम्भण —वि० विनाश करने वाला; (प० च० ५, ३, ५)।
णिसुंभिय—वि० (सं० निसुम्भित) १. निपातित, व्यापादित; (सुदं० ११, २२, २)। २. विध्वस्त; (ण० ७, ८, ६)।
णिसुअ—वि० (सं० निश्रुत) श्रुत; (क० १०, २६, ४)।
णिसुढिय—वि० (सं० निशुम्भित>प्रा० णिसुढिअ) भग्न, नष्ट. "कक्खड झड-णिसुढिय-फड-कडप्पु," कर्कश आघात से नष्ट हो गया फन-समूह जिसका; (प०-च० १३, ८, ४)।
√णिसुण— (सं० नि+√ श्रु, शृणोति>प्रा० णिसुणइ) सुनना; (सं०-रा०)। —णंत कृ० (ण० ५, ११, १५)। —मि व०, उ० पु०, ए०, सुनना; "जीवन्तिहेँ णिसुणमि वत्त जइ" —यदि उसके जीने की खबर सुनूँगा; (प० च० १६, १८, २)। णिसुणिउ—क्रि० भू०, सुनाई पड़ा (सुअंध० १, ६, ३)। णिसु-णिवि—पू० का० क्रि०; (ण० १, ६, १)। णिसुणेप्पिणु—पू० का० क्रि०; (प० च० ६, ५, ३)। णिसुणेवि—पू०-का० क्रि०; (म० १, ८, १)। णिसुय—भू० का० (सं० नि+श्रुत) सुना; (ण० १, १८, २)।
णिसेज्जा—स्त्री० (सं० निषद्या>प्रा० णिसज्जा) आसन-विशेष, पद्मासन; (ण० ६, २५, १)।
णिसेणि—स्त्री० (सं० निःश्रेणी>प्रा० णिस्सेणि, णिसेणि) नसेनी, सीढ़ी; तुल० गु० नीसरणी; (प० च० २२, ४, ३)।
णिस्सरिअं—वि० गिरा हुआ, खिसका हुआ, नीचे पड़ा हुआ (दे० ना० मा० ४, ४०)।
णिस्संक—वि० (सं० निःशंक>प्रा० णिस्संक) शंका-रहित; (प्रा० पैं० १, ४६)।
णिस्संक—वि० (दे०) निर्भर; (दे० ना० मा० ४, ३२)।
णिस्संकिय—वि० (सं० निः शङ्कित> प्रा० णिस्संकिअ) शंका-रहित; (व० ७, ४, २)।
णिस्साहार—वि० (सं० निस्साधार) निराधार, बेसहारा; (सं० रा०)।

णिस्सेस—वि० (सं० निःशेष) समस्त, सकल; (व० १, १४, ३)।

णिहंतु—वि० (सं० निहन्तृ) निहंता, विनाशक; "सो हवेइ वंचणाविसो णिहंतु;" अर्थात् वह वंचना रूपी विष का निहंता हो जाता है; (क० ६, १३, ४)।

णिह—वि० (सं० निभ > प्रा० णिह) समान, तुल्य; (प० च० ११, ४, ४)।

णिहइ—क्रि०, व० निहारती है, देखती हैं; (सं० रा०)।

णिहट्ठ—वि० (सं० निघृष्ट) घिसा हुआ; (प० च० ३७, ८, ३)।

णिहण—वि० (सं० निर्धन) दरिद्र; (क० ६, ५, १०)। पुं० (सं० निधन) मरण; (क० २, १४, ८)। न० (दे०) कूल, तीर, किनारा; (दे० ना० मा० ४, २७)।

णिहणण—न० (सं० निहनन) घातक "महु णिहणणसीलउ मिच्च जिह;' अर्थात् जैसे मानो वे मेरे घातक भृत्य हों; (जस० २, २४, ६)। २. विध्वंस; (व० १, ७, ७)।

णिहणिय—वि० (सं० निहनित) घातक; (व० २, ६, १८)।

णिहणु—न० (सं० निधन > प्रा० णिहण) विनाश; वहुपहरहिं णिहणु जि संभवइ," अर्थात् अनेक पहरों के (दिन के ४ पहरों) पश्चात् उसका भी अस्त होना निश्चित है; (जस० २, २, २)।

√णिहम्म—(सं० नि+हन्) मारना। —इ सक०, "णरयालइं णाणाणारएहिं, चिरकियहिं णिहम्मइ वइरएहिं;" अर्थात् नरक लोक में उसे उसके पूर्व के वैरी नारकी मारते हैं; (क० ६, ८, २)।

णिहय—वि० (सं० निहत > प्रा० णिहय) मारा हुआ; (प० च० १६, ४, ८)।

णिहयतम—वि० (सं० निहततम) अंधकार का नाश करने वाला; (व० २, ११, ६)।

√णिहस—(सं० नि+घृष्) घिसना णिहसिज्जइ–कर्मवा० (प० च० २१, २, ५)।

णिहस—पुं० (दे०) वल्मीक, सर्प आदि का विल; (दे० ना० मा० ४, २५)।

णिहसण—न० (सं० निघर्षण) घर्षण, रगड़; (ण० ७, ७, १०)।

णिहाअ—पुं० (सं० निघात) अभिघात, प्रहार; (क० ४, १५, ३)।

णिहाउ—पुं० (दे०) समूह; (प० च० १३, ८, २)।

णिहाए—पुं० (दे०) समूह, "कुसुमिय-लया-वेल्लि-पल्लव-णिहाएहिं;" खिली हुई लताओं, पल्लवों और वेलों के समूह से युक्त; (प० च० ३, १, २)।

णिहाण—न० (सं० निधान > प्रा० णिहाण) खजाना, निधि; (क० १, ३, ४; व० ८, ४, ८)। णिहाणु—न० निधान; (व० ३, २, १)।

√णिहाल—(सं० निभालय् > प्रा० णिभाल) अवलोकन करना, निहारना। —इ व० (ण० ३, ८, १०)। —हि व०, म० पु०, ए० तुल० म० निहाळणें (ध्यानपूर्वक देखना); (क० ५, ६, १०)।

णिहालियउ—भू० का० (सं० निभालित) देख लिया, (जस० २, २१, ७; महा० ६६, १२, ६)। णिहालें—क्रि०, आ०; देखें, "आउ णिहालें मुहु तं, आओ उसका मुख देखें; (प० च० १२, ५, १४)।

णिहालअ—वि० (सं० निभालक) (१) दृष्टिवाला, (२) देखनेवाला, (सुदं० २, ४, ३)। णिहाली—वि० स्त्री० देखने वाली; (सुदं० ४, ५, १६)।

णिहालण—न० (सं० निभालन>प्रा० णिहालण) अवलोकन; (सुदं० १, १०, ८)।

णिहालिय—वि० (सं० निभालित>प्रा० णिभालिय, णिहालिअ) दृष्ट, निरीक्षित; (प० च० ३, ६, ५)।

णिहि—स्त्री० (सं० निधि>प्रा० णिहि) खजाना; (सं० रा०; व० २, १३, १; जस० १, ४, १५)।

णिहित्त—वि० (सं० निहित>प्रा० णिहिअ) स्थापित, रखा हुआ; (प्रा० पैं० २, १६४)।

णिहित्तउं—भू० का० स्थापित कर दिया; "कण्णइ गुण संदोहे हियवउं सयरि णिहित्तउं" कन्या ने गुणों के समूह राजा सगर में अपना हृदय स्थापित कर दिया; (महा० ६६, १७, ११)।

णिहिप्प—सक० [सं० नि+धा+णिच् (कर्मणि)] स्थापना करना। (जस० ३, ३०, १०; ण० ३, ३, ५)।

णिहिय—वि० (सं० निहित>प्रा० णिहिअ) स्थापित; (ण० १, १, ११)।

णिहियउ—भू० का० (सं० निहित) बैठाया; "उवयारु महंतउ जाणएण, वणि णिहियउ मंतिपयम्मि तेण;" अर्थात् उसके महान् उपकार को जानकर राजा ने वणिक् को मंत्री पद पर बैठाया; (क० २, १६, ८)।

णिहिल—वि० (सं० निखिल>प्रा० णिहिल) सब, सकल; (क० १०, २५, ६; व० ८, ३, २)।

णिहीण—वि० (सं० निहीन) नितांत हीन; तुच्छ; (क० ५, १६, ६; जस० २, ८, १२)।

णिहुअ—वि० (सं० निभृत>प्रा० णिहुअ) चुपचाप; (प्रा० पैं० १, १०८)।

णिहुण—न० (दे०) व्यापार, धंधा; (दे० ना० मा० ४, २६)।

णिहुय—वि० (सं० निभृत>प्रा० णिहुअ) १. गुप्त, २. रखा या धरा हुआ, ३. भरपूर, ४. एकांत भाव से, ५. संभ्रम रहित; (सं० रा०)। ६. शांत; (जस० १, २०, ६)।

णिहुया—स्त्री० (दे०) संभोग के लिए अभिलषित स्त्री; "णिहुया कामिता;" (दे० ना० मा० ४, २६)।

√णिहुव—(दे०) संभोग की अभिलाषा करना। —इ सक० (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णिहूयं—न० (सं० निधुवन>प्रा० णिहुवण) महान् आनन्द या खुशी, सुरत, संभोग (दे० ना० मा० ४, २६)।

णिहेलण—न० (दे०) गृह; (जस० ३, ३४, १; दे० ना० मा० ४, ५१)।

णिहोडण—न० (सं० निपातन) नाश; "संसारणिहोडणु खणें करहिँ जं चिंतिउ तं पावहिँ सयलु;" अर्थात् (वे) एक क्षण में संसार का नाश करते थे। उनके दर्शकगण जो चिंतन करते वह सब वस्तु पा जाते थे; (क० ५, ५, १०)।

√णी—(सं०√नी > प्रा० णी) ले जाना। णिज्जइ-कर्मवा० (सुदं० ४, १०, ८; जस० २, २६, १२)। णीअ—भू०-का० नीत, "णं पावपडलु णिण्णासु णीउ;" मानो पाप का पटल नाश को प्राप्त किया गया हो; (क० ४, ८, ६)। णीयइ—व०; (व० १, १३, ६)। णेवावि—पू० का० क्रि०, (क० ८, १३, २)। णेवावियइं–ले जाए गए; (रि० ६, ५)।

णीइ—स्त्री० (सं० नीति>प्रा० णीइ) आचारपद्धति, लोकमर्यादा के अनुसार व्यवहार; (क० २, १४, ३)।

णीणिय—वि० (सं० निर्णीत) निर्णय किया हुआ; (जस० १, २१, १४)।

णीप—पुं० (सं० नीप) कदंब का फूल; (प्रा० पैं० २, ८६)।

णीय—स्त्री० (सं० नीति>प्रा० णीइ) आचारपद्धति; (व० १०, ३, ८)।

णीयाण—पुं० (सं० निदान) कारण; (क० ६, ४, ५)।

णीर—न० (सं० नीर>प्रा० णीर) जल, पानी; (जस० ३, २, १२)। —निकेतना न० जलगृह; (कौ० २, ८३)।

णीरय—वि० (सं० निर्मल) विमल, स्वच्छ; (महा० ६६, १२, ७)। २. कर्मरजरहित; (व० १, १, १३)। ३. पुं० कमल; (व० १, १, १३)।

णीरस—वि० (सं० नीरस>प्रा० णीरस) रस-रहित; (जस० १, ११, २)।

णीरु—न० (सं० नीर>प्रा० णीर) जल; (सा० ८१; सि० १, ३)।

णीरुअ—वि० (सं० नीरुज) व्याधि-रहित; (ण० ५, १, ३)।

णीरोयत्तण—पुं० (सं० नीरोगत्व) स्वस्थ होना; (जस० ४, १०, ६)।

णीलंजण—स्त्री० नीलांजना, ज्वलनजटी की रानी; (व० ४, ४, १४)।

णील—पुं० (सं० नील) नीला रंग; (प० च० १३, ३, ३)।

णील—पुं० छंद का नाम; (प्रा० पैं० २, १७०)।

णील—पुं० नील, वानरराजकुमार, वानर सैन्य प्रमुख; (प० च० ६८, २)। पुरुष-नाम, (क० ५, २, २)।

णीलकंठी—स्त्री० (दे०) वृक्ष-विशेष, वाण-वृक्ष; (दे० ना० मा० ४, ४२)।

णीलकंठु—पुं० नीलकण्ठ नामक योद्धा; (व० ४, ५, १४)।

णीलमणि—पुं० नीलकांतमणि, नीलम; (व० ३, २, ५)।

णीलरहु—पुं० नीलरथ (विद्याधर); (व० ५, २०, ४)।

णीलसेल—पुं० (सं० नीलशैल) नील पर्वत, पर्वत-विशेष-नाम; (व० १०, १५, ६)।

णीलाउलि—स्त्री० (सं० नील+आवली =कतार) नीलमणि की कतार; (प०-च० ६, ७, ६)।

णीलालय—पुं॰ (सं॰ नील+अलक) काले केश; (ण॰ ५, १, ६)।
णीलि—पुं॰ नील, (पर्वत); (व॰ १०, १४, १०)।
णीलु—पुं॰ नील, (छंदशास्त्र में) स्कंधक का भेद, (प्रा॰ पैं॰ १, ७५)।
णीलुप्पल—न॰ (सं॰ नील+उत्पल) नील रंग का कमल; (ण॰ २, ५, १३; व॰ ३, ३, ८)। णीलोप्पल; (सि॰ १, ३)।
णीव—पुं॰ (सं॰ नीप>प्रा॰ णीव) कदंब का फूल; (प्रा॰ पैं॰ १, ६७)।
√णीव—(सं॰ निर्+वा) शांत होना (become tranquil)। —इ व॰ शीतलता को प्राप्त होना; तुल॰ म॰ निवर्णे; (प॰ च॰ ५५, ८, ६; ण॰ १, १४, १)।
णीवि—स्त्री॰ (सं॰ नीवी>प्रा॰ णीवी) नारा, इजारबंद; (क॰ १० ७, ५)।
णीसंक—वि॰ (सं॰ निःशंक>प्रा॰ णिस्संक, णीसंक) शंका-रहित; (प्रा॰-पैं॰ १, ४७)।
णीसंपाय—वि॰ (दे॰) जहाँ जनपद परिश्रांत हुआ हो वह; (दे॰ ना॰ मा॰ ४, ४२)।
णीसङ्ग—वि॰ (सं॰ नि+शृङ्ग) बिना सींग के या बिना रज्जुबंधन के; (संगा =वल्गा दे॰ ना॰ मा॰ ८, २)। (प॰-च॰ २४, १३, ४)।
णीसण—पुं॰ (सं॰ निःस्वन>प्रा॰ णीसण) आवाज, शब्द, ध्वनि; (प॰ च॰ १७, १६, ७)।
णीसणिआ—स्त्री॰ (सं॰ निःश्रेणी> प्रा॰ णीसेणि) सीढ़ी; (दे॰ ना॰ मा॰ ४, ४३)।
णीसणिय—वि॰ (सं॰ निः+स्वनित) शब्द-युक्त; (ण॰ ६, १, ८)।
णीसद्दय—वि॰ (सं॰ निःशब्द>प्रा॰ णीसद्द) शब्द-रहित; (प॰ च॰ १४, १, ६)।
णीसद्द—वि॰ (सं॰ निःशब्द) शब्द-रहित; (भ॰)।
णीसन्दण—पुं॰ (सं॰ निःस्यन्दन) बिना रथ के; (प॰ च॰ २, १३, ७)।
णीसन्धि—स्त्री॰ (सं॰ निःसन्धि) वियोग; (प॰ च॰ १८, १२, ६)।
√णीसर— (सं॰ निः+सृ>प्रा॰ णीसर) बाहर निकलना। —इ व॰ (क॰ ४, १३, २)। णिसरिय—भू॰ का॰ निकले; (प॰ च॰ १२, ७, ८)। —रिवि पू॰ का॰ क्रि॰; (क॰ ६, ६, ८)। णीसारेंवि—पू॰ का॰ क्रि॰; (प॰ च॰ ५, १६, ७)।
णीसरिअ—वि॰ (सं॰ निः+सृत) निर्गत; (ण॰ १, १०, १२)।
णीसरिअ—वि॰ (सं॰ निःसृत) निर्गत; (जस॰ २, २, ४)।
√णीसस—(सं॰ निर्+श्वस्) श्वास लेना। —इ अक॰, व॰ (सं॰ निर्+श्वासय्>प्रा॰ णिस्सास, णिसास, णीसास); (महा॰ ६८, २, ११)। णीससंत—कृ॰ (सं॰ निः+श्वसत्); (क॰ ३, ५, ३)। णीससंती—कृ॰ [निः+श्वसत् (स्त्रियां)] (ण॰ २, ८, ६)। णीसासन्त—कृ॰; (प॰ च॰ ६, ७, ३)।

णीसार¹—वि० (सं० निःसार) सार-रहित, निकृष्ट; (जस० २, ३३, ६)।

णीसार²—पुं० (दे०) मण्डप (दे० ना० मा० ४, ४१)।

√णीसार—(सं० निर्+सारय्>प्रा० णीसार) बाहर निकालना। —इ व; (भ०)। णीसारिउ—क्रि० (सं० निःसारित > प्रा० णीसारिय) निष्कासित, निकाल भगाया; (क० १०, २२, ४)। णीसारिउ; (प० च० १०, ९, १)। णीसारिय; (ण० ८, १०, ६)।

णीसावण्ण—वि० (सं० निःसामान्य) अनन्य; (प० च० ४, ५, ४)। असामान्य, "जिहँ तुहुँ तिह अण्ण वि णीसावण्ण वि० गरुयइँ गज्जिय बहुय पर," (प० च० ३१, ९, ९)।

णीसास—पुं० (सं० निःश्वास>प्रा० णिस्सास, णिसास, णीसास) नाक से साँस बाहर निकालना; (ण० १, १०, १३)।

णीसाहण—वि० (सं० निःसाधन) १. सैन्य रहित, २. प्रसाधन-रहित, अनलंकृत; (प० च० २३, ९, ८)।

णीसुण्णु—वि० (सं० निःशून्य) सूना; (प० च० १९, १२, २)।

णीसेस—वि० (सं० निःशेष>प्रा० णिस्सेस, णीसेस) सब, सकल; (जस० २, ९, १७; ण० १, १, ६)।

णीहरियं—न० (दे०) शब्द, आवाज, ध्वनि, (दे० ना० मा० ४, ४२)।

णीहार—पुं० (सं० नीहार>प्रा० णीहार) हिम, तुषार; (ण० १, १६,१०)।

णुवण्ण—वि० (दे०) सोया हुआ, सुप्त; (दे० ना० मा० ४, २५)।

णेउर¹—न० नूपुर; (छंदशास्त्र में) प्रथम द्विकल गण (ऽ) का नाम; (प्रा० पैं० १, २१)।

णेउर²—न० (सं० नूपुर>प्रा० णेउर) स्त्री के पाँव का एक आभूषण; (प० च० १, १३, ९; ण० १, १७, ५; जस० १, ४, ४)। णेउरु; (व० २, १८,९)।

णेत्त—पुं० न० (सं० नेत्र>प्रा० णेत) १. वस्त्र-भेद, उत्तम रेशमी कपड़ा; (प० च० ४५, ४, १०; ण० ९, २१, ३३)। २. आँख; (क० ७, ३, १; प्रा० पैं० २, ९७)।

णेत्थ—पुं० न० (सं० नेपथ्य) आभरण, भूषण; "कणयकत्तरीगाढणेत्थओ रविसुदित्तिदित्तीपहत्थओ;" अर्थात् सुवर्णमय कटिसूत्र से गाढी कमर बाँधे सूर्य सदृश कांति से जगमगाता हुआ; (ण० ९, १८, १२)।

णेमि—पुं० (सं० नेमि>प्रा० णेमि) बाइसवें तीर्थंकर का नाम; नेमिनाथ; (व० १, १, ३; जस० १, २, ११)। २. रथ के चक्र की नेमि; (जस० १, २, ११)।

णेय—अव्य० (सं० नैव>प्रा० णेव) नहीं ही; (सं० रा०)। २. वि० अनेक; (विला०)।

णेयार—वि० (सं० नेतृ) नेता, नायक; (जस० २, १६, १३)।

णेवच्छण—न० (दे०) नीचे उतारना, अवतारण; (दे० ना० मा० ४, ४०)।

णेवर—पुं० (सं० नूपुर>प्रा०, णूपुर,

णूउर) पाजेब, पैरों का आभूषण; (सं०-रा०)।

णेसप्पु—पुं० (सं० नैसर्प>प्रा० णेसप्प) निधि-विशेष, चक्रवर्ती राजा का एक देवाधिष्ठित निधान; (व० ८, ५, ६)।

णेह—पुं० (सं० स्नेह>प्रा० णेह) राग, अनुराग, प्रेम; (प० च० ६, १४, ६; क० १, ३, ७)। अव्य० (सं० न०+इह) यहाँ नहीं; (प्रा० पैं० १, ५६)। —ज्जिअ वि० (सं० स्नेहार्जित) स्नेह से अर्जित; (ण० २, १४, ६)।

णेहल—वि० [सं० स्नेह+ल(मत्वर्थे)] स्नेह-युक्त; (क० ६, ११, ६)।

णेहलु—पुं० (सं० स्नेहलः) स्कंधक का भेद; (प्रा० पैं० १, ७५)। २. प्रेम, स्नेह; (प्रा० पैं० १, १८०)।

णेहो—पुं० (सं० स्नेह>प्रा० णेह) राग, अनुराग, प्रेम; (सुदं० ८, ४)।

णेहवंत—वि० [सं० स्नेह (तैल)+वत्] चिकना; "णेहवंताइँ खाणाइँ सा चारिया," अर्थात् चिकना घास-दाना चराया; (क० ८, २, २)।

णोकसाय—पुं० (सं० नो+कषाय) जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द; क्रोध, लोभादि विकार जैसे कषाय दोष, सांसारिक पदार्थों में आसक्ति आदि; जैन दर्शन के अनुसार ६ कषाय निम्नलिखित हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा एवं स्त्री० पुं० नपुंसकवेद; (ण० १, १२, ५)।

णोक्खा—वि० (दे०) अच्छा, अनोखा, अपूर्व; (प्रा० पैं० २, १०५)।

णोखी—वि० (दे०) अपूर्व, अनोखा; तुल० गु० अनोखा (णवक्खी पाइअ०) (प० च० ३१, १२, ३)।

णोमी—पुं० रस्सी, डोरी, रज्जु; (दे० ना० मा० ४, ३१)।

णोलइया—स्त्री० चोंच; (दे० ना० मा० ४, ३६)।

णोलग्ग—वि० (सं० न+लग्न) नहीं लगा हुआ; "णोलग्गकंठाउ," (जस० ३, २७, ८)।

णोलच्छा—स्त्री० (दे०) चोंच; (दे० ना० मा० ४, ३६)।

ण्हव—(सं० स्नपय्) स्नान कराना।

ण्हाइ—व० (सं० स्नपय्>प्रा० ण्हव, ण्हवेइ) नहलाना, स्नान कराना; (प० च० १, ५, ५)। ण्हाएँवि—पू० का० क्रि०, (प० च० ५, ४, ५)। ण्हाहों—क्रि०, आ०; (प० च० १४, ५, ४)।

ण्हवण—न० (सं० स्नपन>प्रा० ण्हवण) स्नान, (क० १०, २६, २)। २. अभिषेक; (व० ६, १४, ७)।

ण्हवणवीढ—पुं० न० (सं० स्नान+पीठ>प्रा० ण्हाण+पीढ) स्नान करने का आसन (चौकी) या स्थान; (प० च० १, १६, २)।

ण्हवल्लो—स्त्री० (दे०) विजली, विद्युत; (दे० ना० मा० ४, २२)।

ण्हविअ—वि० (सं० स्नपित>प्रा० ण्हविअ) जिसको स्नान कराया गया हो वह; (जस० २, २१, ४)।

√ण्हा—(सं० स्ना) स्नान करना, नहाना; (जस० १, २६, २२)। ण्हंत—कृ० (सं० स्ना+शतृ); (जस० ३, ३०, १)। —इवि पू० का० क्रि०, (क० ४,

११, ७)। —एवि पू० का० क्रि०; (जंबू० ६, ८, १५)।
ण्हाअ—वि० (सं० स्नात>प्रा० ण्हाय) जिसने स्नान किया हो वह; (जस० २, ३, १)।
ण्हाण—न० (सं० स्नान>प्रा० ण्हाण) नहाना; (क० ५, ३, ४)।
ण्हाणड्ड—न० (सं० स्नान>प्रा० णहाण) स्नान, नहाना; (प० च० १३, ६, ७)।
√ण्हाव— (सं० स्नपय्) नहलाना, स्नान करना। —इ सक० (जंबू० ५, १०, १५)।
ण्हिालण—न० (सं० निभालन) अवलो-कन, प्रेक्षण; (क० ६, ८, ६; ण० ३, २, १५)।

त

त—पुं० (सं० प्रा० त) व्यंजन वर्ण-विशेष। दंत-स्थानीय, अघोष, अल्पप्राण, निरनुनासिक। छंदशास्त्र में यह तगण का संक्षिप्त रूप माना जाता है। सर्व० (सं० तत्) वह; (भ०)। अव्य० (सं ततः) तव; (प्रा० पैं० १, १०५)।
तं—सर्व० (सं० तम्) १. उसको, वह; (सं० रा०)। २, उस; (की० २, ७७)। ३. उसे, 'अक्खमि धम्मक्खरु तं सुणेहु,' (विला०)। लो०-तं खज्जिइ जं परिणइ पावइ' —वह खाओ जो हजम हो जाए; (सुदं०)। ४. अव्य० वैसे; (की० ४, ५७)। ५. अव्य० (सं०ततः)वहाँ; (की० २, ७६)। ६. पुं० वाक्य-उपन्यास, वाक्य का उपक्रम; (पइ्)।
तंजिया—पुं० तंजिका, देश-विशेष-नाम; चोल राजाओं की राजधानी, मद्रास से २१८ मील दक्षिण-पश्चिम में प्राचीन तंजौर स्थित है; (जंबू० ६, १६, २)।
तंट—न० (दे०) पृष्ठ, पीठ; (दे० ना०-मा० ५, १)।
तंड—न० (दे०) १. लगाम में लगी हुई लार; २. वि० मस्तक-रहित; ३. स्वर से अधिक; "तंडं कविकालालकं शिरोवि-हीनं स्वराधिकं चेति त्रयर्थम्;" (दे० ना० मा० ५, १६)।
तंडउ—न० (सं० ताण्डव) तांडव नृत्य; (क० ४, ११, ६)।
तंडव—पुं० (सं० तांडव) १. नाच, नृत्य; २. तांडव, विशेष कर शिव का उन्माद नृत्य या प्रचण्ड नाच; (सं०-रा०)।
√तंडव— (प्रा० तड्डव) विस्तार करना। —हु; (भ०)।
तंडविय—वि० (प्रा० तड्डविअ= विस्तृत) विस्तीर्ण; (जंबू० ५, ७, ६)।
तंणयर—पुं० (सं० तद्+नगर) वह नगर; (जस०)।
तं तं—सर्व० (सं० तत् तत्) वह; (जंबू० ३, १४,१०)।
तंतं—न० (सं० तन्त्र>प्रा० तंत) झाड़ने-फूंकने का मंत्र या शास्त्र; (प्रा०-पैं० २, १२५)। तंत; (जस० १, ६, १५; क० २, ६, ४)।

तंतवाल—पुं० (सं० तन्त्रपाल) राष्ट्र-पाल, सेना में विशिष्ट पद; (जंबू० ५, ६, २)।

तंति—स्त्री० (सं० तन्त्री) वाद्य-विशेष; (जंबू० ४, १५, ३)।

तंतिवज्जु—न० (सं० तन्त्रीवाद्य) वीणा, वाद्य-विशेष; (रि० २, ७)।

तंतु—अव्य० तब तो। वि० तप्त; (सं०-रा०)।

तंतु—पुं० (सं० तन्तु>प्रा० तंतु) सूत, धागा, तागा; (व० १, १४, ८; प० च० १, १३)। —अ, —ग (सं० तन्तु+क) जलजंतु-विशेष; (प० च० १४, १७)।

तंतुक्खोडी—स्त्री० (दे०) तंतुवाय का एक उपकरण; (दे० ना० मा० ५, ७)।

तंतुय—पुं० (सं० तन्तुक>प्रा० तंतुग) जलजंतु-विशेष; (प० च० १४, १७)।

तंद—पुं० (सं० तन्द्रा) वह अवस्था जो नींद के आने के आरंभ में होती है, ऊँघ; (क० १, ६, ७)।

तंदुल—पुं० (सं० तण्डुल) तंदुल, चावल; (व० ८, ५, १०)।

तंब—न० (सं० ताम्र>प्रा० तंब) धातु-विशेष, ताँबा; (जस० १७, २४)।

तंबकिमि—पुं० (दे०) कीट-विशेष; (दे० ना० मा० ५, ६; पइ्)।

तंबकुसुम—पुं० न० (दे०) कटसरैया, कुरुवक, वृक्ष-विशेष; (दे० ना० मा० ५, ६; पइ्)। २. कुरंटक वृक्ष; (पइ्)।

तंबग—न० वाद्य-विशेष; तुल० गु० तंबाळुं; (संवि० १२, ६, २६)।

तंबचूल—पुं० (सं० ताम्रचूड) मुर्गा, कुक्कुट; (जस० ३, १५, १३)।

तंबरत्ती—स्त्री० (दे०) गेहूँ में कुंकुम (केसर, रोली) की छाया; (दे० ना० मा० ५, ५)।

तंबा—स्त्री० (दे०) गौ, धेनु; (दे० ना० मा० ५, १; जंबू० ४, १८, १३)।

तंबिर—वि० (दे०) ताम्र वर्ण वाला; (न०)।

तंबिरा—स्त्री० देखो तंबरत्ती (दे० ना० मा० ५, ५)।

तंबेही—स्त्री० (दे०) वृक्ष-विशेष; शेफालिका; (दे० ना० मा० ५, ४)।

तंबोल—न० (सं० ताम्बूल>प्रा० तंबोल) पान; तुल० म० ताम्बोळी; (जस० १, २२, १०)। तंबोलइं; (विला०)। —लग्ग वि० (सं० ताम्बूल+लग्न) तांबूल की लता से चिपके हुए; (जस० २, २७, ८)। —वत्त न० (सं० ताम्बूलपत्र) पान का पत्ता; (विला०)।

तंबोलिय—पुं० (सं० ताम्बूलिक) तमोली, पान बेचने वाला; तुल० गु० तंबोळी; (संधि० २, १६, ३)।

तंबोली—स्त्री० (सं० ताम्बूली) पान का गाछ; (पइ्)।

तंबोल्लवल्ली—स्त्री० (सं० ताम्बूलवल्ली) पान की वेल; (प० च० ४६, ७२)।

तंभ—पुं० (सं० स्तम्भ>प्रा० थंभ) थंभा; (पइ्)।

तंव—न० (सं० ताम्र>प्रा० तंव) ताँबा, धातु-विशेष; "तउव तंव-मणि-

रुप्पय-कंचण खर-पुहवी पभणंति विवं-चण; ' अर्थात् शीशा, तांवा, मणि-चांदी एवं सोने को विचक्षण पुरुष खर-पृथिवी कहते हैं; (व० १०, ७, ४)।
तंवार—पुं० तंवार, नरक-नाम; (जस० २, ११, १३)।
तंविर—वि० (प्रा० तंविर) ताम्र वर्ण वाला; तुल० म० तांवेरा, तांवडा; (म०)।
तंवोल—न० (सं० ताम्बूल > प्रा० तंवोल) पान; (व० ५, ८, १)।
तअ—न० (सं० तपस्) तपस्या, तप; (क० ५, ६, १०)।
तआर—पुं० (सं० तकार) तगण; (प्रा०-पैं० २, ११४)।
तइँ—सर्व० (सं० त्वया) तुम्हारे, तुल० मगही तोहिं; (प्रा० पैं० १, ६; गुण्डरीपा, चर्यागीति)।
तइ—अव्य० सं० तत्र; वहां, उसमें; (पड्)। (सं० तदा) तव; (जस०)। स्त्री० (सं० त्रयी) तीन का समूह; (जस० ४, ६, ५)। —अ वि० (सं० तृतीय) तीसरा; (प्रा० पैं०)। वि० (सं० त्वया) तुम्हारा; (भ०)। —अहा अव्य० (सं० तदा) उस समय; (भ०)। —उ अव्य० (सं० तदा) तव; (प० च० ४०, ४, ७)। —ए वि० (सं० तृतीय) तीसरा; (जंवू० २, २०, १०)। —काल पुं० (सं० काल+त्रय, त्रयी > प्रा० काल+तई) भूत, वर्तमान, भविष्य; (प० च० ६, १४, २)। —ज्जअ वि० (सं० तृतीय) तीसरा; (सधि० ३, २, १०)। —ज्जउ(१) वि० (सं० तृतीयकः)तीसरा। —ज्जी वि० (सं० तृतीया) तीसरी; (हे० ३३६, १)। —य वि० (सं० तृतीय) तीसरा; (भ०)। —य अव्य० तव; (सं० रा०)। —यहँ अव्य० (सं० तदा > प्रा० तइ) उस समय; (भ०)। तइयहूँ—अव्य० तव (प० च० १६, ४, ८)। तइयहु—अव्य० तव; (जस० १, ३३, ६)। तइयहें—स्त्री० (सं० त्रयोदशी) तेरस; (व० ६, ६, ८)। तइयहों—अव्य० उस समय; (प० च० ८, ८, २)। —या वि० (सं० तृतीया) तीसरा; (जंवू० १, १, ४)। —लोक्क न० (सं० त्रैलोक > प्रा० तइलोक्क) तीन लोक-स्वर्ग, मर्त्य और पाताल। —लोक्कणाह पुं० (सं० त्रैलोक्य-नाथ > प्रा० तइलोक्क-णाह) तीन लोक के स्वामी; (प०-च० १८, ४, ५)। —लोय न० (सं० त्रैलोक्य > प्रा० तइलोक्क, तइलोय) तीनलोक—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल; (भ०)। —वि अव्य० (सं० तथापि) तो भी; (व० १, ११, १)। —स वि० (सं० तादृश) उस तरह का, वैसा; (रा०)। —सना वि० उस प्रकार का; (की० ३, ५०)। —सो वि० तैसा; तुल० मगही तैसन; (सरहपा, दोहा कोश)।
तई—अव्य० (सं० तदा > प्रा० तया) उस समय; (जंवू० ४, ८, १४)।
तउ—सर्व० (सं० तव) तुम्हारा, "···तउ माणुसजम्मु ;" तुम्हारा मनुष्य-जन्म; (प० च० १८, ७, २)।
तउ—अव्य० (सं० तत्र)वहां, "गउ तउ जउ तरुवर-मूलें जइ;" (प० च० ६

१०, ८)। (सं० तदा>प्रा० तया) तव; (सं० रा०)।

तउ—न० (सं० तपस्) उष्णता; (जस० २, १८, १४)। २. (सं० तप) तपस्या, "तउ चिरु कालु करेइ," (व० २, १७, ६)। —धम्म पुं० (सं० तपधर्म) (जंबू० ८, १०, १४)।

तउलगि—अव्य० (सं० तावत्+लग्नम्) तब तक, तबलों; (क० ८, २, १०)।

तउव—न० (सं० त्रपु) राँगा, शीशा, धातु-विशेष; (व० १०, ७, ४)।

तए—सर्व० (सं० तव) तुम्हारा; (जंबू० १, १८, १०)।

तम्रो—अव्य० (सं० ततः) तब; (विला०; जंबू० ४, ५, १६)।

तकत—पुं० (फ़ा० तख़्त) राज-सिंहासन; "तकत चह्लि सुरुतान वइठ;" (की० ४, १४०)।

तकतान—पुं० (फ़ा० तख्तेरवाँ) सुलतान का वह सिंहासन जो यात्रा में साथ ले जाया जाता था; (की० ३, ६४)।

तक्क—न० तर्क (शास्त्र) (म० १, ४, २)। २. तर्क, नव्यन्याय; (की० १, ६०)।

तक्क—पुं० (ध्व०) 'तक्क-तक्क' की शब्दानुकृति; (प्रा० पैं० १, २०६)।

√तक्क—(सं० तर्क>प्रा० तक्क) तर्क करना, अनुमान करना; ताकना। तक्केइ —व० (सं० तर्कयति) ताकना; (हे० ३७०)।

तक्ककक्कश—वि० (सं० तर्ककर्कश) तर्क या नव्यन्याय में प्रौढ़; (की० १, ६०)।

तक्कणा—स्त्री० (दे०) इच्छा, अभिलाषा; (दे० ना० मा० ५, ४)।

तक्कर—पुं० (सं० तस्कर>प्रा० तक्कर) चोर; (सुदं० ८, ४४, २)। —कम्म पुं० तस्करकर्म (जंबू० ६, १५, २)। —वित्ति स्त्री० तस्करवृत्ति; (जंबू० ३, १४, २३)। —यार पुं० (सं० तस्कर+आचार) तस्कर का आचरण; (जंबू० १०, १८, ६)।

तक्कार—पुं० (सं० तकार) तगण; पहले दो गुरु और तब एक लघु वर्ण (ऽऽ।) का समूह या गण; (प्रा० पैं० २, १६)।

तक्काल—क्रि० वि० (सं० तत्काल) शीघ्र, उसी समय; (व० २, ५, १६)।

तक्किसतक्किस—स्त्री० (ध्व०) संगीत के यंत्र से उत्पन्न 'तक्किस' की आवाज; (प० च० ५६, १, १०)।

तक्कु—पुं० (सं० तकु) सूत बनाने का यंत्र; तकुआ; (दे० ना० मा० ३,१)।

तक्कुव—पुं० (सं० तर्कक) याचक, माँगने वाला; (प० च० २८, ८, ३)।

तक्ख—पुं० (सं० तक्षन्) १. लकड़ी काटने वाला; बढ़ई; २. विश्वकर्मा, शिल्पी-विशेष; (पड्)।

√तक्ख—(सं० तक्ष्) छीलना, काटना; —इ सक०; (पड्)।

तक्खड—वि० (दे०) अक्खड़, उद्धत; (सुदं० ६, ६, १)। २. पुं० तक्खड नामक श्रेष्ठि; (जंबू० १, ५, ३)।

तक्खण— अव्य० (सं० तत्क्षण>प्रा० तक्खण) उसी समय, उस क्षण, शीघ्र; (प० च० १५, १५, ७; क० १, १०,

२)। तक्खणि—क्रि० वि० (सं० तत्क्षणे) तव; तुल० वं० तखन; (प्रा० गु० ६, ११)। तक्खणे—अव्य० उस समय; तुल० मगही तखनी; (कह्णपा, दोहा कोश)। तक्खन-तत्क्षणे; (कीर्तिपताका)।

तपखंय—पुं० तक्षक गीध; (रि० ३, १)।

तक्खर—पुं० (सं० तस्कर>प्रा० तक्कर) १. चोर, लुटेरा, २. जघन्य, घृणित; (सं० रा०)।

तक्खाण—देखो तक्ख=तक्षन्; (पड्)।

तखिखितखितखिख—स्त्री० वाद्य ध्वनि; (जंबू० ५, ६, १२)।

तखेंतखिखें—स्त्री० तक्खा वाद्य ध्वनि; (सुदं० ७, ६, ११)।

तग्ग—न० (दे०) धागे का कंकण; (दे० ना० मा० ५, १)।

√तग्ग—१. सोचना, विचारना, २. तागा तागना; (सं० रा०)।

तग्गय—वि० (सं० तद्गत) तल्लीन; "तग्गय मणेन," तल्लीन मन होकर; (प० च० १, ६, ८; क० ३, १, ८)।

तच्च—न० (सं० तत्त्व>प्रा० तच्च) सार; (क० ६, २१, ३)। तच्चु; (जंबू० १, १०, ४)।

√तच्छ—(सं० तक्ष्) छीलना, काटना; (संधि० १५, २, ११)।

तच्छिड—वि० (दे०) भयंकर; (दे० ना० मा० ५, ३)।

तच्छिल—वि० (दे०) तत्पर; (पड्)।

√तज—(√त्यज्) छोड़ना। —उ क्रि०, व० त्याग करना; (प्रा० पैं० २, ६३)। तेंज्जइ—क्रि०, व० "मंजरि तेंज्जइ चूआ," आम बौर छोड़ रहा है, (प्रा० पैं० २, २०३)।

तजा—स्त्री० (सं० त्वच्>प्रा० तया) त्वचा, छाल, चमड़ी; (दे० ना० मा० १, १११)।

तजान—पुं० (फ़ा० ताजियानः) चाबुक; (की० ४, ३८)।

√तज्ज—(सं० तर्जय्>प्रा० तज्ज) तरजना, डाँटकर बोलना, घुड़कना; (सं० रा०)। —इ व० (सं० तर्जयति); (भ०)। तज्जु—क्रि०, आ० (सं० तर्जय्>प्रा० तज्ज) तर्जन करो, भर्त्सन करो; (प० च० ७, १२, ३)। तज्जेंवि—पू० का० क्रि०, (प० च० १७, ३, १०)।

तज्जिय—वि० (सं० तर्जित>प्रा० तज्जिअ) भर्त्सित; (प० च० ४, ६, ६)।

तञो—क्रि० वि० तभी; (की० ३, ७)।

तटखुंद—न० (दे०) वाद्य; (सुदं० ७, ६. १२)।

तट्टकिरिकिरिरि— स्त्री० (ध्व०) किरिरि-किरि-तट्टकिरि की आवाज; (जंबू० ५, ६, ११)।

तट्टु—वि० टूटे हुए; (प० सि० च० ४, ८, ६२)।

तट्ठ—वि० (सं० त्रस्त) डरा हुआ, भयभीत; (म० २, ६१, ४)।

तट्ठय—वि० धृष्ट; तुल० म० ताठ; (जस० २, ३४, ४)।

तट्ठी—वि० (सं० त्रस्ता) डरी हुई, भीत; (प० च० २५, ८, ५)।

तट्ठीय—वि० (सं० तत्+स्थिता) वहाँ स्थित; (क० ३, १८, १)।

तड—पुं० (सं० तट>प्रा० तड) कूल, किनारा, तीर; तुल० म० तड (लावर्णे); (सं० रा०; सु० २-१२; उ० व्य० प्र० १५-२४)।

√तड—(सं० तन्>प्रा० तड) विस्तार करना। —इ व० (जंबू० ६, ५, २)।

तडक्कडिअ—वि० (दे०) अनवस्थित; (पइ)।

तडक्क—वि० (दे०) भंजक, विनाशक; "तेलोक्क-भुवग्गल-भड-तडक्क, दुद्दरिसण भीसण जम-अडक्क;" (प० च० ३७, ६, ८)।

√तडक्क—(व्व०) तड़तड़ करना; (सं० रा०)। तडक्किय—भू० का० (सं० तटत्कृत) तड़तड़ किया; (म०)।

√तडतड—(सं० तडतडाय्) तडतड आवाज करना। —इंति (सुदं० ११, १५, ६)। तडतडतडंत्ति—व० (प० च० ११, ११२)। तडतडतडन्त—कृ० तड़-तड़ की आवाज करते हुए; (प० च० ५०, १, ६)। तडताडिय—भू० का०, ताड़न करके बजाया गया; (जंबू० ५, ६, १३)। तडयडइ—व० (प० च० २८, १, ८)।

तडतडण—पुं० (व्व०) तड़-तड़ का शब्द; (जंबू० १, १४, ६)।

तडत्ति—क्रि० वि० (सं० तड्+इति) तड़ से, तड़ाक से; "दोत्तडिहि वरंतहो गउ अडत्ति, तेल्लियहो सयडु मोडिउ तडत्ति;" (जंबू० ५, ७, १६)।

तडत्तीह—क्रि० वि० (सं० तड्+इति +इह) तड़से; "तडत्तीह तुट्टे महामोह-जाले;" अर्थात् उसका मोहजाल तड़से टूट गया, (जंबू० २, १६, १)।

तडत्थ—वि० (सं० तटस्थ) १. मध्यस्थ, पक्षपात-हीन; २. समीप में स्थित; (दे० ना० मा० ३, ६०)।

√तडप्फड—(दे०) १. तड़फड़ाना, व्याकुल होना। —इ व० (पाहु०)। २. हिलना या प्रयत्न करना। —इ व० (हे० ३६६)।

तडफडिअ—वि० (दे०) व्याकुल; तड़फड़ाया हुआ; (दे० ना० मा० ५, ६)।

√तडफिड—(दे०) तड़फड़ाना। तडफिडवि—पू० का० क्रि०, (जंबू० ७, ५, १२)।

तडमड—वि० (दे०) क्षुभित, क्षोभ-प्राप्त; (दे० ना० मा० ५, ७)।

तडयड—स्त्री० (सं० प्रा० तडतडा) 'तड़तड़' की आवाज; (सं० रा०)।

√तडयड—(सं० तडतडाय्) तड-तड आवाज करना; (संधि० १४, ५, १०)।

तडयडंत— कृ० (सं० तडतडाय्+शतृ) (जंबू० ११, १५, ५)।

तडवडा—स्त्री० (दे०) वृक्ष-विशेष, आउली का पेड़; (दे० ना० मा० ५, ५)।

तडि—स्त्री० (सं० तडित्) बिजली; (प० च० १२, ७, ७)।

तडि—स्त्री० (सं० तटे) समीप में; "आरोहिवि पह-तड उप्पडियह;" (प्रा० गु० २, ३, ३४)।

तडिकेस—पुं० (सं० तडित्+केश)

राक्षसवंशीय एक राजा, एक लंका-पति; (प० च० ६, ९६)। —वेअ पुं० (सं० तडित्+वेग) विद्याधर वंश का एक राजा; (प० च० ५, १८)।

तडिकेसि—पुं० विद्याधर वंशीय राजा; (प० च० ६, ९६)।

तडिखरतडि—स्त्री० (ध्व०) तडि-खर-तडि का शब्द; "खडतड-तडिखरतडि-तरडखोहु;" अर्थात् खर-तड, तडि-खर-तडि करते हुए तरड वाद्य क्षोभ अर्थात् आश्चर्यपूर्ण हलचल उत्पन्न करने लगा; (जंबू० १, १४, ७)।

तडिच्छड—स्त्री० (सं० तडित्+छटा) विद्युत की शोभा; (प्रा० गु० १३, ३७)।

तडिजीह—पुं० राक्षस योद्धा; (प० च० ५६, ३२)।

तडिणि—स्त्री० (सं० तटिनी) नदी; (व० ४, २३, १०)।

तडिनय—पुं० (ध्व०) तड़ से, थप्पड़ मारने या कड़ी चीज तोड़ने की आवाज; (स० रा०)।

तडिंगि—पुं० विद्याधरयोद्धा; (प० च० १२, ९५)।

तडिप्पभा—स्त्री० विद्याधर रानी; (प०-च० ६, १६६)।

तडिमाला—स्त्री० १. कुंभकरण (अप० कुंभकण्ण) की स्त्री; (प० च० ८, ५५)। २. रावण की स्त्री; (प० च० ७४, १०)।

तडिमाली—पुं० (सं० तडित्+माली) विद्युन्माली देव; (जंबू० ४, ७, २)।

तडियंगय—पुं० विद्याधर राजा; (प०-च० ५, २३३)।

तडिय—वि० (सं० तत) विस्तीर्ण, फैला हुआ; (जंबू० ९, १०, ८)।

तडियतडि—स्त्री० (ध्व०) तड़-तड़ का शब्द; (जंबू० १०, १९, ३)।

तडिलया—स्त्री० (सं० तडित्+लता) विद्युल्लता; (व० १, ६, ४)।

तडिवडण—न० (सं० तडित्+पतन) विद्युत-पतन; (जंबू० ५, ६, ७)।

तडिवाह—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १६)।

तडिविलसिअ—पुं० राक्षसयोद्धा; (प०-च० २३, २१)।

तडिवेअ, तडिवेग—पुं० विद्याधरवंशीय राजा; (प० च० ५, १८; ६, २०५)।

तण—(सं० तन) शरीर; (सं० रा०)। न० (सं० तृण>प्रा० तण) घास; (जंबू० ६, १३, ६; जस० १, ३, ६)। न० (दे०) उत्पल, कमल; (दे० ना० मा० ५, १)। —भूमि स्त्री० (सं० तृणभूमि) पृथ्वी का ऊपरी तल; (जंबू० १, ९, ४)। तणु—न० (सं० तृण) तिनका (हे० ३३४, १)।

तणअ—पुं० (सं० तनय>प्रा० तणय) पुत्र; (जंबू० ४, ७, ११)।

तणउ—अव्य० (संबंधवाचक) प्रति, संबंधी; (जंबू० १, ११, १९)।

तणउ—वि० (सं० तनु>प्रा० तणु) लघु, छोटा, "गउ णियघरु णंदणु तणउ लेवि;" अर्थात् उस छोटे से बालक को लेकर वह अपने घर चला गया; (क० २, ६, ४)।

तणमुद्दिआ—स्त्री० (दे०) अंगुठी; (दे०-ना० मा० ५, ९)।

तणय—पुं० (सं० तनय>प्रा० तणय) पुत्र; (जस० २, २१, ६; व० १, १७, ३)।

तणरासि, तणरासिअ—वि० (दे०) प्रसारित, फैलाया हुआ; (दे० ना० मा० ५, ६)।

तणवरंडी—स्त्री० (दे०) छोटी नौका; (दे० ना० मा० ५, ७)।

तणसोल्लि, तणसोल्लिया—स्त्री० (दे०) मल्लिका, वेले की जाति का एक सफेद और सुगंधित पुष्प वाला वृक्ष; (दे० ना० मा० ५, ६)।

तणिया—अव्य० षष्ठि (संबंधसूचक) अव्य० (स्त्री०); (जंबू० २, १६, ३)।

तणु—स्त्री० (सं० तनु, तनू स्त्री०> प्रा० तणु स्त्री०) देह, शरीर; (प्रा० गु० ३८, १)। —अंगि वि० (सं० तन्वङ्गी) दुबली-पतली; (जस० ४, २३, ६)। —अ वि० (सं० तनुक) क्षीण; (जंबू० ४, १८, ११)। —ई स्त्री० (सं० तन्वी) पतले शरीर वाली; (पइ)। —कंति स्त्री० (सं० तनुकान्ति) शरीर की शोभा; (जंबू० ३, १३, ३)। —चेट्ठा स्त्री० (सं० तनुचेष्टा) शारीरिक प्रयत्न या सेवा; (जंबू० १०, २३, ३)।—ताण पुं० (सं० तनु+त्राण) रक्षा-कवच; (जंबू० ६, ७, ४)। —पह स्त्री० (सं० तनु+प्रभा) देहकांति; (जंबू० ३, १०, ६)। —ब्भव वि० (सं० तनूद्भव) शरीर से उत्पन्न; (जंबू० ८, ६, ३)। —रुह पुं० (सं० तनुरुह) पुत्र; (जंबू० १०, ३, ६)।

तणुइअ—वि० (सं० तनूकृत) दुर्बल किया हुआ; (प० च० १६, ४)।

तणुकंचु—स्त्री० आवली की पुत्री; (प० च० ६, ११)।

तणुतावअ—वि० (सं० तनुतापक) शरीर को गरम करने वाला; (जस० ४, १६, १०)।

तणुफंस—पुं० (सं० तनुस्पर्श) शरीर का स्पर्श; (जस० २, ५, १२)।

तणुब्भव—वि० (सं० तनु+उद्भव> प्रा० तणु+ब्भव) शरीर से उत्पन्न। पुं० लड़का; (भ०)।

तणुरुह—पुं० (सं० तनु+रुह>प्रा० तणुरुह) लड़का; (भ०; जस० १, २३, १०)।

तणुलुहण—न० (दे०) तौलिया; (प० च० २६, ६, ३)।

तणुवन—न० (सं० तृण+वन) तिनकों का वन; (क० २, ४, ७)।

तणेसि—पुं० (दे०) तृण-राशि; (दे० ना० मा० ५, ३)।

तण्डव—पुं० (दे०) समूह; तुल० म० तांडा; (भ०)।

तण्डव—अक० (सं० ताण्डवय्>प्रा० तंडव) नृत्य करना। —इ (सं० नृत्यति) (भ०)।

तण्डविय—वि० (प्रा० तड्डविअ) विस्तीर्ण, फैला हुआ; (प० च० १६, १७, ६)।

तण्णाय—वि० (दे०) आर्द्र, गीला; (दे० ना० मा० ५, २)।

तण्ह—स्त्री० (सं० तृष्णा>प्रा० तण्हा)

प्यास; पिपासा; (जंस० ४, १४, ६; क० २, १६, ५)।

तण्हा—स्त्री० (सं० तृष्णा) प्यास, अभिलाषा, लालच; (व० १, १४, ६)। —उर वि० (सं० तृष्णातुर) प्यास से बेचैन; (क० ४, ७, ३)।

तत—सर्व०(सं+तत्) उसको; (की० ४, ६६)।

तत—वि० (सं० तावत्) उतना; (प्रा०-पैं० १, ४१)।

ततत—वि० (सं० तप्ततप्त>प्रा० तत्तत्त) गरमागरम; (की० २, १७८)।

तत्त—वि० (सं० तप्त) तपाया हुआ, गरम किया हुआ; (भ०; दे० ना० मा० १, १०५)। न० (सं० तत्त्व) १. सारवस्तु, २. वास्तविक बात, गुण। असलियत; (भ०)। —त्थ पुं० (सं० तत्त्वार्थ) सारार्थ तत्त्वार्थ, वास्तविकता हेतु; (जंबू० १०, ३, ११)।

तत्ताहो—वि० संतप्त; (महा० ६८,७)।

तत्ति—स्त्री० १. (सं० तृप्ति>प्रा० तत्ति) तृप्ति, संतोष; (प० च० १, ३, ३)। २. (दे०) आदेश; (दे० ना० मा० ५, २०) ३. (दे०) तत्परता; (प० च० ७, ८७)। ४. (दे०) चिंता; (म० १, २६, १)।

तत्तिय—वि० (सं० तृप्त) संतुष्ट; (जस० १, २१, ६)।

तत्तिय—स्त्री० (दे०) तत्परता, चिंता; (सुदं० ८, २२, ५)।

तत्तिल—वि० (दे०) तत्पर; (दे० ना०-मा० ५, ३)। तत्तिल्ल—वि० (दे०) तत्पर; (प० च० १, २६; दे० ना० मा० ५, ३)।

तत्तु, तेत्थु—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ; (हे० ४०४)।

तत्तुडिल्ल—न० (दे०) संभोग, कामक्रीड़ा; (दे० ना० मा० ५, ६)।

तत्तुरिअ—वि० (दे०) रंजित; (षड्)।

तत्थ—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ; (प्रा०-पैं० १, १०८)। —त्थि (सं० तत्रास्ति) वहाँ है; (व० १, ३, ६)।

तत्थ—स्त्री० (फ़ा० तश्त) तश्तरी; (की० २, १६२)।

तत्थि—क्रि० वि० (सं० तत्र>प्रा० तत्थ) वहाँ; (की० २, २२५)।

तदिदिखुदिखुंद—न० (ध्व०)तदिदि खुदि खुंद आदि का स्वर; (जंबू० ५, ६, १२)।

तद्दव्व—पुं० (सं० तत्+द्रव्य) वह धन; (जंबू० १०, ६, ८)।

तद्दिअच्चय—न० (दे०) नृत्य, नाच; (दे०-ना० मा० ५, ८)।

तद्दिअस, तद्दिअसिअ—न० (दे०) प्रतिदिन; (दे० ना० मा० ५, ८)।

तद्दिण —अव्य० (सं० तद्दिन) उस दिन; (भ०)।

तद्दिवस—अव्य० (सं० तत्+दिवस) उस दिन; (जंबू० ३, ६, ६)।

तद्दूण—वि० (सं० तद्द्विगुणित) वह दो गुना; (प० च० २७, ३, २)।

तनय—पुं० (सं० तनय>प्रा० तणय) पुत्र; (की० १, ७६)।

तन्ह—स्त्री० (सं० तृष्णा>प्रा० तण्हा) प्यास, पिपासा; तुल० म० तहान; (भ०)।

तन्हाविय—वि० (सं० तृष्णायित) प्यासा; म० तान्हवलेला; (भ०)।

तप्प—वि० (सं० तप्त) गर्म; "मणि तप्पइ पुणु जंपइ ताएं विणु किह जिज्जइ," अर्थात् वह अपने मन में तृप्त होकर बार-बार कह उठता कि पिता के बिना कैसे जिया जायेगा; (जस० २, २५, १६)।

√तप्प—(सं० तप्) तपना। —इ व० (प्रा० पैं० १, ७२)। तप्पे—भू० का०, संतप्त किया, 'कुल खत्तिअ तप्पे,' क्षत्रिय कुल को संतप्त किया; (प्रा० पैं० २, २०७)।

तप्पणदेवय—पुं० (सं० तर्पण देवता) तर्पण किया जाने वाला देवता; कर्मकांड की एक क्रिया, जिसमें देव को तुष्ट करने के लिए हाथ से या किसी पात्र से पानी देते हैं; (जंबू० ४, १७, १३)।

तप्पर—वि० (सं० तत्पर) आसक्त; (दे० ना० मा० ५, २०)।

तप्पवेसु—पुं० तपस्वी का वेश या रूप; (प० च० १८, ६, ६)।

तबहु—अव्य० तो भी; (की० २, १८५)।

तमंधयार—पुं (सं० तमोऽन्धकार) प्रबल अंधकार; (प० च० १७, १०)।

तम—पुं० (दे०) शोक, ग्लानि, अफसोस; (दे० ना० मा० ५, १; प० च० १८, ५, ७)। पुं० (सं० तमस्) अंधकार; (भ०)।

तमकुण्डा—पुं० (सं० ताम्रकुण्ड) तांबे का कुंड या चौड़ा वर्तन, (की० २, १७५)।

तमण—न० (दे०) चूल्हा; (दे० ना० मा० ५, २)।

तमणाम—पुं० (सं० तमस्नाम > प्रा० तमणाम) तमःप्रभा नरक भूमि; (जंबू० ११, १०, ८)।

तमणासण—वि० (सं० तमनाशन) अंधकार को नष्ट करना। (जंबू० १०, २३, ३)।

तमणि—पुं० स्त्री० (दे०) १. हाथ, २. भूर्ज, वृक्ष-विशेष की छाल; (दे० ना० मा० ५, २०)।

तमणियर—पुं० (सं० तमस् + निकर) अंधकार का समूह; (जंबू०)।

तमतमपह—पुं० (सं० तमस्तमःप्रभ) सप्तमनरकनाम; (जस० २, १६, ३०)।

तमनिवहत्य—न० (सं० तमनिवहास्त्र) प्रक्षेपास्त्र; (प० च० १२, १३०)।

तमपह—पुं० (सं० तमःप्रभ) छठा नरकनाम, नरकभूमि; (जस० २, १६, ३०; व० १०, २३, २)।

तमस—न० (सं० तमस्) अंधकार; (प० च० ३६, ८)।

तमारि—पुं० (सं० तम + अरि) सूर्य; (जंबू० ५, ११, १६)।

तमाल—पुं० (सं० प्रा० तमाल) वृक्ष-विशेष तथा उसका फूल; (जस० ३, १, १८)।

तमालि—स्त्री० अंधकार का समूह; (जंबू० १०, ६ ४)।

तमिस्स—न० (सं० तमिस्र > प्रा०

तमिस) अंधकार; (दे० ना० मा० २, २६)।

तमी—स्त्री० (सं० तमी) रात्रि, रात; (जंबू० ४, ५, २२)।

तमोह—पुं० (सं० तमस्+ओघ) अंधकार का समूह; (जस० २, २, ७)।

तम्बारु—पुं० (सं० ताम्र+वारक) ताँबे का घड़ा या लोटा; (की० २, १६८)।

तम्बोलु—पुं० (सं० ताम्बूल>प्रा० तंबोल) पान; (प० च० १, १४, ५)।

तम्मइ—वि० (सं० तन्मय), तिरोहित; (व० २, १, ४)।

तम्बिर—वि० (सं० ताम्र) ताँबे के रंग का, लाल; (प० च० १६, १७, ६)।

तम्बेरम—पुं० (सं० स्तम्बेरम>प्रा० तंबेरम) हस्ती, हाथी; (प० च० ११, ५, ५)।

तम्वोल—न० (सं० ताम्बूल>प्रा० तंवोल) पान; (प० च० २३, ६, ७)।

तय—वि० (सं० तत) विस्तारयुक्त; (दे० ना० मा० १, ४६)। न० (सं० तत) वीणा आदि, तारों वाला वाजा; (व० ८, ६, ५)।

तयसार—पुं० (सं० त्वच्+सार>प्रा० तया+सार) त्वचा का मूल भाग; (व० ५, १३, ८)।

तओं—क्रि० वि० (सं० ततः>प्रा० तओ) तभी; (की० ३, ७)।

तरंग—स्त्री० (सं० तरङ्ग> प्रा० तरंग) कल्लोल, पानी की लहर; (जस० १, २८, ८)।

तरंगतिलअ—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १२)।

तरंगमाला—स्त्री० गंधर्व (गंधव्व) राजा की पुत्री; (प० च० ५१, १३)।

तरंगिणि—स्त्री० (सं० तरङ्गिणी) नदी; (जस० ३, १, २०; व० ३, १, ७)।

तरंड—पुं० न० (सं० तरण्ड>प्रा० तरंड) नौका; (व० ७, ६, १०)। तरंडो — नाव; (प्रा० पैं० १, १)।

√तर—(सं०√तॄ>प्रा० तर) तरना, पार करना। —इ व० (सं० तरति) (प्रा० पैं० १, ३६)। तरंति—व० (जंबू० ७, १, १०)। तरंत—कृ० (सं० √तॄ+शतृ) (जंबू० ६, ६, ८)। तरन्त—व० कृ० तैरते हुए; (प० च० १४, ५, ७)। तरवि—पू० का० क्रि०, (जंबू० १०, १०, २)। तुल० म० तरणें, गु० तरे। तरिय—पू० का० क्रि०, (सं० तॄ+क्त्वा) (जंबू० १०, १०, २)। तरिल्लु—भू० का० (सं० तॄ+इल्ल) पार किया; (जंबू० ५, ७, १२)।

तरच्छ—पुं० स्त्री० (सं० तरक्ष>प्रा० तरच्छ) प्राणि-विशेष, व्याघ्र की एक जाति; तुल० म० तरस; (जस० २, ३७, ७)।

तरट्ट—वि० (दे०) प्रगल्भ; (जंबू० ६, ३, ८)।

तरट्टि—स्त्री० (दे०, प्रा० तरट्टी) प्रगल्भ स्त्री; (प० च० ११, ४, ६)। २. प्रोढ़ा नायिका; (सुदं० ५, ४, ११)।

तरडकतरडक—पुं० (व्व०) संगीत के यंत्र द्वारा तड़क-तड़क की आवाज निकालना; (प० च० ५६, १, ८)।

तरणि—पुं० (सं० तरणि) सूर्य; (प०-च० १, ४, २; प्रा० पैं० १, ६२; व० २, २०, १६)।

तरण्डय—पुं० न० (सं० तरण्ड+क) डोंगी, नौका; (प० च० २४, ८, ७)।

तरल—वि० (सं० प्रा० तरल) चंचल, अदृढ़; (भ०; जंबू० ३, १, १७)। —च्छि स्त्री० (सं० तरल+अक्षि) चंचल नेत्र; (जंबू० ४, ८, ४)। —तर वि० अधिक चंचल; (कौ० १, ६६)। —दल पुं० (सं० तरल+दल) चंचल पत्र; (जंबू० ४, १६, ३)।

तरल—पुं० वानरयोद्धा; (प० च० ५७, १३)।

तरलणअणि—स्त्री० तरलनयनी छंद; "तरलअणि सब करु लहु;" 'तमल नयनी छंद में सब वर्णों को लघु करो;' (प्रा०-पैं० २, १३७)।

तरलाविअ—वि० (सं० तरलित) चंचल किया हुआ, चलायमान किया हुआ; (भ०)। तरलाविय—वि० चलायमान; (भ०)।

तरलिअ—वि० (सं० तरलित) चंचल किया हुआ; (क० १, १४, ११)।

तरवट्ट—पुं० (दे०) वृक्ष-विशेष; चकवड, (दे० ना० मा० ५, ५)।

तरवार—स्त्री० (सं० तरवारि) तलवार एक प्रसिद्ध धारदार हथियार; (जंबू० ७, ६, ७)।

तरवारिधारा—स्त्री० (सं० तरवारि+धारा) तलवार की धार; (कौ० १, १०२)।

तरवाल—वि० (सं० त्वरा>प्रा० अप० तरा) त्वरायुक्त, वेगयुक्त; (कौ० ४, ५१)।

तरस—न० (दे०) मांस; (दे० ना० मा० ५, ४)।

तरसा—स्त्री० (सं० तरस्) वेग, चाल; (जस० ४, २७, ३०)।

तरसि—पू० का० क्रि०, (सं० √त्रस्) डर कर; (कौ० ४, १३०)।

तरिअव्व—न० (दे०) एक तरह की छोटी नौका; (दे० ना० मा० ५, ७)।

तरिय—वि० (सं त्वरित) शीघ्र; (व० ६, १२, ८)।

तरियहु—पुं० तैरने वाले, तैराक; (जंबू० १०, ११, ७)।

तरी—स्त्री० (सं० तरी) नौका, डोंगी, (दे० ना० मा० ६, ११०)।

तरीअ—स्त्री० (सं० तडित) बिजली; (रा०)।

तरु—पुं० वृक्ष; (जस० १, ११, ६; व० २, ११, ४)।

तरुकाय—पुं० वनस्पतिकाय; (जस० ४, १८, १४)।

तरुण—वि० (सं० प्रा० तरुण) जवान; (प० च० ५, १६८)। —त्त पुं० (सं० तरुणत्व) जवानी; (प्रा० पैं० २, ८५)। —त्तण पुं० (सं० तरुणत्व) तारुण्य; (जंबू० २, १८, ३)।

तरुणि—स्त्री० (सं० प्रा० तरुणी)

युवति, जवान स्त्री; (प्रा० पैं० १, ४)। तरुणी; (जस० १, १६, ३)।

तरुराई—स्त्री० (सं० तरुराजि) वृक्षावलि; (व० २, ७, १२)।

तरुवर—पुं० (सं० तरुवर) १. वृक्ष; (व० १, ८, १३)। २. लकड़ी; "तिणि-तरुवरें-गिरिवरि पियणवरें समरंगणि उक्कंठिउ;" (व० ४, १०, १४)।

तरुवेल्लीहल—न० (सं० तरु+वल्ली+फल) वृक्ष की वेल का फल; (जस० २, २७, ६)।

√तर्प्प—(सं० तृप्) तृप्त होना, (उ० व्य० प्र० ५१-२०)।

तर्हि—अव्य० (सं० तर्हि) १. उस समय, तव, २. उस विषय में, (उ० व्य० प्र० २१, २१)।

√तल—(सं० तल्) तलना, तेल आदि मे भूनना। तलिज्जइ—कर्मवा० (जंवू० २, २, २)।

तल—न० (सं० तल) सतह, निम्न भाग, नीचे का भाग, (उ० व्य० प्र० ६-२३; व० ३, ६, ३)। पुं० (सं० ताल>प्रा० तल) वृक्ष-विशेष; ताड़ का पेड़; (प० च० ५३, ७६)। न० (दे०) १. शय्या, बिछौना; २. पुं० गाँव का मुखिया; (दे० ना० मा० ५, १६)।

तलआगत्ति—पुं० (दे०) कूप, इनारा; (दे० ना० मा० ५, ८)।

√तलप्प—(सं० तप् का धात्वादेश तल्लप=तपना, गर्म होना) तड़पना; (की० ४, ३१)।

तलप्पर—पुं० (दे०) प्रहार (stroke, slap); (प० च० ३१, ६, ६)। तलप्पंत—कृ० उछल कर आते हुए; (जंवू० ५, १४, ६)।

√तलप्फ—काँपना, तडफना। —इ व० (प्रा० पैं० १, १०८)।

तलप्फल—पुं० (दे०) शालि, चावल; (दे० ना० मा० ५, ७)।

तलवट्ट—न० सं० उपत्यका। पर्वत के नीचे की भूमि, पहाड़ की तलहटी; तुल० गु० तळेटी; (प्रा० गु० ७, ४०)।

तलवत्त—पुं० (दे०) १. कान का आभूषण-विशेष; २. वरांग, उत्तमांग; "तलवत्तो कर्णाभिरणविशेषो वराङ्गं च;" (दे० ना० मा० ५, २१)।

तलवर—पुं० (दे०, प्रा० तलवर) नगररक्षक कोटवाल; (प० च० १७, १८, ४)।

तलवायह—पुं० (दे०) तलस्पर्शी गति से तैरना; (जंवू० ४, १६, १०)।

तलसारिअ—वि० (दे०) १. गालित (छाना हुआ, चुआया हुआ, खींचा हुआ) २. मुग्ध, मूर्ख; (दे० ना० मा० ५, ६)।

तलाउ—न० (सं० तडाग>प्रा० तलाग, तलाव) तलाव, तडाग; (सा० १७०)।

तलाउलिअ—पुं० (सं० तडागिका) बावड़ी; तुल० गु० तळावडी; (प्रा० गु० ६, १७)।

तलाएँ—न० (सं० तडाग>प्रा० तलाग, तलाय) तालाव, सरोवर; (प० च० २, २, ३)।

तलाय—न० (सं० तडाग>प्रा० तलाय) तालाव; (जंवू० ४, ६, ४)।

तलार—पुं० (दे०) कोतवाल, नगर-

रक्षक; (दे० ना० मा० ५, ३; संवि० १२, ३, १७; प० च० ३५, ६, ६)।

तलारक्ख—पुं० (दे०) नगर-रक्षा का कार्य; (प्रा० गु० ५, ३७)।

तलि—पुं० (सं० तल) तल, तली; (हे० ३३४, १; म०)।

तलिण—वि० (सं० तलिन) सूक्ष्म, बारीक; (दे० ना० मा० ५, ६)।

तलिण—वि० (दे०) कोमल, चमकदार, चिकना, मनोहर; "नील-तलिण-कंचुलिय-अलंकिय तहिं वर-केस कलाविण चंगिय;" (प्रा० गु० १३, ३८)।

तलिम—पुं० न० (दे०) १. शय्या, बिछौना; २. पत्थर जड़ा हुआ फर्श; ३. घर के ऊपर की भूमि; ४. शय्य-गृह, ५. भूनने का भाजन; (दे० ना० मा० ५, २०)।

तलिमा—स्त्री० (सं० तलिमा) तिमिला, वादित्र-विशेष; (प० च० ६१, २)।

तलिय—न० (सं० तलित) तला हुआ मांस; (जस० ३, ६, ३)।

तलेर—पुं० (दे०) नगर-रक्षक, कोतवाल; (म०)।

तल्ल—न० (दे०) १. छोटा तालाब; २. तृण-विशेष; ३. बिछौना; (दे० ना० मा० ५, १६; पइ)।

तल्लट्ट—न० (दे०) शय्या, बिछौना; (दे० ना० मा० ५, २)।

तल्लवेल्ल—पुं० (दे०) व्याकुलता; तुल० गु० तालावेली; (प० च० ३८, ५, ८)।

तल्लिच्छ—वि० (सं० तत्+लिप्स) तल्लीन, तत्पर; (प० च० ११, ६७; दे० ना० मा० ५, ३)। —य वि० इच्छुक; (प्रा० गु० ३, १८)।

तल्लूविल्लि—स्त्री० (दे०) तड़फड़ाहट; (जंबू० ६, १०, ५)।

तवंग—पुं० १. उच्चप्रदेश; (जस० १, २७, १७)। २. गृहविभाग-विशेष; (प० च० ५५, ५, ४)। ३. प्रासाद; (जंबू० ४, १६, १६)।

तवंत—वि० तप्यमान; (जस०)।

तवंतर—पुं० (सं० तप+अन्तर) तप-प्रकार; (जंबू० ३, १०, १०)।

तव—अव्य० (सं० तदा) तब; (उ० व्य० प्र० ६-१४)।

√तव—(सं०√तप>प्रा० तव) गर्म होना, तपना। —इ व० (सं० तपति) तप्त होना; तुल० म० ताव; (प्रा० पैं० २, ४०; हे० ३७७, १)। तवउ—क्रि० आ० (सं० तपयु>प्रा० तव) तपे; (प० च० १७, १८, ७)।

तव—न० (सं० तपस्) तपना; (सं० रा०)।

तवण—पुं० (सं० तपन>प्रा० तवण) सूर्य; (सं० रा०; जंबू० ८, १४, ४)।

तव—सर्व० (सं० तव) तेरा; (जंबू० ४, ६, १४)।

तव—पुं० न० (सं० तपस्>प्रा० तव) तप, तपस्या, तपश्चर्या; 'णिय-सत्तिए गुरु-यर-भत्तिए तव-सिरिहरमुणि णंदिउ;" अर्थात् अपनी शक्तिपूर्वक तथा गुरुतर भक्तिपूर्वक तपश्री के गृहस्वरूप श्रीधर मुनि द्वारा नंदित बने रहो; (व० १, १७, १३)। —गहण पुं० तप-ग्रहण; (जंबू०

३, ८, १) । —चरण न० (सं० तपस् +चरण) तपस्या, तपश्चर्या; (क० २, १३, ७) । —तविय वि० (सं० तपस्+ तपित) तप से तपाए हुए; (जंबू० ८, ४, १०) । —पहाअ पुं० (सं० तपः प्रभाव) तप का प्रभाव; (जस० १, २३, ३) । —पहाव पुं०(सं० तपः+प्रभाव) तप की शक्ति; (व० २, १०, १०) । —फल न० (सं० तपः+फल) तपस्या का परिणाम; (जबू०१०, २६,६) । —यरण न० (सं० तपश्चरण) तपश्चर्या; (जस०२,२१, ८) । —लच्छी स्त्री० (सं० तपः+लक्ष्मी) तपोलक्ष्मी, तप रूपी धन, ऐश्वर्य; (जस० ४, २८, ७) । —सत्ति स्त्री० (सं० तपः शक्ति) तप की शक्ति; (जस० ३, ३८, १२) । —साहिअ वि० (सं० तप+ साधित) तप द्वारा सिद्ध किया हुआ, तप द्वारा दमन किया हुआ; (जंबू० ३, १३, १५) । —सि वि० (सं० तपस्विन्> प्रा० तवस्सि) तपस्या करने वाला; (प०-च० ७, ४, ४; क० ६, ५, ६) । —सित्तण पुं० (सं० तपस्वित्व) तपस्वीपन; (जस० ३, २३, ३) । —सिय स्त्री० (सं० तप-श्री) तपश्री, "तव-सिय-वहुयलइय सइँ हत्थें;" तपश्री रूपी वधू का पाणिग्रहण कर लिया; (प० च० ६, १५, ६) । —सिरी स्त्री० (सं० तप; श्री) तप रूपी कांति या चमक, "तवसि-रिभूसियंगु;" अर्थात् तपःश्री से भूषित अंग; (जस० ४, ६, २; जंबू० ३, ६, १) । तवु—पुं० न० तप; (महा० ६८, ७) ।

तवय —वि० (दे०) किसी कार्य में लगा हुआ; (दे० ना० मा० ५, २) ।

तविअ—वि० (सं० तप्त) तपा हुआ, गरम; (जस० २, २२, २) ।

तविआ—स्त्री० (सं० तापिका) तवे का हत्था; (दे० ना० मा० १, १६३) ।

तवु—न० (सं० त्रपु>प्रा० तउ, तउअ) धातु-विशेष, सीसा, राँगा; (प० च० ११८, ८) ।

तवे—क्रि० वि० (सं० ततः>प्रा० तओ) तब; (की० २, ४६) ।

तवेल्ला—न० (दे०) कूँडा; (की० २, १६२) ।

तवोधर—पुं० (सं० तपस्+धर) तपस्वी, मुनि; (प० च० २०, १६५) ।

तवोवण—न० (सं० तपोवन) ऋषि का आश्रम; (जंबू० ८, ११, २) ।

तवोहणु—पुं० (सं० तपोधन) तपस्वी, "तहिँ दिट्ठु तवोहणु कसणु एक्कु;" (क० ६, ६, ८) ।

तव्वे— क्रि० वि० तब; (की० [३, ८) ।

तव्वेल—क्रि०, वि० सं० तदा; तब; (प० च० ३७, १३, ३) ।

तस—पुं० (सं० त्रस>प्रा० तस) जीव; (व० २, २२, ४) ।

√तस—(सं०√त्रस्> प्रा० तस) डरना, त्रास पाना; (जस० २, ११, ६) । —इ अक० (सं० त्रस्यति) (जंबू० ३, ६, १४) ।

तसि—सर्व० (सं० तस्य) उसके; (णे०) ।

तसिअ—वि० (सं० तृषित) तृषातुर, पिपासित; (दे० ना० मा० ५, २) ।

तसु—सर्व० (सं० तस्य) १. उसका; (की० १, १५)। २. उसे; (हे० ३४३, १)।

तसुफेरा—सर्व० उनके; (की० २, १२५)।

तस्स—सर्व० (सं० तस्य) उसके; (वी० १, १)। तस्सु; (हे० ४१६, ३)।

तस्सेय—वि० (सं० तत् श्रेयस्) वह अपेक्षाकृत अच्छा, श्रेष्ठतर; (भ०)।

तहं—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ; (रा०)। तहँ; (प्रा० पैं० १, ११८)।

तह—वि० (सं० तथा) १. उस प्रकार का; (रा०)। २. वैसे; (प्रा० पैं० १, ५०)। ३. वहाँ; (सं० रा०)। ४. तथा; (जंबू० २, ६, १२)।

तहरी—स्त्री० (दे०) पंकवाली सुरा; (दे० ना० मा० ५, २)।

तहल्लिआ—स्त्री० (दे०) गौओं का वाड़ा; (दे० ना० मा० ५, ८)।

तहवि—अव्य० (सं० तथापि) तो भी; (जंबू० २, ६, १०)।

तहा—अव्य० (सं० तथा>प्रा० तहा, तह) उसी तरह, "तहा वत्थुरूवं अहंबुद्धिलुद्धा;" (जंबू० १, १८, १२)। २. वहाँ; (की० ४, २०७)।

तहाभूय—वि० (सं० तथा+भूत>प्रा० तहा, तह+भूय) उस प्रकार का; (प०-च० २२, ६५)।

तहिं—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ ही, तुल० मगही तहिं, (सरहपा, दोहाकोश; महा० ६८, ८)। २. तव; (की० ४, २२७)।

तहिँ—अव्य० (सं० तत्र>प्रा० तहिं, तहि) वहाँ; (प० च० १, ११, ५; जंबू० ७, ६, १३)।

तहि—सर्व० सं० तस्य; उसका; गु० तेनु; (संधि० १७, ७, ८)।

तहि तहि—अव्य० (सं० तत्र तत्र>प्रा० तहि तहि) वहाँ-वहाँ; (की० ४, १६०)।

तही—स्त्री० (सं० तापिका) तई, थाली के आकार की चौड़ी कड़ाही; (की० २, १६२)। टि०–सं० तापिका शब्द हर्षचरित में प्रयुक्त हुआ है (तलक-तापक-तापिका-ताम्र-चरु-कटाह- संकट- पिटक-भारिकैः, सप्तम उच्छ्वास, पृ० २११)।

तहु—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ; (महा० ६८, २)। सर्व० (सं० तस्य) उसका; (महा० ६६, १८, १२)।

तहेँ—सर्व० सं० तस्याः; उसका; (हे० ३५६, १)।

तहेय,—अव्य० (सं० तथैव) उसी तरह, उसी प्रकार; (पइ)।

तहेव—अव्य० (सं० तथैव>प्रा० तहेव, तहेय) उसी तरह, उसी प्रकार; (प०-च० १६, १२, ८)।

तहों—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ, उसमें; (प० च० १२, २, १)।

तांडव—पुं० सर्वलघु त्रिकल गण (।।।) का नाम; (प्रा० पैं० १, २०)।

तांतण—पुं० (सं० तन्तु>प्रा० तंतु) सूत, तागा, धागा; तुल० गु० तांतणो; (प्रा० गु० २९, ४, ३)।

तांहा—अव्य० (सं० तत्रैव) वहाँ पर ही, (उ० व्य० प्र० २०-१०)।

तांति—स्त्री० (सं० तन्तु) चमड़े या

नसों की बनी हुई डोरी; भेड़, बकरी की अंतड़ी या चौपायों के पुट्ठों को बटकर बनाया हुआ सूत, तांत; (कण्ह० चर्या० १०)।

ता¹—अव्य० (सं० तावत्>प्रा० ताव) इन अर्थों का सूचक अव्यय १. तब तक, २. तब, उस समय; (प० च० २, १०, १; जंबू० १०, ५, १२)।

ता²—सर्व० (सं० तद्) उस; (की० १, ६८)।

ता³—अव्य० (सं० तदा) तब; (क० १, ११, ४; महा० ६८, ३)।

ताअ¹—पुं० तात, आदि गुरु चतुष्कल गण (ऽ।।); (प्रा० पैं० १, २६)।

ताअ²—पुं० (सं० तात) पिता, बाप; (क० ३, १६, ८)।

ताइँ ताइँ— सर्व० (सं० तानि-तानि) उनका-उनका; (जंबू० ४, १२, १४)।

ताइम्मि—सर्व० (सं० तानि+अपि) उनका भी; (जंबू० ४, ४, ६)।

ताइय—पुं० ताजिक, पार्शिया, पारस या फारस देश, देश-विशेष-नाम; (जंबू० ६, १६, १०)।

ताउं—अव्य० (सं० तावत्) उस समय तक; (रा०)।

ताउँ—अव्य० (सं० तावत्) तभी तक; (हे० ४०६, २)।

ताउ—अव्य० (सं० तावत्>प्रा० ताव) तब तक, उस समय; (क० १, ६, १)।

ताउ—पुं० १. (सं० ताप) उष्णता, गर्मी; (जंबू० ८, १४, ८)। २. (सं० तात) पिता; (विला०)।

ताए—सर्व० (सं० तया) उसके द्वारा; (जंबू० २, १७, ६)। क्रि० वि० (सं० तदा>प्रा० तया) तब, उस समय; (व० १, १४, ७)।

ताकं—पुं० ताकना; स्थिर दृष्टि से देखना; (सं० रा०)।

ताकि—पू० का० क्रि०, देखकर, भाँपकर; (की० २, १८४)।

ताग—पुं० (पह० ताक, फ़ा० ताग) धागा; (रा०)।

ताजी, ताजि—पुं० एक अरबी घोड़ा; (की० ४, २८; ४, ६२)।

ताडंक—पुं० (सं० ताडङ्क) कान में पहनने का आभूषण-विशेष; कुंडल, ताटंक; (दे० ना० मा० ६, ६३; सं०-रा०)।

√ताड—(दे०) विस्तार करना, गुणाकर करना; (प्रा० गु० २२, १३)।

ताडिज्जइ—कर्मवा० तानना; "अंगणि चंदोवउ ताडिज्जइ;" आंगन में चँदोवा तानना चाहिए; (सुअंध १, १२, १)।

√ताड—(सं० ताडय्>प्रा० ताड) ताड़न करना, पीटना। —इ सक० (सं० ताडयति); (भ०; जंबू० ६, ८, २०)। २. आघात करना, बजना। ताडिय—भू० का०; बजी; (प० च० १२, १०, ८)।

ताडण—न० (सं० ताडन>प्रा० ताडण) ताड़न, पीटना; (जस० ४, ६, ११)।

ताडिअय—न० (दे०) रोदन, रोना; (दे० ना० मा० ५, १०)।

ताडिय—वि० १. (सं० ताडित>प्रा० ताडिअ) जिसका ताडन किया हो वह;

पीटा हुआ; (जस० २, ७, ३)। २. वि० (दे०) विस्तारित; (प्रा० गु० २६, १७)।

ताण—सर्व० (सं० तान्) उन्हें; (हे० ३३१, १)।

ताणन्तरें—अव्य० (सं० तदनन्तरम्) उसके अनंतर; (प० च० १५, १, ७)।

ताण-मुक्कु— वि० (सं० मुक्तत्राण) संत्रास से मुक्त; "पं॰यञ्चेवि वन्द वि ताण-मुक्कु" —वहाँ सन्त्रास से मुक्त जिन की प्रदक्षिणा और वंदना की; (प० च० १०, २, ८)।

ताणय—न० (सं० त्राण>प्रा० ताण) शरण, रक्षण; (भ०)।

ताणावलि—स्त्री० (सं० तान (स्वर-ताल)+आवलि) स्वर-लहरी; "नं अणंगअंगुलिताणावलि;" अर्थात् मानो अनंग की अंगुलियों से उत्पन्न होने वाली स्वर-लहरी हो; (जंबू० ४, १३, ३)।

ताणु—न० (सं० त्राण>प्रा० ताण) रक्षणकर्ता; (प० च० १३, १०, ३)। लइय-ताणु—(त्राण, कवच और तान) (प० च० १३, १०, ३)।

तात—वि० (सं० तप्त) गरम; (की० ३, ३६)।

तातडी—स्त्री० (दे०) चिंता; (प्रा० गु० ३८, ४६)।

तातल—वि० (सं० तप्त>प्रा० तत्त) गरम; तुल० मैथिली तातल; (की० २, १७५)।

तातौ—अव्य० (सं० ततः) उससे; "तातौ अम्हे ईहां आछ' —'ततो वयमिहास्महे;' (उ० व्य० प्र० १४-२८)।

ताम—१. पुं० (सं० ताम्य>प्रा० अप० तम्म) खेदयुक्त क्रोध; (की० ४, ३७)। २. सर्व० (स्त्री०) (सं० ताम्) वह; (वी० १, २)। अव्य० (सं० तावत्> प्रा० ताव) १. तब तक; (भ०)। २. तब; (व० १, १०, १)। —हि, हिं तब तक; (सुदं० ६, १६, ६; जंबू० २, २, ११)।

तामर—वि० (दे०) रम्य, सुंदर; (दे०-ना० मा० ५, १०)।

तामरस—न० (दे०) जल में उत्पन्न होने वाला पुष्प; (दे० ना० मा० ५, १०)।

तामलित्ति—स्त्री० (सं० ताम्रलिप्ति) पुरी (+नगर)-विशेष; एक प्राचीन नगरी; (क० १०, १०, ५)।

तामस—वि० (सं० तामस) तमोगुण वाला, (प० च० ८, ५०)। पुं० पाप, तामस (भाव); (जस० २, ११, ३)।

तामसत्थ—न० (सं० तामसास्त्र) कृष्ण वर्ण का अस्त्र-विशेष; (प० च० ५६, ६३)।

तामिच्छ—न० (दे०) कज्जल; (सं०-रा०)।

ताय—पुं० (सं० तात) पिता; (क० ७, १५, २)।

तारंकिय—क्रि०, भू० का० (सं० ताराकित) तारे निकल आए; (व० ५, १२, २)।

तार—स्त्री० (सं० प्रा० तारा) १. आँख की पुतली; (प० च० ६, ४, ६)। २. तारा, नाम-विशेष; (भ०; व० १, ५,

८)। पुं० असुर देवता; (क० २, २, ३)। वि० (सं० प्रा० तार) विशाल, उच्च; (जंबू० ७, १, ५)।

√तार—(सं० तारय्) तारना। —इ व० (जंबू० ११, २, १०)। २. सफल बनाना; (की० ४, ३३)। तारिह—भ०-का०, तारेगा; (उ० व्य० प्र० २१, २०)।

तारअ'—पुं० (सं० तारक>प्रा० तारग) ग्रह-नक्षत्र; (रा०)।

तारअ''—पुं० तारक छंद, एक वर्णिक छंद; (प्रा० पैं० २, १४३)।

तारग—पुं० तारक, द्वितीय प्रतिवासुदेव; (प० च० ७०, ३७)।

तारजसु—पुं० (सं० तार+यशः) यशोगान, "गाइज्जइ संतिउ तारजसु;" अर्थात् शांतिनाथ का महान् यशोगान किया; (जंबू० १, ४, ५)।

तारय—वि० (सं० तारक>प्रा० तारग) तारने या पार लगाने वाला; (प्र०-चि०)।

तारा—स्त्री० (सं० प्रा० तारा) १. नक्षत्र; (व० १०, ३४, ३)। २. मोती; "विलंवंतहारावलीतेयतारा," अर्थात् उसकी लटकती हुई हारावली के मोती दीप्तमान हो रहे थे; (जस० ४, १७, २०)। —णियर (सं० तारानिकर) तारा-पुंज; (जस० २, २६, २)। —यण पुं० सं० तारागण, नक्षत्र-समूह; (सं० रा०; व० ३, २१, १०)। —वलि स्त्री०(सं०तारा+आवलि)तारों की पंक्ति; (जस० २, २, ५)। —हिवइ पुं० (सं० ताराधिपति) चंद्रमा; (सं० रा०)।

तारिय—वि० (सं० तारित) पार उतारा हुआ; (भ०)।

तारुण्ण—न० (सं० तारुण्य>प्रा० तारुण्ण, तारुन्न) यौवन; (प्रा० पैं० २, १८७)। —कंदपुं०(सं० तारुण्य+कन्द> प्रा० तारुण्ण+कंद) तारुण्य रूपी वृक्ष; (जंबू० ४, १६, १३)। —य (सं० तारुण्य+क); (जस० १, २४, ८)। तारुन्न; (व० ३, २०, १०; की० २, १३३)।

तारोह—पुं० (सं० प्रा० तारा+ओघ) नक्षत्र-समूह; (जंबू० १०, १८, १०)।

तालंक—पुं० (सं० ताडङ्क) छंद-विशेष, ताटंक, स्कंधक का भेद; (प्रा० पैं० १, ७५)।

तालंकि—पुं० स्त्री० (सं० तालङ्किन्) छंद-विशेष, ताटंकी, रसिका छंद का भेद; (प्रा० पैं० १, ८६)।

ताल—पुं० (सं० प्रा० ताल) ताल वृक्ष का फल; (दे० ना० मा० ६, १०२)। स्त्री० वाद्य-विशेष; (प्रा० गु० ३२, ३)। पुं० (सं० तालः) (छंदशास्त्र में) अंत लघु त्रिकल; (प्रा० पैं० २, ११०)। न० विशाल तालवृंत (पंखा); (व० ६, १३, २)। —अ न० ताला, द्वार बंद करने की कल; (जंबू० ३, ११, ६)। —प्फली स्त्री० (दे०) दासी, नौकरानी; (दे० ना० मा० ५, १)। —वत्त न०(सं० तालपत्र) ताड़ का पत्ता; (प० च० २६, १६, ७)। —हल पुं० (दे०) शालि, चावल; (दे० ना० मा० ५, ७)। तालु—पुं० वाद्य-विशेष; (जस० १, ५, १८)।

ताला—स्त्री० (दे०) खोई, धान का लावा; (दे० ना० मा० ५, १०)।

तालिय—वि० (सं० ताडित>प्रा० तालिअ) आहत, पीटा हुआ; (प० च० १३, ८, १; जस० ३, १२, १३)।

ताली—स्त्री० एक वर्णिक छंद; (प्रा०-पैं० २, १७)।

तालु—न० (सं० प्रा० तालु) तालु, मुँह के ऊपर का भाग; (जंबू० २, १८, ११)। "तालू सुक्कइ जेण;" (पाहु०)।

तालुर—पुं०(दे०) १. फेन, २. कपित्थ-वृक्ष; ३. पानी का आवर्त; (दे० ना०-मा० ५, २१)।

ताव—अव्य० (सं० तावत्>प्रा० ताव) तब तक, उसी समय तक; (प० च० ६८, ५०; जबू० ८, १४, ३; क० १, १३, २); तावँ; (की० ३, १५३)। —हिं अव्य० १. तब तक; (प० च० २, २, १)। २. वैसे ही; (प० च० ३, ४. ८)।

√ताव—(सं० तापय्>प्रा० ताव) तपाना, गरम करना। —हि (विधि०)। (जंबू० १०, २, ६)।

ताव—पुं० (सं० ताप>प्रा० ताव) ताप, गरमी; (जस० १, १३, १)।

तावण—पुं० (सं० तापन) इक्ष्वाकु वंश का एक राजा; (प० च० ५, ५)।

तावलिप्ति—पुं० (सं० ताम्रलिप्ति) नगर-विशेष-नाम, तमलुक (बंगाल)। (जबू० ९, १६, ९)।

तावस—पुं० (सं० तापस) तपस्वी, योगी; (भ०; क० ८, ८, ३)।

ताविअ—स्त्री०(सं० तापी>प्रा० तावी) नदी-विशेष; (प० च० २७, ११, ७)।

ताविअ—वि० (सं० तापित>प्रा० ताविअ) तपाया हुआ, गरम किया हुआ; (क० ६, १२, ५)।

ताविच्छ—पुं० न० (सं० तापिच्छ) तमाल का वृक्ष या फूल; (दे० ना० मा० १, ३७)।

ताविय—वि० (सं० तापित>प्रा० ताविअ) तप्त, तपाया हुआ; (जस० ३, ३, १६; व० १, १४, १३)।

तावियडि—स्त्री० ताप्ती+तटी, ताप्ती तटवासिनी स्त्री; "तावियडिवियडचुंबि-यनियंबु;" अर्थात् ताप्ती तट की तरुणियों के विस्तीर्ण नितंबों को चूमने वाला; (जंबू० ४, १५, १२)।

तावी—स्त्री० (सं० तापी) नदी-विशेष; (प० च० ३५, १)। —यड पुं० न० (सं० ताप्ती+तट>प्रा० तावी+तड ताप्ती नदी का तट; (जंबू० ९, १९, ४)।

तास—पुं० (सं० त्रास>प्रा० तास) भय, डर; (संधि० १२, ३, २७)।

तासओ—सर्व० (सं० तस्य) उनसे; (की० २, ११७)।

तासण—वि० (सं० त्रासन>प्रा० तासण) त्रास उत्पन्न करने वाले; "सीहु व करितासगु दाढाभीसगु;" (जस० १, १६, १५)।

तासिअ—वि० (सं० त्रासित) त्रस्त किया हुआ, डराया हुआ; (भ०)। तासिउ; (व० २, ९, ५)। तासिय; (जस० १, ९, ८)।

तासु—सर्व० (सं० तस्य) उसकी, (विला०; परमा०)। उसका; (णे; हे० ४०१, ४)। उससे; (विला०)।
तासेँवि—पू० का० क्रि०, (सं० त्रास) संत्रस्त कर (प० च० १६, ८, ६)।
ताहं—सर्व० (सं० तेषाम्) उन्हें; (हे० ४०६, १)।
ताहां—अव्य० (सं० ततः) वहाँ, वहाँ से, तब; (उ० व्य० प्र० १४-२६)।
ताहि कर—सर्व० उसका, उसके; (कौ० १, ८४)। टि०—कौ० में कर, केर आदि परसर्गों का प्रयोग द्रष्टव्य है।
√ताही—(सं० त्रास्यति) त्रस्त करना; (भ०)।
ताहे—सर्व० (सं० तस्या) उसके लिए; (व० १, ६, १०)।
तिगिआ—स्त्री० (दे०) कमल-रज; (दे० ना० मा० ५, १२)।
तिगिच्छ—स्त्री० (दे०) कमल-रज, पद्म-रज; "मरुद्धूयतिगिंच्छविच्छड्ड-पिंगं," अर्थात् वायु में उड़ती हुइ पुष्परज के विखराव से सब ओर पीलापन दिखाई दे रहा था; (जस० ४, १७, १३; दे०-ना० मा० ५, १२)।
ति—वि० (सं० त्रि>प्रा० ति) दो और एक, तीन; (प्रा० पैं० १, १२; जस० १, ४, ६)। अव्य० इति; (प्रा० पैं० १, २२; सुदं० ३, १०, २०)। सर्व० (सं० ते) वे; (हे० ३३०, ४)। —अ वि० (सं० त्रि>प्रा० ति) तीन; (हिं० का०, च० २८)।
तिअन्त—पुं० (सं० तिङन्त) धातुओं के आगे 'तिङ्' विभक्तियाँ लगती हैं। उनके योग से बने पदों को तिङन्त पद कहते हैं; (प० च० ४, ११, ३)।
तिअल—पुं० (सं० त्रिकल) तीन मात्राओं का शब्द, त्रिमात्रिक; (प्रा० पैं० १, ११८)।
तिआ—वि० (सं० त्रि) तीन; (प्रा० पैं० १, १३)।
तिइल्लु—पुं० (सं० त्रैलोक्य) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक; (व० १, १०, १०)।
तिउणिय—वि० (सं० त्रिगुणित) तिगुना; (भ०)।
तिउणु—वि० (सं० त्रीणि) तीन; (महा० ६८, २, ६)।
तिराउमुह—पुं० विद्याधर राजा; (प०-च० १०, २१)।
तिउल—पुं० वाद्य; (सुदं० ७, ६, ५)।
तिउली—स्त्री० वाद्य-विशेष; (प्रा० गु० ३२, ३)।
तिकाल—पुं० (सं० त्रिकाल) तीन काल-वर्तमान, भूत, भविष्य; (भ०)।
तिकूड—पुं० (सं० त्रिकूट) पर्वत-विशेष-नाम; लका के समीप का एक पहाड़, सुवेल पर्वत; (प० च० ५, १२७)। —पव्वय पुं० पर्वत-विशेष; (प० च० ४८, ५१)। त्रिकूटसिहर— पुं० पर्वत-विशेष; (प० च० ८५, २५)।
तिक्खंकुड—पुं० (सं० तीक्ष्ण+अङ्कुड) फाली; (जंबू० ६, ४, ८)।
तिक्खंकुस—पुं० (सं० तीक्ष्ण+अङ्कुश) पैना अंकुश; (जंबू० ७, ८, ३)।
तिक्ख—वि० (सं० तीक्ष्ण>प्रा० तिक्ख)

तीखा; (प्रा० पैं० २, १२६; व० २, २०, ३; क० २, ३, ३)। —कडक्खउ वि० (सं० तीक्ष्ण+कटाक्ष+वत्) तीखे कटाक्ष वाली; (जंबू० ३, १०, १४)। —क्खर पुं० न० (सं० तीक्ष्ण+अक्षर) सूक्ष्म अक्षर; (जंबू० २, १३, ४)। —सिङ्गम पुं० (सं० तीक्ष्णशृङ्ग) "कहि जि तुङ्ग-अङ्गया हयारि-तिक्खसिङ्गया," (प० च० ३२, ३, ११)। —ा (तिक्खा) वि० (सं० तीक्ष्णान्) तीक्ष्ण; (हे० ३६५, १)।

√तिक्ख—(सं० तीक्ष्णय् >प्रा० तिक्ख) तीक्ष्ण करना। तिक्खेइ—सक० (सं० तीक्ष्णयति); (हे० ३४४)।

तिक्ख—वि० (सं० तिक्त) नीम या चिरायते के-से स्वाद वाला, (जस० २, २४, ५)।

तिक्खालिअ—वि० (दे०) तीक्ष्ण किया हुआ; (दे० ना० मा० ५, १३)।

तिखंड—पुं० (सं० त्रिखण्ड) तीनों खण्ड; (व० ६, १, ६)।

तिखंडाहिवइ—पुं० (सं० त्रिखण्डाधिपति >प्रा० तिखंडाहिवइ) अर्धचक्रवर्ती राजा वासुदेव; (प० च० ६१, २६)।

तिगाम—पुं० त्रिगाम, स्वरों का समूह "तं पुज्ज करें वि आढत्तु गेउ। मुच्छण-कम-कम्प-तिगाम-भेउ;" वह गान मूर्च्छना क्रम,कंप और त्रिगाम, षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरों से युक्त था, (प०-च० १३, ६, ८)।

तिगुण—वि० (सं० त्रिगुण) तिगुना; (प्रा० पैं० १, २०२)।

तिगुत्ति—पुं० मुनि-विशेष-नाम; (प०-च० ४१, १६)। २. स्त्री० त्रिगुप्ति (कायवाङ्मनोगुप्ति); (जस० ४, २६, ६)।

तिछत्त—पुं० (सं० त्रिछत्र >प्रा० ति+छत्त) तीन छत्र या छाता; (जंबू० १, १७, २)।

तिजग—न० (सं० त्रि+जगत्) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (जस० ४, १३, १०)। —ब्भंतर अव्य० (सं० त्रि+जगत्+अभ्यंतर) तीनों जगत् के भीतर; (जस० ४, १३, १०)।

तिजड—पुं० (सं० त्रिजट) विद्याधर वंश के एक राजा का नाम; (प० च० १०, २०)।

तिजय—न० (सं० त्रि+जगत्) तीनों लोक स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (जंबू० १, १२; व० २, ११, १२)। —ाहिव (तिजयाहिव) पुं० (सं० त्रिजगदाधिप) तीन लोकों का अधिपति; (व० २, १५, १)।

तिरजंच—पुं० (सं० तिर्यञ्च >प्रा० तिरिअंच) पशुगति; (जंबू० १०, १७, १६)।

तिज्ज—वि० (स० तृतीया) तीसरी; (सु०)। —अ वि० (सं० तृतीय+क) तीसरा; (म० १, २, ४)।

तिट्ठ[1]—वि० १. (सं० त्रस्त) त्रासदायक; (जस० ४, १०, ११)।

तिट्ठ[2]—वि० (सं०तिष्ठ)विद्यमान, खड़े हुए; "लइ सुन्दरि ताव तिट्ठ णयरें;" (प० च० ३०, ३, ८)।

तिट्ठा—स्त्री० (सं० तृषा >प्रा०

तिंसा) तृष्णा, प्यास, पिपासा; (महा० संधि० ६८)।

तिडइ—क्रि०, व०; तिड़कती है, टूटती है; (सं० रा०)।

तिडिक्क—स्त्री० अग्निकणिका तुल० गु० तणखो=चिगारी, तडको=धूप (प०-च० ४८, ६, ३; सुदं० ११, १८, १)।

तिडिक्किय—वि० (दे०) छींटों से युक्त; (जंबू० ७, २, ६)।

तिडिपिडन्त—कृ० तड़फड़ाते हुए; (म० २, ३७, २)।

तिड्ड—पुं० स्त्री० (दे०) शलभ, तुल० गु० तीड; (संधि० ११, ५, ५)।

तिरा—न० (सं० तृरा>प्रा० तिण) तृण, घास; (जस० १, २१, ११)।

तिरा—तृण; (क० ८, १६, ८; व० २, १४, ६)। —मय वि० (सं० तृणमय) तृण—युक्त; (जंबू० ८, १३, ३)। —वन्त वि० (सं० तृणवत्) तृण-समान; (भ०)। —सम वि० (सं० तृणसम) तृण-समान; (जंबू० ३, १, ८)।

तिरायरा—पुं० (सं० त्रिनयन) शिव; (प्रा० पैं० २, १३८)। तिणयण; (प०-च० १, ६, २)। तिणयरा; (व० ३, २२, ७)।

तिराणी—वि० (सं० त्रि+ज्ञानिन्) तीन ज्ञानों से युक्त; (रि० ८, ६)।

तिणि—न० (सं० तृण>प्रा० तिण) तृण, घास; (व० ४, १०, १४)। वि० (सं० त्रीणि) तीन; (प्रा० पैं० १, ४८)।

तिणिस—न० (दे०) शहद की मक्खियों का छत्ता; (दे० ना० मा० ५, ११)।

तिण्ण—वि० (सं० त्रीणि) तीन; (दो०-को०)।

तिण्णि—वि० (सं० त्रीणि) तीन; (प्रा० पैं० १, ८; जस० ४, १७, १६)। —आ वि० (सं० त्रीणि+क) तीन; (प्रा० पैं० २, ७६)। —तीस वि० (सं० त्रीणि+त्रिंशति) तैंतीस; (जंबू० ११, १०, ६)।

तित्त—वि० (सं० तृप्त>प्रा० तित्त) संतुष्ट; (भ०)।

तित्तहिँ—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ; (जंबू० ३, ८, २)।

तित्ति—स्त्री० १. (सं० तृप्ति>प्रा० तित्ति) तृप्ति, संतोष; (प० च० २, ७, २; सुदं० १, १, ५; क० १०, १०, ५)। २. (दे०) तात्पर्य, सार; (दे० ना० मा० ५, ११)।

तित्तिरिअ—वि० (दे०) स्नान से आर्द्र; (दे० ना० मा० ५, १२)।

तित्तिल—वि० (सं० तावत्) उतना; (षड्)।

तित्तुअ—वि० (दे०) गुरु, भारी; (दे०-ना० मा० ५, १२)।

तित्थ—न० (सं० तीर्थ>प्रा० तित्थ) तीर्थ; (जस० ४, २७, १०; हे० ४४२, २)। तित्थइं—न० तीर्थ; (पाहु०)। —वर न० बड़ा तीर्थ; (क० ५, ६, ६)।

तित्थंकरु—पुं० (सं० तीर्थङ्कर) तीर्थ-कर भगवान् महावीर; (सुअंध० १, ३)।

तित्थयर—पुं० (सं० तीर्थङ्कर) तीर्थ-

कर, शास्त्रप्रवर्तक; (जस० १, २, ८)। तित्थयरु; (व० २, ११, १२)। —त्त पुं० (सं० तीर्थङ्करत्व) तीर्थंकरत्व; (जंबू० ११, ७, ८)।

तित्थयरत्तणाइँ—न० (सं० तीर्थंकरत्व >प्रा० तित्थयरत्तण) जिन-देव के प्रवचन या मत का भाव; (प० च० ३, ११, ६)।

तित्थु—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ; (जस०)।

तित्थ—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ; (प्रा०-गु० २७, २, २)।

तित्थिआनिक्क—पुं० (सं० तीर्थयात्रिकान्) तीर्थयात्री; (उ० व्य० प्र० ५१-२८)।

तिदंडु—न० (सं० त्रिदण्ड) त्रिशूल, "चूलासहिउ तिदंडु धारेविणु;" अर्थात् चूला (शिखा-जटा) सहित त्रिशूल धारण कर; (व० २, १६, २)।

तिनयण—पुं० (सं० त्रि+नयन) महादेव; (जंबू० १, १०, ८)। —तणु पुं० (सं० त्रि+नयन+तनु) महादेव; (जंबू० ५, ८, ३६)।

तिन्नि—वि० (सं० त्रीणि>प्रा० तीणि) तीन; (कीं० १, ६०)।

तिपंचासइय—वि० (सं० त्रिपञ्चाश) तिरपनवाँ; (प० च० ५३, १५०)।

√तिप्प—(सं०√तृप्>प्रा० तिप्प) तृप्त करना; (जस० ४, ३१, ११)। तिप्पंति व०, व०, तृप्त होते हैं; (सं०-रा०)।

तिभंगी—पुं० (सं० त्रिभंगी) छंद-विशेष; (प्रा० पैं० १, १६४)।

तिम—अव्य० १. इसी प्रकार; (पाहु०)। २. वैसे, त्यों; (सं० रा०; पाहु०)। ३. तथा; (भ०)।

तिमरारि—पुं० (सं० तिमिरारि) चंद्रमा; (व० ७, १५, ७)।

तिमिंगल—पुं० (सं० तिमिङ्गिल) मत्स्य की एक जाति; (दे० ना० मा० ५, १३)।

तिमिंगिलि—पुं० (सं० तिमिङ्गिलि) मत्स्य की एक जाति, (प० च० २२, ८३)।

तिमि—पुं० (सं० तिमि) मत्स्य की एक जाति; (प० च० १४, १७; व० १०, १०, ४)।

तिमिच्छय, तिमिच्छाह—पुं० (दे०) पथिक, (दे० ना० मा० ५, १३)।

तिमिण—न० (दे०) गीला काष्ठ; (दे० ना० मा० ५, ११)।

तिमिर—न० (सं० प्रा० तिमिर) अंधकार; (व० १, १७, ७; प्रा० पैं० २, ७३)।

तिमिरावरिउ—वि० (सं० तिमिरावृत्त) अंधकार से ढका हुआ; (व० २, २१, ६)।

तिमिरिच्छ—पुं० (दे०) वृक्ष-विशेष; करंज का पेड़; (दे० ना० मा० ५, १३)।

तिमिल—स्त्री० न० (सं० तिमिल) वाद्य-विशेष; (प० च० ५७, २२)।

तिमुण्ड—पुं० (सं० त्रिपुण्ड्र) त्रिपुंड चंदन, राख या गोवर से बनाई हुई तीन रेखाएँ, "के वि तिमुण्ड-धारि बम्भारिय;" (प० च० २३, १५, ४)।

तिम्मइ—क्रि० (सं० तिम्यति) भीगना, भींजना; (हे० ४१८)।

तिम्मण—पुं० न० (सं० तेमनम्=चटनी, मिर्च मसाला, जो भोजन को रुचिकर बनाए) चटपटा खाद्य; अचार-चटनी; (संधि० ११, १, २०; सुदं० ५, ६, १०; जस० २, २४, ५)।

तिम्मणय—पुं० (सं० तेमनम्) एक प्रकार की कढ़ी; (प० च० २५, ११, ८)।

तिम्मिअ—वि० (सं० स्तिमित) तर, आर्द्र, गीला; (दे० ना० मा० १, ३७)।

तिम्मिर—वि० (सं०√तिम्+इर) आर्द्र, लथपथ; (सुदं० ६, ६, ६)।

तिय—स्त्री० (सं० तिय) औरत, स्त्री; (व० १, ४, १६)। —क्ख पुं० (सं० त्रि+अक्ष) महादेव; (जंबू० ७, ४, १३)। —डड्डनु पुं० स्त्री का साहस या ढाढस; (सुदं० ८, ३०, ७)। —त्तण पुं० स्त्रीत्व; (जंबू० ६, १, १५)। —दव्व पुं० स्त्री रूपी धन, (जंबू० ६, १, १५)। —मइ स्त्री० (सं० तिय+मति) स्त्री-मति; (जस० २, ६, ६)।

तियडुय—पुं० (सं० त्रिकडुक) त्रिकटु अर्थात् सोंठ-मिरच और पीपल, "तेल्ल-कडाहि कढंति णिणिन्नउ;" तियडुयतोय-झर्ळोक्क सित्तउ;' अर्थात् फिर उन्होंने उत्सकतापूर्वक लौटकर अग्नि की ज्वाला से संतप्त उबलती हुई तेल की कड़ाही में मुझे डाल दिया और मुझ पर त्रिकटु अर्थात् सोंठ-मिरच और पीपल इन तीन को घोल कर छौंक दिया; (जस० ३, ५, ११)।

तियमय—पुं० (सं० त्रिकमय) त्रिक (अधर, रमण व नितंब); "एरिस-तिय-मय पोग्गलखंधएँ अप्पउ णाणवंतु को बंधएँ;" अर्थात् ऐसे (जुगुप्सनीय) त्रिक (अधर, रमण व नितंब) —मय (स्त्री रूपी) पुद्गलस्कंध में कौन ज्ञानवान् अपने को बाँधता है; (जंबू० ६, १, १३)।

ति-यण—स्त्री० (सं० तिय+जन) स्त्री जन; (प० च० २६, ४, २)।

तियलिय-गुंज—पुं० वाद्य-विशेष की गूंज; (ति० २, २२)।

तियसंगण—स्त्री० (सं० त्रिदशाङ्गना) देवांगनाएँ, (व० १, ११, ८)।

तियसंजय—पुं० राजा-विशेष-नाम; (प० च० ५, ५१)।

तियस—पुं० (सं० त्रिदश) देवता; (जंबू० २, ४, १)।

तियसगेहु—न० (सं० त्रिदशगृह) स्वर्ग विमान; (व० ३, २, ५)।

तियसणाह—पुं० (सं० त्रिदशनाथ) इंद्र; (व० १०, ३, ११)।

तियसपत्ति—स्त्री० (सं० त्रिदशपत्नी) देवी; (जस० ४, २१, १७)।

तियसराउ—पुं० (सं० त्रिदशराज) इंद्र; (व० ८, १७, ७)।

तियसालय—पुं० (सं० त्रिदशालय) स्वर्ग; (व० २, २१, ७)।

तियसावास—पुं० (सं० त्रिदशावास) तीन स्थितियों में रहना; (व० १, ३, ७)।

तिया—स्त्री० (सं० तिर्य) स्त्री; (महा० १, १५, ४)।

तियाल—पुं० (सं० त्रिकाल) १. तीनों समय—भूत, वर्तमान और भविष्य; २. तीनों समय—प्रातः, मध्याह्न और सायं; (व० ३, ६, ३; जस० ३, २८, ७)।

तियासी—वि० (सं० त्र्यशीति) अस्सी और तीन, तिरासी; तुल० गु० त्यासी; (संधि० १, ४, १; महा०)।

तिरच्छ—वि० (सं० तिर्यक्) तिरछा; (सं० रा०)।

तिरयण—पुं० न० सं० त्रिरत्न ज्ञान, दर्शन और चरित्र; (जस० ३, १७, ७)। —विवज्जियउ वि० स्त्री-रत्न से रहित; (रि० १०, २)।

तिरयणु—पुं० (सं० तिर्यंच्) त्रींद्रिय गोम (सहस्र पाद वाला कानखजूरा); (व० १०, ६, १३)।

तिरयह—पुं० (सं० तिर्यंच्) पशु, पक्षी; (व० १०, ४, ५)।

तिरहुति—पुं० तिरहुत का राज्य; (की० २, २७)।

तिरिगिच्छि—पुं० वृक्ष-विशेष; (जंबू० ५, ८, ७)।

तिरिक्ख—पुं० (सं० तिर्यंच्) जानवर (जो मनुष्य की भांति सीधा न चलकर टेढ़ा चलता है), निम्न जाति का या बुद्धिहीन जानवर; "णारउ पुणु हुउ जलयरु थलयरु, णहयरु पुणु तिरिक्खु बहुजयरु," अर्थात् नरकवासी होकर फिर जलचर हुआ, थलचर व नभचर हुआ और फिर तिर्यंच हुआ; (जस० ३, २०, ३)।

तिरिच्छ—वि० (सं० तिर्यक्) तिरछा; (जंबू० २, १८, १५)।

तिरिच्छी—वि० (सं० तिर्यक्) तिरछी; (हे० ४१४, ४)।

तिरिड—पुं० (दे०) वृक्ष-विशेष, तिमिर वृक्ष; (दे० ना० मा० ५, ११)।

तिरिडिअ—वि० (दे०) १. तिमिर-युक्त; २. खोजा, तलाशी ली गई; (दे० ना० मा० ५, २१)।

तिरिडिकिया—स्त्री० (दे०) वाद्य-विशेष; (प० च० २४, २, ४)।

तिरिड्डि—पुं० (दे०) उष्ण वात, गरम वायु; (दे० ना० मा० ५, १२)।

तिरिय—स्त्री० (सं० स्त्री) औरत; "वारहमए तिरिय णमन्त दिट्ठ" वारहवें में नमन करती हुई स्त्रियाँ,' (प० च० १, ८, १२)। पुं० (सं० तिर्यंक) तिर्यंच योनि; तिर्यंच योनि, पशु-पक्षी की सृष्टि; "तिरिएसु णरएसु मणुएसु रुक्खेसु दुक्खाइं भुंजंति सग्गं कहं जंति," अर्थात् (वे) तिर्यंच योनियों में, नरकों में मनुष्यों में और (वृक्षों में जन्म लेकर भोगते हैं; (जस० २, १७, १७)। —लोअ पुं० (सं० तिर्यग्लोक) मनुष्यलोक; (जस० १, ३, २)।

तिरीड—पुं० न० (सं० किरीट) मुकुट; आभूषण-विशेष; (प० च० २, ३६; क० ४, १०, २)।

तिरोवइ—वि० (दे०) वाड से वियुक्त किया हुआ "तिरोवइ वृत्यन्तरितः"; (दे० ना० मा० ५, १३)।

तिरोहित—वि० (सं० तिरोहित) छिपा

हुआ, लिप्त, अंतर्हित; (कौ० २, २, १५)।

तिलंगि—स्त्री० तेलङ्गी, तेलंग-तेलंगाना (हैदराबाद) वासिनी स्त्री; (जंबू० ४, १५, ८)।

तिल—पुं० (सं० तिलः) तिल के पौधे का बीज, (उ० व्य० प्र० ५१, १; व० ८, ५, १०)। तिल्ली का दाना (प्रा०-पैं० १, १०)। —मेत्त तिलमात्र; (प०-च० ३, ११, १०)।

तिलअ—पुं० (सं० तिलक>प्रा० तिलग, तिलय) टीका, वह चिह्न जिसे गीले चंदन केसर आदि से मस्तक, बाहु आदि पर सांप्रदायिक संकेत के लिए लगाते हैं; (प्रा० पैं० २, १३८; क० १०, २५, १०; जस० १, १४, १०)।

तिल-जंत—पुं० (सं० तैल-यन्त्र) घाणी; (संधि० ३, ११, ५)।

तिलजलंजलि—स्त्री० (सं० तिलजलांजलि) तिलांजलि, मरने पर अंजुली में जल और तिल लेकर उसके नाम से छोड़ना; "चिट्ठंति ते तिलजलंजलिदाण-जोग्गा;" अर्थात् वे तिलजलांजलि देने के योग्य है; (प्रा० पैं० २, १५१)।

तिलजव—पुं० (सं० तिल+यवस्) तिल और जौ; (जंबू० २, ६, १)।

तिलतार—पुं० (दे०) स्नेह; "जिहिं सहुं जसु तिलतारु सो तसु आजम्मु वि हवइ;" (प्रा० गु० ३८, २३)।

तिलपिंड—पुं० (सं० तिल+पिण्ड) तिलों की खली, "तिलपिंडखंडेसु;" अर्थात् तिलों की खली के टुकड़े; (जस० ३, २९, ८)।

तिलमेत्त—अव्य० (सं० तिलमात्र) तिल-भर, थोड़ा सार; "सक्कइ न तिलमेत्तु;" अर्थात् (वह) तिलभर भी नहीं चल सका; (जंबू० ४, २२, १६)।

तिलय—पुं० (सं० तिलक>प्रा० तिलग, तिलय) १. वृक्ष-विशेष; (प० च० ४२, ६)। २. वनिक पुत्र; (प० च० ११८, ४६)। पुं० (सं० तिलक>प्रा० तिलय, तिलग) टीका, ललाट में किया जाता चंदन या उबटन आदि से किया गया चिह्न; (प० च० १३, १०, २)। —छेउ पुं० (सं० तिलक+छेद) राजतिलक का विनाश; "का वि भणइ हुवउ पियतिलय-छेउ," अर्थात् कोई कहती है, प्रिय के राजतिलक का उच्छेद हो गया; (जस० ४, २, ८)। —भूय पुं० तिलकभूत; (जंबू० ३, २, ३)।

तिलयदीउ—पुं० (सं० तिलकद्वीप) द्वीप-विशेष-नाम; 'खणि तिलयदीउ सो णियउ ताएं;" (क० ७, १५, १)।

तिलयसिरि—स्त्री० कुंथुजिन की माता; (प० च० २०, ४३)।

तिलयसुंदरी—स्त्री० रानी-विशेष-नाम; (प० च० २०, १२१)।

तिलरिण—पुं० तैलत्व, स्नेह; "अवरुप्परु विरइयतिलरिणाहें;" (क० ६, १०, ५)।

तिलहुणजि, तिलहुमजि—पुं० [सं० तिल +हु(=हवन करना)>प्रा० अप० हुण] तिलहोम, तिलदान, तिलांजलि; (कौ० ४, १५२)।

तिलिगसमण—पुं० मुनि-विशेष-नाम; (प० च० २०, १५५)।

तिलिमा—स्त्री० (दे०) वाद्य-विशेष; (प्रा० गु० ३६, ६)।

तिलोअ—न० (सं० त्रिलोक>प्रा० तिलोक्क, तिलुक्क) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (प० च० ३, ११, १)।

तिलोअण—पुं० (सं० त्रिलोचनः) शिव; (प्रा० पैं० १, ७७)।

तिलोय—पुं० (सं० त्रिलोक>प्रा० तिलोक्क, तिलुक्क) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (क० ५, ६, ४)। —ग्ग पुं० (सं० त्रिलोकअग्र) त्रिलोक का अग्र-भाग, अर्थात् भव्य जीवों के लिए निर्विघ्न एवं समग्र मार्ग; (जंबू० १, १८, ७)।

तिलोयग्गामी—वि० (सं० त्रिलोक+गामिन्>प्रा० तिलोक्क+गामि) त्रिलोक के अग्रभाग पर चलने वाले अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कराने वाले मार्ग पर चलने वाले; (रि० २, १०)।

तिल्ल—१. न० (सं० प्रा० तिल्ल) तिल्ल नामक एक वर्णिक छंद; (प्रा० पैं० २, ४३)। २. न० (सं० तैल>प्रा० तिल्ल) तैल, तेल; (भ०)।

तिल्लायरु—पुं० (सं० तैलादरः अथवा तैलाचरः) विवाह से कुछ समय पूर्व होने वाला संस्कार, जिसमें तैल और हलदी का प्रयोग उबटन के रूप में दुलहा और दुलहिन के द्वारा किया जाता है; (भ०)।

तिल्लिय—पुं० (सं० तैलिक) तिलों से तेल निकालने वाला, तेली; (जंबू० १०, ४, १५)।

तिल्लोअ—न० (सं० त्रैलोक्य>प्रा० तिल्लुक, तिलोक्क) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (म० १, ७, ४; जस० ३, १७, ६)।

तिल्लोकणाहु—पुं० (सं० त्रैलोक्यनाथ) राम; (व० ६, १४, ४)।

तिल्लोकाहिउ—पुं० (सं० त्रिलोकाधिप) राम; (व० १०, ४०, १३)।

तिल्लोक्क—न० (सं० त्रैलोक्य>प्रा० तिलुक्क, तिलोक्क) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (जस० १, १७, २१)।

तिवँ—अव्य० (सं० तथा>प्रा० तहा, तह) १. उसी तरह, २. और, तथा ३. पाद-पूर्ति में प्रयुक्त किया जाता है; (हे० ३, ६७)।

तिवग्ग—पुं० (सं० त्रिवर्ग) धर्म, अर्थ, काम; (व० १, १३, ५; जंबू० ४, ६, ६)।

तिवय—वि० (सं० त्रि+पद) तीन पाँव वाला; (दे० ना० मा० ८, १)।

तिवलि—स्त्री० (सं० त्रिवलि, वली, वलि, वली) नाभि के ऊपर उदर ही की तीन रेखाएँ या सिमिटनें। ये स्त्री के सौंदर्य का चिह्न मानी गई हैं; (भ०; सं० रा०; रा०)।

तिवार—अव्य० (सं० त्रिवारम्) तीन मर्तबा, तिवारा, तीन बार; (भ०; प० च० २, २, ५)।

तिविट्ठ—पुं० (सं० त्रि+पृष्ठ, विष्टु) भरतक्षेत्र में उत्पन्न प्रथम अर्ध चक्रवर्ती राजा का नाम; (प० च० ५, १५५)।

तिविट्ठु—पुं० (सं० त्रिपृष्ठ) नारायण; (व० ३; २३, १०)। २. प्रथम वासुदेव; (प० च० ५, १५५)।

तिविडा—स्त्री० (दे०) सूई; (दे० ना०-मा० ५, १२)।

तिविडी—स्त्री० (दे०) पुड़िया, छोटा पुड़वा; (दे० ना० मा० ५, १२)।

तिविह—वि० (सं० त्रिविध) तीन प्रकार का, तिगुना; (भ०)।

तिव्व—वि० (सं० तीव्र) १. दुःसह, जो कठिनता से सहन हो सके; २. अत्यंत, (दे० ना० मा० ५, ११)। ३. तीव्र; (जस० १, १६, ४)।

तिव्वण्णो—पुं० (सं० त्रिवर्णः) तीन वर्ण "ताली ए जाणीए। गो कण्णो तिव्वण्णो;" अर्थात् यह ताली समझी जानी चाहिए; (जहां) गुरु तथा कर्ण (दो गुरु) अर्थात् तीन गुरु (सर्वगुरु) वर्ण हों; (प्रा० पैं० २, ११)।

तिव्वतव—पुं० (सं० तीव्र+ताप> प्रा० तिव्व+ताव) तीव्र दाह या ताप; (जंबू० ६, १४, ३)।

तिस—स्त्री० (सं० तृषा>प्रा० तिसा) प्यास, पिपासा; (प० च० २, १२, ३)।

तिसट्ठ—वि० (सं० त्रि+षष्ट) तिरसठवां; (प० च० ६३, ७३)।

तिसट्ठि—स्त्री० (सं० त्रिषष्टि) तिरसठ की संख्या; (भ०)।

तिसत्ति—पुं० (सं० त्रिशक्ति) एक प्रकार का हथियार; (प० च० १७, ६, ६)।

तिसरय—न० (सं० त्रि+सरक>प्रा० तिसरय) वाद्य-विशेष; (प० च० ६६, ४४)।

तिसरिआ—स्त्री० वीणा, एक प्रकार का संगीत-यंत्र; (प० च० २, ४, ८)।

तिसरिय—न० (सं० तिसरिक) वाद्य-विशेष संबंधी; (प० च० १०२, १२३)।

तिसला—स्त्री० महावीर स्वामी की माता; (प० च० २, २२)।

तिसल्ल—पुं० (सं० त्रिशल्य) मिथ्यात्व, माया और निदान; "धरियतिमुंडु तिदंडविहंडणु, छिण्णतिसल्लु तिलोयहु मंडणु," अर्थात् उन्होंने मिथ्यात्व, माया और निदान इन तीनों शल्यों को नष्ट करके अपने को त्रैलोक्य का अलंकार बना लिया था; (जस० ३, १७, ६)।

तिसा—स्त्री० (सं० तृषा>प्रा० तिसा) पिपासा; (व० ६, १६, ३)।

तिसाइय—वि० (सं० तृषित>प्रा० तिसाइय) तृषातुर, प्यासा; (प० च० २६, ६, ४)।

तिसायअ—वि० (सं० तृषित>प्रा० तिसिय) प्यासा; (जंबू० ६, ७, १५)।

तिसाहय—स्त्री० (सं० तृषा>प्रा० तिसा) प्यास; (महा० १२, ७)।

तिसिय—वि० (सं० तृषित>प्रा० तिसिय) प्यासा; (जंबू० ६, ७, ११)।

तिसिर—पुं० (सं० त्रिशिरस्) १. देश-विशेष; (प० च० ६८, ६५)। २. राक्षस योद्धा; (प० च० ८, २७४)। ३. दाशरथी राम का मित्र राजा; (प० च० ६६, ४६)।

तिसूल—पुं० (सं० त्रिशूल) एक प्रकार का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेव जी का अस्त्र माना

जाता है; (व० १०, २५, १०)। —धर पुं० (सं० त्रिशूलधर) शिव; (प्रा० पैं० २, १३८)। —पाणि पुं० (सं० त्रि+शूलपाणि) १. महादेव, शिव; २. त्रिशूल को हाथ में रखने वाला सुभट; (प० च० ५६, ३५)।

तिसूलिणि—स्त्री० त्रिशूलिनी, कात्यायनी; (जस० १, १५, २०)।

तिह—अव्य० (सं० तथा>प्रा० तहा) १. उसी तरह, २. और; (प० च० ३, १३, ८)। २. (सं० तत्र) वहाँ; (जस० ३, १८, ७)।

तिहत्तर—वि० (सं० त्रि+सप्तत) तिहत्तरवाँ; (प० च० ७३, ३६)।

तिहाअ—पुं० (सं० त्रिभाग) तीसरा हिस्सा; (प्रा० पैं० २, १५१)।

तिहिँ—वि० (सं० त्रिषु) तीनों; (हे० ३४७, १)।

तिहिवार—पुं० (सं० तिथि+वार) तारीखवार जैसे रविवार आदि; (जंबू० ३, ४, १)।

तिहुयण—पुं० (सं० त्रिभुवन) तीन लोक; (प्रा० गु० १४, ७; व० २, ६, २)।

तिहुयणतिलअ—पुं० (सं० त्रिभुवनतिलक) व्यक्ति-विशेष-नाम; (जंबू० २, १८, २)।

तिहुयणाणंद—पुं० पुंडरीय विजय का चक्रवर्ती राजा; (प० च० ६३, ३४)।

तिहुवण—पुं० (सं० त्रिभुवन) तीन लोक—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (प० च० १, ८, १३; क० ६, १, ६)। तिहुवन; (रा०)।

√तीँव—(सं०√स्तीम्>प्रा० तिम्म) तर करना, आर्द्र करना, गीला करना; "मेघु वरिसत तीँव मेवो वर्षन् तिम्यति। तिमू आर्द्रभावे। (उ० व्य० प्र० ५१-६)।

ती—वि० (सं० त्रि>प्रा० ति) तीन; (प्रा० पैं० २, ६४)।

तीअ—वि० (सं० तृतीय) तीसरा; (प्रा० पैं० १, ५४)।

तीखेँ—वि० पतला; "अटलेँ अटलेँ बाँधे, तीखेँ तरले काँधे;" (घोड़ों का) बंधदेश अट्टालक के समान ध्रुव था और ग्रीवा प्रदेश पतला और चंचल था; (की० ४, ४४)।

तीजउ—वि० (सं० तृतीय+क) तीसरा; "··तीजउ मागु न अत्थि;" (प्र० चि०)।

तीणि—वि० (सं० त्रीणि>प्रा० तीणि) तीन; (प्रा० पैं० २, १२५)।

तीथ—न० (सं० तीर्थ>प्रा० तित्थ) कोई पवित्र स्थान जहाँ धार्मिक भावना से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिए जाते हैं; (प्रा० गु० ७, १७)।

तीमण—न० (सं० तेमन) कढ़ी, खाद्य-विशेष; (दे० ना० मा० २, ३५)।

तीय—वि० (सं० तृतीया) तीसरा; (जस० ४, २८, १६)। स्त्री; (सं० रा० २, ४०; सं० रा०)। —उ वि० तीसरा; (सं० रा० २, ११२)।

तीर—पुं० (सं० प्रा० तीर) किनारा; तट; (भ०; जंबू० १०, ६, ८)।

२. (फ़ा० तीर) बाण; (कौ० २, १६३)।

तीरिय—पुं० (फ़ा० तीर) बाण, शर, एक प्रकार का तीर; (प० च० १७, ६, ३)।

तीरुत्तार—पुं० (सं० तीर+उत्तरण) तीर पर उतरना; (जंबू० ११, ८, ४)।

तीवण—न० (सं० तेमन) भोजन-विशेष; (भ०)।

तीसंति—वि० (सं० त्रिंशति) तीस; (प्रा० पैं०)।

तीस—वि० (सं० त्रिंशत्) तीस; तुल० गु० त्रीश; (प्रा० पैं० १, ५७)।

तीसइम—वि० (सं० त्रिंश) तीसवां; (प० च० ३०, ९८)।

तीसक्खरा—पुं० (सं० त्रिंशत्+अक्षर) तीस अक्षर; (प्रा० पैं० १, ५८)।

तीसम—वि० (सं० त्रिंश) तीसवां; (भ०)।

तीसा(')—वि० (सं० त्रिंशत्) तीस।

तुंग—वि० (सं० तुङ्ग>प्रा० तुंग) ऊँचा, उच्च; (महा० ६९, १३, ६; सं०-रा०; जस० २, ६, ३)। २. एक वर्णिक छंद; (प्रा० पैं० २, ७२)। —उ वि० ऊँचा; (व० १, १२, १२)। —त्तण पुं० (सं० तुङ्गत्व>प्रा० तुंगत्तण) ऊँचाई; (हे० ३९०)। —त्थणि वि० (सं० तुङ्गस्तनी) उन्नत स्तनों से युक्त; (जस० ४, १७, २२)। तुंगु; (महा०)।

तुङ्ग—वि० (सं० तुङ्ग>प्रा० तुंग) ऊँचा; (प० च० १३, ३, १)। —त्तण पुं० (सं० तुङ्गत्व>प्रा० तुगत्तण) ऊँचापन; (प० च० ४, ६, ७)।

तुंगिम—पुं० स्त्री० (सं० तुङ्गिमन्>प्रा० तुंगिम) ऊँचाई, उच्चत्व; (जंबू० १, १५, ११)।

तुंगी—स्त्री० (दे०) रात्रि, रात; (दे० ना० मा० ५, १४; सुदं० ६, ९, ७)।

तुंड—(दे०) स्त्री० न० तुण्ड, मुख; 'गिज्जंति गेयाइँ चामुंडचंडाइँ, गहिऊण तुंडेण रुंडस्स खंडाइँ;' अर्थात् वे अपने मुख में रुण्ड के टुकड़ों को ग्रहण कर चामुंडा देवी के प्रचंड गीत गा रहे थे; (जस० १, १६, १०)।

तुंडीर—न० (दे०) मधुर बिंबी फल; (दे० ना० मा० ५, १४)।

तुंडुअ—पुं० (दे०) पुराना घड़ा; (दे० ना० मा० ५, १५)।

तुंतुक्खुडिअ—वि० (दे०) त्वरा-युक्त; (दे० ना० मा० ५, १६)।

तुंद—न० (सं० तुन्द>प्रा० तुंद) उदर, पेट; (दे० ना० मा० ५, १४)।

तुंब—न० (सं० तुम्ब>प्रा० तुंब) लौकी, तुंबी, अलाबु; (प० च० २९, २४)।

तुंवर—पुं० (सं० तुम्बर) तंबूरा; तानपूरा, सितार की तरह का परंतु उससे कुछ बड़ा एक बाजा; देवताओं की सभा का एक गायक; (सं० रा०)।

तुंबुरु'—पुं० (सं० तुम्बुरु) वृक्ष-विशेष, टिंबरु का वृक्ष; (दे० ना० मा० ४, ३)।

तुंबूरु—पुं० आदि लघु त्रिकल गण का नाम; (प्रा० पैं० १, १८)।

तु—अव्य० (सं० प्रा० तु) तो; (रा०)।

तुक्खार—पुं० (सं० तुष्कार) एक उत्तम जाति का अश्व; तुल० गु० तोखार; (भ०)।

तुच्छ—वि० (दे०) अवशुष्क, सूखा हुआ; (दे० ना० मा० ५, १४)। २. तुच्छ; (जंबू० १, ६, ११)।

तुच्छइअ, तुच्छय—वि० (दे०) अनुराग-प्राप्त; (दे० ना० मा० ५, १५)।

तुज्झ—सर्व० (सं० तुह्यम्) आपकी; (हे० ३७२, १)।

तुम्भु(¹)—सर्व० (सं० तुह्यम्) तुझ, तुझे; (व० १०, १६, १) २. तुम्हारा; (प०-च० १५, १४, ३)।

तुट्ट—(सं० त्रुट् > प्रा० तुट्ट) टूटना। —इ व० (सं० त्रुट्यति) (जंबू० १०, ४, १३; परम० २, ११)। तुट्टंत—कृ० (सं० त्रुट्+शतृ) टूटते हुए; (जंबू० ४, ८, ४)। —टंति व०; (सुदं० १०, ३, ४)। —उ भू० का० (सं० त्रुटयतु) टूट गया; (हे० ३५६)। तुट्टवि—पू०-का० क्रि०; (प्र० चि०)। तुट्टी—भू०-का० टूटी; (सं० रा०)। —ट्टेवि पू०-का० क्रि० टूटने पर; (क० ८, १, ६)। —ट्टन्त कृ० (प० च० १४, ६, २)।

तुट्ट—वि० (सं० त्रुटित) टूटा हुआ, छिन्न, खंडित; (दे० ना० मा० १, ६२)। —अ वि० त्रुटित; (सुदं० ६, १, १५)।

तुट्ठ—वि० (सं० तुष्ट) संतुष्ट; (जस० १, ६, २३)। —मण पुं० न० (सं० तुष्ट+मनस्) संतुष्ट चित्त; (जंबू० १, १४, १२)।

तुट्ठि—स्त्री० (सं० तुष्टि > प्रा० तुट्ठि) खुशी, आनंद; (सणतु० ४६०; जस० २, १६, २)।

तुडि—स्त्री० (सं० त्रुटि > प्रा० तुडि) १. संशय, संदेह; तुल० म० तुटि; (प०-च० ६, ३, ६)। २. न्यूनता, कमी, स्पर्धा; "तसु थूलभद्दह सरिसु तुडि करि मयण-मल्लु विगुत्तओ; (प्रा० गु० ३०, ३, ७)।

तुडिअग—पुं० (सं० त्रुटिताङ्ग) वाद्य देने वाला कल्पवृक्ष; (प० च० १०२, १२३)।

तुडिअ—वि० (सं० त्रुटित) टूटा हुआ, विच्छिन्न; (दे० ना० मा० १, १५६)।

तुडिआ—स्त्री० (सं० त्रुटिका) आभरण-विशेष; (प० च० ८२, १०४)।

तुडिय—वि० (सं० त्रुटित) विच्छिन्न; (जस० ३, १४, ४)।

तुडि-वसिण—अव्य० अकस्मात् (प्रा०-गु० १२, २६)।

तुणय—पुं० (दे०) वाद्य-विशेष; (दे०-ना० मा० ५, १६)।

तुणव—पुं० (दे०) वाद्य-विशेष, भेरी; (प० च० २६, १४, ३; दे० ना० मा० ५, १६)।

तुण्हि¹—पुं० (दे०) सूकर, सूअर; (दे०-ना० मा० ५, १४)।

तुण्हि²—वि० (सं० तूष्णीम्) चुपचाप, बिना बोले या शोरगुल किए; (भ०)।

तुण्हिक्क—वि० (दे०) मृदु- निश्चल; (दे० ना० मा० ५, १५)।

तुण्हिविक्कय—वि० (सं० तूष्णीक) मौन रहा हुआ; (सुदं० ८, १२, १)।

तुप्प—पुं० (दे०) १. कौतुक, २. विवाह, ३. सरसों, धान्य-विशेष; ४. कुतुप, घी आदि भरने का चर्म-पात्र; (दे० ना० मा० ५, २२)। ५. वि० चुपड़ा हुआ, घी आदि से लिप्त; ६. स्निग्ध, स्नेह-युक्त, म्रक्षित; (दे० ना० मा० ५, २२)। न० (दे०) घृत; "अण्णेक्कहिं हयारिपलकवलपथिप्पिरतुप्पधारयं। दाउं भोज्ज मज्ज सुअ बहुरस विणिहयछुहवियारयं;" अर्थात् राजा ने अनेक विप्रों को भैंसे के मांस को प्रचुर घी की धारा सहित तथा मद्य, सूप आदि बहुत रस जो क्षुधा को भलीभाँति निवारण करने वाले हैं, ऐसे खाद्य-पदार्थ प्रदान किए; (जस० ३, ६, १)।

तुमा—सर्व० (सं० त्वम्) तुम; "सई उमा रखो तुमा," सती उमा तुम्हारी रक्षा करे; (प्रा० पैं० २, ८)। तुम्हा; (प्रा० पैं० २, १२३)।

तुमुल—वि० (सं० प्रा० तुमुल) भयंकर; (प० च० १५, १५, ६)।

तुम्ह—सर्व० (सं० त्वम्) तुम; (उ० व्य० प्र० २१, २०; रा०)। वि० तुम्हारा; (की० ३, १६)।

तुम्हतौ—सर्व० (सं० युष्मत्) तुम, आप; (उ० व्य० प्र० १४, २७)।

तुम्हार—वि० (सं० युष्मत्कार्यकः) तुम्हारा, तेरा; तुल० गु० तमारा; (भ०)।

तुम्हारिस—वि० (सं० युष्मादृश) तुम्हारे जैसा; (क० ८, १०, ६)।

तुम्हे—सर्व० (सं० युष्मे[illegible]) तुम सब, (उ० व्य० प्र० १४, २८)। —दुई सर्व० (—द्वि) तुम दोनों; (उ० व्य० प्र० १६, ६)।

तुरं—न० (सं० तूर) तुरही, वाद्य-विशेष; (व० २, १४, १)।

तुरंग—पुं० (सं० तुरङ्ग) रामचंद्र का एक सुभट; (प० च० ५६, ३८)।

तुरंगकन्धर—पुं० चक्रवर्ती अश्वग्रीव; (व० ४, ११, ५)।

तुरंगम—पुं० (सं० तुरङ्गम्) तुरंग, अश्व; "मणगमणतुरंगमहिलिहिलंतु," अर्थात् मन के समान तीव्रगामी तुरंगों के रूप में हिनहिना रहा था; (जस० ४, ७, ७)। तुरंगु; (व० ८, ४, ४)।

तुरंत—क्रि० वि० (सं० तुर) त्वरित, शीघ्र; तुल० म० तुरुत; (क० २, १५, ३)। —उ क्रि० वि० तुरंत; (व० २, ४, ३)। तुरंतु; (ज० १, ६, २४)।

तुर, तुरा—स्त्री० (सं० त्वरा) शीघ्रता; (दे० ना० मा० ५, १६)।

तुरअ—पुं० (सं० तुरग > प्रा० तुरय) अश्व; (जस० १, ५, १२)।

तुरउ—पुं० (सं० तुरग > प्रा० तुरय) घोड़ा; (क० ७, २, ७)।

तुरओ—पुं० (सं० तुरग) काव्य छंद का भेद, छंद-विशेष; (प्रा० पैं० १, ११४)।

तुरक्क—वि० तीक्ष्ण; (सं० रा०)।

तुरन्त—अव्य० (सं० त्वरित > प्रा० तुरिअ, तुर्) शीघ्र; तुल० गु० तरत; (प० च० ४, ३, ४)।

तुरमाण—अव्य० (सं० त्वर > प्रा० तुर)

अनंतर, इतने में; (प० चं० १२, ४, १)।

तुरय—पुं० (सं० तुरग>प्रा० तुरय) अश्व, घोड़ा; (प० च० ३, ७४; महा० ६८, १०, ६; की० ४, ११०)। —विंद पुं० (सं० तुरगवृन्द) अश्वों का समूह; (जंबू० ७, ८, ३)।

तुरय—वि० (सं० त्वरित>प्रा० तुरिअ) त्वरायुक्त, उतावला; (म० २, ५७, ४)।

तुरयगलु—पुं० चक्रवर्ती अश्वग्रीव (हयग्रीव); (व० ४, १०, ६)।

तुरिअ—अव्य० (सं० त्वरित>प्रा० तुरिअ) शीघ्र, जल्दी; तुल० राज० तुरत; (प्रा० पैं० १, ८; क० २, १०, ७)।

तुरिउ—वि० (सं० त्वरित>प्रा० तुरिअ) उतावला। क्रि० वि० शीघ्र; (प० च० २, १४, ८; जस० ४, ७, १२)।

तुरिय—अव्य० (सं० त्वरित>प्रा० तुरिअ) त्वरित, शीघ्र; (सं० रा०)।

तुरियणाणि—पुं० (सं० तुर्य+ज्ञानिन्>प्रा० तुरिअ+णाणि) चतुर्थज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी, "तुरिय णाणि पंचसय दियंवर;' अर्थात् पाँच सौ मनः पर्ययज्ञानी दिगंवर मुनि थे; (व० १०, ४०, ३)।

तुरी—स्त्री० (दे०) १. पीन, पुष्ट २, शय्या का उपकरण; (दे० ना० मा० ५, २२)।

तुरुकाण—पुं० (तु० तुर्क का वहु व० तुरुकाण) तुर्कमान, तुर्क; (की० २, १५७)।

तुरुक्क—पुं० (तु० तुर्क) १. पूर्वी तुर्किस्तान; (जंबू० ६, १६, १०)। २. तुर्किस्तान का निवासी; (की० २, १७)। तुल० मगही तुरुक।

तुरुतुरिय—वि० (सं० तुरुतुरित) (ध्वन्या०)। तूरध्वनि-युक्त; (सुदं० ७, ६, १५)।

√तुल—(सं० √तुल्) तौलना। —इ व० (सं० तुलयति) तुल० राज० तोलबो-बो, तुलिअ; (प्रा० पैं० १, १०)। तुलिअउ—भू० का०, बराबरी की; (की० १, ८०)।

तुलकूड—पुं० (सं० तुलाकूट) झूठे तराजू; (जस० ४, १६, ३)।

तुलग्ग—न० (दे०) १. काकतालीय (अचानक या इत्तिफाकिया होने वाला) न्याय; (दे० ना० मा० ५, १५)। २. यदृच्छया, स्वेच्छा; (प० च० ४८, १३, २)।

तुल-लग्ग—वि० (सं० तुलालग्न) तुला से चिपटा हुआ या लगा हुआ; (प० च० ३०, २, ५)।

तुलसी—स्त्री० (सं० तुलसी) लता-विशेष, तुलसी; (दे० ना० मा० ५, १४)।

तुला—स्त्री० (सं० प्रा० तुला) तराजू, तौलने का साधन; (प्रा० पैं० १, १०)।

तुलाकोडि—स्त्री० (सं० तुलाकोटि,—कोटी) नूपुर; "तुलाकोडिझंकारणच्चंत-मोरा,' अर्थात् उसके नूपुरों की झंकार से मयूर नाचने लगे थे; (जस० ४, १७, २१)।

तुलिय—वि० (सं० तुलित>प्रा०

तुलिअ) उठाया हुआ, "रोस तुलियासि-हत्थो तओ बोलए;" (जंबू० ७, ४, ६)।
तुलुक—पुं० (तु० तुर्क) तुर्किस्तान का निवासी; "जिणइ णहि कोइ तुह तुलुक हिंदू;" (प्रा० पैं० १, १५७)।
तुल्ल—वि० (सं० तुल्य>प्रा० तुल्ल) समान, सरीखा; (क० ८, ६, १०; भ०)। —य, वि०, तुल्य (सं० रा०)। तुल्लु, (सु० ६, २१)।
तुव—सर्व० (सं० तव) तुम्हारा; (प०-च० १६, १५, ६)।
तुवर—पुं० न० (सं० तुवर) रस-विशेष, कषाय रस; (दे० ना० मा० ५, १६)।
√तुस—(सं० √तुष्>प्रा० तूस, तोस) खुश होना, संतुष्ट होना; (उ० व्य० प्र० ११, १८)। तूस—(उ० व्य० प्र० ८, ७)। —इ अक० (सं० तुष्यति) संतुष्ट होना; (षड्)।
तुस—पुं० (सं० तुष) धान्य का छिलका, भूसी; (दे० ना० मा० २, ३६; जस० ३, २७, ८)।
तुसार—न० (सं० तुषार>प्रा० तुसार) (१) सूक्ष्म वृष्टि, बौछार; २. जलकण, वृष्टिकण, "तोय तुसार-धवल;" 'जल के तुषार धवल कण,' (प० च० ४, १०, ६)। ३, हिम, वर्फ; (सं० रा०)। तुसारु; (व० १०, २०, ४)।
तुसेअजम—न० (दे०) लकड़ी, काष्ठ; (दे० ना० मा० ५, १६)।
तुह—सर्व० (सं० तव) तुम; (हे० ३७०, १)।
तुहार—सर्व० (सं० तुहकार्यकः❋) तुम्हारा; (क० २, १८, ५; जस० ३, ३६, १०)। तुहारी—सर्व स्त्री० (प०-च० २१, ११, ३)।
तुहारउ—सर्व० (सं० तुहकार्यकः❋) तुम्हारा तुल० गु० तारुं; (संधि० २, १६, ५)।
तुहारय—वि० (सं० तुहकार्यकः❋> प्रा० तुहार) तुम्हारा; (प० च० ४, १३, ८)। तुहारी—वि० स्त्री० (प० च० ४, ५, ६)।
तुहिं—सर्व० (सं० त्वमेव) तुम ही, (उ० व्य० प्र० २१, २१)। तुहीं—सर्व० तुम ही (उ० व्य० प्र० २२, ५)।
तुहिण—न० (सं० तुहिन्>प्रा० तुहिण) हिम, तुषार, वर्फ; (सं० रा०)। —कर चंद्रमा; (प्रा० पैं० २, २०१)। —यल (तुहिणायल) पुं० (सं० तुहिनाचल) हिमालय; (जंबू० ४, १०, ५)।
तुहुं—सर्व० (सं० त्वम्) तुम, तूने; तुल० गु० तुं; (क० १, १०, ३; महा०)।
तुहुँ—सर्व० तू; (प्रा० पैं० १, ७; हे० ४०२, १)।
तुहु—सर्व० (सं० त्वत्>प्रा० तुह) तुझ, तुम; (सं० रा०)।
तूं—सर्व० (सं० त्वम्) तुम; तुल मगही तूं; गु० तूं; (उ० व्य० प्र० १०, ५)। तूँ; (कण्हपा, चर्यापद)।
तूअ—पुं० ईख का काम करने वाला; (दे० ना० मा० ५, १६)।
तूर—पुं० न० (सं० तूर्य>प्रा० तूर) वाद्य, बाजा; (क० १०, १०, ६; जस० १, २६, २७; षड्)। २. सूर्य; (सं०-

रा०) । —सद्द पुं० (सं० तूरशब्द) बाजे का शब्द; (जंबू० ५, ६, १५) ।

तूरा—पुं० (सं० तूर्य+क>प्रा० तूर +अ) बाजा-विशेष; (की० ४, १५६) ।

तूरिए—पुं० (सं० तूर्य+वादक>प्रा० तूरिअ+वायग) तूर्यक, वाद्य-विशेष तूर्य को बजाने वाला; (प० च० ७, १३, ६) ।

तूरिय—पुं० (सं० तूर्य) तुरही; (भ०) ।

तूल—न० (सं० प्रा० तूल) रुई; (व० ८, ५, ८; भ०) ।

तूलिआ—स्त्री० (सं० तूलिका) रुई से भरा मोटा गद्दा या बिछौना; (दे० ना०-मा० ५, २२) ।

तूलिपल्लंक—पुं० (सं० तूलपल्यंक) पलंग; तुल० म० गु० पलंग; (भ०) ।

तूलियक—न० (सं० तूलकम्) गद्दा; (जंबू० ४, ५, २३) ।

तूली—स्त्री० शय्या; तुल० गु० तळाई; (संधि० ४, १०, ८) ।

तूस्—क्रि० (सं० तोषय्) १. प्रसन्न करना, संतुष्ट करना (रा०) । —इ व० (सं० तुष्यति) (भ०) । २. प्रसन्नता दिखाना "पर किं वलि वि खलाहँ ण रुसइ पणवंतहँ सज्जणहँ ण तूसइ," —इ व० (जस० ३, ३७, ८) । —सेवि पू० का०-क्रि०, संतुष्ट होकर; (क० २, १४, ६; प० च० ५, ५, ६) ।

तूस—वि० (सं० तुष्ट) प्रसन्न; (व० ४, ४, ११) ।

तूह—न० (सं० तीर्थ>प्रा० तित्थ, तूह) पवित्र जगह; (प० च० १, २, ५) ।

तृण—पुं० (सं० तृण) तिनका । तृणाइं —ब० (सं० तृणानि) तिनके; (हे० ४२२, १५) ।

तृप्त हो—क्रि० (सं० तृप्यति) तृप्त होना; (उ० व्य० प्र० ५१-२०) ।

तें, ते—सर्व०, ब० (सं० ते) वे; (रा० २६, ६) । अव्य० इस लिए; (की० १, १७) ।

तेंडुअ—न० (दे०) वृक्ष-विशेष; टींबरु का वृक्ष; (दे० ना० मा० ५, १७) ।

तेंदु, तेंदुअ, तेंदुग—पुं० (सं० तिन्दुक) १. वृक्ष-विशेष, टींबरू का वृक्ष, तेंदु का पेड़; (प० च० ४२, ७) । पुं० न० (सं० कन्दुक) गेंद; (प० च० १५, १३) ।

ते—सर्व० (सं० तत्) १. इसको (प्रा०-पैं० १, ३६) । २. (सं० ते) वे; (उ०-व्य० प्र० १०, ६) । अव्य० १. इसलिए; (की० १, १७) । २. तो; (की० २, ४८) ।

तेअसि—वि० (सं० तेजस्विन्) तेजवाला, तेज-युक्त; (प० च० १०२, १४१) ।

तेअ—पुं० (सं० तेजस्>प्रा० तेअ) प्रकाश; (की० ४, १२३; क० १, ६, ३; जस० १, २६, १४) ।

तेअ—सक० (सं० तेजय्) तेज करना, तीक्ष्ण करना; (षड्) ।

√तेअव— १. दीपना, चमकना; २. जलना । —इ अक०; (षड्) ।

तेअविअ—वि० (सं० तेजित) तेज किया हुआ; (दे० ना० मा० ८, १३) ।

तेअस्सि—पुं० (सं० तेजस्विन्) इक्ष्वाकु

वंश के एक राजा का नाम; (प० च० ५, ५)।

तेआलीसइम—वि० (सं० त्रिचत्वारिंश) तैंतालीसवाँ; (प० च० ४३, ४६)।

तेइं—सर्व० (सं० तेन) उसके द्वारा; (उ० व्य० प्र० ५१, २०)।

तेइय—वि० (सं० तेजित) द्योतित, प्रकाशित; (प० च० ५३, ६, ७)।

तेइल्लउ—वि० (सं० तेजस्विन्) तेजस्वी; (व० २, १८, १३)।

तेइस—वि० (सं० त्रयोविंशत्) तेईस; (प्रा० पैं० १, २००)।

तेउ—न० (सं० तेजस्) तेज, सर्वोत्कृष्ट आभा; (व० १०, ६. २)।

तेगच्छिएग—पुं० (दे०) चिकित्सक; (संधि० १६, ४, ६)।

तेज—पुं० (सं० तेजस्) प्रताप, पराक्रम; (की० १, ७१)।

तेजमन्त—वि० (सं० तेजोवान्) तेजस्वी, (की० ४, ५१)।

तेजि—पुं० (फ़ा० ताज़ी) तेजि जाति का घोड़ा, घोड़ों की एक जाति; (की० ४, २८)।

तेंज्जिअ—पू० का० क्रि० (सं० त्यक्त्वा) छोड़कर; "परिपूजउ तेंज्जिअ लोभ मणा भवणा," अर्थात् 'मन में लोभ और घर-वार छोड़कर सदा आपकी पूजा करूँ;' (प्रा० पैं० २, १५५)।

√तेड—सं० आकारय्, बुलाना; तुल० गु० तेडवुं; (संधि० ६, ३, ११; प्रा० गु० ७, ३, १३)।

तेड्ड—पुं० (दे०) १. शलभ, अन्न-नाशक कीट; २. पिशाच, राक्षस; (दे० ना० मा० ५, २३)।

तेण—सर्व० (सं० तेन) उसने; (व० १, १७, १३)। २. उससे; (की० २, २)।

तेता—अव्य० (सं० तावत्) तितना, तुल० गु० तेठलु; (प्रा० गु० ३६, २६)।

तेतीस—स्त्री० न० (सं० त्रयस्त्रिंशत् > प्रा० तेतीस, तेत्तीस) तीस और तीन; तुल० म० तेतीस, गु० तेत्रीश; (भ०)।

तेतीसोवहि—स्त्री० (सं० त्रयस्त्रिंशत + उदधि) आयु प्रमाण; (जंबू० ११, १२, ६)।

तेतुली—सर्व० (सं० तावती > प्रा० तेतुली) उस; (की० २, २८)।

तेत्तउ—अव्य० (सं० तावत्) उतना; जंबू० ६, १, १८)।

तेत्तडय—वि० (सं० तावत् > प्रा० तेत्तिअ) उतना; (प० च० २२, ५, १)।

तेत्तहि—अव्य० (सं० तत्र > प्रा० तत्थ) वहाँ; (जस० ३, १२, ६; सुदं० ७, ४, ८)। तेत्तहें—अव्य० वहाँ; (प० च० १, १४, ३)।

तेत्तीसइम—वि० (सं० त्रयस्त्रिंश) तेतीसवाँ; (प० च० ३३, १४८)।

तेत्तहे—अव्य० (सं० तत्र > प्रा० तत्थ) वहाँ; (व० २, ४, ३)।

तेत्ता—अव्य० (सं० तावत्) उतना; (प्रा० पैं० १, ७७)।

तेत्तिउ—अव्य० (सं० तावत् > प्रा० तेत्तिअ) उतना; (प० च० १६, १५, ६; वा० १, ६)।

तेत्तिय—अव्य० (सं० तावत्) उतना; प्राचीन म० तेतुलें; (भ०)।
तेत्य—अव्य० (सं० तत्र>प्रा० तत्थ) वहाँ; (जस०)।
तेत्यु—अव्य० (सं० तत्र>प्रा० तत्थ) वहाँ; (जस० १, ५, १०; प० च० २, ७, ४)। —वि० अव्य० (सं० तत्रापि) वहाँ भी; (प० च० १, ११, ४)।
तेयु—अव्य० (सं० तत्र) वहाँ; (रा०)।
तेन्हि—सर्व० उससे; (की० २, ४३)।
तेम—अव्य० तथा १. उसी प्रकार "णज्जइ जेम तेम जगि जीउ वि वहुजो-णीकुलंगओ," अर्थात् उसी प्रकार जगत् में नाना योनियों में जीव की गति होती है; तुल० ब्रज, अवधी, तिमि; गु० तेम; (सम० ३, २२, २; प्रा० पैं० १, १०)। २. तथा; (सं० रा०)। तुल० गु० तेम; ३. और; (प० च० ४, ५, ८)।
तेय—पुं० (सं० तेजस्>प्रा० तेअ) १. कांति, प्रकाश, प्रभा; (सं० रा०; जस० १, ५, ७)। २. अग्नि, कायिक जीव; (व० १०, ४, ३)। —णिहि वि० (सं० तेजोनिधि) तेज के खजाने; (क० ३, १, १२)। —पूर वि० (सं० तेज-पूर) तेजपूर्ण; (जंबू० १, १८, २)।
तेयमाल—वि० (सं० तेजवान्) तेज से वेष्टित या व्याप्त; "बालक्ककिरणतणुते-यमाल," अर्थात् बालसूर्य की किरणों के समान तुम्हारा शरीर तेज से वेष्टित है; (जंबू० १०, १, ११)।
तेयवंत—वि० (सं० तेजोवान्) तेजस्वी; (व० १, १०, ११)।
तेयवारि—वि० तेजस्वी, "फुरंत तेयवा-रिपूरियादियंतयं;" (जंबू० २, ३, २)।
तेयाविद्धी—वि० (सं० तेजस्+आविद्धा) तेज से लिप्त, "भूमि चउत्थी तेयाविद्धी;" चतुर्थ भूमि तेज से लिप्त दिखाई देती थी; (जस० २, ४, ३)।
तेयस्सि—पुं० इक्ष्वाकुवंशीय राजा; (प० च० ५, ५)।
तेयासीति—वि० (सं० त्र्यशीति) तिरासी; (महा०)।
तेरउ—सर्व० (सं० तव) तेरा; (क० ३, २१, ५)।
तेरय—वि० (सं० तव) तुम्हारा; (प० च० १६, ७, १)।
तेरस—वि० (सं० त्रयोदशन्) दस और तीन। पुं० दस और तीन का योग; (भ०)।
तेरसि—स्त्री० (सं० त्रयोदशी) तिथि-विशेष; (क० १०, १६, ७)।
तेरसुत्तरसय—वि० (सं० त्रयोदशोत्तर) एक सौ तेरहवाँ; (प० च० ११३, ७२)।
तेरह—वि० (सं० त्रयोदशन्>प्रा० अर्ध-मागधी तेरस) (सुयगडंग, उवासगदसा-उनो) दस और तीन, तुल० राज० तेर, तेरा (उच्चा० थेरा), गु० तेर; (प्रा० पैं० १, १३; जस० ३, १७, १६)। —उ वि० (सं० त्रयोदशम्) तेरहवाँ; (क० १०, १६, ७)। —सय वि० (सं० त्रयोदशशत) तेरह सौ; (जस० ४, ३०, ११)।
तेरायणरु—पुं० तेरानगर, नगर-विशेष-नाम; (क० ५, २, ६)।

तेलंगा—पुं० (सं० तैलंग) तैलंग देश; "भअ भञ्जिआ वंगा भंगु कलिगा तेलंगा रण मुक्कि चले;" (प्रा० पैं० १, १४५)।

तेलाडी—स्त्री० (सं० तैलाटी) कीट-विशेष, गंधोली; (दे० ना० मा० ७, ८४)।

तेलुक्क, तेलोअ, तेलोक्क—न० (सं० त्रैलोक्य) तीन जगत् स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (प० च० ८, १६; पड्)। —णाह पुं० (—नाथ) तीनों जगत् का स्वामी, परमेश्वर; (पड्)। —मंडण न० (—मण्डन) तीनों जगत का भूषण; २. रावण का पट्ट-हस्ती; (प० च० ८०, ६०)।

तेल्ल—न० (सं० तैल > प्रा० तेल्ल) तेल, तिल का विकार; (जस० १, १६, १३)।

तेल्लोक्का—(सं० त्रैलोक्य) तीन लोक—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक; (प्रा०-पैं० २, ३४)।

तेवँ—अव्य० (सं० तथा > प्रा० तह) उसी प्रकार; (हे० ३४३, १)।

तेवड्ड—वि० (सं० तावत्) उतना; (हे० ३९५, ७)।

तेवण्ण, तेवन्न—वि० (सं० त्रिपञ्चाशत्) तरेपन, पचास और तीन; (पड्)।

तेवीस—वि० (सं० त्रयोविंश) तेईसवाँ; (प० च० २०, ८२)।

तेसंझ—न० (सं० त्रि + सन्ध्य) प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल का समय; (प०-च० ६६, ११)।

तेसट्ठि—वि० (सं० त्रिषष्टि) तिरसठ (प्रा० गु० ३३, २)।

तेसरा—वि० (सं० तृतीय) तीसरा; (की० २, १४०)।

तेह्—वि० (सं० तादृश्) तैसा, उसके जैसा, वैसा; (रा०)।

तेहअ—अव्य० (सं० तथैव) उसी प्रकार; (जंबू० ८, १३, ८)।

तेहइँ—वि० (सं० तस्मिन्) उसी; "तहिँ तेहइँ अवसरि हिंसावासरि पत्तु सुदत्तु ससंघु मुणि;" (जस० १, ११, १०)।

तेहत्तरि—वि० (सं० त्रिसप्तति) तिहत्तर; (महा०)।

तेहय—वि० (सं० तादृश्) उसके जैसा, वैसा; (प० च० २, १३, १)।

तेहिं—अव्य० वास्ते, लिए; (हे० ४, ४२५)।

तेहु—वि० (सं० तादृश) तैसा; (हे० ४०२, १)।

तेह्न—सर्व० (सं० तेषाम्) उनमें; (उ०-व्य० प्र० १०, १५)। तेह्नु; (उ० व्य०-प्र० १०, १७)।

तैल—न० (सं० तैल > प्रा० तेल) तेल, तिलका वि कार; 'तैलें चोपडा निरुख;' (उ० व्य० प्र० ४७, ६)।

तैसन—वि० (सं० तादृश्) इस तरह का, वैसा; (की० १, ३५)।

तैसना—वि० (सं० तादृश) उसी प्रकार, वैसा; (की० ३, १२०)।

तैहा—सर्व० (सं० तस्मिन्) उसमें; "यैहा यैहा धमु चड, तैहा तैहा पापु खस;" (उ० व्य० प्र० ३३, १६)।

तो—सर्व० (सं० त्वम्) तुम; "गोल्ले आ (न) दिअ तुज्झचि देसु. आनिक तेंह चा

तो वेस;" अर्थात् गोल्ल (गोदावरी क्षेत्र के निवासी) आनंदित (होकर) तुझसे कहते हैं कि तेरा वेष उनके (वेष) से बांका है; (रा० ६)। क्रि० वि० (सं० ततः>प्रा० तओ) १. उसके बाद, उससे आगे, "कहहु विअख्खण पुनु कहहु तो अग्गिम वित्तन्त;" अर्थात् हे चतुर स्वामी उससे आगे का वृत्तांत फिर कहो; (की० ३, २)। २. तब, (क० १, २, ८)। —वि० अव्य० (सं० ततः+अपि) तो भी; (प० च० १, ३, ६)।

तोअ—न० (सं० प्रा० तोय) जल; (क० २, १४, ८)।

तोअय—पुं० (दे०) चातक पक्षी; (दे० ना० मा० ५, १८)।

तोखार—वि० (सं० तुषार>प्रा० अप० तुसार) श्वेत; (की० ४, ४७)। टि०— हिम का सफेद (गौर) वर्ण होने के कारण 'तुषार' से व्युत्पत्ति दिखाई गई है।

तोजे—सर्व० (सं० त्वम्) तू; "जइ रण भग्गसि तइ तोजे काअर;" अर्थात् यदि तू रण से भागता है तो तू कायर है; (की० ४, २४६)।

तोटअ—न० (सं० त्रोटक) त्रोटक नामक छंद, एक वर्णिक छंद; (प्रा० पैं० २, १२६)।

√तोड—(सं० तुड्>प्रा० तोड) भेदन करना, तोड़ना; (सं० रा०)। —इ व० (सं० त्रोटयति) तुल० म० तोडणें, गु० तोडवुं; (भ०)। —मि व० (क० ४, १७, २)। तोडंत—कृ० (सं० तुद्+शतृ) (जंबू० ४, ७, १३)। —डेविणु पू० का० क्रि० (कं० १०, २७, २)। —हु आ०, म० पु०, ए०, तोड़ो; मगही तोड़हु; (सरह, दोहाकोश) तोडि—भू० का०, तोड़ डाला, "पाउ तोडि;" अर्थात् पापों को तोड़ डाला; (व० १, ६, ६)। तोडि—पू० का० क्रि० (पाहु०)। तोडिय—भू० का० (सं० त्रोटित) टूट गए; (क० ८, १२, ८)। तोडें वि—पू० का० क्रि० तोड़ कर; (प० च० ७, ५, ८)। तोडेप्पिणु—पू० का० क्रि०, तोड़ कर; (प० च० २, १२, ८)। तोरि—पू० का० क्रि० तोड़कर, अपनी पंक्ति से अलग होकर; (की० ४, १६६)।

तोड—पुं० (सं० त्रुटि) त्रुटि; (म० १, १४, ६)।

तोडण—वि० (दे०) असहिष्णु; (दे० ना० मा० ५, १८)।

तोडणय—न० (सं० त्रोटनक) त्रोटनक नामक छंद; (सुदं० ७, १३, ८)।

तोडणय—वि० (सं० त्रोटक) तोड़ने वाला; (जंबू० ६, १६, १०)।

तोडणो—वि० (सं० त्रोटक) भेदन करने वाला; (सुद० १०, ३, १८)।

तोडिअ—वि० तोडिअ) तोड़ा हुआ; (सुदं० ११, १४, ४; जस० ३, १०, ८)।

तोण—पुं० न० (सं० तूण>प्रा० तोण) तूणीर, भाथा, तरकश; तुल० गु० भाथो; (प० च० १८, ६, ७)। तोणा; (प० च० २६, १२, २)।

तोणअ—न० तोणक छंद; (सुदं० ६, १५, २४)।

तोणीर—पुं० न० (सं० तूणीर>प्रा०

तोणीर) तूणीर, आयुध-विशेष, भाथा; (प० च० २४, ३०)।

तोतर—वि० (दे०) तोतला, जिसमें उच्चारण स्पष्ट न हो; "तुहूँ तारा तोतर भैरव चंडि, सोलस विज्जादेवि तुहूँ," (प्रा० गु० २८, २५)।

तोंद—स्त्री० (सं० तुन्द) तोंद, पेट के आगे का बढ़ा हुआ भाग; (महा० २०, २३, ३)।

तोमर—पुं० (सं० प्रा० तोमर) १. आदि लघु त्रिकलगण का नाम (IS) (प्रा० पैं० १, १८)। २. एम वर्णिक छंद; (प्रा० पैं० २, ८६)। ३. आयुध-विशेष; (जस० १, ४, ६)। ४. बाण-विशेष; (प० च०)।

तोमरिअ—पुं० (दे०) १. शस्त्र का प्रमार्जन करने वाला; (दे० ना० मा० ५, १८)। २. शस्त्र-मार्जन; (पड्)।

तोमरी—स्त्री० (दे०) वल्ली, लता; (दे० ना० मा० ५, १७)।

तोमरेह—पुं० तोमरेख छंद; (सुदं० ६, ३, १२)।

तोय—न० (सं० प्रा० तोय) पानी, जल; (भ०)।

तोयजाण—पुं० न० (सं० तोय+यान) जलयान; (क० ७, ६, ८)।

सोयवलोस—पुं० द्वीप-विशेष; (प० च० ६, ३०)।

तोयावलीदीव—पुं० तोयावलीद्वीप; (जंबू० ६, १६, ६)।

√तोर—(सं० तुड्>प्रा० तोड) तोड़ना; (की० २, २०४)। तोरउ; (रा० २७)।

तोर—वि० (सं० तुवर) कषाय, कसैला; तुल० गु० तूरुं (प० च० ३५, १४, ८)।

तोर—वि० (सं० तव) तुम्हारा; (उ० व्य० प्र० १६, ३०)।

तोरण—न० (सं० प्रा० तोरण) बहिर्द्वार, किसी घर या नगर का बाहरी फाटक; अस्थायी रूप से बनाया हुआ फाटक, मेहराबदार द्वार; (भ०; जस० १, ४, ८)। बड़े द्वार; (की० २, ८५)।

तोरणालु—पुं० तोरण से संयुक्त शाला; (भ० च०)।

तोरन्ते—कृ० रूप का वर्तमान काल से क्रिया की तरह प्रयोग (सं० तोल का धात्वादेश तुल = १. उठाना, २. तोलना, ठीक-ठीक निश्चय करना) ऊँचा उठाते हुए, "तोरन्ते बोल," (वे सेना के) कोलाहल को और अधिक बढ़ा रहे थे; (की० ४, १७)।

तोरविय—(दे०) उत्तेजित; (जंबू० ५, १०, ५)।

तोरा—वि० (दे०) तुम्हारा; (जंबू० ४, १८, १)।

तोरि[1]—अव्य० (सं० ततः अपर) उसके बाद; (की० ४, १३)।

तोरि[2]—पू० का० क्रि० (सं० तोलय्> प्रा० तुल, तोल=ऊँचा उठाना, ऊपर उठाना) ऊँचा उठा कर; (की० ४, ३४)।

तोरी—वि० (दे०) (सं० तव) तुम्हारा; (म० २, २२, ७)।

√तोल—(सं० तोलय्>प्रा० तुल) तोलना। तोलंती, तुल० गु० तोळवुं;

(प्रा० पैं० १,११६; संवि० १८,-१, २०)। तौलन्ति—व०; (की० २, १६५)।
तोलण—पुं०(दे०) पुरुष, आदमी; (दे०- ना० मा० ५. १७)।
तोलादंड—पुं० (सं० तुलादण्ड) तराजू की डांडी या डंडी; (क० २, २, २)।
तोलिय—वि० (सं० तोलित) तौला हुआ; (जंबू० ८, ३, १०)।
तोवट्ट—पुं० (दे०) १. कान का आभूषण-विशेष, २. कमल की कर्णिका; (दे०- ना० मा० ५, २३)।
तो वि—अव्य० (सं० तथापि) तो भी; (हे० ३२६, १)।
तोषार—पुं० (सं० तुषार) घोड़ा; (की० २, १७६)। टि०-संस्कृत साहित्य में तुषार देश के घोड़े के लिए यह शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ। बाद में प्राचीन हि० में घोड़े के पर्याय अर्थ में प्रयुक्त।
तोस—पुं० (सं० तोष>प्रा० तोस) आनंद, संतोष;(जस० ३, ३१, ६)। न० (दे०) धन, दौलत; (दे० ना० मा० ५, १७)।
√तोस—(सं० तोषय्>प्रा० तोस) खुश करना, संतुष्ट करना।—इ सक० (सं० तोषयति) (जंबू० ११, ८, ७)। तोसिय —संतुष्ट करती है; (विला०)।
तोसल—पुं० सं० कोशलक, कोसल, तोशल (देश) दक्षिण कोसल या गोंडवाना; (जंबू० ६, १६, १)।
तोसविअ—वि० (सं० तोषित>प्रा० तोसिअ, तोसविअ) खुश किया हुआ; संतोषित; (भ०; प० च० ७७,८८)।
तोसावण—पुं० (सं० तोषण) संतुष्ट करने की क्रिया या भाव; (प० च० २५, १७, ५)।
तोसिअ—वि० (सं० तोषित) खुश किया हुआ; (जस० १, २१, ११)।
तोहर—सर्व० (प्रा० तोहार, तुहार) तुम्हारा; (प्रा० पैं० २, २४)।
तोहि—सर्व० सं० त्वामेव, तुझको, तुझे; (उ० व्य० प्र० २२, ४)।
तोहोर—सर्व० (प्रा० तोहार, तुहार) तुम्हारा; तुल० मगही तोर; (कण्हपा, चर्यापद)।
तौ—क्रि० वि० (सं० ततः>तउ>तौ) १. उसके बाद; (की० २, २१)। २. फिर, तब; (की० ३, २०)। ३. तो भी; (की० ३, १०७)।
तौतो—सर्व० सं० तस्या, उसका; (उ०- व्य० प्र० २३- १८)।
तौन—सर्व० (सं० तेन) उसने; (की० ३, २१)।
त्तय—वि० (सं० त्रय) तीन; (प० च० १, ७, ३)।
त्ताडिअ—वि० (सं० ताडित) मारा हुआ, जिस पर प्रहार पड़ा हो; (जंबू० ५, ५, १०)।
त्तार—वि० (सं० तार=ऊँचा) विशाल; (जंबू० ८, १२, ६)।
त्तास—पुं० (सं० त्रास) डर, भय, शंका; (जंबू० १, १५, ४)।
त्ति—अव्य० (सं० इति) समाप्ति, हेतु, "लइ लेहु लेहु त्ति आणत्तभिच्चेण," (जंबू० ५, १४, ८)।

त्थवण—न० (सं० अस्तमन) अस्त होना; (सूर्य का) डूबना; (जंबू० ६, ६, २) ।

त्थाणु—न० (सं० आस्थान) स्थान, जगह; (जंबू० ६, १, १६) ।

त्र्ंवक्क—पुं० वाद्य-विशेष; तुल० गु० तंबाळुं; (प्रा० गु० ३३, ४) ।

तितिय—वि० (सं० तृतीय) तीन; (की० २, १४८) ।

त्रीखउ—वि० (सं० तीक्ष्ण>प्रा० तिक्ख) तेज, तीखा, पैना; तुल० गु० तीखो; (प्रा० गु० २६, २८) ।

√तुट्ट—(सं० तुट्>प्रा० तुट्ट) टूटना; तुल० गु० तूटवुं; (संधि० १६, ५, १३) ।

थ

थ—पुं० (सं० पा० प्रा० थ) दंत्य, श्वास, अघाष, महाप्राण, निरनुनासिक स्पर्श वर्ण ।

थंडिल्ल—न० (दे०) मंडल, वृत्त प्रदेश; (दे० ना० मा० ५, २५) ।

थंतु—वि० (सं० स्था>प्रा० था, थंत) स्थित (व० ५, १०, ६) ।

थंब—पुं० (सं० स्तम्व) तृण आदि का गुच्छ; (दे० ना० मा० ८, ४६) ।

थंभ—पुं० [सं० स्तम्भ>प्रा० थंभ (हे० प्रा० २, ६)] थंभा; तुल० राज० थंभ; (व० ३, १५, ७; ण० १, १७, ८) । थम्भ; (क० ४, ४, ३) ।

√थंभ—(सं० स्तम्भ्>प्रा० थंभ) रुकना, निश्चल होना, स्थिर होना, स्तब्ध होना; "हउँ थंभमि रविहि विमाणु जंतु चंदस्स जोण्ह छायमि तुरंतु;" अर्थात् मैं चाहूँ तो सूर्य के विमान को चलते-चलते थाम दूँ तथा चंद्र की चांदनी को एकदम ढांक दूँ; (जस० १, ६, १४) । —इ व० (सं० स्तम्भते) (भ०) । थम्भिउ—भू० का०, रुक गया; (प० च० १३, १) । थम्भेवि—पू० का० क्रि०, रोककर; (प० च० १४, १३, ८) ।

थंभण—न० (सं० स्तम्भन> प्रा० थंभण) रोक-थाम, स्तब्ध-करण, थभाना; तुल० म० थावर्णे; राज० थंभण (रुकावट, ठहराव); (म० २, ५७, २; सि० १, ४१; ण० ३, १, १२) ।

थंभिय—वि० (सं० स्तम्भित) स्तब्ध किया हुआ, थमाया हुआ; (सुदं० ६, १, ६) ।

√थं —(सं० स्तम्भ्) रोकना, थामना; थंहिअं (स्तम्भितं); "तं तं लीलाइ णलो वामकरत्थंहिअं रएइ समुद्दे;" अर्थात् नल उसी पर्वत को लीला से बाएँ हाथ में थामकर समुद्र में विरचित कर देता है; (प्रा० पैं० १, ७४) ।

√थ—(सं०√स्था) रहना, स्थिर होना; (सुदं० १०, ६, ६) । थन्ति क्रि,० व० ठहरना; (हे० ३६५) ।

थउड—न० (सं० स्थपुट) विषम या नीचा-ऊँचा प्रदेश; (दे० ना० मा० २, ७८) ।

थउड्ड—न० (दे०) भल्लातक, वृक्ष-विशेष, भिलावा; (दे० ना० मा० ५, २६) ।

थक्क—पुं० (दे०) अवसर, प्रस्ताव, समय; (दे० ना० मा० ५, २४)।
थक्क—वि० (सं० स्थित) स्थित हुए, रहा हुआ; "सत्तमधाउ जीउ विण्णि वि सह थक्कइँ माउपोट्टए। अप्पउ अप्पएण मइँ जणियउ दुविहभवे पयट्टए;" अर्थात् इस सप्त धातुमय जीव की भी कैसी विचित्रता है ? इस दूसरे जन्म में तथा मेरे द्वारा उत्पादित जीव दोनों साथ ही माता के पेट में स्थित हुए; (जस० ३, ७, १)। वि० स्तब्ध, स्थित, पड़ा हुआ; तुल० म० थक्क (स्तब्ध); (म० १, २३, ३; व० ५, ४, १)। २. रहा हुआ; (सुदं० ३, ९. १८)।
√थक्क—(सं०√ स्था√ फक्क=to move slowly) थकना, श्रांत होना। —इ अक०, व० तुल० राज० थक्कणो, थक्कबो; (प्रा० पैं० २, १४९; हे० ३७०)। "धण-दाक्षिण जे नेह घणि थक्कइ ते उवसमहिं;" (प्रा० गु० ३८, २६)। थक्किअ—ठहरना; (प्रा० पैं० १, १९०)।
√थक्क—अक० (सं० स्था>प्रा० थक्क) रहना, बैठना, स्थिर होना। —इ व० सं० तिष्ठति (भ०; ण० ३, १३, ३)। —उ "गयणें अणंताणंतएँ थक्कउ," (यह जगत्) अनंतानंत आकाश के बीच स्थित है; (सुदं० २, १, ९)। —हि क्रि०, व० स्थित होना, स्थिर होना; (प० च० १७, १४, २)।
थक्का—भू० का०, स्थित हुए (क०)।
थक्केंवि —पू० का०, क्रि०, (प० च० २२, ५, ७)।

थक्किय—वि० (सं० स्थित>प्रा० थक्क) स्थित, एक स्थान पर ठहरा हुआ; (सं० रा०; संधि० १९, ६, ८; संधि० १९, ६, ८)।
थगण—न० (सं० स्थगन), आवरण ढक्कन, आच्छादन; (दे० ना० मा० २, ८३)।
थग्गया—स्त्री० (दे०) चंचु, चोंच; (दे० ना० मा० ५, २६)।
थग्घ—पुं० (दे०) थाह, गहराई का अंत, तला, पानी के नीचे की भूमि; (दे० ना० मा० ५, २४)।
थट्ट—पुं० न० (सं० स्थात>प्रा० थट्ट) १. समूह, "वणयर-थट्ट" वनचर समूह; तुल० गु० ठठ; म० थट, थड; (प० च० १३, ६, ४)। २. ठाठ, सज-धज; (म० १, ३५, ११)।
थट्टि—स्त्री० (दे०) पशु, जानवर; (दे० ना० मा० ५, २४)।
थड—पुं० न० (दे०, प्रा० थड) ठठ, समूह; (प० च० १९, ३, १०; सुदं० १०, ५, ५)। तुल० कानडी थटट=समूह। २. कतार, पलटन, सैन्यदल; (प० च० २५, ५, ८)। ३. ढेर; (पाहु०)। ४. भीड; तुल० म० गु० थड, थट; (ण० ४, ७, १२)।
थडा—पुं० (दे०) यूथ, दल; (सुदं० २, १३, १)।
थडि—स्त्री० (सं० स्थली) बैठने की जगह; (पाहु०)।
थड्ढ—वि० (सं० स्तब्ध>प्रा० थड्ढ) निश्चल, जो निश्चेष्ट हो गया हो, स्तं

भित; (सुदं० ७, १६, ७; सं० रा०)। २. गर्वित; (भ०)। —त्तण पुं० (सं० स्तब्धत्व) (ण० १, १७, १२)।

थड्ढत्तणु—पुं० (सं० स्तब्धत्व) धृष्टत्व; "थड्ढत्तणु तरुणीयण-थणेसु;" अर्थात् यदि दृष्टता कहीं थी तो मात्र तरुणीजनों के स्तनों में ही थी; (व० ६, १, १२)।

थण—पुं० (सं० स्तन>प्रा० थन>प्रा० थण) १. मादा पशुओं का वह अंग जिसमें दूध रहता हो; (सुअंध० १, ३, ८)। २. कुच, स्तन, पयोधर; (प० च० १४, ७, ८; सं० रा०; सुदं० ८, २६, ७; ण० १, १७, १२)। तुल० राज० थण। —हर पुं० (सं० स्तन+भर) स्तन का बोझ; (प्रा० गु० ३८, ५)।

थणद्धउ—पुं०(सं०स्तनंधय)पुत्र; "आयएँ जणिउ थणद्धउ केहउ एवें जो मयरद्धउ जेहउ;" अर्थात् इसने एक पुत्र को जन्म दिया जो कैसा था मानो रूपधारी मकरध्वज ही हो; (जस० ४, २३, १६)।

थणवट्ट—पुं० (सं० स्तनपट्ट>प्रा० थण+पट्ट, वट्ट) स्तन पर पहनने का वस्त्र; (सं० रा०)। "मयरद्धयझाणपहायरुद्धु णिवकण्णाहि पुणु थणवट्टु वद्धु," अर्थात् (राजकुमारी अभयमति ने) कामध्यान के प्रघातों का अवरोध करने वाला स्तनपट बांध लिया; (जस० ४, २८, २१)।

थणाल—पुं० (सं० स्तन+आल=बड़ा) दीर्घ और लंबे स्तन; "फणिवद्धदीहलंबिरथणाल,' अर्थात् दीर्घ एवं लंबे स्तन सर्पों से लिपटे हुए थे; (जस० १, ६, ४)।

थणि—स्त्री० (सं० स्थली>प्रा० अप० थडि) स्थान; (सि० २, १४)।

थणिय—पुं० स्तनितकुमार नामक देव; (व० १०, २६, ७)। न० (सं० स्तनित) मेघ की गड़गड़ाहट; (दे० ना० मा० ५, २७)।

थत्ति—स्त्री० (सं० स्थिति) १. स्थिति; (सुदं० १०, १०, १२)। २. विश्राम; (थत्तिअ दे० ना० मा० ५, १६)। ३. स्थिरता; (सि० १, १)। ४. स्थान; (ण० १, १५, ३; जस०३, १८, ४)।

थत्तिअ—न० (दे०) विश्राम; (दे० ना०-मा० ५, २६)।

थनवार—पुं० (सं० स्थानपाल) घोड़े के थान का अध्यक्ष, कर्मचारी; (की० ४, २७)।

थप्प थप्प—पुं० (ध्व०) ठप्प-ठप्प का शब्द; (की० ४, २७)।

थप्पड—पुं० (अनुध्व० थप-थप) चपेटा, थप्पड; तुल० म० थप्पड; (म० २, १६, ८)।

थप्पण—वि० (सं० स्थापन) स्थापित करने वाला; (प्रा० पैं० २, ६७)।

√थप्प—(सं०स्थापयति)स्थापित करना —हु क्रि०,आ०,स्थापितकरो.(प्रा० पैं०१, ४८)। थप्पि—स्थापित करो, 'कोंप्पि-पिअ जाहि तह थप्पि जसु विमल महि,' हे प्रिय तुम क्रुध होकर वहां जाओ, पृथ्वी में निर्मल यश स्थापित करो, (प्रा० पैं० १, १५७)। थप्पिअ—क्रि०, भू० का० (सं० स्थापित) स्थापित कर दिया;

(की० ३, ८०)। थंप्पिआं—भू० का०, स्थापित किया; (की० ३, ८०)। टि०—'कीतिलता' में भूतकाल के कृदंत रूपों में 'इअ' को 'इआ' रूप में व्यक्त करने की प्रवृत्ति मिलती है। थप्पिउ—भू० का०, स्थापित किया; (सि० २, ३६, १)।

थमिअ—वि० (दे०) विस्मृत; (दे० ना०-मा० ५, २५)।

थर—पुं० (दे०) दही के ऊपर की मलाई; (दे० ना० मा० ५, २४)।

√थरथर—(दे०) काँपना। थरथरथरन्त—कृ० काँपते हुए; (प० च० २७, ६, २)।

√थरहर—(दे०) काँपना, थर्राना, 'थरथराना; 'थरहर थरहर थरहर ए विरहिणी-मनु कंपइ,' तुल० गु० थरथर, म० थरथरणें, राज० थरहराणो, थरहरावो; (प्रा० गु० २२, ६)। थरहरंत—कृ० कंपायमान; (म० १, २७, ८)। —इ अक०, व० (सुदं० ४, ६, ४; भ०); तुल० म० थरथरणें। —रेइ व० (सुदं० ३, ११, ७)। —रेवि पू० का० क्रि० (सुदं० ११, १३, १)।

थरहरिअ—वि० (सं० थरथरायते; प्रा० थरथरेदी, थरथ्थरइ; अप० थरहर) कंपित; (ण० ५, ५, १५; दे० ना० मा० ५, २७)।

थरहरिय—वि० (दे०, प्रा० थरहरिअ) कंपित; (सं० रा०)।

थरिमद्दि—स्त्री० (ध्व०) तबले या डफली की विशिष्ट आवाज (particular sound of tabor); (प० च० ५६, १, १०)।

थरु—पुं० (सं० त्सरु) तलवार की मूठ, खड्ग-मुष्टि; (दे० ना० मा० ५, २४)।

थंल—न० (सं० स्थल > पा० प्रा० थल) भूमि, सूखी जमीन; तुल० गु० म० राज० थळ; पं० वं० थल, ओ० थळ, सि थरु, ने० थल्, (क० १, ३, ६; जस० ४, १६, ५)। —कमलपत्त न० स्थल-कमल का पत्ता; (की० २, ८७)। —यर वि० (सं० स्थलचर) स्थलचर जीव; (जस० १, ७, ६; व० १०, ८, १४)।

थल-गब्भ—पुं० (सं० स्थल + गर्भ) गर्भ से उत्पन्न थलचर जीव; (व० १०, १०, १३)।

थलमाण—पुं० न० (सं० स्थल + मान) स्थल का प्रमाण, "अण्णेक्कहिँ पक्खपसरु करइ, थलमाणु य पक्खिणि वज्जरइ;" अन्य एक ने अपने नेत्र-पक्ष्मों का ऐसा प्रसार किया मानो वह विशाल पक्ष्मों वाली उस स्थल का प्रमाण ही कह रही हो; (ण० २, १, ११)।

थलय—पुं० (दे०) मंडप, तृणादि-निर्मित गृह; (दे० ना० मा० ५, २५)।

थलिया—स्त्री० (सं० स्थालिका) छोटा थाल, भोजन करने का पात्र; (प० च० २०, १६६)।

√थव—(सं० स्थापयति) स्थापित करना। थविउ—भू० का० स्थापित किया; (क० ६, १६, १०)। (व० ३, ५, ३)। थविज्जइ—कर्मवा० (ण० ३, २, १४)। थविवि—पू० का० क्रि०; (ण० ७, १०, १)।

थव—पुं० (दे०) पशु, जानवर; (दे०-ना० मा० ५, २४)।

थवइ—पुं० (सं० स्थपति>पा० थपति) बढ़ई; (दे० ना० मा० २, २२)।

थवइल्ल—वि० (दे०) जांघ फैला कर बैठा हुआ; (दे० ना० मा० ५, २६)।

थवक्क—पुं० (सं० स्तवक>पा० थवक) समूह, थोक; (भ०; प्रा० गु० २२, १३)।

थवय—पुं० (सं० स्तवक) फूल आदि का गुलदस्ता या गुच्छा; (दे० ना० मा० २, १०३)।

थविआ—स्त्री० (दे०) वीणा के अंत में लगाया जाने वाला छोटा काष्ठ-विशेष; (दे० ना० मा० २, २५)।

थविय—वि० (सं० स्थापित) १. रखा या डाला हुआ, (भ०)। २. जिसकी स्थापना की गई हो, निर्दिष्ट किया हुआ, निश्चित किया हुआ; (म० १, २१, १६)।

थविर—वि० (सं० स्थविर) वयोवृद्ध अनुभवी एवं कुशल, परिपक्व बुद्धि वाला; तुल० राज० थविर; (व० ६, १०, ३)।

थवी—स्त्री० (दे०) देखो थविआ; (दे०-ना० मा० २, २५)।

थह—पुं० (दे०) आश्रय, स्थान, निलय (वास-स्थान); (दे० ना० मा० ५, २५)।

√था—(सं० स्था>प्रा० था) —इ व० ठहरती है (क० ६, ७, ५; सुदं० ८, १८, ६)। —इवि पू० का० क्रि० (क० ५, २, ७)। —एवि पू० का० क्रि० (क० १०, १७, ३; ण० ६, १, ६)। —हि व० (सुदं० १०, २०, ४)।

थाट—पुं० न० (सं० स्यात) समूह; तुल० म० थाटी स्त्री० (समूह); राज० थाट; (प्रा० गु० २६, ६)।

√थाड—(दे०) ढकेलना; थाडंति; (म० २, ५२, १२)।

थाढ—वि० (सं० स्तब्ध>प्रा० थड्ढ) निश्चल; (रा०)।

थाढा—भू० का० कृ० खड़ा; "आनिकु जोवणु उरू थाढा;" बांका यौवन खड़ा है; (रा० ८, १६)।

थाण—न० (सं० स्थान>प्रा० थाण) जगह; तुल० म० थान; (प० च० १३, ५. १०; व० ६, १६, ८; क० ५, ८, ७)। "थाणहो चुक्की;" अर्थात् स्थान से चूकी हुई; (रि० ३, १)।

थाणिज्ज—वि० (दे०) सम्मानित; (दे०-ना० मा० ४, ५)।

थाणु—पुं० (सं० स्थाणु) वृक्ष का ठूंठ, "दवदड्ढ-थाणुसंकासतणु;" अर्थात् उस का शरीर अग्नि के जले हुए वृक्ष के ठूंठ के सदृश था; (जस० २, ६, १०)।

थात्री—स्त्री० (सं० स्थातृ) अमानत, धरोहर; (भूसुक० चर्या० २१)।

थापे—क्रि० (सं० स्थापय्>प्रा० थप्पिअ) स्थापित करना; तुल० सिं० थापणु, गु० थापवूं, पं० थापणा, (उ०-व्य० प्र० २१-१७)।

थाम[1]—वि० (दे०) विस्तीर्ण; (दे० ना०-मा० ५, २५)।

थाम[२]—न० (सं० स्थामन् <प्रा० थाम) १. बल, पराक्रम; (सुद० ६, १८, ८)। सामर्थ्यं; (ण० ६, १३, २)। ३. न० (सं० स्थान >प्रा० ठाण, थाम) स्थान; तुल० गु० ठेकाणुं (संधि० ३, ३, ३)। ३. स्तंभ; (क० १, १७, ८)।

थार—पुं० (दे०) घन, मेघ; (दे० ना०-मा० ५, २७)।

थारे—वि० (सं० स्तब्ध >प्रा० थड्ढ > थड्ड >थाड >थार+अ=थारा, थारे) गर्वीले, गर्विष्ठ, रोबदाबवाले; (की० २, २२०)।

थाल—पुं० न० (सं० स्थाल >पा० प्रा० थाल) बड़ी थाली, परात; (दे०-ना० मा० ६, १२; सुदं० ५, ६, ३, उ०-व्य० प्र० ५०, १५)। थालु—पुं० न० थाल; (क० ६, २, ६)।

थाला—स्त्री० (दे०) बारा; (पड्)।

थाली—स्त्री० लघु घट; (संधि० ४, १३, ८)।

थावर—वि० (सं० स्थावर >प्रा० थावर) स्थिर रहने वाला, अटल, अचल; तुल० राज० थावर; (वी० १, २; जस० २, ३७, ७)। २. स्थावर जीव; (व० १०, ६, ३)।

थावरु—पुं० स्थावर नामक विप्र पुत्र; (व० २, २२, १०)।

थाह—पुं० (सं० स्ताघ >प्रा० थाह) १. थाह, तला, गहराई का अंत, तुल० सि० थाह, पं० थाह, वं० था; अस० थाइवा, (हे० ४४४, २)। २. स्थान; ३. वि० गहरे जल वाला; ४. विस्तीर्ण, ५. दीर्घ; (दे० ना० मा० ५, ३०)।

थाहर—पुं० (सं० स्थान >प्रा० थाण, ठाण) स्थान; तुल० गु० ठार; (प्रा० गु० ७, १९)।

थिअ—वि० (सं० स्थित) एक स्थान पर ठहरा या टिका हुआ; तुल० गु० थयुं; (क० ३, ४, १२; जस० १, २७, १७; संधि० १७, ३, ६; सुदं० ८, २५, १)।

थिउ—स्थित; (प० च० १२, ३, ६; महा० ६, ८, ७)। "तहों दाहिणदिसि थिउ भरहखेत्तु;" (ण० १, ६, ३)।

थिण्ण—वि० (दे०) १. स्नेह-रहित दया-वाला; २. अभिमानी; (दे० ना० मा० ५, ३०)।

√थिप्प—सं० √विगल्; गल जाना। —प्पंति (जस० ३, ९, १; क० ३, १५, ८)।

थिमिअ—वि० (सं० स्तिमित) स्थिर, निश्चल; (दे० ना० मा० ५, २७)।

थिय—वि० (सं० स्थित >प्रा० थिअ) रहा हुआ, एक स्थान पर ठहरा या टिका हुआ; (सं० रा०; क० ४, १७, ९)।

थियउ—भू० का०, स्थित हो गया, "तेउ अतेउ होवि थियउ;" तेज अतेज (प्रकाश अंधकार) हो कर स्थित हो गया; (रि० ६, १७)।

थिर—वि० (सं० स्थिर >प्रा० थिर) १. निश्चल, २. स्थायी, ३. निश्चित, ४. उद्वेग, चंचलता आदि से रहित, तुल० म० थीर, राज० गु० थिर; (भ०; सं०-रा०)। थिरु; (महा० ६८, ७, ३)। थिरो; (वी० १, १)। —यर वि० (सं०

स्थिरतर) अधिक स्थिर; (व० २, २, ६)।

थिरणाम—वि० (दे०) चंचल मनस्क या चित्त वाला, (दे० ना० मा० ५, २७)।

थिरण्णेस—वि० (दे०) अस्थिर, चंचल; (पड्)।

थिरत्त—पुं० (सं० स्थिरत्व) स्थिरता; (ण० १, ४, ६)। —णउं पुं० स्थिरता; (हे० ४२२, ६)।

थिरसीस—वि० (दे०) १. निर्भीक, २. निर्भर, ३. जिसने सिर पर कवच बाँधा हो वह; (दे० ना० मा० ५, ३१)।

थी—स्त्री० (सं० स्त्री>पा० प्रा० थी) स्त्री, महिला; (संधि० ६, ४, १६; सुदं० ४, १२, १८; क० १०, २२, ६)। —यण पुं० स्त्रीजन, स्त्री जाति, 'रहसि पूरिउ थीयणहं काउ," अर्थात् सभी स्त्रियों का शरीर उल्लास से परिपूर्ण हो गया; (जस० १, २६, २१)। —यण पुं० (सं० स्त्री+रत्न) श्रेष्ठ स्त्री, स्त्री रूपी रत्न; (ण० ३, ७, ८)।

थीरूवंक—वि० (सं० स्त्री+रूप+अङ्क) स्त्री के चित्र से अंकित (पट) (ण० १, १४, ६)।

थीवेउ—पुं० (सं० स्त्री+वेद) स्त्री-ज्ञान; "थीवेउ णिहम्मइ जेण एहु;' जिससे इस स्त्री ज्ञान का विनाश हो; (क० १०, ५, ५)।

थुअ—वि० (सं० स्तुत) प्रशंसित; (भ०; ण० २, ११, १)।

थुइ—स्त्री० (सं० स्तुति>पा० थुति प्रा० थुइ) प्रशंसा; (ण० ६, ७, ६; क० ३, २०, ६; सुदं० १०, १, १७)।

थुई—स्त्री० स्तुति (सि० १, १२)। —वण पुं० न० स्तुतिवचन>प्रा० थुइ+वयण) प्रशंसा का कथन; (जस० १, २६, १४)।

थुक—पुं० (सं० थूत्कृत>प्रा० थुक्क) थूक; (की० २, १७७)।

थुक्क—न० (सं० थूत्+कृत) थूक; (दे० ना० मा० ४, ४१)।

√थुक्क—(सं० थूत+कृ>प्रा० थुक्क) थूकना। थुकिज्जइ—कर्मवा० (सुदं० ६, ४, ४)। तुल० म० थुक (णें), थुंक (णें); नि० वं० थुक, ओ० थुक, पं० थुक्क।

थुक्किअ—वि० (दे०) ऊँचा; (दे० ना०-मा० ५, २८)। वि० (सं० थूत्कृत) थूका हुआ; (दे० ना० मा० ५, २८)।

थुड्डहीर—न० (दे०) चँवर, चामर; (दे० ना० मा० ५, २८)।

√थुण—(सं० स्तु>प्रा० थुण) स्तुति करना; (जस० १, ६, ८)। थुणंत—कृ० (सं० स्तु+शतृ); (सुद० ७, १, ४)। थुणंतु—कृ० (द० २, १३, ४)। —इ सक० (सं० स्तौति); (भ०; ण० १, ११, २)। —उ भू० का० "थुणउ वीरु सच्चउरहँ मंडणु पाव-तिमिर-दुह-कम्म विहंडणु," (प्रा० गु० ५, ४८)। —हिं व०, प्र० पु०, व०; (सुदं० ८, ११, ७)। थुणेइ—व०; (सुदं० ६, २१, १२)।

थुत्त—न० (सं० स्तोत्र) स्तुति-पाठ; स्तुति; (भ०)।

थुत्ति—स्त्री० (सं० स्तुति) गुण-कीर्तन; (जस० ४, २३, १८)।

थुत्थुक्कारिय—वि० (सं० थुत्थुत्कारित) थुतकारा हुआ, तिरस्कृत; (भ०)।

थुय—वि० (स० स्तुत>प्रा० थुअ) जिसकी स्तुति की गई हो वह; (जस० ३, ३६, १)।

थुरुणुल्लणय— न० (दे०) शय्या, बिछौना; (दे० ना० मा० ५, २८)।

थूलघोण—पुं० (दे०) वराह, सूअर; (दे० ना० मा० ५, २९)।

थुलम—पुं० (दे०) तंबू, वस्त्र-गृह; (दे०-ना० मा० ५, २८)।

थुल्ल—वि० (दे०) परिवर्तित; "थुल्लो परिवत्तितः;" (दे० ना० मा० ५, २७)।

थुव—वि० (सं० स्तुति>प्रा० थुअ) जिसकी स्तुति की गई हो वह, "जय सुमण-थुव वासुपुज्ज," अर्थात् सुमन—देव तथा सुमन—ज्ञानीजनों द्वारा स्तुति वासुदेव की जय हो; (व० १, १, ८)।

थुवा—न० (सं० स्तवन>प्रा० थुवण) स्तुति; (सि० १, १६)।

थुव्व—सक० (सं० स्तु) गुण-वर्णन करना। —इ (सुदं० १२, १, १२)।

थूण¹—पुं० (दे०) अश्व; (दे० ना०-मा० ५, २९)।

थूण²—पुं० (दे०) वृक्षों के ठूंठ; "पंचासहिं थूणइं दारियइं जहिं भिल्लिं हरिणइं मारियइं," जहां शेर वृक्षों के ठूठों को विदारित करते हैं। जहां भील हरिणों को मारते हैं; (जस० २, २७, ११)।

थूर—(सं० स्थूल>प्रा० थूल, थुल्ल) मोटा, बड़ा; तुल० राज० थूर; (प्रा०-पैं० २, १८५)।

थूरी—स्त्री० (दे०) तंतुवाय का एक उपकरण; (दे० ना० मा० ५, २८)।

थूल—वि० (सं० स्थूल>पा० थूल> प्रा० थुल्ल, थूल) मोटा; राज० थूळ; (सं० रा०; क० ७, १०, ६; व० ७, १६, १२)।

थूललक्ख—वि० (सं० स्थूल+लक्ष्य) जिसका लक्ष्य महान् हो, उदार एवं ज्ञानी; "सोमु अजिभचित्तु कयदाणउ थूललक्खु पुरिसोत्तमु जाणउ;" अर्थात् वह सौम्य, सरलचित्त, दानी, उदार एवं ज्ञानी पुरुषोत्तम बन गया; (ण० ३, ४, ६)।

थूलाहल—पुं० (सं० स्थूलफल) स्थूल या बड़े आकार का फल; (भ०)।

थूह¹—पुं० (दे०) १. प्रासाद का शिखर; २. चातक पक्षी; ३. वल्मीक; (दे० ना० मा० ५, ३२)।

थूह²—पुं० (सं० स्तूप>प्रा० थूभ) थूहा, ढूह, टीला; (सुदं० ११, १२, ३; व० ६, २३, ८)।

थेघ—पुं० (दे०) रोक, टेक, "सङ्गाम थेघ, भूमिट्ट मेघ," अर्थात् वे (हाथी) युद्ध की टेक थे और पृथ्वी पर उतर कर आए हुए काले मेघ से जान पड़ते थे; (की० ४, १८)। टि०—प्राचीन युद्ध कला में हाथी युद्ध की टेक माने जाते थे। हिंदी में ठेगना, ठेघना का अर्थ टेकना, रोकना, सहारा लेना है।

थेण—पुं० (सं० स्तेन>पा० थेन>

प्रा० थेण) चोर, लुटेरा; (ण० ६, ८, २)।

थेणिल्लिअ—वि० (दे०) १. छीना हुआ, २. डरा हुआ; (दे० ना० मा० ५, ३२)।

थेर¹—पुं० (सं० स्थविर) ब्रह्मा, विधाता; (दे० ना० मा० ५, २९)।

थेर²—वि० (सं० स्थविर > प्रा० थेर) बूढ़ा, वृद्ध; तुल० राज० म० थेर, (म० १, ६, २; सि० २, ३; जस० १, २८, २)।

थेरा-वसि—स्त्री० (सं० स्थविर-वसति) उपाश्रय, बूढ़ों का वास; (संधि० १७, ८, २)।

थेरासण - न० (दे०) कमल; (दे० ना०-मा० ५, २९; प० च० ३६, १४, १)।

थेरि—स्त्री० (सं० स्थाविरा > प्रा० थेरि) वृद्धा; (जस० २, १९, ६)।

थेरिव—वि० (सं० स्थाविरा + इव) वृद्धा के समान, दीर्घ नारी के समान; (चं० १, ६)।

थेरोसण—न० (दे०) अंबुज, कमल; (पड्)।

थेव—पुं० (दे०) विंदु; (दे० ना० मा० ५, २९)।

थेव-दण्ड—पुं० सहारे की थूनी, टेकने का खंभा; (की० ४, १७३)।

थेवरिअ—न० (दे०) जन्म के समय वजाय जाने वाला वाद्य; (दे० ना० मा० ५, २९)।

√थेल्व—(सं० विगल का धात्वादेश थिप्प, थेप्प > अव० थेल्व) विगलित होना या गिरने से वचाना; (की०)।

√थोंगदलण—पुं० (अनुध्व०) अश्व-गति की शब्दानुकृति अथवा नादानुकृति; थिक्कदलण थोंगदलण तक्क तरुण रिंगए, णं ण णु कट दिंग दुकट रंग चल तुरंग ए। अर्थात् युद्धभूमि में ये घोड़े धिक्-धिक्, तक्-तक्, शब्द करते, ण-ण, कट-कट ध्वनि करते चल रहे थे; (प्रा० पैं० १, २०१)।

थोअ—पुं० (दे०) १. रजक, २. कंद-विशेष; (दे० ना० मा० ५ ३२)।

थोअ—वि० (सं० स्तोक > पा० थोक > प्रा० थोव) अल्प, थोड़ा; तुल० म० थोड़ा, गु० थोडूं; (भ०; जस० ४, २८, १७)।

थोउवि—अव्य० (सं० स्तोक + अपि > प्रा० थोव + अवि) थोड़ा भी; "थोउवि पयडिय दूसह-पयासु;" (व० ५, २, ८)।

थोट्ट—वि० (दे०) छिन्नहस्त; ठूंठा; "महियलि लोट्टथोट्टदुग्घोट्टइं;" अर्थात् सूंड व पैर कट जाने के कारण ठूंठे हाथी भूतल पर लोट-पोट होने लगे; तुल० म० थोटा; (ण० ७, ७, ६; जस० ३, ४, ६)।

थोट्ठु—वि० (दे०) टूंटा, जिसके हाथ टूटे हुए या खराव हों; (सुदं० ६, १०, १)।

थोड—वि० (सं० स्तोक > प्रा० थोव) थोड़ा; तुल गु० थोडो; (की० ३, ६६)। —उ वि० (प्रा० गु० १६, २१; सा० २३)। थोडिलउ; (प्रा० गु० ३७, २)।

थोत्तु—न० (सं० स्तोत्र > प्रा० थोत्त) स्तुति; (व० १०, २, १२)।

थोरंसुय—न० (सं० स्थूल+अश्रु+क >प्रा० थोर+अंसुय) बड़े-बड़े आँसू; "पुणु रुण्णउ मइँ थोरंसुयहिं;" अर्थात् फिर मैं रो उठा और बड़े-बड़े आँसू बहाने लगा; (जस० २, ३३, २)।

थोर—वि० (सं० स्तोक>प्रा० थोव) थोड़ा, कम; "लप्ख संख आनु घोर जासु मूलें मेरु थोर;" अर्थात् लाखों की संख्या में घोड़ों को लाया गया जिनके मूल्य के सामने सुवर्ण का पर्वत मेरु भी कम जान पड़ता था; (की० ४, ४२)। —य वि० थोड़ा; तुल० मगही थोर, म० थोड़ा; (क०)।

थोर—वि० (सं० स्थूल>प्रा० थुल्ल, थोर) मोटा; तुल० गु० म० थोर, (भ०; सं० रा०; जस० १, ५, ३; क० २, १२, १०)।

थोल—वि० (सं० स्थूल>प्रा० थुल्ल) अधिक, पर्याप्त; तुल० पं० थोल्ह; (की० २, ५५)।

थोल—पुं० (दे०) वस्त्र का एक देश; (दे० ना० मा० ५, ३०)।

थोवंतर—न० (सं० स्तोकान्तर>प्रा० थोव+अंतर) थोड़ा सा फर्क या भेद; (क० ४, ८, ७)। थोवंतरि—थोड़े अंतर पर; (रि० ६, ६)।

थोव—वि० (सं० स्तोक>पा० थोक> प्रा० थोअ) थोड़ा, तुल० म० बं० ओ० पं० थोडा, गु० थोडू, ने० थोर, सिं० थोरो; (जस० ३, २०, ८)।

थोवअ—वि० (सं० स्तोक>प्रा० थोवाग, थोव) थोड़ा, अल्प; (सुदं० २, १३, ६; क० ८, २, ६)।

थोवड—वि० (सं० स्थूल>प्रा० थुल्ल, थोर) मोटा, तुल० म० थोर; (सुदं० ११, ६, ११)।

थोवा—(सं० स्तोक>प्रा० थोव) थोड़ा; तुल० म० थोडा; (हे० ३७६, १)।